सत् शास्त्र-प्रकाशन—

महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास-प्रणीत—

श्रीमद्भागवत-महापुराण

[पदच्छेद, अन्वय, हिन्दी शब्दार्थ टीका सहित]

चतुर्थ खण्ड

[पञ्चम एवं षष्ठ स्कन्धः]

सम्पादक :
सुदर्शन सिंह 'चक्र'

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान
मथुरा—२८१००१

श्री हित हरिवंश

वृन्दावन के परम पूज्य संत श्री प्रेमानंद जी के प्रवचन से प्रेरणा पाकर हमने मूल संस्कृत की श्रीमद्भागवत का पाठ स्वयं करने का निश्चय किया. अंग्रेजी भाषा में शिक्षा ग्रहण करने और संस्कृत भाषा का अधिक ज्ञान न होने के कारण हमारे लिए मूल श्लोक को पढ़ना थोड़ा कठिन है | इसीलिए हमारे गुरु श्री के. एन. राव जी ने हमें श्रीमद्भगवद्गीता का पाठ गीता प्रेस से प्रकाशित पदच्छेद, अन्वय और टीका वाली पुस्तक संख्या 17 से कराया है | पदच्छेद से संस्कृत श्लोक का अध्ययन सुगम हो गया और कुछ समय बाद मूल श्लोक भी सहजता से पढ़ा गया। इसी उद्देश्य से हमने भागवत की एक ऐसी प्रति को खोजना प्रारम्भ किया जिसमें मूल श्लोक, पदच्छेद और साथ ही हिंदी टीका हो | इंटरनेट पर खोजने से ऐसी कई प्रति मिलीं किन्तु श्री सुदर्शन सिंह चक्र जी द्वारा किया अन्वय उन सभी में सबसे सहज और सुगम है। किन्तु ग्रन्थ के अब प्रकाशित न होने के कारण उपलब्ध नहीं है। इस अमूल्य ग्रन्थ को दोबारा साधकों तक लाने के लिए इसके सभी खंडों को स्कैन करके उपलब्ध कराने का यह हमारा छोटा सा प्रयास है।

श्री जी की कृपा से इस यात्रा में पद पद पर हमें वृन्दावन के संतों और धर्मप्रेमी मित्रों का सहयोग मिलता रहा जिसके बिना इस कार्य को पूर्ण करना असंभव था | सभी संतो और मित्रों का आभार प्रकट किये बिना इस ग्रन्थ को पुनः जन जन तक पहुँचाना संभव ही नहीं है | सबसे पहले इस ग्रन्थ की खोज में हमारे मार्गदर्शक आगरा के स्वपनिल जी बने और हमारा परिचय प्रभात जी से कराया | तत्पश्चात पूज्य राजमाता सौभाग्य कुँवर राणावत जी और पूज्य डॉ. बालचंद्रिका पाठक जी (मुन्नी जीजी) के मार्गदर्शन में हमने वृन्दावन के आश्रमों में इसकी खोज प्रारम्भ की | अन्ततः इस ग्रन्थ के सभी खंड हमें अखंडानंद आश्रम लाइब्रेरी से श्री सेवानंद जी और मलूक पीठ ग्रंथालय से श्री श्यामसुंदर जी के आशीर्वाद से प्राप्त हुए | पहला खंड अत्यधिक पुराना होने के कारण बहुत ही जीर्ण अवस्था में था और खंड के बहुत से पृष्ठ गुम हो चुके थे | तभी हमारी इस यात्रा को पूर्ण करने में सहयोगी बने बक्सर वाले मामाजी के बक्सर आश्रम से श्याम जी जिन्होंने कोसी आश्रम के नवल जी से परिचय करवाया। और नवल जी ने प्रथम खंड की बहुत ही सहज कर रखी गयी प्रति स्कैन करने के लिए उपलब्ध करवाई |

श्री जी के आशीर्वाद, संतों के मार्गदर्शन और धर्मप्रेमी मित्रों के सहयोग के बिना यह यात्रा असफल ही होती | हम आशा करेंगे कि इस नए प्रिंट से सभी भागवत प्रेमी और विद्यार्थी लाभ उठा सकेंगे | इस पूरे ग्रन्थ का पीडीऍफ़ ऑनलाइन भी अपलोड किया गया है | नीचे दिए लिंक से सभी खंडों का पीडीऍफ़ डाउनलोड किया जा सकता है |

https://archive.org/details/shrimad-bhagvat-anvaya-teeka

मकर संक्रांति, जनवरी 15, 2024 राधे राधे ...

श्रीमद्भागवत-महापुराण

'चतुर्थ खण्ड'

पञ्चम स्कन्धः

१. प्रथमोऽध्यायः	३
२. द्वितीयोऽध्यायः	३०
३. तृतीयोऽध्यायः	४६
४. चतुर्थोऽध्यायः	५९
५. पंचमोऽध्यायः	७१
६. षष्ठोऽध्यायः	९५
७. सप्तमोऽध्यायः	१०७
८. अष्टमोऽध्यायः	११७
९. नवमोऽध्यायः	१३६
१०. दशमोऽध्यायः	१५२
११. एकादशोऽध्यायः	१७०
१२. द्वादशोऽध्यायः	१८१
१३. त्रयोदशोऽध्यायः	१९१
१४. चतुर्दशोऽध्यायः	२०८
१५. पञ्चदशोऽध्यायः	२३६
१६. षोडशोऽध्यायः	२४६
१७. सप्तदशोऽध्यायः	२६३
१८. अष्टादशोऽध्यायः	२८०
१९. एकोनविंशोऽध्यायः	३०६
२०. विंशोऽध्यायः	३२६
२१. एकविंशोऽध्यायः	३५३
२२. द्वाविंशोऽध्यायः	३६४
२३. त्रयोविंशोऽध्यायः	३७६
२४. चतुर्विंशोऽध्यायः	३८४
२५. पञ्चविंशोऽध्यायः	४०६
२६. षड्विंशोऽध्यायः	४१६

षष्ठः स्कन्धः

१. प्रथमोऽध्यायः	४४७
२. द्वितीयोऽध्यायः	४७५
३. तृतीयोऽध्यायः	४९६
४. चतुर्थोऽध्यायः	५१४
५. पञ्चमोऽध्यायः	५३८
६. षष्ठोऽध्यायः	५५६
७. सप्तमोऽध्यायः	५७३
८. अष्टमोऽध्यायः	५९०
९. नवमोऽध्यायः	६१०
१०. दशमोऽध्यायः	६३९
११. एकादशोऽध्यायः	६५३
१२. द्वादशोऽध्यायः	६६७
१३. त्रयोदशोऽध्यायः	६८३
१४. चतुर्दशोऽध्यायः	६९४
१५. पञ्चदशोऽध्यायः	७२०
१६. षोडशोऽध्यायः	७३१
१७. सप्तदशोऽध्यायः	७६०
१८. अष्टदशोऽध्यायः	७७७
१९. एकोनविंशोऽध्यायः	८०८

॥ पञ्चम स्कन्ध ॥

अथ प्रथमोऽध्यायः

राजोवाच—

प्रियव्रतो भागवत आत्मारामः कथं मुने ।
गृहेऽरमत यन्मूलः कर्मबन्धः पराभवः ॥१॥

प्रियव्रतः भागवतः आत्मारामः कथं मुने गृहे अरमत यन्मूलः कर्मबन्धः पराभवः ॥१॥

मुने	महामुनि (शुकदेवजी) !	यन्मूलः	जिसकी जड़ ही
		कर्मबन्धः	कर्मका बन्धन
भागवतः	भगवद्-भक्त		(और)
आत्मारामः	अपने आत्मामें ही आनन्दित	पराभवः	पराजय है (उस)
		गृहे	गृहस्थाश्रममें
प्रियव्रतः	प्रियव्रत	अरमत	सुख मानने
कथं	कैसे		लगे ॥१॥

न नूनं मुक्तसङ्गानां तादृशानां द्विजर्षभ ।
गृहेष्वभिनिवेशोऽयं पुंसां भवितुमर्हति ॥२॥

न नूनं मुक्तसङ्गानां तादृशानां द्विजर्षभ गृहेषु अभिनिवेशः अयं पुंसां भवितुं अर्हति ॥२॥

द्विजर्षभ	विप्रश्रेष्ठ !	गृहेषु	गृहस्थाश्रममें
नूनं	निश्चय	अयं	यह
तादृशानां	उस प्रकारके	अभिनिवेशः	पूर्ण प्रवेश
मुक्तसङ्गानां	आसक्तिहीन	न	नहीं
पुंसां	पुरुषोंका	भवितुं अर्हति	होना चाहिए ॥२॥

महतां खलु विप्रर्षे उत्तमश्लोकपादयोः ।
छायानिर्वृतचित्तानां न कुटुम्बे स्पृहामतिः ॥३॥

महतां खलु विप्रर्षे उत्तमश्लोक पादयोः छाया निर्वृत चित्तानां न कुटुम्बे स्पृहामतिः ॥३॥

विप्रर्षे	ब्रह्मर्षि !	चित्तानां	चित्तवालोंका
उत्तमश्लोक	उत्तमयशा (भगवान्) के	खलु	निश्चय
		कुटुम्बे	परिवार बनानेमें
पादयोः	श्रीचरणोंकी	स्पृहामति	स्पृहाबुद्धि
छाया	छाया (चिन्तन) से	न	नहीं होती ॥३॥
निर्वृत	आनन्दमग्न		

संशयोऽयं महान् ब्रह्मन्दारागारसुतादिषु ।
सक्तस्य यत्सिद्धिरभूत्कृष्णे च मतिरच्युता ॥४॥

संशयः अयं महान् ब्रह्मन् दारा आगार सुतादिषु सक्तस्य यत् सिद्धिः अभूत् कृष्णे च मतिः अच्युता ॥४॥

ब्रह्मन् !	ब्रह्मन् !	सिद्धिः च	अन्तःकरण शुद्धि तथा
अयं	यह (मुझे)		
महान् संशयः	भारी संशय है	कृष्णे	भगवान् कृष्णमें
यत् दारा	जो, पत्नी	अच्युता	निश्चल
आगार	घर,	मतिः	बुद्धि (निष्ठा)
सुतादिषु	पुत्रादिमें	अभूत्	हो गयी ॥४॥
सक्तस्य	आसक्तकी		

श्रीशुक उवाच–

बाढमुक्तं भगवत उत्तमश्लोकस्य श्रीमच्चरणारविन्द-मकरन्दरस आवेशितचेतसो भागवतपरमहंसदयितकथां किञ्चि-दन्तरायविहतां स्वां शिवतमां पदवीं न प्रायेण हिन्वन्ति ॥५॥

बाढं उक्तं भगवतः उत्तमश्लोकस्य श्रीमत् चरणारविन्द मकरन्द रस आवेशित चेतसः भागवत परमहंस दयित कथां किञ्चित् अन्तराय विहतां स्वां शिवतमां पद्धवीं न प्रायेण हिन्वन्ति ॥५॥

बाढं उक्तं	(तुमने) ठीक कहा (किन्तु)	दयित कथां	प्रिय (भगवत्) कथामें
भगवतः	भगवान्	किञ्चित्	तनिक
उत्तमश्लोकस्य	उत्तमश्लोकके	अन्तराय	
श्रीमत्	परमसुन्दर	विहतां	बाधा आ जानेपर (भी)
चरणारविन्द	चरण-कमलोंके	स्वां शिवतमां	अपनी परम कल्याणमयी
मकरन्द रस	मकरन्द (मधु) रसमें	पदवीं	स्थितिको
आवेशित	प्रविष्ट	प्रायेण	प्रायः
चेतसः	चित्तवाले (लोग)	न हिन्वन्ति	नहीं त्यागते ॥५॥
भागवत	भगवद्भक्त		
परमहंस	परमहंसोंकी		

यर्हि वाव ह राजन् स राजपुत्रः प्रियव्रतः परमभागवतो नारदस्य चरणोपसेवयाञ्जसावगतपरमार्थसतत्त्वो ब्रह्मसत्रेण दीक्षिष्यमाणोऽवनितलपरिपालनायाम्नातप्रवरगुणगणैकान्तभाजनतया स्वपित्रोपामन्त्रितो भगवति वासुदेव एवाव्यवधानसमाधियोगेन समावेशितसकलकारककियाकलापो नैवाभ्यनन्दद्यद्यपि तदप्रत्याम्नातव्यं तदधिकरण आत्मनोऽन्यस्मादसतोऽपि पराभवमन्वीक्षमाणः ॥६॥

यर्हि वाव ह राजन् स राजपुत्रः प्रियव्रतः परमभागवतः नारदस्य चरण उपसेवया अञ्जसा अवगतः परमार्थ सतत्त्वः ब्रह्मसत्रेण दीक्षिष्यमाणः अवनितल परिपालनाय आम्नात प्रवर गुणगण एकान्त भाजनतया स्वपित्रा उपामन्त्रितः भगवति वासुदेव एव अव्यवधान समाधियोगेन समावेशित सकलकारक क्रियाकलापः न एव अभ्यनन्दत् यद्यपि तत्

अप्रति आम्नातव्यं तत् अधिकरण आत्मनः अन्यस्मात् असतः अपि पराभवं अन्वीक्षमाणः ॥६॥

राजन्	राजन् !
यर्हि वाव ह	जिस सुअवसरपर निश्चय
स राजपुत्रः	वह राजपुत्र
प्रियव्रतः	प्रियव्रत
परमभागवतः	परम-भगवद्-भक्त
नारदस्य	देवर्षि नारदके
चरण उपसेवया	चरणोंकी सेवासे
अञ्जसा	सुगमता पूर्वक
परमार्थं सतत्त्व	परमार्थतः सत् तत्त्वको
अवगतः	जानकर
ब्रह्मसत्रेण	ब्रह्मज्ञानके चिन्तन-परम्पराकी
दीक्षिष्यमाणः	(संन्यासकी) दीक्षा लेने जा रहे थे, (उसी समय)
अवनितल	पृथ्वीके
परिपालनाय	सम्यक् पालनके लिए
प्रवर आम्नात	श्रेष्ठ-वैदिकज्ञान युक्त (तथा)
गुणगण	अनेक सद्गुणोंके
एकान्त भाजन-	एकमात्र पात्र
तया	होनेसे
स्वपित्रा	अपने पिता (मनु) द्वारा
उपामन्त्रितः	बुलाये गये (किन्तु)
भगवति वासुदेव	
एव	भगवान् वासुदेवमें ही
अव्यवधान	निर्बाध
समाधियोगेन	एकाग्रता रूप योगसे
सकलकारक	समस्त करणों (इन्द्रियों) की
क्रियाकलापः	क्रियात्मक चेष्टा
समावेशित	भली प्रकार प्रविष्ट कर देनेसे
न एव	(उस पिताकी आज्ञाका) नहीं ही
अभ्यनन्दत्	अभिनन्दन किया।
यद्यपि	यद्यपि
तत्	वह (उपेक्षा)
आम्नातव्यं	शास्त्रकी माननीय आज्ञाके
अप्रति	अनुकूल नहीं थी (किन्तु)
तत् अधिकरण	उसका आधार
आत्मनः	अपने अन्तःकरणका
अन्यस्मात्	दूसरोंसे
असतः अपि	न होनेपर भी
पराभवं	पराजय
अन्वीक्षमाणः	(वे) देख (समझ) रहे थे ॥६॥

अथ ह भगवानादिदेव एतस्य गुणविसर्गस्य परिबृंहणानुध्यानव्यवसितसकलजगदभिप्राय आत्मयोनिरखिलनिगमनिजगणपरिवेष्टितः स्वभवनादवततार ॥७॥

अथ ह भगवान् आदिदेव एतस्य गुणविसर्गस्य परिबृंहण अनुध्यान व्यवसित सकलजगत् अभिप्राय आत्मयोनिः अखिलनिगम निजगण परिवेष्टितः स्वभवनात् अवततार ॥७॥

ह अथ	निश्चय इसी समय	सकलजगत	सम्पूर्ण जगतके (प्राणियोंका)
भगवान्		अभिप्राय	संकल्प
आदिदेवः	भगवान् आदिदेव	व्यवसित	जाननेके कारण,
आत्मयोनिः	स्वयंभू ब्रह्माजी	अखिलनिगम	समस्त वेदों (और)
एतस्य	इस	निजगण	अपने पार्षदोंसे
गुणविसर्गस्य	त्रिगुणोंकी विशेष सृष्टिके	परिवेष्टितः	घिरे हुए
परिबृंहण	विस्तारके लिए	स्वभवनात्	अपने भवन (ब्रह्मलोक) से
अनुध्यान	बराबर चिन्तनमें (लगे होनेसे)	अवततार	उतरे ॥७॥

स तत्र तत्र गगनतल उडुपतिरिव विमानावलिभिरनुपथममरपरिवृढैरभिपूज्यमानः पथि पथि च वरूथशः सिद्धगन्धर्वसाध्यचारणमुनिगणैरुपगीयमानो गन्धमादनद्रोणीमवभासयन्नुपससर्प ॥८॥

स तत्र तत्र गगनतल उडुपतिः इव विमान अवलिभिः अनुपथं अमरपरिवृढैः अभिपूज्यमानः पथि पथि च वरूथशः सिद्ध गन्धर्व साध्य चारण मुनिगणैः उपगीयमानः गन्धमादन द्रोणीं अवभासयन्न उपससर्प ॥८॥

गगनतल	आकाशमें	अनुपथं	मार्गमें पड़नेवाले
उडुपतिः इव	चन्द्रमाके समान	विमान	
स	वे (ब्रह्माजी)	अवलिभिः	विमानोंके झुण्डोंमें
तत्र तत्र	जहां-तहां		

अमरपरिवृढै	आरोहण किये देवताओं द्वारा
अभिपूज्यमानः	आदर सहित पूजित होते
च पथि पथि	तथा मार्गोंमें
बहुशः	दलकेदल
सिद्ध, गन्धर्व साध्य चारण	सिद्धों, गन्धर्वों, साध्यगण, चारणों,
मुनिगणैः उपगीयमानः	मुनिगणों द्वारा स्तुति किये जाते,
गन्धमादन द्रोणीं	गन्धमादन गिरिके शिखरको
अवभासयन् उपससर्प	प्रकाशित करते समीप पहुँचे ॥८॥

तत्र ह वा एनं देवर्षिर्हंसयानेन पितरं भगवन्तं हिरण्यगर्भमुपलभमानः सहसैवोत्थायार्हणेन सह पितापुत्राभ्यामवहिताञ्जलिरुपतस्थे ॥९॥

तत्र ह वा एनं देवर्षिः हंसयानेन पितरं भगवन्तं हिरण्यगर्भं उपलभमानः सहसा एव उत्थाय अर्हणेन सह पिता पुत्राभ्यां अवहित अञ्जलिः उपतस्थे ॥९॥

तत्र	वहां
एनं ह वा	इनको निश्चयपूर्वक पहिचानकर
देवर्षिः	देवर्षि नारदने
पितरं	अपने पिता
भगवन्तं	भगवान
हिरण्यगर्भं	ब्रह्माजीको
उपलभमानः	समीप पाकर
सहसा एव	सहसा ही
उत्थाय	उठकर खड़े होकर
सह पुत्राभ्यां	पुत्रों (सनकादि ऋषियों) के साथ
पिता	पिताके लिए
अवहित	
अञ्जलिः	हाथ जोड़कर
उपतस्थे	समीप खड़े हो गये ॥९॥

भगवानपि भारत तदुपनीतार्हणः सूक्तवाकेनातितरामुदितगुणगणावतारसुजयः प्रियव्रतमादिपुरुषस्तं सदयहासावलोक इति होवाच ॥१०॥

भगवान् अपि भारत तत् उपनीत अर्हणः सूक्त वाकेन अतितरां मुदित गुणगण अवतार सुजयः प्रियव्रतं आदिपुरुषः तं सदयहास अवलोक इति ह उवाच ॥१०॥

भारत	परीक्षित !	सुजयः	तथा यशोगानसे (प्रसन्न हो)
भगवान् अपि	भगवान् (ब्रह्मा) भी	आदिपुरुषः	आदिपुरुष
तत् उपनीत	उन (प्रियव्रत नारद) की लायी	तं प्रियव्रतं	उन प्रियव्रतको
अर्हणः	पूजा (तथा)	सदयहास	कृपापूर्ण मुस्कराहट (सहित)
सूक्त वाकेन	वैदिक सूक्तोंसे	अवलोक	देखते हुए
अतितरां	अत्यन्त	इति	इस प्रकार
मुदित	आनन्दित होकर	ह उवाच	निश्चित (स्वरमें) बोले ॥१०॥
गुणगण			
अवतार	गुणसमूहोंके वर्णन		

*ब्रह्मोवाच**—

निबोध तातेदमृतं ब्रवीमि
मासूयितुं देवमर्हस्यप्रमेयम् ।
वयं भवस्ते तत एष महर्षि-
र्वहाम सर्वे विवशा यस्य दिष्टम् ॥११॥

निबोध तात इदं अमृतं ब्रवीमि मा असूयितुं देवं अर्हसि अप्रमेयं वयं भवः ते तत एष महर्षिः वहाम सर्वे विवशा यस्य दिष्टम् ॥११॥

तात	वत्स !	ब्रवीमि	बतलाता हूँ,
निबोध	सुनो,	अप्रमेयं देवं	अप्रमेय देव (श्रीहरि) से
इदं अमृतं	यह अमृत (अविनाशी सत्य)	असूयितुं	(तुम्हें) असूया

* अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'श्रीभगवानुवाच' है।

मा अर्हसि	नहीं करना चाहिए।	सर्वे	सब लोग
		यस्य दिष्टं	जिसका (प्रदत्त) प्रारब्ध
वयं	हम सब		
भवः	शंकरजी	विवशा	विवश होकर
ते तत एष	तुम्हारे विश्वस्त ये	वहाम	ढोते (मानते)
महर्षिः	देवर्षि नारद,		हैं ॥११॥

न तस्य कश्चित्तपसा विद्यया वा
न योगवीर्येण मनीषया वा।
नैवार्थधर्मैः परतः स्वतो वा
कृतं विहन्तुं तनुभृद्विभूयात् ॥१२॥

न तस्य कश्चित् तपसा विद्यया वा न योगवीर्येण मनीषया वान एव अर्थ धर्मैः परतः स्वतः वा कृतं विहन्तुं तनुभृत् विभूयात् ॥१२॥

तस्य कृतं	उन (भगवान्) के किये (विधान) को	अर्थ धर्मैः	धनसे या धर्म बलसे
		स्वतः	स्वयं
कश्चित्	कोई भी	वा परतः	अथवा दूसरे (की सहायता) से
तनुभृत्	शरीरधारी		
तपसा	तपस्यासे	विहन्तुं	नष्ट करनेमें
वा विद्यया न	अथवा किसी विद्यासे नहीं,	न एव	नहीं ही
		विभूयात्	समर्थ हो सकता ॥१२॥
योगवीर्येण	योगकी शक्तिसे		
वा मनीषया न	अथवा बुद्धिसे नहीं,		

भवाय नाशाय च कर्म कर्तुं
शोकाय मोहाय सदा भयाय।
सुखाय दुःखाय च देहयोग-
मव्यक्तदिष्टं जनताऽङ्ग धत्ते। १३॥

भवाय नाशाय च कर्म कर्तुं शोकाय मोहाय सदा भयाय सुखाय दुःखाय च देहयोगं अव्यक्त दिष्टं जनता अङ्ग धत्ते ॥१३॥

अङ्ग	प्रिय (वत्स) !	सुखाय	सुखके लिए,
जनता	लोग	च दुःखाय	तथा दुःख (भोगने)
भवाय	उत्पन्न होनेके लिए,		के लिए
नाशाय च	मरनेके लिए तथा	अव्यक्त दिष्टं	अव्यक्त प्रारब्धके
कर्म कर्तुं	कर्म करनेके लिए,		अनुसार
शोकाय	शोकके लिए,	देहयोगं	शरीरका योग
मोहाय	मोहके लिए,		(शरीर)
सदा भयाय	नित्य भयग्रस्त रहनेके लिए,	धत्ते	धारण करते हैं ॥१३॥

यद्वाचि तन्त्यां गुणकर्मदामभिः
सुदुस्तरैर्वत्स वयं सुयोजिताः ।
सर्वे वहामो बलिमीश्वराय
प्रोता नसीव द्विपदे चतुष्पदः ॥१४॥

यद् वाचि तन्त्यां गुणकर्म दामभिः सुदुस्तरैः वत्स वयं सुयोजिताः सर्वे वहामः बलिं ईश्वराय प्रोता नसीव द्विपदे चतुष्पदः ॥१४॥

वत्स	वत्स !	सुदुस्तरैः	अत्यन्त दुस्तर
द्विपदे	द्विपद (मनुष्यों) के लिए	गुण कर्म दामभिः	त्रिगुण और कर्मकी रस्सी द्वारा
चतुष्पदः	चौपाये (पशु) के	वयं सर्वे	हम सब
नसीव	नाककी रस्सीके समान	सुयोजिताः	भली प्रकार लगाये गये
प्रोता	पिरोये	ईश्वराय	(उस) सर्वेश्वरके लिए
यद्	जिसकी	बलिं	उपहार
वाचि	वाणी (वेदवाणी) रूपी	वहामः	ढोते (देते) हैं ॥१४॥
तन्त्यां	तांत (रस्सी) में		

ईशाभिसृष्टं हृदयरुन्धमहेऽङ्ग
दुःखं सुखं वा गुणकर्मसङ्गात् ।

आस्थाय तत्तद्यदयुङ्क्त नाथ-
श्चक्षुष्मतान्धा इव नीयमानाः ॥१५॥

ईश अभिसृष्टं हि अवरुन्ध्महे अङ्ग दुःखं सुखं वा गुण कर्मसङ्गात् आस्थाय तत् तत् यत् अयुङ्क्त नाथः चक्षुष्मत् अन्धा इव नीयमानः ॥१५॥

चक्षुष्मत्	आँखवाला	अवरुन्ध्महे	हम नियन्त्रित होते हैं।
नाथः	स्वामी		
अन्धा		गुण	गुणों तथा
नीयमानः	अन्धेको ले जातेके	कर्मसङ्गात्	कर्मोंकी आसक्तिमें
इव हि	समान क्योंकि	आस्थाय	स्थित होकर
अङ्ग	वत्स !	दुःखं	दुःख
ईश	ईश्वरके	वा सुखं	अथवा सुख
अभिसृष्टं	बनाये (विधान)के अनुसार	तत् तत्	वह वह
		अयुङ्क्त	भोगते हैं ॥१५॥

मुक्तोऽपि तावद्बिबभृयात्स्वदेह-
मारब्धमश्नन्नभिमानशून्यः ।
यथानुभूतं प्रतियातनिद्रः
किं त्वन्यदेहाय गुणान्न वृङ्क्ते ॥१६॥

मुक्तः अपि तावत् बिभृयात् स्वदेहं आरब्धं अश्नन् अभिमान शून्यः यथा अनुभूतं प्रतियात निद्रः किं तु अन्य देहाय गुणान् न वृङ्क्ते ॥१६॥

यथा	जैसे	तावत्	तब तक
प्रतियात निद्रः	निद्रासे जगा हुआ	स्वदेहं	अपने शरीरको
यथा	(स्वप्नमें) जैसा	अभिमान शून्यः	अभिमान रहित होकर
अनुभूतं	अनुभव हुआ था (स्मरण करता है)	आरब्ध	प्रारब्ध
मुक्तः अपि	(वैसेही) मुक्त होनेपर भी	अश्नन्	भोगता हुआ
		बिभृयात्	धारण करता है,

किं नु	लेकिन	गुणान्	गुणोंका
अन्य देहाय	दूसरा शरीर पानेके लिए	वृङ्क्ते न	वरण नहीं करता ॥१६॥

भयं प्रमत्तस्य वनेष्वपि स्यात्
यतः स आस्ते सहषट्सपत्नः ।
जितेन्द्रियस्यात्मरतेर्बुधस्य
गृहाश्रमः किं नु करोत्यवद्यम् ॥१७॥

भयं प्रमत्तस्य वनेषु अपि स्यात् यतः स आस्ते सह षट् सपत्नः जितेन्द्रियस्य आत्मरतेः बुधस्य गृहाश्रमः किं नु करोति अवद्यम् ॥१७॥

प्रमत्तस्य	प्रमादग्रस्तके लिए	जितेन्द्रियस्य	इन्द्रियोंको जीत लेनेवाले,
वनेषु अपि	वनमें भी	आत्मरतेः	अपने आत्मामें ही रत
भयं स्यात्	(पतनका) भय होता है,	बुधस्य	बुद्धिमानके लिए
यतः स	क्योंकि वह	गृहाश्रमः	गृहस्थाश्रम
षट्	छ (कामादि)	किं नु	क्या तो
सपत्नः	शत्रुओंके	अवद्यं	हानि
सह आस्ते	साथ है ।	करोति	करता है ॥१७॥

यः षट् सपत्नान् विजिगीषमाणो
गृहेषु निर्विश्य यतेत पूर्वम् ।
अत्येति दुर्गाश्रित ऊर्जितारीन्
क्षीणेषु कामं विचरेद्विपश्चित् ॥१८॥

यः षट् सपत्नान् विजिगीषमाणः गृहेषु निर्विश्य यतेत पूर्वं अति एति दुर्गं आश्रित ऊर्जित अरीन् क्षीणेषु कामं विचरेत् विपश्चित् ॥१८॥

यः	जो
षट् सपत्नान्	छः (कामादि) शत्रुओंको
विजिगीषमाणः	विजय करना चाहता हो
पूर्वं	(वह) पहिले
गृहेषु	गृहस्थाश्रममें
निविश्य	प्रवेश करके
यतेत	(उन्हें जीतनेका) प्रयत्न (साधन) करे
दुर्ग आश्रित	(इस प्रकार) किलेका सहारा लेकर
ऊर्जित	बलवान
अरीन्	शत्रुओंका
अति एति	अतिक्रान्त (पराजित) कर लेता है
कामं	कामनाओंके
क्षीणेषु	क्षीण हो जानेपर
विपश्चित्	विवेकी (व्यक्ति)
विचरेत्	विचरण करे (परिव्राजक बने) ॥१८॥

त्वं त्वब्जनाभाङ्घ्रिसरोजकोश-
दुर्गाश्रितो निर्जितषट्सपत्नः ।
भुङ्क्ष्वेह भोगान् पुरुषातिदिष्टान्
विमुक्तसङ्गः प्रकृतिं भजस्व ॥१९॥

त्वं तु अब्जनाभ अङ्घ्रिसरोज कोश दुर्ग आश्रितः निर्जित षट् सपत्नः भुङ्क्ष्व इह भोगान् पुरुष अतिदिष्टान् विमुक्तसङ्गः प्रकृतिं भजस्व ॥१९॥

त्वं तु	तुम तो
अब्जनाभ	भगवान् कमलनाभके
अङ्घ्रिसरोज	चरण-कमलके
कोश दुर्ग	कोश रूपी दुर्गके
आश्रितः	आश्रित होकर
षट् सपत्नः	छहों शत्रुओंको
निर्जित	जीत चुके,
इह	(अब) इस लोकमें
पुरुष	परम पुरुष द्वारा
अतिदिष्टान्	निर्दिष्ट (प्रदत्त)
भोगान्	भोगोंको
भुङ्क्ष्व	भोगो (तथा)
विमुक्तसंगः	आसक्ति त्यागकर
प्रकृतिं	प्रजाकी
भजस्व	सेवा (पालन) करो ॥१९॥

श्रीशुक उवाच-

इति समभिहितो महाभागवतो भगवतस्त्रिभुवनगुरोरनुशासनमात्मनो लघुतयावनतशिरोधरो बाढमिति सबहुमानमुवाह ॥२०॥

इति सम अभिहितः महाभागवतः भगवतः त्रिभुवन गुरोः अनुशासनं आत्मनः लघुतया अवनतः शिरः अधरः बाढं इति सबहुमानं उवाह ॥२०॥

इति	इस प्रकार	लघुतया	छोटे होनेके कारण
सम अभिहितः	भली प्रकार समझानेपर	शिरः	सिर और
महाभागवतः	परम भगवद्-भक्त (प्रियव्रत)ने	अधरः	शरीरका ऊपरी भाग
त्रिभुवन गुरोः	तीनों लोकोंमें श्रेष्ठ	अवनतः	झुकाकर
भगवतः	भगवान् (ब्रह्मा)की	बाढं इति	बहुत अच्छा, इस-प्रकार
अनुशासनं	आज्ञाको	सबहुमानं	बहुत सम्मानपूर्वक
आत्मनः	अपने	उवाह	स्वीकार किया॥२०॥

भगवानपि मनुना यथावदुपकल्पितापचितिः प्रियव्रतनारदयोरविषममभिसमीक्षमाणयोरात्मसमवस्थानमवाङ्मनसं क्षयमव्यवहृतं प्रवर्तयन्नगमत् ॥२१॥

भगवान् अपि मनुना यथावत् उपकल्पित अपचितिः प्रियव्रत नारदयोः अविषमं अभिसमीक्षमाणयोः आत्म समवस्थानं अवाङ् मनसं क्षयं अव्यवहृतं प्रवर्तयन् अगमत् ॥२१॥

भगवान् अपि	भगवान् (ब्रह्मा) भी	उपकल्पित प्रियव्रत	किए जानेपर
मनुना	मनुके द्वारा	नारदयोः	प्रियव्रत और नारद द्वारा
यथावत्	उचित		
अपचितिः	कृतज्ञता	अविषमं	समान रूपसे

अभिसमीक्षमाणयोः	उत्सुकतापूर्वक देखे जाते (दर्शन करते)	अव्यवहृतं	अस्पृष्ट
आत्म	अपनी	समवस्थानं	समतामें स्थिति (ब्रह्मस्थिति)को
अवाङ् मनसं	वाणी, मनसे परे	प्रवर्तयन्	चिन्तन करते
क्षयं	विनाशसे	अगमत्	चले गये ॥२१॥

मनुरपि परेणैवं प्रतिसन्धितमनोरथः सुर्षिवरानुमतेनात्मजमखिलधरामण्डलस्थितिगुप्तय आस्थाप्य स्वयमतिविषमविषयविषजलाशयाशाया उपरराम ॥२२॥

मनुः अपि परेण एवं प्रतिसन्धित मनोरथः सुर्षिवर अनुमतेन आत्मजं अखिल धरामण्डल स्थिति गुप्तय आस्थाप्य स्वयं अतिविषम विषयविष जल आशय आशाया उपरराम ॥२२॥

मनुः अपि	(स्वायम्भुव) मनु भी	स्थिति गुप्तय	स्थितिकी रक्षाके लिए
परेण	दूसरेके द्वारा	आस्थाप्य	नियुक्ति करके
एवं	इस प्रकार	स्वयं	स्वयं
मनोरथः	मनोरथके	अतिविषम	बहुत असह्य
प्रतिसन्धित	पूर्ण किए जानेपर	विषयविष	विषयरूपी विषोंके
सुर्षिवर	देवर्षि श्रेष्ठकी	जल आशया	जलकी आशाके समान
अनुमतेन	अनुमतिसे		
आत्मजं	अपने पुत्र (प्रियव्रत) को	आशाया	आशा (कामनाओं)से
		उपरराम	उपरत (विरक्त) हो गये ॥२२॥
अखिल धरामण्डल	सम्पूर्ण पृथ्वीकी		

इति ह वाव स जगतीपतिरीश्वरेच्छयाधिनिवेशितकर्माधिकारोऽखिलजगद्बन्धध्वंसनपरानुभावस्य भगवत आदिपुरुषस्याङ्घ्रियुगलानवरतध्यानानुभावेन परिरन्धितकषायाशयोऽवदातोऽपि मानवर्धनो महतां महीतलमनुशशास ॥२३॥

इति ह वाव स जगतीपतिः ईश्वर इच्छया अधिनिवेशित कर्म अधिकारः अखिल जगत् बन्ध ध्वंसन पर अनुभावस्य भगवतः आदिपुरुषस्य अङ्घ्रियुगल अनवरत ध्यान अनुभावेन परिरन्धित कषाय आशयः अवदातः अपि मानवर्धनः महतां महीतलं अनुशशास ॥२३॥

इति	इस प्रकार	अङ्घ्रि युगल	दोनों चरणोंके
ह वाव	निश्चय इसी कारण	अनवरत	निरन्तर
स जगतीपतिः	वे संसारके स्वामी	ध्यान	
ईश्वर इच्छया	सर्वेश्वरकी इच्छासे	अनुभावेन	ध्यानके प्रभावसे
कर्म अधिकारः	कर्म करनेके अधिकारी (पदपर)	आशयः	चित्तके
		कषाय	दोषके
अधिनिवेशित	पूर्णतः प्रतिष्ठित किये जानेपर	परिरन्धित	परिपाक हो जानेसे
		अवदातः अपि	निर्मल होनेपर भी
अखिल जगत्	सम्पूर्ण संसारके	महतां	महत्तमोंके
बन्ध ध्वंसन	बन्धनको नष्ट करनेवाले	मानवर्धनः	सम्मानको बढ़ानेवाले होनेसे
पर अनुभावस्य	परम प्रभावशाली	महीतलं	पृथ्वीका
भगवतः	भगवान्	अनुशशास	शासन करने लगे ॥२३॥
आदिपुरुषस्य	आदिपुरुष (श्रीहरि) के		

अथ च दुहितरं प्रजापतेर्विश्वकर्मण उपयेमे बर्हिष्मतीं नाम तस्यामु ह वाव आत्मजानात्मसमानशीलगुणकर्मरूपवीर्यो-दारान्दश भावयाम्बभूव कन्यां च यवीयसीमूर्जस्वतीं नाम ॥२४॥

अथ च दुहितरं प्रजापतेः विश्वकर्मणः उपयेमे बर्हिष्मतीं नाम तस्यां उ ह वाव आत्मजान् आत्मसमान शील गुण कर्म रूप वीर्य उदारान् दश भावयां बभूव कन्यां च यवीयसीं ऊर्जस्वतीं नाम ॥२४॥

अथ च	फिर तो	बर्हिष्मतीं नाम	बर्हिष्मती नामक
प्रजापतेः	प्रजापति	दुहितरं	पुत्रीसे
विश्वकर्मणः	विश्वकर्माकी	उपयेमे	विवाह किया,

तस्यां उ ह वाव	उसमें तो निश्चय करके	दश	दस
आत्मसमान	अपने समान	आत्मजान् च	पुत्र तथा
शील गुण	शील, गुण,	ऊर्जस्वतीं नाम	ऊर्जस्वती नामक
कर्म रूप	कर्म, रूप,	यवीयसीं	सबसे छोटी
वीर्य उदारान्	पराक्रम, उदारतावाले	कन्यां च	कन्याको भी
		भावयां बभूव	भावना पूर्वक उत्पन्न किया ॥२४॥

आग्नीध्रेध्मजिह्वयज्ञबाहुमहावीरहिरण्यरेतोघृतपृष्ठसवन-मेधातिथिवीतिहोत्रकवय इति सर्व एवाग्निनामनः ॥२५॥

आग्नीध्रः इध्मजिह्वः यज्ञबाहुः महावीरः हिरण्यरेतः घृतपृष्ठः सवनं मेधातिथिः वीतिहोत्रः कवयः इति सर्वएव अग्निः नामानः ॥२५॥

आग्नीध्रः	आग्नीध्र,	मेधातिथिः	मेधातिथि,
इध्मजिह्वः	इध्मजिह्व,	वीतिहोत्रः	वीतिहोत्र,
यज्ञबाहुः	यज्ञबाहु,	कवयः	कवि
महावीरः	महावीर,	इति	इस प्रकार
हिरण्यरेतः	हिरण्यरेत,	सर्वएव	सभी
घृतपृष्ठः	घृतपृष्ठ,	अग्निः नामनः	अग्निके नामवाले थे ॥२५॥
सवनं	सवन,		

एतेषां कविर्महावीरः सवन इति त्रयआसन्नूर्ध्वरेतसस्त आत्मविद्यायामर्भभावादारभ्य कृतपरिचयाः पारमहंस्यमेवाश्रममभजन् ॥२६॥

एतेषां कविः महावीरः सवनः इति त्रयः आसन् ऊर्ध्वरेतसः त आत्मविद्यायां अर्भभावात् आरभ्य कृत परिचयाः पारमहंस्यं एव आश्रमं अभजन् ॥२६॥

एतेषां	इनमें-से	सवनः	सवन
कविः महावीरः	कवि, महावीर और	इति त्रयः	इस प्रकार तीन

ऊर्ध्वरेतसः	(आजन्म) ब्रह्मचारी	कृत परिचयाः	परिचय करके
आसन्	हुए	पारमहंस्यं आश्रमं एव	परमहंस आश्रमका ही
अर्भभावात्	शैशवके		
आरभ्य	प्रारम्भसे ही	अभजन्	सेवन किया ॥२६॥
आत्मविद्यायां	आत्मविद्यासे		

तस्मिन्नु ह वा उपशमशीलाः परमर्षयः सकलजीव-निकायावासस्य भगवतो वासुदेवस्य भीतानां शरणभूतस्य श्रीमच्चरणारविन्दाविरतस्मरणाविगलितपरमभक्तियोगानुभावेन परिभावितान्तर्हृदयाधिगते भगवति सर्वेषां भूतानामात्मभूते प्रत्यगात्मन्येवात्मनस्तादात्म्यमविशेषेण समीयुः ॥२७॥

तस्मिन् नु ह वा उपशमशीलाः परमर्षयः सकल जीव निकाय अवासस्य भगवतः वासुदेवस्य भीतानां शरणभूतस्य श्रीमत् चरणारविन्द अविरत स्मरण अविगलित परमभक्तियोग अनुभावेन परिभावित अन्तः हृदय अधिगते भगवति सर्वेषां भूतानां आत्मभूते प्रत्यक् आत्मनि एव आत्मनः तादात्म्यं अविशेषेण समीयुः ॥२७॥

तस्मिन् नु	उस (पारमहंस्य आश्रम) में तो	श्रीमत्	शोभाशाली
ह वा	निश्चय ही	चरणारविन्द	चरणकमलोंके
उपशमशीलाः	वैराग्यवान	अविरत	निरन्तर
परमर्षयः	परमर्षि गण	स्मरण	स्मरणसे
सकल जीव निकाय	समस्त जीववृन्दके	अविगलित	निश्चल
आवासस्य	आवास	परमभक्तियोग	परम (साध्यरूपा) भक्तियोगके
भीतानां	(भव भयसे) डरे हुओंके	अनुभावेन	प्रभावसे
शरणभूतस्य	आश्रय-स्थान स्वरूप	परिभावित	दृढ़ भावयुक्त
भगवतः		अन्तः हृदय	हृदयके भीतर
वासुदेवस्य	भगवान् वासुदेवके	अधिगते	प्राप्त
		सर्वेषां भूतानां	समस्त प्राणियोंके
		आत्मभूते	आत्मा स्वरूप

भगवति	भगवान्‌का	अविशेषेण	निर्विशेष रूपसे
प्रत्यक्		तादात्म्यं	एकात्मताको
आत्मनि एव	अपनी अन्तरात्मामें ही	समीयुः	पूर्णतः प्राप्त हुए ॥२७॥
आत्मनः	अपने आपसे		

अन्यस्यामपि जायायां त्रयः पुत्रा आसन्नुत्तमस्तामसो रैवत इति मन्वन्तराधिपतयः ॥२८॥

अन्यस्यां अपि जायायां त्रयः पुत्राः आसन् उत्तमः तामसः रैवतः इति मन्वन्तर अधिपतयः ॥२८॥

अन्यस्यां	दूसरी	रैवतः	रैवत
जायायां अपि	पत्नीसे भी	इति	इस प्रकार
त्रयः पुत्राः	तीन पुत्र	मन्वन्तर	(ये) मन्वन्तरोंके
आसन्	थे	अधिपतयः	अधिपति (मनु) हुए ॥२८॥
उत्तमः	उत्तम,		
तामसः	तामस और		

एवमुपशमायनेषु स्वतनयेष्वथ जगतीपतिर्जगतीमर्बुदान्येकादश परिवत्सराणामव्याहताखिलपुरुषकारसारसम्भृतदोर्दण्डयुगलापीडितमौर्वीगुणस्तनितविरमितधर्मप्रतिपक्षो बर्हिष्मत्याश्चानुदिनमेधमानप्रमोदप्रसरणयौषिण्यव्रीडाप्रमुषितहासावलोकरुचिरक्ष्वेल्यादिभिः पराभूयमानविवेक इवानवबुध्यमान इव महामना बुभुजे ॥२९॥

एवं उपशम अयनेषु स्वतनयेषु अथ जगतीपतिः जगतीं अर्बुदानि एकादश परिवत्सराणां अव्याहत अखिल पुरुषकार सार सम्भृत दोः दण्ड युगल आपीडित मौर्वीगुण स्तनित विरमित धर्म प्रतिपक्षः बर्हिष्मत्याः च अनुदिनं एधमान प्रमोद प्रसरण यौषिण्य व्रीडा प्रमुषित हास अवलोक रुचिरक्ष्वेल्यादिभिः पराभूयमान विवेक इव अनवबुध्यमान इव महामना बुभुजे ॥२९॥

एवं	इस प्रकार
स्वतनयेषु	अपने (कवि आदि तीन) पुत्रोंके
उपशम	वैराग्यको
अयनेषु	घर बना लेने (विरक्त हो जाने) पर
अथ	फिर
जगतीपतिः	पूरे संसारके स्वामी (प्रियव्रत) ने
अर्बुदानि	
एकादश	ग्यारह अरब
परिवत्सराणां	वर्षों तक
जगतीं	पृथ्वीका (शासन किया)
अव्याहत	अक्षीण
अखिल	
पुरुषकार	सम्पूर्ण पुरुष सामर्थ्यके
सार सम्भृत	सारमें परिपूर्ण
दोः दण्ड युगल	(अपनी) दोनों भुजाओंसे
आपीडित	दबाकर
स्तनित	खींचे गये
मौर्वीगुण	धनुषकी प्रत्यञ्चाके द्वारा
धर्म प्रतिपक्षः	धर्म विरोधियोंको
विरमति	निष्क्रिय कर दिया था
बर्हिष्मत्याः	(महारानी) बर्हिष्मती द्वारा
अनुदिनं	दिन दिन
एधमान	बढ़ते हुए
प्रमोद	आनन्द विलास
यौषिण्य	स्त्रियोंकी विशेष (मटकती)
प्रसरण	चाल
व्रीडा प्रमुषित	लज्जाको चुरा रखा ऐसी
हास अवलोक	(लज्जापूर्ण) मुस्कान सहित देखनेकी भंगीसे
रुचिर-	
क्ष्वेल्यादिभिः	मनोहर परिहासादि-से
पराभूयमान	पराजित
विवेक इव	विवेकके समान
अनवबुध्यमान	
इव	आत्म विस्मृत जैसे होकर
महामना	परम उदार चित्तसे
बुभुजे	(भोगोंको) भोगते रहे ॥२९॥

यावदवभासयति सुरगिरिमनुपरिक्रामन् भगवानादित्यो वसुधातलमर्धेनैव प्रतपत्यर्धेनावच्छादयति तदा हि

भगवदुपासनोपचितातिपुरुषप्रभावस्तदनभिनन्दन् समजवेन रथेन ज्योतिर्मयेन रजनीमपि दिनं करिष्यामीति सप्तकृत्वस्तरणिमनुपर्यक्रामद् द्वितीय इव पतङ्गः ॥३०॥

यावत् अवभासयति सुरगिरिं अनुपरिक्रामन् भगवान् आदित्यः वसुधातलं अर्धेन एव प्रतपति अर्धेन अवच्छादयति तदा हि भगवत् उपासना उपचित अतिपुरुष प्रभावः तत् अनभिनन्दन् समजवेन रथेन ज्योतिः मयेन रजनीं अपि दिनं करिष्याम इति सप्तकृत्वः तरणिं अनु पर्यक्रामत् द्वितीय इव पतङ्गः ॥३०॥

सुरगिरिं	सुमेरुकी
अनुपरिक्रामन्	चारों ओर परिक्रमा करते हुए
भगवान्	
आदित्यः	भगवान सूर्य
यावत्	जहाँ तक (जगतको)
अवभासयति	प्रकाशित करते हैं (उसमें)
वसुधातलं	भूतल (एक साथ)
अर्धेन एव	आधा ही
प्रतपति	प्रकाशित करते हैं,
अर्धेन	(दूसरे) आधे भागको
अवच्छादयति	ढक देते हैं,
तत्	इसे
अनभिनन्दन्	पसन्द न करके
तदा हि	उस समय तो
भगवत्	
उपासना	भगवान्‌की उपासनासे
उपचित	प्राप्त
अतिपुरुष	अतिमानव
प्रभावः	प्रभाववाले (होनेसे)
समजवेन	समान वेगवाले
ज्योतिः मयेन	ज्योतिर्मय
रथेन	रथके द्वारा
रजनीं अपि	रात्रिको भी
दिनं करिष्याम	दिन बना दूंगा
इति	ऐसा सोचकर
तरणिं	सूर्यके
अनु	पीछे
सप्तकृत्वः	सात बार
द्वितीय	दूसरे
पतङ्गः इव	सूर्यके समान
पर्यक्रामत्	परिक्रमा की ॥३०॥

ये वा उ ह तद्रथचरणनेमिकृतपरिखातास्ते सप्त सिन्धव आसन् यत एव कृताः सप्त भुवो द्वीपाः ॥३१॥

ये वा उ ह तत् रथ चरण नेमि कृतः परिखाः ताः ते सप्त सिन्धवः आसन् यत एव कृताः सप्त भुवः द्वीपाः ॥३१॥

ये	जो	ते	वही
वा उ ह	निश्चय वहां उस समय	सप्त सिन्धवः आसन्	सात समुद्र हो गये
तत्	उनके	यत एव	जिनसे ही
रथ चरण नेमि	रथके पहियोंके घेरेसे	भुवः	पृथ्वीके
परिखाः कृतः	खाइयां बन गयीं	सप्त द्वीपाः	सात द्वीप*
		कृताः	बन गये ॥३१॥

जम्बूप्लक्षशाल्मलिकुशक्रौञ्चशाकपुष्करसंज्ञास्तेषां परिमाणं पूर्वस्मात्पूर्वस्मादुत्तर उत्तरो यथासंख्यं द्विगुणमानेन बहिः समन्तत उपक्लृप्ताः ॥३२॥

जम्बू प्लक्ष शाल्मलि कुश क्रौञ्च शाक पुष्कर संज्ञाः तेषां परिमाणं पूर्वस्मात् पूर्वस्मात् उत्तर उत्तरः यथा संख्यं द्विगुणमानेन बहिः समन्तत उपक्लृप्ताः ॥३२॥

जम्बू	जम्बू,	तेषां	उनका
प्लक्ष	प्लक्ष,	परिमाणं	घेरा
शाल्मलि	शाल्मलि,	पूर्वस्मात् पूर्वस्मात्	पहिलोंसे
कुश	कुश,	यथा संख्यं	क्रमशः
क्रौञ्च	क्रौञ्च,	उत्तर उत्तरः	पिछले
शाक	शाक,	द्विगुणमानेन	दुगुने विस्तारवाले हैं
पुष्कर	पुष्कर	बहिः समन्तत	बाहर चारों ओरसे
संज्ञाः	नामवाले (ये सात द्वीप) हैं	उपक्लृप्ताः	घिरे हुए हैं ॥३२॥

---

* इस वर्णनमें लोकालोक पर्यन्त सम्पूर्ण भाग भूतल कहा गया है। अतः वर्तमान ज्ञात पृथ्वीमें इस वर्णनकी संगति नहीं ढूंढ़ना चाहिए।

क्षारोदेक्षुरसोदसुरोदघृतोदक्षीरोददधिमण्डोदशुद्धोदाः सप्त जलधयः सप्त द्वीपपरिखा इवाभ्यन्तरद्वीपसमाना एकैकश्येन यथानुपूर्वं सप्तस्वपि बहिर्द्वीपेषु पृथक्परित उपकल्पितास्तेषु जम्ब्वादिषु बर्हिष्मतीपतिरनुव्रतानात्मजानाग्नीध्रेध्मजिह्वयज्ञबाहुहिरण्यरेतोघृतपृष्ठमेधातिथिवीतिहोत्रसंज्ञान् यथासंख्येनैकैकस्मिन्नेकमेवाधिपतिं विदधे ॥३३॥

क्षारोदः इक्षुरसोदः सुरोदः घृतोदः क्षीरोदः दधिमण्डोदः शुद्धोदाः सप्त जलधयः सप्त द्वीप परिखा इव अभ्यन्तर द्वीप समाना एक एकश्येन यथा अनुपूर्वं सप्तसु अपि बहिः द्वीपेषु पृथक परितः उपकल्पिताः तेषु जम्बू आदिषु बर्हिष्मतीपतिः अनुव्रतान् आत्मजान् आग्नीध्रः इध्मजिह्वः यज्ञबाहुः हिरण्यरेताः घृतपृष्ठः मेधातिथिः वीतिहोत्रः संज्ञान् यथा संख्येन एक एकस्मिन् एकं एव अधिपतिं विदधे ॥३३॥

क्षारोदः	क्षारोद,	**एक एकश्येन**	एक दूसरेसे
इक्षुरसोदः	इक्षुरसोद,	**यथा अनुपूर्वं**	यथा क्रम
सुरोदः	सुरोद,	**सप्तसु**	सातो ही
घृतोदः	घृतोद,	**द्वीपेषु**	द्वीपोंके
क्षीरोदः	क्षीरोद,	**बहिः अपि**	बाहर भी
दधिमण्डोदः	दधिमण्डोद,	**पृथक**	अलग-अलग
शुद्धोदाः	शुद्धोद*	**परितः**	चारो ओर
सप्त जलधयः	(ये) सात समुद्र	**उपकल्पिताः**	बनायेके समान हैं
सप्तद्वीप	सातो द्वीपोंकी	**तेषु**	उन
परिखा इव	खाईं के समान हैं	**जम्बू आदिषु**	जम्बू आदि (द्वीपों) में
अभ्यन्तर द्वीप	(ये समुद्र) अपने भीतरी द्वीप	**बर्हिष्मतीपतिः**	बर्हिष्मतीके पति (प्रियव्रत)
समाना	के बराबर हैं		

* स्पष्ट है कि क्षारोद (खारे समुद्र) को छोड़कर दूसरे कोई समुद्र न भूतलपर और न अन्तरिक्षमें कहीं ज्ञात हैं। अवश्य अन्तरिक्षके वातावरणमें इनके तत्त्वोंके सूक्ष्मसार होने सम्भव हैं।

अनुव्रतान	अनुकूल आचरणवाले	मेधातिथिः	मेधातिथि (तथा)
		वीतिहोत्रः	वीतिहोत्र
आत्मजान्	(अपने) पुत्र	संज्ञान्	नामवालोंको
आग्नीध्रः	आग्नीध्र,	यथा संख्येन	क्रमानुसार
इध्मजिह्वः	इध्मजिह्व,	एक एकस्मिन्	एक-एक (द्वीप) में
यज्ञबाहुः	यज्ञबाहु,	एकं एव	एकको ही
हिरण्यरेता	हिरण्यरेता,	अधिपतिं	(उसका) अधिपति
धृतपृष्ठः	धृत पृष्ठ,	विदधे	बनाया ॥३३॥

दुहितरं चोर्जस्वतीं नामोशनसे प्रायच्छद्यस्यामासीद् देवयानी नाम काव्यसुता ॥३४॥

दुहितरं च ऊर्जस्वतीं नाम उशनसे प्रायच्छत् यस्यां आसीत् देवयानी नाम काव्यसुता ॥३४॥

ऊर्जस्वतीं नाम	ऊर्जस्वती नामक	यस्यां	जिससे
दुहितरं च	पुत्रीको तो	काव्यसुता	शुक्राचार्यकी पुत्री
उशनसे	शुक्राचार्यको	देवयानी नाम	देवयानी नामकी
प्रायच्छत्	प्रदान किया,	आसीत्	थी ॥३४॥

नैवंविधः पुरुषकार उरुक्रमस्य
पुंसां तदङ्घ्रिरजसा जितषड्गुणानाम् ।
चित्रं विदूरविगतः सकृदाददीत
यन्नामधेयमधुना स जहाति बन्धम् ॥३५॥

न एवं विधः पुरुषकार उरुक्रमस्य पुंसां तत् अङ्घ्रि रजसा जितषड्गुणानां चित्रं विदूरविगतः सकृत् आददीत यत् नामधेयं अधुना स जहाति बन्धम् ॥३५॥

उरुक्रमस्य	अनन्त पराक्रम	अङ्घ्रि रजसा	चरणरजके प्रभावसे
पुंसां	परमपुरुष और		(शोक-मोह, भूख-प्यास, जरा-मृत्यु),
तत्	उनकी		

जितषड्गुणानां	छः गुणोंको जीत लेनेवालेके लिए	यत्	जिनके (भगवान्)
		नामधेयं	नामोंको
एवं विधः	इस प्रकारका	सकृत्	केवल एक बार
पुरुषकार	पुरुष-प्रयत्न	आददीत	लेता है तो
चित्रं न	आश्चर्यजनक नहीं है।	स बन्धं	वह (संसार) बन्धनको
अधुना (अपि)	(क्योंकि) आज भी	जहाति	त्याग देता (छूट जाता) है ॥३५॥
विदूरविगतः	वर्णबहिष्कृत (चाण्डालादि) भी		

स एवमपरिमितबलपराक्रम एकदा तु देवर्षिचरणानुशयनानुपतितगुणविसर्गसंसर्गेणानिर्वृतमिवात्मानं मन्यमान आत्मनिर्वेद इदमाह ॥३६॥

स एवं अपरिमित बल पराक्रम एकदा तु देवर्षि चरण अनुशयन अनुपतित गुण विसर्ग संसर्गेण अनिर्वृतं इव आत्मानं मन्यमान आत्मनिर्वेदं इदं आह ॥३६॥

एवं	इस प्रकारके		सृष्टिके
अपरिमित	असीम	संसर्गेण	सम्पर्कमें आनेसे
बल पराक्रम	बल-पराक्रमवाले	अनिर्वृतं इव आत्मानं	अशान्तसे
स एकदा तु	वे एक बार तो	मन्यमान	अपनेको मानते हुए
देवर्षि	देवर्षि नारदके	आत्मनिर्वेदं	अपने वैराग्यको व्यक्त करते
चरण अनुशयन	चरणोंके पीछे ही रहने (की स्थितिसे)	इदं आह	यह बोले ॥३६॥
अनुपतित	च्युत होकर		
गुण विसर्ग	त्रिगुणोंकी विशेष		

अहो असाध्वनुष्ठितं यदभिनिवेशितोऽहमिन्द्रियैरविद्यारचितविषमविषयान्धकूपे तदलममुष्या वनिताया विनोदमृगं मां धिग्धिगिति गर्हयाञ्चकार ॥३७॥

अहो असाधु अनुष्ठितं यत् अभिनिवेशितः अहं इन्द्रियैः अविद्या रचित विषम विषय अन्धकूपे तत् अलं अलं अमुष्या वनिताया विनोदमृगं मां धिक् धिक् इति गर्हयां चकार ॥३७॥

अहो	'ओह !	तत् अलं अलं	इससे बस-बस !
असाधु	बुरा	अमुष्या	इस
अनुष्ठितं	हुआ,	वनिताया	स्त्रीके
यत् अहं	जो मैं	विनोदमृगं	क्रीड़ा करनेका बन्दर बने
इन्द्रियैः	इन्द्रियोंके द्वारा		
अविद्या रचित	अविद्याके बताये	मां	मुझे
विषम	कष्टमय	धिक् धिक्	बार-बार धिक्कार।'
विषय	विषयोंके	इति	इस प्रकार
अन्धकूपे	अन्धे (सूखे) कुएंमें	गर्हयां	(अपनी) निन्दा
अभिनिवेशितः	डाल दिया गया।	चकार	करने लगे ॥३७॥

परदेवताप्रसादाधिगतात्मप्रत्यवमर्शेनानुप्रवृत्तेभ्यः पुत्रेभ्य इमां यथादायं विभज्य भुक्तभोगां च महिषीं मृतकमिव सहमहाविभूतिमपहाय स्वयं निहितनिर्वेदो हृदि गृहीतहरिविहारानुभावो भगवतो नारदस्य पदवीं पुनरेवानुससार ॥३८॥

परदेवता प्रसाद अधिगत आत्म प्रत्यवमर्शेन अनुप्रवृत्तेभ्यः पुत्रेभ्यः इमां यथादायं विभज्य भुक्तभोगां च महिषीं मृतकं इव सह महाविभूतिं अपहाय स्वयं निहित निर्वेदः हृदि गृहीत हरि विहार अनुभावः भगवतः नारदस्य पदवीं पुनः एव अनुससार ॥३८॥

परदेवता	परमदेवता (श्रीहरि) की	आत्म प्रत्यवमर्शेन	आत्मतत्त्व विचारसे (युक्त हो)
प्रसाद	कृपासे	अनुप्रवृत्तेभ्यः	(अपने) अनुगत
अधिगत	प्राप्त	पुत्रेभ्यः	पुत्रोंको

इमां	इस पृथ्वीको	निहित	धारण करके
यथादायं	उत्तराधिकार नियमके अनुसार	हरि विहार अनुभावः	श्रीहरिकी लीलाओंका प्रभाव
विभज्य	बांटकर,		
भुक्तभोगां	(जिसके साथ) अनेक भोग भोगे थे उस	गृहीतः	ग्रहण (चिन्तन) करते
		पुनः एव	फिरसे
महिषीं	महारानीको	भगवतः	
मृतकं इव	मरी हुईके समान,	नारदस्य	भगवान नारदके
महाविभूति सह	महान् वैभवके साथ	पदवीं	बतलाये मार्गका
अपहाय	छोड़ दिया।	अनुससार	अनुसरण करने लगे ॥३८॥
स्वयं	अपने आप		
हृदि निर्वेदः	हृदयमें वैराग्य		

तस्य ह वा एते श्लोकाः—

तस्य ह वा एते श्लोकाः—

तस्य	उन (महाराज प्रियव्रत) के सम्बन्धमें	ह वा	निश्चित रूपसे
		एते	ये (नीचेके)
		श्लोकाः	श्लोक प्रसिद्ध हैं—

प्रियव्रतकृतं कर्म को नु कुर्याद्विनेश्वरम् ।
यो नेमिनिम्नैरकरोच्छायां घ्नन् सप्त वारिधीन् ॥३९॥

प्रियव्रत कृतं कर्म कः नु कुर्यात् विना ईश्वरं यः नेमि निम्नैः अकरोत् छायां घ्नन् सप्त वारिधीन् ॥३९॥

विना ईश्वरं	ईश्वरके अतिरिक्त		सकेगा,
प्रियव्रत कृतं	महाराज प्रियव्रतके किये	यः	जिन्होंने
		छायां घ्नन्	(सूर्यकी) छायाको मिटाते हुए
कर्म	कर्मको		
नु कः कुर्यात्	भला कौन कर		

नेमि निम्नैः	(रथको) नेमिके गड्ढोंसे	सप्त वारिधीन्	सात समुद्र
		अकरोत्	बना दिये ॥३९॥

भूसंस्थानं कृतं येन सरिद्गिरिवनादिभिः ।
सीमा च भूतनिर्वृत्यै द्वीपे द्वीपे विभागशः ॥४०॥

भूसंस्थानं कृतं येन सरित् गिरि वन् आदिभिः सीमा च भूतनिर्वृत्यै द्वीपे द्वीपे विभागशः ॥४०॥

भूतनिर्वृत्यै	प्राणियोंकी सुख-सुविधाके लिए	गिरि	पर्वतों,
		वन आदिभिः	वन आदिसे
येन	जिन्होंने	द्वीपे द्वीपे	प्रत्येक द्वीपमें
भूसंस्थानं	पृथ्वीकी ठीक स्थिति	विभागशः	विभागके अनुसार
		सीमा कृतं	(सबकी) सीमा बना दी ॥४०॥
च सरित्	तथा नदियों,		

भौमं दिव्यं मानुषं च महित्वं कर्मयोगजम् ।
यश्चक्रे निरयौपम्यं पुरुषानुजनप्रियः ॥४१॥

भौमं दिव्यं मानुषं च महित्वं कर्मयोगजं यः चक्रे निरय उपम्यं पुरुष अनुजन प्रियः ॥४१॥

भौमं	(भूमिमें-के) पातालादिके	यः	जिन्होंने
		पुरुष अनुजन	परमपुरुषके भक्त (नारदजी) के
दिव्यं	देवताओंके		
मानुषं	मनुष्य लोकके	प्रियः	प्रिय (होनेसे)
कर्मयोगजं	कर्म तथा योगसे उत्पन्न (मिलनेवाले)	निरय उपम्यं	नरक (के भोगोंसे) तुलनाके योग्य
महित्वं	महानता (ऐश्वर्य) को	चक्रे	बना दिया ॥४१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
पञ्चमस्कन्धे प्रियव्रतविजये प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

एवं पितरि सम्प्रवृत्ते तदनुशासने वर्तमान आग्नीध्रो जम्बूद्वीपौकसः प्रजा औरसवद्धर्मावेक्षमाणः पर्यगोपायत् ॥१॥

एवं पितरि सम्प्रवृत्ते तत् अनुशासने वर्तमानः आग्नीध्रः जम्बूद्वीप ओकसः प्रजा औरसवत् धर्म अवेक्षमाणः परि अगोपायत ॥१॥

एवं	इस प्रकार	जम्बूद्वीप ओकसः	जम्बूद्वीपमें रहनेवाली
पितरि	पिताके	प्रजा	प्रजाको
सम्प्रवृत्ते	उत्तम प्रवृत्ति (भगवद्-भजन) में लग जानेपर	औरसवत्	सगे पुत्रोंके समान
तत् अनुशासने	उनकी आज्ञाके (अनुसार)	धर्म अवेक्षमाणः	धर्मानुसार देखते हुए
वर्तमानः	रहते (चलते) हुए	परि अगोपायत	चारों ओरसे रक्षा करने लगे ॥१॥
आग्नीध्रः	आग्नीध्र		

स च कदाचित्पितृलोककामः सुरवरवनिताक्रीडाचलद्रोण्यां भगवन्तं विश्वसृजां पतिमाभृतपरिचर्योपकरण आत्मैकाग्र्येण तपस्व्याराधयाम्बभूव ॥२॥

स च कदाचित् पितृलोक कामः सुरवर वनिता क्रीडाचल द्रोण्यां भगवन्तं विश्व सृजां पतिं आभृत परिचर्या उपकरण आत्म एकाग्रेण तपसि आराधयां बभूव ॥२॥

स च	उन्होंने तो
कदाचित्	किसी समय
पितृलोक कामः	पितृलोककी कामना (सत्पुत्रपानेकी इच्छा) से
परिचर्या	
उपकरण	पूजाकी सामग्री
आभृत	जुटाकर
सुरवर वनिता	श्रेष्ठ सुरोंकी पत्नियोंके
क्रीडाचल	क्रीड़ा-पर्वत (मन्दराचल) की
द्रोण्यां	घाटीमें
भगवन्तं	भगवान्
विश्वसृजांपतिं	विश्व-स्रष्टाओंके स्वामी (ब्रह्माजी)की
आत्म एकाग्रेण	अपनी एकाग्रतासे (और)
तपसि	तपस्यासे
आराधयां बभूव	आराधना करने लगे ॥२॥

तदुपलभ्य भगवानादिपुरुषः सदसि गायन्तीं पूर्वचित्तिं नामाप्सरसमभियापयामास ॥३॥

तत् उपलभ्य भगवान् आदिपुरुषः सदसि गायन्तीं पूर्वचित्तिं नाम अप्सरसं अभियापयामास ॥३॥

तत् उपलभ्य	उनकी (कामना) जानकर
भगवान् आदि-पुरुष	आदिपुरुष भगवान् (ब्रह्माजी) ने
सदसि गायन्तीं	अपनी सभामें गाती
पूर्वचित्तीं नाम	पूर्वचित्ती नामक
अप्सरसं	अप्सराको
अभियापयामास	उनके पास भेज दिया ॥३॥

सा च तदाश्रमोपवनमतिरमणीयं विविधनिबिडविटपिविटपनिकरसंश्लिष्ट पुरटलतारूढस्थलविहङ्गममिथुनैः प्रोच्यमानश्रुतिभिः प्रतिबोध्यमानसलिलकुक्कुटकारण्डवकलहंसादिभिर्विचित्रमुपकूजितामलजलाशयकमलाकरमुप बभ्राम ॥४॥

सा च तत् आश्रम उपवनं अति रमणीयं विविध निबिड विटपि विटप निकर संश्लिष्ट पुरट लता आरूढ स्थल विहङ्गम मिथुनैः प्रोच्यमान श्रुतिभिः प्रतिबोध्यमान सलिल कुक्कुट कारण्डव कलहंस आदिभिः विचित्रं उपकूजित अमल जलाशय कमल आकरं उप बभ्राम ॥४॥

सा च	वह (अप्सरा) भी
तत् आश्रम	उन (आग्नीध्र) के आश्रमके
अति रमणीयं	अत्यन्त रमणीय
उपवनं	उपवनमें (जो)
विविध निबिड़	अनेक प्रकारके, सघन
विटपि विटप निकर	वीरुध, वृक्षोंके समूह
संश्लिष्ट	(जिनके) परस्पर सटे थे,
पुरट लता आरूढ	(जिनपर) स्वर्ण-लताएँ चढ़ी थीं,
स्थल विहङ्गम मिथुनैः	(जहाँ) स्थल-पक्षियोंके जोड़ोंके द्वारा
प्रोच्यमान श्रुतिभिः	उच्च स्वरसे की गयी ध्वनिसे
प्रतिबोध्यमान	सावधान किये गये
सलिल कुक्कुट कारण्डव	जलमुर्गे, सारस,
कलहंस आदिभिः	कलहंस आदि द्वारा
विचित्रं उपकूजितं	विचित्र रूपसे शब्दायमान
कमल आकरं	कमलोंसे भरे,
अमल जलाशयं	निमल जलाशयके
उप बभ्राम	समीप (वह) घूमने लगी ॥४॥

तस्याः सुललितगमनपदविन्यासगतिविलासायाश्चानुपदं खणखणायमानरुचिरचरणाभरणस्वनमुपाकर्ण्य नरदेवकुमारः समाधियोगेनामीलितनयननलिनमुकुलयुगलमीषद्विकचय्य व्यचष्ट ॥५॥

तस्याः सुललित गमन पदविन्यास गति विलासायाः च अनुपदं खणखणायमान रुचिर चरणाभरण स्वनं उप आकर्ण्य नरदेवकुमारः समाधि योगेन आमीलित नयन नलिन मुकुल युगलं ईषत् विकचय्य व्यचष्ट ॥५॥

तस्याः	उसके
सुललित गमन	अत्यन्त सुन्दर चालसे
गति विलासायाः	विलासपूर्वक चलनेसे
च पदविन्यास	तथा चरण निक्षेपसे
अनुपदं	प्रत्येक पदपर
खणखणायमान	झंकार करते
चरणाभरण	चरणोंके आभूषणोंकी

रुचिर स्वनं	मनोहर ध्वनि	युगल नयन	
उपाकर्ण्य	सुनकर	नलिनमुकुल	दोनों कमल-कलिका जैसे नेत्रोंको
नरदेवकुमारः	राजकुमार (आग्नीध्र) ने	ईषत्	तनिक
समाधि योगेन	अत्यन्त एकाग्रतासे	विकचय्य	विकसित करके (खोलकर)
आमीलित	बन्द किये	व्यचष्ट	देखा ॥५॥

तामेवाविदूरे मधुकरीमिव सुमनस उपजिघ्रन्तीं दिविजमनुजमनोनयनाह्लाददुघैर्गतिविहारव्रीडाविनयावलोकसुस्वराक्षरावयवैर्मनसि नृणां कुसुमायुधस्य विदधतीं विवरं निजमुखविगलितामृतासवसहासभाषणामोदमदान्धमधुकरनिकरोपरोधेन द्रुतपदविन्यासेन वल्गुस्पन्दनस्तनकलशकबर भाररशनां देवीं तदवलोकनेन विवृतावसरस्य भगवतो मकरध्वजस्य वशमुपनीतो जडवदिति होवाच ॥६॥

तां एव अविदूरे मधुकरीं इव सुमनस उपजिघ्रन्तीं दिविजमनुज मनः नयन आह्लाददुघैः गति विहार व्रीडाविनय अवलोक सुस्वर अक्षर अवयवैः मनसि नृणां कुसुमायुधस्य विदधतीं विवरं निजमुख विगलित अमृत आसवाहास भाषण आमोद मदान्ध मधुकर निकर उपरोधेन द्रुतपद विन्यासेन वल्गु स्पन्दन स्तनकलश कबर भार रशनां देवीं तत् अवलोकनेन विवृत अवसरस्य भवतः मकरध्वजस्य वशं उपनीतः जडवत् इति ह उवाच ॥६॥

तां एव	उस (पूर्वचित्ती) को ही	दिविजमनुज	देवता-मनुष्य (दोनों) के
अविदूरे	समीप ही	मनः नयन	मन और नेत्रोंको
मधुकरीं इव	भ्रमरीके समान	आह्लाददुघैः	आह्लाद देनेवाले
सुमनस	पुष्पोंको	गति विहार	गति, क्रीड़ा,
उपजिघ्रन्तीं	सूंघती हुई (देखा),		

व्रीडाविनय अवलोक	लज्जा और विनयसे देखनेकी भंगी
सुस्वर अक्षर अवयवैः	बहुत मधुर अक्षर वाले (गीत) और अंगोंसे
नृणां मनसि	मनुष्योंके मनमें
कुसुमायुधस्य	पुष्पधन्वा कामका
विदधतीं	विधान (संचार) करती,
निजमुख विवरं	अपने मुख विवरसे
विगलित	झरते
अमृत आसवा-	अमृत आसव (युक्त)
हास भाषण	हास्य सहित बोलनेसे
आमोद मदान्ध	निकलती सुगन्धिसे मदान्ध
मधुकर निकर	भ्रमरोंके समूहसे
उपरोधेन	बचनेके लिए
द्रुतपद विन्यासेन	शीघ्रतासे पैर रखकर चलनेसे
स्तनकलश	कलशके समान स्तनों तथा
कवर भार	जूड़ेके भारसे
रशनां	करधनी (की ध्वनि) से युक्त
तत् देवीं अवलोकनेन	उस देवीको देखनेसे
विवृत अवसरस्य	(हृदयमें प्रवेशका) खुला अवसर मिलनेसे
भगवतः मकरध्वजस्य	भगवान् कामदेवके
वशं उपनीतः	वशमें ले जाये जाकर
जडवत्	पागलकी भाँति
इति ह उवाच	इस प्रकार ही बोले ॥६॥

आग्नीध्र उवाच*–

का त्वं चिकीर्षसि च किं मुनिवर्य शैले
मायासि कापि भगवत्परदेवतायाः ।
विज्ये बिभर्षि धनुषी सुहृदात्मनोऽर्थे
किं वा मृगान्मृगयसे विपिने प्रमत्तान् ॥७॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

का त्वं चिकीर्षसि च किं मुनिवर्य शैले माया असि कापि भगवत् परदेवतायाः विज्ये बिभर्षि धनुषी सुहृद आत्मनः अर्थे किं वा मृगान् मृगयसे विपिने प्रमत्तान् ॥७॥

मुनिवर्य	मुनिवर !	**बिभर्षि**	धारण कर रखे हैं
का त्वं	तुम कौन हो ?	**सुहृद**	मित्र !
च शैले	और इस पर्वतपर	**आत्मनः**	अपने
किं चिकीर्षसि	क्या करना चाहते हो ?	**अर्थे**	लिए (इनका तुम्हें) प्रयोजन है ?
परदेवतायाः	परमदेवता (नारायण) की	**वा किं**	अथवा क्या
कापि	कोई	**विपिने**	वनमें
माया असि	माया हो ?	**प्रमत्तान्**	असावधान
विज्ये	बिना ज्या (डोरी)के	**मृगान्**	पशुओंको
धनुषी	धनुष (नेत्र)	**मृगयसे**	ढूँढ़ रहे हो ॥७॥

बाणाविमौ भगवतः शतपत्रपत्रौ
शान्तावपुङ्ख्रुचिरावतितिग्मदन्तौ ।
कस्मै युयुङ्क्षसि वने विचरन्न विद्मः
क्षेमाय नो जडधियां तव विक्रमोऽस्तु ॥८॥

बाणाः इमौ भगवतः शतपत्रपत्रौ शान्ताः अपुङ्ख रुचिराः अतितिग्म दन्तौ कस्मै युयुङ्क्षसि वने विचरन् न विद्मः क्षेमाय नः जडधियां तव विक्रमः अस्तु ॥८॥

इमौ	ये (कटाक्ष रूपी)	**रुचिराः**	सुन्दर हैं (किन्तु)
भगवतः	भगवन् ! आपके	**अतितिग्म**	बहुत तीक्ष्ण
बाणाः	दोनों बाण	**दन्तौ**	दाँत (नोक) वाले हैं ।
शतपत्रपत्रौ	कमल-दलके		
अपुङ्ख	पंखवाले	**वने विचरन्**	वनमें घूमते हुए (आप)
शान्ताः	शान्त (और)		

कस्मै	किसपर (इनका)	नः जडधियां	हम जैसे पागलोंके
युयुङ्क्षसि	प्रयोग करेंगे	क्षेमाय	कल्याणके लिए
न विद्मः	(यह हम) नहीं जानते	तव विक्रमः	आपका पराक्रम
		अस्तु	होवे ॥८॥

शिष्या इमे भगवतः परितः पठन्ति
गायन्ति साम सरहस्यमजस्रमीशम् ।
युष्मच्छिखाविलुलिताः सुमनोऽभिवृष्टीः
सर्वे भजन्त्यृषिगणा इव वेदशाखाः ॥९॥

शिष्याः इमे भगवतः परितः पठन्ति गायन्ति साम सरहस्यं अजस्रं ईशं युष्मत् शिखाः विलुलिताः सुमनः अभिवृष्टीः सर्वे भजन्ति ऋषिगणाः इव वेदशाखाः ॥९॥

भगवतः	भगवन् आपके	युष्मत् शिखाः	आपकी चोटीसे
इमे शिष्याः	ये (भ्रमर) शिष्य	विलुलिताः	झड़े हुए
परितः	चारों ओर	सुमनः	
पठन्ति	पढ़ रहे हैं।	अभिवृष्टीः	पुष्प-वर्षाका
सरहस्यम्	रहस्यके साथ	ऋषिगणाः	ऋषियों द्वारा
साम	सामवेदके मन्त्रोंसे	वेदशाखाः इव	वेदोंकी शाखाओंके समान
अजस्रं	अविराम		
ईशं	अपने स्वामी (आपका)	सर्वे भजन्ति	सब (भ्रमर शिष्य) सेवन करते हैं ॥९॥
गायन्ति	यशोगान कर रहे हैं।		

वाचं परं चरणपञ्जरतित्तिरीणां
ब्रह्मन्नरूपमुखरां शृणवाम तुभ्यम् ।
लब्धा कदम्बरुचिरङ्कुविटङ्कुबिम्बे
यस्यामलातपरिधिः क्व च वल्कलं ते ॥१०॥

वाचं परं चरणपञ्जर तित्तिरीणां ब्रह्मन् न रूप मुखरां शृणवाम तुभ्यं लब्धा कदम्ब रुचिरङ्ग विटङ्ग बिम्बे यस्यां अलात परिधिः क्व च वल्कलं ते ॥१०॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	विटङ्ग बिम्बे	नितम्ब बिम्बोंने
तुभ्यं	तुम्हारे	कदम्ब	कदम्ब पुष्पोंकी
चरणपञ्जर	चरणोंके पिंजरेमें (रहनेवाले)	रुचिरङ्ग	मनोहर शोभा
		लब्धा	पाई है,
तित्तिरीणां	तीतरोंकी	यस्यां	जिनपर
परं वाचं	केवल वाणी	अलात परिधिः	अंगारोंका घेरा (करधनी) है,
मुखरां	गूंजती		
शृणवाम	सुन रहा हूँ	ते	(पर) तुम्हारा
न रूप	(पर) उनका रूप नहीं (दीखता)	वल्कलं	वल्कल-वस्त्र
		क्व च	कहां है ? ॥१०॥

किं सम्भृतं रुचिरयोर्द्विज शृङ्ग्योस्ते
मध्ये कृशो वहसि यत्र दृशिः श्रिता मे ।
पङ्कोऽरुणः सुरभिरात्मविषाण ईदृग्
येनाश्रमं सुभग मे सुरभीकरोषि ॥११॥

किं सम्भृतं रुचिरयोः द्विज शृंगयोः ते मध्ये कृशः वहसि यत्र दृशिः श्रिता मे पङ्कः अरुणः सुरभिः आत्म विषाण ईदृक् येन आश्रमं सुभग मे सुरभी करोषि ॥११॥

द्विज	द्विजवर !	वहसि	(फिर भी) इन सींगोंको ढोती हो-
ते	तुम्हारे		
रुचिरयोः	सुन्दर	यत्र	जहां
शृङ्ग्योः	दोनों सींगोंमें	मे दृशिः	मेरी दृष्टि
किं सम्भृतं	क्या भरा है ?	श्रिता	अटक गयी है ।
मध्ये कृशः	मध्य (कटि) कृश (दुबली) है	सुभग	सुभगे !

अरुणः पङ्कः	लाल कीचसे युक्त (आपके)	येन	जिससे
आत्म विषाण	अपने सींगोंकी	मे आश्रमं	मेरे आश्रमको
ईदृक् सुरभिः	ऐसी सुगन्धि है	सुरभी करोषि	सुगन्धित कर रहे हो ॥११॥

लोकं प्रदर्शय सुहृत्तम तावकं मे
यत्रत्य इत्थमुरसावयवावपूर्वौ ।
अस्मद्विधस्य मनउन्नयनौ बिभर्ति
बह्वद्भुतं सरसराससुधादि वक्त्रे ॥१२॥

लोकं प्रदर्शय सुहृत्तम तावकं मे यत्रत्य इत्थं उरसा अवयवाः अपूर्वौ अस्मत् विधस्य मन उन्नयनौ बिभर्ति बहु अद्भुतं सरसरास सुधाआदि वक्त्रे ॥१२॥

सुहृत्तम	मित्रवर !	अस्मत् विधस्य	हमारे जैसेके
मे तावकं	मुझे तुम्हारा	मन उन्नयनौ	मनको खींच लेने वाले हैं
लोकं प्रदर्शय	लोक दिखा दो		
यत्रत्य	जहाँके लोगोंके	वक्त्रे	(आपके) मुखमें भी
उरसा	वक्षस्थलपर	सरसरास	सरस नृत्य (विलास)
इत्थं	इस प्रकारके		
अपूर्वौ	अपूर्व	सुधाआदि	अमृत आदि
अवयवाः	अंग	बहु अद्भुतं	बहुत अद्भुत (वस्तुएँ) हैं ॥१२॥
बिभर्ति	धारण करते हैं (जो)		

का वाऽऽत्मवृत्तिरदनाद्विरङ्क वाति
विष्णोः कलास्यनिमिषोन्मकरौ च कर्णौ ।
उद्विग्नमीनयुगलं द्विजपङ्क्तिशोचि-
रासन्नभृङ्गनिकरं सर इन्मुखं ते ॥१३॥

का वा आत्म वृत्तिः अदनात् विरङ्क वाति विष्णोः कलाः अनिमिषः मकरौ च कर्णौ उद्विग्न मीन युगलं द्विज पङ्क्ति शोचिः आसन्न भृङ्ग निकरं सर इन् मुखं ते ॥१३॥

आत्म वृत्तिः	(तुम्हारा) अपना आहार
का वा	क्या है ? अथवा (जिसके)
अदनात्	खानेसे (तुम्हारे मुखसे)
विरंग वाति	हवन जैसी वायु निकल रही है।
विष्णोः कलाः	(तुम) भगवान विष्णुकी कला हो
कर्णौ च	(तुम्हारे) कानोंमें भी
अनिमिषः	पलक न मारनेवाले
मकरौ	मकर (कुंडल) हैं
ते मुखं	तुम्हारा मुख
इन् सर	सुन्दर सरोवर है (जिसमें)
उद्विग्न मीन युगलं	दो चंचल मछलियां है,
शोचिः	ज्योति युक्त
द्विज पंक्ति	हंसों (दांतों) की पंक्ति है (और)
आसन्न	समीप (अलक रूपी)
भृङ्ग निकरं	भ्रमरोंका समूह है ॥१३॥

योऽसौ त्वया करसरोजहतः पतङ्गो
दिक्षु भ्रमन् भ्रमत एजयतेऽक्षिणी मे ।
मुक्तं न ते स्मरसि वक्रजटावरूथं
कष्टोऽनिलो हरति लम्पट एष नीवीम् ॥१४॥

यः असौ त्वया करसरोज हतः पतङ्गः दिक्षु भ्रमन् भ्रमत एजयते अक्षिणी मे मुक्तं न ते स्मरसि वक्र जटा वरूथं कष्टः अनिलः हरति लम्पट एष नीवीम् ॥१४॥

यः असौ	यह जो
त्वया	तुम्हारे द्वारा
करसरोज	कर-कमलोंसे
हतः पतङ्गः	मारा गेंद है (वह)
दिक्षु भ्रमन् भ्रमत	दिशाओंमें घूमता घूमता
मे अक्षिणी	मेरे नेत्रोंको
एजयते	चञ्चल कर देता है
ते	तुम्हारा,
वक्र जटा वरूथं	कुटिल जटा समूह
मुक्तं	खुल गया है
न स्मरसि	इसका (तुम्हें) स्मरण नहीं है,
कष्टः	दुःखकी बात है कि
एष लम्पट	यह लम्पट (असदाचारी)
अनिलः	वायु
नीवीं हरति	कटि वस्त्रको खींच रहा है ॥१४॥

रूपं तपोधन तपश्चरतां तपोघ्नं
ह्येतत्तु केन तपसा भवतोपलब्धम् ।
चर्तुं तपोऽर्हसि मया सह मित्र मह्यं
किं वा प्रसीदति स वै भवभावनो मे ॥१५॥

रूपं तपोधन तपः चरतां तपःघ्नं हि एतत् तु केन तपसा भवतः उपलब्धं चतुं तपः अर्हसि मया सह मित्र मह्यं किं वा प्रसीदति स वै भव भावनः मे ॥१५॥

तपोधत	तपोधन !
तपः चरतां	तपस्या करने वालोंकी
हि	निश्चित रूपसे
तपःघ्नं	तपस्याका नाशक
एतत् रूपं तु	यह (सुन्दर) रूप तो
भवतः	आपने
केन तपसा	किस तपस्यासे
उपलब्धं	पाया है ?
मित्र	मित्र !
मया सह	मेरे साथ (तुम्हें)
तपः चर्तुं	तपस्या करना
अर्हसि	चाहिए ।
वा किं	अथवा क्या
मह्यं प्रसीदति	मुझपर कृपा करके
स वै भव	
भावनः	निश्चय उन्हीं विश्वभावन (ब्रह्माजी) ने
मे	मुझे (तुमको दिया है) ॥१५॥

न त्वां त्यजामि दयितं द्विजदेवदत्तं
यस्मिन्मनो दृगपि नो न वियाति लग्नम् ।
मां चारुभृङ्ग्यर्हसि नेतुमनुव्रतं ते
चित्तं यतः प्रतिसरन्तु शिवाः सचिव्यः ॥१६॥

न त्वां त्यजामि दयितं द्विजदेवदत्तं यस्मिन् मनः दृक् अपि नः न वियाति लग्नं मां चारुभृङ्गि अर्हसि नेतुं अनुव्रतं ते चित्तं यतः प्रतिसरन्तु शिवाः सचिव्यः ॥१६॥

द्विजदेवदत्तं	(तुम) ब्रह्माजीकी दी हुई हो	ते चित्तं	तुम्हारा मन हो (वहाँ)
त्वां दयितं	तुम प्रियको	मां नेतुं	(तुम्हें) मुझे ले जाना
न त्यजामि	नहीं छोड़ूंगा।		
यस्मिन् लग्नं	जिसमें लगा	अर्हसि	चाहिए
नः मनः दृक्	मेरा मन और दृष्टि	अनुव्रतं	(मैं तुम्हारा) अनुव्रत हूँ
न वियाति	पृथक नहीं जाती है,		
चारुभ्रूङ्गि	सुन्दर सींगवाली	शिवाः सचिव्यः	(तुम्हारी ये) मंगलमयी सखियाँ भी (साथ चलें) ॥१६॥
यतः प्रति-			
सरन्तु	जहाँ जानेकी		

श्रीशुक उवाच-

इति ललनानुनयातिविशारदो ग्राम्यवैदग्ध्यया परिभाषया तां विबुधवधूं विबुधमतिरधिसभाजयामास ॥१७॥

इति ललना अनुनय अति विशारदः ग्राम्य वैदग्ध्यया परिभाषया तां विबुधवधूं विबुधमतिः अधिसभाजयामास ॥१७॥

इति	इस प्रकार	तां विबुधवधूं	उस देववधू (अप्सरा) को
ललना अनुनय	स्त्रीको मनानेमें		
अति विशारदः	अत्यन्त निपुण (आग्नीध्रने)	विबुधमतिः	देवता-बुद्धि (समझ) से
ग्राम्य वैदग्धया	कामनैपुण्यकी	अधिसभा-	
परिभाषया	पद्धतिसे	जयामास	पूर्ण प्रसन्न कर लिया ॥१७॥

सा च ततस्तस्य वीरयूथपतेर्बुद्धिशीलरूपवयः श्रियौदार्येण पराक्षिप्तमनास्तेन सहायुतायुतपरिवत्सरोपलक्षणं कालं जम्बूद्वीपपतिना भौमस्वर्गभोगान् बुभुजे ॥१८॥

सा च ततः तस्य वीरयूथपतेः बुद्धिशील रूप वयः श्रिया औदार्येण पराक्षिप्त मनाः तेन सह अयुत अयुत परिवत्सर उपलक्षणं कालं जम्बूद्वीप पतिना भौम स्वर्ग भोगान् बुभुजे ॥१८॥

ततः	तब	तेन जम्बूद्वीप पतिना	उन्हीं जम्बूद्वीपाधिपतिके
तस्य	उन	सह	साथ
वीरयूथपतेः	वीरयूथोंके स्वामीकी	अयुत अयुत परिवत्सर उपलक्षणं	कई हजार सम्वत्सरोंसे
बुद्धिशील	बुद्धि, शील	कालं	समय तक
रूप वयः	रूप, आयु	भौम स्वर्ग भोगान्	पृथ्वी और स्वर्गके भोगोंको
श्रिया औदार्येण	लक्ष्मी तथा उदारतासे	बुभुजे	भोगती रही ॥१८॥
सा च	वह (अप्सरा) भी		
पराक्षिप्त मनाः	मनके आकर्षित होनेसे		

तस्यामु ह वा आत्मजान् स राजवर आग्नीध्रो नाभि-किम्पुरुषहरिवर्षेलावृतरम्यकहिरण्मयकुरुभद्राश्वकेतुमालसंज्ञान्नव पुत्रानजनयत् ॥१९॥

तस्यां उ ह वा आत्मजान् स राजवर आग्नीध्रः नाभिः किम्पुरुषः हरिवर्षः इलावृतः रम्यकः हिरण्मयः कुरुः भद्राश्वः केतुमालः संज्ञान् नव पुत्रान् अजनयत् ॥१९॥

तस्यां	उसमें	आत्मजान्	अपने आत्मांशसे*
उ ह वा	निश्चय रूपसे ही	नाभिः	नाभि,
स राजवरः	उन राजश्रेष्ठ	किम्पुरुषः	किम्पुरुष,
आग्नीध्रः	आग्नीध्रने	हरिवर्षः	हरिवर्ष,

* यहाँ आत्मजका अर्थ पुत्र इसलिए सम्भव नहीं क्योंकि वाक्यके अन्तमें 'पुत्रान्' आया है।

इलावृतः	इलावृत,	केतुमालः	केतुमाल
रम्यकः	रम्यक,	संज्ञान्	नामवाले
हिरण्मयः	हिरण्मय,	नव पुत्रान्	नौ पुत्रोंको
कुरुः	कुरु,	अजनयत्	उत्पन्न किया ॥१९॥
भद्राश्वः	भद्राश्व,		

सा सूत्वाथ सुतान्नवानुवत्सरं गृह एवापहाय पूर्वचित्तिर्भूय एवाजं देवमुपतस्थे ॥२०॥

सा सूत्वा अथ सुतान् नव अनुवत्सरं गृह एव अपहाय पूर्वचित्तिः भूय एव अजं देवं उपतस्थे ॥२०॥

अथ	फिर	अपहाय	त्यागकर
अनुवत्सरं	प्रत्येक वर्ष एकके क्रमसे	पूर्वचित्तिः	पूर्वचित्ती
		भूय एव	फिरसे
सा	वह (अप्सरा)	अजं देवं	भगवान् ब्रह्माके
नव सुतान्	नौ पुत्रोंको	उपतस्थे	समीप पहुँच
सूत्वा	जन्म देकर		गयी ॥२०॥
गृह एव	घरपर ही		

आग्नीध्रसुतास्ते मातुरनुग्रहादौत्पत्तिकेनैव संहनन-बलोपेताः पित्रा विभक्ता आत्मतुल्यनामानि यथाभागं जम्बू-द्वीपवर्षाणि बुभुजुः ॥२१॥

आग्नीध्र सुताः ते मातुः अनुग्रहात् औत्पत्तिकेन एव संहनन बल उपेताः पित्रा विभक्ता आत्मतुल्य नामानि यथाभागं जम्बूद्वीप वर्षाणि बुभुजः ॥२१॥

ते आग्नीध्र सुताः	वे आग्नीध्रके पुत्र	औत्पत्तिकेन एव	जन्मके समयसे ही
मातुः अनुग्रहात्	माताके अनुग्रहसे	संहनन बल	सुडौल और बल

उपेताः	युक्त थे ।	जम्बूद्वीप	
पित्रा विभक्ता	पिता द्वारा बाँटे गये	वर्षाणि	जम्बूद्वीपके प्रदेशोंको
आत्मतुल्य		यथाभागं	विभागके अनुसार
नामानि	अपने समान नामवाले	बुभुजुः	भोगने लगे ॥२१॥

आग्नीध्रो राजातृप्तः कामानामप्सरसमेवानुदिनमधिमन्यमानस्तस्याः सलोकतां श्रुतिभिरवारुन्ध यत्र पितरो मादयन्ते ॥२२॥

आग्नीध्रः राजा अतृप्तः कामानां अप्सरसं एव अनुदिनं अधिमन्यमानः तस्याः सलोकतां श्रुतिभिः अवारुन्ध यत्र पितरः मादयन्ते ॥२२॥

राजा आग्नीध्रः	महाराज आग्नीध्र	तस्याः	
कामानां	कामनाओं (के भोग) से	सलोकतां	उसके लोकको
अतृप्तः	अतृप्त थे ।	श्रुतिभिः	वैदिक कर्मसे
अनुदिनम्	प्रतिदिन	अवारुन्ध	प्राप्त किया,
अप्सरसं एव	अप्सराको ही	यत्र पितरः	जहाँ पितर
अधिमन्यमानः	परम पुरुषार्थ मानते हुए	मादयन्ते	आमोद-मग्न रहते हैं ॥२२॥

सम्परेते पितरि नव भ्रातरो मेरुदुहितृर्मेरुदेवीं प्रतिरूपामुग्रदंष्ट्रीं लतां रम्यां श्यामां नारीं भद्रां देववीतिमितिसंज्ञा नवोदवहन् ॥२३॥

सम्परेते पितरि नव भ्रातरः मेरुदुहितॄं मेरुदेवीं प्रतिरूपां उग्रदंष्ट्रीं लतां रम्यां श्यामां नारीं भद्रां देववीतिं इति संज्ञा नव उदवहन् ॥२३॥

पितरि	पिताके	नारीं	नारी,
सम्परेते	परलोक सिधारनेपर	भद्रां	भद्रा,
नव भ्रातरः	नौ भाइयोंने	देववीतिं	देववीति,
मेरुदेवीं	मेरु देवी,	संज्ञा	नामवाली
प्रतिरूपां	प्रतिरूपा,	नव	नौ
उग्रदंष्ट्रीं	उग्रदंष्ट्री,	मेरुदुहितृ	मेरुकी कन्याओंसे
लतां	लता,	उदवहन्	विवाह कर
रम्यां	रम्या,		लिया ॥२३॥
श्यामां	श्यामा,		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे आग्नीध्रवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

———

अथ तृतीयोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

नाभिरपत्यकामोऽप्रजया मेरुदेव्या भगवन्तं यज्ञपुरुषमवहितात्मायजत ॥१॥

नाभिः अपत्यकामः अप्रजया मेरु देव्याः भगवन्तं यज्ञ पुरुषं अवहित आत्मा अयजत् ॥१॥

अपत्यकामः	पुत्रकी कामनासे	भगवन्तं	भगवान्
नाभिः	नाभि	यज्ञ पुरुषं	यज्ञ-पुरुषका
अप्रजया	सन्तानहीना (अपनी पत्नी)	अवहित आत्मा	एकाग्र चित्तसे
		अयजत्	यजन करने लगे ॥१
मेरुदेव्याः	मेरुदेवीके साथ		

तस्य ह वाव श्रद्धया विशुद्धभावेन यजतः प्रवर्ग्येषु प्रचरत्सु द्रव्यदेशकालमन्त्रर्त्विग्दक्षिणाविधानयोगोपपत्त्या दुरधिगमोऽपि भगवान् भागवतवात्सल्यतया सुप्रतीक आत्मानमपराजितं निजजनाभिप्रेतार्थविधित्सया गृहीतहृदयो हृदयङ्गमं मनोनयनानन्दनावयवाभिराममाविश्चकार ॥२॥

तस्य ह वाव श्रद्धया विशुद्ध भावेन यजतः प्रवर्ग्येषु प्रचरत्सु द्रव्य देशकाल मन्त्र ऋत्विक् दक्षिणा विधान योग उपपत्त्या दुरधिगमः अपि भगवान् भागवत वात्सल्य तया सुप्रतीक आत्मानं अपराजितं निजजन अभिप्रेत अर्थ विधित्सया गृहीत हृदयः हृदयङ्गमं मनः नयन आनन्दन अवयव अभिरामं आविः चकार ॥२॥

द्रव्य	पदार्थ
देशकाल	स्थान और समय
मन्त्र ऋत्विक्	मन्त्र, ऋत्विक् (ब्राह्मण)
दक्षिणा	दक्षिणा आदिके
विधान	विधान
योग उपपत्त्या	
अपि	संयोग जुट जानेसे
दुरधिगमः	जिनकी प्राप्ति कठिन है,
भगवान् भागवत	वे भगवान्
वात्सल्य तया	भक्तोंपर वात्सल्य रखनेके कारण
तस्य	उन नाभिके
ह वाव	निश्चय ही
श्रद्धया	श्रद्धा पूर्वक
विशुद्ध भावेन	विशुद्ध भाव सहित
यजतः	यज्ञ करते समय
गृहीत हृदयः	(नाभिको भक्तिसे) हृदय उनके वशमें होनेसे
अपराजितं	अपराजित
आत्मानं	स्वरूप होनेपर भी
निजजन	अपने भक्तके
अभिप्रेत	अभीष्टका
विधित्सया	विधान (प्रदान) करनेके लिए
प्रवर्ग्येषु	प्रवर्ग्य-कर्म
प्रचरत्सु	होते समय
हृदयङ्गमं	हृदयाकर्षक
सुप्रतीक	अत्यन्त शान्त
मनः नयन	मन और नेत्रोंको
आनन्दन	आनन्द देनेवाले,
अभिराम्	परम सुन्दर
अवयव	अंगवाले रूपको
आविः चकार	प्रकट किया ॥२॥

अथ ह तमाविष्कृतभुजयुगलद्वयं हिरण्मयं पुरुषविशेषं कपिशकौशेयाम्बरधरमुरसि विलसच्छ्रीवत्सललामं दरवरवनरुहवनमालाच्छूर्यमृतमणिगदादिभिरुपलक्षितं स्फुटकिरणप्रवरमुकुटकुण्डलकटककटिसूत्रहारकेयूरनूपुराद्यङ्गभूषणविभूषितमृत्विक्सदस्यगृहपतयोऽधना इवोत्तमधनमुपलभ्य सबहुमानमर्हणेनावनतशीर्षाण उपतस्थुः ॥३॥

अथ ह तं आविष्कृत भुज युगल द्वयं हिरण्मयं पुरुष विशेषं कपिश कौशेय अम्बर धरं उरसि विलसत् श्रीवत्स ललामं दरवर वनरुह वनमालात्

सूर्यमृतमणि गदा आदिभिः उपलक्षितं स्फुट किरण प्रवर मुकुट कुण्डल कटक कटिसूत्र हार केयूर नूपुर आदि अङ्गभूषण विभूषितं ऋत्विक् सदस्य गृहपतयः अधना इव उत्तम धनं उपलभ्य सबहुमानं अर्हणेन अवनत शीर्षाण उपतस्थुः ॥३॥

अथ ह	उस समय प्रत्यक्ष
आविष्कृत	प्रकट किये
भुज युगल द्वयं	चतुर्भुज रूपमें
पुरुष विशेषं	विशेष पुरुष (पुरुषोत्तम)
हिरण्मयं	स्वर्णमय (स्वर्णिम रूपके) थे।
कपिश कौशेय अम्बर धरं	पीले रंगके रेशमी वस्त्र पहिने थे।
उरसि	वक्ष-स्थलपर
ललामं	परम सुन्दर
श्रीवत्स	श्रीवत्स चिह्न
विलसत्	अत्यन्त शोभित था।
दरवर	श्रेष्ठ शंख,
वनरुह	पद्म,
वनमालात्	वनमाला,
सूर्यमृतमणि	सूर्यको हीन-कान्ति करनेवाली (कौस्तुभ) मणि,
गदा आदिभिः	गदा आदि (चक्र) द्वारा
उपलक्षितं	पहिचाने जानेवाले रूपमें,
स्फुट किरण प्रवर	जिनसे श्रेष्ठ किरणें निकलती थीं उन
मुकुट	मुकुट,
कुण्डल कटक	कुण्डल, कङ्कण,
कटिसूत्र	काञ्ची
हार केयूर	हार, अंगद,
नूपुर आदि	नूपुर आदि
अंगभूषण	अंगोंको भूषित करनेवाले
विभूषितं	आभूषणोंसे भूषित-को (देखकर)
ऋत्विक्	ऋत्विक्
सदस्य	सदस्य
गृहपतयः	यजमान
अधना इव	निर्धनके समान
उत्तम धनं	उत्तम-धन (भगवान्) को
उपलभ्य	पाकर
सबहुमानं	बहुत आदर सहित
अवनत शीर्षाण	मस्तक झुकाये
अर्हणेन	पूजा करके
उपतस्थुः	स्तुति करने लगे ॥३॥

ऋत्विज ऊचुः

अर्हसि मुहुरर्हत्तमार्हणमस्माकमनुपथानां नमो नमइत्येतावत्सदुपशिक्षितं कोऽर्हति पुमान् प्रकृतिगुणव्यतिकरमतिरनीश ईश्वरस्य परस्य प्रकृतिपुरुषयोरर्वाक्तनाभिर्नामरूपाकृतिभी रूपनिरूपणम् ॥४॥

अर्हसि मुहुः अर्हत्तम अर्हणं अस्माकं अनुपथानां नमो नमः इति एतावत् सत् उपशिक्षितं कः अर्हति पुमान् प्रकृति गुण व्यतिकर मतिः अनीश ईश्वरस्य परस्य प्रकृति पुरुषयोः अर्वाक्तनाभिः नाम रूप आकृतिभी रूप निरूपणं ॥४॥

अर्हत्तम	पूज्यतम !	व्यतिकर मतिः	विकृत बुद्धि वाला
अस्माकं	हम	अनीश	असमर्थ होकर भी
अनुपथानां	अनुयायियोंसे	प्रकृति पुरुषयोः	प्रकृति और पुरुषसे
मुहुः	बार-बार (आप)	परस्य	परे
अर्हणं	पूजाके	ईश्वरस्य	ईश्वरके
अर्हसि	योग्य हो (किन्तु)	अर्वाक्तनाभिः	पीछेके बने
नमो नमः	आपको बार-बार नमस्कार	नाम रूप आकृतिभी	नाम, रूप, आकृतिके द्वारा
इति	इस प्रकार	रूप निरूपणं	स्वरूपका वर्णन
एतावत्	इतनी ही	कः पुमान्	कौन पुरुष
सत् उपशिक्षितं	सत्पुरुषोंसे (हमें) शिक्षा मिली है	अर्हति	कर सकता है ॥४॥
प्रकृति गुण	प्रकृतिके गुणोंसे		

सकलजननिकायवृजिननिरसनशिवतमप्रवरगुणगणैकदेशकथनाद्दते ॥५॥

सकलजन निकाय वृजिन निरसन शिवतम प्रवर गुणगण एकदेश कथनात् ऋते ॥५॥

सकलजन निकाय	समस्त जन-समूहके
वृजिन	कष्टोंको
निरसन	दूर करनेवाले
शिवतम प्रवर	परम कल्याणमय श्रेष्ठ
गुणगण	गुणोंके समूहके
एकदेश कथनात्	किसी एकांशके वर्णनको
ऋते	छोड़कर (कोई वर्णनका साहस भी करेगा तो और क्या कर सकेगा) ॥५॥

परिजनानुरागविरचितशबलसंशब्दसलिलसितकिसलयतुलसिकादूर्वाङ्कुरैरपि सम्भृतया सपर्यया किल परम परितुष्यसि ॥६

परिजन अनुराग विरचित शबल संशब्द सलिल सित किसलय तुलसिका दूर्वाङ्कुरैः अपि सम्भृतया सपर्यया किल परम परितुष्यसि ॥६॥

परिजन	(अपने) भक्तों द्वारा
अनुराग	प्रेमपूर्वक
विरचित	की गयी
शबल संशब्द	गद्गद् वाणीकी स्तुति और
सलिल	जल,
सित किसलय	शुद्ध-पल्लव,
तुलसिका	तुलसीदल
दुर्वाङ्कुरैः अपि	एवं दूर्वाके अङ्कुरोंसे भी
सम्भृतया	की गयी
सपर्यया	पूजासे
किल	निश्चय
परम	परमपुरुष आप
परितुष्यसि	परमसन्तुष्ट हो जाते हैं ॥६॥

अथानयापि न भवत इज्ययोरुभारभरया समुचितमर्थमिहोपलभामहे ॥७॥

अथ अनया अपि न भवत इज्ययोः उरुभार भरया समुचितं अर्थं इह उपलभामहे ॥७॥

अथ	अतः
इज्ययोः	यज्ञके
उरुभार भरया	बहुत सम्भारपूर्ण
अनया अपि	इस (आयोजन) से भी
भवत	आपका
समुचितं अर्थ	कोई उचित प्रयोजन
इह न	यहाँ (हम) नहीं
उपलभामहे	प्राप्त करते हैं (आप यज्ञसे नहीं, केवल कृपावश पधारे हैं) ॥७॥

आत्मन एवानुसवनमञ्जसाव्यतिरेकेण बोभूयमानाशेष-पुरुषार्थस्वरूपस्य किन्तु नाथाशिष आशासानानामेतदभिसंराधन-मात्रं भवितुमर्हति ॥८॥

आत्मन एव अनुसवनं अञ्जसा व्यतिरेकेण बोभूयमान अशेष पुरुषार्थ स्वरूपस्य किन्तु नाथ अशिष आशासानानां एतत् अभिसंराधनमात्रं भवितुं अर्हति ॥८॥

आत्मन एव	आपके अपने स्वरूपसे ही	किन्तु नाथ आशिष	लेकिन स्वामी !
अनुसवनं	प्रत्येक समय	आशासानानां	कामनाकी पूर्ति चाहनेवालोंके लिए
अञ्जसा	सरल प्रयत्नके		
व्यतिरेकेण	बिना ही (स्वाभाविक) रूपमें	एतत् अभिसंराधन-	यही (यज्ञार्चन ही)
अशेष पुरुषार्थ	सम्पूर्ण पुरुषार्थका	मात्रं	पर्याप्त (कामना-पूर्तिका) साधन
बोभूयमान	(फल) प्रादुर्भूत होता रहता है	भवितुं अर्हति	होना चाहिए ॥८॥
स्वरूपस्य	उस (परमानन्द) के आप स्वरूप हैं,		

तद्यथा बालिशानां स्वयमात्मनः श्रेयः परमविदुषां परमपरमपुरुष प्रकर्षकरुणया स्वमहिमानं चापवर्गाख्यमुपकल्प-यिष्यन् स्वयं नापचित एवेतरवदिहोपलक्षितः ॥९॥

तत् यथा बालिशानां स्वयं आत्मनः श्रेयः परं अविदुषां परम परम-पुरुष प्रकर्ष करुणया स्वमहिमानं च अपवर्गाख्यं उपकल्पयिष्यन् स्वयं न अपचित एव इतरवत् इह उपलक्षितः ॥९॥

तत्	अतः	परं श्रेयः	परम कल्याणको
यथा	जैसे	स्वयं अविदुषां	स्वयं न जाननेवाले
आत्मनः	अपने	बालिशानं	अज्ञानियोंके लिए

परम	श्रेष्ठोंसे भी
परमपुरुष	श्रेष्ठतम पुरुष (आप)
स्वमहिमानं	अपनी महिमाको
च	तथा
अपवर्गाख्यं	मोक्ष नामक पद (स्थिति) को
उपकल्पयिष्यन्	प्रदान करनेके लिए
स्वयं न अपचित	स्वयं कोई प्रतिकार मिले बिना
एव इतरवत्	ही दूसरे (दर्शकों) के समान
इह उपलक्षितः	यहाँ आ गये हैं ॥९॥

अथायमेव वरो ह्यर्हत्तम यर्हि बर्हिषि राजर्षेर्वरदर्षभो भवान्निजपुरुषेक्षणविषय आसीत् ॥१०॥

अथ अयं एव वरः हि अर्हत्तम यर्हि बर्हिषि राजर्षेः वरदर्षभः भवान् निजपुरुष ईक्षण विषय आसीत् ॥१०॥

अथ	अब
अयं एव वरः	यही वरदान है
हि	क्योंकि
अर्हत्तम	परमपूज्य
वपदर्षभः	वरदान देनेवालोंमें श्रेष्ठ
भवान्	आप
यर्हि बर्हिषि	जब यज्ञमें
निजपुरुष राजर्षेः	अपने सेवक राजर्षिके
ईक्षण विषय आसीत्	नेत्रोंके सामने हो गये हैं ॥१०॥

असङ्गनिशितज्ञानानलविधूताशेषमलानां भवत् स्वभावानामात्मारामाणां मुनीनामनवरतपरिगुणितगुणगण परममङ्गलायनगुणगणकथनोऽसि ॥११॥

असङ्ग निशित ज्ञानअनल विधूत अशेष मलानां भवत् स्वभावानां आत्मारामाणां मुनीनां अनवरत परिगुणित गुणगण परम मङ्गलायन गुणगण कथनः असि ॥११॥

असङ्ग निशित ज्ञान-अनल	आसक्तिहीन तीक्ष्ण ज्ञानाग्निसे
अशेष मलानां	समस्त (राग-द्वेषादि) मलोंको
विधूत	भस्म कर देनेवाले,
भवत् स्वभावानां	आपके ही स्वभाववाले,
आत्मारामाणां	आत्माराम
मुनीनां	मुनियों द्वारा
अनवरत	निरन्तर
गुणगण	(आपके) गुणगणोंकी
परिगुणित	गणना-गान किया जाता है
परम मङ्गलायन	परम मंगलायन
गुणगण	(आपके) गुण-गणोंका
कथनः	वर्णन (गान) है–
असि	ऐसे आप हैं ॥११॥

अथ कथञ्चित्स्खलनक्षुत्पतनजृम्भणदुरवस्थानादिषु विवशानां नः स्मरणाय ज्वरमरणदशायामपि सकलकश्मलनिरसनानि तव गुणकृतनामधेयानि वचनगोचराणि भवन्तु ॥१२॥

अथ कथञ्चित् स्खलन क्षुत् पतन जृम्भण दुरवस्थान आदिषु विवशानां नः स्मरणाय ज्वर मरणदशायां अपि सकल कश्मल निरसनानि तव गुणकृत नामधेयानि वचनगोचराणि भवन्तु ॥१२॥

अथ	अतः
कथञ्चित्	किसी प्रकार
क्षुत्	भूख लगनेपर
पतन	गिरने (फिसलने) पर,
जृम्भण	जम्हाई लेनेपर,
दुरवस्थान आदिषु	संकटादिके समय,
ज्वर	ज्वर आनेपर,
मरणदशायां अपि	मरणावस्थामें भी
नः विवशानां	हमारे विवश होनेपर
सकल कश्मल	सब पाप
निरसनानि	निवारक
तव	आपके
गुणकृत	गुणोंके अनुसार (पड़े)
नामधेयानि	नाम
वचनगोचराणि	वाणीसे उच्चरित
भवन्तु	होवें ॥१२॥

किञ्चायं राजर्षिरपत्यकामः प्रजां भवादृशीमाशासान ईश्वरमाशिषां स्वर्गापवर्गयोरपि भवन्तमुपधावति प्रजायामर्थ-प्रत्ययो धनदमिवाधनः फलीकरणम् ॥१३॥

किञ्च अयं राजर्षिः अपत्यकामः प्रजां भवादृशीं आशासानः ईश्वरं आशिषां स्वर्ग अपवर्गयोः अपि भवन्तं उपधावति प्रजायां अर्थ प्रत्ययः धनदं इव अधनः फलीकरणम् ॥१३॥

किञ्च	इसके अतिरिक्त
अयं	यह
राजर्षिः	राजर्षि
अपत्यकामः	पुत्र चाहता है।
अधनः	(कोई) कंगाल
धनदं	धन देनेवालेसे
फलीकरणं	भूसी चाहे
इव	इस भाँति
भवादृशीं	आपके समान
प्रजां	पुत्र
आशासानः	चाहता हुआ
आशिषां	कामनाओंके
स्वर्ग	स्वर्ग
अपवर्गयोः अपि	मोक्षके भी
ईश्वरं	(देनेवाले) समर्थ स्वामी
भवन्तं	आपकी
उपधावति	आराधना करता है।
प्रजायां	(क्योंकि) पुत्रको
अर्थ प्रत्ययः	पुरुषार्थ समझता है ॥१३॥

को वा इह तेऽपराजितोऽपराजितया माययानवसितपदव्याना-वृतमतिर्विषयविषरयानावृतप्रकृतिरनुपासितमहच्चरणः ॥१४॥

कः वा इह ते अपराजितः अपराजितया मायया अनवसित पदव्या अनावृत मतिः विषय विषरय अनावृत प्रकृतिः अनुपासित महत् चरणः ॥१४॥

कः वा	अथवा ऐसा कौन है
इह	इस संसारमें जो
ते अपराजितः	आप अपराजितकी
अपराजितया	अपराजिता
मायया	मायासे
महत् चरणः	महापुरुषोंके चरणोंकी
अनुपासित	उपासना किये बिना
अनवसित	अनिश्चित

पदव्या	स्वरूप वाली (मायाके)	अनावृत प्रकृतिः	स्वभाव ढक न जाय
विषय	विषय रूपी	अनावृत मतिः	(जिसकी) बुद्धि ढक न जाय ॥१४॥
विषरय	विष वेगसे (जिसका)		

यदु ह वाव तव पुनरदभ्रकर्तरिह समाहूतस्तत्रार्थधियां मन्दानां नस्तद्यद्देवहेलनं देवदेवार्हसि साम्येन सर्वान् प्रतिवोढुमविदुषाम् ॥१५॥

यत् उ ह वाव तव पुनः अदभ्र कर्तः इह समाहूतः तत्र अर्थधियां मन्दानां नः तद् यत् देव हेलनं देवदेव अर्हसि साम्येन सर्वान् प्रतिवोढुं अविदुषां ॥१५॥

यत् उ ह वाव	क्योंकि निश्चित रूपसे ही	तद्	वह
अदभ्र	(आप) अव्यर्थ	देव तव	देव, आपकी
कर्तः	कर्ता हैं	यत् हेलनं	जो अब हेलना हुई
पुनः	फिर	देवदेव	देव देव !
अर्थधियां	(तुच्छ) प्रयोजन बुद्धिसे	साम्येन	(अपनी) समतासे
नः मन्दानां	हम अज्ञानियोंने	अविदुषां	(हम) अज्ञानियोंकी
इह समाहूतः	यहाँ (आपका) आवाहन किया	सर्वान्	सब (भूलें)
		प्रतिवोढुं	(आपको) सह लेना
		अर्हसि	चाहिए ॥१५॥

श्रीशुक उवाच–

इति निगदेनाभिष्टूयमानो भगवाननिमिषर्षभो वर्षधराभिवादिताभिवन्दितचरणः सदयमिदमाह ॥१६॥

इति निगदेन अभिष्टूयमानः भगवान् अनिषर्षभः वर्षधर अभिवादित अभिवन्दित चरणः सदयं इदं आह ॥१६॥

वर्षधर	वर्षाधिपति (नाभि) के	निगदेन	कहते हुए,
अभिवादित अभिवन्दित	वन्दनीय	अभिष्टूयमानः	स्तुति किये जानेपर
चरणः	पूज्यचरण (ऋत्विकों द्वारा)	अनिषर्षभः	देवऋषभ (परमदेव)
इति	इस प्रकार	भगवान्	भगवान्
		सदयं	दयापूर्वक
		इदं आह	यह बोले ॥१६॥

श्रीभगवानुवाच–

अहो बताहमृषयो भवद्भिरवितथगीर्भिर्वरमसुलभमभियाचितो यदमुष्यात्मजो मया सदृशो भूयादिति ममाहमेवाभिरूपः कैवल्यादथापि ब्रह्मवादो न मृषा भवितुमर्हति ममैव हि मुखं यद् द्विजदेवकुलम् ॥१७॥

अहो बत अहं ऋषयः भवद्भिः अवितथ गीःभिः वरं असुलभं अभियाचितः यत् अमुष्य आत्मजः मया सदृशः भूयात् इति मम अहं एव अभिरूपः कैवल्यात् अथ अपि ब्रह्मवादः न मृषा भवितुं अर्हति मम एव हि मुखं यत् द्विज देव कुलम् ॥१७॥

अहो बत	अरे किन्तु;	अमुष्य आत्मजः	इनका पुत्र
ऋषयः	ऋषियो !	मया सदृशः	मेरे समान
भवद्भिः	आप लोगों द्वारा	भूयात्	होवे
अहं	मुझसे	इति	इस प्रकार (मांगा है)
अवितथ	अव्यर्थ	मम अभिरूपः	मेरे समान
गीः भिः	वाणीसे	अहं एव	मैं ही हूँ,
असुलभं	बड़ा दुर्लभ	कैवल्यात्	एक मात्र होनेसे
वरं	वरदान	अथ अपि	फिर भी
अभियाचितः	मांगा गया है,	ब्रह्मवादः	ब्राह्मणोंकी बात
यत्	जो		

मृषा भवितुं	झूठी होनी	द्विजदेवकुलं	ब्राह्मण देवताओंका
न अर्हति	नहीं चाहिए,		कुल
यत् हि	क्योंकि	मम एव	मेरा ही
		मुखं	मुख है ॥१७॥

तत आग्नीध्रीयेंऽशकलयावतरिष्याम्यात्मतुल्यमनुपलभमानः ॥१८॥

ततः आग्नीध्रीये अंश कलया अवतरिष्यामि आत्मतुल्यं अनुपलभमानः ॥१८॥

ततः	इसलिए	आग्नीध्रीये	आग्नीध्रके वंशमें
आत्मतुल्यं	अपने समान	अंश कलया	(अपनी) कलाके
अनुपलभमानः	(दूसरा) न पानेके		अंशसे
	कारण	अवतरिष्यामि	अवतार लूंगा ॥१८॥

श्रीशुक उवाच-

इति निशामयन्त्या मेरुदेव्याः पतिमभिधायान्तर्दधे भगवान् ॥१९॥

इति निशामयन्त्या मेरुदेव्याः पतिं अभिधाय अन्तर्दधे भगवान् ॥१९॥

मेरुदेव्याः	मेरुदेवीके	भगवान्	भगवान्
निशामयन्त्या	सुनते हुए	अन्तर्दधे	अन्तर्हित हो
इति	इस प्रकार		गये ॥१९॥
पतिं अभिधाय	(उसके) पतिसे		
	कहकर		

बर्हिषि तस्मिन्नेवऽहनि विष्णुदत्त भगवान् परमर्षिभिः प्रसादितो नाभेः प्रियचिकीर्षया तदवरोधायने मेरुदेव्यां धर्मान्दर्शयितुकामो वातरशनानां श्रमणानामृषीणामूर्ध्वमन्थिनां शुक्लया तनुवाववतार ॥२०॥

बर्हिषि तस्मिन् एव अहनि विष्णुदत्त भगवान् परमर्षिभिः प्रसादितः नाभेः प्रियचिकीर्षया तद् अवरोधायने मेरुदेव्यां धर्मान् दर्शयितु कामः वातरशनानां श्रमणानां ऋषीणां ऊर्ध्वमन्थिनां शुक्लया तनुः अवततार ॥२०॥

बर्हिषि	यज्ञके	वातरशनानां	दिगम्बर,
तस्मिन् एव	उसी	ऊर्ध्वमन्थिनां	ऊर्ध्वरेता
अहनि	दिन	श्रमणानां	विरक्त
विष्णुदत्त	परीक्षित !	ऋषीणां	ऋषियोंके
परमर्षिभिः	परमर्षियों द्वारा	धर्मान्	धर्मोंको
प्रसादितः	प्रसन्न किये जानेसे,	दर्शयितु कामः	प्रदर्शित करनेकी इच्छासे
नाभेः	राजा नाभिका		
प्रियचिकीर्षया	प्रिय करनेकी इच्छासे,	भगवान्	भगवान्ने
		शुक्लया तनुः	शुद्ध सत्त्वमय शरीरसे
तद् अवरोधायने	उनके अन्तःपुरमें		
मेरुदेव्यां	मेरुदेवीसे	अवततार	अवतार लिया ॥२०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
पञ्चमस्कन्धे नाभिचरिते ऋषभावतारो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

———

अथ चतुर्थोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

अथ ह तमुत्पत्त्यैवाभिव्यज्यमानभगवल्लक्षणं साम्योपशमवैराग्यैश्वर्यमहाविभूतिभिरनुदिनमेधमानानुभावं प्रकृतयः प्रजाः ब्राह्मणा देवताश्चावनितलसमवनायातितरां जगृधुः ॥१॥

अथ ह तं उत्पत्त्या एव अभिव्यज्यमान भगवत् लक्षणं साम्य उपशम वैराग्य ऐश्वर्य महाविभूतिभिः अनुदिनम् एधमान अनुभावं प्रकृतयः प्रजाः ब्राह्मणा देवताः च अवनितल समवनाय अतितरां जगृधुः ॥१॥

अथ ह तं	फिर निश्चय उन (नाभिनन्दन) में
उत्पत्त्या एव	जन्मसे ही
भगवत् लक्षणं	भगवान् होनेके लक्षण
अभिव्यज्यमान	प्रकट होने लगे।
साम्य	समता,
उपशम	शान्ति,
वैराग्य	वैराग्य,
ऐश्वर्य	ऐश्वर्य,
महाविभूतिभिः	महान् वैभवके साथ
अनुदिनम्	दिन-दिन
एधमान	बढ़नेवाले
अनुभावं	प्रभावको (देखकर)
प्रकृतयः	मन्त्री आदि
प्रजाः	प्रजाजन,
ब्राह्मणा	ब्राह्मण
च देवताः	और देवता भी
अवनितल	पृथ्वीके
समवनाय	शासन करनेके लिए
अतितरां	अत्यन्त उत्सुकतासे
जगृधुः	(उनका) वरण किया ॥१॥

तस्य ह वा इत्थं वर्ष्मणा वरीयसा बृहच्छ्लोकेन चौजसा बलेन श्रिया यशसा वीर्यशौर्याभ्यां च पिता ऋषभ इतीदं नाम चकार ॥२॥

तस्य ह इत्थं वर्ष्मणा वरीयसा बृहत् श्लोकेन च ओजसा बलेन श्रिया यशसा वीर्य शौर्याभ्यां च पिता ऋषभ इति इदं नाम चकार ॥२॥

तस्य ह	उनके निश्चय	यशसा	सुयश,
इत्थं	इस प्रकारके	वीर्य	पराक्रम,
वर्ष्मणा	शरीरके	च शौर्याभ्यां	तथा शूरता
वरीयसा	(सुन्दर, सुडौल) श्रेष्ठत्वसे		(के श्रेष्ठ होने) से
बृहत् श्लोकेन	विपुल कीर्तिसे,	पिता	पिता (राजा नाभि) ने
च ओजसा	तथा मनोबल,	ऋषभ	ऋषभ
बलेन	(दैहिक) बलसे,	इति इदं	इस प्रकार यह
श्रिया	शोभा,	नाम चकार	नाम रखा ॥२॥

तस्य हीन्द्रः स्पर्धमानो भगवान् वर्षे न ववर्ष तदवधार्य भगवानृषभदेवो योगेश्वरः प्रहस्यात्मयोगमायया स्ववर्षमजनाभं नामाभ्यवर्षत् ।.३॥

तस्य हि इन्द्रः स्पर्धमानः भगवान् वर्षे न ववर्ष तत् अवधार्य भगवान् ऋषभदेवः योगेश्वरः प्रहस्य आत्मयोग मायया स्व वर्षं अजनाभम् नाम अभ्यवर्षत् ॥३॥

हि तस्य	निश्चय उनसे		तो
स्पर्धमानः	स्पर्धा करते हुए	योगेश्वरः	योगेश्वर थे,
इन्द्रः	इन्द्रने	प्रहस्य	हँसकर
भगवान् वर्षे	भगवान्के प्रदेशमें	स्व अजनाभ	
ववर्ष न	वर्षा नहीं की,	नाम वर्षं	अपने अजनाभ नामके प्रदेशमें
तत् अवधार्य	इसका विचार करके	अभ्यवर्षत्	चारों ओर वर्षा की ॥३॥
भगवान्			
ऋषभदेवः	भगवान् ऋषभदेव		

नाभिस्तु यथाभिलषितं सुप्रजस्त्वमवरुध्यातिप्रमोदभर-विह्वलो गद्गदाक्षरया गिरा स्वैरं गृहीतनरलोकसधर्मं भगवन्तं पुराणपुरुषं मायाविलसितमतिर्वत्स तातेति सानुरागमुपलालयन् परां निर्वृतिमुपगतः ॥४॥

नाभिः तु यथा अभिलषितं सुप्रजस्त्वं अवरुध्य अति प्रमोद भर विह्वलः गद्गद् अक्षरया गिरा स्वैरं गृहीत नरलोक सधर्मं भगवन्तं पुराण-पुरुषं माया विलसित मतिः वत्स तात इति सानुरागं उप लालयन् परां निर्वृतिं उपगतः ॥४॥

नाभिः तु	(महाराज)नाभि तो	सधर्मं	सधर्मता
यथा		गृहीत	ग्रहण किये (मनुष्य
अभिलषितं	अपनी अभिलाषाके अनुसार		बने)
		भगवन्तं	भगवान्
सुप्रजस्त्वं	उत्तम पुत्र	पुराण पुरुषं	पुराण-पुरुषको
अवरुध्य	पाकर	माया	
अति प्रमोद		विलसित	(उन्हींकी) मायाके विलाससे प्रभावित
भर	अतिशय आनन्दके उद्रेकसे	मतिः	बुद्धि (होकर)
विह्वलः	विह्वल होकर	वत्स ! तात	वत्स ! तात !
गद्गद्		इति	इस प्रकार
अक्षरया	गद्गद् स्वरवाली	सानुरागं	अनुरागपूर्वक
गिरा	वाणीसे	लालयन्	लाड़ करते हुए
स्वैरं	स्वेच्छासे	परां निर्वृतिं	परमानन्द
नरलोक	मनुष्य लोककी	उपगतः	पा रहे थे ॥४॥

विदितानुरागमापौरप्रकृति जनपदो राजा नाभिरात्मजं समयसेतुरक्षायामभिषिच्य ब्राह्मणेषूपनिधाय सह मेरुदेव्या विशालायां प्रसन्ननिपुणेन तपसा समाधियोगेन नरनारायणाख्यं भगवन्तं वासुदेवमुपासीनः कालेन तन्महिमानमवाप ॥५॥

विदित अनुरागं आपौर प्रकृति जनपदः राजा नाभिः आत्मजं समय सेतु रक्षायां अभिषिच्य ब्राह्मणेषु उपनिधाय सह मेरुदेव्याः विशालायां प्रसन्न

निपुणेन तपसा समाधि योगेन नर नारायण आख्यं भगवन्तं वासुदेवं उपासीनः कालेन तत् महिमानं अवाप ॥५॥

आपौर	पुरवासियोंसे लेकर	सह मेरुदेव्याः	(पत्नी) मेरुदेवीके साथ
प्रकृति	मन्त्री आदि	विशालायां	बदरीनाथ धाममें
जनपदः	सभी बस्तियोंके लोगोंका	प्रसन्न निपुणेन	निर्मल कुशल
अनुरागम्	प्रेम	तपसा	तपस्यासे*
विदितः	जानकर	समाधियोगेन	योगकी समाधिसे
राजा नाभिः	महाराज नाभिने	नर नारायण	
आत्मजं	अपने पुत्र (ऋषभदेव)को	आख्यं	नर-नारायण नामवाले
समय सेतु	सामयिक मर्यादाकी	भगवन्तं	
रक्षायां	रक्षाके लिए	वासुदेवं	भगवान् वासुदेवकी
अभिषिच्य	अभिषेक करके	उपासीनः	उपासना करके
ब्राह्मणेषु	ब्राह्मणोंपर	तत् महिमानं	उनकी महिमा (स्वरूप)को
उपनिधाय	उनका संरक्षण देकर,	अवाप	प्राप्त हो गये ॥५॥

यस्य ह पाण्डवेय श्लोकावुदाहरन्ति—

यस्य ह पाण्डवेय श्लोकाः उदाहरन्ति—

पाण्डवेय	परीक्षित !	श्लोकाः	ये श्लोक
ह यस्य	निश्चय जिनके सम्बन्धमें	उदाहरन्ति	कहे जाते हैं—

को नु तत्कर्म राजर्षेर्नाभेरन्वाचरेत्पुमान् ।
अपत्यतामगाद्यस्य हरिः शुद्धेन कर्मणा ॥६॥

कः नु तत् कर्म राजर्षेः नाभेः अनु आचरेत् पुमान् अपत्यतां अगात् यस्य हरिः शुद्धेन कर्मणा ॥६॥

---

*तपस्या निर्मल होती है निष्काम होनेसे और उसमें निपुणता है कि वह गीतावर्णित सात्विक हो, राजस या तामस न हो ।

यस्य	जिनके
शुद्धेन कर्मणा	शुद्ध कर्म से
हरिः	(स्वयं) श्रीहरि
यस्य	जिनके
अपत्यतां	
अगात्	पुत्र बन गये,
तत् राजर्षेः	उन राजर्षि
नाभेः	नाभिके
कर्म	कर्मका
कः नु	
पुमान्	भला कौन पुरुष
अनु आचरेत्	अनुकरणकर
	सकता है ॥६॥

ब्रह्मण्योऽन्यः कुतो नाभेर्विप्रा मङ्गलपूजिताः ।
यस्य बर्हिषि यज्ञेशं दर्शयामासुरोजसा ॥७॥

ब्रह्मण्यः अन्यः कुतः नाभेः विप्राः मङ्गलपूजिताः यस्य बर्हिषि यज्ञेशं दर्शयामासुः ओजसा ॥७॥

नाभेः	महाराज नाभिसे
अन्यः	भिन्न
ब्रह्मण्यः	ब्राह्मण भक्त
कुतः	कोई कहां होगा
यस्य बर्हिषि	जिनके यज्ञमें
मङ्गलपूजिताः	मङ्गल (उत्साह)
	पूर्वक पूजित
विप्राः	ब्राह्मणोंने
ओजसा	अपने ओज
	(मन्त्र-बल) से
यज्ञेशं	भगवान् यज्ञेशका
दर्शयामासुः	दर्शन करा
	दिया ॥७॥

अथ ह भगवानृषभदेवः स्ववर्षं कर्मक्षेत्रमनुमन्यमानः प्रदर्शितगुरुकुलवासो लब्धवरैर्गुरुभिरनुज्ञातो गृहमेधिनां धर्मानन्-शिक्षमाणो जयन्त्यामिन्द्रदत्तायामुभयलक्षणं कर्म समाम्नाया-म्नातमभियुञ्जन्नात्मजानामात्मसमानानां शतं जनयामास ॥८॥

अथ ह भगवान् ऋषभदेवः स्ववर्षं कर्मक्षेत्रं अनुमन्यमानः प्रदर्शित गुरुकुलवासः लब्धवरैः गुरुभिः अनुज्ञातः गृहमेधिनां धर्मान् अनुशिक्षमाणः जयन्त्यां इन्द्रदत्तायां उभय लक्षणं कर्म समाम्नाय आम्नातं अभियुञ्जन् आत्मजानां आत्मसमानानां शतं जनयामास ॥८॥

अथ ह	इसके पश्चात् तो
भगवान्	
ऋषभदेवः	भगवान् ऋषभदेवने
स्ववर्षं	अपने देश (अजनाभ वर्ष) को
कर्मक्षेत्रं	
अनुमन्यमानः	कर्म-भूमि मानकर*
गुरुकुलवासः	(लोक संग्रहार्थ) गुरुकुलमें निवास
प्रदर्शित	दिखलाया।
लब्धवरैः	गुरु दक्षिणा पाये
गुरुभिः	गुरुदेवसे
अनुज्ञातः	अनुमति पाकर
गृहमेधिनां	गृहस्थोंके
धर्मान्	धर्मोंका
अनुशिक्षमाणः	(लोगोंको) शिक्षा देनेके लिए
इन्द्रदत्तायां	इन्द्रकी दी हुई (उनकी कन्या)
जयन्त्यां	जयन्तीके साथ
उभय लक्षणं	(श्रौत-स्मार्त) दोनों प्रकारके
कर्म समाम्नायं	शास्त्रीय कर्मोंका
अभिभुञ्जन्	पालन करते हुए
आत्मसमानानां	अपने समान
आत्मजानां शतं	सौ पुत्र
जनयामास	उत्पन्न किये ॥८॥

येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठगुण आसीद्येनेदं वर्षं भारतमिति व्यपदिशन्ति ॥९॥

येषां खलु महायोगी भरतः ज्येष्ठः श्रेष्ठगुण आसीत् येन इदं वर्षं भारतं इति व्यपदिशन्ति ॥९॥

येषां खलु	जिन (सौपुत्रों)में तो
महायोगी	महायोगी
भरतः	भरत
ज्येष्ठः	सबसे बड़े और
श्रेष्ठगुणः	गुणोंमें श्रेष्ठ
आसीत्	थे
येन	जिनके कारण
इदं वर्षं	इस देश (अजनाभ
भारतं	भारत
इति	
व्यपदिशन्ति	ऐसा कहा जाता है ॥९॥

---

* सप्तद्वीप युक्ता पृथ्वी कही गयी। उसमें भी जम्बूद्वीपका एक भाग अजनाभ वर्ष (यही पीछे भारतवर्ष कहलाया) यही कर्मभूमि है इसका अर्थ है कि वर्तमान ज्ञात पृथ्वी पौराणिक भारतवर्ष मात्र है।

तमनु कुशावर्त इलावर्तो ब्रह्मावर्तो मलयः केतुर्भद्रसेन इन्द्रस्पृग्विदर्भः कीकट इति नव नवतिप्रधानाः ॥१०॥

तं अनु कुशावर्तः इलावर्तः ब्रह्मावर्तः मलयः केतुः भद्रसेनः इन्द्रस्पृक् विदर्भः कीकटः इति नव नवतिप्रधानाः ।१०॥

तं अनु	उनसे पीछे
कुशावर्तः	कुशावर्त,
इलावर्तः	इलावर्त,
ब्रह्मावर्तः	ब्रह्मावर्त,
मलयः	मलय,
केतुः	केतु,
भद्रसेनः	भद्रसेन,
इन्द्रस्पृक्	इन्द्रस्पृक्
विदर्भः	विदर्भ,
कीकटः	कीकट
इति नव	ये नौ (भाई)
नवतिप्रधानाः	(शेष) नब्बेसे बड़े थे ॥१०॥

कविर्हरिरन्तरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः ।
आविर्होत्रोऽथ द्रुमिलश्चमसः करभाजनः ॥११॥

कविः हरिः अन्तरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः आविर्होत्रः अथद्रुमिलः चमसः करभाजनः ॥११॥

कविः	कवि,
हरिः	हरि,
अन्तरिक्षः	अन्तरिक्ष,
प्रबुद्धः	प्रबुद्ध,
पिप्पलायनः	पिप्पलायन,
आविर्होत्रः	आविर्होत्र,
द्रुमिलः	द्रुमिल,
चमसः	चमस,
अथ करभाजनः	और करभाजन ॥११॥

इति भागवतधर्मदर्शना नव महाभागवतास्तेषां सुचरितं भगवन्महिमोपबृंहितं वसुदेवनारदसंवादमुपशमायनमुपरिष्टाद्वर्णयिष्यामः ॥१२॥

इति भागवतधर्म दर्शनाः नव महाभागवताः तेषां सुचरितं भगवन् महिमा उपबृंहितं वसुदेव नारद संवादं उपशमायनं उपरिष्टात् वर्णयिष्यामः ॥१२॥

इति	इस प्रकार (ये)	तेषां	उनका
भागवतधर्म	भागवत धर्मका	सुचरितं	उत्तम चरित
दर्शनाः	प्रचार करनेवाले	वसुदेव-नारद	
महाभागवताः	महाभागवत (हुए)	संवादं	वसुदेव-नारद
भगवन् महिमा	भगवानकी		संवादमें
	महिमासे	उपरिष्टात्	आगे
उपबृंहितं	महिमान्वित	वर्णयिष्यामः	वर्णन करूँगा॥१२॥
उपशमायनं	परमशान्तिपूर्ण		

यवीयांस एकाशीतिर्जायन्तेयाः पितुरादेशकरा महाशालीना महाश्रोत्रिया यज्ञशीलाः कर्मविशुद्धा ब्राह्मणा बभूवुः ॥१३॥

यवीयांस एकाशीतिः जायन्तेयाः पितुः आदेशकराः महाशालीनाः महाश्रोत्रियाः यज्ञशीलाः कर्मविशुद्धाः ब्राह्मणाः बभूवः ॥१३॥

एकाशीतिः	इक्यासी	महाश्रोत्रियाः	महान् वेदज्ञ,
यवीयांस	छोटे	यज्ञशीलाः	निरन्तर यज्ञ
जायन्तेयाः	जयन्तीके पुत्र		करनेवाले,
पितुः	पिताकी	कर्मविशुद्धाः	कर्म शुद्ध होनेसे
आदेशकराः	आज्ञा माननेवाले,	ब्राह्मणाः	
महाशालीनाः	अत्यन्त विनीत,	बभूवुः	ब्राह्मण हो गये ॥१३॥

भगवानृषभसंज्ञ आत्मतन्त्रः स्वयं नित्यनिवृत्तानर्थपरम्परः केवलानन्दानुभव ईश्वर एव विपरीतवत्कर्माण्यारभमाणः कालेनानुगतं धर्ममाचरणेनोपशिक्षयन्नतद्विदां सम उपशान्तो मैत्रः कारुणिको धर्मार्थयशः प्रजानन्दामृतावरोधेन गृहेषु लोकं नियमयत् ॥१४॥

भगवान् ऋषभसंज्ञः आत्मतन्त्रः स्वयं नित्य निवृत्त अनर्थ परम्परः केवल आनन्दानुभवः ईश्वर एवं विपरीतवत् कर्माणि आरभमाणः कालेव अनुगतं धर्म आचरणेन उपशिक्षयन् अतद्विदां सम उपशान्तः मैत्रः कारुणिकः धर्म अर्थ यशः प्रजानन्द अमृत अवरोधेन गृहेषु लोकं नियमयत् ॥१४॥

ऋषभसंज्ञः	ऋषभ नामवाले
भगवान्	(वे) भगवान्
आत्मतन्त्रः	परम स्वतन्त्र थे,
स्वयं	अपने स्वरूपसे
अनर्थ परम्परः	अनर्थोंकी परम्परा (अविद्या)से
नित्य निवृत्त	नित्य पृथक थे
केवल	अद्वितीय
आनन्दा-	
नुभवः	आनन्दानुभव स्वरूप थे।
ईश्वर एव	ईश्वर ही थे।
विपरीतवत्	(फिर भी) विपरीत (वद्ध-जीव)की भाँति
कर्माणि	कर्मोंको
आरभमाणः	आरम्भ करके
कालेन	समयानुसार
अनुगतं	अनुयायियोंको
आचरणेन	अपने आचरणसे
धर्मं	
उपशिक्षयन्	धर्मकी (प्रत्यक्ष) शिक्षा देते हुए
अतद्विदां	उस (धर्माचरण)को न जानने वालोंको
सम	समत्व
उपशान्तः	शान्त,
मैत्रः	(सबके) मित्र
कारुणिकः	कारुणिक रहकर
धर्म अर्थ	धर्म, अर्थ
यशः प्रजानन्द	यश, सन्तान सुख,
अमृत	मोक्षका
अवरोधेन	संग्रह करते हुए
लोकं	लोगोंको
गृहेषु	गृहस्थाश्रममें
नियमयत्	नियमित किया ॥१४॥

यद्यच्छीर्षण्याचरितं तत्तदनुवर्तते लोकः ॥१५॥

यत् यत् शीर्षाणि आचरितं तत् तत् अनुवर्तते लोकः ॥१५॥

शीर्षाणि	चोटीके लोग
यत् यत्	जो-जो
आचरितं	आचरण करते हैं,
लोकः	(दूसरे) लोग
तत् तत्	उसी उसीका
अनुवर्तते	अनुकरण करते हैं ॥१५॥

यद्यपि स्वविदितं सकलधर्मं ब्राह्मं गुह्यं ब्राह्मणैर्दर्शितमार्गेण सामादिभिरुपायैर्जनतामनुशशास ॥१६॥

यद्यपि स्वविदितं सकल धर्मं ब्राह्मं गुह्यं ब्राह्मणैः दर्शित मार्गेण सामादिभिः उपायैः जनतां अनुशशास ॥१६॥

यद्यपि	यद्यपि	दर्शित मार्गेण	दिखलाये (बतलाये) मार्गसे
सकल	सब	सामादिभिः	समझानेके
ब्राह्मं	वेदके	उपायैः	उपायोंसे
गुह्यं	रहस्य तथा	जनतां	जनताका
धर्मं	धर्मको	अनुशशास	शासन करते रहे ॥१६॥
स्वविदितं	स्वयं जानते थे (फिर भी)		
ब्राह्मणैः	ब्राह्मणोंके		

द्रव्य देशकालवयः श्रद्धर्त्विग्विविधोद्देशोपचितैः सर्वैरपि क्रतुभिर्यथोपदेशं शतकृत्व इयाज ॥१७॥

द्रव्य देशकालवयः श्रद्धा ऋत्विक् विविध उद्देशः उपचितैः सर्वैः अपि क्रतुभिः यथा उपदेशं शतकृत्व इयाज ॥१७॥

यथा उपदेशं	(शास्त्र तथा ब्राह्मणोंके) उपदेशके अनुसार,	ऋत्विक्	(यज्ञ करानेवाले) ऋत्विकों
विविध उद्देशः	भिन्न-भिन्न देवताओंके उद्देशसे	उपचितैः	(सब यथोचित) जुटाकर
द्रव्य	पदार्थ	शतकृत्व	सौ-सौ बार
देशकाल-	स्थान, समय,	सर्वैः क्रतुभिः	
वयः	अवस्था,	अपि	सभी यज्ञोंसे ही
श्रद्धा	श्रद्धा,	इयाज	यजन किया ॥१७॥

भगवतर्षभेण परिरक्ष्यमाण एतस्मिन् वर्षे न कश्चन पुरुषो वाञ्छत्यविद्यमानमिवात्मनोऽन्यस्मात्कथञ्चन किमपि कर्हिचिदवेक्षते भर्तर्यनुसवनं विजृम्भितस्नेहातिशयमन्तरेण ॥१८॥

भगवत ऋषभेण परिरक्ष्यमाण एतस्मिन् वर्षे न कश्चन पुरुषः वाञ्छति अविद्यमानं इव आत्मनः अन्य स्मात् कथञ्चन किमपि कर्हिचित् अवेक्षते भर्तरि अनुसवनं विजृम्भित स्नेह अतिशयं अन्तरेण ॥१८॥

भगवत ऋषभेण	भगवान् ऋषभदेव द्वारा	कथञ्चन	कभी भी
परिरक्ष्यमाण	सब ओरसे रक्षित	किमपि	कुछ भी
एतस्मिन् वर्षे	इस देशमें	अविद्यमानं इव	अपने पास नहीं है, इस भांति
अनुसवनं	निरन्तर	आत्मनः	अपनेसे (भिन्न)
विजृम्भित	बढ़ते हुए	अन्य स्मात्	दूसरेसे
स्नेह अतिशयं	अतिशय स्नेहको	न वाञ्छति	नहीं चाहता था,
अन्तरेण	छोड़कर	कर्हिचित्	किसी समय
कश्चन पुरुषः	कोई भी पुरुष	अवेक्षते	अपेक्षा भी (नहीं करता था) ॥१८॥

स कदाचिदटमानो भगवानृषभो ब्रह्मावर्तगतो ब्रह्मर्षिप्रवरसभायां प्रजानां निशामयन्तीनामात्मजानवहितात्मनः प्रश्रयप्रणयभरसुयन्त्रितानप्युपशिक्षयन्निति होवाच ॥१९॥

स कदाचित् अटमानः भगवान् ऋषभः ब्रह्मावर्तगतः ब्रह्मर्षि प्रवर सभायां प्रजानां निशामयन्तीनां आत्मजान् अवहित आत्मनः प्रश्रय प्रणय भर सुयन्त्रितान् अपि उपशिक्षयन् इति ह उवाच ॥१९॥

कदाचित्	किसी समय	अवहित	
अटमानः	घूमते हुए	आत्मनः	समाहित चित्त,
स भगवान्	वे भगवान्	प्रश्रय	नम्रता एवं
ऋषभः	ऋषभदेव	प्रणय भर	प्रेमातिशयसे
ब्रह्मावर्तं गतः	ब्रह्मावर्त पहुँचे।	सुयन्त्रितान्	अत्यन्त संयत
ब्रह्मर्षि सभायां	(वहां) ब्रह्मर्षियोंकी सभामें	आत्मजान् अपि	पुत्रोंको भी
		उपशिक्षयन्	शिक्षा देते हुए
प्रजानां	प्रजाके	इति ह उवाच	इस प्रकार निर्णय
निशामयन्तीनां	सुनते हुए		पूर्वक बोले ॥१९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
पञ्चमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

ऋषभ उवाच-

नायं देहो देहभाजां नृलोके
कष्टान् कामानर्हते विड्भुजां ये ।
तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं
शुद्ध्येद्यस्माद् ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम् ॥१॥

न अयं देहः देहभाजां नृलोके कष्टान् कामान् अर्हते विड्भुजां ये तपः दिव्यं पुत्रकाः येन सत्त्वं शुद्ध्येत् यस्मात् ब्रह्मसौख्यं तु अनन्तम् ॥१॥

पुत्रकाः	(मेरे) छोटे पुत्रो !	तपः दिव्यं	(यह) दिव्य तपके लिए है
नृलोके	मनुष्य-लोकमें	येन	जिससे
देहभाजां	शरीरधारियोंका	सत्त्वं शुद्ध्येत्	अन्तःकरण शुद्ध होता है
अयं देहः	यह (मनुष्य) शरीर	यस्मात्	जिससे
ये विड्भुजां	जो विष्ठा-भोजी (शूकरादिको भी)	अनन्तं	अनन्त
कष्टान्	दुःखमय	ब्रह्मसौख्यं तु	ब्रह्मानन्द मिलता है ॥१॥
कामान्	भोग मिलते हैं (उन्हें ही)		
न अर्हते	प्राप्त करनेके लिए नहीं है		

महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्ते-
स्तमोद्वारं योषितां सङ्गिसङ्गम् ।
महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता
विमन्यवः सुहृदः साधवो ये ॥२॥

महत् सेवां द्वारं आहुः विमुक्तेः तमः द्वारं योषितां सङ्गिसङ्गं महान्तः ते समचित्ताः प्रशान्ताः विमन्यवः सुहृदः साधवः ये ॥२॥

महत् सेवां	महापुरुषोंकी सेवा	ये	जो
विमुक्तेः	मोक्षका	समचित्ताः	(सब द्वन्द्वोंमें) सम-चित्त हैं
द्वारं आहुः	द्वार कही गयी है		
तमः द्वारं	नरकका द्वार	प्रशान्ताः	अत्यन्त शान्त हैं
योषितां सङ्गि-	स्त्रियासक्त लोगोंका	विमन्यवः	क्रोधरहित हैं
सङ्गं	साथ है	सुहृदः	सबके हितैषी (और)
महान्तः ते	महापुरुष वे हैं	साधवः	सदाचारी हैं ॥२॥

ये वा मयीशे कृतसौहृदार्था
जनेषु देहम्भरवार्तिकेषु ।
गृहेषु जायात्मजरातिमत्सु
न प्रीतियुक्ता यावदर्थाश्च लोके ॥३॥

ये वा मयि ईशे कृतः सौहृद अर्थाः जनेषु देहम्भर वार्तिकेषु गृहेषु जाया आत्मज रातिमत् सु न प्रीतियुक्ता यावत् अर्थाः च लोके ॥३॥

वा	अथवा (वे महापुरुष हैं)	गृहेषु	घरमें
ये मयि ईशे	जो मुझ ईश्वरमें	जाया आत्मज	स्त्री-पुत्रमें
सौहृद	सौहार्द्रको	रातिमत् सु	धनादिमें
अर्थाः कृतः	पुरुषार्थ बना चुके हैं	प्रीतियुक्ता न	प्रेम करनेवाले नहीं हैं
देहम्भर	शरीरके पोषणकी ही	लोके	लोकमें
वार्तिकेषु	चर्चा करनेवाले	यावत् अर्थाः च	प्रयोजन मात्रके लिए ही हैं ॥३॥
जनेषु	लोगोंसे		

नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म
यदिन्द्रियप्रीतय आपृणोति ।

न साधु मन्ये यत आत्मनोऽय-
मसन्नपि क्लेशद आस देहः ॥४॥

नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म यत् इन्द्रिय प्रीतय आपृणोति न साधु मन्ये यत आत्मनः अयं असत् अपि क्लेशद आस देहः ॥४॥

नूनं	निश्चय	न साधु मन्ये	मैं इसे अच्छा नहीं मानता
यत्	जो	यत	(क्योंकि) जिससे
इन्द्रिय प्रीतय	इन्द्रियोंकी प्रसन्नता-के लिए	आत्मनः अय	आत्माको यह
आपृणोति	✓उन्हें तृप्त करता है	असत् अपि	असत् होनेपर भी
प्रमत्तः	प्रमादवश	क्लेशद देहः	क्लेश देनेवाला शरीर
विकर्म	कुकर्म		
कुरुते	करता है।	आस	प्राप्त हुआ है ॥४॥

पराभवस्तावदबोधजातो
यावन्न जिज्ञासत आत्मतत्त्वम् ।
यावत्क्रियास्तावदिदं मनो वै
कर्मात्मकं येन शरीरबन्धः ॥५॥

पराभवः तावत् अवबोधजातः यावत् न जिज्ञासत आत्मतत्त्वं यावत् क्रियाः तावत् इदं मनः वै कर्मात्मकं येन शरीरबन्धः ॥५॥

अवबोधजातः	अज्ञानसे उत्पन्न	यावत् क्रियाः	जब तक (सकाम) कर्म हैं
पराभवः	(मायासे) पराजय	तावत् इदं	तब तक यह
तावत्	तब तक है	कर्मात्मकं	कर्म-संस्कार रूप
यावत्	जब तक	मनः वै	मन निश्चय है
आत्मतत्त्वं	आत्मा-तत्त्वको	येन	जिसके द्वारा
न जिज्ञासत	जाननेकी इच्छा नहीं करता	शरीरबन्धः	देह-बन्धन मिलता है ॥५॥

एवं मनः कर्मवशं प्रयुङ्क्ते
अविद्ययाऽऽत्मन्युपधीयमाने ।
प्रीतिर्न यावन्मयि वासुदेवे
न मुच्यते देहयोगेन तावत् ॥६॥

एवं मनः कर्मवशं प्रयुङ्क्ते अविद्यया आत्मनि उपधीयमाने प्रीतिः न यावत् मयि वासुदेवे न मुच्यते देहयोगेन तावत् ॥६॥

एवं	इस प्रकार	यावत्	जब तक
अविद्यया	अविद्यासे	मयि वासुदेवे	मुझ वासुदेवमें
आत्मनि	आत्म-तत्त्वके	प्रीतिः न	प्रीति नहीं होती
उपधीयमाने	ढक जानेपर	तावत्	तब तक
मनः	मन	देहयोगेन	शरीरोंके संयोग (पुनर्जन्म) से
कर्मवशं	कर्मके वशमें (फिर कर्ममें)	न मुच्यते	मुक्त नहीं होता ॥६॥
प्रयुङ्क्ते	लगा देता है		

यदा न पश्यत्ययथा गुणेहां
स्वार्थे प्रमत्तः सहसा विपश्चित् ।
गतस्मृतिर्विन्दति तत्र तापा-
नासाद्य मैथुन्यमगारमज्ञः ॥७॥

यदा न पश्यति अयथा गुण ईहां स्वार्थे प्रमत्तः सहसा विपश्चित् गतः स्मृतिः विन्दति तत्र तापान् आसाद्य मैथुन्यं अगारं अज्ञः ॥७॥

स्वार्थे	(अपने वास्तविक) स्वार्थके प्रति	गुण ईहां	इन्द्रियोंकी चेष्टाओंको
प्रमत्तः	प्रमादग्रस्त	अयथा	मिथ्या
सहसा	अचानक	न पश्यति	नहीं देखता
विपश्चित्	विवेकशील होकर	गतः स्मृतिः	(तब तक) स्मृति-भ्रष्ट
यदा	जब तक		

अज्ञः	वह अज्ञानी	तत्र तापान्	वहां सन्ताप
मैथुन्यं अगारं	स्त्री-पुरुषके निवास	विन्दति	पाता रहता है ॥७॥
आसाद्य	(गृहस्थाश्रम) को पाकर		

पुंसः स्त्रिया मिथुनीभावमेतं
तयोर्मिथो हृदयग्रन्थिमाहुः ।
अतो गृहक्षेत्रसुताप्तवित्तै-
र्जनस्य मोहोऽयमहं ममेति ॥८॥

पुंसः स्त्रिया मिथुनीभावं एतं तयोः मिथः हृदयग्रन्थिम् आहुः अतः गृहे क्षेत्र सुत आप्त वित्तैः जनस्य मोहः अयं अहं मम इति ॥८॥

पुंसः स्त्रिया	पुरुष और स्त्रीका	सुत आप्त	पुत्र, गुरुजन (पिता-माता)
मिथुनीभावं	दाम्पत्य		
एतं	इसीको	वित्तैः	(तथा) धनमें
तयोः मिथः	उन दोनोंकी परस्पर	अयं मम	यह मैं, यह मेरा
हृदयग्रन्थिम्	(स्थूल) हृदय-ग्रन्थि	इति	इस प्रकार
आहुः	कहा गया है	अयं जनस्य	यह लोगोंका
अतः	अतः	मोहः	मोह होता है ॥८॥
गृहक्षेत्र	घर, खेत (भूमि)		

यदा मनोहृदयग्रन्थिरस्य
कर्मानुबद्धो दृढ आश्लथेत ।
तदा जनः सम्परिवर्ततेऽस्माद्
मुक्तः परं यात्यतिहाय हेतुम् ॥९॥

यदा मनः हृदयग्रन्थिः अस्य कर्म अनुबद्धः दृढ आश्लथेत तदा जनः सम्परिवर्तते अस्मात् मुक्तः परं याति अतिहाय हेतुम् ॥९॥

यदा	जब	सम्परिवर्तते	भली प्रकार परिवर्तित हो जाता है
कर्म अनुबद्धः	कर्म वासनाओंसे		
दृढ अस्य	दृढ इसकी		
हृदयग्रन्थि	हृदयकी ग्रन्थि	मुक्तः	(उससे) छूटकर
आश्लथेत	शिथिल पड़ जाती है	हेतुं	(संसारके) कारण (अहंकार) को
तदा जनः	तब मनुष्य	अतिहाय	त्यागकर
अस्मात्	इस दाम्पत्य भावसे	परं याति	परमपदको जाता है ॥८॥

हंसे गुरौ मयि भक्त्यानुवृत्या
वितृष्णया द्वन्द्वतितिक्षया च ।
सर्वत्र जन्तोर्व्यसनावगत्या
जिज्ञासया तपसेहानिवृत्त्या ॥१०॥

हंसे गुरौ मयि भक्त्या अनुवृत्त्या वितृष्णया द्वन्द्वतितीक्षया च सर्वत्र जन्तोः व्यसन अवगत्या जिज्ञासया तपसः ईहा निवृत्त्या ॥१०॥

हंसे	विवेकी	सर्वत्र	सभी कहीं
गुरौ	गुरुमें (तथा)	जन्तोः व्यसन	जीवको दुःख ही मिलता है
मयि	मुझ (परमात्मा) में		
भक्त्या	भक्तिसे	अवगत्या	इस जानकारीसे
अनुवृत्त्या	(इनके) अनुकूल वृत्तिसे	जिज्ञासया	(आत्मतत्त्वकी) जिज्ञासासे
वितृष्णया च	तृष्णाके त्यागसे तथा	तपसः ईहा निवृत्त्या	तपस्यासे इच्छाओंकी निवृत्तिसे ॥१०॥
द्वन्द्वतितिक्षया	(सुख-दुःखादि) द्वन्द्वोंको सह लेनेसे		

मत्कर्मभिर्मत्कथया च नित्यं
मद्देवसङ्गाद् गुणकीर्तनान्मे ।

निर्वैरसाम्योपशमेन पुत्रा
जिहासया देहगेहात्मबुद्धेः ॥११॥

मत् कर्मभिः मत् कथया च नित्यं मत् देवसङ्गात् गुणकीर्तनात् मे निर्वैर साम्य उपशमेन पुत्राः जिहासया देहगेह आत्मबुद्धेः ॥११॥

पुत्राः	पुत्रो !
मत् कर्मभिः	मेरे लिए कर्म करनेसे
च नित्यं	और नित्य
मत् कथया	मेरी कथा (सुनने) से
मत् देवसङ्गात्	मेरे भक्तोंके सङ्गसे
मे गुण-कीर्तनात्	मेरे गुणोंका कीर्तन करनेसे
निर्वैर	(किसीसे) शत्रुता न करनेसे
साम्य	समत्वसे
उपशमेन	वैराग्यसे
देहगेहे	शरीर तथा घरमें
आत्मबुद्धेः	आत्मबुद्धिके
जिहासया	त्यागसे ॥११॥

अध्यात्मयोगेन विविक्तसेवया
प्राणेन्द्रियात्माभिजयेन सध्र्यक् ।
सच्छ्रद्धया ब्रह्मचर्येण शश्वद्
असम्प्रमादेन यमेन वाचाम् ॥१२॥

अध्यात्मयोगेन विविक्तसेवया प्राण इन्द्रिय आत्म अभिजयेन सध्र्यक् सत् श्रद्धया ब्रह्मचर्येण शश्वत् असम्प्रमादेन यमेन वाचाम् ॥१२॥

अध्यात्मयोगेन	अन्तर्मुखतासे
विविक्तसेवया	एकान्त-सेवनसे
सध्र्यक्	भली प्रकार
प्राण इन्द्रिय	प्राण-इन्द्रियों तथा
आत्म अभिजयेन	मनको जीतनेसे
सत् श्रद्धया	सात्विक श्रद्धासे
शश्वत्	निरन्तर
ब्रह्मचर्येण	ब्रह्मचर्य पालनसे
असम्प्रमादेन	प्रमादहीनतासे
वाचां यमेन	वाणीका संयम करनेसे ॥१२॥

सर्वत्र मद्भावविचक्षणेन
ज्ञानेन विज्ञानविराजितेन ।
योगेन धृत्युद्यमसत्त्वयुक्तो
लिङ्गं व्यपोहेत्कुशलोऽहमाख्यम् ॥१३॥

सर्वत्र मद्भाव विचक्षणेन ज्ञानेन विज्ञान विराजितेन योगेन धृति उद्यम सत्त्व युक्तः लिङ्गं व्यपोहेत् कुशलः अहं आख्यम् ॥१३॥

सर्वत्र	सब कहीं	धृति उद्यम	धैर्य, उद्योग
मत्भाव	मेरी ही सत्ता	सत्त्व युक्तः	मनोबल युक्त होकर
विचक्षणेन	देखते रहनेसे	कुशलः	चतुर व्यक्ति
विज्ञान		अहं आख्यं	अहं कहे जानेवाले
विराजितेन	अनुभव ज्ञान सहित	लिङ्गं	लिङ्ग शरीरको
ज्ञानेन	तत्त्व-ज्ञानसे	व्यपोहेत्	लीन कर दे ॥१३॥
योगेन	योग-साधनसे		

कर्माशयं हृदयग्रन्थिबन्ध-
मविद्ययाऽऽसादितमप्रमत्तः ।
अनेन योगेन यथोपदेशं
सम्यग्व्यपोह्योपरमेत योगात् ॥१४॥

कर्माशयं हृदयग्रन्थि बन्धं अविद्यया आसादितं अप्रमत्तः अनेन योगेन यथा उपदेशं सम्यक् व्यपोह्य उपरमेत योगात् ॥१४॥

अप्रमत्तः	सावधान रहकर	अनेन	इस (बतलाये गये)
अविद्यया	अविद्याके द्वारा	योगेन	योग (साधनों) से
आसादितं	प्राप्त हुई	सम्यक्	भली प्रकार
कर्माशयं	कर्माशय (रूप, अन्तःकरण) की	व्यपोह्य	काटकर
		योगात्	साधनोंसे
हृदयग्रन्थि	हृदयकी गांठके	उपरमेत	उपराम हो
बन्धं	बन्धनको		जाय ॥१४॥
यथा उपदेशं	शास्त्रोपदेशके अनुसार		

पुत्रांश्च शिष्यांश्च नृपो गुरुर्वा
मल्लोककामो मदनुग्रहार्थः ।
इत्थं विमन्युरनुशिष्यादतज्ज्ञान्
न योजयेत्कर्मसु कर्ममूढान् ।
कं योजयन्मनुजोऽर्थं लभेत
निपातयन्नष्टदृशं हि गर्ते ॥१५॥

पुत्रान् च शिष्यान् च नृपः गुरुः वा मत् लोककामः मत् अनुग्रह अर्थः इत्थं विमन्युः अनुशिष्यात् अतत् ज्ञान् न योजयेत् कर्मसु कर्ममूढान् कं योजयन् मनुजः अर्थं लभेत निपातयन् नष्टदृशं हि गर्ते ॥१५॥

मत् लोककामः	(जो) मेरा लोक पाना चाहता हो	अनुशिष्यात्	बराबर सिखलावे,
		अतत् ज्ञान्	तत्त्व न जाननेवाले
मत् अनुग्रह अर्थः	(उसे) मेरा अनुग्रह पानेके लिए	कर्ममूढान्	कर्ममें अज्ञानपूर्वक लगे लोगोंको
नृपः	राजा	कर्मसु	कर्ममें ही
पुत्रान् च	पुत्रों (प्रजाको) तथा	न योजयेत्	न लगावे,
		हि नष्टदृशं	क्योंकि अन्धोंको
गुरुः	गुरु	गर्ते निपातयन्	गड्ढेमें गिरानेसे
शिष्यान् च	शिष्योंको भी	मनुजः	मनुष्य
विमन्युः	बिना क्रोधके	कं अर्थं	कौन-सा प्रयोजन
इत्थं	इस प्रकार	लभेत	पा लेगा ॥१५॥

लोकः स्वयं श्रेयसि नष्टदृष्टि-
र्योऽर्थान् समीहेत निकामकामः ।
अन्योन्यवैरः सुखलेशहेतो-
रनन्तदुःखं च न वेद मूढः ॥१६॥

लोकः स्वयं श्रेयसि नष्टदृष्टिः यः अर्थान् समीहेत निकाम कामः अन्योन्य वैरः सुखलेश हेतः अनन्त दुःखं च न वेद मूढः ॥१६॥

लोकः	लोग	समीहेत	चाहते हैं,
स्वयं	अपने	सुखलेश	सुखके क्षुद्रांश
श्रेयसि	कल्याणके सम्बन्धमें	हेतः	के लिए
नष्टदृष्टिः	अन्धे हैं,	अन्योन्य वैरं	एक दूसरेसे शत्रुता
यः निकाम	जो अत्यन्त		करते हैं
	उत्सुकतासे	च मूढः	और वे मूर्ख
कामः	कामनापूर्वक	अनन्त दुःखं	अनन्त दुःखोंको
अर्थान्	भोगोंको ही	न वेद	नहीं जानते हैं ॥१६॥

कस्तं स्वयं तदभिज्ञो विपश्चिद्
अविद्यायामन्तरे वर्तमानम् ।
दृष्ट्वा पुनस्तं सघृणः कुबुद्धिं
प्रयोजयेदुत्पथगं यथान्धम् ॥१७॥

कः तं स्वयं तत् अभिज्ञः विपश्चित् अविद्यायां अन्तरे वर्तमानं दृष्ट्वा पुनः तं सघृणः कुबुद्धिं प्रयोजयेत् उत्पथगं यथा अन्धम् ॥१७॥

स्वयं	स्वयं	यथा	जैसे
तत्	उस (तथ्य) को	उत्पथगं	कुमार्गसे जाते
अभिज्ञः	जानने वाला	अन्धं	अन्धेको
विपश्चित्	विवेकी	सघृणः	दयाल होते हुए भी
कः तं	कौन उन	पुनः तं	फिर उन्हें
अविद्यायां	अविद्याके	कुबुद्धिं	कुबुद्धिमें
अन्तरे वर्तमानं	भीतर ही रहनेवाले	प्रयोजयेत्	लगावेगा ॥१७॥
दृष्ट्वा	(लोगोंको) देखकर		

गुरुर्न स स्यात्स्वजनो न स स्यात्
पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात् ।

दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्यान्न
मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम् ॥१८॥

गुरुः न स स्यात् स्वजनः न स स्यात् पिता न स स्यात् जननी न सा स्यात् दैवं न तत् स्यात् न पतिः च स स्यात् न मोचयेत् यः समुपेतं मृत्युम् ॥१८॥

स गुरुः	वह गुरु	तत् दैवं	वह इष्ट देव
न स्यात्	नहीं है,	न स्यात् च	नहीं है, और
स स्वजनः	वह स्वजन	स पतिः	वह पति
न स्यात्	नहीं है,	न स्यात्	नहीं है,
स पिता	वह पिता	यः समुपेतं	जो पास आयी
न स्यात्	नहीं है,	मृत्युं	मृत्युसे
सा जननी	वह माता	न मोचयेत्	छुड़ा न ले ॥१८॥
न स्यात्	नहीं है,		

इदं शरीरं मम दुर्विभाव्यं
सत्त्वं हि मे हृदयं यत्र धर्मः ।
पृष्ठे कृतो मे यदधर्म आराद्
अतो हि मामृषभं प्राहुरार्याः ॥१९॥

इदं शरीरं मम दुर्विभाव्यं सत्त्वं हि मे हृदयं यत्र धर्मः पृष्ठे कृतः मे यत् अधर्म आरात् अतः हि मां ऋषभं प्राहुः आर्याः ॥१९॥

मम इदं शरीरं	मेरा यह (अवतार) देह	आरात्	समीपसे
दुर्विभाव्यं	बुद्धिगम्य नहीं है,	मे पृष्ठे कृतः	मैंने पीछे कर दिया (त्याग दिया) है,
हि सत्त्वं	क्योंकि शुद्ध सत्त्व	अतः हि	अतः इसलिए
मे हृदयं	मेरा हृदय है,	आर्याः	श्रेष्ठजन
यत्र धर्मः	जहाँ धर्म (की स्थिति) है,	मां ऋषभं प्राहुः	मुझे ऋषभ कहते हैं ॥१९॥
यत् अधर्म	क्योंकि अधर्मको		

तस्माद्भवन्तो हृदयेन जाताः
सर्वे महीयांसममुं सनाभम् ।
अक्लिष्टबुद्ध्या भरतं भजध्वं
शुश्रूषणं तद्भरणं प्रजानाम् ॥२०॥

तस्मात् भवन्तः हृदयेन जाताः सर्वे महीयांसं अमुं सनाभं अक्लिष्ट बुद्ध्या भरतं भजध्वं शुश्रूषणं तत् भरणं प्रजानाम् ॥२०॥

भवन्तः	तुम लोग	भरतं भजध्वं	भरतकी सेवा करो,
हृदयेन जाताः	(शुद्ध सत्त्व मेरे) हृदयसे उत्पन्न हो	तत् मरणं	उनकी सेवा
		प्रजानां	प्रजाकी
तस्मात् सर्वे	इसलिए सब	शुश्रूषणं	सेवा है ॥२०॥
अक्लिष्ट बुद्ध्या	मत्सरहीन बुद्धिसे		
अमुं महीयांसं			
सनाभं	इन सगे बड़े भाई		

भूतेषु वीरुद्भ्य उदुत्तमा ये
सरीसृपास्तेषु सबोधनिष्ठाः ।
ततो मनुष्याः प्रमथास्ततोऽपि
गन्धर्वसिद्धा विबुधानुगा ये ॥२१॥

भूतेषु वीरुद्भ्यः उत् उत्तमा ये सरीसृपाः तेषु सबोध निष्ठाः ततः मनुष्याः प्रमथाः ततः अपि गन्धर्व सिद्धाः विबुध अनुगाः ये ॥२१॥

भूतेषु	प्राणियोंमें	सबोध निष्ठाः	ज्ञानवाले (पशु) श्रेष्ठ हैं,
वीरुद्भ्यः	वृक्षोंसे		
उत् उत्तमा ये	कुछ श्रेष्ठ जो हैं (वे)	ततः मनुष्याः	उनसे मनुष्य
		ततः	उनसे
सरीसृपाः	सरीसृप (सरकने वाले) हैं,	प्रमथाः	प्रमथ (भूतोंकी एक जाति)
तेषु	उनसे	ततः अपि	उनसे भी

य विबुध अनुगाः	देवताओंके अनुचर	गन्धर्व सिद्धाः	गन्धर्व सिद्धादि हैं ॥२१॥

देवासुरेभ्यो मघवत्प्रधाना
दक्षादयो ब्रह्मसुतास्तु तेषाम् ।
भवः परः सोऽथ विरिञ्चवीर्यः
स मत्परोऽहं द्विजदेवदेवः ॥२२॥

देव असुरेभ्यः मघवत् प्रधानाः दक्षादयः ब्रह्मसुताः तु तेषां भवः परः सः अथ विरिञ्चि वीर्यः स मत् परः अहं द्विजदेव देवः ॥२२॥

देव असुरेभ्यः	देवता तथा असुरोंमें		उत्पन्न हैं
मघवत् प्रधानाः	इन्द्र श्रेष्ठ हैं,	स मत् परः	वे (ब्रह्मा) मेरे
दक्षादयः	दक्षादि		परायण हैं,
ब्रह्मसुताः तु	ब्रह्माजीके पुत्र तो	अहं	मैं
	उनसे,	द्विजदेव देवः	ब्राह्मणोंको देव
तेषां	उनमें		(पूज्य) मानता
भवः परः	रुद्र श्रेष्ठ हैं।		हूँ ॥२२॥
अथ सः विरिञ्चि वीर्यः	फिर वे ब्रह्माजीसे		

न ब्राह्मणैस्तुलये भूतमन्यत्
पश्यामि विप्राः किमतः परं तु ।
यस्मिन्नृभिः प्रहुतं श्रद्धयाह-
मश्नामि कामं न तथाग्निहोत्रे ॥२३॥

न ब्राह्मणैः तुलये भूतं अन्यत् पश्यामि विप्राः किं अतः परं तु यस्मिन् नृभिः प्रहुतं श्रद्धया अहं अश्नामि कामं न तथा अग्निहोत्रे ॥२३॥

विप्राः	ब्राह्मणो !	तुलये न	तुलना नहीं करता,
ब्राह्मणैः	(मैं) ब्राह्मणोंसे	अतः परं तु	उनसे श्रेष्ठ तो
अन्यत् भूतं	दूसरे प्राणियोंकी	किं पश्यामि	क्या देखूंगा ।

नृभिः	मनुष्यों द्वारा	अश्नामि	खाता हूं,
यस्मिन्	जिन (के मुख) में	तथा	वैसा
श्रद्धया	श्रद्धासे	अग्निहोत्रे	अग्निमें हवन
प्रहुतं	आहुति (भोजन)		करनेसे
	देनेपर	न	नहीं (खाता)॥२३॥
अहं कामं	मैं भली प्रकार		

धृता तनूरुशती मे पुराणी
येनेह सत्त्वं परमं पवित्रम् ।
शमो दमः सत्यमनुग्रहश्च
तपस्तितिक्षानुभवश्च यत्र ॥२४॥

धृताः तनूः उशतीः मे पुराणी येन इह सत्त्वं परमं पवित्रं शमः दमः सत्यं अनुग्रहः च तपः तितिक्षा अनुभवः च यत्र ॥२४॥

येन इह	जिन्होंने इस लोकमें	शमः दमः	शम (मनोनिग्रह)
उशतीः	सुन्दर		दम (इन्द्रिय-दमन)
पुराणी	सनातन	सत्यं अनुग्रहः	सत्य, कृपाशीलता,
मे तनूः	मेरे (वेदरूपी)	च तपः	
	शरीरको	तितिक्षा	तथा तपस्या,
धृताः	धारण कर रखा है,		तितीक्षा
यत्र	जिनमें	च अनुभवः	एवं (परमार्थ-
परमं पवित्रं	परम पवित्र		तत्त्वका) अनुभव*
सत्त्वं	सत्त्व,		है ॥२४॥

मत्तोऽप्यनन्तात्परतः परस्मात्
स्वर्गापवर्गाधिपतेर्न किञ्चित् ।
येषां किमु स्यादितरेण तेषा-
मकिञ्चनानां मयि भक्तिभाजाम् ॥२५॥

---

* ब्राह्मणके ये आठ गुण हैं—१. सात्विकता, २. शम, ३. दम, ४. सत्य, ५. कृपा, ६. तप, ७. तितीक्षा तथा ८. ज्ञान ।

मत्तः अपि अनन्तात् परतः परस्मात् स्वर्ग अपवर्ग अधिपतेः न किञ्चित् येषां किमु स्यात् इतरेण तेषां अकिञ्चनानां मयि भक्ति भाजाम् ॥२५॥

अनन्तात्	अनन्त	मयि भक्ति	
परतः परस्मात्	(ब्रह्मादि) श्रेष्ठोंसे भी परम श्रेष्ठ	भाजां	मुझमें भक्ति करनेवाले
स्वर्ग अपवर्ग		येषां	उन
अधिपतेः	स्वर्ग और मोक्षके स्वामी	अकिञ्चनानां	अकिञ्चन भक्तोंका
मत्तः अपि	मुझसे भी	इतरेण	दूसरोंसे
येषां	जिनकी	किमु स्यात्	क्या (प्रयोजन) हो सकता है ॥२५॥
किञ्चित् न	कोई मांग नहीं है,		

सर्वाणि मद्भिष्ण्यतया भवद्भि-
श्चराणि भूतानि सुता ध्रुवाणि ।
सम्भावितव्यानि पदे पदे वो
विविक्तदृग्भिस्तदु हार्हणं मे ॥२६॥

सर्वाणि मत् धिष्ण्यतया भवत् भिः चराणि भूतानि सुता ध्रुवाणि सम्भावित व्यानि पदे पदे वः विविक्त दृग्भिः तत् उ ह अर्हणं मे ॥२६॥

भवत् भिः	तुम लोगोंके द्वारा	विविक्त दृग्भिः	एकान्त दृष्टि (भाव) से
सर्वाणि	सब	पदे पदे	
चराणि	चर	सम्भावित व्यानि	पद-पदपर सम्मानित करो
ध्रुवाणि	अचर	तत् उ ह	वह निश्चित रूपसे ही
भूतानि	प्राणियोंको	मे अर्हणं	मेरी पूजा है॥२६॥
सुता वः	पुत्रो ! तुम लोग		
मत् धिष्ण्यतया	मेरा स्वरूप समझकर		

मनोवचोदृक्करणेहितस्य
साक्षात्कृतं मे परिबर्हणं हि ।
विना पुमान् येन महाविमोहात्
कृतान्तपाशान्न विमोक्तुमीशेत् ॥२७॥

मनः वचः दृक् करण ईहितस्य साक्षात् कृतं मे परिबर्हणं हि विना पुमान् येन महाविमोहात् कृतान्त पाशात् न विमोक्तुं ईशेत् ॥२७॥

हि	क्योंकि	कृतं	देना है,
मनः वचः	मन, वाणी	येन विना	जिसके बिना
दृक् करण	दृष्टि तथा इन्द्रियोंकी	पुमान्	पुरुष
		महाविमोहात्	महान् मोहमय
ईहितस्य	चेष्टाओंका	कृतान्त पाशात्	कालके पाशसे
साक्षात्	साक्षात् (फल)	विमोक्तुं	छूटनेमें
मे परिबर्हणं	मुझे(सब प्राणियोंको सम्मान देनेके द्वारा) उपहार	ईशेत् न	समर्थ नहीं होता ॥२७॥

श्रीशुक उवाच-

एवमनुशास्यात्मजान् स्वयमनुशिष्टानपि लोकानुशासनार्थं महानुभावः परमसुहृद्भगवानृषभापदेश उपशमशीलानामुपरतकर्मणां महामुनीनां भक्तिज्ञानवैराग्यलक्षणं पारमहंस्यधर्ममुपशिक्षमाणः स्वतनयशतज्येष्ठं परमभागवतं भगवज्जनपरायणं भरतं धरणिपालनायाभिषिच्य स्वयं भवन एवोर्वरितशरीरमात्रपरिग्रह उन्मत्त इव गगनपरिधानः प्रकीर्णकेश आत्मन्यारोपिताहवनीयो ब्रह्मावर्तात्प्रववाज ॥२८॥

एवं अनुशास्य आत्मजान् स्वयं अनुशिष्टान् अपि लोकान् अनुशासनार्थं महा अनुभावः परम सुहृद् भगवान् ऋषभ अपदेशः उपशमशीलानां उपरत कर्मणां महामुनीनां भक्ति ज्ञान वैराग्य लक्षणं पारमहंस्य धर्मं उपशिक्षमाणः स्वतनय शत ज्येष्ठं परमभागवतं भगवत् जन परायणं भरतं धरणि पालनाय अभिषिच्य स्वयं भवन एव उर्वरित शरीरमात्र परिग्रहः उन्मत्त इव गगन परिधानः प्रकीर्ण केश आत्मनि आरोपित आहवनीयः ब्रह्मावर्तात् प्रवव्राज ॥२८॥

एवं	इस प्रकार
स्वयं	
अनुशिष्टान्	
अपि	स्वयं सुशिक्षित होनेपर भी
लोकान् अनु-	
शासनार्थं	लोगोंको शिक्षा देनेके लिए
आत्मजान्	(अपने) पुत्रोंको
अनुशास्य	शिक्षा देकर
महा अनुभावः	महान् प्रभावशाली
परम सुहृद्	(सबके) परम सुहृद्
ऋषभ अपदेशः	ऋषभ नामवाले
भगवान्	भगवानने
उपशम-	
शीलानां	वैराग्य परायण
उपरत कर्मणां	कर्म-त्यागी
महामुनीनां	महामुनियोंके
भक्ति ज्ञान	
वैराग्य	भक्ति, ज्ञान, वैराग्य
लक्षणं	लक्षणवाले
पारमहंस्यं धर्मं	परमहंसोंके धर्मकी
उपशिक्षमाणः	शिक्षा देनेके लिए
स्वतनय शत	
ज्येष्ठं	अपने सौ पुत्रोंमें बड़े
परमभागवतं	परम भगवद् भक्त,
भगवत् जन	
परायणं	भगवद् भक्तोंके परायण
भरतं	भरतका
धरणि पालनाय	पृथ्वी, पालनके लिए
अभिषिच्य	अभिषेक करके
स्वयं	स्वयं
भवन एव	घरपर ही
उर्वरित	सब त्याग दिया
शरीरमात्र	
परिग्रहः	केवल शरीर ही साथ रखकर
उन्मत्त इव	पागलके समान
गगन परिधानः	दिगम्बर
प्रकीर्ण केश	बिखरे केश
आहवनीयः	गार्हस्पत्य अग्निका
आत्मनि एव	अपनेमें ही
आरोपित	आरोप (धारणा) करके
ब्रह्मावर्तात्	ब्रह्मावर्तसे
प्रवव्राज	निकल गये ॥२८॥

जडान्धमूकबधिरपिशाचोन्मादकवदवधूतवेषोऽभिभाष्यमाणोऽपि जनानां गृहीतमौनव्रतस्तूष्णीं बभूव ॥२९॥

जड अन्ध मूक बधिर पिशाच उन्मादकवत् अवधूतवेषः अभिभाष्यमाणः अपि जनानां गृहीतः मौनव्रतः तूष्णीं बभूव ॥२९॥

जड	मूर्ख,	जनानां	लोगोंके
अन्ध मूक	अन्धे, गूँगे,	अभिभाष्य-	
बधिर	बहिरे,	माणः अपि	बात करनेपर भी
पिशाच		मौनव्रतः गृहीतः	मौनव्रत धारण
उन्मादकवत्	भूत लगे पागलकी		करके
	भाँति	तूष्णीं बभूव	चुप हो गये ॥२९॥
अवधूतवेषः	मलिन वेशमें		

तत्र तत्र पुरग्रामाकरखेटवाटखर्वट शिबिरव्रजघोषसार्थगिरिवनाश्रमादिष्वनुपथमवनिचरापसदैः परिभूयमानो मक्षिकाभिरिव वनगजस्तर्जनताडनावमेहनष्ठीवनग्रावशकृद्रजःप्रक्षेपपूतिवातदुरुक्तैस्तदविगणयन्नेवासत्संस्थान एतस्मिन् देहोपलक्षणे सदपदेश उभयानुभवस्वरूपेण स्वमहिमावस्थानेनासमारोपिताहंममाभिमानत्वादविखण्डितमनाः पृथिवीमेकचरः परिबभ्राम ॥३०॥

तत्र तत्र पुर ग्राम आकर खेट वाट खर्वट शिबिर व्रज घोष सार्थ गिरि वन आश्रम आदिषु अनुपथं अवनिचर अपसदैः परिभूयमानः मक्षिकाभिः इव वनगजः तर्जन ताडन अवमेहन ष्ठीवन ग्राव शकृत् रजः प्रक्षेप पूतिवात दुरुक्तैः तत् अविगणयन् एव असत् संस्थान एतस्मिन् देह उपलक्षणे सत् अपदेश उभय अनुभव स्वरूपेण स्वमहिमा अवस्थानेन असमारोपित अहं मम अभिमान त्वात् अविखण्डितमनाः पृथिवीं एकचरः परिबभ्राम ॥३०॥

तत्र तत्र	जहाँ-तहाँ
पुर	नगर,
ग्राम	गाँव,
आकर	खान,
खेट	कृषक-वस्ती,
वाट	बगीचेके मकान,
शिबिर	सैनिक-पड़ाव,
व्रज	चरवाहोंके चलते-फिरते गाँव,
घोष	अहीरोंके गांव,
सार्थ	यात्रियोंके पड़ाव,
गिरि	पर्वत,
वन	वन,
आश्रम आदिषु	आश्रमोंमें
वनगजः	जंगली-हाथी
मक्षिकाभिः	मक्खियों द्वारा जैसे
इव	(तंग किया जाय) इस प्रकार
तर्जन ताडन	डाँटने, पीटने,
अवमेहन	(ऊपर) मूत्र करने,
ष्ठीवन	थूक देने,
ग्राव	ढेला-
शकृत्	विष्ठा या
रजः प्रक्षेप	धूलि फेंकने,
पूतिवात	अपानवायु त्यागने
दुरुक्तैः	और दुवचनोंकी
अवनिचर	
अपसदैः	पृथ्वीपर चलने-वालोंके कलंक रुप दुष्टोंसे
परिभूयमानः	तंग किये जानेको
अविगणयन्	
एव	अवहेलना करते हुए ही
असत् संस्थान	असत् रुप
सत् अपदेशे	सत् समझे जानेवाले
एतस्मिन्	इस
देह उपलक्षणे	शरीर रुपसे प्रतीतिमें
उभय	(सत् और असत्) दोनोंके
अनुभव	
स्वरूपेण	अनुभव स्वरुप होनेसे
स्वमहिमा	अपनी महिमामें
अवस्थानेन	स्थित होनेसे
अहं मम	
अभिमान	अहं और मम यह अभिमान
असमारोपित	
त्वात्	(अपनेमें) आरोपित न होनेके कारण
अविखण्डित-मनाः	अखण्ड (शान्त) चित्तवृत्तिसे
एकचरः	अकेले
पृथिवीं	पृथ्वीपर
परिबभ्राम	चारों ओर घूमते रहे ॥३०॥

अतिसुकुमारकरचरणोरःस्थलविपुलबाह्वंसगलवदनाद्यवयव-विन्यासः प्रकृतिसुन्दरस्वभावहाससुमुखो नवनलिनदलायमानशिशिरतारारुणायतनयनरुचिरः सदृशसुभगकपोलकर्णकण्ठनासो विगूढस्मितवदनमहोत्सवेन पुरवनितानां मनसि कुसुमशरासनमुपदधानः परागवलम्बमानकुटिलजटिलकपिशकेशभूरिभारोऽवधूतमलिननिजशरीरेण ग्रहगृहीत इवादृश्यत ॥३१॥

अतिसुकुमार करचरण उरःस्थल विपुल बाहु अंस गल वदन आदि अवयव विन्यासः प्रकृति सुन्दर स्वभाव हाससुमुखः नव नलिनदलायमान शिशिर तारारुण आयत नयन रुचिरः सदृश सुभग कपोल कर्ण कण्ठ नासः विगूढ स्मित वदन महोत्सेवन पुरवनितानां मनसि कुसुम शरासनं उपदधानः पराक् अवलम्बमान कुटिल जटिल कपिश केश भूरिभारः अवधूत मलिन निज शरीरेण ग्रहगृहीत इव अदृश्यत ॥३१॥

करचरण	हाथ और चरण	नव नलिन-दलायमान	नवीन कमलदलके समान
अतिसुकुमार	अत्यन्त सुकुमार थे		
उरःस्थल	वक्षस्थल	शिशिर	
बाहु अंस	भुजाएँ, कन्धे	तारारुण	शीतल कमलारुण
विपुल	विस्तीर्ण(विशाल) थे	आयत नयन	
गल वदन	कंठ, मुख	रुचिरः	बड़े-बड़े सुन्दर नेत्र थे
आदि अवयव			
विन्यासः	आदि अंगोंकी बनावट	सदृश सुभग	समान और सुन्दर
प्रकृति सुन्दर	स्वाभाविक सुन्दर थी	कपोल कर्ण	कपोल, कान
		कण्ठ नासः	कण्ठ और तथा नासिका थी
हाससुमुखः स्वभाव	सहज मुस्कराहटयुक्त सुन्दर मुख था	विमूढ स्मित	अस्फुट मुसुकानयुक्त

वदन महोत्सेवन	मुखकी शोभासे
पुरवनितानां मनसि	नगरकी नारियोंके मनमें
कुसुम शरासनं उपदधानः	कामका संचार करते
पराक् अवलम्बमान	चारों ओर बिखरे
कुटिल जटिल कपिश	घुँघराले, उलझे भूरे
केश भूरिभारः	बहुत केशोंके भारसे
अवधूत मलिन	अवधूतोंके समान मलिन
निज शरीरेण	अपने शरीरसे (वे)
ग्रहगृहीत इव	ग्रहग्रस्तके समान
अदृश्यत	दिखलाई पड़ते थे ॥३१॥

यर्हि वाव स भगवान् लोकमिमं योगस्याद्धा प्रतीपमिवाचक्षाणस्तत्प्रतिक्रियाकर्म बीभत्सितमिति व्रतमाजगरमास्थितः शयान एवाश्नाति पिबति खादत्यवमेहति हदति स्म चेष्टमान उच्चरित आदिग्धोद्देशः ॥३२॥

यर्हि वाव स भगवान् लोकं इमं योगस्य अद्धा प्रतीपं इव आचक्षाणः तत् प्रतिक्रिया कर्म बीभत्सितं इति व्रतं आजगरं आस्थितः शयान एव अश्नाति पिबति खादति अवमेहति हदति स्म चेष्टमान उच्चरित आदिग्धः उद्देशः ॥३२॥

यर्हि वाव	जब निश्चित रूपसे
स भगवान्	उन भगवान्ने
इमं लोकं	इस लोक (जनता) को
योगस्य	योगकी
अद्धा	सम्पूर्णतामें
प्रतीपं इव	बाधककी भाँति
आचक्षाणः	पूर्णरूपसे देखा (तब)
तत् प्रतिक्रिया	उसकी प्रतिक्रिया रूप
बीभत्सितं इति	'वीभत्स है' इस प्रकारका
कर्म	कर्म
आजगरं	अजगरके समान रहनेका
व्रतं आस्थितः	व्रत ले लिया ।
शयान एव	(उसमें) सोते हुए ही
अश्नाति पिबति	खाते थे, पीते थे
खादति	चबाते थे
अवमेहति	मूत्र-त्याग तथा

हदति स्म	मल-त्याग करते थे	आदिग्धः	सन जाते थे
चेष्टमानः	हलचल करके (लोट-पोट होकर)	उद्देशः	(यह सब) उद्देश-पूर्वक करते थे ॥३२॥
उच्चरित	त्यागे मल-मूत्रसे		

तस्य ह यः पुरीषसुरभिसौगन्ध्यवायुस्तं देशं दशयोजनं समन्तात् सुरभिं चकार ॥३३॥

तस्य ह यः पुरीष सुरभि सौगन्ध्य वायुः तं देशं दश योजनं समन्तात् सुरभिं चकार ॥३३॥

ह तस्य	निश्चय उनकी	तं देशं	उस प्रदेशको
यः पुरीष		समन्तात्	चारों ओर
सुरभि	जो विष्ठाकी सुगन्धिकी	दश योजनं	दस योजन तक
सौगन्ध्य वायुः	सुगन्धित वायु थी (उसने)	सुरभिं चकार	सुगन्धित कर दिया ॥३३॥

एवं गोमृगकाकचर्यया व्रजंस्तिष्ठन्नासीनः शयानः काक-मृगगोचरितः पिबति खादत्यवमेहति स्म ॥३४॥

एवं गो मृग काकचर्यया व्रजन् तिष्ठन् आसीनः शयानः काक मृग गो चरितः पिबति खादति अवमेहति स्म ॥३४॥

एवं	इसी प्रकार	काक मृग	कौए, हिरण या
गो	गाय	गो चरितः	गायके समान आचरण करते,
मृग	हिरण या		
काकचर्यया	कौएके चर्यामें	पिबति	पीते,
व्रजन्	चलते-चलते,	खादति	खाते,
तिष्ठन्	खड़े-खड़े,	अवमेहति स्म	मूत्र त्याग करते थे ॥३४॥
आसीनः	बैठे हुए या		
शयानः	सोते-सोते		

इति नानायोगचर्याचरणो भगवान् कैवल्यपतिर्ऋषभोऽविरतपरममहानन्दानुभव आत्मनि सर्वेषां भूतानामात्मभूते भगवति वासुदेव आत्मनोऽव्यवधानानन्तरोदरभावेन सिद्धसमस्तार्थपरिपूर्णो योगैश्वर्याणि वैहायसमनोजवान्तर्धानपरकायप्रवेशदूरग्रहणादीनि यदृच्छयोपगतानि नाञ्जसा नृप हृदयेनाभ्यनन्दत् ॥३५॥

इति नाना योगचर्या चरणः भगवान् कैवल्यपतिः ऋषभः अविरत परम महानन्द अनुभव आत्मनि सर्वेषां भूतानां आत्मभूते भगवति वासुदेव आत्मनः अव्यवधान अनन्तः उदर भावेन सिद्ध समस्त अर्थ परिपूर्णः योग ऐश्वर्याणि वैहायस मनोजव अन्तर्धान परकाय प्रवेश दूर ग्रहण आदीनि यदृच्छया उपगतानि न अञ्जसा नृप हृदयेन अभ्यनन्दत् ॥३५॥

नृप	राजन् (परीक्षित)
इति	इस प्रकार
नाना योगचर्या	अनेक प्रकारकी योगचर्याका
चरणः	आचरण करनेवाले
भगवान्	भगवान्
कैवल्यपतिः	मोक्षके स्वामी
ऋषभः	ऋषभदेवजी
अविरत	निरन्तर
परम महानन्द अनुभव	परम महा आनन्द अनुभव स्वरूप
सर्वेषां भूतानां आत्मभूते	सभी प्राणियोंके आत्मा स्वरूप
भगवति वासुदेव	भगवान् वासुदेवसे
आत्मनः	अपना
अव्यवधान	निर्बाध
अनन्तः	अनन्त
उदर भावेन	एकात्म भावसे
समस्त अर्थ	समस्त प्रयोजन
सिद्ध परिपूर्णः	सिद्ध परिपूर्ण थे ।
वैहायस	आकाशमें
मनोजव	मनकी गतिसे जाना,
अन्तर्धान	अदृश्य हो जाना,
परकाय प्रवेश	दूसरेके शरीरमें प्रवेश,

दूर ग्रहण आदीनि	दूर ग्रहण आदि
योग ऐश्वर्याणि	योगकी सिद्धियोंके
यदृच्छया उपगतानि	अपने आप ही आनेपर
हृदयेन अञ्जसा	हृदयसे सरलतासे उनका
अभ्यनन्दत् न	अभिनन्दन नहीं किया ॥३५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
पञ्चमस्कन्धे ऋषभदेवानुचरिते पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

राजोवाच—

न नूनं भगवन्नात्मारामाणां योगसमीरितज्ञानावभर्जित-कर्मबीजानामैश्वर्याणि पुनः क्लेशदानि भवितुमर्हन्ति यदृच्छ-योपगतानि ॥१॥

न नूनं भगवन् आत्मारामाणां योगसमीरित ज्ञान अवभर्जित कर्म बीजानां ऐश्वर्याणि पुनः क्लेशदानि भवितुं अर्हन्ति यदृच्छया उपगतानि ॥१॥

भगवन्	भगवन् !	यदृच्छया	अपने आप
योगसमीरित	योग रूपी वायुसे बढ़ाई	उपगतानि	आये
		ऐश्वर्याणि	ऐश्वर्य (सिद्धियां)
ज्ञान	ज्ञानाग्निमें	नूनं	निश्चय
अवभर्जित	भून दिये गये	पुनः क्लेशदानि	फिर क्लेश देनेवाले
कर्म बीजानां	कर्म बीजवाले	न भवितुं	नहीं होने
आत्मारामाणां	आत्मारामके लिए	अर्हन्ति	चाहिए ॥१॥

श्रीशुक उवाच*—

सत्यमुक्तं किन्त्विह वा एके न मनसोऽद्धाविश्रम्भमन-वस्थानस्य शठकिरात इव सङ्गच्छन्ते ॥२॥ तथा चोक्तम्—

सत्यं उक्तं किन्तु इह वा एके न मनसः अद्धा विश्रम्भं अनवस्थानस्य शठ किरात इव सङ्गच्छन्ते ॥२॥ तथा च उक्तं—

---

* अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'ऋषिरुवाच' है ।

सत्यं उक्तं	(तुमने) सत्य कहा है;	मनसः	मनका
		अद्धा	भली प्रकार
किन्तु इह	किन्तु इस संसारमें	न विश्रम्भं	विश्वास नहीं करते
शठ किरात इव	निष्ठुर व्याधके समान*	अनवस्थानस्य	(इस) चंचलके
		सङ्गच्छन्ते	साथ (सावधान) हो रहते हैं ॥२॥
एके वा	कोई एक तो		

तथा च उक्तं—जैसा कि कहा गया है—

न कुर्यात्कर्हिचित्सख्यं मनसि ह्यनवस्थिते ।
यद्विश्रम्भाच्चिराच्चीर्णं चस्कन्द तप ऐश्वरम् ।।३।।

न कुर्यात् कर्हिचित् सख्यं मनसि हि अनवस्थिते यत् विश्रम्भात् चिरात् चीर्णं चस्कन्द तप ऐश्वरम् ॥

अनवस्थिते	चञ्चल	चिरात् चीर्णं	बहुत समयका सञ्चित
मनसि	मनसे		
कर्हिचित् सख्यं	कभी भी मित्रता	ऐश्वरं	शंकरजी का
न कुर्यात्	न करे,	तप चस्कन्द	तप स्खलित हो गया ॥३॥
हि	क्योंकि		
यत् विश्रम्भात्	जिसपर विश्वास करनेसे		

नित्यं ददाति कामस्यच्छिद्रं तमनु येऽरयः ।
योगिनः कृतमैत्रस्य पत्युर्जायेव पुंश्चली ।।४।।

नित्यं ददाति कामस्य छिद्रं तं अनु ये अरयः योगिनः कृत मैत्रस्य पत्युः जाया इव पुंश्चली ॥४॥

पुंश्चली	व्यभिचारिणी	कृत मैत्रस्य	(मनके साथ) मित्रता करनेवाले
जाया	पत्नी द्वारा		
पत्युः इव	पतिको (धोखा देनेके) समान	योगिनः	योगियोंको
		नित्यं कामस्य	सदा कामको

* जैसे चतुर व्याध अपने पकड़े मृगका विश्वास नहीं करता ।

तं अनु	उसके पीछे रहनेवाले	छिद्रं ददाति	छिद्र (प्रवेशका
ये अरयः	जो (लोभ-मोहादि)		अवसर) दे देते
	शत्रु है,		हैं ॥४॥

कामो मन्युर्मदो लोभः शोकमोहभयादयः ।
कर्मबन्धश्च यन्मूलः स्वीकुर्यात्को नु तद्बुधः ॥५॥

कामः मन्युः मदः लोभः शोकः मोहः भयादयः कर्मबन्धः च यत् मूलः स्वीकुर्यात् कः नु तत् बुधः ॥५॥

यत् मूलः	जिसकी जड़से	तत्	उसे
कामः मन्युः	काम, क्रोध,	नु कः बुधः	भला कौन बुद्धिमान
लोभः शोकः	लोभ, शोक	स्वीकुर्यात्	स्वीकार करेगा ॥७॥
मोहः भयादयः	मोह, भय आदि		
च कर्मबन्धः	तथा कर्मबन्धन		
	होता है,		

अथैवमखिललोकपाललललामोऽपि विलक्षणैर्जडवदवधूत-वेषभाषाचरितैरविलक्षितभगवत्प्रभावो योगिनां साम्परायविधि-मनुशिक्षयन् स्वकलेवरं जिहासुरात्मन्यात्मानमसंव्यवहितमन-र्थान्तरभावेनान्वीक्षमाण उपरतानुवृत्तिरुपरराम ॥६॥

अथ एवं अखिल लोकपाल ललामः अपि विलक्षणः जडवत् अवधूत वेष भाषा चरितैः अविलक्षित भगवत् प्रभावः योगिनां साम्पराय विधि अनुशिक्षयन् स्वकलेवरं जिहासुः आत्मनि आत्मानं असंव्यवहितं अनर्थ अन्तर भावेन अन्वीक्षमाण उपरत अनुवृत्तिः उपरराम ॥६॥

अथ एवं	फिर इस प्रकार	जडवत्	मूर्खके समान,
अखिल		अवधूत वेष	अवधूतोंके समान
लोकपाल	समस्त लोकपालोंसे		(विचित्र) वेश,
ललामः अपि	सुन्दर होनेपर भी	भाषा	भाषा
विलक्षणः	विलक्षण	चरितैः	चरित्रके द्वारा

अविलक्षित	छिपाये हुए
भगवत् प्रभावः	(अपने) भगवदीय प्रभावको
योगिनां	योगियोंको
साम्पराय विधिं	देह त्यागकी विधि
अनुशिक्षयन्	सिखलानेके लिए
स्वकलेवरं	अपने शरीरको
जिहासुः	छोड़ना चाहा।
अनर्थ अन्तर भावेन	वासनाओंके लीन होनेसे
आत्मनि	अन्तःकरणमें
आत्मानं	परमात्माको
असंव्यवहितं	अभिन्न रूपसे स्थित
अन्वीक्षमाण	देखते (चिन्तन करते हुए)
अनुवृत्तिः	इसकी पुनरावृत्तिसे भी
उपरत	उपरत होकर
उपरराम	उपराम हो गये ॥६॥

तस्य ह वा एवं मुक्तलिङ्गस्य भगवत ऋषभस्य योगमायावासनया देह इमां जगतीमभिमानाभासेन संक्रममाणः कोङ्कवेङ्ककुटकान्दक्षिणकर्णाटकान्देशान् यदृच्छयोपगतः कुटकाचलोपवन आस्यकृताश्मकवल उन्माद इव मुक्तमूर्धजोऽसंवीत एव विचचार ॥७॥

तस्य ह वा एवं मुक्तलिङ्गस्य भगवत ऋषभस्य योगमाया वासनया देह इमां जगतीं अभिमाना भासेन संक्रममाणः कोङ्कवेङ्क कुटकान् दक्षिण कर्णाटकान् देशान् यदृच्छया उपगतः कुटकाचल उपवन आस्यकृत अश्म कवल उन्माद इव मुक्त मूर्धजः असंवीत एव विचचार ॥७॥

तस्य ह वा एवं मुक्त-लिङ्गस्य	उन निश्चित रूपसे इस प्रकार लिङ्ग शरीर (के अभिमान) से मुक्त
भगवत ऋषभस्य	भगवान् ऋषभदेवका
योगमाया वासनया	योगमायाकी वासनासे
देह अभिमाना भासेन	शरीर (केवल) अभिमानाभाससे

इमां जगतीं	इस संसारमें	आस्यकृत	मुँहमें ग्रासकी
संक्रममाणः	घूमता हुआ		भाँति डाले,
यदृच्छया	संयोगवश	मुक्त मूर्धजः	बाल बिखेरे,
कोङ्क वेङ्क	कोङ्क, वेङ्क,	असंवीत एव	दिगम्बर ही
कुटकान्	कुटक	उन्माद इव	पागलकी भाँति
दक्षिण		कुटकाचल	
कर्णाटकान्	दक्षिण कर्नाटक	उपवन	कुटकाचलके
	आदि		बगीचेमें
देशान् उपगतः	प्रदेशोंमें गया	विचचार	विचरण करने
अश्म कवल	पत्थरका टुकड़ा		लगा ॥७॥

अथ समीरवेगविधूतवेणुविकर्षणजातोग्रदावानलस्तद्वनमालेलिहानः सह तेन ददाह ॥८॥

अथ समीरवेग विधूत वेणुविकर्षण जातः उग्र दावानलः तत् वनं आलेलिहानः सह तेन ददाह ॥८॥

अथ	उसी समय	आलेलिहानः	उस वनको चाटता
समीरवेग	वायु-वेगसे		हुआ
विधूत	बहुत हिलते	तेन सह	उन (ऋषभदेवजी)
वेणुविकर्षण	बाँसोंकी रगड़से		के साथ
जातः	उत्पन्न	ददाह	(वनको भी) जला
उग्र दावानलः	प्रचण्ड दावानल		दिया ॥८॥
तत् वनं			

यस्य किलानुचरितमुपाकर्ण्य कोङ्कवेङ्कुटकानां राजार्हन्नामोपशिक्ष्य कलावधर्म उत्कृष्यमाणे भवितव्येन विमोहितः स्वधर्मपथमकुतोभयमपहाय कुपथपाखण्डमसमञ्जसं निजमनीषया मन्दः सम्प्रवर्तयिष्यते ॥९॥

यस्य किल अनुचरितं उपाकर्ण्य कोङ्क वेङ्क कुटकानां राजा अर्हत् नाम उपशिक्ष्य कलाः अधर्म उत्कृष्यमाणे भवितव्येन विमोहितः स्वधर्म पथं अकुतः भयं अपहाय कुपथ पाखण्डं असमञ्जसं निज मनीषया मन्दः सम्प्रवर्तयिष्यते ॥९॥

यस्य किल	जिनकी ही
अनुचरितं	चरित-चर्चाको
उपाकर्ण्य	सुनकर
कोङ्क वेङ्क	
कुटकानां	कोङ्क, वेङ्क, कुटकका
अर्हत् नाम	
राजा	अर्हत् नामका राजा
कलाः	कलियुगमें
अधर्म	
उत्कृष्यमाणे	अधर्म बढ़नेपर
भवितव्येन	होनहारवश
विमोहितः	अत्यन्त मोहित होकर
मन्दः	मन्दमति
अकुतः भयं	(जिसमें) कहीं भय नहीं है
स्वधर्म पथं	(उस) अपने धर्म-मार्गको
अपहाय	त्यागकर
निज मनीषया	अपना बुद्धि कल्पित
कुपथ	कुमार्ग
असमञ्जसं	अनुचित
पाखण्डं	पाखण्डका
सम्प्रवर्तयिष्यते	बहुत प्रचार करेगा ॥९॥

येन ह वाव कलौ मनुजापसदा देवमाया मोहिताः स्वविधिनियोगशौच चारित्रविहीना देवहेलनान्यपव्रतानि निज-निजेच्छया गृह्णाना अस्नानानाचमनाशौचकेशोल्लुञ्चनादीनि कलिनाधर्मबहुलेनोपहतधियो ब्रह्मब्राह्मणयज्ञपुरुषलोकविदूषकाः प्रायेण भविष्यन्ति ॥१०॥

येन ह वाव कलौ मनुज अपसदाः देवमाया मोहिताः स्वविधि नियोग शौच चारित्रविहीनाः देवहेलनानि अपव्रतानि निज निज इच्छया गृह्णानाः अस्नान अनाचमन अशौच केशःलुञ्चन आदीनि कलिना अधर्म बहुलेन उपहत धियः ब्रह्म ब्राह्मण यज्ञपुरुष लोक विदूषकाः प्रायेण भविष्यन्ति ॥१०॥

येन ह वाव	जिसके द्वारा निश्चित रूपसे
कलौ	कलियुगमें
मनुज अपसदाः	अधम-मनुष्य
देवमाया मोहिताः	भगवान्‌की मायासे मोहित होकर
स्वविधि नियोग	अपना शास्त्र-विहित
शौच चारित्र-विहीनाः	पवित्रता, सदाचारसे रहित लोग,
देवहेलनानि	देवताओंकी उपेक्षावाले,
अपव्रतानि	कुत्सित व्रत,
निज निज इच्छया	अपनी-अपनी इच्छासे
गृह्णानाः	ग्रहण करते हुए,
अस्नान	स्नान न करना,
अनाचमन	आचमन न करना,
अशौच	अपवित्र रहना,
केशःलुञ्चन आदीनि	केश नोचना आदि करेंगे।
अधर्म बहुलेन कलिना	अधर्म बाहुल्यवाले कलियुग द्वारा
धियः उपहतः	बुद्धि मारी जानेसे
ब्रह्म	वेद,
ब्राह्मण	ब्राह्मण,
यज्ञपुरुष	यज्ञ-पुरुष,
लोक	(स्वर्गादि)लोकोंका
विदूषकाः	उपहास करनेवाले
प्रायेण	प्रायः
भविष्यन्ति	होंगे ॥१०॥

ते च ह्यर्वाक्तनया निजलोकयात्रयान्धपरम्परयाऽऽश्वस्ता-स्तमस्यन्धे स्वयमेव प्रपतिष्यन्ति ।११॥

ते च हि अर्वाक् तनया निजलोक यात्रया अन्धपरम्परया आश्वस्ताः तमसि अन्धे स्वयं एव प्रपतिष्यन्ति ॥११॥

हि ते च	क्योंकि वे भी (जो)
अर्वाक् तनया निजलोक यात्रया	नवीन (अवैदिक) अपने लौकिक व्यवहारके निर्वाहके लिए
अन्धपरम्परया	अन्ध-परम्परासे
आश्वस्ताः	आश्वस्त हैं,
स्वयं एव	(वे) स्वयं ही
अन्धे तमसि	अन्धकारपूर्ण नरकमें
प्रपतिष्यन्ति	गिरेंगे ॥११॥

अयमवतारो रजसोपप्लुतकैवल्योप शिक्षणार्थः ॥१२॥

अयं अवतारः रजसः उपप्लुत कैवल्यः उप शिक्षण अर्थः ॥१२॥

अयं अवतारः	(भगवान्का) यह अवतार	कैवल्यः	मोक्षकी
रजसः		उप शिक्षण अर्थः	शिक्षा देनेके लिए (हुआ) ॥१२॥
उपप्लुतः	रजोगुणसे आच्छन्न (लोगोंको)		

तस्यानुगुणान् श्लोकान् गायन्ति—

तस्य अनुगुणान् श्लोकान् गायन्ति—

तस्य	उनके	श्लोकान्	(इन) श्लोकोंको
अनुगुणान्	गुणोंके वर्णनमें	गायन्ति	(लोग) गाते हैं—

अहो भुवः सप्तसमुद्रवत्या
द्वीपेषु वर्षेष्वधिपुण्यमेतत् ।
गायन्ति यत्रत्यजना मुरारेः
कर्माणि भद्राण्यवतारवन्ति ॥१३॥

अहो भुवः सप्त समुद्रवत्या द्वीपेषु वर्षेषु अधिपुण्यं एतत् गायन्ति यत्रत्य जनाः मुरारेः कर्माणि भद्राणि अवतार वन्ति ॥१३॥

अहो	अहो,	यत्रत्य जनाः	जहाँ रहनेवाले लोग
सप्त समुद्रवत्या	सात समुद्रोंवाली	मुरारेः	श्रीहरिके
भुवः	पृथ्वीमें	अवतार वन्ति	अवतार लेकर किए
द्वीपेषु वर्षेषु	(दूसरे) द्वीपों एवं वर्षोंमें	भद्राणि कर्माणि गायन्ति	मंगलमय चरितोंका गायन करते हैं ॥१३॥
एतत्	यह (भारतवर्ष)		
अधिपुण्यं	बहुत पुण्य (भूमि) है,		

अहो नु वंशो यशसावदातः
प्रैयव्रतो यत्र पुमान् पुराणः ।
कृतावतारः पुरुषः स आद्यः
चचार धर्मं यदकर्महेतुम् ॥१४॥

अहो नु वंशः यशसा अवदातः प्रैयव्रतः यत्र पुमान् पुराणः कृतः अवतारः पुरुषः स आद्यः चचार धर्मं यत् अकर्म हेतुम् ॥१४॥

अहो नु	अहो निश्चय	पुराणः पुमान्	सनातन पुरुषने
प्रैयव्रतः वंशः	प्रियव्रतका वंश	अवतारः कृतः	अवतार लेकर
यशसा		यत् अकर्म हेतुं	जो मोक्षका
अवदातः	यशसे उज्ज्वल हैं,		कारण है,
यत्र	जिसमें	धर्मं चचार	(उस) धर्मका
स आद्यः पुरुषः	उन आदि-पुरुष,		आचरण किया ॥१४

को न्वस्य काष्ठामपरोऽनुगच्छे-
न्मनोरथेनाप्यभवस्य योगी ।
यो योगमायाः स्पृहयत्युदस्ता
ह्यसत्तया येन कृतप्रयत्नाः ॥१५॥

कः नु अस्य काष्ठां अपरः अनुगच्छेत् मनोरथेन अपि भवस्य योगी यः योगमायाः स्पृहयति उदस्ताः हि असत्तया येन कृत प्रयत्नाः ॥१५॥

कः नु	कौन भला		करते हैं,
भवस्य	इस संसारका	येन	जिनके द्वारा
अपरः योगी	दूसरा योगी	प्रयत्नाः कृतः	(उन्हें पानेके) प्रयत्न
अस्य	इन (ऋषभदेवजी) के		किये जाते हैं
काष्ठां	मार्गके	हि	क्योंकि
मनोरथेन अपि	मनसे भी	असत्तया	(उसे) असत् होनेके
अनुगच्छेत्	पीछे चल सकता है,		कारण
यः योगमायाः	जो योगमायाकी	उदस्ताः	त्याग दिया ॥१५॥
स्पृहयति	(सिद्धियोंकी) स्पृहा		

इति ह स्म सकलवेदलोकदेवब्राह्मणगवां परमगुरोर्भगवत ऋषभाख्यस्य विशुद्धाचरितमीरितं पुंसां समस्तदुश्चरिताभिहरणं परममहामङ्गलायनमिदमनुश्रद्धयोपचितयानुशृणोत्याश्रावयति वावहितो भगवति तस्मिन् वासुदेव एकान्ततो भक्तिरनयोरपि समनुवर्तते ॥१६॥

इति ह स्म सकलवेद लोक देव ब्राह्मण गवां परमगुरोः भगवतः ऋषभ आख्यस्य विशुद्ध आचरितं ईरितं पुंसां समस्त दुश्चरित अभिहरणं परम महामङ्गल अयनं इदं अनुश्रद्धया उपचितया अनुशृणोति आश्रावयति वा अवहितः भगवति तस्मिन् वासुदेव एकान्ततः भक्तिः अनयोः अपि समनुवर्तते ॥१६॥

इति ह	इस प्रकारसे
सकलवेद	समस्त वेदों,
लोक	लोकों,
देव	देवताओं,
ब्राह्मण गवां	ब्राह्मणों एवं गायोंके
परमगुरोः	परम गुरु
ऋषभ आख्यस्य	ऋषभ नामवाले
भगवतः	भगवान्‌का
पुंसां	पुरुषोंके
समस्त	
दुश्चरित	सभी पापोंको
अभिहरणं	पूर्णतः हरण करनेवाले
विशुद्ध आचरितं	विशुद्ध चरितको
ईरितं स्म	मैंने वर्णन किया।
इदं	इस
परम	
महामङ्गल अयनं	परम महामंगल-निवास (चरित) में
अनुश्रद्धया	
उपचितया	श्रद्धापूर्वक
अवहितः	एकाग्र-चित्तसे
अनुशृणोति	(जो) बराबर सुनता है,
वा आश्रावयति	या सुनाता है,
तस्मिन्	उन
भगवति वासुदेव	भगवान् वासुदेवमें
एकान्ततः	
भक्तिः	अनन्य भक्ति
अनयोः अपि	उसकी भी
समनुवर्तते	भली प्रकार हो जाती है ॥१६॥

यस्यामेव कवय आत्मानमविरतं विविधवृजिनसंसार-परितापोपतप्यमानमनुसवनं स्नापयन्तस्तयैव परया निर्वृत्या

ह्यपवर्गमात्यन्तिकं परमपुरुषार्थमपि स्वयमासादितं नो एवा-द्रियन्ते भगवदीयत्वेनैव परिसमाप्तसर्वार्थाः ॥१७॥

यस्यां एव कवयः आत्मानं अविरतं विविध वृजिन संसार परिताप उपतप्यमानं अनुसवनं स्नापयन्तः तया एव परया निर्वृत्या हि अपवर्गं आत्यन्तिकं परम पुरुषार्थं अपि स्वयं आसादितं नो एव आद्रियन्ते भगवदीय-त्वेन एव परिसमाप्त सर्वाः अर्थाः ॥१७॥

विविध वृजिन	नाना प्रकारके पापोंसे	**परया निर्वृत्या**	परमानन्दपूर्वक
ससार परिताप	(पूर्ण) संसारके तापोंसे	**आत्यन्तिकं**	आत्यन्तिक
उपतप्यमानं	संतप्त होते	**परमपुरुषार्थं**	परम-पुरुषार्थ
कवयः	बुद्धिमान लोग	**अपवर्गं अपि**	मोक्षको भी
यस्यां एव	जिस (भक्ति) में ही	**स्वयं आसदितं**	स्वयं प्राप्त होनेपर
आत्मानं	अपनेको	**नो एव**	नहीं ही
अनुसवनं	निरन्तर	**आद्रियन्ते**	आदर करते,
स्नापयन्तः	स्नान कराते रहते हैं	**भगवदीयत्वेन एव**	भगवान्‌के होनेसे ही
हि	क्योंकि	**सर्वाः अर्थाः**	(उनके) सब प्रयोजन
तया एव	उस (भक्ति) से ही	**परिसमाप्तः**	परिपूर्ण हो गये हैं ॥१७॥

राजन् पतिर्गुरुरलं भवतां यदूनां
दैवं प्रियः कुलपतिः क्व च किङ्करो वः ।
अस्त्वेवमङ्ग भगवान् भजतां मुकुन्दो
मुक्तिं ददाति कर्हिचित्स्म न भक्तियोगम् ॥१८॥

राजन् पतिः गुरुः अलं भवतां यदूनां दैवं प्रियः कुलपतिः क्व च किङ्करः वः अस्ति एवं अङ्ग भगवान् भजतां मुकुन्दः मुक्तिं ददाति कर्हिचित् स्म न भक्तियोगम् ॥१८॥

अङ्ग राजन्	प्रिय परीक्षित !		भी
भवतां	आपके (कुलके)	अस्ति एव	हैं ही ।
यदूनां	(तथा) यदुवंशियोंके	भगवान् मुकुन्दः	(ये) भगवान् मुकुन्द
पतिः गुरुः	स्वामी, गुरु,	भजतां	भजन करनेवालेको
अलं	सर्वस्व,	कर्हिचित् मुक्तिं	
दैवं प्रियः	इष्टदेव, प्रियतम,	ददाति स्म	कभी मुक्ति दे देते हैं
कुलपतिः	कुलपति	न भक्तियोगं	(पर) भक्तियोग
क्व च	कभी		नहीं देते ॥१८॥
वः किङ्करः	आप सबके सेवक		

नित्यानुभूतनिजलाभनिवृत्ततृष्णः
श्रेयस्यतद्रचनया चिरसुप्तबुद्धेः ।
लोकस्य यः करुणयाभयमात्मलोक-
माख्यान्नमो भगवते ऋषभाय तस्मै ॥१९॥

नित्य अनुभूत निजलाभ निवृत्त तृष्णः श्रेयस्य तत् रचनया चिर सुप्त बुद्धेः लोकस्य यः करुणया अभयं आत्मलोकं आख्यात् नमः भगवते ऋषभाय तस्मै ॥१९॥

नित्य अनुभूत	निरन्तर अनुभूत होते	बुद्धेः	बुद्धिवाले
		लोकस्य	लोगोंके लिए
निजलाभ	आत्मलाभसे	करुणया	करुणा करके
निवृत्त तृष्णः	(समस्त) तृष्णाओंसे मुक्त (होनेपर भी)	अभयं	अभय स्वरूप
		आत्मलोकं	आत्मलोकका
तत् श्रेयस्य	उस (वास्तविक) कल्याणको	आख्यात्	उपदेश किया
		तस्मै	उन
रचनया	√ प्राप्त करनेमें	भगवते	
चिर सुप्त	चिर (अनादि-कालसे) प्रसुप्त	ऋषभाय	भगवान् ऋषभदेवको
		नमः	नमस्कार ॥१९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
पञ्चमस्कन्धे ऋषभदेवानुचरिते षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

भरतस्तु महाभागवतो यदा भगवतावनितलपरिपालनाय सञ्चिन्तितस्तदनुशासनपरः पञ्चजनीं विश्वरूपदुहितरमुपयेमे ॥१॥

भरतः तु महाभागवतः यदा भगवता अवनितल परिपालनाय सञ्चिन्तितः तत् अनुशासन परः पञ्चजनीं विश्वरूप दुहितरं उपयेमे ॥१॥

भरतः तु	भरत तो	सञ्चिन्तितः	सोचे (नियुक्त किये) गये,
महाभागवतः	परम भगवद्भक्त थे-		
यदा	जब	तत्	
भगवता	भगवान्(ऋषभदेव) द्वारा	अनुशासन परः	उनकी आज्ञाके परायण होकर
अवनितल	भूतलके	पञ्चजनीं	पञ्चजनी (नामक)
परिपालनाय	भली प्रकार पालनके लिए	विश्वरूप	
		दुहितरं	विश्वरूपकी पुत्रीसे
		उपयेमे	विवाह किया ॥१॥

तस्यामु ह वा आत्मजान् कात्स्न्र्येनानुरूपानात्मनः पञ्च जनयामास भूतादिरिव भूतसूक्ष्माणि ॥२॥

तस्यां उ ह वा आत्मजान् कात्स्न्र्येन अनुरूपान् आत्मनः पञ्च जनयामास भूतादिः इव भूतसूक्ष्माणि ॥२॥

तस्यां उ ह वा	उससे निश्चित रूपसे	आत्मनः	अपने
भूतादिः	तामस अहंकारसे	कात्स्न्र्येन	सम्पूर्ण रूपसे
भूतसूक्ष्माणि	भूत सूक्ष्म (तन्मात्राओं) के	अनुरूपान्	अनुरूप
		पञ्च आत्मजान्	पाँच पुत्र
इव	समान	जनयामास	उत्पन्न किये ॥२॥

सुमतिं राष्ट्रभृतं सुदर्शनमावरणं धूम्रकेतुमिति । अजनाभं नामैतद्वर्षं भारतमिति यत आरभ्य व्यपदिशन्ति ॥३॥

सुमतिं राष्ट्रभृतं सुदर्शनं आवरणं धूम्रकेतुं इति अजनाभं नाम एतत् वर्षं भारतं इति यत आरभ्य व्यपदिशन्ति ॥३॥

सुमतिं	सुमति,	अजनाभं नाम	अजनाभ नामके
राष्ट्रभृतं	राष्ट्रभृत्,	एतत् वर्षं	इस देशको
सुदर्शनं	सुदर्शन,	यत आरभ्य	जिनसे आरम्भ
आवरणं	आवरण (और)		करके
धूम्रकेतुं	धूम्रकेतु	भारतं इति	भारत इस नामके
इति	इस प्रकार (उन	व्यपदिशन्ति	निर्दिष्ट किया
	पांचोंके नाम थे)		जाता है ॥३॥

स बहुविन्महीपतिः पितृपितामहवदुरुवत्सलतया स्वे स्वे कर्मणि वर्तमानाः प्रजाः स्वधर्ममनुवर्तमानः पर्यपालयत् ॥४॥

स बहुवित् महीपतिः पितृपितामहवत् उरुवत्सलतया स्वे स्वे कर्मणि वर्तमानाः प्रजाः स्वधर्मं अनुवर्तमानः परिपालयत् ॥४॥

स बहुवित्	उन बहुज्ञ	स्वे स्वे कर्मणि	अपने-अपने कर्ममें
महीपतिः	राजा (भरत) ने	वर्तमानाः	लगी हुई
पितृ-		प्रजाः	प्रजाको
पितामहवत्	पिता-पितामहके	स्वधर्मं	अपने धर्ममें
	समान	अनुवर्तमानः	स्थित रहते हुए
उरुवत्सलतया	अत्यन्त वात्सल्य-	परिपालयत्	सब प्रकार पालन
	भावसे		किया ॥४०॥

ईजे च भगवन्तं यज्ञक्रतुरूपं क्रतुभिरुच्चावचैः श्रद्धयाऽऽहृताग्निहोत्रदर्शपूर्णमासचातुर्मास्यपशुसोमानां प्रकृतिविकृतिभिरनुसवनं चातुर्होत्रविधिना ॥५॥

ई जे च भगवन्तं यज्ञक्रतु रूपं क्रतुभिः उच्च अवचैः श्रद्धया आहृत अग्निहोत्र दर्श पूर्णमास चातुर्मास्य पशु सोमानां प्रकृति विकृतिभिः अनुसवनं चातुर्होत्र विधिना ॥५॥

भगवन्तं	भगवान्	चातुर्मास्य	चातुर्मास्य (आषाढ़ शुक्ल एकादशीसे चार मासके)
यज्ञक्रतु रूपं	यज्ञक्रतु रूपका	पशु सोमानां	पशु (आलभन) तथा सोम (पानके)
उच्च अवचैः	बड़े-छोटे	चातुर्होत्र	चातुर्होत्र (होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा इन चारसे होनेवाले) यज्ञकी
क्रतुभिः	यज्ञोंसे		
श्रद्धया	श्रद्धापूर्वक		
प्रकृति	प्रकृति (सर्वाङ्गपूर्ण)		
विकृतिभिः	विकृति (अल्पाङ्ग अपूर्ण)		
आहृत	जिसमें अग्नि लायी गयी है ऐसे	विधिना	विधिसे
अग्निहोत्र	अग्निहोत्र	अनुसवनं	यथा समय
दर्श	दर्श (अमावस्या)	ई जे च	यजन भी किया ॥५॥
पूर्णमास	पूर्ण-मासके (पूर्णिमा) को		

सम्प्रचरत्सु नानायागेषु विरचिताङ्गक्रियेष्वपूर्वं यत्तत्क्रियाफलं धर्माख्यं परे ब्रह्मणि यज्ञपुरुषे सर्वदेवतालिङ्गानां मन्त्राणामर्थनियामकतया साक्षात्कर्तरि परदेवतायां भगवति वासुदेव एव भावयमान आत्मनैपुण्यमृदितकषायो हविःष्वध्वर्युभिर्गृह्यमाणेषु स यजमानो यज्ञभाजो देवांस्तान् पुरुषावयवेष्वभ्यध्यायत् ॥६॥

सम्प्रचरत्सु नाना यागेषु विरचित अङ्ग क्रियेषु अपूर्व यत् तत् क्रियाफलं धर्म आख्यं परे ब्रह्मणि यज्ञपुरुषे सर्वदेवता लिङ्गानां मन्त्राणां अर्थ नियामकतया साक्षात् कर्तरि परदेवतायां भगवति वासुदेव एव भाव-

यमान आत्मनैपुण्य मृदित कषायः हविषु अध्वर्युभिः गृह्यमाणेषु स यजमानः यज्ञभाजः देवात् तान् पुरुष अवयवेषु अभ्यध्यायत् ॥६॥

अङ्ग क्रियेषु	(यज्ञके) अंग और क्रियाओंको
विरचित	बनाकर
नाना यागेषु	अनेक प्रकारके यज्ञोंको
सम्प्रचरत्सु	भली प्रकार करते हुए
यत् अपूर्वं	जो अपूर्व (नामक)
धर्म आख्यं	धर्म कहा जानेवाला
क्रियाफलं	कर्मका फल है (उसे)
परे ब्रह्मणि	परं ब्रह्म
यज्ञपुरुषे	यज्ञ-पुरुषको ही (अर्पित कर देते)
सर्वदेवता लिङ्गानां	सब देवताओंके स्वरूप
मन्त्राणां अर्थ	मन्त्रोंके
नियामकतया	अर्थके नियन्त्रक होनेसे
साक्षात् कर्तरि	साक्षात् कर्ता
परदेवतायां	परम-देवता
भगवति	भगवान्
वासुदेव	वासुदेव ही हैं
एव	इस प्रकार
भावयमान	भावना करते हुए
आत्मनै पुण्येन	अपनी निपुणतासे
मृदित कषायः	(उनके राग-द्वेषादि) मलोंका मार्जन हो गया
अध्वर्युभिः हविषु	अध्वर्युके
गृह्यमाणेषु	हवि उठानेपर
स यजमानः	वे यजमान(राजा भरत)
यज्ञभाजः	यज्ञमें भाग पानेवाले
तान् देवात्	उन देवताओंको
पुरुष अवयेषु	परम-पुरुषके अंगोंमें ही
अभ्यध्यायत्	ध्यान करते थे ॥६॥

एवं कर्मविशुद्धया विशुद्धसत्त्वस्यान्तर्हृदयाकाशशरीरे ब्रह्मणि भगवति वासुदेवे महापुरुषरूपोपलक्षणे श्रीवत्सकौस्तुभवनमालारिदरगदादिभिरुपलक्षिते निजपुरुषहृल्लिखितेनात्मनि पुरुषरूपेण विरोचमान उच्चैस्तरां भक्तिरनुदिनमेधमानरयाजायत ॥७॥

एवं कर्म विशुद्धचा विशुद्धसत्त्वस्य अन्तर्हृदयाकाश शरीरे ब्रह्मणि भगवति वासुदेवे महापुरुषरूप उपलक्षणे श्रीवत्स कौस्तुभ वनमाला अरिदर गदादिभिः उपलक्षिते निजपुरुष हृत् लिखितेन आत्मनि पुरुषरूपेण विरोचमानः उच्चैः तरां भक्तिः अनुदिनं एधमानः अयाजायत ॥७॥

एवं	इस प्रकार	गदादिभिः	गदा आदिसे
कर्म विशुद्धचा	कर्मकी पूर्ण शुद्धि होनेसे	उपलक्षिते	पहिचाना जानेवाला
दिशुद्धसत्त्वस्य	विशुद्ध अन्तःकरणके	निजपुरुष	अपने भक्तोंके
शरीरे	शरीरके	हृत् लिखितेन	हृदयमें चित्रित रहनेवाला रूप
अन्तर्हृदयाकाश	हृदयाकाशके भीतर	आत्मनि	अपने भीतर
ब्रह्मणि	परमब्रह्म	पुरुषरूपेण	(प्रत्यक्ष) पुरुष रूपसे
महापुरुषरूप			
उपलक्षणे	महापुरुष (पुरुषोत्तम) रूपके लक्षणोंसे युक्त	विरोचमानं	प्रकाशित होते
		भगवति	भगवान्
		वासुदेवे	वासुदेवमें
श्रीवत्स	श्रीवत्स-चिह्न (वक्षपर)	उच्चैः तरां	अत्यन्त उत्कृष्ट
		भक्तिः	भक्ति
कौस्तुभ	कौस्तुभमणि (कण्ठमें)	अनुदिनं	प्रतिदिन
		एधमानः	बढ़ती हुई
वनमाला	(गलेमें) वनमाला	अयाजायत	प्राप्त हो गयी ॥७॥
अरिदर	(करोंमें) चक्र-शङ्ख		

एवं वर्षायुतसहस्रपर्यन्तावसितकर्मनिर्वाणावसरोऽधिभुज्यमानं स्वतनयेभ्यो रिक्थं पितृपैतामहं यथादायं विभज्य स्वयं सकलसम्पन्निकेतात्स्वनिकेतात् पुलहाश्रमं प्रववाज ॥८॥

एवं वर्ष अयुत सहस्र पर्यन्त अवसितः कर्मनिर्वाण अवसरः अधिभुज्यमानं स्वतनयेभ्यः रिक्थं पितृ पैतामहं यथादायं विभज्य स्वयं सकल सम्पत् निकेतात् स्वनिकेतात् पुलह आश्रमं प्रववाज ॥८॥

एवं	इस प्रकार
अयुत सहस्र वर्ष	एक करोड़ वर्ष
पर्यन्त	तक
कर्मनिर्वाण	कर्मोंके समाप्त होनेका (राज्य-भोगका प्रारब्ध)
अवसरः	समय
अवसितः	समाप्त करके
अधिभुज्यमानं	भोगो जाती हुई
पितृ पैतामहं	पिता-पितामहकी
रिक्थं	सम्पत्तिको
स्वतनयेभ्यः	अपने पुत्रोंको
यथादायं	उत्तराधिकारके अनुसार
विभज्य	बांटकर
स्वयं	स्वयं
सकल सम्पत् निकेतात्	सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके निवास
स्वनिकेतात्	अपने भवनसे
पुलह आश्रमं	पुलह आश्रमको
प्रवव्राज	चले गये ॥८॥

यत्र ह वाव भगवान् हरिरद्यापि तत्रत्यानां निजजनानां वात्सल्येन संनिधाप्यत इच्छारूपेण ॥९॥

यत्र ह वाव भगवान् हरिः अद्य अपि तत्र त्यानां निजजनानां वात्सल्येन संनिधाप्यत इच्छारूपेण ॥९॥

यत्र ह वाव	जहां निश्चित रूपसे
भगवान् हरिः	भगवान् श्रीहरि
अद्य अपि	आज भी
तत्र त्यानां	वहां रहनेवाले
निजजनानां	अपने भक्तोंको
वात्सल्येन	वात्सल्यवश
इच्छारूपेण	अभीष्ट रूपमें
संनिधाप्यत	सामीप्य देते रहते हैं ॥९॥

यत्राश्रमपदान्युभयतोनाभिभिर्दृषच्चक्रैश्चक्रनदी नाम सरित्प्रवरा सर्वतः पवित्रीकरोति ॥१०॥

यत्र आश्रम पदानि उभयतः नाभिभिः दृषत् चक्रैः चक्रनदी नाम सरित् प्रवरा सर्वतः पवित्री करोति ॥१०॥

यत्र	यहां
आश्रम पदानि	आश्रमोंके समीप
चक्रनदी नाम	चक्रनदी (गण्डकी) नामक

सरित् प्रवरा	सरिता श्रेष्ठ
उभयतः	दोनों ओर
नाभिर्दृषत् चक्रैः	नाभिके समान दीखनेवाले चक्रोंसे युक्त (शालग्राम शिला) से
सर्वतः पवित्री करोति	चारों ओर पवित्र करती है ॥१०॥

तस्मिन् वाव किल स एकलः पुलहाश्रमोपवने विविध-कुसुमकिसलयतुलसिकाम्बुभिः कन्दमूलफलोपहारैश्च समीहमानो भगवत आराधनं विविक्त उपरतविषयाभिलाष उपभृतोपशमः परां निर्वृतिमवाप ॥११॥

तस्मिन् वाव किल स एकलः पुलह आश्रम उपवने विविध कुसुम किसलय तुलसिका अम्बुभिः कन्द मूल फल उपहारैः च समीहमानः भगवत आराधनं विविक्त उपरत विषय अभिलाष उपभृत उपशमः परां निर्वृतिं अवाप ॥११॥

वाव किल	निश्चय ही
तस्मिन्	उस
पुलह आश्रम उपवने	पुलहाश्रमके बगीचे-में
स एकलः	वे अकेले रहते थे
विविध कुसुम किसलय तुलसिका अम्बुभिः	अनेक प्रकारके पुष्प नव-पल्लव तुलसीदल तथा जलसे
कन्द मूल	कन्द (जिन्हें भूना जा सकता है) मूल (जो भूने नहीं जाते)
च फल उपहारैः	एवं फलकी भेंटसे
भगवत आराधनं	भगवान्‌की पूजाकी
समीहमानः	भली प्रकार चेष्टा करते थे
विविक्त उपरत विषय अभिलाष	(उस) एकान्तमें भोगोंकी अभिलाषा त्यागकर
उपभृत उपशमः	वैराग्य धारण करके
परां निर्वृतिं अवाप	परम-आनन्द प्राप्त किया ॥११॥

तयेत्थमविरतपुरुषपरिचर्यया भगवति प्रवर्धमानानुराग-भरद्रुतहृदयशैथिल्यः प्रहर्षवेगेनात्मन्युद्भिद्यमानरोमपुलककुलक औत्कण्ठ्यप्रवृत्तप्रणयबाष्पनिरुद्धावलोकनयन एवं निजरमणारुण-चरणारविन्दानुध्यानपरिचितभक्तियोगेन परिप्लुतपरमाह्लाद-गम्भीरहृदयह्रदावगाढधिषणस्तामपि क्रियमाणां भगवत्सपर्यां न सस्मार ॥१२॥

तया इत्थं अविरत पुरुष परिचर्यया भगवति प्रवर्धमान अनुरागभर द्रुतहृदय शैथिल्यः प्रहर्ष वेगेन आत्मनि उद्भिद्यमान रोम पुलक कुलक औत्कण्ठ्य प्रवृत्त प्रणय बाष्प निरुद्ध अवलोक नयन एवं निज रमण अरुण चरणारविन्द अनुध्यान परिचित भक्तियोगेन परिप्लुत परम आह्लाद गम्भीर हृदयह्रद अवगाढ धिषणः तां अपि क्रियमाणां भगवत् सपर्यां न सस्मार ॥१०॥

तया	उनके द्वारा
इत्थं	इस प्रकार
अविरत	अविराम
पुरुष	
परिचर्यया	परम पुरुषकी पूजा करनेसे
भगवति	भगवान्‌में
प्रवर्धमान	बढ़ते हुए
अनुरागभर	अनुरागसे भरे
द्रुत हृदय	द्रवित हृदय
शैथिल्यः	शिथिल हो जाता था।
प्रहर्ष वेगेन	अत्यन्त हर्षवेगसे
आत्मनि	शरीरमें
रोम कुलक	रोम-समूह
पुलक	
उद्भिद्यमान	पुलकित होनेसे उठ खड़े होते थे।
औत्कण्ठ्य	
प्रवृत्त	उत्कण्ठासे हुए
प्रणय बाष्प	प्रेमाश्रुओंसे
नयन अवलोक	नेत्रोंका देखना
निरुद्ध	रुक जाता था।
एवं	इस प्रकार
निज रमण	अपने स्वामीके
अरुण	
चरणारविन्द	लाल-लाल चरण-कमलोंके
अनुध्यान	बार बार ध्यानसे

परिचित भक्तियोगेन	परिचित भक्ति-योगसे
परम आह्लाद	परम आनन्दसे
परिप्लुत	भीगकर
गम्भीर	गम्भीर
हृदयह्रद	हृदय रूपी ह्रदमें
अवगाढ	डूबी हुई
धिषणः	बुद्धि होनेसे
तां क्रियमाणां	उस की जाती हुई
भगवत् सपर्यां	भगवत्-सेवाको
अपि न सस्मार	भी नहीं स्मरण कर पाते थे ॥१२॥

इत्थं धृतभगवद्व्रतऐणेयाजिनवाससानुसवनाभिषेकार्द्र-कपिशकुटिलजटाकलापेन च विरोचमानः सूर्यर्चा भगवन्तं हिरण्मयं पुरुषमुज्जिहाने सूर्यमण्डलेऽभ्युपतिष्ठन्नेतदु होवाच—॥१३॥

इत्थं धृत भगवद् व्रत ऐणेय अजिन वाससा अनुसवन अभिषेक आर्द्र कपिश कुटिल जटा कलापेन च विरोचमानः सूर्य अर्चा भगवन्तं हिरण्मयं पुरुषं उज्जिहाने सूर्यमण्डले अभि उपतिष्ठन् एतत् उ ह उवाच ॥१३॥

इत्थं	इस प्रकार
धृत भगवद् व्रत	भगवत् (सेवाका) व्रत-धारण करके
ऐणेय	कृष्ण-मृगचर्मका
वाससा	वस्त्र धारण किये,
अनुसवन	तीनों समय
अभिषेक आर्द्र	स्नान करनेसे गीले
कपिश कुटिल जटा	भूरे-घुँघराले
कलापेन च	जटा-समूहसे ही
उज्जिहाने	उगते हुए
सूर्यमण्डले	सूर्य-मण्डलमें
अभि उपतिष्ठन्	(सूर्य-सम्बन्धी ऋचाओंसे) उपस्थान करते हुए
विरोचमानः	ज्योतिर्मय प्रकाशित
हिरण्मयं पुरुषं	हिरण्यगर्भ पुरुष
भगवन्तं	भगवान्
सूर्य अर्चा	सूर्यकी पूजा करते
एतत् उ ह	यह निश्चित
उवाच	बोलते थे ॥१३॥

परोरजः सवितुर्जातवेदो
देवस्य भर्गो मनसेदं जजान ।

सुरेतसादः पुनराविश्य चष्टे
हंसं गृध्राणं नृषद्विड्भिरामिमः ॥१४॥

परः रजः सवितुः जातवेदः देवस्य भर्गः मनसा इदं जजान सुरेतसादः पुनः आविश्य चष्टे हंसं गृध्राणं नृषद्विड्भिरां इमः ॥१४॥

जातवेदः	अग्नि-स्वरूप	**चष्टे**	इसका साक्षी है और
सवितुः	सूर्य भगवान्	**सुरेतसादः**	अपनी-चित्त शक्तिसे रक्षा करता है
परः रजः	रजोगुण (प्रकृति)से परे हैं।	**गृध्राणं**	विषय-लोलुपों (जीवों)का भी धारण करता है
देवस्य भर्गः	ये परमात्माके तेज हैं।		
मनसा इदं	(जिन्होंने) संकल्पसे ही इस संसारको	**इमः**	हम
जजान	उत्पन्न किया है।	**हंसं नृषद्विड्भिरां इमः**	उसी बुद्धि प्रवर्तक हंस (तेज)की शरण लेते हैं ॥१४॥
पुनः आविश्य	फिर इसमें प्रवेश करके		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
पञ्चमस्कन्धे भरतचरिते भगवत्परिर्यायां सप्तमोऽयायः ॥७॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

एकदा तु महानद्यां कृताभिषेकनैयमिकावश्यको ब्रह्माक्षरमभिगृणानो मुहूर्तत्रयमुदकान्त उपविवेश ॥१॥

एकदा तु महानद्यां कृत अभिषेक नैयमिक आवश्यकः ब्रह्माक्षरम् अभिगृणानः मुहुर्तत्रयम् उदकान्तं उपविवेश ॥१॥

एकदा तु	एकबार तो	**ब्रह्माक्षरम्**	गायत्री
महानद्यां	महानदी (गण्डकी)में	**अभिगृणानः**	जप करते हुए
		मुहुर्तत्रयम्	तीन मुहूर्त तक
अभिषेक कृत	स्नान करके	**उदकान्तं**	जल (धारा)के
आवश्यकः	आवश्यक		समीप
नैयमिक	नित्य नियमका	**उपविवेश**	बैठे रहे ॥१॥

तत्र तदा राजन् हरिणी पिपासया जलाशयाभ्याशमेकैवोपजगाम ॥२॥

तत्र तदा राजन् हरिणी पिपासया जलाशय अभ्याशम् एक एव उपजगाम ॥२॥

राजन्	परीक्षित् !	**पिपासया**	जल पीने के लिए
तदा तत्र	उसी समय वहाँ	**हरिणी**	हरिणी
जलाशय	नदीके	**एक एव**	अकेली ही
अभ्याशं	समीप	**उपजगाम**	आयी ॥२॥

तया पेपीयमान उदके तावदेवाविदूरेण नदतो मृगपतेरुन्नादो लोकभयङ्कर उदपतत् ॥३॥

तया पेपीयमाने उदके तावत् एव अविदूरेण नदतः मृगपतेः उन्नादः लोक भयङ्करः उदपतत् ॥३॥

तया	उसके	**नदतः मृगपतेः**	गर्जना करते सिंहका
उदके			
पेपीयमाने	पानीं पीते हुए	**लोक भयङ्कर**	सबके लिए डरावनी
तावत् एव	उसी समय	**उन्नादः**	उच्च ध्वनि
अविदूरेण	समीप ही	**उदपतत्**	गूंजी ॥३॥

तमुपश्रुत्य सा मृगवधूः प्रकृतिविक्लवा चकितनिरीक्षणा सुतरामपि हरिभयाभिनिवेशव्यग्रहृदया पारिप्लवदृष्टिरगततृषा भयात् सहसैवोच्चक्राम ॥४॥

तं उपश्रुत्य सा मृगवधूः प्रकृति विक्लवा चकित निरीक्षणा सुतरां अपि हरिभय अभिनिवेश व्यग्रहृदया पारिप्लव दृष्टिः अगत तृषा भयात् सहसा एव उच्चक्राम ॥४॥

तं उपश्रुत्य	उस (गर्जना)को समीप सुनकर	**अभिनिवेश**	सिंहके भयसे आक्रान्त
सा मृगवधू	वह मृग पत्नी	**व्यग्रहृदया**	बहुत धड़कते हृदयसे
प्रकृति		**अगत तृषा**	प्यास न बुझनेपर भी
विक्लवा	स्वभावसे ही डरपोक	**परिप्लव**	
चकित		**दृष्टिः**	(नदी) कूद जानेके विचारसे
निरीक्षणा	चौंककर (इधर-उधर) देखता	**भयात्**	भयके कारण
सुतरां अपि	उस समय भी	**सहसा एव**	अचानक ही
हरिभय		**उच्चक्राम**	उछल पड़ी ॥४॥

तस्या उत्पतन्त्या अन्तर्वत्न्या उरुभयावगलितो योनिनिर्गतो गर्भः स्रोतसि निपपात ॥५॥

तस्या उत्पतन्त्या अन्तर्वत्न्या उरुभय अवगलितः योनिनिर्गतः गर्भः स्रोतसि निपपात ॥५॥

अन्तर्वत्न्या	गर्भवती	**गर्भः**	गर्भ
तस्या	उस (हरिणी)के	**योनिनिर्गतः**	योनिद्वारसे
उत्पतन्त्या	उछलनेपर		निकलकर
उरुभय	बहुत भयसे	**स्रोतसि**	(नदी की) धारामें
अवगलितः	स्थानच्युत	**निपपात**	गिर पड़ा ॥५॥

तत्प्रसवोत्सर्पणभयखेदातुरा स्वगणेन वियुज्यमाना कस्याञ्चिद्दर्यां कृष्णसारसती निपपाताथ च ममार ॥६॥

तत् प्रसव उत्सर्पण भय खेद आतुरा स्वगणेन वियुज्यमाना कस्याञ्चित् दर्यां कृष्ण सारसती निपपात अथ च ममार ॥६॥

कृष्ण सारसती	कृष्ण मृग पत्नी	**स्वगणेन**	अपने यूथसे
तत्	उस	**वियुज्यमाना**	विमुक्त होकर
प्रसव उत्सर्पण	गर्भ गिरजानेसे,	**कस्याञ्चित्**	
भय	(सिंहके) भयसे,	**दर्यां**	किसी गुफामें
खेद	(लम्बी छलांगके)	**निपपात**	गिर पड़ी
	श्रमसे	**अथ च**	और
आतुरा	व्याकुल होकर	**ममार**	मर गयी ॥६॥

तं त्वेणकुणकं कृपणं स्रोतसानूह्यमानमभिवीक्ष्यापविद्धं बन्धुरिवानुकम्पया राजर्षिर्भरत आदाय मृतमातरमित्याश्रमपदमनयत् ॥७॥

तं तु एण कुणकं कृपणं स्रोतसात् अह्यमानं अभिवीक्ष्य अपविद्धं बन्धुः इव अनुकम्पया राजर्षिः भरत आदाय मृतमातरं इति आश्रमपदं अनयत् ॥७॥

तं	उस
अपविद्धं	(मातासे) बिछुड़े
कृपणं	बेचारे
एण कुणकं तु स्रोतसात्	मृगीके बच्चेको तो
अह्यमानं	धाराओंसे बहाये जाते
अभिवीक्ष्य	देखकर
बन्धुः इव	आत्मीयके समान
अनुकम्पया	कृपासे
आदाय	लेकर
राजर्षिः भरत	राजर्षि भरत
मृतमातरं	'इसकी मां मर गयी है'
इति	ऐसा समझकर
आश्रमपदं	(अपने) आश्रम स्थानपर
अनयत्	ले आये ॥७॥

तस्य ह वा एणकुणक उच्चैरेतस्मिन् कृतनिजाभिमानस्याहरहस्तत्पोषणपालनलालनप्रीणनानुध्यानेनात्मनियमाः सहयमाः पुरुषपरिचर्यादय एकैकशः कतिपयेनाहर्गणेन वियुज्यमानाः किल सर्व एवोदवसन् ॥८॥

तस्य ह वा एण कुणक उच्चैःएतस्मिन् कृत निज अभिमानस्य अहरहः तत् पोषण पालन लालन प्रीणन अनुध्यानेन आत्मनियमाः सहयमाः पुरुष परिचर्यादय एक एकशः कतिपयेन अहर्गणेन वियुज्यमानाः किल सर्व एव उदवसन् ॥८॥

ह वा	फिर तो
तस्य	उस
एण कुणक	मृग छौनेके प्रति
एतस्मिन्	इसमें
उच्चैः कृत	प्रगाढ़ भावसे बनायें
निज	
अभिमानस्य	निजत्वके अभिमानसे
अहरहः	दिनोदिन
तत् पोषण	उसके पोषण,
पालन	पालन (रक्षण)
लालन	लाड़ करने
प्रीणन	प्रसन्न करनेके
अनुध्यानेन	चिन्तनमें लगे रहनेसे
आत्मनियमाः	अपने नियम
सहयमाः	(अपरिग्रह, अहिंसादि) यमोंके साथ,
पुरुष परिचर्यादयः	भगवत् पूजा आदि
एक एकैशः	एक एक करके
वियुज्यमानाः	छूटते हुए

कतिपयेन	कुछ	**किल सर्व एव**	तो सभी
अहर्गणेन	दिनोंमें	**उदवसन्**	छूट गये ॥८॥

अहो बतायं हरिणकुणकः कृपण ईश्वररथचरणपरिभ्रमण-रयेण स्वगणसुहृद्बन्धुभ्यः परिवर्जितः शरणं च मोपसादितो मामेव मातापितरौ भ्रातृज्ञातीन् यौथिकांश्चैवोपेयाय नान्यं कञ्चन वेद मय्यतिविस्रब्धश्चात एव मया मत्परायणस्य पोषण-पालनप्रीणनलालनमनसूयुनानुष्ठेयं शरण्योपेक्षा दोषविदुषा ॥९॥

अहो बत अयं हरिण कुणकः कृपण ईश्वररथ चरण परिभ्रमण रयेण स्वगण सुहृत् बन्धुभ्यः परिवर्जितः शरणं च मा उपसादितः मां एव मातापितरौ भ्रातृज्ञातीन् यौथिकान् च उपेयाय न अन्यम् कञ्चन वेद मयि अति विस्रब्धः च अत एव मया मत् परायणस्य पोषण पालन प्रीणन लालनं अनसूयुना अनुष्ठेयं शरण्य उपेक्षा दोष विदुषा ॥९॥

अहो बत	अहो खेदकी बात है,	**मां एव**	मुझे ही
अयं कृपण	यह बेचारा	**मातापितरौ**	माता-पिता,
हरिण कुणकः	मृग-छौना	**भ्रातृज्ञातीन्**	भाई, सजातीय,
ईश्वररथ	भगवान्के(कालरूप) रथके	**च यौथिकान्**	
		एव	तथा यूथके साथी भी
चरण			
परिभ्रमण	चक्रोंके घूमनेके	**उपेयाय**	समझता है।
रयेन	वेगसे	**अन्यं कञ्चन**	दूसरे किसीको
स्वगण सुहृत्	अपने दल, सुहृद,	**न वेद**	नहीं जानता
बन्धुभ्यः	बन्धुओंसे	**मयि**	मुझपर
परिवर्जितः	सर्वथा रहित होकर	**अति**	
मा	मेरी	**विस्रब्धः च**	बहुत विश्वास भी करता है।
शरणं च	शरणमें ही		
उपसादितः	पहुँचा दिया गया।		

अत एव	अतएव
मया	मुझे
शरण्य उपेक्षा	शरणागतकी उपेक्षाके
दोष विदुषा	दोष जाननेवाले को
मत् परायणस्य	मेरे परायणका
पोषण पालन	पोषण, पालन,
पीणन लालन	प्रसन्न करना, लालन
अनसूयुना	बिना दोष बुद्धिके
अनुष्ठेयं	करना चाहिए ॥९॥

नूनं ह्यार्याः साधव उपशमशीलाः कृपणसुहृद एवंविधार्थे स्वार्थानपि गुरुतरानुपेक्षन्ते ॥१०॥

नूनं हि आर्याः साधवः उपशमशीलाः कृपण सुहृत् एवं विध अर्थे स्वार्थान् अपि गुरुतरान् उपेक्षन्ते ॥१०॥

हि नूनं	क्योंकि निश्चय
आर्याः	श्रेष्ठ
साधवः	सत्पुरुष
उपशमशीलाः	शान्त स्वभाव,
कृपणसुहृत्	दीनोंके हितैषी
एवं विध अर्थे	इस प्रकारके प्रयोजनसे
गुरुतरान्	बहुत बड़े
स्वार्थान् अपि	स्वार्थों की भी
उपेक्षन्ते	उपेक्षा कर देते हैं ॥१०॥

इति कृतानुषङ्ग आसनशयनाटनस्थानाशनादिषु सह मृग-जहुना स्नेहानुबद्धहृदय आसीत् ॥११॥

इति कृत अनुषङ्ग आसन शयन अटन स्थान अशनादिषु सह मृग जहुना स्नेह अनुबद्ध हृदय आसीत् ॥११॥

इति	इस प्रकार
कृत अनुषङ्ग	आसक्ति करके
आसन	बैठते,
शयन	सोते,
अटन	घूमते,
स्थान	ठहरते,
अशनादिषु	भोजन आदिके समय भी
मृग जहुना सह स्नेह अनुबद्ध	मृगके बच्चेके साथ
हृदय	स्नेहसे बँधे हृदय
आसीत्	हो गये ॥११॥

कुशकुसुमसमित्पलाशफलमूलोदकान्याहरिष्यमाणो वृक-सालावृकादिभ्यो भयमाशंसमानो यदा सह हरिणकुणकेन वनं समाविशति ॥१२॥

कुशकुसुम समित् पलाश फलमूल उदकानि आहरिष्यमाणः वृक सालावृकादिभ्यः भयं आशंसमानः यदा सह हरिण कुणकेन वनं समाविशति ॥१२॥

कुशकुसुम	कुश, पुष्प	**भयं**	भयकी
समित् पलाश	समिधा, पत्ते	**आशंसमानः**	आशंका करके
फलमूल	फल, मूल	**हरिण कुणकेन**	
उदकानि यदा	जल जब	**सह**	हरिणके बच्चेके
आहरिष्यमाणः	ले आने होते थे		साथ
वृक	भेड़िये	**वनं**	
सालावृका-		**समाविशति**	वनमें प्रवेश करते
दिभ्यः	कुत्तों आदिसे		थे ॥१२॥

पथिषु च मुग्धभावेन तत्र तत्र विषक्तमतिप्रणयभरहृदयः कार्पण्यात्स्कन्धेनोद्वहति एवमुत्सङ्ग उरसि चाधायोपलालयन्मुदं परमामवाप ॥१३॥

पथिषु च मुग्धभावेन तत्र तत्र विषक्तं अति प्रणय भर हृदयः कार्पण्यात् स्कन्धेन उद्वहति एवं उत्सङ्ग उरसि च आधाय उपलालयन् मुदं परमां अवाप ॥१३॥

पथिषु च	मार्गमें भी	**भर हृदयः**	भरे हृदय
मुग्धभावेन	मुग्धभावसे	**कार्पण्यात्**	कृपा करके (उसे)
तत्र तत्र	स्थान-स्थानपर	**स्कन्धेन**	कन्धेपर
विषक्तं	(घास आदिसे)	**उद्वहति**	ढोते थे
	अटकनेपर	**एवं**	इसी प्रकार
अति प्रणय	अतिशय प्रेमसे	**उत्सङ्ग**	गोदमें

च उरसि	तथा हृदयसे	**परमां मुदं**	परम आमोद
आधाय	लगाकर	**अवाप**	पाते थे ॥१३॥
उपलालयन्	लाड़ करते हुए		

क्रियायां निर्वर्त्यमानायामन्तरालेऽप्युत्थायोत्थाय यदैनमभिचक्षीत तर्हि वाव स वर्षपतिः प्रकृतिस्थेन मनसा तस्मा आशिष आशास्ते स्वस्ति स्तादुत्स ते सर्वत इति ॥१४॥

क्रियायां निर्वर्त्यमानायां अन्तराले अपि उत्थाय उत्थाय यत् एनं अभिचक्षीत तर्हि वाव स वर्षपतिः प्रकृतिस्थेन मनसा तस्मा आशिष आशास्ते स्वस्ति तात् वत्स ते सर्वत इति ॥१४॥

क्रियायां	(नित्य-नैमित्तिक) कर्मोंको	**प्रकृतिस्थेन मनसा**	मनसे प्रकृतस्थ (निश्चिन्त) होते थे।
निर्वर्त्यमानायां	सम्पन्न करते समय भी	**तस्मा**	उसको
अन्तराले अपि	बीच-बीचमें भी	**आशिष**	
उत्थाय उत्थाय	उठ-उठकर	**आशास्ते**	आशीर्वाद देते थे—
यत् एनं	जब इसको	**वत्स ते**	'वत्स तुम्हारा
अभिचक्षीत	देख लेते थे	**सर्वत**	सब ओरसे
तर्हि वाव	तभी निश्चित	**स्वस्ति तात्**	कल्याण हो'
स वर्षपतिः	वे एक देशके स्वामी	**इति**	इस प्रकार ॥१४॥

अन्यदा भृशमुद्विग्नमना नष्टद्रविण इव कृपणः सकरुणमतितर्षेण हरिणकुणकविरहविह्वलहृदयसन्तापस्तमेवानुशोचन् किल कश्मलं महदभिरम्भित इति होवाच ॥१५॥

अन्यदा भृशं उद्विग्नमना नष्ट द्रविण इव कृपणः सकरुणं अति तर्षेण हरिण कुणक विरह विह्वल हृदय सन्तापः तं एव अनुशोचन् किल कश्मलं महत् अभिरम्भित इति ह उवाच ॥१५॥

अन्यदा	अन्यथा (कभी उसके न दीखनेपर)	**विरह विह्वल**	वियोगसे व्याकुल
भृशं उद्विग्न-मना	अत्यन्त उद्विग्न मन	**हृदय सन्तापः**	सन्तप्त-हृदय
द्रविण नष्ट	धन नष्ट हुए	**तं एव**	उसकी ही
कृपणः	दीन (पुरुष)	**अनुशोचन्**	बार-बार चिन्ता करते,
इव	की भांति	**किल**	आश्चर्य है कि
अति तर्षेण	अत्यन्त प्यास (उत्कंठा) पूर्वक	**महत् कश्मलं**	महान् शोक
स करुणं	करुणावश	**अभिरम्भित**	आविष्ट
हरिण कुणक	हरिणके बच्चेके	**इति ह उवाच**	इस प्रकारसे ही कहने लगते ॥१५॥

*भरत उवाच-**

अपि बत स वै कृपण एणबालको मृतहरिणीसुतोऽहो ममनार्यस्य शठकिरातमतेरकृतसुकृतस्य कृतविस्रम्भ आत्मप्रत्ययेन तदविगणयन् सुजन इवागमिष्यति ॥१६॥

अपि बत स वै कृपण एण बालकः मृत हरिणी सुतः अहो मम् अनार्यस्य शठ किरातमतेः अकृत सुकृतस्य कृत विस्रम्भः आत्मप्रत्ययेन तत् अविगणयन् सुजन इव आगमिष्यति ॥१६॥

अपि बत	क्या फिर	**अकृत सुकृतस्य**	पुण्यहीनपर
स वै कृपण	वही बेचारा	**कृत विस्रम्भः**	विश्वास करके
एण बालकः	मृग-शावक	**आत्मप्रत्ययेन**	मुझे अपना मानकर
मृत हरिणी सुतः	मृत हरिणीका छौना	**तत् अविगणयन्**	उस (मेरी दुष्टता) को न गिनकर
अहो	अहो	**सुजन इव**	सत्पुरुषोंके समान
मम् अनार्यस्य	मुझ नीच	**आगमिष्यति**	आवेगा ? ॥१६॥
शठ किरातमतेः	दुष्ट बहेलिये-सी बुद्धिवाले		

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें में नहीं है ।

अपि क्षेमेणास्मिन्नाश्रमोपवने शष्पाणि चरन्तं देवगुप्तं द्रक्ष्यामि ॥१७॥

अपि क्षेमेण अस्मिन् आश्रम उपवने शष्पाणि चरन्तं देवगुप्तं द्रक्ष्यामि ॥१७॥

अपि	क्या	**चरन्तं**	हरे-तृण चरते
क्षेमेण	कुशलपूर्वक	**देवगुप्तं**	भगवान्‌की कृपासे सुरक्षित
अस्मिन्	इस		
आश्रम उपवने	आश्रमके बगीचेमें	**द्रक्ष्यामि**	(उसे मैं) देखूँगा ॥१७॥
शष्पाणि			

अपि च न वृकः सालावृकोऽन्यतमो वा नैकचर एकचरो वा भक्षयति ॥१८॥

अपि च न वृकः सालावृकः अन्यतमः वा न एकचर एकचरः वा भक्षयति ॥८॥

अपि च	कहीं (उसे)	**न एकचर**	दलमें रहनेवाला
वृकः	भेड़िया,	**वा एकचरः**	या अकेले रहने वाला
सालावृकः वा	कुत्ता अथवा		
अन्यतमः	कोई दूसरा	**भक्षयति न**	खा न जाय ॥१८॥

निम्लोचति ह भगवान् सकलजगत्क्षेमोदयस्त्रय्यात्माद्यापि मम न मृगवधून्यास आगच्छति ॥१९॥

निम्लोचति ह भगवान् सकल जगत् क्षेम उदयः त्रयी आत्मा अद्यापि मम न मृगवधून्यास आगच्छति ॥१९॥

सकल जगत्	सम्पूर्ण विश्वके	**अद्यापि**	अब तक भी
क्षेम उदयः	कुशलके लिए प्रकट	**मम**	मेरी
त्रयी आत्मा	वेदत्रयी स्वरूप	**मृगवधून्यास**	मृगीकी धरोहर
भगवान्	भगवान् (सूर्य)	**न आगच्छति**	नहीं आ रहा है ॥१९॥
निम्लोचति ह	अस्त होने ही वाले हैं,		

अपिस्विदकृतसुकृतमागत्य मां सुखयिष्यति हरिणराजकुमारो विविधरुचिरदर्शनीयनिजमृगदारकविनोदैरसन्तोषं स्वानामपनुदन् ॥२०॥

अपि स्वित् अकृत सुकृतं आगत्य मां सुखयिष्यति हरिणराजकुमारः विविध रुचिर दर्शनीय निज मृगदारक विनोदैः असन्तोषं स्वानां अपनुदन् ॥२०॥

अपि स्वित्	क्या (वह)
हरिण-	
राजकुमारः	हरिण-राजकुमार
अकृत सुकृतं	(मुझ) पुण्यहीनके (पास)
आगत्य	आ कर
विविध रुचिर	अनेक प्रकारकी
दर्शनीय	देखने ही योग्य
मृगदारक	मृग-छौनेके
निज विनोदैः	अपनी क्रीड़ाओंसे
स्वानां	
असन्तोषं	अपने जनोंका असन्तोष
अपनुदन्	दूर करते
मां	मुझे
सुखयिष्यति	सुखी करेगा ॥२०॥

क्ष्वेलिकायां मां मृषासमाधिनाऽऽमीलितदृशं प्रेमसंरम्भेण चकितचकित आगत्य पृषदपरुषविषाणाग्रेण लुठति ॥२१॥

क्ष्वेलिकायां मां मृषा समाधिना आमीलित दृशं प्रेम संरम्भेण चकित चकित आगत्य पृषत् अपरुष विषाण अग्रेण लुठति ॥२१॥

प्रेम संरम्भेण	प्रणय कोपसे
क्ष्वेलिकायां	हँसीमें
मृषा	
समाधिना	झूठो समाधि (के बहाने) से
आमीलित दृशं	नेत्र बन्द किए
मां	मुझे
चकित चकित	अत्यन्त आश्चर्यसे
आगत्य	पास आकर
पृषत्	छोटे
अपरुष	कठोर न हुए
विषाण अग्रेण	सींगोंकी नोंकसे
लुठति	ठेलता था ॥२१॥

आसादितहविषि बर्हिषी दूषिते मयोपालब्धो भीतभीतः सपद्युपरतरास ऋषिकुमारवदवहितकरणकलाप आस्ते ॥२२॥

आसादित हविषि बर्हिषि दूषिते मया उपालब्धः भीतभीतः सपदि उपरत रास ऋषिकुमारवत् अवहित करण कलाप आस्ते ॥२२॥

बर्हिषि	कुशोंपर	**ऋषिकुमार-**	
आसादित	रखी	**वत्**	ऋषिकुमारके
हविषि	हवन-सामग्री		समान
दूषिते	(मुख लगाकर)	**सपदि**	तत्काल
	दूषित (जूठी) कर	**उपरत रास**	उछल-कूद त्यागकर
	देने पर	**अवहित**	रोकी हुई
मया	मेरे द्वारा	**करण कलाप**	इन्द्रियोंकी चेष्टा
उपालब्धः	डांटनेपर		(वाला)
भीतभीतः	बहुत डरकर	**आस्ते**	(चुपचाप) बैठ
			जाता था ॥२२॥

किं वा अरे आचरितं तपस्तपस्विन्यानया यदियमवनिः सविनयकृष्णसारतनयतनुतरसुभगशिवतमाखरखुरपदपङ्क्तिभिर्द्रविणविधुरातुरस्य कृपणस्य मम द्रविणपदवीं सूचयन्त्यात्मानं च सर्वतः कृतकौतुकं द्विजानां स्वर्गापवर्गकामानां देवयजनं करोति ॥२३॥

किं वा अरे आचरितं तपः तपस्विनि अनया यत् इयं अवनिः सविनय कृष्णसार तनय तनुतर सुभग शिवतम आखर खुरपद पङ्क्तिभिः द्रविण विधुर आतुरस्य कृपणस्य मम द्रविण पदवीं सूचयन्ति आत्मानं च सर्वतः कृत-कौतुकं द्विजानां स्वर्ग अपवर्ग कामनां देवयजनं करोति ॥२३॥

अनया	इस
तपस्विनि	तपस्विनी (पृथ्वी)ने
अरे वा	अरे भला
किं तपः	क्या तपस्या
आचरितं	की है
यत् इयं	जो यह
अवनिः	पृथ्वी
सविनय	अत्यन्त विनीत
कृष्णसार	
तनय	कृष्ण-मृगके छौनेके
तनुतर	बहुत छोटे-छोटे
सुभग	सौभाग्यदायी
शिवतम	परम कल्याणकारी
आखर	तीक्ष्ण
खुरपद	खुरोंके चिह्नोंकी
पङ्क्तिभिः	पंक्तियोंसे
द्रविण विधुर	द्रव्य रहित
आतुरस्य	व्याकुल
कृपणस्य	दीन हो रहे
मम	मेरे
द्रविण	(मृगरूपी) धनके
पदवीं	स्थानको
सूचयन्ति	सूचित करते हुए
आत्मानं च	अपनेको भी
सर्वतः	सब ओर
कृतकौतुकं	(इन पद-चिह्नोंसे) भूषित करके
स्वर्ग अपवर्ग	स्वर्ग या मोक्षकी
कामानां	कामना वाले
द्विजानां	द्विजोंके लिए
देवयजनं	देवयज्ञ (स्थल)
करोति	बना रही हैं*॥२३॥

अपिस्विदसौ भगवानुडुपतिरेनं मृगपतिभयान्मृतमातरं मृगबालकं स्वाश्रमपरिभ्रष्टमनुकम्पया कृपणजनवत्सलः परिपाति ॥२४॥

अपि स्वित् असौ भगवान् उडुपतिः एनं मृगपति भयात् मृतमातरं मृगबालकं स्व आश्रमपरिभ्रष्टं अनुकम्पया कृपणजनवत्सलः परिपाति ॥२४॥

अपि स्वित्	अथवा क्या
असौ	ये
कृपणजन-वत्सलः	दुःखी लोगोंपर वात्सल्य रखने वाले

---

*स्मृति तथा पुराणोंके अनुसार जहाँ कृष्ण-मृग पाये जाते हैं, वह भूमि पवित्र और यज्ञानुष्ठान योग्य होती है।

भगवान्	
उडुपतिः	भगवान् चन्द्रमा
मृगपति भयात्	सिंहके भयसे
मृतमातरं	मरी मातावाले
स्व आश्रम-	
परिभ्रष्टं	अपने आश्रमसे भटके
एनं	इस
मृगबालकं	मृग-छौनेकी
अनुकम्पया	दयावश
परिपाति	रक्षा करते हैं ॥२४॥

किं वाऽऽत्मजविश्लेषज्वरदवदहनशिखाभिरुपतप्यमान-हृदयस्थलनलिनीकं मामुपसृतमृगीतनयं शिशिरशान्तानुराग-गुणितनिजवदनसलिलामृतमयगभस्तिभिः स्वधयतीति च ॥२५॥

किं वा आत्मज विश्लेष ज्वरदवदहन शिखाभिः उपतप्यमान हृदय-स्थलनलिनीकं मां उपसृत्य मृगीतनयं शिशिर शान्त अनुराग गुणित निज वदन सलिल अमृतमय गभस्तिभिः स्वधयतीति च ॥२५॥

आत्मज विश्लेष	पुत्रोंके वियोगरूपी
ज्वरदवदहन	ज्वर दावाग्निकी
शिखाभिः	लपटोंसे
उपतप्यमान	सन्तप्त होते
हृदयस्थल-	
नलिनीकं	हृदय कमलवाले
मृगीतनयं	मृग-छौनेके साथ
मां उपसृत्य	मेरे समीप आकर (चन्द्रदेव)
शिशिर शान्त	शीतल, शान्त
अनुराग गुणित	अनुरागसे प्रवृद्ध
निज वदन	अपने मुखकी
अमृतमय	
सलिल	अमृतमय जल
गभस्तिभिः	किरणोंसे
स्वधयतीति च	(मुझे) शान्त कर रहे हैं ॥२५॥

*श्रीशुक उवाच**-

एवमघटमानमनोरथाकुलहृदयो मृगदारकाभासेन स्वारब्धकर्मणा योगारम्भणतो विभ्रंशितः स योगतापसो

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

भगवदाराधनलक्षणाच्च कथमितरथा जात्यन्तर एणकुणक आसङ्गः साक्षान्निःश्रेयसप्रतिपक्षतया प्राक्परित्यक्तदुस्त्यजहृदयाभिजातस्य तस्यैवमन्तरायविहतयोगारम्भणस्य राजर्षेर्भरतस्य तावन्मृगार्भकपोषणपालनप्रीणनलालनानुषङ्गेणाविगणयत आत्मानमहिरिवाखुबिलं दुरतिक्रमः कालः करालरभस आपद्यत ॥२६॥

एवं अघटमान मनोरथ आकुलहृदयः मृगदारक आभासेन स्तव आरब्ध कर्मणा योगारम्भणतः विभ्रंशितः स योगतापसः भगवत् आराधन लक्षणात् च कथं इतरथा जात्यन्तर एण कुणक आसङ्गः साक्षात् निःश्रेयस प्रतिपक्षतया प्राक् परित्यक्त दुस्त्यज हृदय अभिजातस्य तस्य एवं अन्तराय विहत योग आरम्भणस्य राजर्षेः भरतस्य तावत् मृग अर्भक पोषण पालन प्रीणन लालन अनुषङ्गेण अविगणयत आत्मानं अहिः इव आखु बिलं दुरतिक्रमः कालः करालरभस आपद्यत ॥२६॥

एवं	इस प्रकार
अघटमान	जिनका घटित होना शक्य नहीं
मनोरथस्य	(ऐसे) मनोरथवाले
आकुलहृदयः	व्याकुल हृदय
राजर्षेः	
भरतस्य	राजर्षि भरतका
मृगदारक	मृग-छौनेके
आभासेन	रूपमें प्रतीत होनेवाले
स्व आरब्ध	
कर्मणा	अपने प्रारब्ध कर्मसे
भगवत्	
आराधन	भगवान्‌की आराधना
लक्षण	रूपी
योगारम्भणतः	योग-साधनसे
विभ्रंशितः	च्युत
स योगतापसः	उन योगी तथा तपस्वीका
इतरथा	अन्यथा
जात्यन्तर	दूसरी जाति (पशु)
एण कुणक	मृग-छौनेमें
कथं आसङ्गः	कैसे दृढ़ आसक्ति हो गयी।
साक्षात्	
निःश्रेयस	साक्षात् मोक्षके
प्रतिपक्षतया	विरोधी होनेसे
प्राक्	पहिले

दुस्त्यज	जिनका त्याग बहुत कठिन है
हृदय	
अभिजातस्य	(उन) हृदयसे उत्पन्न पुत्रोंको (जिन्होंने)
परित्यक्त	छोड़ दिया था
तस्य एवं	उनको इस प्रकार
अन्तराय	विघ्नोंके द्वारा
योग आरम्भणस्य	योग-साधनोंके
विहतस्य	नष्ट हो जानेपर
तावत्	उस समय
मृगअर्भक	मृगछौनेके
पोषण पालन	पोषण, पालन
प्रीणन लालन	प्रसन्न करने, लाड़ लड़ानेमें
अनुषङ्गेन	लगे रहकर
आत्मानं	आत्म स्वरूपकी
अविगणयत	अवगणना (उपेक्षा) करते हुए
आखु बिलं	चूहेके बिलमें
अहिः इव	सर्पके समान
करालरभसः	भयानक वेगवाला
दुरतिक्रमः	अनिवारण
कालः	काल
आपद्यत	पास आ गया ॥२६॥

तदानीमपि पार्श्ववर्तिनमात्मजमिवानुशोचन्तमभिवीक्षमाणो मृग एवाभिनिवेशितमना विसृज्य लोकमिमं सह मृगेण कलेवरं मृतमनु न मृतजन्मानुस्मृतिरितरवन्मृगशरीरमवाप ॥२७॥

तदानीं अपि पार्श्ववर्तिनं आत्मजं इव अनुशोचन्तं अभिवीक्षमाणः मृग एव अभिनिवेशितमना विसृज्य लोकं इमं सह मृगेण कलेवरं मृतं अनु न मृत जन्म अनुस्मृतिः इतरवत् मृगशरीरं अवाप ॥२७॥

तदानीं अपि	उस समय भी
पार्श्ववर्तिनं	समीप बैठे
आत्मजं इव	पुत्रके समान
अनुशोचन्तं	शोक करते हुएको
अभिवीक्षमाणः	बार-बार देखते हुए
मृग एव	मृगमें ही
अभिनिवेशित-मना	मनका तादात्म्य होनेसे
सह मृगेण	मृगके साथ
मृतं कलेवरं	मरे शरीरको
अनु इमं लोकं	पीछे इस लोकको
विसृज्य	छोड़कर; किन्तु
इतरवत्	दूसरोंके समान
मृत जन्म	मरे (छूटे) जन्मकी
अनुस्मृतिः	पिछली स्मृति
न	नहीं (छोड़कर)
मृगशरीरं	मृग-देह (में जन्म)
अवाप	पाया ॥२७॥

तत्रापि ह वा आत्मनो मृगत्वकारणं भगवदाराधन-समीहानुभावेनानुस्मृत्य भृशमनुतप्यमान आह ॥२८॥

तत्र अपि ह वा आत्मनः मृगत्व कारणं भगवत् आराधन समीहा अनुभावेन अनुस्मृत्य भृशं अनुतप्यमानः आह ॥२८॥

तत्र अपि	वहाँ भी	**अनुभावेन**	प्रभावसे
ह वा	निश्चित रूपसे (पूर्व-जन्मके)	**आत्मनः**	अपने
		मृगत्व कारणं	मृग हो जानेके कारणको
भगवत् आराधनं	भगवान्‌की आराधनाको	**अनुस्मृत्य**	स्मरण करके
		भृशं	बहुत
समीहा	भली प्रकार चेष्टा करने	**अनुतप्यमानः**	संतप्त होते हुए
		आह	बोले ॥२८॥

अहो कष्टं भ्रष्टोऽहमात्मवतामनुपथाद्यद्विमुक्तसमस्त-सङ्गस्य विविक्तपुण्यारण्यशरणस्यात्मवत आत्मनि सर्वेषामात्मनां भगवति वासुदेवे तदनुश्रवणमननसङ्कीर्तनाराधनानुस्मरणा-भियोगेनाशून्यसकलयामेन कालेन समावेशितं समाहितं कात्स्न्र्येन मनस्तत्तु पुनर्ममाबुधस्यारान्मृगसुतमनु परिसु-स्राव ॥२९॥

अहो कष्टं भ्रष्टः अहं आत्मवतां अनुपथात् यत् विमुक्त समस्त सङ्गस्य विविक्त पुण्य अरण्य शरणस्य आत्मवत आत्मनि सर्वेषां आत्मनां भगवति वासुदेवे तत् अनुश्रवण मनन संकीर्तन आराधन अनुस्मरण अभियोगेन अशून्य सकलयामेन कालेन समावेशितं समाहितं कात्स्न्र्येन मनः तत् तु पुनः मम अबुधस्य आरात् मृगसुतं अनु परिसुस्राव ॥२९॥

अहो कष्टं	अहो, बड़े खेदकी बात है कि	**आत्मवतां**	संयमशील लोगोंके
		अनुपथात्	पीछे चलनेके मार्गसे
अहं	मैं	**भ्रष्टः**	भटक गया

यत्	जो
समस्त सङ्गस्य	सभी आसक्तियोंसे
विमुक्त	छूटकर
विविक्त	एकान्त
पुण्य अरण्य	पवित्र वनमें
शरणस्य	शरण लेकर
सर्वेषां आत्मनां भगवति वासुदेवे	सबके आत्मा भगवान् वासुदेवको
आत्मनि	अपने भीतर
आत्मवत	अपनी आत्माकी भाँति (देखते हुए)
तत् अनुश्रवण	उनका बार-बार श्रवण
मनन संकीर्तन	चिन्तन, गुणगान
आराधन	अर्चन
अनुस्मरण	बार-बार स्मरण
अभियोगेन	करनेमें लगे रहकर
सकलयामेन	सब समयको
अशून्य	(उनसेही) भरकर
कालेन	दीर्घ कालसे
समावेशितं	(उनमें) भली प्रकार प्रविष्ट
कात्स्न्र्येन	सम्पूर्ण
समाहितं	एकाग्र
मनः	मन (हो जानेपर भी)
पुनः	फिर
तत् नु	वह तो
मम अबुधस्य	मुझ अज्ञानीका
आरात्	समीपके
मृगसुतं	मृग-छौनेके
अनु	पीछे
परिसुस्राव	(लक्ष्यसे) परिच्युत हो गया ॥२९॥

इत्येवं निगूढनिर्वेदो विसृज्य मृगीम् मातरं पुनर्भगवत्क्षेत्र-मुपशमशीलमुनिगणदयितं शालग्रामं पुलस्त्यपुलहाश्रमं कालञ्ज-रात्प्रत्याजगाम ॥३०॥

इति एवं निगूढ निर्वेदः विसृज्य मृगीम् मातरं पुनः भगवत् क्षेत्रं उपशमशील मुनिगण दयितं शालग्रामं पुलस्त्य पुलह आश्रमं कालञ्जरात् प्रति आजगाम ॥३०॥

इति एवं	इस प्रकारसे
निगूढ़ निर्वेदः	छिपे वैराग्ययुक्त
मृगीम् मातरं	अपनी मां मृगीको
विसृज्य	छोड़कर
पुनः	फिर
कालञ्जरात्	कालञ्जरसे

शालग्रामं	शालग्राम वाले	**पुलस्त्य पुलह**	पुलस्त्य, पुलह
भगवत् क्षेत्रं	भगवदीय तीर्थ		महर्षियोंके
उपशमशील	विरक्त स्वभाव	**आश्रमं प्रति**	आश्रममें
मुनिगण दयितं	मुनियोंको प्रिय	**आजगाम**	आ गये ॥३०॥

तस्मिन्नपि कालं प्रतीक्षमाणः सङ्गाच्च भृशमुद्विग्न आत्मसहचरः शुष्कपर्णतृणवीरुधा वर्तमानो मृगत्वनिमित्तावसानमेव गणयन्मृगशरीरं तीर्थोदकल्किन्नमुत्ससर्ज ॥३१॥

तस्मिन् अपि कालं प्रतीक्षमाणः सङ्गात् च भृशं उद्विग्नः आत्मसहचरः शुष्क पर्ण तृण वीरुधा वर्तमानः मृगत्व निमित्त अवसानं एव गणयन् मृग शरीरं तीर्थ उदकल्किन्नं उत्ससर्ज ॥३१॥

तस्मिन् अपि कालं	वहाँ भी	**वीरुधा**	क्षुपोंसे
प्रतीक्षमाणः	समयकी प्रतीक्षा करते हुए	**वर्तमानः**	शरीर-निर्वाह करते
		मृगत्व निमित्त	मृग-शरीर मिलनेके निमित्तकी
सङ्गात् च	और आसक्तिसे	**अवसानं एव**	समाप्तिकी ही
भृशं	अत्यधिक	**गणयन्**	प्रतीक्षा करते
उद्विग्नः	उद्विग्न	**तीर्थ**	
आत्मसहचरः	अपने ही साथ (अकेले)	**उदकल्किन्नं**	तीर्थ (गण्डकी)के जलसे भीगे।
शुष्क	सूखे	**मृग शरीरं**	हिरण देहको
पर्ण तृण	पत्ते, तिनके,	**उत्ससर्ज**	त्याग दिया ॥३१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे भरतचरितेऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥

अथ नवमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

अथ कस्यचिद् द्विजवरस्याङ्गिरःप्रवरस्य शमदमतपःस्वाध्यायाध्ययनत्यागसन्तोषतितिक्षाप्रश्रयविद्यानसूयात्मज्ञानानन्दयुक्तस्यात्मसदृशश्रुतशीलाचाररूपौदार्यगुणा नव सोदर्या अङ्गजा बभूवुर्मिथुनं च यवीयस्यां भार्यायाम् ॥१॥

अथ कस्यचित् द्विजवरस्य अङ्गिरः प्रवरस्य शमदम तपः स्वाध्याय अध्ययन त्याग संतोष तितिक्षा प्रश्रय विद्या अनसूया आत्मज्ञान आनन्द युक्तस्य आत्म सदृश श्रुत शील आचार रूप औदार्य गुणा नव सोदर्या अङ्गजा बभूवुः मिथुनं च यवीयस्यां भार्यायाम् ॥१॥

अथ	फिर
कस्यचित्	किसी
अङ्गिरः	
प्रवरस्य	अङ्गिरा-गोत्रीय
शमदम	शम, दम,
तपः स्वाध्याय	तप, जप,
अध्ययन	वेदाध्ययन,
त्याग सन्तोष	त्याग, सन्तोष,
तितिक्षा	कष्ट सहिष्णुता,
प्रश्रय	नम्रता,
विद्या	शास्त्रज्ञान,
अनसूया	दूसरोंके गुणमें दोष न देखना,
आत्मज्ञान	आत्मज्ञान
आनन्द युक्तस्य	आनन्द युक्त
द्विजवरस्य	ब्राह्मण श्रेष्ठकी
आत्म सदृश	अपने ही समान
श्रुत	विद्या,
शील आचार	शील, आचार,
रूप औदार्य	रूप, उदारता,
गुणा	गुणवाले
नव सोदर्या	नौ सहोदर
अङ्गजा	पुत्र (बड़ी पत्नीसे)
च यवीयस्यां	और छोटी
भार्यायां	पत्नीसे
मिथुनं	पुत्र-कन्याका जोड़ा
बभूवुः	उत्पन्न हुआ ॥१॥

यस्तु तत्र पुमांस्तं परमभागवतं राजर्षिप्रवरं भरतमुत्सृष्ट-मृगशरीरं चरमशरीरेण विप्रत्वं गतमाहुः ॥२॥

यः तु तत्र पुमान् तं परमभागवतं राजर्षिप्रवरं भरतं उत्सृष्टं मृग शरीरं चरम शरीरेण विप्रत्वं गतं आहुः ॥२॥

यः तु	जो तो	**मृग शरीरं**	हिरनके शरीरको
तत्र	उस (जोड़े)में	**उत्सृष्टं**	त्यागकर
पुमान् तं	लड़का था उसे	**चरम शरीरेण**	अन्तिम शरीरसे
परमभागवतं	परम भगवद्-भक्त	**विप्रत्वं गतं**	ब्राह्मण जन्म प्राप्त
राजर्षिप्रवरं	राजर्षि श्रेष्ठ	**आहुः**	कहा गया है ॥२॥
भरतं	भरतको		

तत्रापि स्वजनसङ्गाच्च भृशमुद्विजमानो भगवतः कर्मबन्धविध्वंसनश्रवणस्मरणगुणविवरणचरणारविन्दयुगलं मनसा विदधदात्मनः प्रतिघातमशङ्कमानो भगवदनुग्रहेणानुस्मृतस्वपूर्वजन्मावलिरात्मानमुन्मत्तजडान्धबधिरस्वरूपेण दर्शयामास लोकस्य ॥३॥

तत्र अपि स्वजन सङ्गात् च भृशं उद्विजमानः भगवतः कर्मबन्ध विध्वंसन श्रवण स्मरण गुण विवरण चरणारविन्द युगलं मनसा विदधत् आत्मनः प्रतिघातं आशङ्कमानः भगवत् अनुग्रहेण अनुस्मृत स्वपूर्वजन्मावलिः आत्मानं उन्मत्त जड अन्ध बधिर स्वरूपेण दर्शयामास लोकस्य ॥३॥

तत्र अपि स्वजन संगात् च	वहां भी अपने सम्बन्धियोंकी आसक्तिसे तो	**श्रवण**	(चरित) श्रवण,
		स्मरण	स्मरण,
		गुण विवरण	गुण-चिन्तन,
भृशं	बहुत ही	**चरणार-विन्द युगलं**	दोनों चरण-कमलोंको
उद्विजमानः	उद्विग्न होते थे।		
भगवतः	भगवान्के	**मनसा**	मनसे
कर्मबन्ध विध्वंसन	कर्मके बन्धनको नष्ट करनेवाले	**विदधत्**	धारण किये रहते।

भगवत्	
अनुग्रहेण	भगवान्‌की कृपासे
स्वपूर्व-	
जन्मावलिः	अपने-पूर्व जन्मोंकी परम्परा
अनुस्मृत	स्मरण रहनेसे
आत्मनः	अपने लिए
प्रतिघातं	(विघ्न रूप) प्रतिक्रिया
आशंकमानः	(आ जानेकी) आशंकासे
लोकस्य	लोगोंको
आत्मानं	अपनेको
उन्मत्त जड़	पागल, मूर्ख,
अन्ध बधिर	अन्धे, बहिरेके
स्वरूपेण	स्वरूपमें
दर्शयामास	दिखलाते थे ॥३॥

तस्यापि ह वा आत्मजस्य विप्रः पुत्रस्नेहानुबद्धमना आ समावर्तनात्संस्कारान् यथोपदेशं विदधान उपनीतस्य च पुनः शौचाचमनादीन् कर्मनियमाननभिप्रेतानपि समशिक्षयदनुशिष्टेन हि भाव्यं पितुः पुत्रेणेति ॥४॥

तस्य अपि ह वा आत्मजस्य विप्रः पुत्रस्नेह अनुबद्धमना आ समावर्तनात् संस्कारान् यथा उपदेशं विदधान उपनीतस्य च पुनः शौच आचमन आदीन् कर्मनियमान् अनभिप्रेतान् अपि समशिक्षयत् अनुशिष्टेन हि भाव्यं पितुः पुत्रेण इति ॥४॥

ह वा	निश्चित ही
तस्य	उस
आत्मजस्य	
अपि	पुत्रके भी
पुत्रस्नेह	पुत्र-स्नेहसे
अनुबद्धमना	बँधे चित्तवाले
विप्रः	(वे) ब्राह्मण
यथा उपदेशं	शास्त्रके उपदेशके अनुसार
आ समावर्तनात्	समावर्तन पर्यन्त
संस्कारान्	सब संस्कार
विदधान	कराते रहे।
पुनः	फिर
उपनीतस्य च	यज्ञोपवीत हो जानेपर तो
शौचं	पवित्रताके
आचमन	
आदीन्	आचमन आदि
अनभिप्रेतान्	
अपि	(उनके) न चाहनेपर भी
कर्म नियमान्	कर्मके नियमोंको

समशिक्षयत्	भली प्रकार सिखलाते थे।	**अनुशिष्टेन**	अनुशासनकी शिक्षा देनी चाहिए,
हि पितुः	क्योंकि पिताको	**इति**	ऐसा कर्तव्य है ॥४॥
पुत्रेण	पुत्रको		

स चापि तदु ह पितृसंनिधावेवा सध्रीचीनमिव स्म करोति छन्दांस्यध्यापयिष्यन् सह व्याहृतिभिः सप्रणवशिरस्त्रिपदीं सावित्रीं ग्रैष्मवासन्तिकान्मासानधीयानमप्यसमवेतरूपं ग्राहयामास ॥५॥

स च अपि तत् उ ह पितृ संनिधाः एव सध्रीचीनं इव स्म करोति छन्दांसि अध्यापयिष्यन् सह व्याहृतिभिः सप्रणवशिरः त्रिपदीं सावित्रीं ग्रैष्म वासन्तिकान् मासान् अधीयानं अपि असमवेत रूपं ग्राहयामास ॥५॥

स च अपि	वे भी तो	**अधीयानं अपि**	पढ़ाते रहनेपर भी
तत् उ ह	उसका तो निश्चित	**सह व्याहृतिभिः**	व्याहृति (भूः भुवः स्वः)के साथ
पितृ सन्निधाः	पिताके सामीप्यमें		
एव	ही	**सप्रणवशिरः**	शिरोमन्त्र प्रणव सहित
सध्रीचीनं इव	उलटेके समान (व्यवहार)	**त्रिपदीं**	
करोति स्म	करते थे।	**सावित्रीं**	तीन चरणका गायत्री-मन्त्र
छन्दांसि	वेदोंको		
अध्यापयिष्यन्	पढ़ाये जानेमें	**असमवेत रूपं**	अटपटे रूपमें अच्छी तरह नहीं,
ग्रैष्म वास-			
न्तिकान्	ग्रीष्म और वसन्तके	**ग्राहयामास**	याद करा सके ॥५॥
मासान्	(चार) महीनोंमें		

एवं स्वतनुज आत्मन्यनुरागावेशितचित्तः शौचाध्ययनव्रत-नियमगुर्वनलशुश्रूषणाद्यौपकुर्वाणककर्मण्यनभियुक्तान्यपि समनु-शिष्टेन भाव्यमित्यसदाग्रहः पुत्रमनुशास्य स्वयं तावदनधिगत-मनोरथः कालेनाप्रमत्तेन स्वयं गृह एव प्रमत्त उपसंहृतः ॥६॥

एवं स्वतनुज आत्मनि अनुराग आवेशित चितः शौच अध्ययन व्रत नियम गुरु अनल शुश्रूषण आदि औपकुर्वाणिक कर्माणि अनभियुक्तान् अपि समनुशिष्टेन भाव्यं इति असत् आग्रहः पुत्रं अनुशास्य स्वयं तावत् अनधिगत मनोरथः कालेन अप्रमत्तेन स्वयं गृह एव प्रमत्तः उपसंहृतः ॥६॥

एवं	ऐसा होनेपर भी
स्वतनुज	अपने पुत्रमें
आत्मनि	अपने
अनुराग	अनुरागसे
आवेशित	
चित्तः	चित्तको आविष्ट किये
शौच	पवित्रता,
अध्ययन	वेदाध्ययन,
व्रत	व्रत,
नियम	नियम,
गुरु अनल	गुरु एवं अग्निकी
सुश्रूषण	सेवा-सम्हाल
औपकुर्वाणिक	ब्रह्मचर्या श्रमके आवश्यक
कर्माणि	कर्मोंकी
अनभियुक्तान्	
अपि	अनुपयुक्त होनेपर भी
समनुशिष्टेन	भलीप्रकार शिक्षा
भाव्यं	देनी ही चाहिए
इति	इस प्रकारके
असत् आग्रहः	अनुचित आग्रहसे
पुत्रं अनुशास्य	पुत्रको शिक्षा देते हुए
स्वयं तावत्	स्वयं तब तक
मनोरथः	उनका मनोरथ
अनधिगत	उन्हें प्राप्त नहीं हुआ था कि
अप्रमत्तेन	प्रमाद न करनेवाले
कालेन	कालके द्वारा
स्वयं प्रमत्तः	स्वयं प्रमादवश
गृह एव	घरमें रहते ही
उपसंहृतः	उनका अन्त कर दिया गया ॥६॥

अथ यवीयसी द्विजसती स्वगर्भजातं मिथुनं सपत्न्या उपन्यस्य स्वयमनुसंस्थया पतिलोकमगात् ॥७॥

अथ यवीयसी द्विजसती स्वगर्भ जातं मिथुनं सपत्न्या उपन्यस्य स्वयं अनुसंस्थया पतिलोकं अगात् ॥७॥

अथ	तब
यवीयसी	छोटी
द्विजसती	पतिव्रता ब्राह्मण पत्नी

स्वगर्भं जातं	अपने गर्भसे उत्पन्न	**स्वयं**	स्वयं
मिथुनं	कन्या-पुत्र दोनोंको	**अनुसंस्थया**	सती होकर
सपत्न्या	अपनी सौतको	**पतिलोकं**	पतिके लोकको
उपन्यस्य	सौंपकर	**अगात्**	चली गयी ॥७॥

पितर्युपरते भ्रातर एनमतत्प्रभावविदस्त्रय्यां विद्यायामेव पर्यवसितमतयो न परविद्यायां जडमतिरिति भ्रातुरनुशासन निर्बन्धान्न्यवृत्सन्त ॥८॥

पितरि उपरते भ्रातरः एनं अतत् प्रभावविदः त्रय्यां विद्यायां एव पर्यवसित मतयः न पर विद्यायां जडमतिः इति भ्रातुः अनुशासन निर्बन्धात् न्यवृत् सन्त ॥८॥

पितरि	पिताके	**अतत् प्रभाव-**	
उपरते	उपराम हो जाने (मर जाने) पर	**विदः**	इन (भरत)के प्रभावको नहीं जानते थे (अतः)
भ्रातरः	(इनके) भाई	**एनं**	इनको
त्रय्यां विद्यायां	त्रयी-विद्या (कर्मकाण्ड)में	**जडमतिः**	'जड़ बुद्धि है'
एव	ही	**इति**	ऐसा समझकर
पर्यवसित		**भ्रातुः**	भाईको
मतयः	सीमित बुद्धिवाले	**अनुशासन**	शिक्षा देनेके
पर विद्यायां	पराविद्या (ब्रह्म-ज्ञान)में	**निर्बन्धात्**	आग्रहसे
न	(निपुण) नहीं थे,	**न्यवृत् सन्त**	निवृत्त हो गये ॥८॥

स च प्राकृतैर्द्विपदपशुभिरुन्मत्तजडबधिरेत्यभिभाष्यमाणो यदा तदनुरूपाणि प्रभाषते कर्माणि च स कार्यमाणः परेच्छया करोति विष्टितो वेतनतो वा याच्ञया यदृच्छया वोपसादितमल्पं बहु मृष्टं कदन्नं वाभ्यवहरति परं नेन्द्रियप्रीतिनिमित्तम् । नित्य-

निवृत्तनिमित्तस्वसिद्धविशुद्धानुभवानन्दस्वात्मलाभाधिगमः सुख-दुःखयोर्द्वन्द्वनिमित्तयोरसम्भावित देहाभिमानः ॥९॥

स च प्राकृतैः द्विपद पशुभिः उन्मत्त जड बधिर इति अभिभाष्यमाणः यदा तत् अनुरूपाणि प्रभाषते कर्माणि च स कार्यमाणः परेच्छया करोति विष्टितः वेतनतः वा याञ्चया यदृच्छया वा उपसादितं अल्पं बहु मृष्टं कदन्नं वा अभ्यवहरति परं न इन्द्रिय प्रीति निमित्तं नित्य निवृत्त निमित्त स्वसिद्ध विशुद्ध अनुभव आनन्द स्व आत्मलाभ अधिगमः सुख-दुःखयोः द्वन्द्व निमित्तयोः असम्भावितः देह अभिमानः ॥९॥

प्राकृतैः	साधारण
द्विपद पशुभिः	दो पैरके पशु (जैसे लोगों) द्वारा
यदा उन्मत्त	जब पगला,
जड	मूर्ख,
बधिर	बहिरा,
इति	इस प्रकार
अभिभाष्य-माणः	कहकर पुकारे जानेपर
स च	वे भी
तत् अनुरूपाणि	तब उसके अनुरूप ही
प्रभाषते	बोलते थे ।
स कर्माणि च	वे कर्मोंको भी
विष्टितः	बेगारमें
वा वेतनतः	अथवा मजदूरीमें
कार्यमाणः	कराये जानेपर
परेच्छया	
करोति	दूसरेकी इच्छासे करते थे ।
याञ्चया	मांगनेसे
वा यदृच्छया	अथवा बिना मांगे
उपसादितं	प्राप्त हुए
अल्पं बहु	थोड़े या बहुत,
मृष्टं कदन्नं वा	स्वादिष्ट या बुरा अन्न
अभ्यवहरति	खा लेते थे
परं	किन्तु
इन्द्रिय प्रीति	इन्द्रिय (जीभ)को प्रसन्न
निमित्तं न	करनेके लिए नहीं ।
निमित्त	कारण (साधन)से
नित्य निवृत्त	सदा पृथक (न होनेवाला)
स्वसिद्ध	स्वतःसिद्ध
विशुद्ध अनुभव	विशुद्ध अनुभव,
आनन्द	आनन्द रूप
स्व आत्मलाभ	अपने आत्माकी प्राप्ति (ज्ञान)
अधिगमः	उन्हें हो गया था (अतः)

सुख दुःखयोः	सुख-दुःखादि
द्वन्द्वयोः	द्वन्द्वोंके
निमित्तयोः	कारणसे (होनेवाला)
देह अभिमानः	शरीरका अभिमान
असम्भावितः	होनेकी सम्भावना नहीं थी ॥९॥

शीतोष्णवातवर्षेषु वृष इवानावृताङ्गः पीनः संहनताङ्गः स्थण्डिलसंवेशनानुन्मर्दनामज्जनरजसा महामणिरिवानभिव्यक्त-ब्रह्मवर्चसः कुपटावृतकटिरुपवीतेनोरुमषिणा द्विजातिरिति ब्रह्म-बन्धुरिति संज्ञयातज्ज्ञजनावमतो विचचार ॥१०॥

शीत उष्ण वात वर्षेषु वृष इव अनावृत अङ्गः पीनः संहनन अंगः स्थण्डिल संवेशनात् उन्मर्दन अमज्जन रजसा महामणिः इव अनभिव्यक्त ब्रह्मवर्चसः कुपट आवृत कटिः उपवीतेन उरु मषिणा द्विजातिः इति ब्रह्म-बन्धुः इति संज्ञया अतज्ज्ञ जनाः अवमतः विचचार ॥१०॥

शीत उष्ण	सर्दी-गर्मी,
वात वर्षेषु	आँधी-वर्षामें
वृष इव	सांड़के समान
अनावृत अङ्गः	बिना शरीर ढके रहते।
पीनः	मोटे
संहनन अंगः	सुगठित अंग थे।
स्थण्डिल संवेशनात्	पृथ्वीपर ही पड़े रहनेसे
उन्मर्दन अमज्जन	तेल-उवटन न लगाने और स्नान न करनेसे
रजसा	धूलिसे (ढके)
महामणिः इव	महामणिके समान
अनभिव्यक्त	अप्रकट
ब्रह्मवर्चसः	ब्रह्मतेज,
कुपट	मैले-कुचैले वस्त्रको
आवृतः कटिः	कमरमें लपेटे,
उरु मषिणा	बहुत मैले
उपवीतेन	यज्ञोपवीत द्वारा
द्विजातिः इति	'यह द्विजाति है। इस प्रकार
ब्रह्मबंधुः इति	'ब्राह्मणाधम है' इस प्रकार
अतज्ज्ञ	उनको न जाननेवाले लोगों द्वारा
अवमतः	तिरस्कृत होते
विचचार	विचरते थे ॥१०॥

यदा तु परत आहारं कर्मवेतनत ईहमानः स्वभ्रातृभिरपि केदारकर्मणि निरूपितस्तदपि करोति किन्तु न समं विषमं न्यूनमधिकमिति वेद कणपिण्याकफलीकरणकुल्माषस्थालीपुरीषादीन्यप्यमृतवदभ्यवहरति ॥११॥

यदा तु परतः आहारं कर्मवेतनतः ईहमानः स्वभ्रातृभिः अपि केदार कर्मणि निरूपितः तत् अपि करोति किन्तु न समं विषमं न्यूनं अधिकं इति वेद कण पिण्याक फलीकरण कुल्माष स्थाली पुरीष आदीनि अपि अमृतवत् अभ्यवहरति ॥११॥

यदा	जब	**समं विषमं**	समतल, विषम,
परतः	दूसरोंसे	**न्यूनं अधिकं**	कम-ज्यादा
कर्मवेतनतः	कर्मकी मजदूरीमें	**इति न वेद**	इस प्रकार नहीं जानते थे
आहारं	भोजन		
ईहमानः	चाहने लगे (तब)	**कण**	अन्न-कण
स्वभ्रातृभिः		**पिण्याक**	खली,
अपि	अपने भाइयों द्वारा भी	**फलीकरण**	भूसी,
		कुल्माष	घुने उड़द,
केदार कर्मणि	खेतके काममें	**स्थाली पुरीष**	बर्तनमें लगा जला अन्न
निरूपितः	लगा दिये गये		
तत् अपि		**आदीनि अपि**	आदि भी
करोति	उसे भी करते थे	**अमृतवत्**	अमृतके समान
किन्तु	लेकिन	**अभ्यवहरति**	खा लेते थे ॥११॥

अथ कदाचित्कश्चिद् वृषलपतिर्भद्रकाल्यै पुरुषपशुमालभतापत्यकामः ॥१२॥

अथ कदाचित् कश्चित् वृषलपतिः भद्रकाल्यै पुरुष पशुं आलभत अपत्यकामः ॥१२॥

अथ कदाचित्	फिर किसी समय	**वृषलपतिः**	शूद्रों (डाकुओं)का सरदार
कश्चित्	कोई		

अपत्यकामः	पुत्रकी कामनासे	**आलभत**	बलि देनेको उद्यत हुआ ॥१२॥
भद्रकाल्यै	भद्रकालीको		
पुरुषपशुं	मनुष्यरूपी पशुकी		

तस्य ह दैवमुक्तस्य पशोः पदवीं तदनुचराः परिधावन्तो निशि निशीथसमये तमसाऽऽवृतायामनधिगतपशव आकस्मिकेन विधिना केदारान् वीरासनेन मृगवराहादिभ्यः संरक्षमाणमङ्गिरःप्रवरसुतमपश्यन् ॥१३॥

तस्य ह दैवमुक्तस्य पशोः पदवीं तत् अनुचराः परिधावन्तः निशि निशीथ समये तमसा आवृतायां अनधिगत पशवः आकस्मिकेन विधिना केदारान् वीरासनेन मृग वराहादिभ्यः संरक्षमाणं अङ्गिरः प्रवर सुतं अपश्यन् ॥१३॥

तस्य	उसके	**आकस्मिकेन विधिना**	अकस्मात् संयोगवश
ह दैव-मुक्तस्य	निश्चय प्रारब्धवश छूट जानेपर	**केदारान्**	खेतोंकी
तत् अनुचराः	उसके अनुचर	**वीरासनेन**	वीरासनसे बैठकर
पशोः पदवीं	उस बलि-पशुकी खोजमें	**मृग वराहादिभ्यः**	हिरण, सूअर आदिसे
परिधावन्तः	चारों ओर दौड़ते हुए		
तमसा आवृतायां निशि निशीथ	अन्धकाराच्छन्न	**संरक्षमाणं**	रक्षा करते हुए
समये	आधी रातके समय	**अङ्गिरः प्रवर**	अंगिरा गोत्रीय (ब्राह्मण)के
पशवः		**सुतं**	पुत्रको
अनधिगत	उस बलि-पशुको न पाकर	**अपश्यन्**	देखा ॥१३॥

अथ त एनमनवद्यलक्षणमवमृश्य भर्तृकर्मनिष्पत्तिं मन्यमाना बद्ध्वा रशनया चण्डिकागृहमुपनिन्युर्मुदा विकसितवदनाः ॥१४॥

अथ त एनं अनवद्य लक्षणं अवमृश्य भर्तृ कर्म निष्पत्तिं मन्यमाना बद्ध्वा रशनया चण्डिकागृहं उपनिन्युः मुदा विकसित वदनाः ॥१४॥

अथ त	फिर तो वे	**मन्यमाना**	मानते हुए
एनं	इनका	**रशनया**	
अनवद्य लक्षणं	निर्दोष लक्षणोंवाला	**बद्ध्वा**	रस्सीसे बाँधकर
अवभृश्य	विचार करके,	**मुदा**	हर्षसे
भर्तृ कर्म	अपने स्वामीके कर्मकी	**विकसित वदनाः**	खिले मुखवाले
निष्पत्ति	पूर्णता (हो जायगी, यह)	**चण्डिकागृहं**	चण्डिका-मन्दिरमें
		उपनिन्युः	ले आये ॥१४॥

अथ पणयस्तं स्वविधिनाभिषिच्याहतेन वाससाऽऽच्छाद्य भूषणालेपस्रक्तिलकादिभिरुपस्कृतं भुक्तवन्तं धूपदीपमाल्यलाजकिसलयाङ्कुरफलोपहारोपेतया वैशससंस्थया महता गीतस्तुतिमृदङ्गपणवघोषेण च पुरुषपशुं भद्रकाल्याः पुरत उपवेशयामासुः ॥१५॥

अथ पणयः तं स्वविधिना अभिषिच्य आहतेन वाससा आच्छाद्य भूषण आलेप स्रक् तिलक आदिभिः उपस्कृतं भुक्तवन्तं धूप दीप माल्य लाज किसलय अंकुर फल उपहार उपेतया वैशस संस्थया महता गीत स्तुति मृदङ्ग पणव घोषेण च पुरुष पशुं भद्रकाल्याः पुरतः उपवेशया मासुः ॥१५॥

अथ	तदनन्तर	**स्वविधिना**	अपनी विधिके अनुसार
पणयः	डाकुओंने		
तं	उनको	**अभिषिच्य**	स्नान कराके

आहतेन वाससा	बिना फाड़े (पूरे थानके कोरे)
आच्छाद्य	वस्त्रोंसे ढककर
भूषण	आभूषण,
आलेप	अंगराग,
स्रक् तिलक	माला, तिलक
आदिभिः	आदि द्वारा
उपस्कृतं	विभूषित करके,
भुक्तवन्तं	भोजन कर लेनेपर
धूप, दीप	धूप, दीप,
माल्य, लाज	माला, लाजा,
किसलय	नवपल्लव,
अंकुर	दूर्वाङ्कुर
फल उपहार उपेतया	फलोंके उपहारसे युक्त
वैशस संस्थया	बलिदान विधिसे
महता गीत स्तुति	गायन, स्तुतिका महान् शब्द करते
च मृदङ्ग पणव घोषेण	और मृदंग, नगाड़े बजाते
पुरुष पशुं	पुरुष-पशुको
भद्रकाल्याः	भद्रकालीके
पुरतः	सामने
उपवेशया मासुः	बैठा दिया ॥१५॥

अथ वृषलराजपणिः पुरुषपशोरसृगासवेन देवीं भद्रकालीं यक्ष्यमाणस्तदभिमन्त्रितमसिमतिकरालनिशितमुपाददे ॥१६॥

अथ वृषलराजपणिः पुरुषपशोः असृक् आसवेन देवीं भद्रकालीं यक्ष्यमाणः तत् अभिमन्त्रितं असिं अतिकराल निशितं उपाददे ॥१६॥

अथ	तब
वृषलराज-पणिः	शूद्र-डाकू सरदारने
पुरुषपशोः	पुरुष-पशुके
असृक् आसवेन	रक्तासव द्वारा
देवीं	
भद्रकालीं	देवी भद्रकालीको
यक्षमाणः	तृप्त करनेके लिए
तत्	
अभिमन्त्रितं	उन (देवी)के मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित
अतिकराल	बहुत भयानक
निशितं असिं	तीक्ष्ण तलवार
उपाददे	उठायी ॥१६॥

इति तेषां वृषलानां रजस्तमःप्रकृतीनां धनमदरजउत्सिक्त-मनसां भगवत्कलावीरकुलं कदर्थीकृत्योत्पथेन स्वैरं विहरतां हिंसाविहाराणां कर्मातिदारुणं यद्ब्रह्मभूतस्य साक्षाद्ब्रह्मर्षि-सुतस्य निर्वैरस्य सर्वभूतसुहृदः सूनायामप्यननुमतमालम्भनं तदुप-लभ्य ब्रह्मतेजसातिदुर्विषहेण दन्दह्यमानेन वपुषा सहसोच्चचाट सैव देवी भद्रकाली ॥१७॥

इति तेषां वृषलानां रजः तमः प्रकृतीनां धनमदरज उत्सिक्त मनसां भगवत् कला वीरकुलं कदर्थीकृत्य उत्पथेन स्वैरं विहरतां हिंसा विहाराणां कर्म अति दारुणं यत् ब्रह्मभूतस्य साक्षात् ब्रह्मर्षिसुतस्य निर्वैरस्य सर्वभूत-सुहृदः सुनायां अपि अननुमतं आलम्भनं तत् उपलभ्य ब्रह्मतेजसा अति दुर्विषहेण दन्दह्यमानेन वपुषा सहसा उच्च चाट स एव देवी भद्रकाली॥१७॥

इति	इस प्रकार
तेषां	उन
रजः तमः	रजोगुणी, तमोगुणी
प्रकृतीनां	स्वभाववाले
धनमद रज	धनके मदसे
उत्सिक्त मनसां	मत्त चित्तवाले
भगवत् कला	भगवान्‌की कलासे
वीरकुलं	बलवान (ब्राह्मण) कुलका
कदर्थीकृत्य	तिरस्कार करके,
उत्पथेन	कुमार्गसे
स्वैरं	मनमाने
विहरतां	आचरण करनेवाले,
हिंसा विहाराणां	हिंसा-विहार करनेवाले
वृषलानां	शूद्रोंका
कर्म अति	
दारुणं	कर्म अत्यन्त भय-ङ्कर था,
यत् ब्रह्मभूतस्य	जो ब्रह्मभाव प्राप्त,
साक्षात्	साक्षात्
ब्रह्मर्षिसुतस्य	ब्रह्मर्षिके पुत्र,
निर्वैरस्य	वैरहीन,
सर्वभूतसुहृदः	सब प्राणियोके सुहृद्‌की,
सूनायां अपि	(आपत्ति कालमें विहित) हिंसामें भी
अननुमतं	निषिद्ध (ब्राह्मण-वध) की
आलम्भनं	बलि देने जा रहे थे,
तत् उपलभ्य	इसे समीप पाकर
अति दुर्विषहेण	अत्यन्त असह्य
ब्रह्मतेजसा	ब्रह्म-तेजसे

दन्दह्यमानेन	जलते	**सहसा**	अचानक
वपुषा	शरीरसे	**उच्च चाट**	(मूर्तिसे) उछल
स एव	वही		पड़ीं ॥१७॥
देवी भद्रकाली	देवी भद्रकाली		

भृशममर्षरोषावेशरभसविलसितभ्रुकुटिविटपकुटिलदंष्ट्रारुणेक्षणाटोपातिभयानकवदना हन्तुकामेवेदं महाट्टहासमतिसंरम्भेण विमुञ्चन्ती तत उत्पत्य पापीयसां दुष्टानां तेनैवासिना विवृक्णशोष्णां गलात्स्रवन्तमसृगासवमत्युष्णं सह गणेन निपीयातिपानमदविह्वलोच्चैस्तरां स्वपार्षदैः सह जगौ ननर्त च विजहार च शिरःकन्दुकलीलया ॥१८॥

भृशं अमर्ष रोष आवेश रभस विलसित भ्रुकुटि विटप कुटिल दंष्ट्रा अरुण ईक्षण आटोप अति भयानक वदना हन्तुकाम एव इदं महा अट्टहासं अति संरम्भेण विमुञ्चन्ती तत उत्पत्य पापीयसां दुष्टानां तेन एव असिना विवृक्ण शोष्णां गलात् स्रवन्तं असृक् आसवं अति उष्णं सह गणेन निपीय अतिपानमद विह्वल उच्चैः तरां स्वपार्षदैः सह जगौ ननर्त च विजहार च शिरः कन्दुक लीलया ॥१८॥

भृशं	अत्यन्त	**आटोप**	चढ़े होनेसे
अमर्ष	असहनशीलता (तथा)	**अति भयानक**	अत्यन्त भयानक
		वदना	मुखवाली,
रोष आवेश	क्रोधके आवेश	**इदं**	इस संसारका ही
रभस	वेगसे	**हन्तुकाम**	विनाश करनेकी
भ्रुकुटि	भौंहें		इच्छाके
विटप		**एव**	समान
विलसित	वृक्षोंके समान खड़ी हो गयी थीं	**अति संरम्भेण**	अत्यन्त आवेशसे
		महा अट्टहासं	महा अट्टहास
कुटिल दंष्ट्रा	टेढ़ी दाढ़ें,	**विमुञ्चन्ती**	करती हुई
अरुण ईक्षण	लाल नेत्र,	**तत उत्पत्य**	वहाँसे उछलकर

तेन एव	उसी
असिना	तलवारसे
पापीयसां	पापी
दुष्टानां	दुष्टोंके
विवृक्ण	कटे
शीर्ष्णां	सिरोंके
गलात् स्रवन्तं	गलेसे बहते
अति उष्णं	बहुत गरम
असृक् आसवं	रुधिर रूपी आसव
सह गणेन	अपने गणोंके साथ
निपीय	भली प्रकार पिया,
अतिपानमद	बहुत पीनेके नशेसे
विह्वल	उन्मत्त होकर
स्वपार्षदैः सह	अपने पार्षदोंके साथ
उच्चैः तरां	बहुत ऊँचे स्वरसे
जगौ	गाने लगीं,
च ननर्त	तथा नाचने लगीं
च शिरः	
कन्दुक	और सिरोंसे गेंदका
लीलया	खेल
विजहार	खेलने लगीं ॥१६॥

एवमेव खलु महदभिचारातिक्रमः कात्स्न्र्येनात्मने फलति ॥१६॥

एवं एव खलु महत् अभिचार अतिक्रमः कात्स्न्र्येन आत्मने फलति ॥१६॥

एवं एव	ऐसे ही
खलु	निश्चय
महत्	महापुरुषोंके प्रति
अभिचार	अभिचारका
अतिक्रमः	अपराध
कात्स्न्र्येन	सम्पूर्ण रूपसे
आत्मने	अपने ऊपर ही
फलति	घटता है ॥१६॥

न वा एतद्विष्णुदत्त महदद्भुतं यदसम्भ्रमः स्वशिरश्छेदन आपतितेऽपि विमुक्तदेहाद्यात्मभावसुदृढहृदयग्रन्थीनां सर्वसत्त्वसुहृदात्मनां निर्वैराणां साक्षाद्भगवतानिमिषारिवरायुधेनाप्रमत्तेन तैस्तैर्भावैः परिरक्ष्यमाणानां तत्पादमूलमकुतश्चिद्भयमुपसृतानां भागवतपरमहंसानाम् ॥२०॥

न वा एतत् विष्णुदत्त महत् अद्भुतं यत् असम्भ्रमः स्वशिरः छेदन आपतिते अपि विमुक्त देहादि आत्मभाव सुदृढ हृदय ग्रन्थीनां सर्वसत्त्व

सुहृत् आत्मनां निर्वैराणां साक्षात् भगवता अनिमिष अरि वरायुधेन अप्रमत्तेन तैः तैः भावैः परिरक्ष्यमाणानां तत् पादमूलं अकुतश्चित् भयं उपसृतानां भागवत परमहंसानाम् ॥२०॥

विष्णुदत्त	परीक्षित !
देहादि	शरीर आदिमें
आत्मभाव	आत्मभाव (तथा)
सुदृढ	सुदृढ़
हृदय ग्रन्थीनां	हृदयकी (देहाभिमान रूप गाँठोंसे)
विमुक्त	छूटे हुए,
सर्वसत्त्व	सब प्राणियोंके
सुहृत्	हितैषी (एवं)
आत्मनां	आत्मस्वरूप,
निर्वैराणां	शत्रुताहीन,
साक्षात्	
भगवता	साक्षात् भगवान्के
अनिमिष अरि	कालचक्र रूपी
अप्रमत्तेन	सदा सावधान
वरायुधेन	श्रेष्ठ अस्त्रसे
तैः तैः भावैः	उन-उन भावों (रूपों)से
परिरक्ष्य-	
माणानां	सब ओरसे रक्षित होने वाले,
अकुतश्चित्	
भयं	जहाँ कहींसे भी भय नहीं है
तत् पादमूलं	उन चरणोंमें
उपसृतानां	पहुँचे हुए
भागवत	भगवद्-भक्त
परमहंसानां	परमहंसोंके लिए
तत्	जो
स्वशिरः छेदनं	अपने सिर कटनेका
आपतिते अपि	(अवसर) आनेपर भी
असम्भ्रमः	कोई व्याकुलता नहीं है
एतत् वा	यह तो
महत्	(कोई) बड़ी
अद्भुतं न	अद्भुत (बात) नहीं है ॥२०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे जडभरतचरिते नवमोऽध्यायः ॥९॥

अथ दशमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

अथ सिन्धुसौवीरपते रहूगणस्य व्रजत इक्षुमत्यास्तटे तत्कुलपतिना शिबिकावाहपुरुषान्वेषणसमये दैवेनोपसादितः स द्विजवर उपलब्ध एष पीवा युवा संहननाङ्गो गोखरवद्धुरं वोढुमलमिति पूर्वविष्टिगृहीतैः सह गृहीतः प्रसभमतदर्हं उवाह शिबिकां स महानुभावः ॥१॥

अथ सिन्धु सौवीरपतेः रहूगणस्य व्रजत इक्षुमत्याः तटे तत् कुलपतिना शिबिकावाह पुरुष अन्वेषण समये दैवेन उपसादितः स द्विजवर उपलब्ध एष पीवा युवा संहनन अङ्गः गोखरवत् धुरं वोढुं अलं इति पूर्व विष्टि गृहीतैः सह गृहीतः प्रसभं अतदर्हं उवाह शिबिकां स महानुभावः ॥१॥

अथ	एकबार
सिन्धु सौवीरपतेः	सिन्ध और सौराष्ट्रके राजा
रहूगणस्य	रहूगणके
व्रजत	यात्रा करते समय
इक्षुमत्याः तटे	इक्षुमती नदीके किनारे
तत् कुलपतिना	उन (पालकी ढोनेवालों)के कुलपति (सरदार) द्वारा
शिबिकावाह पुरुष अन्वेषण	पालकी ढोनेवाले पुरुषको ढूँढ़ते
समये	समय
दैवेन	दैववश
उपसादितः	समीप आये
स द्विजवरः	वे ब्राह्मणोत्तम
उपलब्ध	मिल गये।
एष पीवा	यह मोटा है,
युवा	जवान है
संहनन अङ्गः	सुगठित शरीर है,
गोखरवत्	बैल या गधेके समान
धुरं वोढुं	भार ढोनेके लिए
अलं इति	पर्याप्त है, इसप्रकार (सोचकर)

पूर्वं विष्टि गृहीतैः	पहिले बेगारमें पकड़े लोगोंके	**अतदर्हं**	इसके योग्य न होनेपर भी
सह गृहीतः	समान पकड़कर	**स महानुभावः**	उन महान् प्रभाव-शालीने
प्रसभं	बलपूर्वक (इन्हें लगा दिया)	**शिबिकां उवाह**	पालकी ढोयी ॥१॥

यदा हि द्विजवरस्येषुमात्रावलोकानुगतेर्न समाहिता पुरुष-गतिस्तदा विषमगतां स्वशिबिकां रहूगण उपधार्य पुरुषानधिवहत आह हे वोढारः साध्वतिक्रमत किमिति विषममुह्यते यानमिति ॥२॥

यदा हि द्विजवरस्य इषुमात्र अवलोक अनुगतेः न समाहिता पुरुष-गतिः तदा विषमगतां स्व शिबिकां रहूगण उपधार्य पुरुषान् अधिवहत आह हे वोढारः साधु अतिक्रमत किं इति विषमं उह्यते यानं इति ॥२॥

यदा हि	जब क्योंकि	**रहूगण**	(राजा) रहूगण
द्विजवरस्य	(उन) ब्राह्मणोत्तमके	**अधिवहत**	ढोनेवाले
इषुमात्र	केवल बाण बराबर	**पुरुषान्**	पुरुषोंसे
अवलोक	आगे देखते	**आह**	बोला
अनुगतेः	चलनेसे	**हे वोढारः**	'अरे, ढोने वालो,
पुरुषगतिः	(ढोने वाले) पुरुषोंकी चाल	**साधु अतिक्रमत**	ठीक ढंगसे चलो,
न समाहिता	मेल नहीं बैठा सकी	**किं इति**	इस प्रकार कैसे
तदा	उस समय	**विषमं यानं**	टेढ़ी-सीधी पालकी
विषमगतां	टेढ़ी होती	**उह्यते**	ढो रहे हो !'
स्व शिबिकां	अपनी पालकीको	**इति**	इस प्रकार ॥२॥
उपधार्य	देखकर		

अथ त ईश्वरवचः सोपालम्भमुपाकर्ण्योपायतुरीयाच्छङ्कित-मनसस्तं विज्ञापयांबभूवुः ॥

अथ त ईश्वर वचः स उपालम्भं उप आकर्ण्य उपाय तुरीय आशंकित मनसः तं विज्ञापयां बभूवुः ॥३॥

अथ त	तब तो वे	**आशंकित**	
ईश्वर वचः	अपने स्वामीकी बात	**मनसः**	मनमें आशंका करके
स उपालम्भं	उलाहनेके साथ	**तं**	उस (राजा)से
उप आकर्ण्य	ठीक सुनकर	**विज्ञापयां**	सूचना देने
उपाय तुरीय	चौथे उपाय (दण्ड)*की	**बभूवुः**	लगे ॥३॥

न वयं नरदेव प्रमत्ता भवन्नियमानुपथाः साध्वेव वहामः । अयमधुनैव नियुक्तोऽपि न द्रुतं व्रजति नानेन सह वोढुमु ह वयं पारयाम इति ॥४॥

न वयं नरदेव प्रमत्ता भवत् नियम अनुपथाः साधु एव वहामः अयं अधुना एव नियुक्तः अपि न द्रुतं व्रजति न अनेन सह वोढुं उह वयं पारयाम इति ॥४॥

नरदेव	राजन् !		रहे हैं ।
वय न प्रमत्ता	हम लोग प्रमाद नहीं करते हैं ।	**अयं**	यह
		अधुना एव	अभी ही
भवत्	आपके		
नियम		**नियुक्तः अपि**	लगाये जानेपर भी
अनुपथाः	नियमोंके अनुसार चलनेवाले हैं,	**द्रुतं न व्रजति**	जल्दी नहीं चलता है,
साधु एव		**अनेन सह**	इसके साथ
वहामः	अच्छी तरह ही ढो	**वोढुं**	ढोनेमें

*उपाय चार हैं—१. साम (समझाना) २. दान (कुछ देना) ३. भेद (फूट डालना) ४. दण्ड ।

उह	निश्चय ही	**पारयाम**	चल पाते हैं।'
वयं न	हम नहीं	**इति**	इस प्रकार ॥४॥

सांसर्गिको दोष एव नूनमेकस्यापि सर्वेषां सांसर्गिकाणां भवितुमर्हतीति निश्चित्य निशम्य कृपणवचो राजा रहूगण उपासितवृद्धोऽपि निसर्गेण बलात्कृत ईषदुत्थितमन्युरविस्पष्टब्रह्मतेजसं जातवेदसमिव रजसाऽऽवृतमतिराह ॥५॥

सांसर्गिकः दोष एव नूनं एकस्य अपि सर्वेषां सांसर्गिकाणां भवितुं अर्हति इति निश्चित्य निशम्य कृपणवचः राजा रहूगण उपासित वृद्धः अपि निसर्गेण बलात् कृत ईषत् उत्थित मन्युः अविस्पष्ट ब्रह्मतेजसं जातवेदसं इव रजसा आवृत मतिः आह ॥५॥

कृपणवचः	दीनवाणी	**अपि**	बड़ोंकी सेवा करनेवाला होनेपर भी
निशम्य	सुनकर		
सांसर्गिकः	संसर्गसे लगनेवाला		
दोष एव	दोष ही	**निसर्गेण**	स्वभाववश
नूनं	निश्चय	**बलात् कृत**	बलपूर्वक
एकस्य अपि	एकका ही (होनेपर)	**ईषत् उत्थित**	तनिक उठे
		मन्युः	क्रोधसे
सर्वेषां	सभी (उसके)	**रजसा आवृत**	रजोगुणसे ढकी
सांसर्गिकाणां	संसर्गमें रहने वालोंका	**मतिः**	बुद्धि (होने)से
		अविस्पष्ट	छिपे हुए
भवितुं अर्हति	हो जाना चाहिए,	**ब्रह्मतेजसं**	ब्रह्म तेजवाले
इति निश्चित्य	ऐसा निश्चय करके	**जातवेदसं इद**	अग्निके समान (उन विप्र)से
राजा रहूगण	राजा रहूगण		
उपासित वृद्धः		**आह**	बोला ॥५॥

अहो कष्टं भ्रातर्व्यक्तमुरु परिश्रान्तो दीर्घमध्वानमेक एव ऊहिवान् सुचिरं नातिपीवा न संहननाङ्गो जरसा चोपद्रुतो

भवान् सखे नो एवापर एते सङ्घट्टिन इति बहु विप्रलब्धोऽप्यविद्यया रचितद्रव्यगुणकर्माशयस्वचरमकलेवरेऽवस्तुनि संस्थान विशेषेऽहं ममेत्यनध्यारोपितमिथ्याप्रत्ययो ब्रह्मभूतस्तूष्णीं शिबिकां पूर्ववदुवाह ॥६॥

अहो कष्टं भ्रातः व्यक्तं उरु परिश्रान्तः दीर्घं अध्वानं एक एव ऊहिवान् सुचिरं न अति पीवा न संहननाङ्गः जरसा च उपद्रुतः भवान् सखे नो एव अपर एते सङ्घट्टिन इति बहु विप्रलब्धः अपि अविद्यया रचित द्रव्य गुण कर्म आशय स्व चरम कलेवरे अवस्तुनि संस्थान विशेषे अहं मम इति अनध्य आरोपित मिथ्या प्रत्ययः ब्रह्मभूतः तूष्णीं शिबिकां पूर्ववत् उवाह ॥६॥

अहो कष्टं	'बड़े कष्टकी बात है,
भ्रातः	भाई,
व्यक्तं	स्पष्ट है कि
उरु परिश्रान्तः	(तुम) बहुत थक गये हो,
दीर्घं अध्वानं	लम्बे रास्तेमें
सुचिरं	बहुत देरसे
एक एव	अकेले ही
ऊहिवान्	(पालकी) ढोते रहे हो,
न अति पीवा	न बहुत मोटे हो,
न संहननाङ्गः	न सुगठित देह हो,
भवान् सखे	मित्र आप
जरसा च	
उपद्रुतः	और बुढ़ापेसे भी ग्रस्त हो
एव अपर	ये दूसरे
एते सङ्घट्टिन	इतने साथवाले
नो	ऐसे नहीं हैं ।
इति	इस प्रकार
बहु विप्रलब्धः	
अपि	बहुत व्यंग किये जानेपर भी
अविद्यया	
रचित	अविद्याके कार्य
द्रव्य, गुण	पञ्चभूत, त्रिगुण,
कर्म आशय	इन्द्रिय, चित्तके
स्व चरम	
कलेवरे	अपने अन्तिम देहमें
अवस्तुनि	
संस्थान	(दिखायी देनेपर भी) वस्तुतः न होनेवाले में,
अहं मम इति	यह मैं हूँ या मेरा है ऐसी
मिथ्या प्रत्ययः	मिथ्या प्रतीति

अनध्य आरोपित	आरोपित नहीं रही थी,	**तूष्णीं**	(अतः) चुप रहे (और)
		पूर्ववत्	पहिलेकी भाँति
ब्रह्मभूतः	ब्रह्मरूप हो गये थे	**शिबिकां उवाह**	पालकी ढोते रहे ॥६॥

अथ पुनः स्वशिबिकायां विषमगतायां प्रकुपित उवाच रहूगणः किमिदमरे त्वं जीवन्मृतो मां कदर्थीकृत्य भर्तृशासनमतिचरसि प्रमत्तस्य च ते करोमि चिकित्सां दण्डपाणिरिव जनताया यथा प्रकृतिं स्वां भजिष्यस इति ॥७॥

अथ पुनः स्वशिबिकायां विषमगतायां प्रकुपित उवाच रहूगणः किं इदं अरे त्वं जीवन् मृतः मां कदर्थीकृत्य भर्तृशासनं अतिचरसि प्रमत्तस्य च ते करोमि चिकित्सां दण्डपाणिः इव जनतायाः यथा प्रकृतिं स्वां भजिष्यस इति ॥७॥

अथ पुनः	लेकिन फिर	**भर्तृशासनं**	स्वामीकी आज्ञाका
स्वशिबिकायां	अपनी पालकीके	**अतिचरसि**	उल्लंघन कर रहा है,
विषमगतायां	टेढ़ी चलनेपर		
रहूगणः	(राजा) रहूगण	**दण्डपाणिः**	यमराज द्वारा
प्रकुपित	बहुत क्रुद्ध होकर	**जनतायाः**	
उवाच	बोला	**इव**	जनताकी भाँति
किं इदं	'यह क्या है,	**ते प्रमत्तस्य च**	तुझ प्रमादीकी भी
अरे त्वं	अरे, तू	**चिकित्सां**	चिकित्सा
जीवन् मृतः	जीते ही मरेके समान	**करोमि**	करता हूँ,
		यथा	जिससे
मां कदर्थीकृत्य	मेरी अवहेलना करके	**स्वां प्रकृतिं**	अपने स्वभावपर
		इति भजिष्यस	अब आ जाओगे॥७॥

एवं बह्वबद्धमपि भाषमाणं नरदेवाभिमानं रजसा तमसानुविद्धेन मदेन तिरस्कृताशेषभगवत्प्रियनिकेतं पण्डितमानिनं स

भगवान् ब्राह्मणो ब्रह्मभूतः सर्वभूतसुहृदात्मा योगेश्वरचर्यायां नातिव्युत्पन्नमतिं स्मयमान इव विगतस्मय इदमाह ॥८॥

एवं बहु अबद्धं अपि भाषमाणं नरदेव अभिमानं रजसा तमसा अनुविद्धेन मदेन तिरस्कृत अशेष भगवत् प्रिय निकेतं पण्डित मानिनं स भगवान् ब्राह्मणः ब्रह्मभूतः सर्वभूतः सुहृत् आत्मा योगेश्वर चर्यायां न अति व्युत्पन्न मति स्मयमान इव विगतस्मय इदं आह ॥८॥

एवं	इस प्रकार	**अति व्युत्पन्न**	बहुत निपुण
बहु अबद्धं अपि	बहुत उलटी-सीधी भी	**मतिं न**	बुद्धि न होनेसे
भाषमाणं	बोलते हुए,	**भगवत्**	भगवानके
नरदेव		**अशेष प्रिय**	
अभिमानं	राजा होनेके अभिमानसे	**निकेतं**	सम्पूर्ण प्रिय पात्रका
रजसा तमसा	रजोगुण तथा तमोगुणसे	**तिरस्कृत**	(उसने) तिरस्कार किया
अनुविद्धेन		**स भगवान्**	(किन्तु) वे भगवत्स्वरूप
मदेन	व्याप्त गर्वसे,	**ब्रह्मभूतः**	ब्रह्मभूत
पण्डित मानिनं	(अपनेको) विद्वान माननेवाले	**सर्वभूतः सुहृत्**	सब प्राणियोंके हितैषी
योगेश्वर		**आत्मा**	आत्मस्वरूप
चर्यायां	योगेश्वरोंकी रहनीके विषयमें	**ब्राह्मणः**	ब्राह्मण
		स्मयमान इव	मुस्कराते हुएसे
		विगतस्मय	बिना अभिमानके
		इदं आह	यह बोले ॥८॥

ब्राह्मण उवाच–

त्वयोदितं व्यक्तमविप्रलब्धं
भर्तुः स मे स्याद्यदि वीर भारः ।
गन्तुर्यदि स्यादधिगम्यमध्वा
पीवेति राशौ न विदां प्रवादः ॥९॥

त्वया उदितं व्यक्तं अविप्रलब्धं भर्तुः स मे स्यात् यदि वीर भारः गन्तुः यदि स्यात् अधिगम्यं अध्वा पीवा इति राशौ न विदां प्रवादः ॥९॥

त्वया उदितं	(राजन्) तुम्हारा कहना	**अध्वा**	मार्ग हो तो
व्यक्तं	स्पष्ट रूपसे	**गन्तुः**	चलने वालेके लिए है,
अविप्रलब्धं	ठीक ही है,	**पीवा इति**	यह मोटा है ऐसा
वीर	भाई,	**राशौ**	(हड्डी माँसादिकी राशि) देहके लिए
यदि भारः			कहा जाता है।
स्यात्	यदि भार हो तो	**विदां प्रवादः**	ज्ञानियोंकी यह
स मे	वह मेरे		बात
भर्तुः	ढोनेको हो	**न**	नहीं है ॥९॥
यदि अधिगम्यं	यदि कहीं 'पहुँचनेका		

स्थौल्यं कार्श्यं व्याधय आधयश्च
क्षुत्तृड्भयं कलिरिच्छा जरा च ।
निद्रा रतिर्मन्युरहंमदः शुचो
देहेन जातस्य हि मे न सन्ति ॥१०॥

स्थौल्यं कार्श्यं व्याधय आधयः च क्षुत् तृट् भयं कलिः इच्छा जरा च निद्रा रतिः मन्युः अहं मदः शुचः देहेन जातस्य हि मे न सन्ति ॥१०॥

स्थौल्यं कार्श्यं	मोटापन, दुबलापन,	**मन्युः अहं**	क्रोध, अहंकार,
व्याधयः च		**मदः शुचः**	घमण्ड, शोक
आधयः	रोग और चिन्तामें	**हि**	क्योंकि (ये सब)
क्षुत् तृट्	भूख-प्यास,	**देहेन जातस्य**	शरीरसे उत्पन्न होते हैं
भयं कलिः	भय, झगड़ा,		
इच्छा च जरा	इच्छा एवं बुढ़ापा,	**मे न सन्ति**	मुझमें नहीं हैं ॥१०॥
निद्रा रतिः	निद्रा, इन्द्रिय-सुख,		

जीवन्मृतत्वं नियमेन राजन्
आद्यन्तवद्यद्विकृतस्य दृष्टम् ।
स्वस्वाम्यभावो ध्रुव ईड्य यत्र
तर्ह्यच्युतेऽसौ विधिकृत्ययोगः ॥११॥

जीवन् मृतः त्वं नियमेन राजन् आदि अन्तवत् यत् विकृतस्य दृष्टं स्वस्वाम्यभावः ध्रुव ईड्य यत्र तर्हि अच्युते असौ विधिकृत्य योगः ॥११॥

राजन्	राजन् !	**दृष्टं**	उसपर तुम्हारी दृष्टि है,
नियमेन	नियमतः तो	**स्वस्वाम्य-**	
त्वं	तुम	**भावः**	अपनेमें स्वामी भाव
जीवन् मृतः	जीते हुए ही मरेके समान हो	**यत्र**	जहाँ
यत्	क्योंकि	**ध्रुव ईड्य**	निश्चित प्रशंसनीय है
आदि अन्तवत्	आदि (जन्म) अन्त (मरण)वाला (और)	**तर्हि असौ**	तब तो यह
		विधिकृत्य	विधानसे प्राप्त
विकृतस्य	विकारवान (शरीर) है	**योगः**	योग
		अच्युते	(केवल) श्रीहरि में है ॥११॥

विशेषबुद्धेर्विवरं मनाक् च
पश्याम यन्न व्यवहारतोऽन्यत् ।
क ईश्वरस्तत्र किमीशितव्यं
तथापि राजन् करवाम किं ते ॥१२॥

विशेष बुद्धेः विवरं मनाक् च पश्याम यत् न व्यवहारतः अन्यत् क ईश्वरः तत्र किं ईशितव्यं तथा अपि राजन् करवाम किं ते ॥१२॥

यत्	क्योंकि	तत्र	ऐसी स्थितिमें वहाँ
व्यवहारतः	व्यवहारसे	क ईश्वरः	कौन स्वामी(शासक)
अन्यत्	भिन्न	किं ईशितव्यं	कौन शासित (सेवक) ?
विशेष बुद्धेः	(व्यक्तिकी) विशेषता बुद्धिके लिए	राजन्	राजन् !
		तथा अपि	ऐसा होनेपर भी
मनाक् च	तनिक भी	ते किं	तुम्हारा क्या काम
विवरं	छिद्र (अवसर)	करवाम	करूँ ॥१२॥
न पश्याम	नहीं देखता हूँ		

उन्मत्तमत्तजडवत्स्वसंस्थां
गतस्य मे वीर चिकित्सितेन ।
अर्थः कियान् भवता शिक्षितेन
स्तब्धप्रमत्तस्य च पिष्टपेषः ॥१३॥

उन्मत्त मत्त जडवत् स्वसंस्थां गतस्य मे वीर चिकित्सितेन अर्थः कियान् भवता शिक्षितेन स्तब्ध प्रमत्तस्य च पिष्टपेषः ॥१३॥

वीर	वीर !	कियान् अर्थः	कितना प्रयोजन
उन्मत्त	पागल,	भवता	आपकी
मत्त	मतवाले,	शिक्षितेन	शिक्षासे होगा ।
जडवत्	मूर्खके समान	स्तब्धः	जड़
स्वसंस्थां	अपनी स्थितिमें	च प्रमत्तस्य	तथा प्रमादीके लिए
गतस्य	पहुँचे	पीषपेषः	पीसेको फिर पीसने जैसा(व्यर्थ)है ॥१३॥
मे चिकित्सितेन	मेरी चिकित्सासे		

श्रीशुक उवाच–

एतावदनुवादपरिभाषया प्रत्युदीर्य मुनिवर उपशमशील उपरतानात्म्यनिमित्त उपभोगेन कर्मारब्धं व्यपनयन् राजयानमपि तथोवाह ॥१४॥

एतावत् अनुवाद परिभाषया प्रति उदीर्य मुनिवर उपशमशील उपरत अनात्म्य निमित्त उपभोगेन कर्म आरब्धं व्यपनयन् राजयानं अपि तथा उवाह ॥१४॥

एतावत्	इतना ही
अनुवाद	
परिभाषया	संक्षिप्त ढंगसे
प्रति उदीर्य	उत्तरमें कहकर
उपशमशील	शान्तवृत्ति,
अनात्म्य	आत्मासे भिन्न
निमित्त	निमित्तोंसे
उपरत	उपरत
मुनिवर	(वे) मुनिश्रेष्ठ
आरब्धं कर्म	प्रारब्ध कर्मको
उपभोगेन	भोग करके
व्यपनयन्	क्षय करते हुए
राजयानं अपि	राजाकी सवारी भी
तथा उवाह	वैसे ही ढोते रहे ॥१४॥

स चापि पाण्डवेय सिन्धुसौवीरपतिस्तत्त्वजिज्ञासायां सम्यक्-श्रद्धयाधिकृताधिकारस्तद्धृदयग्रन्थिमोचनं द्विजवच्च आश्रुत्य बहु-योगग्रन्थसम्मतं त्वरयावरुह्य शिरसा पादमूलमुपसृतः क्षमापयन् विगतनृपदेवस्मय उवाच ॥१५॥

स च अपि पाण्डवेय सिन्धुसौवीरपतिः तत्त्व जिज्ञासायां सम्यक् श्रद्धया अधिकृत अधिकारः तत् हृदयग्रन्थि मोचनं द्विजवच्च आश्रुत्य बहु-योगग्रन्थ सम्मतं त्वरया अवरुह्य शिरसा पादमूलं उपसृतः क्षमापयन् विगत नृपदेव स्मय उवाच ॥१५॥

पाण्डवेय	परीक्षित !
स च अपि	वह भी
सिन्धु-	
सौवीरपतिः	सिन्ध-सौराष्ट्रका राजा
सम्यक् श्रद्धया	आम श्रद्धासे
तत्त्व	
जिज्ञासायां	तत्त्व जिज्ञासाका
अधिकृत	
अधिकारः	अधिकार पा चुका था,
तत् हृदय-	
ग्रन्थि	(अतः) उस हृदय ग्रन्थि
मोचनं	छुड़ानेवाले
बहुयोगग्रन्थ	बहुतसे योग ग्रन्थोंसे

सम्मतं	सम्मत	**शिरसा**	
द्विजवच	ब्राह्मणके वचन	**उपसृतः**	मस्तक रखकर
आश्रुत्य	सुनकर	**विगत नृपदेव**	
त्वरया	शीघ्रतापूर्वक	**स्मय**	राजा होनेका अभि-
अवरुह्य	(पालकी से)		मान त्यागकर
	उतरकर	**क्षमापयन्**	क्षमा माँगते हुए
पादमूलं	(उनके) चरणोंमें	**उवाच**	बोला ॥१५॥

रहूगण उवाच-*

कस्त्वं निगूढश्चरसि द्विजानां
बिभर्षि सूत्रं कतमोऽवधूतः ।
कस्यासि कुत्रत्य इहापि कस्मात्
क्षेमाय नश्चेदसि नोत शुक्लः ॥१६॥

कः त्वं निगूढः चरसि द्विजानां बिभर्षि सूत्रं कतमः अवधूतः कस्य असि कुत्र अत्य इह अपि कस्मात् क्षेमाय नः चेत् असि न उत शुक्लः ॥१६॥

द्विजानां सूत्रं	ब्राह्मणों (का चिह्न) यज्ञोपवीत	**कुत्र अत्य**	कहाँसे आये हैं ?
		इह अपि	यहाँ भी
बिभर्षि	धारण किया है (आपने)	**कस्मात्**	किस लिए (आये) हैं ?
निगूढः चरसि	छिपकर विचरण करने वाले	**चेत् नः क्षेमाय**	यदि हमारा कल्याण करने आये हैं
त्वं कः	आप कौन हैं ?	**उत**	तो क्या
कतमः		**शुक्लः न**	भगवान् कपिल तो नहीं हैं ॥१६॥
अवधूतः	कौनसे अवधूत हैं ?		
कस्य असि	किनसे पुत्र हैं ?		

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

नाहं विशङ्के सुरराजवज्रा-
न्न त्र्यक्षशूलान्न यमस्य दण्डात् ।
नाग्न्यर्कसोमानिलवित्तपास्त्रा-
च्छङ्के भृशं ब्रह्मकुलावमानात् ॥१७॥

न अहं विशङ्के सुरराज वज्रात् न त्र्यक्ष शूलात् न यमस्य दण्डात् न अग्नि अर्क सोम अनिल वित्तप अस्त्रात् शङ्के भृशं ब्रह्मकुल अवमानात् ॥१७॥

अहं	मैं
सुरराज वज्रात्	देवराज (इन्द्र)के वज्रसे
न विशङ्के	डरता नहीं,
त्र्यक्ष शूलात्	त्रिनयन (रुद्र)के त्रिशूलसे
न	नहीं
यमस्य दण्डात् न	यमराजके डण्डेसे नहीं,
अग्नि अर्क	अग्नि, सूर्य,
सोम अनिल वित्तप	चन्द्रमा, वायु,
अस्त्रात् न	कुबेरके अस्त्रोंसे नहीं
ब्रह्मकुल	(किन्तु) ब्राह्मण कुलके
अवमानात्	अपमानसे
भृशं शङ्के	बहुत डरता हूँ ॥१७॥

तद् ब्रूह्यसङ्गो जडवन्निगूढ-
विज्ञानवीर्यो विचरस्यपारः ।
वचांसि योगग्रथितानि साधो
न नः क्षमन्ते मनसापि भेत्तुम् ॥१८॥

तत् ब्रूहि असङ्गः जडवत् निगूढ विज्ञानवीर्यः विचरसि अपारः वचांसि योगग्रथितानि साधो न नः क्षमन्ते मनसा अपि भेत्तुम् ॥१८॥

तत् ब्रूहि	अतः बतलाइये,
विज्ञानवीर्यः	(अपने) विज्ञान और शक्तिको
जडवत्	मूर्खकी भाँति
निगूढ	छिपाकर (आप)
असङ्गः	अनासक्त

विचरसि	घूमते हैं,	वचांसि	(आपके) वचनोंको
साधो	साधो !	नः मनसा अपि	मैं मनसे भी
योगग्रथितानि	योगसे युक्त	भेत्तुं	भेद न (समझने)में
अपारः	अपार	क्षमन्ते न	सक्षम नहीं हूँ॥१८॥

अहं च योगेश्वरमात्मतत्त्व-
विदां मुनीनां परमं गुरुं वै ।
प्रष्टुं प्रवृत्तः किमिहारणं तत्
साक्षाद्धरिं ज्ञानकलावतीर्णम् ॥१९॥

अहं च योगेश्वरं आत्मतत्त्व विदां मुनीनां परमं गुरुं वै प्रष्टुं प्रवृत्तः किं इह अरणं तत् साक्षात् हरिं ज्ञानकला अवतीर्णम् ॥१९॥

आत्मतत्त्व विदां	आत्मतत्त्वके जाननेवाले	साक्षात् हरिं	साक्षात् श्रीहरि (कपिलजी)से
मुनीनां परमं गुरुं	मुनियोंके परमगुरु	अहं च	मैं तो
योगेश्वरं	योगेश्वर	प्रष्टुं प्रवृत्तः	पूछने जा रहा था कि
वै	निश्चय	इह किं	इस संसारमें वह कौन है
ज्ञानकला अवतीर्णम्	ज्ञानकलासे अवतार लिये	तत् अरणं	जिसको शरण ली जाय ॥१९॥

स वै भवाँल्लोकनिरीक्षणार्थ-
मव्यक्तलिङ्गो विचरत्यपिस्वित् ।
योगेश्वराणां गतिमन्धबुद्धिः
कथं विचक्षीत गृहानुबन्धः ॥२०॥

स वै भवान् लोक निरीक्षण अर्थम् अव्यक्त लिङ्गः विचरति अपि स्वित् योगेश्वराणां गतिं अन्धबुद्धिः कथं विचक्षीत गृह अनुबन्धः ॥२०॥

अपि स्वित्	अथवा क्या
स वै	वही (भगवान् कपिल) तो
भवान्	आप नहीं हैं ?
लोक निरीक्षण अर्थम्	लोगोंको देखनेके लिए
अव्यक्त लिङ्गः	(अपने) चिह्न छिपाये
विचरति	घूम रहे हैं।
गृह अनुबन्धः	घरमें आसक्त
अन्धबुद्धिः	अन्धी बुद्धिवाला
योगेश्वराणां	(आप) योगेश्वरोंकी
गतिं	गति
कथं विचक्षीत	कैसे जान सकता है ॥२०॥

दृष्टः श्रमः कर्मत आत्मनो वै
भर्तुर्गन्तुर्भवतश्चानुमन्ये ।
यथासतोदानयनाद्यभावात्
समूल इष्टो व्यवहारमार्गः ॥२१॥

दृष्टः श्रमः कर्मत आत्मनः वै भर्तुः गन्तुः भवतः च अनुमन्ये यथा असतः उद आनयनादि अभावात् समूल इष्टः व्यवहारमार्गः ॥२१॥

वै	निश्चय
कर्मत	कर्म करनेसे
आत्मनः	अपनेको
श्रमः	परिश्रम होते
दृष्टः	(मैंने) देखा है,
भर्तुः	भार ढोकर
गन्तुः	चलनेमें
भवतः च	आपको भी (होता होगा ऐसा)
अनुमन्ये	अनुमान करता हूँ।
यथा	जैसे
असतः	मिथ्या (घड़े)से
उद् आनयनादि	पानी लाना इत्यादि
अभावात्	नहीं होता (अतः)
व्यवहारमार्गः	व्यवहारका मार्ग
समूल इष्टः	जड़ (कारण) सहित अभीष्ट है ॥२१॥

स्थाल्यग्नितापात्पयसोऽभितापः
स्तत्तापतस्तण्डुलगर्भरन्धिः ।
देहेन्द्रियास्वाशयसन्निकर्षात्
तत्संसृतिः पुरुषस्यानुरोधात् ॥२२॥

स्थालि अग्नि तापात् पयसः अभितापः तत् तापतः तण्डुल गर्भ रन्धिः देह इन्द्रिय आस्व आशय सन्निकर्षात् तत् संसृतिः पुरुषस्य अनुरोधात् ॥२२॥

स्थालि	बर्तनको	**देह इन्द्रिय**	(इसी प्रकार) शरीर, इन्द्रिय,
अग्नि तापात्	अग्निका ताप लगनेसे	**आस्व आशय**	प्राण, अन्तःकरुणको
पयसः	(उसमें रखा) दूध	**सन्निकर्षात्**	सन्निकटतासे,
अभितापः	तप जाता है।	**तत् अनुरोधात्**	उनके पीछे लगे होनेसे
तत् तापतः	उस (दूध)के तपनेसे	**पुरुषस्य**	पुरुष(आत्मा)का भी
गर्भ तण्डुल	उसके भीतरका चावल	**संसृतिः**	आवागमन होता है ॥२२॥
रन्धिः	पक जाता है।		

शास्ताभिगोप्ता नृपतिः प्रजानां
यः किङ्करो वै न पिनष्टि पिष्टम् ।
स्वधर्ममाराधनमच्युतस्य
यदीहमानो विजहात्यघौघम् ॥२३॥

शास्ता अभिगोप्ता नृपतिः प्रजानां यः किङ्करः वै न पिनष्टि पिष्टं स्वधर्मं आराधनं अच्युतस्य यत् ईहमानः विजहाति अघ ओघम् ॥२३॥

नृपतिः	राजा	**शास्ता अभिगोप्ता**	शासक और रक्षक है।
प्रजानां	प्रजाका		

वै यः किङ्करः	निश्चय जो(प्रजाका) सेवक है।	**अच्युतस्य**	भगवान्‌की
		आराधनं	आराधना है,
पिनष्टि		**यत् ईहमानः**	जिसकी चेष्टा
पिष्टं न	(उसका प्रमत्तादिको दण्ड देना) पीसेको पीसना नहीं है।		(पालन) करनेसे
		अघ ओघं	पाप-प्रवाहको
		विजहाति	नष्ट कर देता
स्वधर्मम्	अपने धर्मका पालन		है ॥२३॥

तन्मे भवान्नरदेवाभिमान-
मदेन तुच्छीकृतसत्तमस्य ।
कृषीष्ट मैत्रीदृशमार्तबन्धो
यथा तरे सदवध्यानमंहः ॥२४॥

तत् मे भवान् नरदेव अभिमान मदेन तुच्छीकृत सत्तमस्य कृषीष्ट मैत्री दृशं आर्तबन्धो यथा तरे सत् अवध्यानं अंहः ॥२४॥

आर्तबन्धो	दुःखीके बन्धु !	**मैत्री दृशं**	(अब आप अपनी)
नरदेव			मित्रताकी दृष्टिसे
अभिमान	राजा होनेके गर्वमें	**कृषीष्ट**	कृपा कीजिए
मदेन	उन्मत्त होकर	**यथा**	जिससे
सत्तमस्य	(आप) सत्पुरुष-श्रेष्ठको	**सत् अवध्यानं**	सत् पुरुषके अपमानके
मे तत्	मैंने इस प्रकार	**अंहः तरे**	पापसे पार
तुच्छीकृत	तुच्छ बनाया		होऊँ ॥२४॥

न विक्रिया विश्वसुहृत्सखस्य
साम्येन वीताभिमतेस्तवापि ।
महद्विमानात् स्वकृताद्धि मादृङ्
नङ्क्षत्यदूरादपि शूलपाणिः ॥२५॥

न विक्रिया विश्व सुहृत् सखस्य साम्येन वीत अभिमतेः तव अपि महत् विमानात् स्वकृतात् हि मादृक् नङ्क्ष्यति अदूरात अपि शूलपाणिः ॥२५॥

विश्व सुहृत्	विश्वके सुहृद (भगवान्)के	**स्वकृतात् हि**	अपने कर्मसे ही
सखस्य	सखा (निज-जन)	**मादृक्**	मेरे जैसे
वीत अभिमतेः	अभिमान रहित	**शूलपाणिः**	शिव जैसे (प्रभावशाली)
तव विक्रिया	आपमें विकार (क्रोध)	**अपि**	भी
न अपि	न होनेपर भी	**अदूरात्**	
महत्		**नङ्क्ष्यति**	शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥२५॥
विमानात्	महापुरुषोंके अपमानरूप		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
पञ्चमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अथ एकादशोऽध्यायः

ब्राह्मण उवाच-

अकोविदः कोविदवादवादान्
वदस्यथो नातिविदां वरिष्ठः ।
न सूरयो हि व्यवहारमेनं
तत्त्वावमर्शेन सहामनन्ति ॥१॥

अकोविदः कोविदवाद वादान् वदसि अथो न अतिविदां वरिष्ठः न सूरयः हि व्यवहारं एनं तत्त्व अवमर्शेन सह आमनन्ति ॥१॥

अकोविदः	अज्ञानी होकर	**वरिष्ठः न**	श्रेष्ठ नहीं हो ।
कोविदवाद	ज्ञानियोंकी चर्चाके समान	**हि सूरयः**	क्योंकि तत्त्वज्ञानी
		एनं व्यवहारं	इस व्यवहारको
वादान्	तर्क-वितर्क	**तत्त्व अवमर्शेन**	तत्त्व-विचारके
वदसि	करते हो,	**सह न**	
अथो	अतः	**आमनन्ति**	साथ नहीं स्वीकार करते ॥१॥
अतिविदां	बहुज्ञ लोगोंमें		

तथैव राजन्नुरुगार्हमेध-
वितानविद्योरुविजृम्भितेषु ।
न वेदवादेषु हि तत्त्ववादः
प्रायेण शुद्धो नु चकास्ति साधुः ॥२॥

तथा एव राजन् उरु गार्हमेध वितान विद्या उरु विजृम्भितेषु न वेद-वादेषु हि तत्त्ववादः प्रायेण शुद्धः नु चकास्ति साधुः ॥२॥

राजन्	राजन् !	वेदवादेषु हि	वैदिक-व्यवहारमें भी
तथा एव	इसी प्रकार	प्रायेण	प्रायः
उरु गार्हमेध	गृहस्थ-धर्म बहुल	शुद्धः तत्त्ववादः	शुद्ध तत्त्व-विचार
वितान विद्या	यज्ञ-विद्याके	साधुः नु	भली प्रकार तो
उरु		न चकास्ति	नहीं प्रकाशित हुआ
विजृम्भितेषु	बहुत विस्तारसे भरे		है ॥२॥

न तस्य तत्त्वग्रहणाय साक्षाद्
वरीयसीरपि वाचः समासन् ।
स्वप्ने निरुक्त्या गृहमेधिसौख्यं
न यस्य हेयानुमितं स्वयं स्यात् ॥३॥

न तस्य तत्त्व ग्रहणाय साक्षाद् वरीयसीः अपि वाचः समासन् स्वप्ने निरुक्त्या गृहं एधि सौख्यं न यस्य हेय अनुमितं स्वयं स्यात् ॥३॥

यस्य	जिसे	तत्त्व	तत्त्वज्ञान
गृहम्	गृहस्थोचित	गृहणाय	करानेमें
एधि	यज्ञादि कर्मोंसे प्राप्त होनेवाला	साक्षात्	साक्षात्
		स्वयं	स्वयं
सौख्यं	स्वर्गादि सुख	निरुक्त्वा	उपनिषद्
स्वप्ने	स्वप्नके समान	वाचः	वाक्य
हेय	त्यागने योग्य (हेय)	वरीयसीः	श्रेष्ठ होनेपर
अनुमितं	तुच्छ	अपि	भी
न	नहीं	समासन्	✓ समर्थ
स्यात्	जान पड़ता (होवे)	न	नहीं है ॥३॥
तस्य	उसे		

यावन्मनो रजसा पूरुषस्य
सत्त्वेन वा तमसा वानुरुद्धम् ।
चेतोभिराकूतिभिरातनोति
निरङ्कुशं कुशलं चेतरं वा ॥४॥

यावत् मनः रजसा पुरुषस्य सत्त्वेन वा तमसा वा अनुरुद्धं चेतः अभिः आकूतिभिः आतनोति निरंकुशं कुशलं च इतरं वा ।।४।।

यावत् पूरुषस्य	जब तक पुरुषका	**अभिः**	
मनः रजसा	मन रजोगुणके	**आकूतिभिः**	सब ओर ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रियोंसे
वा सत्त्वेन	अथवा सत्त्वगुणके	**कुशलं च**	शुभ और
वा तमसा	अथवा तमोगुणके	**अकुशलं**	(अशुभ)
अनुरुद्धं	वशमें है,	**वा इतरं**	अथवा इनसे भिन्न (मनोराज्य)
चेतः निरंकुशं	(तब तक) चित्त बिना नियन्त्रण	**आतनोति**	फैलता रहता है ।।४।।

√ स वासनात्मा विषयोपरक्तो
गुणप्रवाहो विकृतः षोडशात्मा ।
बिभ्रत्पृथङ्नामभि रूपभेद-
मन्तर्बहिष्ट्वं च पूरैस्तनोति ।।५।।

स वासनात्मा विषय उपरक्तः गुणप्रवाहः विकृतः षोडशात्मा बिभ्रत् पृथक् नामभिः रूपभेदं अन्तः बहिष्ट्वं च पुरैः तनोति ।।५।।

स वासनात्मा	वह (मन) वासना-मय है,	**रूपभेदं**	
विषय उपरक्तः	विषयासक्त है,	**बिभ्रत्**	भिन्न-भिन्न रूप धारण करके
गुणप्रवाहः	गुणों (त्रिगुण)की धारामें ही रहता है,	**अन्तः**	भीतर (स्वप्नमें)
विकृतः	विकारी है,	**च बहिष्ट्वं**	और बाहर (संसारमें)
षोडशात्मा	पंचभूत तथा दस इन्द्रियोंमें मुख्य (सोलहवां) है ।	**पुरैः**	शरीर (रूप नगरों) को
पृथक् नामभिः	अलग-अलग नामोंसे	**तनोति**	फैलाता (शरीरका कारण होता है)।।५।।

दुःखं सुखं व्यतिरिक्तं च तीव्रं
कालोपपन्नं फलमाव्यनक्ति ।
आलिङ्ग्य मायारचितान्तरात्मा
स्वदेहिनं संसृतिचक्रकूटः ॥६॥

दुःखं सुखं व्यतिरिक्तं च तीव्रं काल उपपन्नं फलं आव्यनक्ति आलिङ्ग्य माया रचित अन्तरात्मा स्वदेहिनं संसृति चक्र कूटः ॥६॥

संसृति चक्र	संसार-चक्र (चलानेवाला)	दुःखं सुखं	दुःख-सुख
		च व्यतिरिक्तं	तथा इनसे भिन्न (मोह रूप)
कूटः	यह छलनामय		
माया रचित	मायासे उत्पन्न	काल उपपन्नं	कालके अनुसार प्राप्त
अन्तरात्मा	मन		
स्वदेहिनं	अपनी देहके अभिमानी जीवसे	फलं	फलको
		आव्यनक्ति	अभिव्यक्त करता है ॥६॥
आलिङ्ग्य	आलिंगन करके		

तावानयं व्यवहारः सदाविः
क्षेत्रज्ञसाक्ष्यो भवति स्थूलसूक्ष्मः ।
तस्मान्मनो लिङ्गमदो वदन्ति
गुणागुणत्वस्य परावरस्य ॥७॥

तावात् अयं व्यवहारः सदाविः क्षेत्रज्ञ साक्ष्यः भवति स्थूल सूक्ष्मः तस्मात् मनः लिङ्गं अदः वदन्ति गुण अगुणत्वस्य पर अवरस्य ॥७॥

तावात्	तभी तक	व्यवहारः	व्यवहार
अयं	यह	क्षेत्रज्ञ	क्षेत्रज्ञ (जीव)का
स्थूल सूक्ष्मः	जाग्रत और स्वप्नका	साक्ष्यः	दृश्य
		सदाविः	सदा प्रकाशित

भवति	होता है।	**अगुणत्वस्य**	गुणातीत श्रेष्ठ
तस्मात्	इसलिए	**पर**	(मोक्ष)का
गुण अवरस्य	त्रिगुणमय,हीन (संसार)का	**मनः लिंगं**	मनको ही
		अदः	कारण
		वदन्ति	बतलाते हैं ॥७॥

गुणानुरक्तं व्यसनाय जन्तोः
क्षेमाय नैर्गुण्यमथो मनः स्यात् ।
यथा प्रदीपो घृतवर्तिमश्नन्
शिखाःसधूमा भजति ह्यन्यदा स्वम् ।
पदं तथा गुणकर्मानुबद्धं
वृत्तीर्मनः श्रयतेऽन्यत्र तत्त्वम् ॥८॥

गुण अनुरक्तं व्यसनाय जन्तोः क्षेमाय नैर्गुण्यं अथः मनः स्यात् यथा प्रदीपः घृतवर्तिं अश्नन् शिखाः सधूमा भजति हि अन्यदा स्वं पदं तथा गुण कर्म अनुबद्धं वृत्तीः मनः श्रयते अन्यत्र तत्त्वम् ॥८॥

मनः	मन	**अश्नन्**	(जब तक) खाता है,
गुण अनुरक्तं जन्तोः	विषयासक्त रहनेपर	**सधूमा शिखाः**	धुएँके साथ लौ
		भजति	देता है
व्यसनाय	जीवके क्लेशका हेतु है	**हि**	क्योंकि
		अन्यदा	अन्यथा (घी-बत्ती न होनेपर)
अथः नैर्गुण्यं	और जब विषय रहित होता है		
क्षेमाय स्यात्	कल्याणका हेतु हो जाता है	**स्व**	अपने स्वरूप (अग्नि) में रहता है,
यथा	जैसे	**तथा**	वैसे ही
प्रदीपः	दीपक	**गुण कर्म**	विषयों और कर्मके
घृतवर्तिं	घी (से भीगी) बत्तीको	**अनुबद्धं**	साथ बँधा हुआ

मनः वृत्तीः			आश्रयसे) पृथक
श्रयते	मन वृत्तियोंका आश्रय लेता है,	तत्त्वं	आत्म-तत्त्वका (आश्रय लेता
अन्यत्र	(गुण-कर्मके		है) ॥८॥

एकादशासन्मनसो हि वृत्तय
आकूतयः पञ्च धियोऽभिमानः ।
मात्राणि कर्माणि पुरं च तासां
वदन्ति हैकादश वीर भूमिः ॥९॥

एकादश आसन् मनसः हि वृत्तयः आकूतयः पञ्च धियः अभिमानः मात्राणि कर्माणि पुरं च तांसां वदन्ति ह एकादश वीर भूमिः ॥९॥

वीर	वीरवर !	मात्राणि	पञ्च-तन्मात्रामें (शब्द-स्पर्शादि)
मनसः	मनकी		
एकादश	ग्यारह (दस इन्द्रियां तथा अहंकार)	कर्माणि च तासां पुरं	पाँच प्रकारके कर्म, और इनका नगर (शरीर)
ह	निश्चित		
वृत्तयः	वृत्तियां	एकादश	(इन) ग्यारहको
आसन्	हैं ।	ह भूमिः	
पञ्च आकूतयः	पांच प्रकारके कर्म हैं ।	वदन्ति	निश्चित आधार (जन्मस्थान) कहते हैं ॥९॥
धियः			
अभिमानः	बुद्धि और अभिमान,		

गन्धाकृतिस्पर्शरसश्रवांसि
विसर्गरत्यर्त्यभिजल्पशिल्पाः ।
एकादशं स्वीकरणं ममेति
शय्यामहं द्वादशमेक आहुः ॥१०॥

गन्ध आकृति स्पर्श रस श्रवांसि विसर्ग रति अर्त अभिजल्प शिल्पाः एकादशं स्वीकरणं मम इति शय्यां अहं द्वादशं एक आहुः ॥१०॥

गन्ध आकृति	गन्ध, रूप	**एकादशं**	ग्यारहवां
स्पर्श रस	स्पर्श, रस	**मम इति**	ये मेरे हैं इस प्रकार
श्रवांसि	शब्द (ये पांच ज्ञानेन्द्रियोंके विषय)	**स्वीकरणं**	(इन दसका) स्वीकार करना
विसर्ग	मल त्याग,	**एक**	कोई
रति	सम्भोग,	**अहं**	अहंकारको (तथा)
अर्त	गमन,	**शय्यां**	(उसके) आधार (शरीर)को
अभिजल्प	बोलना,		
शिल्पाः	शिल्प (व्यवहार-काम करना) (ये पांच कर्मेन्द्रियोंके विषय)	**द्वादशं आहुः**	(मनकी) बारहवीं वृत्ति कहते हैं ॥१०॥

द्रव्यस्वभावाशयकर्मकालै-
रेकादशामी मनसो विकाराः ।
सहस्रशः शतशः कोटिशश्च
क्षेत्रज्ञतो न मिथो न स्वतः स्युः ॥११॥

द्रव्य स्वभाव आशय कर्म कालैः एकादश अमी मनसः विकाराः सहस्रशः शतशः कोटिशः च क्षेत्रज्ञतः न मिथः न स्वतः स्युः ॥११॥

द्रव्य	विषय (पदार्थ)	**मनसः**	
स्वभाव	स्वभाव (द्रव्यके गुण)	**विकाराः**	मनके विकार (वृत्तियां)
आशय	आशय (संस्कार)	**सहस्रशः**	हजारों,
कर्म	क्रिया	**शतशः**	सैकड़ों,
कालैः	समय (के भेदसे)	**च कोटिशः**	और करोड़ों (हो जाती हैं, किन्तु)
अमी एकादश	ये ग्यारह		

क्षेत्रज्ञतः	क्षेत्रज्ञ (जीव)से	न स्वतः स्युः	न स्वतः (सत्) हैं।
न मिथः	(ये) न मिली हैं,		(ये प्रतीति मात्र हैं) ॥११॥

क्षेत्रज्ञ एता मनसो विभूती-
र्जीवस्य मायारचितस्य नित्याः।
आविर्हिताः क्वापि तिरोहिताश्च
शुद्धो विचष्टे ह्यविशुद्धकर्तुः ॥१२॥

क्षेत्रज्ञ एता मनसः विभूतीः जीवस्य माया रचितस्य नित्याः आविर्हिताः क्वापि तिरोहिताः च शुद्धः विचष्टे हि अविशुद्ध कर्तुः ॥१२॥

माया रचितस्य मनसः	माया-निर्मित मनकी	च तिरोहिताः	और (कभी) तिरोहित रहती है
एता	ये (वृत्तियां)	हि	क्योंकि
क्षेत्रज्ञ जीवस्य नित्याः	क्षेत्रज्ञ जीवकी	कर्तुः अविशुद्ध	कर्ता (अहंकार) अशुद्ध है
विभूतीः	(प्रवाह रूपसे) नित्य विभूति है	शुद्धः विचष्टे	शुद्ध (क्षेत्रज्ञ द्रष्टा) साक्षीरूपसे देखता रहता है॥१२॥
क्वापि आविर्हिताः	कभी प्रकट हो जाती हैं		

क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः पुराणः
साक्षात्स्वयंज्योतिरजः परेशः।
नारायणो भगवान् वासुदेवः
स्वमायययाऽऽत्मन्यवधीयमानः ॥१३॥

क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः पुराणः साक्षात् स्वयं ज्योतिः अजः परेशः नारायणः भगवान् वासुदेवः स्वमायया आत्मनि अवधीयमानः ॥१३॥

क्षेत्रज्ञ	(यही) क्षेत्रज्ञ	**भगवान्**	
आत्मा	आत्मा	**वासुदेवः**	भगवान् वासुदेव हैं
पुराणः पुरुषः	सनातन पुरुष	**स्वमायया**	अपनी मायासे
साक्षात् स्वयं		**आत्मनि**	अपनेमें ही
ज्योतिः	साक्षात् स्वयं प्रकाश	**अवधीयमानः**	(जगतकी) अव-
अजः परेशः	अजन्मा, सर्वेश्वर,		धारणा (कल्पना)
नारायणः	नारायण		करते हैं ॥१३॥

यथानिलः स्थावरजङ्गमाना-
मात्मस्वरूपेण निविष्ट ईशेत् ।
एवं परो भगवान् वासुदेवः
क्षेत्रज्ञ आत्मेदमनुप्रविष्टः ॥१४॥

यथा अनिलः स्थावर जङ्गमानां आत्मस्वरूपेण निविष्ट ईशेत् एवं परः भगवान् वासुदेवः क्षेत्रज्ञ आत्मा इदं अनुप्रविष्टः ॥१४॥

यथा अनिलः	जैसे वायु	**एवं परः**	इसी प्रकार परम-
स्थावर			पुरुष
जङ्गमानां	अचर-चर	**भगवान्**	
	(प्राणियोंमें)	**वासुदेवः**	भगवान् वासुदेव
आत्मस्वरूपेण	उनके अपने स्वरूपमें	**क्षेत्रज्ञ आत्मा**	क्षेत्रज्ञ आत्मा रूपसे
निविष्ट	प्रवेश करके	**इदं**	इस संसारमें
ईशेत्	उनका सञ्चालन	**अनुप्रविष्टः**	सर्वत्र प्रविष्ट
	करता है,		हैं ॥१४॥

न यावदेतां तनुभृन्नरेन्द्र
विधूय मायां वयुनोदयेन ।
विमुक्तसङ्गो जितषट्सपत्नो
वेदात्मतत्त्वं भ्रमतीह तावत् ॥१५॥

न यावत् एतां तनुभृत् नरेन्द्र विधूय मायां वयुना उदयेन विमुक्त सङ्गः जितषट्सपत्नः वेद आत्मतत्त्वं भ्रमति इह तावत् ॥१५॥

नरेन्द्र	राजन् !	**एतां मायां**	इस मायाको
यावत्	जब तक	**विधूय**	नष्ट करके
तनुभृत्	शरीरधारी (पुरुष)	**आत्मतत्त्वं**	आत्मतत्त्वको
जितषट्-		**न वेद**	नहीं जानता,
सपत्नः	(कामादि) छहो शत्रुओंको जीतकर	**इह तावत्**	इस संसारमें तब तक
विमुक्त सङ्गः	आसक्तिका त्याग करके	**भ्रमति**	(जन्म-मरण चक्रमें) घूमता है ॥१५॥
वयुना उदयेन	ज्ञानोदयसे		

न यावदेतन्मन आत्मलिङ्गं
संसारतापावपनं जनस्य ।
यच्छोकमोहामयरागलोभ-
वैरानुबन्धं ममतां विधत्ते ॥१६॥

न यावत् एतत् मनः आत्मलिङ्गं संसार ताप आवपनं जनस्य यत् शोक मोह आमयराग लोभ वैर अनुबन्धं ममतां विधत्ते ॥१६॥

यावत्	जब तक	**यत्**	क्योंकि
एतत् आत्म-		**शोक मोह**	शोक, मोह,
लिङ्गं	इस आत्माके चिह्न (उपाधि)	**आमयराग**	रोग, राग,
		लोभ	
मनः	मनको	**वैर अनुबन्धं**	लोभ, शत्रुता (तथा)
जनस्य	पुरुषके लिए	**ममतां**	ममताको
संसार ताप	संसारके संतापोंका	**विधत्ते**	(यह मन ही) उत्पन्न करता है ॥१६॥
आवपनं	बोनेवाला		
न	नहीं (जानलेता)		

भ्रातृव्यमेनं तददभ्रवीर्य-
मुपेक्षयाध्येधितमप्रमत्तः ।
गुरोर्हरेश्चरणोपासनास्त्रो
जहि व्यलीकं स्वयमात्ममोषम् ॥१७॥

भ्रातृव्यं एनं तत् अदभ्रवीर्यं उपेक्षया एधितं अप्रमत्तः गुरोः हरेः चरण उपासन अस्त्रः जहि व्यलीकं स्वयं आत्ममोषम् ॥१७॥

भ्रातृव्यम्	भाई !	**अप्रमत्तः**	प्रमादहीन होकर
तत्	अतः	**गुरोः हरेः**	गुरुदेव तथा श्रीहरिके
अदभ्रवीर्यं	अत्यन्त बलवान	**चरण उपासन**	चरणोंकी उपासना रूपी
उपेक्षया	(तुम्हारी) उपेक्षासे	**अस्त्रः**	अस्त्रसे
एधितं	बढ़े हुए	**जहि**	मार डालो ॥१७॥
व्यलीकं	मिथ्या (असत्)		
स्वयं आत्म-	स्वयं आत्माको		
मोषं	चुराने (ढकने) वाले		
एनं	इस मनको		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे ब्राह्मणरहूगण सम्वादे एकादशोऽध्यायः ।११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

ऋभुरुवाच-

नमो नमः कारणविग्रहाय
स्वरूपतुच्छीकृतविग्रहाय ।
नमोऽवधूत द्विजबन्धुलिङ्ग-
निगूढनित्यानुभवाय तुभ्यम् ॥१॥

नमो नमः कारणविग्रहाय स्वरूप तुच्छीकृतविग्रहाय नमः अवधूत द्विजबन्धु लिङ्ग निगूढ नित्य अनुभवाय तुभ्यम् ॥१॥

कारण-विग्रहाय	(जीवोंका उद्धार करनेके लिए) सकारण शरीर धारण किए	**नमो नमः**	(आपको) बार-बार नमस्कार
		अवधूत	मलिनवेष
		द्विजबन्धु लिङ्ग	उपेक्षणीय ब्राह्मण वेशमें
स्वरूप	(अपने) स्वरूपके अनुभवसे	**निगूढ नित्य अनुभवाय**	अपने नित्य अनुभव रूपको छिपाये
तुच्छीकृत-विग्रहाय	स्थूल शरीरको तुच्छ मानने वाले	**तुभ्यं नमः**	आपको नमस्कार ॥१॥

ज्वरामयार्तस्य यथागदं सत्
निदाघदग्धस्य यथा हिमाम्भः ।
कुदेहमानाहिविदष्टदृष्टेः
ब्रह्मन् वचस्तेऽमृतमौषधं मे ॥२॥

ज्वर आमय आर्तस्य यथा अगदं सत् निदाघदग्धस्य यथा हिम अम्भः कुदेहमान अहि विदष्ट दृष्टेः ब्रह्मन् वचः ते अमृतं औषधं मे ॥२॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**कुदेहमान अहि**	इस बुरे शरीरके अभिमान रूपी सर्पसे
यथा	जैसे	**विदष्ट दृष्टेः**	डँसी दृष्टि (विवेक-बुद्धि)
ज्वर आमय आर्तस्य	ज्वर-रोगसे पीड़ितके लिए	**मे**	मेरे लिए
सत् अगदं यथा	अच्छी औषधि हो, जैसे	**ते वचः अमृतं औषधं**	आपके वचन अमृतमय औषधि हैं ॥२॥
निदाघदग्धस्य हिम अम्भः	गर्मीसे संतप्तके लिए शीतल जल हो,		

तस्माद्भवन्तं मम संशयार्थम्
प्रक्ष्यामि पश्चादधुना सुबोधम् ।
अध्यात्मयोगग्रथितं तवोक्त-
माख्याहि कौतूहलचेतसो मे ॥३॥

तस्मात् भवन्तं मम संशय अर्थं प्रक्ष्यामि पश्चात् अधुना सुबोधं अध्यात्मयोग ग्रथितं तव उक्तं आख्याहि कौतूहल चेतसः मे ॥३॥

तस्मात्	इसलिए	**ग्रथितं**	संयुक्त
भवन्तं	आपसे	**तव उक्तं**	आपने जो कहा
मम संशय अर्थं	अपने संशयको (दूर करनेके)लिए	**सुबोधं**	सरलतासे समझमें आने
पश्चात्		**आख्याहि**	(इस प्रकार उसे)
प्रक्ष्यामि	पीछे पूछूंगा,		कहिए,
अधुना	इस समय	**मे चेतसः**	मेरे चित्तमें
अध्यात्म-योग	अध्यात्म-योगसे	**कौतूहल**	उत्सुकता है ॥३॥

यदाह योगेश्वर दृश्यमानं
क्रियाफलं सद्व्यवहारमूलम् ।
न ह्यञ्जसा तत्त्वविमर्शनाय
भवानमुष्मिन् भ्रमते मनो मे ॥४॥

यत् आह योगेश्वर दृश्यमानं क्रियाफलं सत् व्यवहार मूलं न हि अञ्जसा तत्त्वविमर्शनाय भवान् अमुष्मिन् भ्रमते मनः मे ॥४॥

योगेश्वर	योगेश्वर !	**अञ्जसा**	सरलतासे
भवान्	आपने	**तत्त्वविम-**	
यत्	जो	**र्शनाय न**	तत्त्व विचारके लिए (उपयुक्त) नहीं
दृश्यमानं	(प्रत्यक्ष) दिखलाई देनेवाला	**आह**	कहा
सत् व्यवहार	अच्छे व्यवहारकी	**अमुष्मिन्**	इस विषयमें
मूलं	जड़ (कारण)	**मे मनः**	मेरा मन
क्रियाफलं	कर्मका फल	**भ्रमते**	भटक रहा है ॥४॥
हि	क्योंकि		

ब्राह्मण उवाच-

अयं जनो नाम चलन् पृथिव्यां
यः पार्थिवः पार्थिव कस्य हेतोः ।
तस्यापि चाङ्घ्र्योरधि गुल्फजङ्घा-
जानूरुमध्योरशिरोधरांसाः ॥५॥

अयं जनः नाम चलन् पृथिव्यां यः पार्थिवः पार्थिव कस्य हेतोः तस्य अपि च अङ्घ्रि अधि गुल्फ जङ्घा जानु उरु मध्य उर शिरः अधर अंसाः ॥५॥

पार्थिव	राजन्	**यः**	जो
अयं जनः नाम	यह मनुष्य कहा जानेवाला	**पृथिव्यां चलन्**	पृथ्वीपर चलता है,
		कस्य हेतोः	किस कारणसे

पार्थिवः	पृथ्वी-तत्त्वसे बने (पाषाणादि)से भिन्न है ?	**जङ्घा जानु**	पिण्डलियां, घुटने
		उरु मध्य	जाँघें, बीचका भाग (कटि)
तस्य अपि च अङ्घ्रि	उसके भी तो	**उरः शिरः**	वक्षस्थल, शिर
		अधर अंसाः	गर्दन, कन्धे हैं ॥५॥
अधि गुल्फ	पैरोंके ऊपर टखने,		

अंसेऽधि दार्वी शिबिका च यस्यां
सौवीरराजेत्यपदेश आस्ते ।
यस्मिन् भवान् रूढनिजाभिमानो
राजास्मि सिन्धुष्विति दुर्मदान्धः ॥६॥

अंसे अधि दार्वी शिबिका च यस्यां सौवीरराज इति अपदेश आस्ते यस्मिन् भवान् रूढ निज अभिमानः राजा अस्मि सिन्धुषु इति दुर्मद अन्धः ॥६॥

अंसे	कन्धेपर	**निज**	
दार्वी शिबिका	लकड़ीकी पालकी	**अभिमानः**	निजत्वका अभिमान
अधि	रखी है	**रूढ**	करके
च यस्यां	और जिसमें	**सिन्धुषु राजा**	
सौवीरराज	सौवीरराज	**अस्मि**	(मैं) सिन्धका राजा हूँ
इति अपदेश	इस नामका		
आस्ते	(एक शरीर) बैठा है,	**इति दुर्मद**	इस प्रकारके बुरे गर्वसे
यस्मिन्	जिसमें	**अन्धः**	अन्धे (विवेकहीन) हो रहे हैं ॥६॥
भवान्	आप		

शोच्यानिमांस्त्वमधिकष्टदीनान्
विष्टच्या निगृह्णन्निरनुग्रहोऽसि ।
जनस्य गोप्तास्मि विकत्थमानो
न शोभसे वृद्धसभासु धृष्टः ॥७॥

शोच्यान् इमान् त्वं अधिकष्ट दीनान् विष्टया निगृह्णन् निरनुग्रहः असि जनस्य गोप्ता अस्मि विकत्थमानः न शोभसे वृद्धसभासु धृष्टः ॥७॥

इमान्	इन	**असि**	हो।
शोच्यान्	शोचनीय (बेचारे)	**जनस्य गोप्ता**	लोगोंका रक्षक
अधिकष्ट	कष्ट पाते	**अस्मि**	हूँ (ऐसी)
दीनान्	दीन (कहारों) को	**विकत्थमानः**	बकवाद करते हुए
विष्टया	बेगारमें	**धृष्टः**	ढीठ होनेसे
निगृह्णन्	पकड़कर लगाये	**वृद्धसभासु**	बड़ोंकी सभामें
त्वं	तुम	**न शोभसे**	शोभित नहीं
निरनुग्रहः	अनुग्रह हीन (क्रूर)		होते ॥७॥

यदा क्षितावेव चराचरस्य
विदाम निष्ठां प्रभवं च नित्यम् ।
तन्नामतोऽन्यद् व्यवहारमूलं
निरूप्यतां सत् क्रिययानुमेयम् ॥८॥

यदा क्षिताः एव चर अचरस्य विदाम निष्ठां प्रभवं च नित्यं तत् नामतः अन्यत् व्यवहारमूलं निरूप्यतां सत् क्रियया अनुमेयम् ॥८॥

यदा	जब		अनुमान किये जानेवाले
क्षिताः एव	पृथ्वीको ही	**नामतः अन्यत्**	नाम (भेदको) छोड़कर
चर अचरस्य	जङ्गम-जड़के	**व्यवहारमूलं**	व्यवहारका कारण
निष्ठां	रहने	**सत्**	सत्-वस्तु
च प्रभवं	तथा उत्पत्तिका	**निरूप्यतां**	निरूपित करो
नित्यं निष्ठां	नित्य स्थान		(बतलाओ) ॥८॥
विदाम	हम जानते हैं		
तत्	तब		
क्रियया			
अनुमेयं	(उनकी) क्रियासे		

एवं निरुक्तं क्षितिशब्दवृत्त-
मसन्निधानात्परमाणवो ये ।
अविद्यया मनसा कल्पितास्ते
येषां समूहेन कृतो विशेषः ॥९॥

एवं निरुक्तं क्षितिशब्द वृत्तं असत् निधानात् परमाणवः ये अविद्यया मनसा कल्पिताः ते येषां समहेन कृतः विशेषः ॥९॥

एवं निरुक्तं	इस प्रकार कहा गया	**येषां समूहेन**	जिनके समूहसे
		विशेषः कृतः	पृथ्वी बनी है,
क्षितिशब्द	पृथ्वी शब्दका	**ये परमाणवः**	वे जो परमाणु हैं
वृत्तं	हाल भी	**अविद्यया**	अविद्यासे
असत्		**ते मनसा**	
निधानात्	असत् उत्पत्ति ही है ।	**कल्पिताः**	वे मनःकल्पित हैं ॥९॥

एवं कृशं स्थूलमणुर्बृहद्यद्
असच्च सज्जीवमजीवमन्यत् ।
द्रव्यस्वभावाशयकालकर्म-
नाम्नाजयावेहि कृतं द्वितीयम् ॥१०॥

एवं कृशं स्थूलं अणुः बृहत् यत् असत् च सज्जीवं अजीवं अन्यत् द्रव्य स्वभाव आशय काल कर्म नाम्ना अजया अवेहि कृतं द्वितीयम् ॥१०॥

एवं	इसी प्रकार	**अजीवं**	निर्जीव,
कृशं स्थूलं	दुबला-मोटा	**अन्यत्**	इनसे भिन्न
अणुः बृहत्	छोटा-बड़ा,	**द्रव्य स्वभाव**	द्रव्य (पदार्थ) स्वभाव (गुण)
यत्	जो है,		
असत् च	असत् ही है ।	**आशय**	अन्तःकरण,
सज्जीवं	जीवन वाले,	**काल कर्म**	काल कर्म

नाम्ना	नामसे	**द्वितीयं**	(समस्त) द्वैत
अजया कृतं	माया कृत		प्रपञ्च
		अवेहि	जानो ॥१०॥

ज्ञानं विशुद्धं परमार्थमेक-
मनन्तरं स्वबहिर्ब्रह्म सत्यम् ।
प्रत्यक् प्रशान्तं भगवच्छब्दसंज्ञं
यद्वासुदेवं कवयो वदन्ति ॥११॥

ज्ञानं विशुद्धं परमार्थं एकं अनन्तरं स्वबहिः ब्रह्म सत्यं प्रत्यक् प्रशान्तं भगवत् शब्द संज्ञं यत् वासुदेवं कवयः वदन्ति ॥११॥

विशुद्धं ज्ञानं	विशुद्ध ज्ञान	**प्रत्यक्**	(वही) अन्तर्यामी
परमार्थं	परमार्थ स्वरूप,	**प्रशान्तं**	प्रशान्त
एकं	अद्वितीय	**भगवत् शब्द**	
अनन्तरं	अन्तर (भीतर-बाहर)के भेदसे रहित	**संज्ञं**	भगवान् शब्दसे कहा जाता है ।
		यत् कवयः	जिसे विद्वान
स्वबहिः	अपनेसे बाहर	**वासुदेवं वदन्ति**	वासुदेव कहते हैं ॥११॥
ब्रह्म सत्यं	ब्रह्म रूपसे सत्य है ।		

रहूगणैतत्तपसा न याति
न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद्वा ।
नच्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यै-
र्विना महत्पादरजोऽभिषेकम् ॥१२॥

रहूगण एतत् तपसा न याति न च ईज्यया निर्वपणात् गृहात् वा न छन्दसा न एव जल अग्नि सूर्यैः विना महत् पादरजः अभिषेकम् ॥१२॥

रहूगण	राजा रहूगण !	**पादरजः**	चरण-धूलिमें
महत्	महापुरुषोंकी	**अभिषेकं विना**	स्नान किये बिना

एतत्	इसको
तपसा न यति	तपस्यासे नहीं पहुँचता
च ईज्यया न	और यज्ञसे भी नहीं,
निर्वपणात्	(अन्नादि पुण्य) बोने (करने)से,
वा गृहात्	अथवा गृहस्थ-धर्म-पालनसे,
छन्दसा न	वेदाध्ययनसे नहीं,
जल अग्नि सूर्यैः	जल, अग्नि, सूर्य (की उपासना) से
न	नहीं (पा सकता) ॥१२॥

यत्रोत्तमश्लोकगुणानुवादः
प्रस्तूयते ग्राम्यकथाविघातः ।
निषेव्यमाणोऽनुदिनं मुमुक्षो-
र्मतिं सतीं यच्छति वासुदेवे ॥१३॥

यत्र उत्तमश्लोक गुणानुवादः प्रस्तूयते ग्राम्य कथा विघातः निषेव्यमाणः अनुदिनं मुमुक्षुः मतिं सतीं यच्छति वासुदेवे ॥१३॥

यत्र	जहाँ (महापुरुषोंके समीप)
ग्राम्य कथा विघातः	विषय-चर्चाको नष्ट करनेवाला
उत्तमश्लोक गुणानुवादः	पवित्र-कीर्ति (भगवान्)का गुण वर्णन
प्रस्तूयते	होता रहता है।
अनुदिनं	प्रतिदिन
निषेव्यमाणः	उसका भली प्रकार सेवन करनेसे
मुमुक्षुः	मुक्त होनेकी इच्छा-वालेको
वासुदेवे	भगवान् वासुदेवमें
सतीं मतिं	शुद्ध-बुद्धि
यच्छति	(वह चर्चा) प्रदान करती है ॥१३॥

अहं पुरा भरतो नाम राजा
विमुक्तदृष्टश्रुतसङ्गबन्धः ।

आराधनं भगवत ईहमानो
मृगोऽभवं मृगसङ्गाद्धतार्थः ॥१४॥

अहं पुरा भरतः नाम राजा विमुक्त दृष्टश्रुत सङ्गबन्धः आराधनं भगवत ईहमानः मृगः अभवं मृगसङ्गात् हतार्थः ॥१४॥

पुरा अहं	पहिले मैं	**भगवत**	
भरतः नाम		**आराधनं**	भगवान्‌की आराधना की,
राजा	भरत नामका राजा था ।	**ईहमानः**	चेष्टाकर रहा था, किन्तु
दृष्टश्रुत	देखे (लौकिक) सुने (स्वर्गादि))की	**मृगसङ्गात्**	मृगमें आसक्ति होनेसे
सङ्गबन्धः	आसक्ति रूपी बन्धनसे	**हतार्थः**	परमार्थ नष्ट होकर
विमुक्त	छूट गया था ।	**मृगः अभवं**	(मैं) मृग हो गया ॥१४॥

सा मां स्मृतिर्मृगदेहेऽपि वीर
कृष्णार्चनप्रभवा नो जहाति ।
अथो अहं जनसङ्गादसङ्गो
विशङ्कमानोऽविवृतश्चरामि ॥१५॥

सा मां स्मृतिः मृगदेहे अपि वीर कृष्णार्चन प्रभवा नो जहाति अथो अहं जनसङ्गात् असङ्गः विशङ्कमानः अविवृतः चरामि ॥१५॥

वीर	वीरवर !	**सा स्मृतिः**	उस (पूर्व-जन्मकी) स्मृतिने
कृष्णार्चन	भगवान् श्रीकृष्णकी पूजासे	**मृगदेहे अपि**	मृग शरीरमें होनेपर भी
प्रभवा	उत्पन्न	**मां नो जहाति**	मुझे नहीं छोड़ा

अथो अहं	अतः मैं	**असङ्गः**	असंग भावसे
जनसङ्गात्	लोगोंके साथसे	**अविवृतः**	गुप्त रूपसे
विशङ्कमानः	आशंकित होकर	**चरामि**	घूमता हूँ ॥१५॥

तस्मान्नरोऽसङ्गसुसङ्गजात-
ज्ञानासिनेहैव विवृक्णमोहः ।
हरिं तदीहाकथनश्रुताभ्यां
लब्धस्मृतिर्यात्यतिपारमध्वनः ॥१६॥

तस्मात् नरः असङ्ग सुसङ्ग जात ज्ञान असिना हि एव विवृक्णमोहः हरिं तत् ईहा कथन श्रुताभ्यां लब्धस्मृतिः याति अतिपारं अध्वनः ॥१६॥

तस्मात्	इसलिए	**हरिं**	श्रीहरिकी
नरः	मनुष्य	**तत् ईहा**	उस लीला
असङ्ग	आसक्तिहीन	**कथन**	वर्णन और
सुसङ्ग	सत्पुरुषोंके संगसे	**श्रुताभ्यां**	श्रवणसे
जात	उत्पन्न	**लब्धस्मृतिः**	भगवत्स्मृति पाकर
ज्ञान असिना		**अध्वनः**	(आवागमनके)
हि एव	ज्ञान रूपी तलवारसे ही		मार्गसे
		अतिपारं	सर्वथा पार
विवृक्णमोहः	मोहको काटकर	**याति**	पहुँचता है ॥१६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
पञ्चमस्कन्धे ब्राह्मणरहूगण संवादे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

ब्राह्मण उवाच-

दुरत्ययेऽध्वन्यजया निवेशितो
रजस्तमःसत्त्वविभक्तकर्मदृक् ।
स एष सार्थोऽर्थपरः परिभ्रमन्
भवाटवीं याति न शर्म विन्दति ॥ १ ॥

दुरत्यये अध्वनि अजया निवेशितः रजः तमः सत्त्वविभक्त कर्मदृक्
स एष सार्थः अर्थपरः परिभ्रमन् भव अटवीं याति न शर्म विन्दति ॥१॥

अजया	माया द्वारा	**अर्थपरः**	धन-लोलुप
दुरत्यये	दुष्पार	**सार्थः**	(अनेक स्थानोंमें)
अध्वनि	मार्गमें		घूमकर व्यापार
निवेशितः	प्रविष्ट कराये		करनेवाला
	जाकर	**परिभ्रमन्**	चारो ओर घूमता
रजः तमः	रजोगुण, तमोगुण	**भव अटवीं**	संसार रूप वनमें
सत्त्वविभक्त	सत्वगुणमें बँटे	**याति**	पहुँचता है।
कर्मदृक्	कर्मोंपर दृष्टि	**शर्म न**	शान्ति नहीं
	रखकर	**विन्दति**	पाता ॥१॥
स एष	वह यह		

यस्यामिमे षण्नरदेव दस्यवः
सार्थं विलुम्पन्ति कुनायकं बलात् ।
गोमायवो यत्र हरन्ति सार्थिकं
प्रमत्तमाविश्य यथोरणं वृकाः ॥२॥

यस्यां इमे षट् नरदेव दस्यवः सार्थं विलुम्पन्ति कुनायकं बलात् गोमायवः यत्र हरन्ति सार्थिकं प्रमत्तं आविश्य यथा उरणं वृकाः ॥ २ ॥

नरदेव	राजन् !	**यत्र**	जहाँ
यस्यां	जिस (वन)में	**आविश्य**	प्रवेश करके
इमे षट्	ये छः	**यथा वृकाः**	जैसे भेड़िये
दस्यवः	डाकू	**उरणं**	भेड़ोंको (उठा ले जाते हैं)
कुनायकं	दुष्ट नायक वाले	**प्रमत्तं सार्थिकं**	असावधान व्यापारीका
सार्थं	व्यापारीको	**हरन्ति**	हरण कर लेते हैं ॥२॥
बलात्	बलपूर्वक		
विलुम्पन्ति	लूट लेते हैं।		
गोमायवः	शृगाल		

प्रभूतवीरुत्तृणगुल्मगह्वरे
कठोरदंशैर्मशकैरुपद्रुतः ।
क्वचित्तु गन्धर्वपुरं प्रपश्यति
क्वचित्क्वचिच्चाशुरयोल्मुकग्रहम् ॥३॥

प्रभूत वीरुत् तृण गुल्म गह्वरे कठोरदंशैः मशकैः उपद्रुतः क्वचित् तु गन्धर्वपुरं प्रपश्यति क्वचित् क्वचित् आशुरयः उल्मुकग्रहम् ॥३॥

प्रभूत	बहुत अधिक	**गन्धर्वपुरं**	गन्धर्व नगर
वीरुत् तृण	पौधे, घास	**प्रपश्यति**	देखता है,
गुल्म	झाड़ियोंसे	**क्वचित्**	
गह्वरे	(उस) सघन (वन)में	**क्वचित् तु**	कभी-कभी तो
कठोरदंशैः	तीक्ष्ण डाँस,	**आशुरयः**	बहुत वेगवान
मशकैः	मच्छरोंसे	**उल्मुकग्रहं**	अगिया-वैताल (दीखता है) ॥३॥
उपद्रुतः	पीड़ित होता		
क्वचित्	कभी		

निवाससतोयद्रविणात्मबुद्धि-
स्तस्ततो धावति भो अटव्याम् ।

क्वचिच्च वात्योत्थितपांसुधूम्रा
दिशो न जानाति रज स्वलाक्षः ॥ ४ ॥

निवास तोय द्रविण आत्मबुद्धिः ततः ततः धावति भो अढव्यां क्वचित् च वात्या उत्थित पांसु धूम्रा दिशः न जानाति रज स्वल अक्षः ॥४॥

निवास	ठहरनेके स्थान
तोय द्रविण	जल तथा धनको
आत्मबुद्धिः	अपना स्वरूप मानकर
ततः ततः	जहाँ-तहाँ
भो अढव्यां	इस वनमें
धावति	दौड़ता रहता है।
च क्वचित्	और कभी
वात्या उत्थित	बवण्डरसे उठी
पांसु	धूलिसे
धूम्रा दिशः	धुँधली दिशाओंको
रज स्वल अक्षः	आँखोंमें धूलि भर जानेसे
न जानाति	नहीं जानता ॥४॥

अदृश्यझिल्लीस्वनकर्णशूल
उलूकवाग्भिर्व्यथितान्तरात्मा ।
अपुण्यवृक्षान् श्रयते क्षुधार्दितो
मरीचितोयान्यभिधावति क्वचित् ॥५॥

अदृश्य झिल्लीस्वन कर्णशूल उलूक वाक्भिः व्यथित अन्तरात्मा अपुण्य वृक्षान् श्रयते क्षुधा अर्दितः मरीचि तोयान् अभिधावति क्वचित् ॥५॥

अदृश्य	दिखायी न देनेवाले
कर्णशूल	कर्ण-कटु
झिल्लीस्वन	झींगुरोंका शब्द और
उलूक	उल्लूकी
वाक्भिः	बोलीसे
अन्तरात्मा व्यथित	(उसका) चित्त दुःखी होता है।
क्षुधा अर्दितः	भूखसे पीड़ित होकर
अपुण्य वृक्षान्	अपवित्र वृक्षोंका
श्रयते	आश्रय लेता है,
क्वचित्	कभी
मरीचि तोयान्	किरणोंमें दीखने-वाले जलकी ओर
अभिधावति	दौड़ता है ॥५॥

क्वचिद्वितोयाः सरितोऽभियाति
परस्परं चालषते निरन्धः
आसाद्य दावं क्वचिदग्नितप्तो
निर्विद्यते क्व च यक्षैर्हृतासुः ॥६॥

क्वचित् वितोयाः सरितः अभियाति परस्परं च आलषते निरन्धः आसाद्य दावं क्वचिद् अग्नितप्तः निर्विद्यते क्व च यक्षैः हृत असुः ॥६॥

क्वचित्	कभी	**दावं आसाद्य**	दावानलमें पहुँचकर
वितोयाः	जलहीन	**अग्नितप्तः**	अग्निसे संतप्त
सरितः	नदियों		होता है,
अभियाति	की ओर जाता है,	**क्व च**	कभी
निरन्धः	अन्न न मिलनेपर	**यक्षैः**	यक्षों द्वारा
परस्परं च	आपसमें ही	**हृत असुः**	प्राण हरण होते
आलषते	(अन्न) पाना		(देखकर)
	चाहता है।	**निर्विद्यते**	खिन्न हो जाता
क्वचित्	कभी		है ॥६॥

शूरैर्हृतस्वः क्व च निर्विण्णचेताः
शोचन् विमुह्यन्नुपयाति कश्मलम् ।
क्वचिच्च गन्धर्वपुरं प्रविष्टः
प्रमोदते निर्वृतवन्मुहूर्तम् ॥७॥

शूरैः हृत स्वः क्व च निर्विण्ण चेताः शोचन् विमुह्यन् उपयाति कश्मलं क्वचित् च गन्धर्वपुरं प्रविष्टः प्रमोदते निर्वृतवत् मुहूर्तम् ॥७।

क्व च	कभी	**विमुह्यन्**	मोहग्रस्त हो
शूरैः	बलवानों द्वारा	**कश्मलं**	मूर्छामें
स्वः हृतः	स्वत्व हरण होनेपर	**उपयाति**	पहुँच जाता
निर्विण्ण चेताः	दुःखी-चित्त		है
शोचन्	शोक करते,		

च क्वचित्	और कभी	**मुहूर्तं**	घण्टे भर
गन्धर्वपुरं	गन्धर्व नगरमें	**प्रमोदते**	आनन्द मनाता है ॥७॥
प्रविष्टः	प्रवेश करके		
निर्वृतवत्	दुःखोंसे मुक्तकी भाँति		

चलन् क्वचित्कण्टकशर्कराङ्घ्रि-
र्नगारुरुक्षुर्विमना इवास्ते ।
पदे पदेऽभ्यन्तरवह्निनार्दितः
कौटुम्बिकः क्रुध्यति वै जनाय ॥८॥

चलन् क्वचित् कण्टक शर्करा अङ्घ्रि नग आरुरुक्षुः विमना इव आस्ते पदे पदे अभ्यन्तर वह्निना अर्दितः कौटुम्बिकः क्रुध्यति वै जनाय ॥८॥

क्वचित्	कभी	**अभ्यन्तर**	(अपने) भीतरकी
नग आरुरुक्षुः	पर्वतपर चढ़ना चाहता है तो	**वह्निना**	आग (भूख)से
		अर्दितः	पीड़ित
कण्टक शर्करा	काँटे-कंकड़	**कौटुम्बिकः**	कुटुम्बवान होनेसे
अङ्घ्रिः	पैरमें चुभनेसे	**वै जनाय**	अपने ही लोगोंपर
विमना इव	उदास-सा	**क्रुध्यति**	क्रोध करता है ॥८॥
आस्ते	हो जाता है ।		
पदे पदे	पद-पदपर		

क्वचिन्निगीर्णोऽजगराहिना जनो
नावैति किञ्चिद्विपिनेऽपविद्धः ।
दष्टः स्म शेते क्व च दन्दशूकै-
रन्धोऽन्धकूपे पतितस्तमिस्रे ॥९॥

क्वचित् निगीर्णः अजगर अहिना जनः न अवैति किञ्चित् विपिने अपविद्धः दष्टः स्म शेते क्व च दन्द शूकैः अन्धः अन्धकूपे पतितः तमिस्रे ॥९॥

क्वचित्	कभी	**अवैति**	जानता।
अजगर अहिना	अजगर सर्प द्वारा	**क्व च**	कभी
निगीर्णः	निगल लिये जानेपर	**दन्द शूकैः**	डँसने वालोंसे
विपिने	वनमें	**दष्टः स्म**	डँसे जानेपर
अपविद्धः	फेंकें के समान	**तमिस्रे**	अन्धकार पूर्ण
जनः	मनुष्य	**अन्धकूपे**	अन्धे कुएँमें
किंचित् न	कुछ भी नहीं	**अन्धः**	अन्धा होकर
		पतितः	गिरता है ॥६॥

कर्हि स्म चित्क्षुद्ररसान् विचिन्वं-
स्तन्मक्षिकाभिर्व्यथितो विमानः।
तत्रातिकृच्छ्रात्प्रतिलब्धमानो
बलाद्विलुम्पन्त्यथ तं ततोऽन्ये ॥१०॥

कर्हि स्म चित् क्षुद्ररसान् विचिन्वन् तत् मक्षिकाभिः व्यथितः विमानः तत्र अतिकृच्छ्रात् प्रतिलब्धमानः बलात् विलुम्पन्ति अथ तं ततः अन्येः ॥१०॥

कर्हि स्म चित्	किसी समय	**अतिकृच्छ्रात्**	बड़े कष्टसे
क्षुद्ररसान्	शहद	**प्रतिलब्धमानः**	(जो कुछ) पाता है
विचिन्वन्	ढूँढ़ते समय	**तं**	उसे
तत्	उस (शहद)की	**अथ बलात्**	फिर बलपूर्वक
मक्षिकाभिः	मक्खियों द्वारा	**विलुम्पन्ति**	(कोई) लूट लेते हैं,
व्यथितः	पीड़ित होकर	**ततः अन्ये**	उन (लूटने वालों)से
विमानः	गलित अभिमान हो जाता है	**अन्ये**	दूसरे (लूट लेते हैं।)॥१०॥
तत्र	वहाँ		

क्वचिच्च शीतातपवातवर्ष-
प्रतिक्रियां कर्तुमनीश आस्ते।

क्वचिन्मिथो विपणन् यच्च किञ्चिद्
विद्वेषमृच्छत्युत वित्तशाठ्यात् ॥११॥

क्वचित् च शीत आतप वात वर्ष प्रतिक्रियां कर्तुं अनीश आस्ते क्वचित् मिथः विपणन् यत् च किञ्चित् विद्वेषं ऋच्छति उत वित्त-शाठ्यात् ॥११॥

क्वचित् च	कभी तो	**मिथः विपणन्**	परस्पर उसका व्यापार करनेमें
शीत आतप	सर्दी-गर्मी		
वात वर्ष	आँधी, वर्षाका		
प्रतिक्रियां	प्रतिकार (निवारण)	**वित्तशाठ्यात्**	धनकी शठता (कृपणता)से
कर्तुं	करनेमें		
अनीश आस्ते	असमर्थ हो जाता है,	**उत**	उनसे ही
क्वचित्	कभी	**विद्वेषं**	शत्रुता
यत् च	जो भी	**ऋच्छति**	ठान लेता है ॥११॥
किञ्चित्	कुछ (पास) है,		

क्वचित्क्वचित्क्षीणधनस्तु तस्मिन्
शय्यासनस्थानविहारहीनः ।
याचन् परादप्रतिलब्धकामः
पारक्यदृष्टिर्लभतेऽवमानम् ॥१२॥

क्वचित् क्वचित् क्षीण धनः तु तस्मिन् शय्याआसन स्थान विहार हीनः याचन् परात् अप्रतिलब्ध कामः पारक्यदृष्टिः लभते अवमानम् ॥१२॥

क्वचित्	कभी-	**तस्मिन्**	उस (वन)में
क्वचित्	कभी	**शय्या आसन**	शय्या, आसन,
क्षीण धनः तु	धन नष्ट हो जानेपर तो	**स्थान विहार**	रहनेके स्थान, आमोद प्रमोदसे

हीनः	रहित होकर	**परकृयदृष्टिः**	परायी वस्तुपर दृष्टि रखनेसे
परात् याचन्	दूसरोंसे माँगनेपर	**अवमान**	अपमान
कामः	कामनाके अनुसार	**लभते**	पाता है ॥१२॥
अप्रतिलब्ध	न मिलनेसे		

अन्योन्यवित्तव्यतिषङ्गवृद्ध-
वैरानुबन्धो विवहन्मिथश्च ।
अध्वन्यमुष्मिन्नुरुकृच्छ्रवित्त-
बाधोपसर्गैर्विहरन् विपन्नः ॥१३॥

अन्योन्य वित्तव्यतिषङ्ग वृद्ध वैर अनुबन्धः विवहन् मिथः च अध्वनि अमुष्मिन् उरुकृच्छ्र वित्तबाध उपसर्गैः विहरन् विपन्नः ॥१३॥

वित्तव्यतिषङ्गः	धनकी आसक्तिसे	**उरुकृच्छ्र**	भारी कष्ट तथा
अन्योन्य	परस्पर	**वित्तबाध**	धनकी बाधा आदि
वैर अनुबन्ध	शत्रुताका भाव	**उपसर्गैः**	संकटोंको
वृद्ध	बढ़ जानेपर भी	**विहरन्**	झेलता हुआ
मिथः च	आपसमें ही	**विपन्नः**	मृतवत् हो जाता है ॥१३॥
विवहन च	विवाह करते हैं,		
अमुष्मिन्	इस		
अध्वनि	मार्गमें		

तांस्तान् विपन्नान् स हि तत्र तत्र
विहाय जातं परिगृह्य सार्थः ।
आवर्ततेऽद्यापि न कश्चिदत्र
वीराध्वनः पारमुपैति योगम् ॥१४॥

तान् तान् विपन्नान् स हि तत्र तत्र विहाय जातं परिगृह्य सार्थः आवर्तते अद्यापि न कश्चित् अत्र वीर अध्वनः पारं उपैति योगम् ॥१४॥

तान् तान्	उन-उन
विपन्नान्	मरे लोगोंको
तत्र तत्र	जहाँ का तहाँ
विहाय	छोड़कर
सार्थः	(दूसरे) व्या-पारियोंको
परिगृह्य	साथ लेकर
हि स	क्योंकि वह (व्यापारी-दल)
जातं	(आगे) जाता है,
वीर	वीरवर !
अद्यापि	आज तक भी
कश्चित् अत्र	कोई यहाँ
आवर्तते न	लौटता नहीं,
(न) अध्वनः	(न) इस मार्गसे
पारं	पार जानेके
योगं उपैति	साधनके समीप पहुँचता ॥१४॥

मनस्विनो निर्जितदिग्गजेन्द्रा
ममेति सर्वे भुवि बद्धवैराः ।
मृधे शयीरन्न तु तद्व्रजन्ति
यन्न्यस्तदण्डो गतवैरोऽभियाति ॥१५॥

मनस्विनः निर्जित दिक् गजेन्द्राः मम इति सर्वे भुवि बद्धवैराः मृधे शयीरन् न तु तत् व्रजन्ति यत् न्यस्त दण्डः गतवैरः अभियाति ॥१५॥

दिक् गजेन्द्राः	दिग्गजोंको भी
निर्जित	जीत लेनेवाले,
सर्वे	सब
मनस्विनः	मनस्वी लोग
भुवि मम इति	पृथ्वी मेरी है, इस भावसे
बद्धवैराः	शत्रुता बाँधकर
मृधे शयीरन्	युद्धमें सो गये
तु	किन्तु
न तत्	उस (पद)पर नहीं
व्रजन्ति	जा पाते
यत्	जिसपर
न्यस्त दण्डः	(किसीको भी) दण्ड देना त्याग देनेवाले
गतवैरः	शत्रुता रहित
अभियाति	(महापुरुष) पहुँचते हैं ॥१५॥

प्रसज्जति क्वापि लताभुजाश्रय-
स्तदाश्रयाव्यक्तपदद्विजस्पृहः ।
क्वचित्कदाचिद्धरिचक्रतस्त्रसन्
सख्यं विधत्ते बककङ्कगृध्रैः ॥१६॥

प्रसज्जति क्वापि लताभुज आश्रयः तत् आश्रय अव्यक्तपद द्विजस्पृहः क्वचित् कदाचित् हरिचक्रतः त्रसन् सख्यं विधत्ते बक कङ्क गृध्रैः ॥१६॥

कदाचित् क्वचित्	कदाचित् कभी
लताभुज	लताकी डालियोंका
आश्रयः	आश्रय लेकर
प्रसज्जति	(उसमें) आसक्त होता है,
अव्यक्त पद	(उसमें) छिपकर रहनेवाले
द्विजस्पृहः	पक्षियोंसे स्पृहा करता है।
क्वापि	कभी
हरिचक्रतः	सिंहोंके झुण्डसे
त्रसन्	डरकर
बक कङ्क	बगुले, काँक* और
गृध्रैः आश्रय	गीधोंका आश्रय लेकर
तत् सख्यं विधत्ते	वह मित्रता करता है ॥१७॥

तैर्वञ्चितो हंसकुलं समाविश-
न्नरोचयन् शीलमुपैति वानरान् ।
तज्जातिरासेन सुनिर्वृतेन्द्रियः
परस्परोद्वीक्षणविस्मृतावधिः ॥१७॥

तैः वञ्चितः हंसकुलं समाविशत् न रोचयन् शीलं उपैति वानरान् तत् जाति रासेन सुनिर्वृत इन्द्रियः परस्पर उद्वीक्षण विस्मृत अवधिः ॥१७॥

---

*गीध और चीलके बीचके इस पक्षीको चमर-गिद्ध भी कहा जाता है। मद्रासके पासके पक्षि-तीर्थमें इसीका दर्शन दोपहरमें यात्रियोंको वहाँ के पंडे कराते हैं।

तैः वञ्चितः	उनके द्वारा ठगे जानेपर
हंसकुलं	हंसोके समाजमें
समाविशत्	प्रविष्ट हुआ,
न रोचयन्	(वह उसे) रुचिकर नहीं लगा,
वानरान् शीलं	(तब) बन्दरोंका आचरण
उपैति	अपना लिया।
तत् जाति	उनकी जातिके
रासेन	समान रहते
इन्द्रियः	(उसकी) इन्द्रियां
सुनिर्वृत	बहुत सुखी हुईं।
परस्पर	परस्पर (एक-दूसरे
उद्वीक्षण	को) देखनेमें
अवधिः	(आयुकी) सीमा
विस्मृत	भूल गयी ॥१७॥

द्रुमेषु रंस्यन् सुतदारवत्सलो
व्यवायदीनो विवशः स्वबन्धने।
क्वचित्प्रमादाद्गिरिकन्दरे पतन्
वल्लीं गृहीत्वा गजभीत आस्थितः ॥१८॥

द्रुमेषु रंस्यन् सुतदार वत्सलः व्यवायदीनः विवशः स्वबन्धने क्वचित् प्रमादात् गिरिकन्दरे पतन् वल्लीं गृहीत्वा गजभीत आस्थितः ॥१८॥

द्रुमेषु	पेड़ोंपर
रंस्यन्	क्रीड़ा करता हुआ
सुतदार	पुत्र-स्त्रीसे
वत्सलः	प्रेम करता है,
व्यवायदीनः	सम्भोगकी इच्छासे दीन
स्वबन्धने	अपने ही (स्नेह) बन्धनसे
विवशः	विवश रहता है।
क्वचित्	कभी
प्रमादात्	असावधानीवश
गिरिकन्दरे	पर्वतकी गुफामें
पतन्	गिरते समय
वल्लीं गृहीत्वा	लता पकड़कर (लटका)
गजभीत	हाथीसे डरता
आस्थितः	रहता है ॥१८॥

अतः कथञ्चित्स विमुक्त आपदः
पुनश्च सार्थं प्रविशत्यरिन्दम।
अध्वन्यमुष्मिन्नजया निवेशितो
भ्रमञ्जनोऽद्यापि न वेद कश्चन ॥१९॥

अतः कथञ्चित् स विमुक्त आपदः पुनः च सार्थं प्रविशति अरिन्दम अध्वनि अमुष्मिन् अजया निवेशितः भ्रमन् जनः अद्य अपि न वेद कश्चन ॥१९॥

अरिन्दम	शत्रुदमन !	**निवेशितः**	प्रविष्ट कराया गया
अतः			
कथञ्चित्	किसी प्रकार कभी	**अमुष्मिन्**	
स आपदः		**अध्वनि**	इस मार्गमें
विमुक्तः	वह आपत्तिसे छूटा (तो)	**भ्रमन् जनः**	भटकते हुए लोगोंमें-से
पुनः च	फिरसे	**अद्य अपि**	अब तक भी
सार्थं प्रविशति	वे व्यापारी-दलमें प्रवेश करता है।	**कश्चन**	कोई
		वेद न	(अपना भटकना) जानता नहीं ॥१९॥
अजया	मायाके द्वारा		

रहूगण त्वमपि ह्यध्वनोऽस्य
संन्यस्तदण्डः कृतभूतमैत्रः ।
असञ्जितात्मा हरिसेवया शितं
ज्ञानासिमादाय तरातिपारम् ॥२०॥

रहूगण त्वं अपि हि अध्वनः अस्य संन्यस्त दण्डः कृत भूतमैत्रः असञ्जित आत्मा हरिसेवया शितं ज्ञान असिं आदाय तर अतिपारम् ॥२०॥

रहूगण	रहूगण !	**असञ्जित**	अनासक्त
हि	क्योंकि	**आत्मा**	चित्त होकर
त्वं अपि	तुम भी	**हरिसेवया**	श्रीहरिकी सेवासे
अस्य	इसके	**सितं**	तीक्ष्ण हुई
अध्वनः	पथिक हो (अतः)	**ज्ञान असिं**	ज्ञान रूपी तलवार
दण्डः संन्यस्त	(लोगोंको) दण्ड देना त्यागकर,	**आदाय**	लेकर
		अतिपारं तर	(इस) दुष्पारको पारकर जाओ॥२०॥
भूतमैत्रः कृतः	प्राणियोंसे मित्रता करके		

रहूगण उवाच-*

अहो नृजन्माखिलजन्मशोभनं
किं जन्मभिस्त्वपरैरप्यमुष्मिन् ।
न यद्धृषीकेशयशःकृतात्मनां
महात्मनां वः प्रचुरः समागमः ॥२१॥

अहो नृ जन्म अखिलजन्म शोभनं किं जन्मभिः तु अपरैः अपि अमुष्मिन् न यत् हृषीकेश यशः कृत आत्मनां महात्मनां वः प्रचुरः समागमः ॥२१॥

अहो	अहो,	हृषीकेश यशः	भगवान् हृषीकेशके यशसे
अखिलजन्म	समस्त (योनियोंमें) जन्मसे	आत्मनां कृत	चित्तको शुद्ध किये
नृजन्म	मनुष्य-जन्म	वः महात्मनां	आपसे महात्माओंका
शोभनं	सुन्दर हूँ,		
अपरैः अपि	दूसरे (देवादि) भी	प्रचुरः	अधिकाधिक
जन्मभिः तु	जन्मोंसे तो	समागमः	मिलन
किं	क्या (लाभ)	न	नहीं होता ॥२१॥
यत् अमुष्मिन्	क्योंकि उनमें		

न ह्यद्भुतं त्वच्चरणाब्जरेणुभि-
र्हतांहसो भक्तिरधोक्षजेऽमला ।
मौहूर्तिकाद्यस्य समागमाच्च मे
दुस्तर्कमूलोऽपहतोऽविवेकः ॥२२॥

न हि अद्भुतं त्वत् चरणाब्ज रेणुभिः हत अंहसः भक्तिः अधोक्षजे अमला मौहूर्तिकात् यस्य समागमात् च मे दुस्तर्क मूलः अपहतः अविवेकः ॥२२॥

---

*अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'राजोवाच' है ।

त्वत्	आपके	न हि	नहीं है,
चरणाब्ज	चरण-कमलोंकी	यस्य	जिनके
रेणुभिः	रजसे	मौहूर्तिकात्	दो घड़ीके
अंहसः हृत	पाप नष्ट हो जानेसे	समागमात् च	मिलन (सत्संग)से ही
अधोक्षजे	भगवान् हृषीकेशमें	मे	मेरा
अमला	निर्मल	दुस्तर्क मूलः	कुतर्ककी जड़
भक्तिः	भक्ति (हो जाना)	अविवेकः	अज्ञान
अद्भुतं	आश्चर्यजनक	अपहतः	नष्ट हो गया ॥२२॥

नमो महद्भ्योऽस्तु नमः शिशुभ्यो
नमो युवभ्यो नम आ वटुभ्यः ।
ये ब्राह्मणा गामवधूतलिङ्गा-
श्चरन्ति तेभ्यः शिवमस्तु राज्ञाम् ॥२३॥

नमः महद्भ्यः अस्तु नमः शिशुभ्यः नमः युवभ्यः नमः आ वटुभ्यः ये ब्राह्मणाः गां अवधूत लिङ्गाः चरन्ति तेभ्यः शिवं अस्तु राज्ञाम् ॥२३॥

महद्भ्यः नमः	महापुरुषोंको नमस्कार	ये ब्राह्मणाः	जो ब्रह्मज्ञानी
		गां	पृथ्वीपर
शिशुभ्यः नमः	(वे) शिशु हों (तो भी) उन्हें नमस्कार	अवधूत लिङ्गाः	अवधूत वेशमें
		चरन्ति	घूमते हैं
		तेभ्यः	उनसे
युवभ्यः नमः	युवक हों (तो) उन्हें नमस्कार	राज्ञां	राजाओंका
		शिवं अस्तु	कल्याण हो ॥२३॥
आ वटुभ्यः	सब ब्रह्मचारियोंको		
नमः अस्तु	नमस्कार होवे ।		

श्रीशुक उवाच–

इत्येवमुत्तरामातः स वै ब्रह्मर्षिसुतः सिन्धुपतय आत्मसतत्त्वं विगणयतः परानुभावः परमकारुणिकतयोपदिश्य रहूगणेन

सकरुणमभिवन्दितचरण आपूर्णार्णव इव निभृतकरणोर्म्याशयो धरणिमिमां विचचार ॥२४॥

इति एवं उत्तरामातः स वै ब्रह्मर्षि सुतः सिन्धुपतयः आत्म असतत्त्वं विगणयतः परानुभावः परमकारुणिकतया उपदिश्य रहूगणेन सकरुणं अभिवन्दितचरण आपूर्ण अर्णव इव निभृत करण उर्मि आशयः धरणिं इमां विचचार ॥२४॥

उत्तरामातः	उत्तरानन्दन !
इति इवं	इस प्रकार
वै	निश्चय
परानुभावः	परम प्रभावशाली
स ब्रह्मर्षि सुतः	उन ब्रह्मर्षि पुत्रने
आत्म असतत्त्वं	अपने अनादरकी
विगणयतः	अवगणना (उपेक्षा) करके
सिन्धुपतय	सिन्धु-नरेशको
परम-कारुणिकतया	परम-करुणकर होनेसे
उपदिश्य	उपदेश करके
रहूगणेन	रहूगण द्वारा
सकरुणं	दीन भावसे
अभिवन्दित-चरण	चरणोंमें प्रणामकर लेनेपर
आपूर्ण अर्णव	परिपूर्ण समुद्रकी
इव	भाँति
करण उर्मि	इन्द्रिय लहरों तथा
आशयः	चित्तको
निभृत	शान्त किये
इमां धरणिं	इस पृथ्वीपर
विचचार	विचरने लगे ॥२४॥

सौवीरपतिरपि सुजनसमवगतपरमात्मसतत्त्व आत्मन्यविद्याध्यारोपितां च देहात्ममतिं विससर्ज । एवं हि नृप भगवदाश्रिताश्रितानुभावः ॥२५॥

सौवीरपतिः अपि सुजन समवगत परमात्म सतत्त्व आत्मनि अविद्या अध्यारोपितां च देहात्ममतिं विससर्ज । एवं हि नृप भगवत् आश्रित आश्रित अनुभावः ॥२५॥

सौवीरपतिः	
अपि	सौवीर राजाने भी
सुजन	(उन) सत्पुरुषसे
परमात्म	परमात्माके
सतत्त्व	तत्त्वको
समवगत	भली प्रकार जानकर
आत्मनि	आत्मामें
अविद्या च	अविद्यासे ही
अध्यारोपितां	अध्यारोपित
देहात्ममतिं	शरीरमें आत्मबुद्धि
विससर्ज	त्याग दिया
नृप	राजन् (परीक्षित)
भगवत्	भगवान्के
आश्रित	आश्रितोंके
आश्रित	आश्रितों (दासानुदासों)का
एवं हि	ऐसा ही
अनुभावः	प्रभाव (होता) है ॥२५॥

राजोवाच-

यो ह वा इह बहुविदा महाभागवत त्वयाभिहितः परोक्षेण वचसा जीवलोकभवाध्वा स ह्यार्यमनीषया कल्पितविषयो नाञ्जसाव्युत्पन्नलोकसमधिगमः। अथ तदेवैतद्दुरवगमं समवेतानुकल्पेन निर्दिश्यतामिति ॥२६॥

यः ह वा इह बहुविदा महाभागवत त्वया अभिहितः परोक्षेण वचसा जीवलोक भव अध्वा स हि आर्य मनीषया कल्पित विषयः न अञ्जसा अव्युत्पन्न लोक समधिगमः अथ तत् एव एतत् दुरवगमं समवेत अनुकल्पेन निर्दिश्यतां इति ॥२६॥

यः ह वा	जो निश्चित ही
इह	यहाँ
बहुविदा	बहुज्ञ
महाभागवत	परम भगवद्भक्त
त्वया	आपने
परोक्षेण वचसा	परोक्ष वाणीसे
जीवलोक	जीवोंका
भव अध्वा	संसार-मार्ग
अभिहितः	वर्णन किया,
हि स	क्योंकि वह
आर्य मनीषया	श्रेष्ठ बुद्धि द्वारा

कल्पित	कल्पित
विषयः	विषय है,
एतत् अव्युत्पन्न	यह अल्प बुद्धिवाले
लोक	लोगोंको
अञ्जसा	सरलतासे
समधिगमः न	भली प्रकार समझमें नहीं आ सकता ।
अथ	अतः
तत् एव	
दुरवगमं	उसी दुर्बोध (विषय)को
समवेत	
अनुकल्पेन	स्पष्टीकरणकी विधिसे
इति	इस प्रकार
निर्दिश्यताम्	समझाइये ॥२६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
पञ्चमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

शुक उवाच-*

य एष देहात्ममानिनां सत्त्वादिगुणविशेषविकल्पितकुशलाकुशलसमवहारविनिर्मितविविधदेहावलिभिर्वियोगसंयोगाद्यनादिसंसारानुभवस्य द्वारभूतेन षडिन्द्रियवर्गेण तस्मिन्दुर्गाध्ववदसुगमेऽध्वन्यापतित ईश्वरस्य भगवतो विष्णोर्वशवर्तिन्या मायया जीवलोकोऽयं यथा वणिक्सार्थोऽर्थपरः स्वदेहनिष्पादितकर्मानुभवः श्मशानवदशिवतमायां संसाराटव्यां गतो नाद्यापि विफलबहुप्रतियोगेहस्तत्तापोपशमनीं हरिगुरुचरणारविन्दमधुकरानुपदवीमवरुन्धे यस्यामु ह वा एते षडिन्द्रियनामानः कर्मणा दस्यव एव ते ॥१॥

य एष देह आत्म मानिनां सत्त्वादि गुणविशेष विकल्पित कुशल अकुशल समवहार विनिर्मित विविध देह अवलिभिः वियोग संयोग आदि अनादि संसार अनुभवस्य द्वारभूतेन षट् इन्द्रिय वर्गेण तस्मिन् दुर्ग अध्ववत् असुगमे अध्वनि आपतित ईश्वरस्य भगवतः विष्णोः वशवर्तिन्या मायया जीव लोकः अयं यथा वणिक् सार्थः अर्थपरः स्वदेह निष्पादित कर्म अनुभवः श्मशानवत् अशिवतमायां संसार अटव्यां गतः न अद्य अपि विफल बहु प्रतियोग इहः तत् ताप उपशमनीं हरिगुरु चरणारविन्द मधुकर अनुपदवीं अवरुन्धे यस्यां उ ह वा एते षडिन्द्रिय नामानः कर्मणा दस्यव एव ते ॥१॥

य एष	जो यह	सत्त्वादि गुण-	
देह आत्म		विशेष	सत्त्व आदि गुणोंमें-से
मानिनां	शरीरको ही आत्मा		किसीकी विशेषतासे
	माननेवालोंका	कुशल अशकुल	शुभ, अशुभ,

*अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'स होवाच' है।

समवहार	मिश्रित (कर्मों)से
विनिर्मित	बने हुए
विविध	नाना प्रकारके
देह	शरीर
अवलिभिः	समुदायके
वियोग संयोग	वियोग-संयोग
आदि	आदि
संसार	संसार
अनुभवस्य	(उसके) अनुभवके
द्वार भूतेन	द्वार रूप
षट् इन्द्रिय	छः इन्द्रिय
वर्गेण	समूह (मन और पाँच ज्ञानेन्द्रियों) द्वारा
तस्मिन्	उस
दुर्ग अध्ववत्	बीहड़ मार्गके समान
असुगमे	दुर्गम
अध्वनि	मार्गमें
भगवतः	भगवान्
ईश्वरस्य	सर्वेश्वर
विष्णोः	विष्णुके
वशवर्तिन्या	वशमें रहनेवाली
मायया	माया द्वारा
अयं जीव	यह जीव
लोकः	समुदाय
आपतित	गिर (लग) गया है।
यथा वणिक्	
सार्थः	जैसे व्यापारी-दल
अर्थ परः	धन परायण हो।
स्वदेह	अपने शरीरसे
निष्पादित	सम्पन्न किये गये
कर्म अनुभवः	कर्मोंके अनुभवसे
श्मशानवत्	श्मशानकी भाँति
अशिवतमायां	अत्यन्त अमंगल रूप
संसार अटव्यां	संसार रूपी वनमें
गतः	चला गया है।
अद्य अपि	आज तक भी
बहु प्रतियोग	बहुतसे उद्योगोंके
विफल	असफल होनेसे
उ ह	निश्चय ही
तत् ताप	(उत्पन्न) उसके तापको
उपशमनीं	शान्त करनेवाली
हरिगुरु	श्रीहरि और गुरुदेवके
चरणारविन्द	चरण-कमलोंके
मधुकर	भ्रमरका
अनुपदवीं	स्थान
न अवरुन्धे	नहीं ले सका।
यस्यां	जिस (भवाटवी) में
उ ह वा	निश्चय ही ये
एते	इतने
षट् इन्द्रिय	छः इन्द्रिय
नामानः	नामवाले
ते कर्मणा	वे कर्मसे
दस्यव एव	डाकू ही (रहते) हैं ॥१॥

तद्यथा पुरुषस्य धनं यत्किञ्चिद्धर्मौपयिकं बहुकृच्छ्राधिगतं साक्षात्परमपुरुषाराधनलक्षणो योऽसौ धर्मस्तं तु साम्पराय उदाहरन्ति । तद्धर्म्यं धनं दर्शनस्पर्शनश्रवणास्वादनावघ्राणसङ्कल्पव्यवसायगृहग्राम्योपभोगेन कुनाथस्याजितात्मनो यथा सार्थस्य विलुम्पन्ति ॥२॥

तत् यथा पुरुषस्य धनं यत् किञ्चित् धर्म उपयिकं बहु कृच्छ्र अधिगतं साक्षात् परमपुरुष आराधन लक्षणः यः असौ धर्मः तं तु साम्परायं उदाहरन्ति । तत् धर्म्यं धनं दर्शन स्पर्श न श्रवण आस्वादन अवघ्राण सङ्कल्प व्यवसाय गृहग्राम्य उपभोगेन कुनाथस्य अजित आत्मनः यथा सार्थस्य विलुम्पन्ति ॥२॥

तत् यथा	वह जैसे
पुरुषस्य	पुरुषका
बहु कृच्छ्र	बहुत कष्टसे
अधिगतं	पाया
यत् किञ्चित	जो कुछ थोड़ा
धनं	धन
धर्म उपयिकं	धर्मोपार्जन है ।
साक्षात्	साक्षात्
परमपुरुष	परम-पुरुषकी
आराधन	आराधना
लक्षणं	रूप
असौ यः धर्मः	यह जो धर्म है,
तं तु साम्परायं	उसे तो परलोकके लिए
उदाहरन्ति	बतलाया गया है ।
तत् धर्म्यं	उस धर्मरूप
धनं	धनको
दर्शन स्पर्श न	देखने, छूने,
श्रवण	सुनने,
आस्वादन	स्वाद लेने,
अवघ्राण	सूँघने,
सङ्कल्प	संकल्प करनेके
व्यवसाय	व्यापार रूप
गृहग्राम्य	गृहस्थके विषय
उपभोगेन	भोगोंको भोगनेमें (लगकर)
यथा	जैसे
अजित	बिना जीते
आत्मनः	मनवाले
कुनाथस्य	बुरे (बेइमान) स्वामीवाले
सार्थस्य	व्यापारी दलका
विलुम्पन्ति	(डाकू) लूट लेते हैं (इन्द्रियाँ – इसका धर्म-धन लूट लेती हैं) ॥२॥

अथ च यत्र कौटुम्बिका दारापत्यादयो नाम्ना कर्मणा वृक-सृगाला एवानिच्छतोऽपि कदर्यस्य कुटुम्बिन उरणकवत्संरक्ष्यमाणं मिषतोऽपि हरन्ति ॥३॥

अथ च यत्र कौटुम्बिका दारा अपत्य आदयः नाम्ना कर्मणा वृक शृगाला एव अनिच्छतः अपि कदर्यस्य कुटुम्बिनः उरणकवत् संरक्ष्यमाणं मिषतः अपि हरन्ति ॥३॥

अथ च	फिर और भी,	**कुटुम्बिनः**	कुटुम्बीका
यत्र	जहाँ (संसार-वनमें)	**उरणकवत्**	भेड़ोंके समान
कौटुम्बिका	कुटुम्बके सदस्य	**संरक्ष्यमाणं**	सुरक्षित किये (धन) को
दारा अपत्य	स्त्री, पुत्र	**अनिच्छतः**	(उसकी) इच्छा न
आदयः	इत्यादि	**अपि**	होनेपर भी
नाम्ना	नामक हैं	**मिषतः अपि**	(उसके) देखते होनेपर भी
कर्मणा	कर्मसे (वे)	**हरन्ति**	छीन लेते हैं ॥३॥
वृक शृगाला	भेड़िये, सियार		
एव	ही हैं,		
कदर्यस्य	कंजूस		

यथा ह्यनुवत्सरं कृष्यमाणमप्यदग्धबीजं क्षेत्रं पुनरेवावपन-काले गुल्मतृणवीरुद्भिर्गह्वरमिव भवत्येवमेव गृहाश्रमः कर्मक्षेत्रं यस्मिन्न हि कर्माण्युत्सीदन्ति यदयंकामकरण्ड एष आवसथः ॥४॥

यथा हि अनुवत्सरं कृष्यमाणं अपि अदग्ध बीजं क्षेत्रं पुनः एव आवपन काले गुल्म तृण वीरुत्भिः गह्वरं इव भवति एवं एव गृहाश्रमः कर्मक्षेत्रं यस्मिन् हि कर्माणि उत्सीदन्ति यत् अयं काम करण्ड एष आवसथः ॥४॥

यथा हि	जैसे कि	**कृष्यमाणं**	जोते जानेपर
अनुवत्सरं	प्रति वर्ष	**अपि**	भी

अदग्ध बीजं	बीज जलाये न गये हों तो
क्षेत्रं	(वह) खेत
पुनः एव	फिरसे
आवपन काले	बोनेके समय
गुल्म तृण	झाड़ियों, घास,
वीरुत्भिः	पौधोंसे
गह्वरं इव	सघन जैसा
भवति	हो जाता है,
एवं एव	ठीक ऐसे ही
गृहाश्रमः	गृहस्थाश्रम
कर्मक्षेत्रं	कर्मक्षेत्र (कर्मोत्पादनका खेत) है,
यस्मिन् हि	जिसमें कि
कर्माणि	कर्म
उत्सीदन्ति	नष्ट किये जाते हैं (किन्तु)
यत् अयं	क्योंकि यह
काम करण्ड	कामनाओंकी पिटारी है
एष आवसथः	इस आश्रमकी कामनाएँ उच्छिन्न नहीं होतीं ॥४॥

तत्रगतो दंशमशकसमापसदैर्मनुजैः शलभशकुन्ततस्करमूषकादिभिरुपरुध्यमानबहिःप्राणः क्वचित् परिवर्तमानोऽस्मिन्नध्वन्यविद्याकामकर्मभिरुपरक्तमनसानुपपन्नार्थं नरलोकं गन्धर्वनगरमुपपन्नमिति मिथ्यादृष्टिरनुपश्यति ॥५॥

तत्रगतः दंश मशक सम अपसदैं मनुजैः शलभ शकुन्त तस्कर मूषक आदिभिः उपरुध्यमान बहिःप्राणः क्वचित् परिवर्तमानः अस्मिन् अध्वनि अविद्या काम कर्मभिः उपरक्त मनसा अन उपपन्न अर्थं नरलोकं गन्धर्व नगरं उपपन्नं इति मिथ्या दृष्टिः अनुपश्यति ॥५॥

तत्रगतः	उस (गृहस्थाश्रम)में प्रवेश करके
दंश मशक सम	डांस और मच्छरोंके समान
अपसदैः मनुजैः	नीच मनुष्यों द्वारा,
शकुन्त तस्कर	पक्षी, चोर,
मूषक	चूहे
आधिभिः	आदिसे
बहिःप्राणः	बाहरी प्राण (धन)को
उपरुध्यमानः	उपरोध (हानि) पहुँचते रहते हैं।
क्वचित्	कभी

परिवर्तमानः	(स्थितिमें) परिवर्तन होनेपर	**अन उपपन्न**	पूर्ण हुए बिना ही
अस्मिन्	इस	**नरलोकं**	मनुष्य जीवन
अध्वनि	(संसार) मार्गमें	**गन्धर्व नगरं**	गन्धर्व नगर (न होनेपर भी अनुभावना दृश्य)
अविद्या	अविद्या जनित		
काम कर्मभिः	कामना और कर्मोंमें	**उपपन्नं**	पूर्ण हो गया
उपरक्त मनसा	आसक्त मन होनेसे	**इति**	ऐसा
मिथ्या दृष्टिः	भ्रान्त दृष्टि होनेसे	**अनुपश्यति**	बार-बार देखता है ॥५॥
अर्थं	प्रयोजन		

तत्र च क्वचिदातपोदकनिभान् विषयानुपधावति पानभोजनव्यवायादिव्यसनलोलुपः ॥६॥

तत्र च क्वचित् आतप उदकनिभान् विषयान् उपधावति पानभोजन व्यवाय आदि व्यसन लोलुपः ॥६॥

तत्र च	वहाँ (गृहस्थाश्रममें) भी	**पानभोजन**	पीने, खाने,
क्वचित्	कभी	**व्यवाय आदि**	मैथुन आदि
आतप	सूर्यकी किरणोंमें (प्रतीत होते)	**व्यसन लोलुपः**	व्यसनोंके लालचमें
		विषयान्	विषयोंकी ओर
उदकनिभान्	जलके समान	**उपधावति**	दौड़ता है ॥६॥

क्वचिच्चाशेषदोषनिषदनं पुरीषविशेषं तद्वर्णगुणनिर्मितमतिः सुवर्णमुपादित्सत्यग्निकामकातर इवोल्मुकपिशाचम् ॥७॥

क्वचित् च अशेष दोष निषदनं पुरीष विशेषं तत् वर्ण गुण निर्मित मतिः सुवर्णम् उपात् इति असत्य अग्नि काम कातर इव उल्मुक पिशाचम् ॥७॥

क्वचित् च	कभी तो	**निषदनं**	मूल निवास
अशेष दोष	सम्पूर्ण दोषोंके	**पुरीष विशेषं**	(अग्निके) मल विशेष

तत् वर्ण गुण	उसके रंग, गुणसे	**कातर**	आकुल
निर्मित मतिः	आकर्षित बुद्धि	**उल्मुक**	अगिया
सुवर्ण उपात्	स्वर्ण मिल गया	**पिशाचं**	बैताल
इति	ऐसा मानता है	**इव**	(की ओर दौड़ने)की
अग्नि काम	(जैसे सर्दीसे व्याकुल) अग्नि पीनेकी इच्छासे		भाँति ॥७॥

अथ कदाचिन्निवासपानीयद्रविणाद्यनेकात्मोपजीवनाभिनिवेश एतस्यां संसाराटव्यामितस्ततः परिधावति ॥८॥

अथ कदाचित् निवास पानीय द्रविण आदि अनेक आत्म उपजीवन अभिनिवेश एतस्यां संसार अटव्यां इतः ततः परिधावति ॥८॥

अथ कदाचित्	फिर कभी	**अभिनिवेश**	चित्त लगे होनेसे
निवास	रहनेके स्थान	**एतस्यां**	इस
पानीय	पीनेके द्रव	**संसार अटव्यां**	संसार-वनमें
द्रविण आदि	धन आदि	**इतः ततः**	इधर-उधर
अनेक	अनेक	**परिधावति**	चारो ओर दौड़ता
आत्म	अपने जीवन		है ॥८॥
उपजीवन	निर्वाहकी (वस्तुओंमें)		

क्वचिच्च वात्योपम्यया प्रमदयाऽऽरोहमारोपितस्तत्कालरजसा रजनीभूत इवासाधुमर्यादो रजस्वलाक्षोऽपि दिग्देवता अतिरजस्वलमतिर्न विजानाति ॥९॥

क्वचित् च वात्या उपम्यया प्रमदया आरोहं आरोपितः तत् काल रजसा रजनीभूत इव असाधु मर्यादः रजस्वल अक्षः अपि दिक् देवता अति रजस्वल मतिः न विजानाति ॥९॥

क्वचित् च	कभी तो
वात्या उपम्यया	बवण्डरके समान कही जाने वाली
प्रमदया	स्त्री द्वारा
आरोहं	गोदमें
आरोपितः	बैठा लेनेपर
तत् काल	उसी समय
रजसा	रजोगुणसे
रजनीभूतः	रात्रिके समान (अन्धकार) अविवेक युक्त होनेके
इव	समान
असाधु	दुष्टोंकी
मर्यादः	मर्यादा (उच्छृंखलता)से
अक्षः	आँखोंमें
रजस्वल	धूल पड़ेके समान
दिक् देवता	दिशाओंके देवता
अपि	(सत्पुरुषों)को भी
अति रजस्वल	अत्यन्त रजोगुणी
मतिः	बुद्धि (हो जाने)से
न विजानाति	नहीं समझ पाता ॥९॥

क्वचित्सकृदवगतविषयवैतथ्यः स्वयं पराभिध्यानेन विभ्रंशितस्मृतिस्तयैव मरीचितोयप्रायांस्तानेवाभिधावति ॥१०॥

क्वचित् सकृत् अवगत विषय वै तथ्यः स्वयं पर अभिध्यानेन विभ्रंशित स्मृतिः तया एव मरीचि तोय प्रायाण् तान् एव अभिधावति ॥१०॥

क्वचित्	कभी
स्वयं	स्वयं
सकृत्	एक बार
विषय वै तथ्यः	विषय भोगोंकी व्यर्थता
अवगत	जानकर भी
पर अभि-	अपनेसे भिन्न (देह)के
ध्यानेन	निरन्तर चिन्तनसे
स्मृतिः	(आत्म) स्मृति
विभ्रंशित	नष्ट होनेसे
तया एव	उन्हीं
मरीचि	मृग-मरीचिकाके
तोय प्रायान्	जल-प्राय
तान् एव	उन्हीं (विषयों)की
अभिधावति	ओर दौड़ता है ॥१०॥

क्वचिदुलूकझिल्लीस्वनवदतिपरुषरभसाटोपं प्रत्यक्षं परोक्षं वा रिपुराजकुलनिर्भर्त्सितेनातिव्यथितकर्णमूलहृदयः ॥११॥

क्वचित् उलूक झिल्ली स्वनवत् अति परुष रभस आटोपं प्रत्यक्षं परोक्षं वा रिपुराजकुल निर्भर्त्सितेन अति व्यथित कर्णमूल हृदयः ॥११॥

कदाचित्	कभी
उलूक झिल्ली	उल्लू, झींगुरों के
स्वनवत्	शब्दके समान
अति परुष	अत्यन्त रूक्ष
रभस आटोपं	वेगवान (तेज) ढंगकी
प्रत्यक्षं	प्रत्यक्ष
वा परोक्षं	अथवा पीछेकी
रिपुराजकुल	शत्रु या शासक वर्गकी
निर्भर्त्सितेन	डांट-डपटसे
कर्णमूल	कान तथा
हृदयः	मन
अति व्यथित	बहुत पीड़ित होता है ॥११॥

स यदा दुग्धपूर्वसुकृतस्तदा कारस्करकाकतुण्डाद्यपुण्यद्रुमलता विषोदपानवदुभयार्थशून्यद्रविणान् जीवन्मृतान् स्वयं जीवन्म्रियमाण उपधावति ॥१२॥

स यदा दुग्ध पूर्व सुकृतः तदा कारस्कर काक तुण्ड आदि अपुण्य द्रुमलता विष उदपानवत् उभय अर्थ शून्य द्रविणान् जीवन् मृतान् स्वयं जीवन् म्रियमाणः उपधावति ॥१२॥

स यदा	उसके जब
पूर्वं सुकृतः	पहलेके पुण्य
दुग्ध	क्षीण हो जाते हैं
तदा	तब
कारस्कर	कारस्कर,
काक तुण्ड	काकतुण्ड
आदि अपुण्य	आदि अपवित्र
द्रुमलता	वृक्ष लताके
विष	विषैले
उदपानवत्	रसको पीनेके समान
उभय अर्थ शून्य	दोनों (लोक परलोक)के प्रयोजनसे रहित
द्रविणान्	धनवाले
जीवन् मृतान्	जीते ही मरेके समान (लोगों)के पास
स्वयं जीवन्	स्वयं जीवित ही
म्रियमाणः	मरेके समान(होकर)
उपधावति	जाता है ॥११॥

एकदासत्प्रसङ्गान्निकृतमतिर्व्युदकस्रोतःस्खलनवदुभयतोऽपि दुःखदं पाखण्डमभियाति ॥१३॥

एकदा असत् प्रसङ्गात् निकृतमतिः व्युदक स्रोतः स्खलनवत् उभयतः अपि दुःखदं पाखण्डं अभियाति ॥१३॥

एकदा	एकबार
असत् प्रसङ्गात्	दुर्जनोंके साथसे
निकृतमतिः	बुद्धि बिगड़ जानेसे
व्युदक स्रोतः	गहरे स्रोतमें
स्खलनवत्	गिरनेके समान
उभयतः अपि	दोनों ओर (लोक-परलोकमें) ही
दुःखदं	दुःखदायी
पाखण्डम्	पाखण्डमें
अभियाति	(फँस) जाता है ॥१३॥

यदा तु परबाधयान्ध आत्मने नोपनमति तदा हि पितृपुत्र-बर्हिष्मतः पितृपुत्रान् वा स खलु भक्षयति ॥१४॥

यदा तु परबाधया अन्ध आत्मने न उपनमति तदा हि पितृपुत्र बर्हिष्मतः पितृपुत्रान् वा स खलु भक्षयति ॥१४॥

यदा तु	जब तो
परबाधया	दूसरोंको सतानेमें
अन्ध	अन्धा (होनेपर भी)
आत्मने	अपनेको
न उपनमति	(कुछ) नहीं मिलता
तदा हि खलु	तब तो निश्चय
स	वह
पितृपुत्र	पिता या पुत्रका
बर्हिष्मतः	तिनका भी रखने-वालोंको
वा	अथवा
पितृपुत्रान्	(सगे) पिता या पुत्रोंको
भक्षयति	खा लेना चाहता है ॥१४॥

क्वचिदासाद्य गृहं दाववत्प्रियार्थविधुरमसुखोदर्कं शोकाग्निना दह्यमानो भृशं निर्वेदमुपगच्छति ॥१५॥

क्वचित् आसाद्य गृहं दाववत् प्रिय अर्थ विधुरं असुख उदर्कं शोक अग्निना दह्यमानः भृशं निर्वेदं उपगच्छति ॥१५॥

क्वचित्	कभी
प्रिय अर्थ विधुरं	प्रिय विषयोंसे रहित
असुख उदर्कं	परिणाममें दुखद,
दाववत्	दावाग्निके समान
गृहं आसाद्य	घरमें पहुँचकर

शोक अग्निना	शोककी आगसे	**निर्वेदं**	खिन्न
भृशं दह्यमानः	अत्यन्त जलता हुआ	**उपगच्छति**	हो जाता है ॥१५॥

क्वचित्कालविषमितराजकुलरक्षसापहृतप्रियतमधनासुः प्रमृतक इव विगतजीवलक्षण आस्ते ॥१६॥

क्वचित् काल विषमित राजकुलरक्षसा अपहृत प्रियतम धन असुः प्रमृतक इव विगत जीव लक्षण आस्ते ॥१६॥

क्वचित्	कभी	**धन असुः**	धन रूपी प्राण
काल विषमित	समयके फेरसे विरोधी बने	**अपहृत**	छीन लिए जानेपर
		अमृतक इव	मर गयेके समान
राजकुलरक्षसा	राजकुल रूपी राक्षस द्वारा	**जीव**	जीवनके
		लक्षण विगत	लक्षणोंसे हीन सा
प्रियतम	अत्यन्त प्रिय	**आस्ते**	हो जाता है ॥१६॥

कदाचिन्मनोरथोपगतपितृपितामहाद्यसत्सदिति स्वप्ननिर्वृति-लक्षणमनुभवति ॥१७॥

कदाचित् मनोरथ उपगत पितृपितामहात् असत् सत् इति स्वप्न निर्वृति लक्षणं अनुभवति ॥१७॥

कदाचित्	कभी	**स्वप्न निर्वृति**	स्वप्नके आनन्दके
मनोरथ	मनोरथ	**लक्षणं**	समान
उपगत	प्राप्त होने जैसे	**अनुभवति**	(आनन्द) अनुभव करता है ॥१७॥
पितृपितामह	पिता-पितामहके		
असत्	मिथ्या साथको		
सत् इति	(यही) सत् है इस प्रकार (मानकर)		

क्वचिद् गृहाश्रमकर्मचोदनातिभरगिरिमारुरुक्षमाणो लोक-व्यसनकर्षितमनाः कण्टकशर्कराक्षेत्रं प्रविशन्निव सीदति ॥१८॥

क्वचित् गृहाश्रमकर्म चोदना अति भर गिरिम् आरुरुक्षमाणः लोकव्यसन कर्षितमनाः कण्टक शर्करा क्षेत्रं प्रविशन् इव सीदति ॥१८॥

क्वचित्	कभी	**गिरिं**	पर्वतपर
लोकव्यसन	लोगों के व्यसन	**आरुरुक्षमाणः**	चढ़नेके प्रयत्नमें
कर्षितमनाः	आकर्षित चित्त	**कण्टक शर्करा**	कांटे-कंकड़ों से
गृहाश्रमकर्म	गृहस्थाश्रमके कर्मों के	**क्षेत्रं**	(भरी) भूमि में
		प्रविशन् इव	प्रवेश करनेके समान
चोदना	(शास्त्रीय) प्रेरणा रूप	**सीदति**	कष्ट पाता है ॥१८॥
अति भर	भारी भार सहित		

क्वचिच्च दुःसहेन कायाभ्यन्तरवह्निना गृहीतसारः स्वकुटुम्बाय क्रुध्यति ॥१९॥

क्वचित् दुःसहेन काय अभ्यन्तर वह्निना गृहीतसारः स्वकुटुम्बाय क्रुध्यति ॥१९॥

क्वचित्	कभी	**गृहीतसारः**	सारतत्त्व (धृति) छीन लेनेपर
दुःसहेन	दुःसह		
काय	शरीरके	**स्वकुटुम्बाय**	अपने कुटुम्बपर
अभ्यन्तर	भीतर की	**क्रुध्यति**	क्रोध करता है ॥१९॥
वह्निना	आग (भूख) से		

स एव पुर्नानिद्राजगरगृहीतोऽन्धे तमसि मग्नः शून्यारण्य इव शेते नान्यत् किञ्चन वेद शव इवापविद्धः ॥२०॥

स एव पुनः निद्रा अजगर गृहीतः अन्धे तमसि मग्नः शून्य अरण्य इव शेते न अन्यत् किञ्चन वेद शव इव अपविद्धः ॥२०॥

स एव पुनः	वही फिर	**अन्धे तमसि**	घोर अन्धकारमें
निद्रा अजगर	निद्रा रूपी अजगरसे	**मग्नः**	डूबा
गृहीतः	पकड़े जानेपर	**अपविद्धः**	फेंके

शव इव	मुर्देके समान	**शेते**	सोता है,
शून्य	सूने	**अन्यत्**	दूसरा
अरण्य इव	जंगलमें (पड़े)की भाँति	**किञ्चन**	कुछ भी
		न वेद	नहीं जानता ॥२०॥

कदाचिद्भग्नमानदंष्ट्रो दुर्जनदन्दशूकैरलब्धनिद्राक्षणो व्यथितहृदयेनानुक्षीयमाणविज्ञानोऽन्धकूपेऽन्धवत्पतति ॥२१॥

कदाचित् भग्न मानदंष्ट्रः दुर्जन दन्दशूकैः अलब्धः निद्राक्षणः व्यथित हृदयेन अनुक्षीयमाण विज्ञानः अन्धकूपे अन्धवत् पतति ॥२१॥

कदाचित्	कभी	**अलब्धः**	नहीं मिलनेसे
मानदंष्ट्रः	अभिमान रूपी दाँत	**व्यथित हृदयेन**	दुःखी चित्तसे
भग्न	टूट जानेसे	**अनुक्षीयमाण**	बराबर क्षय होती
दुर्जन	दुर्जनों रूपी	**विज्ञानः**	चेतनाके कारण
दन्दशूकैः	काटनेवाले (जीवों)से	**अन्धकूपे**	अन्धे कुएँ (नरक)में
निद्राक्षणः	नींद लेनेका समय	**अन्धवत्**	अन्धेके समान
		पतति	गिर पड़ता है ॥२१॥

कर्हि स्म चित्काममधुलवान् विचिन्वन् यदा परदारपरद्रव्याण्यवरुन्धानो राज्ञा स्वामिभिर्वा निहतः पतत्यपारे निरये ॥२२॥

कर्हि स्म चित् काम मधुलवान् विचिन्वन् यदा परदार परद्रव्याणि अवरुन्धानः राज्ञा स्वामिभिः वा निहतः पतति अपारे निरये ॥२२॥

कर्हि स्म चित्	किसी समय	**परद्रव्याणि**	दूसरेके धनका
काम	भोग रूपी	**अवरुन्धानः**	अवरोध करना (उड़ाना) चाहता है (तब)
मधुलवान्	शहद सींकरोंको		
विचिन्वन्	ढूँढ़ता हुआ		
यदा	जब	**राज्ञा**	राजा द्वारा
परदार	परस्त्री या	**वा**	अथवा

स्वामिभिः	(उसके) स्वामी द्वारा	**अपारे निरये**	अपार नरकमें
निहतः	मारा जाकर	**पतति**	गिरता है ॥२२॥

अथ च तस्मादुभयथापि हि कर्मास्मिन्नात्मनः संसारावपनमुदाहरन्ति ॥२३॥

अथ च तस्मात् उभयथा अपि हि कर्म अस्मिन् न आत्मनः संसार आवपनं उदाहरन्ति ॥२३॥

अथ च	इससे भी	**कर्म**	कर्म
तस्मात्	इसलिए	**संसार**	संसारको ही
उभयथा अपि	दोनों (लोक परलोक दृष्टि)से भी	**आवपनं**	बोने (बढ़ाने) वाला
		उदाहरन्ति	बतलाया जाता है ॥२३॥
हि	क्योंकि		
अस्मिन्	इस (प्रवृत्ति मार्ग)में		
न आत्मनः	आत्माको छोड़कर किये गये		

मुक्तस्ततो यदि बन्धाद्देवदत्त उपाच्छिनत्ति तस्मादपि विष्णुमित्र इत्यनवस्थितिः ॥२४॥

मुक्तः ततः यदि बन्धात् देवदत्त उप आच्छिनत्ति तस्मात् अपि विष्णुमित्र इति अनवस्थितिः ॥२४॥

यदि	यदि	**तस्मात् अपि**	उससे भी
ततः	वहाँ (राजा आदिके)	**विष्णुमित्र**	विष्णुमित्र (छीन लेता है)
बन्धात्	बन्धनसे		
मुक्तः	छूट भी गये (तो)	**इति**	इस प्रकार की
उप देवदत्त	पासका देवदत्त	**अनवस्थितिः**	(कहीं) निश्चित स्थिति नहीं है॥२४॥
आच्छिनत्ति	छीन लेता है।		

क्वचिच्च शीतवाताद्यनेकाधिदैविकभौतिकात्मीयानां दशानां प्रतिनिवारणेऽकल्पो दुरन्तचिन्तया विषण्ण आस्ते ॥२५॥

क्वचित् च शीतवात आदि अनेक आधिदैविक भौतिक आत्मीयानां दशानां प्रतिनिवारणे अकल्पः दुरन्त चिन्तया विषण्ण आस्ते ॥२५॥

क्वचित् च	कभी तो
शीतवात	सर्दी, आँधी
आदि	आदि
अनेक	अनेक
आधिदैविक	आधिदैविक
भौतिक	आधिभौतिक
आत्मीयानां	आध्यात्मिक
दशानां	अवस्थाओंके
प्रतिनिवारणे	दूर करनेमें
अकल्पः	असमर्थ होकर
दुरन्त चिन्तया	दुष्पार चिन्तासे
विषण्ण आस्ते	उदास हो जाता है ॥२५॥

क्वचिन्मिथो व्यवहरन् यत्किञ्चिद्धनमन्येभ्यो वा काकिणिकामात्रमप्यपहरन् यत्किञ्चिद्वाविद्वेषमेति वित्तशाठ्यात् ॥२६॥

क्वचित् मिथः व्यवहरन् यत् किञ्चित् धनं अन्येभ्यः वा काकिणिका मात्रं अपि अपहरन् यत् किञ्चित् वा विद्वेषं एति वित्त शाठ्यात् ॥२६॥

क्वचित्	कभी
मिथः व्यवहरन्	परस्पर व्यवहार करने में
यत् किञ्चित्	जो कुछ भी
धनं	धन
वा	भले
काकिणिका	कौड़ी
मात्रं अपि	बराबर ही
वा	अथवा
यत् किञ्चित्	जो कुछ भी
अन्येभ्यः	दूसरे से
अपहरन्	चुरा लेनेमें
वित्त शाठ्यात्	धनकी शठता (लोभ) से
विद्वेषं एति	शत्रुता कर लेता है ॥२६॥

अध्वन्यमुष्मिन्निव उपसर्गास्तथा सुखदुःखरागद्वेषभयाभिमानप्रमादोन्मादशोकमोहलोभमात्सर्येर्ष्यावमानक्षुत्पिपासाधिव्याधिजन्मजरामरणादयः ॥२७॥

अध्वनि अमुष्मिन् नव उपसर्गाः तथा सुखदुःख रागद्वेष भय अभिमान प्रमाद उन्माद शोक मोह लोभ मात्सर्य ईर्ष्या अवमान क्षुत् पिपासा आधि व्याधि जन्मजरा मरण आदयः ॥२७॥

अमुष्मिन्	इस
अध्वनि	(संसारके) मार्गमें
नव उपसर्गाः	नये-नये कष्ट (होते ही रहते हैं)
तथा	जैसे
सुखदुःख	सुख-दुःख,
रागद्वेष	राग-द्वेष,
भय अभिमान	भय-अभिमान,
प्रमाद उन्माद	प्रमाद-उन्माद,
शोक मोह	शोक-मोह,
लोभ मात्सर्य	लोभ-मत्सरता,
ईर्ष्या अवमान	ईर्ष्या-अपमान,
क्षुत् पिपासा	भूख-प्यास,
आधि व्याधि	चिन्ता-रोग,
जन्मजरा	जन्म-बुढ़ापा,
मरण आदयः	मृत्यु आदि ॥२७॥

क्वापि देवमायया स्त्रिया भुजलतोपगूढःप्रस्कन्नविवेक-विज्ञानो यद्विहारगृहारम्भाकुलहृदयस्तदाश्रयावसक्तसुतदुहितृकलत्रभाषितावलोकविचेष्टितापहृतहृदय आत्मानमजितात्मापारेऽन्धे तमसि प्रहिणोति ॥२८॥

क्वापि देवमायया स्त्रिया भुजलता उपगूढः प्रस्कन्न विवेक विज्ञानः यत् विहार गृह आरम्भ आकुल हृदयः तत् आश्रय अवसक्त सुत दुहितृ कलत्र भाषित अवलोक विचेष्टित अपहृत हृदय आत्मानं अजित आत्मा अपारे अन्धे तमसि प्रहिणोति ॥२८॥

क्वापि	कभी
देवमायया	देवमाया रुपिणी
स्त्रिया	स्त्रीकी
भुजलता	भुजपाशमें
उपगूढः	आलिंगिन
विवेक विज्ञानः	विवेक विचारके
प्रस्कन्न	नष्ट हो जानेसे
यत् विहार	जिसके साथ विहार करनेसे
गृह आरम्भ	गृहस्थाश्रम का प्रारम्भ होनेसे
आकुल हृदयः	चित्त व्याकुल हुआ था
तत् आश्रय	उसीके आश्रयमें
अवसक्त	आसक्त होकर
सुत दुहितृ	पुत्र-पुत्री
कलत्र	पत्नीकी
भाषित	मधुर बोली,
अवलोक	देखने तथा
विचेष्टित	चेष्टाओं द्वारा
अपहृत हृदय	चित्त चुरा लिया। गया, (अतः)

अजित आत्मा	मनको वशमें न करने वाला	**अपारे अन्धे**	अपार अन्धकारमय
आत्मानं	अपनेको	**तमसि प्रहिणोति**	नरकमें गिरा देता है ॥२८॥

कदाचिदीश्वरस्य भगवतो विष्णोश्चक्रात्परमाण्वादिद्विपरार्धापवर्गकालोपलक्षणात्परिवर्तितेन वयसा रंहसा हरत आब्रह्मतृणस्तम्बादीनां भूतानामनिमिषतो मिषतां वित्रस्तहृदयस्तमेवेश्वरं कालचक्रनिजायुधं साक्षाद्भगवन्तं यज्ञपुरुषमनादृत्य पाखण्डदेवताः कङ्कगृध्रबकवटप्राया आर्यसमयपरिहृताः साङ्केत्येनाभिधत्ते ॥२९॥

कदाचित् ईश्वरस्य भगवतः विष्णोः चक्रात् परमाणु आदि द्विपरार्ध अपवर्ग काल उपलक्षणात् परिवर्तितेन वयसा रंहसा हरत आब्रह्म तृण स्तम्ब आदीनां भूतानां अनिमिषतः मिषतां वित्रस्त हृदयः तं एव ईश्वरं कालचक्र निज आयुधं साक्षात् भगवन्तं यज्ञपुरुषं अनादृत्य पाखण्ड देवताः कङ्क गृद्ध बक वट प्राया आर्यसमय परिहृताः साङ्केत्येन अभिधत्ते ॥२९॥

ईश्वरस्य	सर्व समर्थ	**पर्यन्त**	तक (सब)
भगवतः	भगवान्	**भूतानां**	प्राणियों के
विष्णोः	विष्णुके	**अनिमिषतः**	पलक न गिराने (सावधान रहने) पर भी
परमाणु आदि	परमाणु (काल)से लेकर	**मिषतां**	देखते हुए
द्विपरार्धं	दोपरार्धके	**भूतानां**	प्राणियोंकी
अपवर्ग काल	(ब्रह्माके) मोक्षकाल तकसे	**वयसा**	आयुको
उपलक्षणात्	उपलक्षित होनेवाले	**रंहसा हरत**	(अपने) वेगसे हरण करता है
चक्रात्	चक्रके	**वित्रस्त हृदयः**	(उस काल-चक्रसे) संत्रस्त चित्त
परिवर्तितेन	घूमनेसे	**तं एव**	उन्हीं
आब्रह्म	ब्रह्मासे लेकर		
तृण स्तम्ब	क्षुद्र तृण		

कालचक्र	कालचक्र रूप
निज आयुधं	अपने अस्त्रसे युक्त
ईश्वरं	सर्वेश्वर
साक्षात्	साक्षात्
भगवन्तं	भगवान्
यज्ञपुरुषं	यज्ञपुरुषका
अनादृत्य	अनादर करके
आर्यसमय	आर्यकालसे
परिहृताः	बहिष्कृत
पाखण्डदेवताः	पाखण्डियोंके देवता
प्रायाः कङ्क	(जो) प्रायः कंक,
गृध्रबकवट	गीध बगुले, वट-वृक्ष आदि हैं
साङ्केत्येन	(उनका) संकेत (इशारों-मुद्राओं) द्वारा
अभिधत्ते	आश्रय लेता है ॥२९॥

यदा पाखण्डिभिरात्मवञ्चितैस्तैरुरु वञ्चितो ब्रह्मकुलं समावसंस्तेषां शीलमुपनयनादि श्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठानेन भगवतो यज्ञपुरुषस्याराधनमेव तदरोचयन् शुद्रकुलं भजते निगमाचारेऽशुद्धितो यस्य मिथुनीभावः कुटुम्बभरणं यथा वानरजातेः ॥३०॥

यदा पाखण्डिभिः आत्म वञ्चितैः तैः उरु वञ्चितः ब्रह्मकुलं समावसन् तेषां शीलं उपनयन आदि श्रौतस्मार्त कर्म अनुष्ठानेन भगवतः यज्ञपुरुषस्य आराधनं एव तत् अरोचयन् शुद्रकुलं भजते निगम आचारे अशुद्धितः यस्य मिथुनीभावः कुटुम्बभरणं यथा वानरजातेः ॥३०॥

आत्म	स्वयं
वञ्चितैः	धोखेमें रहनेवाले
तैः पाखण्डिभिः	उन पाखण्डियों द्वारा
यदा	जब
उरु वञ्चितः	बहुत ठगा जाता है (तब)
ब्रह्मकुलं	ब्राह्मणोंके कुल (के सम्पर्क)में
समावसन्	अच्छी प्रकार
	आश्रय लेता है,
तेषा शीलं	(लेकिन) उनका आचार तो
उपनयन आदि	यज्ञोपवीत-संस्कार आदि
श्रौतस्मार्त	वैदिक, स्मृति विहित
कर्म	कर्मोंको
अनुष्ठानेन	करके
भगवतः	भगवान्

यज्ञपुरुषस्य	यज्ञ-पुरुषका
आराधनं एव	आराधना ही है,
निगम आचारे	(उस) वैदिक आचारमें
अशुद्धितः	अपनेमें अशुद्धि होनेसे
तत् अरोचयन्	वह रुचिकर न लगनेसे
शूद्रकुलं	शूद्र कुलका
भजते	आश्रय लेता है
यथा	जैसे
वानरजातेः	वानर-जातिमें
यस्य	जिन (शूद्र-कुलों)में
मिथुनीभावः	स्त्री-पुरुष मिलकर रहना और
कुटुम्बभरणं	(अपने) कुटुम्बका पालन है ॥३०॥

तत्रापि निरवरोधः स्वैरेण विहरन्नतिकृपणबुद्धिरन्योन्यमुखनिरीक्षणादिना ग्राम्यकर्मणैव विस्मृतकालावधिः ॥३१॥

तत्र अपि निःअवरोधः स्वैरेण विहरन् अति कृपणबुद्धिः अन्योन्य मुखनिरीक्षण आदिना ग्राम्यकर्मणा एव विस्मृत काल अवधिः ॥३१॥

तत्र अपि	वहाँ भी
निःअवरोधः	बिना रोक-टोक
स्वैरेण विह रन्	स्वच्छन्द-विहार करते
अति	अत्यन्त
कृपणबुद्धिः	दीन-बुद्धि (यह)
अन्योन्य	एकदूसरेका
मुखनिरीक्षण	मुख-दर्शन
आदिना	आदिसे
ग्राम्यकर्मणा	विषय-भोगोंमें
एव	ही (लगे रहकर)
काल	मृत्युका
विस्मृत अवधिः	स्मरण भी भूल जाता है ॥३१॥

क्वचिद् द्रुमवदैहिकार्थेषु गृहेषु रंस्यन् यथा वानरः सुतदारवत्सलो व्यवायक्षणः ॥३२॥

क्वचित् द्रुमवत् ऐहिक अर्थेषु गृहेषु रंस्यन् यथा वानरः सुतदार वत्सलः व्यवायक्षणः ॥३२॥

यथा	जैसे
सुतदार	पुत्र, स्त्रीसे
वत्सलः	स्नेह करता
व्यवायक्षणः	मैथुनमें समय बिताता

वानरः	बन्दरे हो (ऐसे)	**गृहेषु**	घरमें
क्वचित्	कभी	**रंस्यन्**	रमता रहता
द्रुमवत्	वृक्षकी भाँति		है ॥३२॥
ऐहिक अर्थेषु	इसी लोकका सुख देने वाले		

एवमध्वन्यवरुन्धानो मृत्युगजभयात्तमसि गिरिकन्दरप्राये ॥३३॥

एवं अध्वनि अवरुन्धानः मृत्युगज भयात् तमसि गिरिकन्दर प्राये ॥३३॥

एवं	इस प्रकार	**प्राये**	समान
अध्वनि	(संसार) मार्गमें	**तमसि**	अन्धकार (रोगसे
अवरुन्धानः	अटका (भटका) हुआ		ग्रस्त दशा)में
		मृत्युगज	मृत्युरूपी हाथीसे
गिरिकन्दर	पर्वतकी गुफाके	**भयात्**	डरता रहता ॥३३॥

क्वचिच्छीतवाताद्यनेकदैविकभौतिकात्मीयानां दुःखानां प्रतिनिवारणेऽकल्पो दुरन्तविषयविषण्ण आस्ते ॥३४॥

क्वचित् शीतवात आदि अनेक दैविक भौतिक आत्मीयानां दुःखानां प्रतिनिवारणे अकल्पः दुरन्तविषय विषण्ण आस्ते ॥३४॥

क्वचित्	कभी	**आत्मीयानां**	आध्यात्मिक
शीतवात	सर्दी-आँधी		(शोक-मोहादि)
आदि	आदि	**दुःखानां**	दुःखोंके
अनेक	अनेक	**प्रतिनिवारणे**	दूर करनेमें
दैविक	आधिदैविक	**अकल्पः**	असमर्थ होकर
	(ग्रहबाधादि)	**दुरन्तविषय**	दुष्पार चिन्तासे
भौतिक	आधिभौतिक	**विषण्ण आस्ते**	उदास हो जाता
	(रोगादि)		है ॥३४॥

क्वचिन्मिथो व्यवहरन् यत्किञ्चिद्धनमुपयाति वित्तशाठ्येन ॥३५॥

क्वचित् मिथः व्यवहरन् यत् किञ्चित् धनं उपयाति वित्त-शाठ्येन ॥३५॥

क्वचित्	कभी	**धनं उपयाति**	धन मिलता है (वह भी)
मिथः	परस्पर	**वित्त शाठ्येन**	कञ्जूसीसे ॥३५॥
व्यवहरन्	व्यवहार करनेपर		
यत् किञ्चित्	जो थोड़ा		

क्वचित्क्षीणधनः शय्यासनाशनाद्युपभोगविहीनो यावदप्रति-लब्धमनोरथोपगतादानेऽवसितमतिस्ततस्ततोऽवमानादीनि जना-दभिलभते ॥३६॥

क्वचित् क्षीणधनः शय्या आसन अशन आदि उपभोग विहीनः यावत् अप्रतिलब्ध मनोरथः उपगत आदाने अवसित मतिः ततः ततः अव-मान आदीनि जनात् अभिलभते ॥३६॥

क्वचित्	कभी	**आदाने उपगत**	(अनधिकार) लेने (चुराने आदि)में
क्षीणधनः	धन नष्ट होनेपर	**अवसित मतिः**	बुद्धि लगनेपर
शय्या आसन	सोने, बैठने,	**ततः ततः**	जहाँ-तहाँ
अशन	भोजन	**जनात्**	लोगोंसे
आदि उपभोग	आदि उपभोग सामग्रीसे	**अवमान**	अपमान
विहीनः	रहित हो जाता है।	**आदीनि**	अपमान आदि
यावत्	जब-तक	**अभिलभते**	सब कहीं पाता है ॥३६॥
मनोरथः	मनोरथ (कामनाएँ)		
अप्रतिलब्ध	मिलती (पूरी होती) नहीं		

एवं वित्तव्यतिषङ्गविवृद्धवैरानुबन्धोऽपि पूर्ववासनया मिथ उद्वहत्यथापवहति ॥३७॥

एवं वित्त व्यतिषङ्गः विवृद्ध वैर अनुबन्धः अपि पूर्व वासनया मिथ उद्वहति अथ अपवहति ॥३७॥

एवं	इस प्रकार	**पूर्व वासनया**	पहिलेकी वासनासे
वित्त व्यतिषङ्ग	धनकी आसक्तिसे	**मिथ उद्वहति**	परस्पर विवाह करता है
विवृद्ध	बढ़ी हुई		
वैर अनुबन्धः	दृढ़ शत्रुता	**अथ अपवहति**	अथवा छोड़ता हैं ॥३७॥
अपि	होनेपर भी		

एतस्मिन् संसाराध्वनि नानाक्लेशोपसर्गबाधित आपन्नविपन्नो यत्र यस्तमु ह वावेतरस्तत्र विसृज्य जातं जातमुपादाय शोचन्मुह्यन् बिभ्यद्विवदन् क्रन्दन् संहृष्यन् गायन्नह्यमानः साधुर्वर्जितो नैवावर्ततेऽद्यापि यत आरब्ध एष नरलोकसार्थो यमध्वनः पारमुपदिशन्ति ॥३८॥

एतस्मिन् संसार अध्वनि नानाक्लेश उपसर्ग बाधित आपन्नविपन्नः यत्र यः तं उ ह वाव इतरः तत्र विसृज्य जातं जातं उपादाय शोचन् मुह्यन् बिभ्यत् विवदन् क्रन्दन् संहृष्यन् गायन् नह्यमानः साधु वर्जितः न एव आवर्तते अद्य अपि यत आरब्ध एष नरलोक सार्थः यं अध्वनः पारं उपदिशन्ति ॥३८॥

एतस्मिन्	इस	**यत्र यः**	जो जहाँ है
संसार अध्वनि	संसार-मार्गमें	**तं उ ह वाव**	उसे निश्चय ही
नानाक्लेश	अनेक प्रकारके क्लेशों,	**इतरः तत्र**	दूसरा वहीं
		विसृज्य	छोड़कर
उपसर्ग बाधित	बाधाओंसे पीड़ित,	**जातं जातं**	(नये) जन्मे हुओंको
आपन्नविपन्नः	आपत्तिग्रस्त तथा मृत (लोगों)को	**उपादाय**	साथ लेकर

शोचन् मुह्यन्	(कभी) शोक करते, मूर्छित होते
बिभ्यत्	डरते,
विवदन्	झगड़ते,
क्रन्दन्	रोते,
संहृष्यन्	हर्ष मनाते,
गायन्	गाते,
नह्यमानः	बन्धनमें पड़ता
साधु वर्जितः	सत्पुरुषोंसे त्यक्त
यत आरब्ध	जहाँसे प्रारम्भ करके
एष	यह
नरलोक सार्थः	मनुष्यरूपी व्यापारी
यं अध्वनः पारं	जिसे मार्गका पार
उपदिशन्ति	कहा जाता है (उस ओर)
अद्य अपि	आज भी
न आवर्तते	नहीं लौटता है ॥३८॥

यदिदं योगानुशासनं न वा एतदवरुन्धते यन्न्यस्तदण्डा मुनय उपशमशीला उपरतात्मानः समवगच्छन्ति ॥३९॥

यत् इदं योग अनुशासनं न वा एतत् अवरुन्धते यत् न्यस्त दण्डा मुनयः उपशमशीलाः उपरत आत्मानः सम अवगच्छन्ति ॥३९॥

यत् इदं	क्योंकि यह जो
योग अनुशासनं	योग-शास्त्र है (वह भी)
एतत्	इस (परमात्मा)को
न वा	नहीं ही
अवरुन्धते	अवरुद्धकर (पकड़) पाता।
यत्	जिस तक
न्यस्त	परम अहिंसक
दण्डा	(दण्डको त्याग देने वाले)
उपशमशीलाः	निवृत्ति परायण
उपरत	शान्त
आत्मानः	चित्त
मुनयः	मुनिगण
सम	भली प्रकार
अवगच्छन्ति	पहुँचते हैं ॥३९॥

यदपि दिगिभजयिनो यज्विनो ये वै राजर्षयः किं तु परं मृधे शयीरन्नस्यामेव ममेयमिति कृतवैरानुबन्धायां विसृज्य स्वयमुपसंहृताः ॥४०॥

यदपि दिक् अभिजयिनः यज्विनः ये वै राजर्षयः किं तु परं मृधे शयीरन् न अस्यां एव मम इयं इति कृत वैर अनुबन्धायां विसृज्य स्वयं उपसंहृताः ॥४०॥

यदपि	यद्यपि
ये वै	निश्चय जो
राजर्षयः	राजर्षिगण
दिक् अभि-	
जयिनः	दिग्विजयी हुए
यज्विनः	(बड़े-बड़े) यज्ञ करने वाले हुए
किं तु	किन्तु
मृधे शयीरन्	फिर युद्धमें सो गये (मारे गये)
न परं	परमतत्त्व नहीं (पा सके)
अस्यां एव	इस (पृथ्वी)में ही
इयं मम	यह मेरी है
इति	इस भावनासे
कृत वैर	दृढ़ शत्रुता
अनुबन्धायां	करके
विसृज्य	(इस पृथ्वीको) छोड़कर
स्वयं	स्वयं
उपसंहृताः	समाप्त हो गये ॥४०॥

कर्मवल्लीमवलम्ब्य तत आपदः कथञ्चिन्नरकाद्विमुक्तः पुनरप्येवं संसाराध्वनि वर्त्तमानो नरलोकसार्थमुपयाति एवमुपरि गतोऽपि ॥४१॥

कर्म वल्लीं अवलम्ब्य तत आपदः कथञ्चित् नरकात् विमुक्तः पुनः अपि एवं संसार अध्वनि वर्तमानः नरलोक सार्थं उपयाति एवं उपरि गतः अपि ॥४१॥

कर्मवल्लीं	(पुण्य) कर्मरूप लताका
अवलम्ब्य	सहारा लेकर
तत आपदः	वहाँ आपत्तियोंसे
कथञ्चित्	किसी प्रकार
नरकात्	नरकसे
विमुक्तः	छूटनेपर
पुनः अपि	फिरसे भी
एवं	इसी प्रकार
संसार अध्वनि	संसार-मार्गमें
वर्तमानः	लगे हुए

नरलोक सार्थं	मनुष्य-समाज रूपी व्यापारी लोगोंके	**उपरि गतः**	ऊपर (स्वर्गादिमें) जानेपर
उपयाति	साथ जाता है,	**अपि**	भी (यही दशा होती है।) ॥४१॥
एवं	इसी प्रकार		

तस्येदमुपगायन्ति—

तस्य इदं उपगायन्ति—

तस्य	उन (भरतके सम्बन्धमें)	**इदं**	यह (लोग)
		उपगायन्ति	कहते हैं—

आर्षभस्येह राजर्षेर्मनसापि महात्मनः ।
नानुवर्त्मार्हति नृपो मक्षिकेव गरुत्मतः ॥४२॥

आर्षभस्य इह राजर्षेः मनसा अपि महात्मनः न अनुवर्त्म कर्हति नृपः मक्षिका इव गरुत्मतः ॥४२॥

मक्षिका	(कोई) मक्खी	**महात्मनः**	महात्मा
गरुत्मतः	(जैसे) गरुड़की (बराबरी नहीं कर सकती)	**आर्षभस्य**	ऋषभ-नन्दन (भरत)का
		नृपः	(कोई) राजा
इव	इसी प्रकार	**मनसा अपि**	मनसे भी
इह	इस संसारमें	**अनुवर्त्म**	अनुकरण
राजर्षेः	राजर्षि	**न अर्हति**	नहीं कर सकता॥४२

यो दुस्त्यजान्दारसुतान् सुहृद्राज्यं हृदिस्पृशः ।
जहौ युवैव मलवदुत्तमश्लोकलालसः॥४३॥

यः दुस्त्यजान् दार सुतान् सुहृत् राज्यं हृदिस्पृशः जहौ युवा एव मलवत् उत्तमश्लोक लालसः ॥४३॥

यः	जिन्होंने	दार सुतान्	स्त्री, पुत्रोंको,
उत्तमश्लोक	पुण्य कीर्ति (श्रीहरिको)	हृदिस्पृशः	हृदयस्पर्शी
		सुहृत्	मित्रों (तथा)
लालसः	(पानेकी) लालसासे	राज्यं	राज्यको
युवा एव	युवावस्थामें ही	मलवत्	विष्ठाके समान
दुस्त्यजान्	दुस्त्यज	जहौ	त्याग दिया ॥४३॥

यो दुस्त्यजान् क्षितिसुतस्वजनार्थदारान्
प्रार्थ्यां श्रियं सुरवरैः सदयावलोकाम् ।
नेच्छन्नृपस्तदुचितं महतां मधुद्विट्-
सेवानुरक्तमनसामभवोऽपि फल्गुः ॥४४॥

यः दुस्त्यजान् क्षिति सुत स्वजन अर्थ दारान् प्रार्थ्यां श्रियं सुरवरैः सदय अवलोकां न इच्छन् नृपः तत् उचितं महतां मधुद्विट् सेवा अनुरक्त मनसां अभवः अपि फल्गुः ॥४४॥

दुस्त्यजान्	दुस्त्यज	यः नृपः	जिन राजाने
क्षिति	पृथ्वी	न इच्छन्	इच्छा नहीं की
सुत स्वजन	पुत्र, स्वजन,	तत्	वह (उनके लिए)
अर्थ दारान्	धन, स्त्रियोंको,	उचितं	उचित ही था (क्योंकि)
सुरवरैः	बड़े-बड़े देवताओंद्वारा		
सदय अवलोकां	दया पूर्वक दृष्टि-पात की	मधुद्विट्	श्रीमधुसूदनकी
		सेवा अनुरक्त	सेवामें अनुरक्त
प्रार्थ्यां	जिनसे प्रार्थना की जाती है	मनसां	मनवालोंके लिए
		अभवः अपि	मोक्ष भी
श्रियं	(उन) लक्ष्मीकी	फल्गुः	तुच्छ है ॥४४॥

यज्ञाय धर्मपतये विधिनैपुणाय
योगाय सांख्यशिरसे प्रकृतीश्वराय ।
नारायणाय हरये नम इत्युदारं
हास्यन्मृगत्वमपि यः समुदाजहार ॥४५॥

यज्ञाय धर्मपतये विधिनैपुणाय योगाय सांख्यशिरसे प्रकृति ईश्वराय नारायणाय हरये नम इति उदारं हास्यन् मृगत्वं अपि यः समुद आजहार ॥४५॥

मृगत्वं	मृग शरीरको
हास्यन्	त्यागते समय
यः	जिन्होंने
यज्ञाय	यज्ञस्वरूप,
धर्मपतये	धर्मेश्वर,
विधिनैपुणाय	विधि निपुण,
योगाय	योग स्वरूप,
सांख्यशिरसे	सांख्य प्रतिपाद्य,
प्रकृति ईश्वराय	प्रकृतेश्वर,
नारायणाय	नारायण,
हरये नम	'हरये नमः'
इति	इस प्रकार
उदारं	उच्च स्वरसे
समुदं	आनन्द पूर्वक
आजहार	कहा था ॥४५॥

य इदं भागवतसभाजितावदातगुणकर्मणो राजर्षेर्भरतस्यानुचरितं स्वस्त्ययनमायुष्यं धन्यं यशस्यं स्वर्ग्यापवर्ग्यं वानुशृणोत्याख्यास्यत्यभिनन्दति च सर्वा एवाशिष आत्मन आशास्ते न काञ्चन परत इति ॥४६॥

य इदं भागवत सभाजित अवदात गुण कर्मणः राजर्षेः भरतस्य अनुचरितं स्वस्त्ययनं आयुष्यं धन्यं यशस्यं स्वर्ग्यं अपवर्ग्यं वा अनुशृणोति आख्यास्यति अभिनन्दति च सर्वा एव आशिष आत्मन आशास्ते न काञ्चन परत इति ॥४६॥

भागवत	भक्तों द्वारा
सभाजित	सम्मानित
अवदात	निर्मल
गुण कर्मणः	गुण-कर्म वाले
राजर्षेः भरतस्य	राजर्षि भरतका
अनुचरितं	यह (वर्णित)चरित
स्वस्त्ययनं	कल्याणकारी
आयुष्यं	आयु देनेवाला
धन्यं	धन देनेवाला,
यशस्यं	सुयशदायी,
स्वर्ग्यं अपवर्ग्यं	स्वर्ग तथा मोक्ष-देने वाला है।
य इदं	जो इसको
अनुशृणोति	बार-बार सुनता है
आख्यास्यति	(या) सुनाता है

वा	अथवा	**आशास्ते**	पूर्ण हो जाती हैं
अभिनन्दति च	इसका अभिनन्दन ही करता है	**काञ्चन**	किसी दूसरेसे
		न परत	नहीं (माँगना पड़ता
सर्वा एव	उसकी सभी	**इति**	यह ऐसा (प्रभाव-
आशिष	कामनायें		शाली) है ॥४६॥
आत्मन	स्वयं ही		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे भरतोपाख्याने पारोक्ष्यविवरणं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

शुक उवाच–

भरतस्यात्मजः सुमतिर्नामाभिहितो यमु ह वाव केचित्पाखण्डिन ऋषभपदवीमनुवर्तमानं चानार्या अवेदसमाम्नातां देवतां स्वमनीषया पापीयस्या कलौ कल्पयिष्यन्ति ॥१॥

भरतस्य आत्मजः सुमतिः नाम अभिहितः यं उ ह वाव केचित् पाखण्डिनः ऋषभ पदवीं अनुवर्तमानं च अनार्या अवेद समाम्नातां देवतां स्वमनीषया पापीयस्या कलौ कल्पयिष्यन्ति ॥१॥

भरतस्य	भरतजीका	**केचित्**	कुछ
आत्मजः	पुत्र	**पाखण्डिनः**	पाखण्डी
सुमतिः नाम	सुमति नामका था।	**अनार्या**	अनार्य
अभिहितः	(यह) पहिले कहा जा चुका है*	**अवेद**	अवैदिक मतके
		सम्माम्नात	नियमसे
यं उ ह वाव	जिसे निश्चित रूपसे ही	**पापीयस्यां**	पाप-परायण
		स्वमनीषया	अपनी बुद्धिसे
ऋषभ पदवीं	ऋषभजीकी स्थितिका	**कलौ**	कलियुगमें
		देवतां	देवता
अनुवर्तमानं च	अनुसरण करनेके कारण	**कल्पयिष्यन्ति**	कल्पित कर लेंगे ॥१॥

तस्माद् वृद्धसेनायां देवताजिन्नाम पुत्रोऽभवत् ॥२॥

तस्मात् वृद्धसेनायां देवताजित् नाम पुत्रः अभवत् ॥२॥

---

*५ - ७ - ३

तस्मात्	उससे	देवताजित्	देवताजित्
वृद्धसेनायां	(उसकी पत्नी) वृद्ध सेनामें	नाम	नामक
		पुत्रः अभवत्	पुत्र हुआ ॥२॥

अथासुर्यां तत्तनयो देवद्युम्नस्ततो धेनुमत्यां सुतः परमेष्ठी तस्य सुवर्चलायां प्रतीह उपजातः ॥३॥

अथ असुर्यां तत् तनयः देवद्युम्नः ततः धेनुमत्यां सुतः परमेष्ठी तस्य सुवर्चलायां प्रतीह उपजातः ॥३॥

अथ असुर्यां	फिर असुर्यासे	सुतः परमेष्ठी	परमेष्ठी नामक
तत् तनयः	उस (देवताजित्का) पुत्र		पुत्र हुआ।
		तस्य	उसके
देवद्युम्नः	देवद्युम्न हुआ।	सुवर्चलायां	सुवर्चलासे
ततः	उसके	प्रतीह	प्रतीह
धेनुमत्यां	धेनुमतीसे	उपजातः	उत्पन्न हुआ ॥३॥

य आत्मविद्यामाख्याय स्वयं संशुद्धो महापुरुषमनुसस्मार ॥४॥

यः आत्मविद्यां आख्याय स्वयं संशुद्धः महापुरुषं अनुसस्मार ॥४॥

यः	जिसने	महापुरुषं	भगवान् पुरुषोत्तमका
आत्मविद्यां	आत्मविद्याका		
आख्याय	उपदेश करके	अनुसस्मार	बराबर स्मरण किया ॥४॥
स्वयं संशुद्धः	स्वयं अत्यन्त शुद्ध (चित्त) होकर		

प्रतीहात्सुवर्चलायां प्रतिहर्त्रादयस्त्रय आसन्निज्याकोविदाः सूनवः प्रतिहर्तुः स्तुत्यामजभूमानावजनिषाताम् ॥५॥

प्रतीहात् सुवर्चलायां प्रतिहर्त्रा आदयः त्रय आसन् इज्याकोविदाः सूनवः प्रतिहर्तुः स्तुत्यां अजभूमान अवजनिषाताम् ॥५॥

प्रतीहात्	प्रतीहसे	**प्रतिहर्तुः**	प्रतिहर्तासे
सुवर्चलायां	सुवर्चलामें*	**स्तुत्यां**	स्तुति (नामक पत्नी)में
प्रतिहर्त्रा	प्रतिहर्ता		
आदयः	आदि	**अजभूमान**	अज और भूमा (दो पुत्र)
त्रयः	तीन	**अवजनिषातां**	उत्पन्न हुए ॥५॥
इज्याकोविदाः	यज्ञ करनेमें निपुण		
सूनवः	पुत्र हुए।		

भूम्न ऋषिकुल्यायामुद्गीथस्ततः प्रस्तावो देवकुल्यायां प्रस्तावान्नियुत्सायां हृदयज आसीद्विभुर्विभो रत्यां च पृथुषेणस्तस्मान्नक्त आकूत्यां जज्ञे नक्ताद् द्रुतिपुत्रो गयो राजर्षिप्रवर उदारश्रवा अजायत साक्षाद्भगवतो विष्णोर्जगद्रिरक्षिषया गृहीतसत्त्वस्य कलाऽऽत्मवत्त्वादिलक्षणेन महापुरुषतां प्राप्तः ॥६॥

भूम्न ऋषिकुल्यायां उद्गीथः ततः प्रस्तावः देवकुल्यायां प्रस्तावात् नियुत्सायां हृदयज आसीत् विभुः विभोः रत्यां च पृथुषेणः तस्मात् नक्त आकूत्यां जज्ञे नक्तात् द्रुतिपुत्रः गयः राजर्षिप्रवर उदारश्रवा अजायत साक्षात् भगवतः विष्णोः जगत् रिरक्षिषया गृहीत सत्त्वस्य कला आत्मवत् तु आदि लक्षणेन महापुरुषतां प्राप्तः ॥६॥

भूम्नः	भूमाके	**नियुत्सायां**	नियुत्सासे
ऋषिकुल्यायां	ऋषिकुल्यासे	**विभुः हृदयज**	विभु पुत्र
उद्गीथः	उद्गीथ	**आसीत्**	हुए
ततः	उनके	**विभोः रत्यां च**	विभुके रतिसे ही
देवकुल्यायां	देवकुल्यासे	**पृथुषेणः**	पृथुषेण
प्रस्तावः	प्रस्ताव	**तस्मात्**	उनसे
प्रस्तावात्	प्रस्तावके	**आकूत्यां**	आकूतिमें

---

*प्रतीहकी माताका नाम भी इसी अध्यायमें (३) सुवर्चला था, यह कहा गया है।

नक्त जज्ञे	नक्त उत्पन्न हुए।
नक्तात्	नक्तसे
द्रुतिपुत्रः	द्रुतिके पुत्र
राजर्षिप्रवर	राजर्षि श्रेष्ठ
उदरश्रवा	उदार-कीर्ति
गयः अजायत	गय उत्पन्न हुए।
तु साक्षात्	(ये) तो साक्षात्
भगवतः	भगवान्
विष्णोः	विष्णुकी
जगत्	जगतकी
रिरक्षिषया	रक्षाके लिए
गृहीत सत्त्वस्य	सत्वगुण स्वीकार करके
कला	कला (अवतार)थे।
आत्मवत्	संयम
आदि	आदि
लक्षणेन	लक्षणोंसे
महापुरुषतां	महापुरुषताको
प्राप्तः	प्राप्त हुए ॥६॥

स वै स्वधर्मेण प्रजापालनपोषणप्रीणनोपलालनानुशासनलक्षणेनेज्यादिना च भगवति महापुरुषे परावरे ब्रह्मणि सर्वात्मनार्पितपरमार्थलक्षणे न ब्रह्मवित्चरणानुसेवयाऽऽपादितभगवद्भक्तियोगेन चाभीक्ष्णशः परिभावितातिशुद्धमतिरुपरतानात्म्य आत्मनि स्वयमुपलभ्यमानब्रह्मात्मानुभवोऽपि निरभिमान एवावनिमजूगुपत् ॥७॥

स वै स्वधर्मेण प्रजापालन पोषण प्रीणन उपलालन अनुशासन लक्षणेन इज्यादिना च भगवति महापुरुषे पर अवरे ब्रह्मणि सर्वात्मना अर्पित परमार्थ लक्षणे न ब्रह्मवित् चरण अनुसेवया आपादित भगवत् भक्तियोगेन च अभीक्ष्णशः परिभावित अतिशुद्ध मतिः उपरत अनात्म्य आत्मनि स्वयं उपलभ्यमान ब्रह्म आत्म अनुभवः अपि निरभिमानः एव अवनिं अजूगुपत् ॥७॥

स वै	उन्होंने तो
प्रजापालन	प्रजाके पालन
पोषण प्रीणन	पोषण, प्रसन्न करने
उपलालन	स्नेह करने
अनुशासन	मर्यादामें रखने
लक्षणेन	स्वरूप
स्वधर्मेण	अपने धर्मपालन
च इज्यादिना	तथा यज्ञादि द्वारा

भगवति	भगवान्
महापुरुषे	परमपुरुष
पर अवरे	कारण कार्य स्वरूप
ब्रह्मणि	ब्रह्ममें
सर्वात्मना	पूरे हृदयसे
अर्पित	अर्पित होकर
परमार्थ	परमार्थ
लक्षणे न	रूप हो गये
ब्रह्मवित्	ब्रह्मवेत्ता (महापुरुष)की
चरण	बराबर चरण-
अनुसेवया	सेवासे
आपादित	प्राप्त हुए
भगवत्	
भक्तियोगेन	भक्तियोग द्वारा
च अभीक्ष्णशः	तथा निरन्तर
परिभावित	(भगवद्) भावनासे
अतिशुद्ध मतिः	अत्यन्त शुद्ध बुद्धि,
उपरत	उपरत (तटस्थ) होकर
अनात्म्य	अनात्म (देहादि) वस्तुओंसे
आत्मनि	अपने भीतर ही
स्वयं	स्वतः
उपलभ्यमान	प्राप्त होते
ब्रह्म आत्म	अपने आत्माके ब्रह्म-
अनुभवः	रूप होनेका अनुभव
अपि	होनेपर भी
निरभिमानः एव	अभिमान रहित होकर ही
अर्वनि अजूगुपत	पृथ्वीका पालन करते रहे ॥७॥

तस्येमां गाथां पाण्डवेय पुराविद् उपगायन्ति ॥८॥

तस्य इमां गाथां पाण्डवेय पुराविद् उपगायन्ति ॥८॥

पाण्डवेय	परीक्षित्
तस्य	उन (गय)के विषयमें
पुराविद्	प्राचीन इतिहासज्ञ
इमां गाथां	इस गाथा (महिमा)का
उपगायन्ति	वर्णन करते हैं ॥८॥

गयं नृपः कः प्रतियाति कर्मभि-
र्यज्वाभिमानी बहुविद्धर्मगोप्ता ।
समागतश्रीः सदसस्पतिः सतां
सत्सेवकोऽन्यो भगवत्कलामृते ॥९॥

गयं नृपः कः प्रतियाति कर्मभिः इज्या अभिमानी बहुवित् धर्मगोप्ता समागतः श्रीः सदसस्पतिः सतां सत् सेवकः अन्यः भगवत् कलां ऋते ॥९॥

कः नृपः	कौन राजा	**सतां**	सज्जनोंके (समाजके)
कर्मभिः	(अपने) कर्मोंसे	**सदसस्पतिः**	शिरोमणि,
गयं प्रतियाति	राजा गयकी समता कर सकता है,	**सत् सेवकः**	सत्पुरुषोंके सेवक
इज्या	(सविधि) यज्ञोंके	**भगवत् कलां**	भगवान्‌की कलाको
अभिमानी	कर्ता,	**ऋते**	छोड़कर (दूसरा कौन हो सकता है।) ॥९॥
बहुवित्	बहुज्ञ,		
धर्मगोप्ता	धर्मरक्षक		
समागतः श्रीः	भलीप्रकार आयी लक्ष्मीसे सम्पन्न,		

यमभ्यषिञ्चन् परया मुदा सतीः
सत्याशिषो दक्षकन्याः सरिद्भिः ।
यस्य प्रजानां दुदुहे धराऽऽशिषो
निराशिषो गुणवत्सस्नुतोधाः ॥१०॥

यं अभ्यषिञ्चन् परया मुदा सतीः सत्य आशिषः दक्षकन्याः सरिद्भिः यस्य प्रजानां दुदुहे धरा आशिषः निराशिषः गुणवत् सस्नुत ओधाः ॥१०॥

यं	जिनका	**यस्य**	जिन
सतीः	साध्वी	**निराशिषः**	जिन निष्कामकी
सत्य आशिषः	सच्चा आशीर्वाद देनेवाली	**गुणवत्**	गुणवत्तासे
दक्षकन्याः	दक्षकी कन्याओं (श्रद्धा, मैत्री आदि)ने	**सस्नुत ओधाः**	झरते थनों वाली
मुदा	प्रसन्नतापूर्वक	**धरा**	पृथ्वीने
सरिद्भिः	नदियोंके द्वार	**प्रजानां**	प्रजाके लिए
अभ्यषिञ्चन्	अभिषेक किया था	**आशिषः**	(सब) कामनाएँ
		दुदुहे	दुह दिया (प्रदान किया) ॥१०॥

छन्दांस्यकामस्य च यस्य कामान्
दुदूहुराजह्रुरथो बलिं नृपाः ।
प्रत्यञ्चिता युधि धर्मेण विप्रा
यदाशिषां षष्ठमंशं परेत्य ॥११॥

छन्दांसि अकामस्य च यस्य कामान् दुदूहुः अथ बलिं नृपाः प्रत्यञ्चिता युधि धर्मेण विप्राः यत् आशिषां षष्ठं अंशं परेत्य ॥११॥

यस्य	जिन	**विप्राः**	ब्राह्मणोंने
अकामस्य च	कामनाहीनको	**यत् धर्मेण**	क्योंकि धर्मपूर्वक
छन्दांसि	वेदों (वैदिक कर्मों)ने	**आशिषां**	(दक्षिणादि) अभीष्ट पाये
कामान् दुदुहुः	सब भोग दुह दिये,	**परेत्य**	परलोकमें
युधि	युद्धमें (बाणोंसे)	**षष्ठं अंशं**	(अपने धर्म तपादिका) छठवां भाग दिया ॥११॥*
प्रत्यञ्चिता	सत्कृत होकर		
अथ नृपाः	फिर राजाओंने		
बलिं	उपहार दिये		

यस्याध्वरे भगवानध्वरात्मा
मघोनि माद्यत्युरुसोमपीथे ।
श्रद्धाविशुद्धाचलभक्तियोग-
समर्पितेज्याफलमाजहार ॥१२॥

यस्य अध्वरे भगवान् अध्वरात्मा मघोनि माद्यति उरु सोमपीथे श्रद्धा विशुद्ध अचल भक्तियोग समर्पित इज्या फलं आजहार ॥१२॥

यस्य अध्वरे	जिनके यज्ञमें		करनेसे
उरु सोमपीथे	बहुत सोमपान	**मघोनि**	इन्द्र

---

*स्मृतियोंके अनुसार राजा (शासक)का भाग (कर) प्रजाके उत्पादनका छठवां भाग होता है ।

माद्यति	उन्मत्त हो गये थे (तथा)
अध्वरात्मा	यज्ञात्मा
भगवान्	भगवान्‌ने
विशुद्ध श्रद्धा	विशुद्ध श्रद्धा एवं
अचल	निश्चल
भक्तियोग	भक्तिसे
समर्पित	समर्पित
इज्या फलं	यज्ञके फलको
आजहार	(प्रकट होकर) ग्रहण किया ॥१२॥

यत्प्रीणनाद्बर्हिषि देवतिर्यङ्-
मनुष्यवीरुत्तृणमाविरिञ्चात् ।
प्रीयेत सद्यः स ह विश्वजीवः
प्रीतः स्वयं प्रीतिमगाद्गयस्य ॥१३॥

यत् प्रीणनात् बर्हिषि देव तिर्यङ् मनुष्य वीरुत् तृणम् आविरिञ्चात् प्रीयेत सद्यः स ह विश्वजीवः प्रीतः स्वयं प्रीतिं अगात् गयस्य ॥१३॥

बर्हिषि	यज्ञमें
यत् प्रीणनात्	जिनको तृप्त करनेपर
देव तिर्यक्	देवता, पशु-पक्षी आदि,
वीरुत् तृणम्	वृक्ष, घास (से लेकर)
आविरिञ्चात्	ब्रह्मापर्यन्त सब
सद्यः प्रीयेत	तत्काल तृप्त हो जाते हैं
स ह	निश्चय वही
प्रीतः	नित्य तृप्त
विश्वजीवः	भगवान् विश्वात्मा
स्वयं	स्वयं
गयस्य	गयके (यज्ञमें)
प्रीतिं अगात्	तृप्त हो गये थे ॥१३॥

गयाद्गयन्त्यां चित्ररथः सुगतिरवरोधन इति त्रयः पुत्रा बभूवुश्चित्ररथादूर्णायां सम्राडजनिष्ट ॥१४॥

गयात् गयन्त्यां चित्ररथः सुगतिः अवरोधनः इति त्रयः पुत्राः बभूवुः चित्ररथात् ऊर्णायां सम्राट् अजनिष्ट ॥१४॥

गयात् गयन्त्यां	राजा गयके गयन्तीसे	**बभूवुः**	हुए ।
चित्ररथः	चित्ररथ,	**चित्ररथात्**	चित्ररथसे
सुगतिः	सुगति	**ऊर्णायां**	ऊर्णामें
अवरोधनः	अवरोधन	**सम्राट्**	सम्राट् (नामका
इति त्रयः	इस प्रकार ये तीन	**अजनिष्ट**	पुत्र) उत्पन्न
पुत्राः	पुत्र		हुआ ॥१४॥

तत उत्कलायां मरीचिर्मरीचेर्बिन्दुमत्यां बिन्दुमानुदपद्यत तस्मात्सरघायां मधुर्नामाभवन्मधोः सुमनसि वीरव्रतस्ततो भोजायां मन्थुप्रमन्थू जज्ञाते मन्थोः सत्यायां भौवनस्ततो दूषणायां त्वष्टाजनिष्ट त्वष्टुर्विरोचनायां विरजो विरजस्य शतजित्प्रवरं पुत्रशतं कन्या च विषूच्यां किल जातम् ॥१५॥

ततः उत्कलायां मरीचिः मरीचेः बिन्दुमत्यां बिन्दुमान् उदपद्यत तस्मात् सरघायां मधुः नाम अभवत् मधोः सुमनसि वीरव्रतः ततः भोजायां मन्थुः प्रमन्थुः जज्ञाते मन्थोः सत्यायां भौवनः ततः दूषणायां त्वष्टा अजनिष्ट त्वष्टुः विरोचनायां विरजः विरजस्य शतजित् प्रवरं पुत्रशतं कन्या च विषूच्यां किल जातम् ॥१५॥

ततः	उससे	**मधोः सुमनसि**	मधुके सुमनासे
उत्कलायां	उत्कलामें	**वीरव्रतः**	वीरव्रत,
मरीचिः	मरीचि,	**ततः भोजायां**	उससे भोजामें
मरीचेः	मरीचिके	**मन्थुः प्रमन्थुः**	मन्थु और प्रमन्थु
बिन्दुमत्यां	बिन्दुमतीसे	**जज्ञाते**	उत्पन्न हुए ।
बिन्दुमान्	बिन्दुमान	**मन्थोः सत्यायां**	मन्थुके सत्यासे
उदपद्यत	उत्पन्न हुआ ।	**भौवनः**	भौवन,
तस्मात्	उससे	**ततः दूषणायां**	उससे दूषणामें
सरघायां	सरघामें	**त्वष्टा**	त्वष्टा
मधुः नाम	मधु नामका	**अजनिष्ट**	उत्पन्न हुआ ।
अभवत्	(पुत्र) हुआ ।	**त्वष्टुः**	त्वष्टाके

विरोचनायां	विरोचनासे	**शतजित् प्रवरं**	शतजित प्रधान
विरजः	विरज,	**पुत्रशतं**	सौ पुत्र
विरजस्य	विरजके	**च कन्या**	और एक कन्या
विषूच्यां किल	विषूचीमें तो	**जातं**	उत्पन्न हुई ॥१५॥

तत्रायं श्लोकः—

तत्र अयं श्लोकः—

तत्र अयं	इस सम्बन्धों में यह	**श्लोकः**	श्लोक है—

प्रैयव्रतं वंशमिमं विरजश्चरमोद्भवः ।
अकरोदत्यलं कीर्त्या विष्णुः सुरगणं यथा ॥१६॥

प्रैयव्रतं वंशं इमं विरजः चरम उद्भवः अकरोत् अति अलं कीर्त्या विष्णुः सुरगणं यथा ॥१६॥

यथा	जैसे	**चरम उद्भवः**	सबसे अन्तमें* उत्पन्न होकर
विष्णुः	भगवान् वामनने	**विरजः**	विरजने
सुरगणं	देवताओंमें (अन्तमें उत्पन्न होकर वैसेही	**कीर्त्या**	(अपनी) कीर्तिसे
इमं	इस	**अति अलं**	अत्यन्त अलंकृत
प्रैयव्रतं	प्रियव्रतके	**अकरोत्**	किया ॥१६॥
वंशं	वंशको		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे प्रियव्रतवंशानुकीर्तनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

---

*वंशावलीमें केवल राज्य पाने वाले पुत्रके वंशकी चर्चाका क्रम है। अतः 'चरमोद्भवः' का अर्थ है कि प्रियव्रतके वंशका अन्तिम राजा विरज हुआ। अन्यथा यहीं उसके सौ पुत्र होना तो कहा ही गया है।

अथ षोडशोऽध्यायः

राजोवाच-

उक्तस्त्वया भूमण्डलायामविशेषो यावदादित्यस्तपति यत्र चासौ ज्योतिषां गणैश्चन्द्रमा वा सह दृश्यते ॥१॥

उक्तः त्वया भूमण्डल आयाम विशेषः यावत् आदित्यः तपति यत्र च असौ ज्योतिषां गणैः चन्द्रमा वा सह दृश्यते ॥१॥*

त्वया	आपने	**सह चन्द्रमा**	साथ चन्द्रमा
यावत्	जहाँ तक	**दृश्यते**	दीखता है
आदित्यः तपति	सूर्य तपता है	**भूमण्डल**	भू-मण्डलका
वा	अथवा	**आयाम**	√ विस्तार
यत्र च असौ	जहाँ तो यह	**विशेषः**	विशेष
ज्योतिषां गणैः	तारागणोंके	**उक्तः**	बतलाया ॥१॥

तत्रापि प्रियव्रतरथचरणपरिखातैः सप्तभिः सप्त सिन्धव उपक्लृप्ता यत एतस्याः सप्तद्वीपविशेषविकल्पस्त्वया भगवन् खलु सूचित एतदेवाखिलमहं मानतो लक्षणतश्च सर्वं विजिज्ञासामि ॥२॥

तत्र अपि प्रियव्रत रथचरण परिखातैः सप्तभिः सप्तसिन्धवः उपक्लृप्ताः यत एतस्याः सप्तद्वीप विशेष विकल्पः त्वया भगवन् खलु सूचितः एतत् एव अखिलं अहं मानतः लक्षणतः च सर्वं विजिज्ञासामि ॥२॥

---

*यहाँसे लेकर स्कन्धके अन्त तक भूगोल खगोलका जो वर्णन है, वह स्थूल-सूक्ष्म जगतका मिला-जुला वर्णन है। यह वर्णन केवल हमारे स्थूल जगतका नहीं है। अतः इसको ठीक-ठीक समझाना सम्भव नहीं है। केवल शब्दार्थ मात्र दिया जा रहा है। यही भू-मण्डलका विस्तार समस्त तारागणों तक कहा गया—यह विशेष ध्यान देने योग्य है।

तत्र अपि	वहाँ (भू-मण्डल विस्तारमें) भी•	**विकल्पः**	रचना
प्रियव्रत	प्रियव्रतके	**भगवन् त्वया**	भगवन् आपने
रथचरण	रथके पहियेसे	**खलु सूचितः**	जो बतलायी
सप्तभिः	सात बार घूमनेसे	**एतत् एव**	इसी
परिखातैः	खाईं के रूपमें	**अखिलं**	सम्पूर्णको ही
सप्तसिन्धवः	सात समुद्र	**अहं**	मैं
उपक्लृप्ताः	बन गये	**मानतः**	परिमाण तथा
यत एतस्याः	जिससे इस (पृथ्वी)के	**लक्षणतः**	लक्षणों सहित
सप्तद्वीप	सात द्वीप	**सर्वं**	सब (पूरा विवरण)
विशेष	विशेषकी	**विजिज्ञासामि**	जानना चाहता हूँ ॥२॥

भगवतो गुणमये स्थूलरूप आवेशितं मनो ह्यगुणेऽपि सूक्ष्मतम आत्मज्योतिषि परे ब्रह्मणि भगवति वासुदेवाख्ये क्षममावेशितुं तदु हैतद् गुरोऽर्हस्यनुवर्णयितुमिति ॥३॥

भगवतः गुणमये स्थूलरूप आवेशितं मनः हि अगुणे अपि सूक्ष्मतम आत्म ज्योतिषि परेब्रह्मणि भगवति वासुदेव आख्ये क्षमं आवेशितुं तत् उ ह एतत् गुरोः अर्हसि अनुवर्णयितुं इति ॥३॥

हि भगवतः	क्योंकि भगवान्के	**आवेशितं**	प्रविष्ट कराया
गुणमये	गुणमय (त्रिगुणात्मक)	**मनः**	मन
स्थूलरूपे	स्थूल (विराट्) रूपमें	**अगुणे**	निर्गुण
		सूक्ष्मतम	अत्यन्त सूक्ष्म

•स्पष्ट है कि ये सात समुद्र और सात द्वीप विशेष वर्तमान ज्ञात पृथ्वीमें ही नहीं हैं। वर्तमान ज्ञात पृथ्वी तो केवल कर्म-क्षेत्र भारतवर्ष ही है। जम्बू द्वीपका शेषभाग और अन्य द्वीप तथा क्षार समुद्रसे भिन्न समुद्रादि सूक्ष्म जगतमें ही होने चाहिए।

आत्म	स्वयं	आवेशितं	प्रविष्ट करानेमें
ज्योतिषि	प्रकाश	क्षमं	सक्षम हो जाता है*
भगवति	भगवान्	तत् उ ह	अतः निश्चय
वासुदेव आख्ये	वासुदेव कहलाने वाले	एतत्	इसका
		गुरोः	गुरुदेव ! (आपको)
परेब्रह्मणि	परमब्रह्ममें	अनुवर्णयितुं	वर्णन
अपि	भी	अर्हसि	करना चाहिए ॥३॥

शुक उवाच-•

न वै महाराज भगवतो मायागुणविभूतेः काष्ठां मनसा वचसा वाधिगन्तुमलं विबुधायुषापि पुरुषस्तस्मात्प्राधान्येनैव भूगोलकविशेषं नामरूपमानलक्षणतो व्याख्यास्यामः ॥४॥

न वै महाराज भगवतः माया गुण विभूतेः काष्ठां मनसा वचसा वा अधिगन्तुं अलं विबुध आयुष अपि पुरुषः तस्मात् प्राधान्येन एव भूगोलक विशेषं नाम रूप मान लक्षणतः व्याख्यास्यामः ॥४॥

महाराज	महाराज !	विभूतेः	वैभवकी
भगवतः	भगवान्‌की	काष्ठां	पराकाष्ठाका पार
माया गुण	मायाके गुणोंके	वचसा	वाणीसे

---

* यहाँ यह स्पष्ट है कि यह भूगोल-खगोलका वर्णन भूगोल-खगोलकी जानकारीके लिए नहीं पूछा गया है। भूगोल तथा खगोलमें परिवर्तन होते ही रहते हैं। ग्रह-नक्षत्रादि भी बनते-नष्ट होते रहते हैं। उनका स्थायी कोई रूप नहीं है। स्थूल जगत तो परिवर्तनशील है। यहाँ विराट् रूपका जो शाश्वत है—ऐसा वर्णन पूछा गया है, जिसमें मन लगने पर भगवान्‌के सूक्ष्म परंब्रह्म रूपमें मनको प्रविष्ट किया जा सके। अतः यहाँका सब वर्णन भावनापूर्वक ध्यानके उपयोगका ही है।

• अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'ऋषिरुवाच' है।

वा मनसा	अथवा मनसे	**तस्मात्**	इसलिए
पुरुषः	पुरुष	**प्राधान्येन एव**	प्रधानतासे ही
विबुध	देवताओंकी	**भूगोलक**	भूगोलकी
आयुष अपि	आयुसे भी	**विशेषं**	विशेषताओंको
अधिगन्तुं	पा जानेमें	**नाम रूप मान**	नाम, रूप, परिमाण
अलं	पूरा	**लक्षणतः**	(तथा) लक्षणद्वारा
न वै	नहीं ही है,	**व्याख्यास्यामः**	वर्णन करेंगे ॥४॥

यो वायं द्वीपः कुवलयकमलकोशाभ्यन्तरकोशो नियुतयोजन-विशालः समवर्तुलो यथा पुष्करपत्रम् ॥५॥

यः वा अयं द्वीपः कुवलय कमलकोश अभ्यन्तर कोशः नियुतयोजन विशालः समवर्तुलः यथा पुष्करपत्रम् ॥५॥

यः वा अयं	जो यह (हमारे रहनेका)	**कोशः**	कोशके समान
द्वीपः	द्वीप है,	**नियुतयोजन**	एक लाख योजन
कुवलय	भू-मण्डल रूप	**विशालः**	बड़ा
कमलकोश	कमलके भीतरी भागके	**यथा पुष्कर-**	जैसे कमल-
अभ्यन्तर	आन्तरिक (सबसे भीतरी)	**पत्रं**	पत्र हो
		समवर्तुलः	(वैसा) गोलाकार है ॥५॥

यस्मिन्नव वर्षाणि नवयोजनसहस्रायामान्यष्टभिर्मर्यादा-गिरिभिः सुविभक्तानि भवन्ति ॥६॥

यस्मिन् नव वर्षाणि नव योजनसहस्र आयामानि अष्टभिः मर्यादा गिरिभिः सुविभक्तानि भवन्ति ॥६॥

यस्मिन्	जिसमें	**योजनसहस्र**	सहस्र योजनके
नव वर्षाणि	नौ देश	**आयामानि**	विस्तार वाले
नव	नौ-नौ		

अष्टभिः	आठ	सुविभक्तानि	भलीप्रकार बढ़े हुए
मर्यादा	सीमा-विभाजक	भवन्ति	हैं ॥६॥
गिरिभिः	पर्वतों द्वारा		

एषां मध्ये इलावृतं नामाभ्यन्तरवर्षं यस्य नाभ्यामवस्थितः सर्वतः सौवर्णः कुलगिरिराजो मेरुर्द्वीपायामसमुन्नाहः कर्णिकाभूतः कुवलयकमलस्य मूर्धनि द्वात्रिंशत् सहस्रयोजनविततो मूले षोडशसहस्रं तावतान्तर्भूम्यां प्रविष्टः ॥७॥

एषां मध्ये इलावृतंनाम अभ्यन्तरवर्षं यस्य नाभ्यां अवस्थितः सर्वतः सौवर्णः कुलगिरिराजः मेरुः द्वीपायां असम उन्नाहः कर्णिकाभूतः कुवलय कमलस्य मूर्धनि द्वात्रिंशत् सहस्र योजन विततः मूले षोडश सहस्रं तावता अन्तः भूम्यां प्रविष्टः ॥७॥

एषां मध्ये	इन (देशोंके) बीचमें	कमलस्य	कमलकी
इलावृतंनाम	इलावृत नामका	कर्णिकाभूतः	कर्णिकाके समान है।
अभ्यन्तरवर्षं	सबसे भीतरी देश है	मूर्धनि	शिखर भागमें
यस्य नाभ्यां	जिसके मध्यमें	द्वात्रिंशत्	बत्तीस
सर्वतः सौवर्णः	सब ओरसे सोनेका	सहस्र योजन	हजार योजन
कुलगिरिराजः	कुल पर्वतोंका राजा	विततः	फैला हुआ है।
मेरुः	सुमेरु	मूले षोडश	जड़के पास सोलह
अवस्थितः	स्थित है।	सहस्रं	सहस्र (योजन) है।
द्वीपायां	द्वीपमें	तावता	इतना ही (सोलह सहस्र योजना)
असम उन्नाहः	विषम रूपसे ऊपर उठा है।	अन्तः भूम्यां	पृथ्वीके भीतर
कुवलय	भूमण्डल रूप	प्रविष्टः	घुसा हुआ है ॥७॥

उत्तरोत्तरेणेलावृतं नीलः श्वेतः शृङ्गवानिति त्रयो रम्यक-हिरण्मयकुरूणां वर्षाणां मर्यादागिरयः प्रागायता उभयतः क्षारो-

दावधयो द्विसहस्रपृथव एकैकशः पूर्वस्मात्पूर्वस्मादुत्तर उत्तरो दशांशाधिकांशेन दैर्घ्य एव ह्रसन्ति ॥८॥

उत्तर उत्तरेण इलावृतं नीलः श्वेतः शृङ्गवान् इति त्रयः रम्यक हिरण्मय कुरूणां वर्षाणां मर्यादा गिरयः प्रागायता उभयतः क्षारोद अवधयः द्विसहस्र पृथवः एक एकशः पूर्वस्मात् पूर्वस्मात् उत्तर उत्तरः दशांश अधिक अंशेन दैर्घ्य एव ह्रसन्ति ॥८॥

इलावृतं	इलावृतके	**क्षारोद**	खारे पानी(समुद्रके)
उत्तर उत्तरेण	उत्तरके उत्तरमें	**अवधयः**	तक फैले हैं
नीलः श्वेतः	नील, श्वेत,	**द्विसहस्र**	(प्रत्येक) दो सहस्र
शृङ्गवान्	शृंगवान्	**पृथवः**	(योजन) चौड़ा है।
इति त्रयः	इस प्रकार तीन	**एक एकशः**	एक-एक करके
रम्यक	रम्यक,	**पूर्वस्मात्**	पूर्व-
हिरण्मय	हिरण्मय,	**पूर्वस्मात्**	पूर्व वालों से
कुरूणां वर्षाणां	कुरु देशोंके	**उत्तर उत्तरः**	पिछले-पिछले
मर्यादा	सीमा निर्धारक	**दशांश अधिक**	दशांसे कुछ अधिक
गिरयः	पर्वत	**अंशेन**	अंशसे
प्रागायता	बतलाये जाते हैं।	**दैर्घ्यं एव**	लम्बाई में ही
उभयतः	(ये) दोनों ओर (पूर्वसे पश्चिम तक)	**ह्रसन्ति**	कम होते हैं ॥८॥

एवं दक्षिणेनेलावृतं निषधो हेमकूटो हिमालय इति प्रागायता यथा नीलादयोऽयुतयोजनोत्सेधा हरिवर्षकिम्पुरुषभारतानां यथा संख्यम् ॥९॥

एवं दक्षिणेन इलावृतं निषधः हेमकूटः हिमालयः इति प्रागायता यथा नीलादयः अयुत योजन उत्सेधा हरिवर्ष किम्पुरुष भारतानां यथा संख्यम् ॥९॥

एवं	इसी प्रकार	**दक्षिणेन**	दक्षिणमें
इलावृतं	इलावृतके	**निषधः**	निषध,

हेमकूटः	हेमकूट,	उत्सेधा	ऊँचे हैं।
हिमालयः	हिमालय	हरिवर्ष	हरिवर्ष
इति	इस प्रकार	किम्पुरुष	किम्पुरुष वर्ष
प्रागायता	बतलाये गये हैं।	भारतानां	भारतवर्षके
यथा	जैसे	यथा संख्यं	क्रमानुसार
नीलादयः	नील आदि पर्वत हैं		(सीमा पर्वत हैं)॥९॥
अयुत योजन	(ये भी) दस हजार योजन		

तथैवेलावृतमपरेण पूर्वेण च माल्यवद्गन्धमादनावानील निषधायतौ द्विसहस्रं पप्रथतुः केतुमालभद्राश्वयोः सीमानं विदधाते ॥१०॥

तथा एव इलावृतं अपरेण पूर्वेण च माल्यवत् गन्धमादनः आनील निषध आयतौ द्विसहस्रं पप्रथतुः केतुमाल भद्राश्वयोः सीमानं विदधाते ॥१०॥

तथा एव	इसी प्रकार	निषध	निषध पर्वत तक
इलावृतं	इलावृतके	आयतौ	फैले हुए
अपरेण	दूसरी (पश्चिम ओर	द्विसहस्रं	दो हजार योजन
		पप्रथतुः	चौड़ाई वाले
च पूर्वेण	तथा पूर्वमें	केतुमाल	केतुमाल वर्ष
माल्यवत्	माल्यवान तथा	भद्राश्वयोः	भद्राश्व वर्षकी
गन्धमादनः	गन्धमादन (पर्वत)	सीमानं	सीमायें
आनील-	नील और	विदधातेः	बनाते हैं ॥१०॥

मन्दरो मेरुमन्दरः सुपार्श्वः कुमुद इत्ययुतयोजनविस्तारोन्नाहा मेरोश्चतुर्दिशमवष्टम्भगिरय उपक्लृप्ताः ॥११॥

मन्दरः मेरुमन्दरः सुपार्श्वः कुमुदः इति अयुत योजन विस्तार उन्नाहा मेरोः चतुर्दिशं अवष्टम्भ गिरयः उपक्लृप्ताः ॥११॥

मन्दरः	मन्दर,	योजन विस्तार	योजन चौड़े
मेरुमन्दरः	मेरुमन्दर,	उन्नाहा	(इतने ही) ऊँचे
सुपार्श्वः	सुपार्श्व	मेरोः चतुर्दिशं	सुमेरुके चारों ओर
कुमुदः	कुमुद	अवष्टम्भ	उसे सम्हालने वाले
इति	इस नामके	गिरयः	पर्वत
अयुत	दस-दस हजार	उपक्लृप्ताः	बने हैं ॥११॥

चतुर्ष्वेतेषु चूतजम्बूकदम्बन्यग्रोधाश्चत्वारः पादपप्रवराः पर्वतकेतव इवाधिसहस्रयोजनोन्नाहास्तावद् विटपविततयः शतयोजनपरिणाहाः ॥१२॥

चतुःषु एव तेषु चूत जम्बू कदम्बन्यग्रोधाः चत्वारः पादपप्रवराः पर्वतकेतव इव अधिसहस्र योजन उन्नाहाः तावत् विटप विततयः शतयोजन परिणाहाः ॥१२॥

तेषु चतुःषु	उन चारों ही	अधिसहस्र	(ये) ग्यारह सौ
एव	(पर्वतों) पर	योजन	योजन
चूत जम्बू	आम, जामुन,	उन्नाहाः	ऊँचे हैं।
कदम्ब-	कदम्ब,	तावत् विटप	इनकी शाखाओंका
न्यग्रोधाः	बटके	विततयः	फैलाव भी इतना
चत्वारः	चार		ही है।
पादपप्रवराः	वृक्षश्रेष्ठ	शतयोजन	(ये) सौ योजन
पर्वतकेतव	पर्वतोंके झण्डोंके	परिणाहाः	परिधि वाले (मोटे)
इव	समान हैं		हैं ॥१२॥

ह्रदाश्चत्वारः पयोमध्विक्षुरसमृष्टजला यदुपस्पर्शिन उपदेवगणा योगैश्वर्याणि स्वाभाविकानि भरतर्षभ धारयन्ति ॥१३॥

ह्रदाः चत्वारः पयः मधु इक्षुरस मृष्टजलाः यत् उपस्पर्शिनः उपदेवगणाः योग ऐश्वर्याणि स्वाभाविकानि भरतर्षभ धारयन्ति ॥१३॥

भरतर्षभ	भरतवंशमें श्रेष्ठ (परीक्षित)	**उपस्पर्शिनः**	सेवन करने वाले
चत्वारः	(इन पर्वतोंपर) चार	**उपदेवगणाः**	उपदेवगण (गन्धर्व किन्नरादि)
ह्रदाः	सरोवर हैं,	**स्वाभाविकानि**	नैसर्गिक
पयः मधु	दूध, मधु,	**योग ऐश्वर्याणि**	योगकी सिद्धियाँ
ईक्षुरस	गन्नेके रस (तथा)	**धारयन्ति**	धारण करते हैं ॥१३॥
मृष्टजलाः	मीठे पानीके		
यत्	जिनका		

देवोद्यानानि च भवन्ति चत्वारि नन्दनं चैत्ररथं वैभ्राजकं सर्वतोभद्रमिति ॥१४॥

देव उद्यानानि च भवन्ति चत्वारि नन्दनं चैत्ररथं वैभ्राजकं सर्वतोभद्रं इति ॥१४॥

देव उद्यानानि	देवताओंके बगीचे	**चैत्ररथं**	चैत्ररथ
च चत्वारि	भी चार (इन पर)	**वैभ्राजकं**	वैभ्राजक.
भवन्ति	हैं	**सर्वतोभद्रं**	सर्वतोभद्र
नन्दनं	नन्दन*	**इति**	इस नामके ॥१४॥

येष्वमरपरिवृढाः सह सुरललनाललामयूथपतय उपदेवगणैरुपगीयमानमहिमानः किल विहरन्ति ॥१५॥

येषु अमरपरिवृढाः सह सुरललना ललाम यूथ पतयः उपदेवगणैः उपगीयमान महिमानः किल विहरन्ति ॥१५॥

येषु	जिनमें	**महिमानः**	(अपनी) महिमा
उपदेवगणैः	उपदेवता गण (गन्धर्वादि) द्वारा	**उपगीयमानः**	गाये जाते हुए

*स्पष्ट ही है कि यह वर्णन सूक्ष्म-जगतका है। क्योंकि नन्दन-कानन तो स्वर्गका प्रसिद्ध है।

अमरपरिवृढाः	प्रधान प्रधान देवता	**किल**	अहो,
सुरललना ललाम	सुन्दर देवियोंके	**विहरन्ति**	विहार करते
सह	साथ		हैं ॥१५॥

मन्दरोत्सङ्ग एकादशशतयोजनोत्तुङ्गदेवचूतशिरसो गिरिशिखरस्थूलानि फलान्यमृतकल्पानि पतन्ति ॥१६॥

मन्दर उत्सङ्ग एकादशशत योजन उत्तुङ्ग देव चूतशिरसः गिरिशिखर स्थूलानि फलानि अमृत कल्पानि पतन्ति ॥१६॥

मन्दर उत्सङ्ग	मन्दराचलकी गोदमें	**चूतशिरसः**	आम्र-वृक्षके ऊपरसे
		गिरिशिखर	पर्वत शिखरके समान
एकादशशत	ग्यारह सौ		
योजन	योजन	**स्थूलानि**	बड़े
उत्तुङ्ग	ऊँचे	**अमृत कल्पानि**	अमृतके समान
देव	देवताओंके	**फलानि पतन्ति**	फल गिरते हैं ॥१६॥

तेषां विशीर्यमाणानामतिमधुरसुरभिसुगन्धिबहुलारुणरसोदेनारुणोदा नाम नदी मन्दरगिरिशिखरान्निपतन्ती पूर्वेणेलावृतमुपप्लावयति ॥१७॥

तेषां विशीर्यमाणानां अतिमधुर सुरभि सुगन्धि बहुल अरुणरसोदेन अरुणोदा नाम नदी मन्दरगिरि शिखरात् निपतन्ती पूर्वेण इलावृतं उपप्लावयति ॥१७॥

तेषां	उन (आम फलों)के	**नाम नदी**	नामकी नदी
विशीर्य-		**मन्दरगिरि**	मन्दराचलके
माणानां	फटते रहनेसे	**शिखरात्**	शिखरसे
अतिमधुर	बहुत मधुर	**निपतन्ती**	गिरती हुई
सुरभि सुगन्धि	उत्तम सुगन्धिसे	**पूर्वेण इलावृतं**	इलावृतके पूर्वी
बहुल	भरे		भागको
अरुणरसोदेन	लालरस प्रवाहसे	**उपप्लावयति**	सींचती है ॥१७॥
अरुणोदा	अरुणोदा		

यदुपजोषणाद्भवान्या अनुचरीणां पुण्यजनवधूनामवयवस्पर्श सुगन्धवातो दशयोजनं समन्तादनुवासयति ॥१८॥

यत् उपजोषणात् भवानी अनुचरीणां पुण्यजनवधूनां अवयवस्पर्श सुगन्धवातः दशयोजनं समन्तात् अनुवासयति ॥१८॥

यत्	जिसके
उपजोषणात्	सेवनसे
भवानी	पार्वतीजीकी
अनुचरीणां	सेविका
पुण्यजनवधूनां	यक्षपत्नियोंके
अवयवस्पर्श	अंगोंके स्पर्शसे
सुगन्धवातः	सुगन्धित हुआ वायु
समन्तात्	चारों ओर
दशयोजनं	दस योजन तक
अनुवासयति	सुगन्ध भरता है ॥१८॥

एवं जम्बूफलानामत्युच्चनिपातविशीर्णानामनस्थिप्रायाणामिभकायनिभानां रसेन जम्बू नामनदी मेरुमन्दरशिखरादयुतयोजनादवनितले निपतन्ती दक्षिणेनात्मानं यावदिलावृतमुपस्यन्दयति ॥१९॥

एवं जम्बू फलानां अत्युच्च निपात विशीर्णानां अनस्थिप्रायाणां इभकायनिभानां रसेन जम्बू नाम नदी मेरुमन्दर शिखरात् अयुत योजनात् अवनितले निपतन्ती दक्षिणेन आत्मानं यावत् इलावृतं उपस्यन्दयति ॥१९॥

एवं	इसी प्रकार
मेरुमन्दर	मेरुमन्दरके
शिखरात्	शिखर से
इभकायनिभानां	हाथीके शरीर जैसे
अनस्थिप्रायाणां	प्रायः गुठली रहित
जम्बू फलानां	जामुनके फलोंके
अत्युच्च	बहुत ऊँचेसे
निपात	गिरनेके कारण
विशीर्णानां	फटे हुओंके
रसेन	रससे
जम्बू नाम नदी	जम्बू नामकी नदी
अयुत	दस हजार
योजनात्	योजन (ऊँचाई) से
अवनितले	भूतलपर
निपतन्ती	गिरती हुई
आत्मानं	अपनेसे
दक्षिणेन	दक्षिण भागके
इलावृतं	इलावृतको
उपस्यन्दयति	सींचती है ॥१९॥

तावदुभयोरपि रोधसोर्या मृत्तिका तद्रसेनानुविध्यमाना वाय्वर्कसंयोगविपाकेन सदामरलोकाभरणं जाम्बूनदं नाम सुवर्ण भवति ॥२०॥

तावत् उभयोः अपि रोधसोः या मृत्तिका तद् रसेन अनुविध्यमाना वायु अर्क संयोग विपाकेन सदा अमरलोक आभरणं जाम्बूनदं नाम सुवर्ण भवति ॥२०॥

उभयोः	(उस नदीके) दोनों	**तावत्**	समय पाकर
अपि	ही	**विपाकेन**	परिपक्व होकर
रोधसोः	किनारे	**सदा**	नित्य
या	जो	**अमरलोक**	देवताओंको
मृत्तिका	मिट्टी है (वह)	**आभरणं**	भूषित करने वाला
तद् रसेन	उसके रससे	**जाम्बूनदं नाम**	जाम्बूनद नामका
अनु विध्यमाना	बराबर भीग कर	**सुवर्णं**	स्वर्ण
वायु	वायु (और)	**भवति**	हो जाती है ॥२०॥
अर्क संयोग	सूर्यकी धूप लगनेसे		

यदु ह वाव विबुधादयः सह युवतिभिर्मुकुटकटककटिसूत्राद्याभरणरूपेण खलु धारयन्ति ॥२१॥

यत् उ ह वाव विबुध आदयः सह युवतिभिः मुकुट कटक कटिसूत्र आदि आभरण रूपेण खलु धारयन्ति ॥२१॥

यत् ह वाव	जिसे निश्चित ही	**कटिसूत्र आदि**	कटिसूत्र आदि
विबुध आदयः	देवता आदि	**आभरण**	आभूषणोंके
युवतिभिः	युवतियों (देवियों) के	**रूपेण**	रूपमें
		खलु	निश्चय ही
सह	साथ	**धारयन्ति**	धारण करते
मुकुट कटक	मुकुट, कड़े,		हैं ॥२१॥

यस्तु महाकदम्बः सुपार्श्वनिरूढो यास्तस्य कोटरेभ्यो विनिःसृताः पञ्चायामपरिणाहाः पञ्च मधुधाराः सुपार्श्वशिखरात्पतन्त्योऽपरेणात्मानमिलावृतमनुमोदयन्ति ॥२२॥

यः तु महाकदम्बः सुपार्श्वं निरूढः याः तस्य कोटरेभ्यः विनिःसृताः पञ्च आयाम परिणाहाः पञ्च मधुधाराः सुपार्श्वं शिखरात् पतन्त्यः अपरेण आत्मानं इलावृतं अनुमोदयन्ति ॥२२॥

सुपार्श्वं	सुपार्श्व पर्वतपर
निरूढः	स्थित
यः तु	जो तो
महाकदम्बः	महाकदम्ब है,
तस्य कोटरेभ्यः	उसके खोखलेसे
विनिःसृताः	निकलती हुई
याः	जो
पञ्च	पांच
आयाम	पुरसा (हाथ ऊपर उठाये पुरुषकी ऊँचाई)
परिणाहाः	जितनी मोटी
पञ्च	पाँच
मधुधाराः	रस धाराएँ हैं (वे)
सुपार्श्वं	सुपार्श्वके
शिखरात्	शिखरसे
पतन्त्यः	गिरती हुई
आत्मानं	अपनेसे
अपरेण	भिन्न दिशा (पश्चिम भाग)
इलावृतं	इलावृतको
अनुमोदयन्ति	बराबर सुवासित करती हैं ॥२२॥

या पयुञ्जानानां मुखनिर्वासितो वायुः समन्ताच्छतयोजनमनुवासयति ॥२३॥

या हि उपयुञ्जानानां मुख निर्वासितः वायुः समन्तात् शतयोजनं अनुवासयति ॥२३॥

या हि	जिसके कि
उपयुञ्जानानां	उपयोग करने वालोंके
मुख निर्वासितः	मुखसे निकली
वायुः	वायु
समन्तात्	चारों ओर
शतयोजनं	सौ योजन (तक)
अनुवासयति	सुगन्धि फैलाती है ॥२३॥

एवं कुमुदनिरूढो यः शतवल्शो नाम वटस्तस्य स्कन्धेभ्यो नीचीनाः पयोदधिमधुघृतगुडान्नाद्यम्बरशय्यासनाभरणादयः सर्व एव कामदुघा नदाः कुमुदाग्रात्पतन्तस्तमुत्तरेणेलावृतमुपयोजयन्ति ॥२४॥

एवं कुमुद निरूढः यः शतवल्शः नाम वटः तस्य स्कन्धेभ्यः नीचीनाः पयः दधि मधु घृत गुड अन्न आदि अम्बर शय्या आसन आभरण आदयः सर्व एव कामदुघा नदाः कुमुद आग्रात् पतन्तः तं उत्तरेण इलावृतं उपयोजयन्ति ॥२४॥

एवं	इसी प्रकार	आदि	आदि
कुमुद	कुमुद पर्वतपर	अम्बर, शय्या,	वस्त्र, शय्या,
निरूढः	स्थित	आसन आभरण	आसन, आभूषण
यः शतवल्शः	जो शतवल्श	आदयः	आदि
नाम	नामका	सर्व एव	सभी
वटः	वट वृक्ष है,	कामदुघा	कामनाओंके देने वाले
तस्य	उसके	नदाः	नद
स्कन्धेभ्यः	स्कन्ध (मुख्य शाखाओं) से	कुमुद अग्रात्	कुमुदके शिखरसे
नीचीनाः	निकलने वाले	पतन्तः	गिरते हुए
पयः दधि	दूध, दही,	इलावृतं	इलावृतके
मधु घृत	शहद, घी	उत्तरेण	उत्तरी भागको
गुड अन्न	गुड़, अन्न,	उपयोजयन्ति	भिगाते हैं ॥२४॥

यानुपजुषाणानां न कदाचिदपि प्रजानां वलीपलितक्लमस्वेदौर्गन्ध्यजरामयमृत्युशीतोष्णवैवर्ण्योपसर्गादयस्तापविशेषा भवन्ति यावज्जीवं सुखं निरतिशयमेव ॥२५॥

यान् उपजुषाणानां न कदाचित् अपि प्रजानां वली पलित क्लम स्वेद दौर्गन्ध्य जरा आमय मृत्यु शीत उष्ण वैवर्ण्य उपसर्ग आदयः ताप विशेषा भवन्ति यावत् जीवं सुखं निरतिशयं एव ॥२५॥

यान्	जिन (उन नदोंके दिये पदार्थों)का
उपजुषाणानां	उपयोग करनेवाले
प्रजानां	प्रजाजनको
कदाचित् अपि	कभी भी
वली पलित	झुर्रियां पड़ने, केश पकने,
क्लम, स्वेद	थकावट, पसीना,
दौर्गन्ध्य	(शरीरसे) दुर्गन्धि निकलना,
जरा आमय	बुढ़ापा, रोग,
मृत्यु	मृत्यु,
शीत उष्ण	सर्दी-गर्मी (लगना)
वैवर्ण्य	कान्ति हीनता,
आदयः उपसर्ग	आदि कष्ट
ताप विशेषा	(मानसिक) सन्ताप विशेष
न भवन्ति	नहीं होते
यावत् जीवं	जब तक जीते हैं,
निरतिशयं सुखं	परिपूर्ण सुख ही
एव	(रहता है) ॥२५॥

कुरङ्गकुररकुसुम्भवैकङ्कत्रिकूटशिशिरपतङ्गरुचकनिषधशिनीवासकपिलशङ्खवैदूर्यजारुधिहंसर्षभ नागकालञ्जरनारदादयो विंशतिगिरयो मेरोः कर्णिकाया इव केशरभूता मूलदेशे परित उपक्लृप्ताः ॥२६॥

कुरङ्ग, कुरर, कुसुम्भ, वैकङ्क, त्रिकूट, शिशिर, पतङ्ग, रुचक, निषध, शिनीवास, कपिल, शङ्ख, वैदूर्य, जारुधि, हंस, ऋषभ, नाग, कालञ्जर, नारद* । आदयः विंशति गिरयः मेरोः कर्णिकाया इव केशरभूता मूलदेशे परित उपक्लृप्ताः ॥२६॥

आदयः	आदि (गिनाये गये)
विंशति गिरयः	बीस पर्वत
कर्णिकाया इव	(कमलकी)कर्णिका के समान
मेरोः मूलदेशे	सुमेरुके मूल प्रदेश
केशरभूता	केशरके समान
परित	चारों ओर
उपक्लृप्ताः	समीप स्थित हैं ॥२६॥

---

*ये पर्वतों के नाम हैं। पर्वतोंके नामोंका अन्वय, अर्थ नहीं किया जा सकता।

जठरदेवकूटौ मेरुं पूर्वेणाष्टादशयोजनसहस्रमुदगायतौ द्विसहस्रं पृथुतुङ्गौ भवतः । एवमपरेण पवनपारियात्रौ दक्षिणेन कैलास-करवीरौ प्रागायतावेवमुत्तरत्रिशृङ्गमकरावष्टभिरेतैः परिस्तृतो-ऽग्निरिव परितश्चकास्ति काञ्चनगिरिः ॥२७॥

जठर देवकूटौ मेरुं पूर्वेण अष्टादश योजन सहस्रं उदगायतः द्विसहस्रं पृथुतुङ्गौ भवतः एवं अपरेण पवन पारियात्रौ दक्षिणेन कैलास करवीरौ प्रागायताः एवं उत्तरः त्रिशृङ्ग मकर अवष्टभिः एतैः परिस्तृतः अग्नि इव परितः चकास्ति काञ्चनगिरिः ॥२७॥

मेरुं पूर्वेण	सुमेरुके पूर्वकी ओर (इनके अतिरिक्त)
जठर देवकूटौ	जठर तथा देवकूट पर्वत
अष्टादश सहस्रं	अठारह हजार
योजनं	योजन
उदगायतः	लम्बे कहे गये हैं।
द्विसहस्रं	दो सहस्र (योजन)
पृथुतुङ्गौ	मोटे (इतने ही) ऊँचे
भवतः	हैं।
एवं अपरेण	इसी प्रकार पश्चिमकी ओर
पवन	पवन (तथा)
पारियात्रौ	परियात्रा (पर्वत)
दक्षिणेन	दक्षिणकी ओर
कैलास	कलास (एवं)
करवीरौ	करवीर
प्रागायताः	बतलाये गये हैं।
एवं उत्तरः	इसी प्रकार उत्तरमें
त्रिशृङ्ग मकर	त्रिशृङ्ग तथा मकरके
अवष्टभिः	स्थित होनेसे
एतैः परिस्तृतः	इनसे चारों ओरसे घिरा
काञ्चनगिरिः	स्वर्ण-पर्वत (सुमेरु)
अग्निः इव	अग्निके समान
परितः	चारों ओरसे
चकास्ति	चमकता रहता है ॥२७॥

मेरोर्मूर्धनि भगवत आत्मयोनेर्मध्यत उपक्लृप्तां पुरीमयुत-योजनसाहस्रीं समचतुरस्रां शातकौम्भीं वदन्ति ॥२८॥

मेरोः मूर्धनि भगवत आत्मयोनेः मध्यत उपक्लृप्तां पुरीं अयुतयोजन साहस्रीं समचतुरस्रां शातकौम्भीं वदन्ति ॥२८॥

मेरोः मूर्धनि	सुमेरुके शिखर पर	अयुतयोजन-	करोड़ योजना-
मध्यत	बीचमें	साहस्रीं	(विस्तार)की
उपक्लृप्तां	बनी	पुरीं वदन्ति	पुरी बतलायी
भगवत	भगवान्		जाती है ॥२८॥
आत्मयोनेः	ब्रह्माकी		
शातकौम्भीं	स्वर्णमयी		
समचतुरस्रां	समचतुर्भुज (चौरस)		

तामनु परितो लोकपालानामष्टानां यथादिशं यथारूपं तुरीयमानेन पुरोऽष्टावुपक्लृप्ताः ॥२९॥

तां अनु परितः लोकपालानां अष्टानां यथादिशं यथारूपं तुरीय मानेन पुरः अष्टाः उपक्लृप्ताः ॥२९॥

तां अनु	उस (ब्रह्मपुरी)से नीचे	यथादिशं	उन-उनकी दिशाओंमें
परितः	सब ओर	यथारूपं	उन-उनके अनुरूप
अष्टानां	आठो	तुरीय मानेन	(ब्रह्माजीकी पुरीसे)
लोकपालानां	लोकपालोंकी		चौथाई परिमाणकी
अष्टाः पुरः	आठ पुरियां	उपक्लृप्ताः	बनी हैं ॥२९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे भुवनकोशवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

तत्र भगवतः साक्षाद्यज्ञलिङ्गस्य विष्णोर्विक्रमतो वामपादांगुष्ठनखनिर्भिन्नोर्ध्वाण्डकटाहविवरेणान्तःप्रविष्टा या बाह्यजलधारा तच्चरणपङ्कजावनेजनारुणकिञ्जल्कोपरञ्जिताखिलजगदघमलापहोपस्पर्शनामला साक्षाद्भगवत्पदीत्यनुपलक्षितवचोऽभिधीयमानातिमहता कालेन युगसहस्रोपलक्षणेन दिवो मूर्धन्यवततार यत्तद्विष्णुपदमाहुः ॥१॥

तत्र भगवतः साक्षात् यज्ञलिङ्गस्य विष्णोः विक्रमतः वामपाद अंगुष्ठ नख निर्भिन्न ऊर्ध्व अण्डकटाह विवरेण अन्तः प्रविष्टा या बाह्य जलधारा तत् चरण पंकजअवनेजन अरुण किञ्जल्क उपरञ्जित अखिल जगत् अघमल अपहा उपस्पर्शन अमला साक्षात् भगवत्पदी इति अनुपलक्षित वचः अभिधीयमान अतिमहता कालेन युगसहस्र उपलक्षणेन दिवः मूर्धनि अवततार यत् तत् विष्णुपदं आहुः ॥१॥

तत्र भगवतः	परम पूज्य भगवान्	अण्डकटाह	ब्रह्माण्डावरणके
साक्षात्	साक्षात्	ऊर्ध्व	ऊपरी भागके
यज्ञलिङ्गस्य	यज्ञस्वरूप	विवरेण	छिद्रसे
विष्णोः	विष्णु (विराट् रूप धारी वामन) के	या बाह्य	जो बाहरी
		जलधारा	जलधारा
विक्रमतः	(त्रिलोक) नापते समय	अन्तः	(ब्रह्माण्डके) भीतर
		प्रविष्टा	आ गयी
वामपद	बायें पैरके	तत् चरण पंकज	वह (भगवान्) के चरण-कमल
अंगुष्ठ नख	अँगूठेके नखसे		
निर्भिन्न	फूटे हुए	अवनेजन	धुलनेसे

अरुण	(उनमें लगी) लाल	**वचः**	वाणीसे
किञ्जल्क	केशरसे	**अभिधीयमान**	कही जाने वाली
उपरञ्जित	रंग गयी।	**युगसहस्र**	सहस्रों युगोंसे
उपस्पर्शन	(वह) स्पर्श मात्रसे	**उपलक्षणेन**	लक्षित
अखिल जगत्	सम्पूर्ण संसारके	**अतिमहता**	बहुत अधिक
अघमल	पाप रूपी मलको	**कालेन**	समय बीतनेपर
अपहा	दूर करने वाली	**यत् तत्**	जिसे कि
अमला	(स्वयं) निर्मल है।	**विष्णुपदं**	विष्णुपद
साक्षात्	साक्षात्	**आहुः**	कहा जाता है
भगवत्पदी	भगवत्पदी	**दिवः मूर्धनि**	उस स्वर्गके
इति	इस प्रकार		शिरो भागमें
अनुपलक्षित	सांकेतिक	**अवततार**	उतरी ॥१॥

यत्र ह वाव वीरव्रत औत्तानपादिः परमभागवतोऽस्मत्कुलदेवताचरणारविन्दोदकमिति यामनुसवनमुत्कृष्यमाणभगवद्भक्तियोगेन दृढं क्लिद्यमानान्तर्हृदय औत्कण्ठ्यविवशामीलितलोचनयुगलकुड्मलविगलितामलबाष्पकलयाभिव्यज्यमानरोमपुलककुलकोऽधुनापि परमादरेण शिरसा बिभर्ति ॥२॥

यत्र ह वाव वीरव्रत औत्तानपादिः परमभागवतः अस्मत् कुलदेवता चरणारविन्द उदकं इति यां अनुसवनं उत्कृष्यमाण भगवत्भक्तियोगेन दृढं क्लिद्यमान अन्तः हृदय औत्कण्ठ्य विवश अमीलित लोचनयुगल कुड्मल विगलित अमल बाष्पकलया अभिव्यज्यमान रोमपुलककुलकः अधुना अपि परम आदरेण शिरसा बिभर्ति ॥२॥

वीरव्रत	वीरव्रत परीक्षित !	**अस्मत्**	हमारे
यत्र ह वाव	जहाँ निश्चित ही	**कुलदेवता**	कुल-देवताके
परम-भागवतः	परम भगवद्-भक्त	**चरणारविन्द**	चरण-कमलोंका
औत्तानपादिः	उत्तानपादके पुत्र ध्रुव	**उदकं इति**	जल है, इस भावसे

भगवत्भक्ति	भगवद्-भक्ति
योगेन	योगसे
दृढं	बड़े जोरसे
उत्कृष्यमाण	आकर्षित होते
क्लिद्यमान	द्रवित हुए
अन्तः हृदय	अन्तःकरणके कारण
औत्कण्ठ्य	उत्कण्ठासे
विवश	विवश
अमीलित	खुले हुए
लोचनयुगल	दोनों नेत्रोंसे
कुड्मल	कमल कलिका जैसे
विगलित	झरती
अमल	निर्मल
बाष्पकलया	अश्रुधारा तथा
रोमपुलक कुलकः	रोमावलीमें पुलक
अभिव्यज्यमान	प्रकट करते हुए
यां अनुसवनं	जिसे नित्यप्रति
अधुना अपि	आज भी
परम आदरेण	बड़े आदरसे
शिरसा	सिरपर
बिभर्ति	धारण करते हैं ॥२॥

ततः सप्त ऋषयस्तत्प्रभावाभिज्ञा यां ननु तपस आत्यन्तिकी सिद्धिरेतावती भगवति सर्वात्मनि वासुदेवेऽनुपरतभक्तियोगलाभेनैवोपेक्षितान्यार्थात्मगतयो मुक्तिमिवागतां मुमुक्षव इव सबहुमानमद्यापि जटाजूटैरुद्वहन्ति ॥३॥

ततः सप्त ऋषयः तत् प्रभाव अभिज्ञाः यां ननु तपसः आत्यन्तिकी सिद्धिः एतावती भगवति सर्वात्मनि वासुदेवे अनुपरत भक्तियोगलाभेन एव उपेक्षितानि अर्थ आत्मगतयः मुक्तिं इव आगतां मुमुक्षव इव सबहुमानं अद्यापि जटाजूटैः उद्वहन्ति ॥३॥

ततः	इसके पश्चात्
सप्त ऋषयः	सप्तर्षिगण
तत् प्रभाव	उनका प्रभाव
अभिज्ञाः	जाननेके कारण
यां ननु	यही निश्चय ही
तपसः	तपस्याकी
आत्यन्तिकी	आत्यन्तिक
सिद्धिः	सिद्धि है,
एतावती	ऐसा मानकर
मुमुक्षव इव	मुमुक्षु जनके समान
आगतां	प्राप्त हुई
मुक्तिं इव	मुक्तिकी भांति
आत्मगतयः	आत्मज्ञानकी
उपेक्षितानि अर्थ	उपेक्षा करनेके लिए

सर्वात्मनि	सर्वात्मा	अद्यापि	आज भी
भगवति	भगवान्	सबहुमानं	अत्यन्त आदर
वासुदेवे	वासुदेवकी		सहित
अनुपरत	निश्चल	जटाजूटैः	जटाजूटपर
भक्तियोगलाभेन	भक्ति-प्राप्तिके लिए	उद्वहन्ति	धारण करते
एव	ही		हैं ॥३॥

ततोऽनेकसहस्रकोटिविमानानीकसंकुलदेवयानेनावतरन्तीन्दु-मण्डलमावार्य ब्रह्मसदने निपतति ॥४॥

ततः अनेक सहस्र कोटि विमान अनीक संकुल देवयानेन अवतरन्ती इन्दुमण्डलं आवार्य ब्रह्मसदने निपतति ॥४॥

ततः	वहाँसे	अवतरन्ति	उतरती हुई
अनेक सहस्र	अनेक सहस्र	इन्दुमण्डलं	चन्द्र-मण्डलको
कोटि	करोड़	आवाय	प्लावित करती
विमान अनीक	विमान समूहोंसे	ब्रह्मसदने	(सुमेरु-शिखरसे)
संकुल	भरे हुए		ब्रह्मपुरीमें
देवयानेन	देवयान-मार्गसे	निपतति	गिरती है ॥४॥

तत्र चतुर्धा भिद्यमाना चतुर्भिर्नामभिश्चतुर्दिशमभिस्पन्दन्ती नदनदीपतिमेवाभिनिविशति सीतालकनन्दा चक्षुर्भद्रेति ॥५॥

तत्र चतुर्धा भिद्यमाना चतुःभिः नामभिः चतुः दिशं अभिस्पन्दन्ती नदनदीपतिं एव अभिनिविशति सीता अलकनन्दा चक्षुः भद्रा इति ॥५॥

तत्र	वहाँसे	सीता	सीता,
चतुर्धा	चार धाराओंमें	अलकनन्दा	अलकनन्दा■
भिद्यमाना	बँटकर		

■ भागवतमें ही श्रीबद्रीनाथमें अलकनन्दाका वर्णन है (११-२९-४२) पर यह अलकनन्दा उस समय समुद्र तक जाती थी। भागीरथीके आनेपर उनसे देवप्रयागमें मिली होंगी।

चक्षुः भद्रा	चक्षु, भद्रा	**नदनदीपतिं**	नद-नदियोंके
इति चतुःभिः	इस प्रकार चार		स्वामी
नामभिः	नामोंसे	**एव**	(समुद्र)में ही
चतुःदिशं	चारों दिशाओंमें	**अभिनिविशति**	प्रवेश करती
अभिस्पन्दन्ती	बहती हुई		हैं ॥५॥

सीता तु ब्रह्मसदनात्केसराचलादिगिरिशिखरेभ्योऽधोऽधः प्रस्रवन्ती गन्धमादनमूर्धसु पतित्वान्तरेण भद्राश्ववर्षं प्राच्यां दिशि क्षारसमुद्रमभिप्रविशति ॥६॥

सीता तु ब्रह्मसदनात् केसर अचला आदि गिरिशिखरेभ्यः अधः अधः प्रस्रवन्ती गन्धमादन मूर्धसु पतित्वा अन्तरेण भद्राश्ववर्षं प्राच्यां दिशि क्षार समुद्रं अभिप्रविशति ॥६॥

सीता तु	सीता तो	**गन्धमादन**	गन्धमादनके
ब्रह्मसदनात्	ब्रह्मपुरीसे	**मूर्धसु**	शिखरपर
केसर अचला	केसर भूत पर्वतों	**पतित्वा**	गिरकर
आदि	आदिके	**भद्राश्ववर्षं**	भद्राश्व वर्षके
गिरिशिखरात्	एक-से दूसरे पर्वत	**अन्तरेण**	अन्दर होती
	शिखरपर गिरती	**प्राच्यां दिशि**	पूर्व दिशामें
अधः अधः	नीचे ही नीचेकी	**क्षार समुद्रं**	खारे समुद्रमें
प्रस्रवन्ती	ओर बहती	**अभिप्रविशति**	मिल जाती हैं ॥६॥

एवं माल्यवच्छिखरान्निष्पतन्ती ततोऽनुपरतवेगा केतुमालमभि चक्षुः प्रतीच्यां दिशि सरित्पतिं प्रविशति ॥७॥

एवं माल्यवत् शिखरात् निष्पतन्ती ततः अनुपरतवेगा केतुमालं अभि चक्षुः प्रतीच्यां दिशि सरित्पतिं प्रविशति ॥७॥

एवं चक्षुः	इसी प्रकार चक्षु	**निष्पतन्ती**	गिरकर
माल्यवत्	माल्यवानके	**ततः**	वहाँसे
शिखरात्	शिखरपर	**अनुपरतवेगाः**	वेग कम हुए बिना

केतुमालं अभि	केतुमाल वर्षमें होकर उसी ओर
प्रतीच्यां दिशि	पश्चिम दिशामें
सरित्पतिं	समुद्रमें
प्रविशति	प्रवेश करती है ॥७॥

भद्रा चोत्तरतो मेरुशिरसो निपतिता गिरिशिखराद्गिरिशिखरमतिहाय शृङ्गवतः शृङ्गादवस्यन्दमाना उत्तरांस्तु कुरूनभित उदीच्यां दिशि जलधिमभिप्रविशति ॥८॥

भद्रा च उत्तरतः मेरु शिरसः निपतिता गिरिशिखरात् गिरिशिखरं अतिहाय शृङ्गवतः शृङ्गात् अवस्यन्दमाना उत्तरान तु कुरून् अभित उदीच्यां दिशि जलधिं अभिप्रविशति ॥८॥

भद्रा च	भद्रा भी
मेरु उत्तरतः	सुमेरुके उत्तरी
शिरसः	शिखरसे
निपतिता	गिरकर
गिरिशिखरात्	(एक) पर्वत शिखरसे
गिरिशिखरं	(दूसरे) पर्वत शिखरको
अतिहाय	पार करती हुई (अन्तमें)
शृङ्गवतः	शृंगमानके
शृङ्गात्	शिखरसे
अवस्यन्दमाना	गिरती हुई
उत्तरान् तु	उत्तरे कुरु वर्षमें
कुरून्	(होकर)
अभित	उस ओरके
उदीच्यां दिशि	उत्तर दिशाके
जलधिं	समुद्रमें
अभिप्रविशति	मिल जाती है ॥८॥

तथैवालकनन्दा दक्षिणेन ब्रह्मसदनाद्बहूनि गिरिकूटान्यतिक्रम्य हेमकूटाद्धैमकूटान्यतिरभसतररंहसा लुठयन्ती भारतमभि वर्षं दक्षिणस्यां दिशि जलधिमभिप्रविशति यस्यां स्नानार्थं चागच्छतः पुंसः पदे पदेऽश्वमेधराजसूयादीनां फलं न दुर्लभमिति ॥९॥

तथा एव अलकनन्दा दक्षिणेन ब्रह्मसदनात् बहूनि गिरिकूटानि अतिक्रम्य हेमकूटात् हेमकूटानि अति रभसतर रंहसा लुठयन्ती भारतं अभि वर्षं दक्षि-

णस्यां दिशि जलधिं अभिप्रविशति यस्यां स्नानार्थं च आगच्छतः पुसः पदे-पदे अश्वमेध राजसूय आदीनां फलं न दुर्लभं इति ॥९॥

तथा एव	इसी प्रकार
अलकनन्दा	अलकनन्दा
ब्रह्मसदनात्	ब्रह्मपुरीकी
दक्षिणेन	दक्षिण ओरसे
बहूनि	बहुतसे
गिरिकूटानि	पर्वत-शिखरोंको
अतिक्रम्य	पार करके
हेमकूटात्	हेमकूट पर्वतसे
हेमकूटानि	हिमालयके शिखरोंको■
अति रभसतर	अत्यन्त तीव्र
रंहसा	वेगसे
लुठयन्ती	लुढ़काती (तोड़ती-फोड़ती)
भारतं अभि	भारतवर्षकी ओर
दक्षिणस्यां	दक्षिण
दिशि	दिशामें
जलधिं	समुद्रमें
अभिप्रविशति	मिल जाती हैं*
यस्यां	जिनमें
स्नानार्थं	स्नानके लिए
आगच्छतः	आने वाले
पुंसः च	पुरुषके लिए भी (स्नान करनेसे पूर्व ही)
पदे पदे	पद-पदपर
अश्वमेध	अश्वमेघ,
राजसूय	राजसूय
आदीनां	आदि (यज्ञों) का
फलं	फल
दुर्लभं न	दुर्लभ नहीं रहता
इति	ऐसी (महिमा गंगाकी है) ॥९॥

अन्ये च नदा नद्यश्च वर्षे वर्षे सन्ति बहुशो मेर्वादिगिरि-दुहितरः शतशः ॥१०॥

■ केवल यहाँ हिमालयसे भौतिक वर्णन चला है। अतः ब्रह्मपुरीसे चलने वाली शेष तीनों धाराएँ सीता, चक्षु और भद्राका अन्वेषण वर्तमान स्थूल पृथ्वीपर करना सम्भव नहीं।

* जहाँ आज गंगासागर है, वहाँ भागीरथी गंगाकी धारा राजा भगीरथ लाये। अलकनन्दा तब कहाँ समुद्रमें मिलती थीं—पता नहीं है। अब तो भागीरथीमें मिल जाती हैं।

अन्ये च नदा नद्यः च वर्षे वर्षे सन्ति बहुशः मेरु आदि गिरि दुहितरः शतशः ॥१०॥

अन्ये च	दूसरे भी	**दुहितरः**	पुत्रियाँ
नद नद्यः च	नद-नदियाँ भी	**शतशः**	सैकड़ों हैं (वे)
मेरु आदि	मेरु आदि (पर्वतों) की	**वर्षे वर्षे**	प्रत्येक वर्षमें
		बहुशः सन्ति	बहुत-सी हैं ॥१०॥

तत्रापि भारतमेव वर्षं कर्मक्षेत्रमन्यान्यष्ट वर्षाणि स्वर्गिणां पुण्यशेषोपभोगस्थानानि भौमानि स्वर्गपदानि व्यपदिशन्ति ॥११॥

तत्र अपि भारतं एव वर्षं कर्मक्षेत्रं अन्यानि अष्ट वर्षाणि स्वर्गिणां पुण्यशेष उपभोग स्थानानि भौमानि स्वर्गपदानि व्यपदिशन्ति ॥११॥

तत्र अपि	उन देशों में भी	**पुण्यशेष**	बचे हुए पुण्योंके
भारतं वर्षं एव	भारतवर्ष ही■	**उपभोग**	भोगनेके
कर्मक्षेत्रं	कर्मक्षेत्र है (जहाँके कर्मका फल होता है।)	**स्थानानि**	स्थान हैं।
		भौमानि	(इन्हें) 'भूलोकके
		स्वर्गपदानि	स्वर्ग' शब्दसे भी
अन्यानि	दूसरे	**व्यपदिशन्ति**	कहा जाता है ॥११॥
अष्टवर्षाणि	आठ वर्ष (देश)		
स्वर्गिणां	स्वर्ग गये लोगोंके		

एषु पुरुषाणामयुतपुरुषायुर्वर्षाणां देवकल्पानां नागायुत-प्राणानां वज्रसंहननबलवयोमोदप्रमुदितमहासौरतमिथुनव्यवाया-पवर्गवर्षधृतैकगर्भकलत्राणां तत्र तु त्रेतायुगसमः कालो वर्तते ॥१२॥

■ वर्तमान ज्ञात सम्पूर्ण पृथ्वी भारतवर्ष ही है। पृथ्वीके बहुतसे देशोंमें भारतीय मूलके लोग रहते हैं। इस पृथ्वीपर कहीं भी रहने वाले पुरुषको कर्मयोनिका प्राणी ही माना जाता है। अतः यह पूरी पृथ्वी कर्म-क्षेत्र भारतवर्ष है, हमारा यह भारतवर्ष तो भरतखण्ड है।

एषु पुरुषाणां अयुत पुरुष आयुः वर्षाणां देवकल्पानां नाग अयुत प्राणानां वज्र संहनन बल वयः आमोद प्रमुदित महासौरत मिथुन व्यवाय अपवर्ग वर्ष धृत एक गर्भ कलत्राणां तत्र तु त्रेतायुगसमः कालः वर्तते ॥१२॥

एषु	इन (भारतेतर आठ देशों) में
देवकल्पानां	देवताओंके समान (देवोपम)
पुरुषाणां	पुरुषोंकी
पुरुष वर्षाणां	मनुष्यके वर्षसे
अयुत	दस सहस्र वर्षकी
आयुः	आयु होती है
अयुत	दस हजार
नाग	हाथियों जैसा
प्राणानां	बल होता है।
वज्र संहनन	वज्रके समान सुदृढ़
बल वयः	बल, यौवन और
आमोद	उल्लास होनेसे
प्रमुदित	आनन्दित
मिथुन	स्त्री-पुरुषके जोड़े
महासौरत	बहुत समय तक
व्यवाय	मैथुनादि करते रहते हैं
अपवर्ग	मोक्ष (मरण) के
वर्ष	(अन्तिम)वर्षमें
कलत्राणां	उनकी पत्नियाँ
धृत	धारण करती हैं
एक गर्भ	एक ही गर्भ
तत्र तु	वहाँ तो
त्रेतायुगसमः	त्रेतायुगके समान
कालः वर्तते	काल रहता है■ ॥१२॥

यत्र ह देवपतयः स्वैः स्वैर्गणनायकैर्विहितमहार्हणाः सर्वर्तु-कुसुमस्तबकफलकिसलयश्रियाऽऽनम्यमानविटपलताविटपिभिरुप-शुम्भमानरुचिरकाननाश्रमायतनवर्षगिरिद्रोणीषु तथा चामल-जलाशयेषु विकचविविधनववनरुहामोदमुदितराजहंसजलकुक्कुट-कारण्डवसारसचक्रवाकादिभिर्मधुकरनिकराकृतिभिरुपकूजितेषु जलक्रीडादिभिर्विचित्रविनोदैः सुललितसुरसुन्दरीणां कामकलिल-विलासहासलीलावलोकाकृष्टमनोदृष्टयः स्वैरं विहरन्ति ॥१३॥

■ पृथ्वीके भारतेतर आठ देशोंका यह वर्णन वर्तमान पृथ्वीके किसी देशका तो होना सम्भव नहीं है। अतः वर्तमान पृथ्वी भारतवर्ष है और ये शेष आठ वर्ष दिव्य सूक्ष्म जगतके हैं।

यत्र ह देवपतयः स्वैः स्वैः गणनायकैः विहित महा अर्हणाः सर्व ऋतु कुसुम स्तबक फल किसलय श्रिया आनम्यमान विटपलता विटपिभिः उपशुम्भमान रुचिर कानन आश्रम आयतन वर्षगिरि द्रोणीषु तथा च अमल जलाशयेषु विकच विविध नव वनरुह आमोद मुदित राजहंस जलकुक्कुट कारण्डव सारस चक्रवाक आदिभिः मधुकर निकर आकृतिभिः उपकूजितेषु जलक्रीडाभिः विचित्र विनोदैः सुललित सुरसुन्दरीणां कामकलिल विलास हास लीला अवलोक आकृष्ट मनः दृष्टयः स्वैरं विहरन्ति ॥१३॥

यत्र ह	जहाँ कि
देवपतयः	देवनायक
स्वैः स्वैः	अपने-अपने
गणनायकैः	गणनायकों द्वारा
विहित	महती
महा अर्हणाः	पूजा पाते हुए,
सर्व ऋतु	सभी ऋतुओंमें
कुसुम स्तबक	पुष्प-गुच्छ,
फल किसलय	फल, नवपल्लवकी
श्रिया	शोभासे युक्त
विटपलता	वृक्षों और लताओंकी और
विटपिभिः	डालियोंके
आनम्यमान	झुके हुए
उपशुम्भमान	सुशोभित
रुचिर कानन	सुन्दर वन,
आश्रम	आश्रम,
आयतन	भवन तथा
वर्षगिरि	देशके पर्वतोंकी
द्रोणीषु	घाटियोंमें
तथा	और
विकच विविधि	खिले हुए अनेक
नव वनरुह	नये कमलोंकी
आमोद मुदित	सुगन्धिसे प्रसन्न
राजहंस	राजहंस,
जलकुक्कुट	जलमुर्गे,
कारण्डव	कारण्डव (लेदी)
सारस	सारस
चक्रवाक	चकवा
आदिभिः	आदिके
उपकूजितेषु	समीप कूजन (बोलने)से
मधुकर निकर	भौंरेंके समूहके
आकृतिभिः	गुंजारसे युक्त
अमल	निर्मल
जलाशयेषु	जलाशयोंमें
जलक्रीडाभिः	जलक्रीड़ा द्वारा
विचित्र	अनेक प्रकारके
विनोदैः	विनोदसे,
सुललित	परम सुन्दर
सुरसुन्दरीणां	देवाङ्गनाओंके
कामकलिल	कामावेश सूचक
विलास हास	हाव-भाव, हँसी
लीला अवलोक	लीला कटाक्षसे
मनः दृष्टयः	मन और नेत्र
आकृष्ट	(उनकी ओर) आकर्षित किये
स्वैरं विहरन्ति	स्वच्छन्द विहार करते हैं ॥१३॥

नवस्वपि वर्षेषु भगवान्नारायणो महापुरुषः पुरुषाणां तदनुग्रहायात्मतत्त्वव्यूहेनात्मनाद्यापि संनिधीयते ॥१४॥

नवसु अपि वर्षेषु भगवान् नारायणः महापुरुषः पुरुषाणां तत् अनुग्रहाय आत्मतत्त्व व्यूहेन आत्मन अद्य अपि संनिधीयते ॥१४॥

नवसु	(इन) नौके नौ	**आत्मनः**	अपनी
वर्षेषु अपि	देशोंमें ही	**अनुग्रहाय**	कृपा करनेके लिए
महापुरुषः	परमपुरुष	**आत्मतत्त्व**	अपनी विभिन्न
भगवान्	भगवान्	**व्यूहेन**	मूर्तियोंके रूपमें
नारायणः	नारायण	**अद्य अपि**	आजभी (इनके)
तत् पुरुषाणां	वहांके पुरुषोंपर	**संनिधीयते**	समीप रहते हैं॥१४॥

इलावृते तु भगवान् भव एक एव पुमान्न ह्यन्यस्तत्रापरो निर्विशति भवान्याः शापनिमित्तज्ञो यत्प्रवेक्ष्यतः स्त्रीभावस्तत्पश्चाद्वक्ष्यामि ॥१५॥

इलावृते तु भगवान् भव एक एव पुमान् न हि अन्यः तत्र अपरः निर्विशति भवान्याः शाप निमित्तज्ञः यत् प्रवेक्ष्यतः स्त्री भावः तत् पश्चात् वक्ष्यामि ॥१५॥

इलावृते तु	इलावृतमें तो	**न हि निर्विशति**	नहीं प्रवेश करता
भगवान् भव	भगवान् शिव	**यत् प्रवेक्ष्यतः**	जहां प्रवेश करनेसे
एक एव पुमान्	अकेले ही पुरुष हैं,	**स्त्री भावः**	स्त्रीत्व (प्राप्त) हो जाता है
भवान्याः	भवानीके		
शाप निमित्तज्ञः	शापका कारण जाननेवाला	**तत्**	उस (के कारण)को
		पश्चात्	पीछे
तत्र अपरः	वहां दूसरा कोई अन्य	**वक्ष्यामि**	बतलाऊँगा ॥१५॥

भवानीनाथैः स्त्रीगणार्बुदसहस्रैरवरुध्यमानो भगवतश्चतुर्मूर्तेर्महापुरुषस्य तुरीयां तामसीं मूर्तिं प्रकृतिमात्मनः सङ्कर्षणसंज्ञामात्मसमाधिरूपेण संनिधाप्यैतदभिगृणन् भव उपधावति ॥१६॥

भवानीनाथैः स्त्रीगण अर्बुद सहस्त्रैः अवरुध्यमानः भगवतः चतुःमूर्तेः महापुरुषस्य तुरीयां तामसी मूर्ति प्रकृतिं आत्मनः सङ्कर्षण संज्ञां आत्मसमाधिरूपेण संनिधाप्य एतत् अभिगृणन् भव उपधावति ॥१६॥

स्त्रीगण अर्बुद सहस्त्रैः	अरबों-खरबों स्त्री-गण (पार्वतीकी दासियों)से	**सङ्कर्षण संज्ञां**	संकर्षण नामवाली का
अवरुध्यमानः	सेवित	**आत्मसमाधि-रुपेण**	अपनी एकाग्रताके द्वारा
भवानीनाथैः	उमापति द्वारा	**संनिधाप्य**	(मनोमय विग्रहके रूपमें) सामीप्य प्राप्त करके
चतुः मूर्तेः	चतुर्व्यूहात्मक* स्वरूपवाले		
भगवतः	भगवान्	**एतत्**	यह
महापुरुषस्य	परमपुरुषकी	**अभिगृणन्**	कहते हुए
तुरीयां	चौथी	**भव उपधावति**	शंकरजी स्तुति करते हैं ॥१६॥
आत्मनः प्रकृतिं	अपनी कारण रूपा		
तामसीं मूर्ति	तमः प्रधान मूर्ति		

*श्रीमहादेव उवाच-**

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुणसङ्ख्यानायानन्तायाव्यक्ताय नम इति ॥१७॥

ॐ नमः भगवते महापुरुषाय सर्वगुण सङ्ख्यानाय अनन्ताय अव्यक्ताय नमः इति ॥१७॥

ॐ नमः भगवते	प्राणस्वरूप भगवान् को नमः	**अव्यक्ताय नमः**	अव्यक्तको नमस्कार ।
सर्वगुण	सब गुणोंको	**इति**	इस प्रकार(यह भगवान् संकर्षणका मन्त्र है ।) मन्त्रका अनुवाद न करके मूल ही पढ़ा जाना चाहिए॥१७॥
सङ्ख्यानाय	संख्या देने (प्रकट करने)वाले		
अनन्ताय	अनन्त स्वरूप		

■ वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और सङ्कर्षण यह चतुर्व्यूह है ।

* अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'श्रीभगवानुवाच' है ।

भजे भजन्यारणपादपङ्कजं
भगस्य कृत्स्नस्य परं परायणम् ।
भक्तेष्वलं भावितभूतभावनं
भवापहं त्वा भवभावमीश्वरम् ॥१८॥

भजे भजन्या अरणपाद पङ्कजं भगस्य कृत्स्नस्य परं परायणं भक्तेषु अलं भावित भूतभावनं भव अपहं त्वां भवभावं ईश्वरम् ॥१८॥

कृत्स्नस्य	सम्पूर्ण	**भवभावं**	संसारकी भावना (उत्पत्ति) करनेवाले
भगस्य	ऐश्वर्यके	**ईश्वरं**	सर्वसमर्थ
परं परायणं	परमनिवास	**त्वां भजन्या**	आज भजनीयके
भक्तेषु	भक्तोंके लिए	**अरणपाद-**	लाल-चरण-
अलं भूतभावनं	परमप्राणि परिपालक रूप	**पङ्कजं**	कमलका
भावित	प्रकटकर देने वाले	**भजे**	(हम) भजन करते हैं ॥१८॥
भव अपहं	(जन्म-मरण रूप) संसारको मिटानेवाले		

न यस्य मायागुणचित्तवृत्तिभि-
र्निरीक्षतो ह्यण्वपि दृष्टिरज्यते ।
ईशे यथा नोऽजितमन्युरंहसां
कस्तं न मन्येत जिगीषुरात्मनः ॥१९॥

न यस्य मायागुण चित्तवृत्तिभिः निरीक्षतः हि अणु अपि दृष्टिः इज्यते ईशे यथा नः अजित मन्यु रंहसां कः तं न मन्येत जिगीषुः आत्मनः ॥१९॥

मायागुण	मायाके गुणोंवाली	**अणु अपि**	तनिक भी
चित्तवृत्तिभिः	चित्तकी वृत्तियोंसे	**दृष्टिः**	दृष्टि
निरीक्षतः	देखते रहनेपर भी	**न इज्यते**	संसक्त नहीं होती,
हि	क्योंकि	**मन्यु रंहसां**	क्रोधके वेगको
यस्य ईशे	जिस आप समर्थकी	**अजित**	न जीत सकनेवाले

यथा नः	जैसे हमारी (हो जाती है)	**जिगीषुः**	जीतनेकी इच्छावाला
तं	उन (आपका)	**कः न मन्येत**	कौन सम्मान नहीं करेगा ॥१९॥
आत्मनः	चित्तको		

असद्दृशो यः प्रतिभाति मायया
क्षीबेव मध्वासवताम्रलोचनः ।
न नागवध्वोऽर्हण ईशिरे ह्रिया
यत्पादयोः स्पर्शनधर्षितेन्द्रियाः ॥२०॥

असत् दृशः यः प्रतिभाति मायया क्षीब इव मधु आसव ताम्रलोचनः न नागवध्वः अर्हण ईशिरे ह्रिया यत् पादयोः स्पर्शन धर्षित इन्द्रियाः॥२०॥

मायया	मायाके द्वारा (वे)	**स्पर्शन**	स्पर्शसे
असत् दृशः	मिथ्या दृष्टि हैं	**धर्षित इन्द्रियाः**	चञ्चल इन्द्रिय हुई
यः	जो (जिनको आप)	**नागवध्वः**	नाग-पत्नियां
मधु आसव	मधु-आसव(पीनेसे)	**ह्रिया**	लज्जाके कारण
ताम्रलोचनः	लाल नेत्रवाले	**अर्हण**	पूजा करनेमें
प्रतिभाति	प्रतीत होते हैं ।	**ईशिरे न**	समर्थ नहीं हुईं ॥२०॥
यत् पादयोः	जिनके चरणोंके		

यमाहुरस्य स्थितिजन्मसंयमं
त्रिभिर्विहीनं यमनन्तमृषयः ।
न वेद सिद्धार्थमिव क्वचित्स्थितं
भूमण्डलं मूर्धसहस्रधामसु ॥२१॥

यं आहुः अस्य स्थिति जन्म संयमं त्रिभिः विहीनं यं अनन्तं ऋषयः न वेद सिद्धार्थं इव क्वचित् स्थितं भूमण्डलं मूर्ध सहस्र धामसु ॥२१॥

ऋषयः	ऋषिगण	**अस्य**	इस (संसार) की
यं अनन्तं	जिन्हें अनन्त (कहते हैं)	**स्थिति जन्म संयमं**	स्थिति, उत्पत्ति प्रलय (का हेतु)

यं	(श्रुति) जिसे	**सिद्धार्थं**	सरसोंके दानेके
आहुः	बतलाती है	**इव**	समान
त्रिभिः	(वह आप इन) तीनों (उत्पत्ति, स्थिति, लय) से	**क्वचित् स्थितं**	कहीं स्थित
		भूमण्डलं	भू-मण्डलको (आप)
		न वेद	नहीं जान पाते (कि वह कहाँ है) ॥२१॥
विहीनं	रहित हैं।		
सहस्र	(आपके) सहस्र		
धामसु	मस्तकोंपर		

यस्याद्य आसीद् गुणविग्रहो महान्
विज्ञानधिष्ण्यो भगवानजः किल।
यत्सम्भवोऽहं त्रिवृता स्वतेजसा
वैकारिकं तामसमैन्द्रियं सृजे ॥२२॥

यस्य अद्य आसीत् गुणविग्रहः महान् विज्ञानधिष्ण्यः भगवान् अजः किल यत् सम्भवः अहं त्रिवृता स्वतेजसा वैकारिकं तामसं ऐन्द्रियं सृजे ॥२२॥

यत् सम्भवः	जिनसे उत्पन्न हुआ	**सृजे**	सृष्टि करता हूँ
अहं	मैं	**किल**	निश्चय (वे)
त्रिवृता	(अहंकार रूप) त्रिविध हो जाने वाले	**विज्ञानधिष्ण्यः**	विज्ञानके आश्रय
		भगवान् अजः	भगवान् ब्रह्मा (जो)
		अद्य	इस समय
स्वतेजसा	अपने तेजसे	**आसीत्**	हैं
वैकारिकं	वैकारिक (देवता)	**यस्य**	जिस (आपके)
तामसं	तामस (पंच महा-भूत)	**महान्**	महत्तत्त्वरूप
		गुणविग्रहः	प्रथम गुणसे उत्पन्न हैं ॥२२॥
ऐन्द्रियं	इन्द्रियोंकी		

एते वयं यस्य वशे महात्मनः
स्थिताः शकुन्ता इवसूत्र यन्त्रिताः ।
महानहं वैकृततामसेन्द्रियाः
सृजाम सर्वे यदनुग्रहादिदम् ॥२३॥

एते वयं यस्य वशे महात्मनः स्थिताः शकुन्ता इव सूत्रयन्त्रिताः महान् अहं वैकृत तामस एन्द्रियाः सृजाम सर्वे यत् अनुग्रहात् इदम् ॥२३॥

सूत्रयन्त्रिताः	सूत्रमें बँधे (नियन्त्रित)	**वैकृत**	इन्द्रियाभिमानी देवता,
शकुन्ता इव	पक्षियोंकी भाँति	**तामस**	पञ्चमहाभूत,
एते वयं	ये हम सब	**एन्द्रियाः**	इन्द्रियां
यस्य महात्मनः	जिन महापुरुषके	**सर्वे**	सब (मिलकर)
वशे स्थिताः	वशमें हैं और	**इदं**	इस (जगत) की
यत् अनुग्रहात्	जिनके अनुग्रहसे	**सृजाम**	रचना करते हैं ॥२३॥
महान् अहं	महत्तत्त्व, अहंकार,		

यन्निर्मितां कर्ह्यपि कर्मपर्वणीं
मायां जनोऽयं गुणसर्गमोहितः ।
न वेद निस्तारणयोगमञ्जसा
तस्मै नमस्ते विलयोदयात्मने ॥२४॥

यत् निर्मितां कर्हि अपि कर्म पर्वणीं मायां जनः अयं गुणसर्ग मोहितः न वेद निस्तारण योगं अञ्जसा तस्मै नमः ते विलय उदय आत्मने ॥२४॥

गुणसर्ग	सृष्टिके गुणोंसे	**यत् निर्मितां**	जिनकी निर्मित
मोहितः	मोहित	**मायां**	मायासे
अयं जनः	यह मनुष्य	**कर्हि अपि**	कभी भी
कर्म पर्वणीं	कर्म-ग्रन्थि वाली	**अञ्जसा**	सरलतासे

निस्तारण योगं	पार होनेका उपाय	**आत्मने**	स्वरूप
न वेद	नहीं जानता	**ते नमः**	आपको नमस्कार
तस्मै	उन		॥२४॥
विलय उदय-	प्रलय सृष्टि-		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अथ अष्टादशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

तथा च भद्रश्रवा नाम धर्मसुतस्तत्कुलपतयः पुरुषा भद्राश्ववर्षे साक्षाद्भगवतो वासुदेवस्य प्रियां तनुं धर्ममयीं हयशीर्षाभिधानां परमेण समाधिना संनिधाप्येदमभिगृणन्त उपधावन्ति ॥१॥

तथा च भद्रश्रवा नाम धर्मसुतः तत् कुलपतयः पुरुषाः भद्राश्ववर्षे साक्षात् भगवतः वासुदेवस्य प्रियां तनुं धर्ममयीं हयशीर्ष अभिधानां परमेण समाधिना संनिधाप्य इदं अभिगृणन्त उपधावन्ति ॥१॥

तथा च	इसी प्रकार	**हयशीर्ष**	हयशीर्ष
भद्राश्ववर्षे	भद्राश्व वर्षमें	**अभिधानां**	नामके
भद्रश्रवा नाम	भद्रश्रवा नामके	**प्रियां तनुं**	प्रिय विग्रहका
धर्मसुतः	धर्मके पुत्र (तथा)	**परमेण**	अत्यन्त
तत् कुलपतयः	उनके कुलके	**समाधिना**	एकाग्रतासे
पुरुषाः	प्रमुख पुरुष	**संनिधाप्य**	(हृदयमें) सामीप्य पाकर
साक्षात्	साक्षात		
भगवतः	भगवान्	**इदं अभिगृणन्त**	यह (मन्त्र) बोलते हुए
वासुदेवस्य	वासुदेवके		
धर्ममयीं	धर्ममय	**उपधावन्ति**	स्तुति करते हैं ॥१॥

भद्रश्रवस ऊचुः-

ॐ नमो भगवते धर्मायात्मविशोधनाय नम इति ॥२॥

ॐ नमः भगवते धर्माय आत्म बिशोधनाय नमः इति ॥२॥

आत्म	चित्तको	ॐ	ओंकार स्वरूप
विशोधनाय	शुद्ध करने वाले		

भगवते धर्माय नमः नमः	भगवान् धर्मको बार-बार नमस्कार	**इति**	इस प्रकार (यह मन्त्र है) ॥२॥

अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितं
घ्नन्तं जनोऽयं हि मिषन्न पश्यति ।
ध्यायन्नसद्यर्हि विकर्म सेवितुं
निर्हृत्य पुत्रं पितरं जिजीविषति ॥३॥

अहो विचित्रं भगवत् विचेष्टितं घ्नन्तं जनः अयं हि मिषन् न पश्यति ध्यायत् असत् यर्हि विकर्म सेवितुं निर्हृत्य पुत्रं पितरं जिजीविषति ॥३॥

अहो	अहो,	**विकर्म सेवितुं**	असत् कर्मके करनेका
भगवत्	भगवान्‌की	**असत् ध्यायत्**	पापमय चिन्तन करता है
विचेष्टितं	लीला	**पुत्रं पितरं**	(तब) पुत्र और पिता (के शवको)
विचित्रं	विचित्र है ।	**निर्हृत्य**	जलाकर आनेपर भी
हि मिषन्	क्योंकि देखते हुए	**जिजीविषति**	(स्वयं) जीवित रहनेकी इच्छा करता है ॥३॥
अयं जनः	यह मनुष्य		
घ्नन्तं	मारनेवाले (काल)को		
न पश्यति	नहीं देखता ।		
यर्हि	जब		

वदन्ति विश्वं कवयः स्म नश्वरं
पश्यन्ति चाध्यात्मविदो विपश्चितः ।
तथापि मुह्यन्ति तवाज मायया
सुविस्मितं कृत्यमजं नतोऽस्मि तम् ॥४॥

वदन्ति विश्वं कवयः स्म नश्वरं पश्यन्ति च अध्यात्मविदः विपश्चितः तथापि मुह्यन्ति तव अज मायया सुविस्मितं कृत्यं अजं नतोऽस्मि तम् ॥४॥

कवयः	बुद्धिमान लोग
विश्वं	संसारको
नश्वरं	विनाशशील
वदन्ति स्म	कहते ही हैं,
च अध्यात्म-	तथा अध्यात्म-
विदः	तत्त्वको जाननेवाले
विपश्चितः	विवेकी
पश्यन्ति	(ऐसा ही) देखते
	भी हैं,
तथापि	फिर भी
तव	आपकी
अज मायया	अनादि मायासे
मुह्यन्ति	मोहित हो जाते हैं
सुविस्मितं	अत्यन्त विस्मयकारी
कृत्यं अजं	कर्मवाले आप
	अजन्मा
तं नतोऽस्मि	उस आपको (हम)
	नमस्कार करते
	हैं ॥४॥

विश्वोद्भवस्थाननिरोधकर्म ते
ह्यकर्तुरङ्गीकृतमप्यपावृतः ।
युक्तं न चित्रं त्वयि कार्यकारणे
सर्वात्मनि व्यतिरिक्ते च वस्तुतः ॥५॥

विश्व उद्भव स्थान निरोध कर्म ते हि अकर्तुः अङ्गीकृतं अपि अपावृतः युक्तं न चित्रं त्वयि कार्य कारणे सर्वात्मनि व्यतिरिक्ते च वस्तुतः ॥५॥

हि	क्योंकि
ते अकर्तः	आप अकर्ता द्वारा
विश्व उद्भव	संसारकी उत्पत्ति,
स्थान निरोध	स्थित, प्रलय
कर्म अङ्गीकृतः	कर्म स्वीकार किया
	गया है।
अपि अपावृतः	फिर भी (आप)
	आवरण रहित हैं-
त्वयि कार्य	आप कार्य-
कारणे	कारण रूप
सर्वात्मनि	सर्वात्मामें
युक्तं	यह उपयुक्त है,
न चित्रं	(इसमें कुछ) विचित्र
	नहीं है
वस्तुतः च	वस्तुतः तो
व्यतिरिक्ते	आप (इन सबसे)
	अतीत हैं ॥५॥

वेदान् युगान्ते तमसा तिरस्कृतान्
रसातलाद्यो नृतुरङ्गविग्रहः ।

प्रत्याददे वै कवयेऽभियाचते
तस्मै नमस्तेऽवितथेहिताय इति ॥६॥

वेदान् युगान्ते तमसा तिरस्कृतान् रसातलात् यः नृतुरङ्ग विग्रहः प्रति आददे वै कवये अभियाचते तस्मै नमः ते अवितथ ईहिताय इति ॥६॥

युगान्ते	प्रलयके समय	**अभियाचते**	प्रार्थना करने वाले
तमसा	तमोगुणी (राक्षस) द्वारा	**कवये वै**	ब्रह्माजीको
		प्रति आददे	लौटा कर दिया
तिरस्कृतान्	छिपा दिये गये	**इति**	इस प्रकारके
वेदान् यः	वेदोंको जिन	**अवितथ**	अमोघ
नृतुरङ्ग	मनुष्य एवं घोड़ेके सम्मिलित	**ईहिताय**	सङ्कल्प
		तस्मै ते	उस आपको
विग्रहः	स्वरूप वाले (प्रभु) ने	**नमः**	(हम) नमस्कार करते हैं ॥६॥

*श्रीशुक उवाच-**

हरिवर्षे चापि भगवान्नरहरिरूपेणास्ते । तद्रूपग्रहणनिमित्तमुत्तरत्राभिधास्ये । तद्दयितं रूपं महापुरुषगुणभाजनो महाभागवतो दैत्यदानवकुलतीर्थीकरणशीलाचरितः प्रह्लादोऽव्यवधानानन्यभक्तियोगेन सह तद्वर्षपुरुषैरुपास्ते इदं चोदाहरति ॥७॥

हरिवर्षे च अपि भगवान् नरहरिरूपेण आस्ते । तत् रूप ग्रहण निमित्तं उत्तरत्र अभिधास्ये । तत् दयितं रूपं महापुरुष गुण भाजनः महाभागवतः दैत्यदानवकुल तीर्थीकरण शील आचरितः प्रह्लादः अव्यवधान अनन्य भक्तियोगेन सह तत् वर्ष पुरुषैः उपास्ते इदं च उदाहरति ॥७॥

हरिवर्षे च अपि	हरिवर्षमें भी	**नरहरिरूपेण**	नृसिंह रूपमें
भगवान्	भगवान्	**आस्ते**	रहते हैं

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

तत् रूप	उस रूपके
ग्रहण	धारणका
निमित्तं	कारण
उत्तरत्र	इसी प्रसंगमें आगे
अभिधास्ये	बतलाऊँगा ।
तत्	उस (अपने)
दयितं रूपं	परमप्रिय रूपकी
महापुरुष	महापुरुषोचित
गुण भाजनः	गुणोंसे युक्त
महाभागवतः	परमभगवद् भक्त
दैत्यदानवकुल	दैत्यदानवकुलको
तीर्थीकरण	पवित्र करने वाले
शील	शीलका
आचरितः	आचरण करने वाले
प्रह्लादः	प्रह्लादजी
अव्यवधान	निर्बाध
अनन्य	अनन्य
भक्तियोगेन	भक्ति द्वारा
तत् वर्ष	उस वर्षके
पुरुषैः सह	पुरुषोंके साथ
उपास्ते	उपासना करते हैं,
च इदं	और इस (स्तोत्र) का
उदाहरति	पाठ करते हैं ॥७॥

*प्रह्लाद उवाच-**

ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे आविराविर्भव वज्रनख वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् रन्धय रन्धय तमो ग्रस ग्रस ॐ स्वाहा । अभयमभयमात्मनि भूयिष्ठा ॐ क्ष्रौम् ॥८॥

ॐ नमः भगवते नरसिंहाय नमः तेजः तेजसे आविः आविः भव वज्रनख वज्रदंष्ट्र कर्म आशयान् रन्धय रन्धय तमः ग्रस ग्रस ॐ स्वाहा । अभयं अभयं आत्मनि भूयिष्ठा ॐ क्ष्रौम् ॥८॥

ॐ	ओंकार स्वरूप
भगवते	भगवान्
नरसिंहाय नमः	नृसिंहको नमस्कार
तेजः तेजसे	तेजस्वियोंके भी तेज
नमः	(आपको) नमस्कार ।
वज्रनख	वज्रनख,
वज्रदंष्ट्र	वज्रदाढों वाले !
आविः	प्रकट होइये !

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

आविः भव	प्रकट होइये !
कर्म	कर्म संस्कार रूप
आशयान्	चित्तको
रन्धय	भून दीजिये !
रन्धय	भून दीजिये !
तमः	अज्ञान्धकारको
ग्रस	खा लीजिये,
ग्रस	खा लीजिये,
ॐ स्वाहा	ॐ स्वाहा ।
आत्मनि	अन्तःकरणमें
अभयं अभयं	परमअभय
भूयिष्ठा	देने वाले बनिये ।
ॐ क्षौम्	ॐ क्षौम ॥८॥

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां
ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया ।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे
आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी ॥९॥

स्वस्ति अस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथः धिया मनः च भद्रं भजतात् अधोक्षजे आवेश्यतां नः मतिः अपि अहैतुकी ॥९॥

विश्वस्य	विश्वका
स्वति अस्तु	कल्याण हो,
खलः प्रसीदतां	दुष्टोंका (चित्त) निर्मल हो,
भूतानि मिथः	प्राणी परस्पर
धिया	बुद्धिसे (एक-दूसरेका) कल्याण
शिवं ध्यायन्तु	चिन्तन करें ।
च मनः भद्रं	और मन शुभमें
भजतात्	लगे ।
नः मतिः अपि	हमारी बुद्धि भी
अधोक्षजे	भगवान् हृषीकेशमें
अहैतुकी	निष्काम भावसे
आवेश्यतां	प्रवेश करें ॥९॥

मागारदारात्मजवित्तबन्धुषु
सङ्गो यदि स्याद्भगवत्प्रियेषु नः ।
यः प्राणवृत्त्या परितुष्ट आत्मवान्
सिद्ध्यत्यदूरान्न तथेन्द्रियप्रियः ॥१०॥

मा आगार दारा आत्मज वित्त बन्धुषु सङ्गः यदि स्यात् भगवत् प्रियेषु नः यः प्राणवृत्त्या परितुष्ट आत्मवान् सिद्धयति अदूरात् न तथा इन्द्रिय प्रियः ॥१०॥

नः यदि सङ्गः	यदि हमारी	**परितुष्ट**	सन्तुष्ट रहनेवाला
स्यात्	आसक्ति हो	**आत्मवान्**	संयमी है,
भगवत् प्रियेषु	(तो) भगवान्के प्रेमियोंसे हो,	**अदूरात्**	(वह) शीघ्र
		सिद्ध्यति	सिद्ध (सफलता) पा लेता है,
आगार दारा	घर, स्त्री,		
आत्मज वित्त	पुत्र, धन,	**तथा इन्द्रिय**	उस प्रकार इन्द्रियोंसे
बन्धुषु मा	सम्बन्धियोंसे न हो।	**प्रियः न**	प्रेम करनेवाला नहीं (पाता) ॥१०॥
यः प्राणवृत्त्या	जो जीवन-निर्वाह मात्रसे		

यत्सङ्गलब्धं निजवीर्यवैभवं
तीर्थं मुहुः संस्पृशतां हि मानसम्।
हरत्यजोऽन्तः श्रुतिभिर्गतोऽङ्गजं
को वै न सेवेत मुकुन्दविक्रमम् ॥११॥

यत् सङ्ग लब्धं निजवीर्य वैभवं तीर्थं मुहुः संस्पृशतां हि मानसं हरति अजः अन्तः श्रुतिभिः गतः अङ्गजं कः वै न सेवेत मुकुन्द विक्रमम् ॥११॥

यत् सङ्ग	उन (महापुरुषों)के सत्संगसे	**लब्धं**	(वर्णन सुननेको) मिलता है,
हि	क्योंकि	**अजः**	(जिससे) अजन्मा प्रभु
मुहुः मानसं	बार-बार हृदयको		
संस्पृशतां	स्पर्श करनेवाला	**श्रुतिभिः**	श्रवण-मार्गसे
तीर्थं	परम-पवित्र	**अन्तः गतः**	अन्तःकरणमें जाकर
निजवीर्य वैभवं	(आपके) अपने पराक्रम तथा ऐश्वर्यका	**अङ्गजं हरति**	दैहिक-मानसिक मल-हरणकर लेते हैं,

मुकुन्द विक्रमं	(ऐसे) श्रीहरिके पराक्रमका	सेवेत न	सेवन नहीं करे ॥११॥
वै कः	भला कौन		

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना
सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः ।
हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा
मनोरथेनासति धावतो बहिः ॥१२॥

यस्य अस्ति भक्तिः भगवति अकिञ्चना सर्वैः गुणैः तत्र समासते सुराः हराः अभक्तस्य कुतः महत् गुणा मनोरथेन असति धावतः बहिः ॥१२॥

यस्य भगवति अकिञ्चना भक्ति अस्ति	जिसकी भगवान्‌में निष्काम भक्ति है	मनोरथेन असति	(उस) कामनाओंके कारण असत् (संसार) में
तत्र सुराः	वहाँ देवता	बहिः	बाहर
सर्वैः गुणैः	सब गुणोंके साथ	धावतः	भागते हुएमें
समासते	स्थिर रहते हैं ।	महत् गुणाः	महान गुण
हराः अभक्तस्य	जो श्रीहरिका भक्त नहीं हैं	कुतः	कहाँसे (हो सकते है) ॥१२॥

हरिर्हि साक्षाद्भगवान् शरीरिणा-
मात्मा झषाणामिव तोयमीप्सितम् ।
हित्वा महांस्तं यदि सज्जते गृहे
तदा महत्त्वं वयसा दम्पतीनाम् ॥१३॥

हरिः हि साक्षात् भगवान् शरीरिणां आत्मा झषाणां इव तोयं ईप्सितं हित्वा महान् तं यदि सज्जते गृहे तदा महत्त्वं वयसा दम्पतीनाम् ॥१३॥

हि	क्योंकि.	ईप्सितं	परम अभीष्ट
झषाणां	मछलियोंके लिए	तोयं इव	पानीके समान

साक्षात् भगवान्	साक्षात् भगवान्
हरिः	श्रीहरि
शरीरिणां	शरीर धारियोंकी
आत्मा	आत्मा है
तं महान्	उन महत्तमको
हित्वा	छोड़कर
यदि गृहे	यदि (कोई) घरमें
सज्जते	आसक्त होता है
तदा दम्पतीनां	तब स्त्री-पुरुषका
महत्त्वं	बड़प्पन
वयसा	(केवल) आयुसे (रह जाता) है ॥१३॥

तस्माद्रजोरागविषादमन्यु-
मानस्पृहाभयदैन्याधिमूलम् ।
हित्वा गृहं संसृतिचक्रवालं
नृसिंहपादं भजताकुतोभयमिति ॥१४॥

तस्मात् रजः राग विषाद मन्यु मान स्पृहाभय दैन्य आधिमूलं हित्वा गृहं संसृति चक्रवालं नृसिंह पादं भजत अकुतः भयम् इति ॥१४॥

तस्मात्	इसलिए
रजः राग	अतिप्रवृत्ति, राग,
विषाद मन्यु	शोक, क्रोध,
मान स्पृहा	अभिमान, स्पर्धा
भय दैन्य	भय, दीनता आदि
आधिमूलं	चिन्ताओंकी जड़
संसृति	जन्म-मरण
चक्रवालं	चक्रको ढोने वाले
गृहं हित्वा	गृहस्थाश्रमको त्यागकर
अकुतः	(जहाँ) किसी औरका
भयं	भय नहीं है
नृसिंह	(उस) भगवान् नृसिंहके
पादं	चरणोंका
भजत	भजन करो ।
इति	इस प्रकार (स्तुति करते है) ॥१४॥

*श्रीशुक उवाच–**

केतुमालेऽपि भगवान् कामदेवस्वरूपेण लक्ष्म्याः प्रियचिकीर्षया प्रजापतेर्दुहितृणां पुत्राणां तद्वर्षपतीनां पुरुषायुषाहोरात्रपरि-

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

संख्यानानां यासां गर्भा महापुरुषमहास्त्रतेजसोद्वेजितमनसां विध्वस्ता व्यसवः संवत्सरान्ते विनिपतन्ति ॥१५॥

केतुमाले अपि भगवान् कामदेव स्वरूपेण लक्ष्म्याः प्रियचिकीर्षया प्रजापतेः दुहितृणां पुत्राणां तद्वर्षपतीनां पुरुष आयुष अहोरात्र परिसंख्यानानां यासां गर्भा महापुरुष महास्त्र तेजसा उद्वेजित मनसां विध्वस्ता व्यसवः संवत्सरान्ते विनिपतन्ति ॥१५॥

केतुमाले अपि	केतुमाल वर्षमें भी
लक्ष्म्याः	लक्ष्मीजीका तथा
प्रजापतेः	प्रजापति (संवत्सर) की
दुहितृणां	पुत्रियों और
पुत्राणां	पुत्रोंका
प्रियचिकीर्षया	प्रिय करनेकी इच्छासे
कामदेव	कामदेवके
स्वरूपेण	रूपमें (रहते हैं)
तद्वर्षपतीनां	उस वर्षके प्रमुखके
पुरुष आयुषः	पुरुषोंकी आयु
अहोरात्र	दिन-रात
परिसंख्यानानां	(मनुष्यकी सौ वर्षकी आयुके) दिन-रातकी संख्याके बराबर (छत्तीस हजार वर्ष) है।
यासां गर्भा	जिनके गर्भ
महापुरुष	परमपुरुष भगवान्‌के
महास्त्र तेजसा	महान अस्त्र (सुदर्शन-चक्र)के तेजसे
उद्वेजित	उद्विग्न
मनसां	मन होनेसे
विध्वस्ता	नष्टप्राय,
व्यसवः	स्थान च्युतहोकर
संवत्सरान्ते	वर्षके अन्तमें
विनिपतन्ति	गिर जाते हैं ॥१५॥

अतीव सुललितगतिविलासविलसितरुचिरहासलेशावलोकलीलया किञ्चिदुत्तम्भितसुन्दरभ्रूमण्डलसुभगवदनारविन्दश्रिया रमां रमयन्निन्द्रियाणि रमयते ॥१६॥

अतीव सुललित गतिविलास विलसित रुचिरहासलेश अवलोक लीलया किञ्चित् उत्तम्भित सुन्दर भ्रू मण्डल सुभग वदनारविन्द श्रिया रमां रमयन् इन्द्रियाणि रमयते ॥१६॥

अतीव सुललित	अत्यन्त सुन्दर
गतिविलास	लीलापूर्ण
विलसित	चेष्टायुक्त
रुचिरहासलेश	मनोहर मुस्कानपूर्वक
अवलोक	देखते हुए
लीलया	कटाक्ष सहित
किञ्चित्	तनिक
उत्तम्भित	उठी हुई
सुन्दर	सुन्दर
भ्रूमण्डल	भौंहोंसे
सुभग	और सुन्दर
वदनारविन्द	मुख-कमल
श्रिया	(की) शोभासे
रमां रमयन्	लक्ष्मीको आनन्दित करते
इन्द्रियाणि	(अपनी) इन्द्रियोंको भी
रमयते	सुखी करते हैं॥१६॥

तद्भगवतो मायामयं रूपं परमसमाधियोगेन रमा देवी संवत्सरस्य रात्रिषु प्रजापतेर्दुहितृभिरुपेताहःसु च तद्भर्तृभिरुपास्ते इदं चोदाहरति ॥१७॥

तत् भगवतः मायामयं रूपं परम समाधियोगेन रमा देवी संवत्सरस्य रात्रिषु प्रजापतेः दुहितृभिः उपेता अहःसु च तत् भर्तृभिः उपास्ते इदं च उदाहरति ॥१७॥

भगवतः	भगवान्के
तत् मायामयं	उस मायामय
रूपं	रूपकी
रात्रिषु	रात्रिमें
संवत्सरस्य	प्रजापति संवत्सरकी
दुहितृभिः	पुत्रियोंके
च अहःसु	और दिनमें
तत् भर्तृभिः	उनके पतियोंके
उपेता	साथ
परम	अत्यन्त
समाधियोगेन	एकाग्रतापूर्वक
उपास्ते	उपासना करती हैं।
च इदं	और यह
उदाहरति	स्तुति करती हैं ॥१७॥

*रमा उवाच**

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूँ ॐ नमो भगवते हृषीकेशाय सर्वगुणविशेषै-विलक्षितात्मने आकूतीनां चित्तीनां चेतसां विशेषाणां चाधिपतये षोडशकलायच्छन्दोमयायान्नमयायामृतमयाय सर्वमयाय सहसे ओजसे बलाय कान्ताय कामाय नमस्ते उभयत्र भूयात् ॥१८॥

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूँ ॐ नमः भगवते हृषीकेशाय सर्व गुणविशेषैः विलक्षित आत्मने आकूतीनां चित्तीनां चेतसां विशेषाणां च अधिपतये षोडशकलाय छन्दोमयाय अन्नमयाय अमृतमयाय सर्वमयाय सहसे ओजसे बलाय कान्ताय कामाय नमः ते उभयत्र भूयात् ॥१८॥

ॐ भगवते	ओंकार स्वरूप भगवान्
हृषीकेशाय	इन्द्रियोंके नियन्ता,
सर्व	सब
गुणविशेषैः	विशिष्ठ गुणोंसे
विलक्षित	जिनकी
आत्मने	अपनी पहिचान होती है,
आकूतीनां	क्रिया-शक्ति,
चित्तीनां	ज्ञान-शक्ति,
च	तथा
चेतसां	(संकल्प, धैर्यादि) चित्तकी
विशेषाणां	विशेषताओंके
अधिपतये	अधिपति
षोडशकलाय	सोलह कलायुक्त,
छन्दोमयाय	वेदमय,
अन्नमयाय	अन्नमय,
अमृतमयाय	अमृतमय,
सर्वमयाय	सर्वमय,
कान्ताय	प्रियतम
कामाय	कामदेव
ह्रां ह्रीं ह्रूँ	ह्रां ह्रीं ह्रूँ (इन बीज मन्त्रों) से
उभयत्र	सब ओरसे
ते नमः भूयात्	आपको नमस्कार हो ॥१८॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

स्त्रियो व्रतैस्त्वा हृषिकेश्वरं स्वतो
ह्याराध्य लोके पतिमाशासतेऽन्यम् ।
तासां न ते वै परिपान्त्यपत्यं
प्रियं धनायूंषि यतोऽस्वतन्त्रा ॥१९॥

स्त्रियः व्रतैः त्वां हृषीक ईश्वरं स्वतः हि आराध्य लोके पतिं आशासते अन्यं तासां न ते वै परिपान्ति अपत्यं प्रियं धन आयूंषि यतः अस्वतन्त्राः ॥१९॥

हि स्त्रियः	क्योंकि स्त्रियां	ते वै	निश्चय वे
स्वतः	स्वयं	तासां	उन (स्त्रियों) के
त्वां हृषीक	आप इन्द्रियोंके	प्रियं अपत्यं	प्रिय पुत्रों (तथा)
ईश्वरं	स्वामीकी	धन आयूंषि	धन, आयुकी
व्रतैः	व्रतोंके द्वारा	परिपान्ति न	रक्षा नहीं कर पाते
आराध्य	आराधना करके	यतः	क्योंकि (वे)
लोके	संसारमें	अस्वतन्त्राः	स्वतन्त्र नहीं
अन्यं पतिं	दूसरा पति		हैं ॥१९॥
आशासते	चाहती हैं,		

स वै पतिः स्यादकुतोभयः स्वयं
समन्ततः पाति भयातुरं जनम् ।
स एक एवेतरथा मिथो भयं
नैवात्मलाभादधि मन्यते परम् ॥२०॥

स वै पतिः स्यात् अकुतः भयः स्वयं समन्ततः पाति भय आतुरं जनं स एक एव इतरथा मिथः भयं न एव आत्मलाभात् अधि मन्यते परम् ॥२०॥

स वै	निश्चय वही	भय	भय न हो
पतिः स्यात्	(सच्चा) पति (रक्षक) है	भय आतुरं	भयसे व्याकुल
स्वयं अकुतः	(जिसे) स्वयं कहींसे	जनं	लोगोंकी
		समन्ततः	सब ओरसे

पाति	रक्षा करता है,	**आत्मलाभात्**	(अतः आप) अपनी प्राप्तिसे
स एक एव	वह (तो) एक ही है	**परं**	बढ़कर कुछ
इतरया	दूसरेकी सत्ता होने पर	**न एव**	नहीं ही
मिथः भयं	(उन्हें) परस्पर (एक दूसरेसे) भय होगा	**अधि मन्यते**	मानते ॥२०॥

या तस्य ते पादसरोरुहार्हणं
निकामयेत्साखिलकामलम्पटा ।
तदेव रासोप्सितमीप्सितोऽर्चितो
यद्भग्नयाञ्चा भगवन् प्रतप्यते ॥२१॥

या तस्य ते पाद सरोरुह अर्हणं निकामयेत् सा अखिल काम लम्पटा तत् एव रासि ईप्सितं ईप्सितः अर्चितः यत् भग्न याञ्चा भगवन् प्रतप्यते ॥२१

तस्य ते	ऐसे आपके	**ईप्सितं अर्चितः**	अभीष्ट (विशेष) से पूजा किये जानेपर
पाद सरोरुह	चरण-कमलकी	**तत् एव ईप्सितं**	वही अभीष्ट (आप)
अर्हणं	पूजा ही	**रासि**	दे देते हैं ।
या निकामयेत्	जो (स्त्री) चाहती है	**भगवन्**	भगवन् (पर)
सा अखिल	वह समस्त	**यत् भग्न याञ्चा**	क्योंकि वह मांगी वस्तु नष्ट होगी ही (तब वह)
काम	कामनाएँ		
लम्पटा	चाहने वाली है । (उसकी सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं ।)	**प्रतप्यते**	संतप्त होती है ॥२१॥

मत्प्राप्तयेऽजेशसुरासुरादय-
स्तप्यन्त उग्रं तप ऐन्द्रियेधियः ।
ऋते भवत्पादपरायणान्न मां
विन्दन्त्यहं त्वद्धृदया यतोऽजित ॥२२॥

मत् प्राप्तये अज ईश सुर असुरादयः तप्यन्त उग्रं तप ऐन्द्रिय एधियः ऋते भगत् पाद परायणात् न मां विन्दन्ति अहं त्वत् हृदया यतः अजित ॥२२॥

अजित	अजित !
ऐन्द्रिय एधियः	ऐन्द्रियक-सुखमें लगी बुद्धि वाले
अज ईश	ब्रह्मा, शिव,
सुर असुरादयः	देवता, असुर आदि
मत् प्राप्तये	मेरी प्राप्तिके लिए
उग्रं तप	घोर तपस्या
तप्यन्त	करते हैं (किन्तु)
भवत् पाद	आपके चरणोंके
परायणात्	परायणोंको
ऋते	छोड़कर (दूसरे)
न मां विन्दन्ति	मुझे नहीं पाते
यतः	क्योंकि
अहं त्वत् हृदया	मेरा हृदय आपमें लगा है ॥२२॥

स त्वं ममाप्यच्युत शीर्ष्णि वन्दितं
कराम्बुजं यत्त्वदधायि सात्वताम् ।
बिभर्षि मां लक्ष्म वरेण्य मायया
क ईश्वरस्येहितमूहितुं विभुरिति ॥२३॥

स त्वं मम अपि अच्युत शीर्ष्णि वन्दितं कराम्बुजं यत्तु अदधायि सात्वतां बिभर्षि मां लक्ष्म वरेण्य मायया क ईश्वरस्य ईहितुं अहितुं विभुः इति ॥२३॥

त्वं यत्तु	आप तो जिस
वन्दितं	वन्दनीय
करास्बुजं	कर-कमलको
सात्वतां	भक्तोंके (ऊपर)
अदधायि	रखते हैं
अच्युत	अच्युत !
स मम अपि	वह मेरे भी
शीर्ष्णि	मस्तकपर (रखिये)
मायया	(अपनी) मायासे
लक्ष्म वरेण्य	वरणीय लक्षण (श्रीवत्सके रूपमें)
मां बिभर्षि	(आप) मुझे धारण करते हैं (सो)
विभुः ईश्वरस्य	सर्वव्यापक, सर्व समर्थकी
ईहितुं	चेष्टाको
क अहितुं	कौन समझ सकता है
इति	इस प्रकार ॥२३॥

श्रीशुक उवाच—*

रम्यके च भगवतः प्रियतमं मात्स्यमवतारूपं तद्वर्षपुरुषस्य मनोः प्राक्प्रदर्शितं स इदानीमपि महता भक्तियोगेनाराधयतीदं चोदाहरति ॥२४॥

रम्यके च भगवतः प्रियतमं मात्स्यं अवतार रूपं तद् वर्ष पुरुषस्य मनोः प्राक् प्रदर्शितं स इदानीं अपि महता भक्तियोगेन आराधयति इदं च उदाहरति ॥२४॥

रम्यके च	रम्यक वर्षमें भी	**स इदानीं अपि**	वे (मनु) अब भी
तद् वर्ष	उस वर्षके	**महता**	महान
पुरुषस्य मनोः	पुरुषोंके मनुको	**भक्तियोगेन**	भक्तियोगसे
भगवतः	भगवान्ने	**आराधयति**	(उसी रूपकी) आराधना करते हैं
प्रियतमं रूपं	(अपना) अत्यन्त प्रिय रूप	**च इदं**	और यह
मात्स्यं अवतार	मत्स्यावतार	**उदाहरति**	स्तुति करते हैं ॥२४॥
प्राक् प्रदर्शितं	पहिले दिखलाया था,		

मनुरुवाच—*

ॐ नमो भगवते मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय प्राणायौजसे सहसे बलाय महामत्स्याय नम इति ॥२५॥

ॐ नमः भगवते मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय प्राणाय ओजसे सहसे बलाय महामत्स्याय नमः इति ॥२५॥

ॐ भगवते	ओंकार रूप भगवान्	**नमः**	नमस्कार ।
मुख्यतमाय	सबसे प्रमुखको		

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

सत्त्वाय नमः	सत्त्व स्वरूपको नमस्कार।	**बलाय**	शरीरबल स्वरूप
प्राणाय	प्राणस्वरूप	**महामत्स्याय**	महामत्स्य भगवान्‌को
ओजसे	मनोबल,	**नमः**	नमस्कार,
सहसे	इन्द्रियबल	**इति**	इस प्रकार ॥२५॥

अन्तर्बहिश्चाखिललोकपालकै-
रदृष्टरूपो विचरस्युरुस्वनः।
स ईश्वरस्त्वं य इदं वशेऽनय-
न्नाम्ना यथा दारुमयीं नरः स्त्रियम् ॥२६॥

अन्तः बहिः च अखिल लोकपालकैः अदृष्ट रूपः विचरसि उरु स्वनः स ईश्वरः त्वं य इदं वशे अनयत् नाम्ना यथा दारुमयीं नरः स्त्रियम् ॥२६॥

अखिल	सब	**यथा नरः**	जैसे मनुष्य
लोकपालकैः	लोकपालों द्वारा	**दारुमयीं स्त्रियं**	कठपुतलीको (नचावे)
अदृष्ट रूपः	जिनका रूप दीखता नहीं	**य इदं**	जो इस जगत्‌को
अन्तः	(पर प्राणियोंके) भीतर (प्राण रूपसे)	**नाम्ना**	नाम (रूपी रस्सी)से
च बहिः	और बाहर (वायु रूपसे)	**वशे अनयत्**	वशमें किये हैं
विचरसि	विचरण करते हैं।	**स ईश्वरः त्वं**	वे सर्व संचालक आप ही हैं ॥२६॥
उरुस्वनः	(वेदरूप) महाशब्द वाले (आप)		

यं लोकपालाः किल मत्सरज्वरा
हित्वा यतन्तोऽपि पृथक् समेत्य च।
पातुं न शेकुर्द्विपदश्चतुष्पदः
सरीसृपं स्थाणु यदत्र दृश्यते ॥२७॥

यं लोकपालाः किल मत्सर ज्वराः हित्वा यतन्तः अपि पृथक् समेत्य च पातुं न शेकुः द्विपदः चतुष्पदः सरीसृपं स्थाणु यद् अत्र दृश्यते ॥२७॥

किल	अहो,
मत्सर ज्वराः	डाह रूपी ज्वरसे ग्रस्त
लोकपालाः	लोकपाल लोग
यं हित्वा	जिस (प्राण रूप आप) को छोड़कर
यतन्तः अपि	प्रयत्न करते हुए भी
पृथक्	अकेले-अकेले
च समेत्य	और सब मिलकर भी
द्विपदः	दो पैर वाले प्राणियोंको,
चतुष्पदः	चौपायोंको
सरीसृपं	सरकने वालोंको
स्थाणु	स्थावरोंको
यद् अत्र दृश्यते	(जो कुछ) यहाँ संसारमें दिखलायी पड़ता है,
पातुं	(किसीकी भी) रक्षा करनेमें
शेकुः न	समर्थ नहीं हुए ॥२७

भवान् युगान्तार्णव ऊर्मिमालिनि
क्षोणीमिमामोषधिवीरुधां निधिम् ।
मया सहोरु क्रमतेऽज ओजसा
तस्मै जगत्प्राणगणात्मने नम इति ॥२८॥

भवान् युगान्त अर्णव ऊर्मिमालिनि क्षोणीं इमां ओषधि वीरुधां निधिं मया सह उरु क्रमते अज ओजसा तस्मै जगत् प्राणगण आत्मने नमः इति ॥२८॥

अज	अजन्मा प्रभु !
मया सह	मेरे साथ
ओषधि	औषधियों और
वीरुधां	क्षुपोंकी
निधिं	खजाना रूप
इमां क्षोणीं	इस पृथ्वी (रूप नौका) को
ऊर्मिमालिति	उत्ताल तरंगायमान
युगान्त अर्णव	प्रलय-समुद्रमें
ओजसा	उत्साह पूर्वक
उरु क्रमते	बहुत विहार किया
तस्मै	उस
जगत् प्राणगण	संसारके प्राणोंके
आत्मने	स्वरूपको
नमः	नमस्कार
इति	इस प्रकार ॥२८॥

श्रीशुक उवाच■

हिरण्मयेऽपि भगवान्निवसति कूर्मतनुं बिभ्राणस्तस्य तत्प्रियतमां तनुमर्यमा सह वर्षपुरुषैः पितृगणाधिपतिरुपधावति मन्त्रमिमं चानुजपति ॥२९॥

हिरण्मये अपि भगवान् निवसति कूर्मतनुं बिभ्राणः तस्य तत् प्रियतमां तनुं अर्यमा सह वर्षपुरुषैः पितृगण अधिपतिः उपधावति मन्त्रं इमं च अनुजपति ॥२९॥

हिरण्मये अपि	हिरण्मय वर्षमें भी
भगवान्	भगवान्
कूर्मतनुं	कूर्म शरीर
बिभ्राणः	धारण करके
निवसति	निवास करते हैं।
तस्य तत्	उनके उस
प्रियतमां तनुं	अत्यन्त प्रिय स्वरूपकी
पितृगण	पितरगणोंके
अधिपतिः	अधिपति
अर्यमा	अर्यमा
वर्षपुरुषैः सह	उस वर्षके पुरुषोंके साथ
उपधावति	उपासना करते हैं
च इमं मन्त्रं	और इस मन्त्रको
अनुजपति	बराबर जपते हैं ॥२९॥

अर्यमोवाच*

ॐ नमो भगवते अकूपाराय सर्वसत्त्वगुणविशेषणाया-नुपलक्षितस्थानाय नमो वर्ष्मणे नमो भूम्ने नमो नमोऽवस्थानाय नमस्ते ॥३०॥

ॐ नमः भगवते अकूपाराय सर्वसत्त्वगुण विशेषणाय अनुपलक्षित स्थानाय नमः वर्ष्मणे नमः भूम्ने नमो नमः अवस्थानाय नमः ते ॥३०॥

■ यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

ॐ भगवते	ओंकार स्वरूप भगवान्	नमः	नमस्कार
अकूपाराय नमः	कच्छपको नमस्कार	वर्ष्मणे नमः	कालातीतको नमस्कार
सर्वसत्त्वगुण विशेषणाय	सम्पूर्ण सत्त्वगुणकी विशेषतासे युक्त	भूम्ने नमो नमः	सर्व व्यापकको बार-बार नमस्कार
अनुपलक्षित स्थानाय	(जलमें रहनेसे) अलक्षित निवास वाले (प्रभुको)	ते अवस्थानाय नमः	आप सर्वाधारको नमस्कार ॥३०॥

यद्रूपमेतन्निजमाययार्पित-
मर्थस्वरूपं बहुरूपरूपितम् ।
संख्या न यस्यास्त्ययथोपलम्भनात्
तस्मै नमस्तेऽव्यपदेशरूपिणे ॥३१॥

यत् रूपं एतत् निज मायया अर्पितं अर्थस्वरूपं बहुरूपरूपितं संख्या न यस्य अस्ति अयथा उपलम्भनात् तस्मै नमः ते अव्य पदेश रूपिणे ॥३१॥

निज मायया	अपनी मायासे	उपलम्भनात्	प्रतीति होनेसे
अर्पितं	दिया हुआ (होनेपर भी)	यस्य संख्या न अस्ति	जिनकी गणना नहीं है,
एतत् यत् रूपं	यह जो (कूर्म) रूप है,	तस्मै	उस
अर्थस्वरूपं	परमार्थ स्वरूप है,	अव्य पदेश रूपिणे	अनिर्देश्य रूप
बहुरूपरूपितं	(आपके) बहुत रूप (श्रुतिमें) वर्णित हैं	ते नमः	आपको नमस्कार ॥३१॥
अयथा	अवास्तविक (माया)		

जरायुजं स्वेदजमण्डजोद्भिदं
चराचरं देवर्षिपितृभूतमैन्द्रियम् ।
द्यौः खं क्षितिः शैलसरित्समुद्र-
द्वीपग्रहर्क्षेत्यभिधेय एकः ॥३२॥

जरायुजं स्वेदजं अण्डज उद्भिदं चर अचरं देवः ऋषि पितृ भूतं ऐन्द्रियं द्यौः खं क्षितिः शैल सरित् समुद्र द्वीप ग्रह ऋक्ष इति अभिधेयः एकः ॥३२॥

जरायुज	जरायुज,
स्वेदजं अण्डज	स्वेदज, अण्डज,
उद्भिदं	उद्भिज,
चर अचरं	चर, अचर,
देवः ऋषि पितृ	देवता, ऋषि, पितर,
भूतं ऐन्द्रियं	पञ्चमहाभूत, इन्द्रियां,
द्यौः खं क्षितिः	स्वर्ग, आकाश, पृथ्वी,
शैल, सरित्,	पर्वत, नदियां,
समुद्र	समुद्र,
द्वीप, ग्रह, ऋक्ष	द्वीप, ग्रह, नक्षत्र
इति	इस प्रकार (अनेक नाम रूपोंसे)
अभिधेयः	कहे जाने वाले
एकः	एक (आप) ही हैं ॥३२॥

यस्मिन्नसंख्येयविशेषनाम-
रूपाकृतौ कविभिः कल्पितेयम् ।
संख्या यया तत्त्वदृशापनीयते
तस्मै नमः सांख्यनिदर्शनाय ते इति ॥३३॥

यस्मिन् असंख्येय विशेष नाम रूप आकृतिः कविभिः कल्पिता इयं संख्या यया तत्त्वदृशा अपनीयते तस्मै नमः सांख्य निदर्शनाय ते इति ॥३३॥

यस्मिन्	जिसमें
अयंख्येय	असंख्य
विशेष	विशेष विशेष
नाम रूप	नाम, रूप
आकृति	आकृति
कविभिः	विद्वानों द्वारा
कल्पिता	कल्पित की गई है,
यया तत्त्वदृशा	जिस तत्त्वको देखने (साक्षात् कर लेने) से
इयं संख्या	यह संख्या
अपनीयते	निवृत्त हो जाती है
तस्मै	उस
सांख्य	संख्याका
निदर्शनाम	तत्त्व निर्दिष्ट करनेवाले
ते नमः	आपको नमस्कार
इति	इस प्रकार ॥३३॥

श्रीशुक उवाच-*

उत्तरेषु च कुरुषु भगवान् यज्ञपुरुषः कृतवराहरूप आस्ते तं तु देवी ह्येषा भूः सह कुरुभिरस्खलितभक्तियोगेनोपधावति इमां च परमामुपनिषदमावर्तयति ॥३४॥

उत्तरेषु च कुरुषु भगवान् यज्ञपुरुषः कृत वराहरूपः आस्ते तं तु देवी हि एषा भूः सह कुरुभिः अस्खलित भक्तियोगेन उपधावति इमां च परमां उपनिषदं आवर्तयति ॥३४॥

उत्तरेषु	उत्तरमें
कुरुषु च	कुरुमें भी
यज्ञपुरुषः	यज्ञपुरुष
भगवान्	भगवान्
वराहरूपः कृतः	वाराहरूप धारण करके
आस्ते	रहते हैं,
तं तु	उनका तो
एषा हि	यही
भूः देवी	भू देवी
सह कुरुभिः	(वहाँके निवासी) कुरुओंके साथ
अस्खलित	अविचल
भक्तियोगेन	भक्तिभावसे
उपधावति	उपासना करती हैं।
च इमां	और इस
परमां	सर्वश्रेष्ठ
उपनिषदं	उपनिषदकी
आवर्तयति	आवृत्ति (पाठ) करती हैं ॥३४॥

भूमिरुवाच-•

ॐ नमो भगवते मन्त्रतत्त्वलिङ्गाय यज्ञक्रतवे महाध्वरावयवाय महापुरुषाय नमः कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्ते ॥३५॥

ॐ नमः भगवते मन्त्र तत्त्व लिङ्गाय यज्ञक्रतवे महाध्वर अवयवाय महापुरुषाय नमः कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमः ते ॥३५॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

• यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

ॐ भगवते	ओंकार स्वरूप भगवान्	महाध्वर	महायज्ञ रूपी
मन्त्र तत्त्व	मन्त्रोंके तत्त्व (वास्तविक अर्थ)	अवयवाय	अङ्गोंवाले
लिङ्गाय	स्वरूप	महापुरुषाय	महापुरुषको
नमः	(आप)को नमस्कार।	नमः	नमस्कार।
यज्ञक्रतवे	यज्ञ (हवनात्मक) ऋतु (कथात्मक) स्वरूप	कर्मशुक्लाय	सात्विक कर्मस्वरूप,
		त्रियुगाय	त्रियुग मूर्ति
		ते नमः	आपको नमस्कार ॥३५॥

यस्य स्वरूपं कवयो विपश्चितो
गुणेषु दारुष्विव जातवेदसम्।
मथ्नन्ति मथ्ना मनसा विदृक्षवो
गूढं क्रियार्थैर्नम ईरितात्मने ॥३६॥

यस्य स्वरूपं कवयः विपश्चितः गुणेषु दारुषु इव जातवेदसं मथ्नन्ति मथ्ना मनसा विदृक्षवः गूढं क्रिया अर्थैः नमः ईरित आत्मने ॥३६॥

दारुषु	काष्ठमें	गूढं	(रूपमें) छिपेको
मथ्ना	मथानी(अरणि)से	मनसा मथ्नन्ति	मनसे मथते (मनन करते) हैं,
जातवेदसं	अग्नि		
इव	की भाँति	ईरित आत्मने	(इस प्रकार) अपनेको प्रकट करनेवाले
विपश्चितः	विवेकी		
कवयः	बुद्धिमान		
यस्य स्वरूपं	जिसके स्वरूपको	नमः	(आपको) नमस्कार ॥३६॥
विदृक्षवः	देखनेकी इच्छासे		
गुणेषु	गुणोंमें		
क्रिया अर्थैः	क्रिया और उसके प्रयोजन (फल)के		

द्रव्यक्रियाहेत्वयनेशकर्तृभि-
मायागुणैर्वस्तुनिरीक्षितात्मने ।
अन्वीक्षयाङ्गातिशयात्मबुद्धिभि-
र्निरस्तमायाकृतये नमो नमः ॥३७॥

द्रव्य क्रियाहेतु अयन ईश कर्तृभिः मायागुणैः वस्तु निरीक्षित आत्मने अन्वीक्षया अङ्ग अतिशय आत्मबुद्धिभिः निरस्त मायाकृतये नमो नमः ॥३७॥

द्रव्य क्रिया	पदार्थ, क्रिया,	अङ्ग अतिशय	साधनोंकी विशेषतासे
हेतु अयन	हेतु (इन्द्रिय) अयन (शरीर)	आत्मबुद्धिभिः	(शुद्ध) अपनी बुद्धिसे
ईश कर्तृभिः	ईश्वर और कर्ता (अहंकार)	मायाकृतये	मायाकी कृति (रचना)को
मायागुणैः	(आदि) मायाके गुण (कार्य)के द्वारा	निरस्त	निरस्तकर देनेपर (शेष)
वस्तु निरीक्षत	वस्तु-तत्त्वको देखनेमें	नमो नमः	आपको बार-बार नमस्कार ॥३७॥
आत्मने	अपनेमें ही		
अन्वीक्षया	अन्वेषण (मनन) करनेसे		

करोति विश्वस्थितिसंयमोदयं
यस्येप्सितं नेप्सितमीक्षितुर्गुणैः ।
माया यथायो भ्रमते तदाश्रयं
ब्राह्मणो नमस्ते गुणकर्मसाक्षिणे ॥३८॥

करोति विश्व स्थिति संयम उदयं यस्य ईप्सितं न ईप्सितं ईक्षितुः गुणैः माया यथा अयः भ्रमते तत् आश्रयं ग्राव्णो नमः ते गुणकर्म साक्षिणे ॥३८॥

यथा अयः	जैसे लोहा	विश्व	संसारकी
तत् आश्रयं	उसके आश्रय (चुम्बक) के घूमनेसे	स्थिति संयम	स्थिति, प्रलय,
		उदयं	सृष्टि
भ्रमते	घूमता है(ऐसे ही)	करोति	करती है,
यस्य ईक्षितुः	जिस साक्षीके	गुणकर्म	उस गुणों एवं कर्मोंके
न ईप्सितं	अपने लिए अभीष्ट न होनेपर भी	साक्षिणे	साक्षी
		ग्राव्णो	भगवान् वाराह
ईप्सितं	(सब प्राणियोंके लिए) अभीष्ट	ते नमः	आपको नमस्कार ॥३८॥
गुणैः	प्रभावसे		
माया	माया		

प्रमथ्य दैत्यं प्रतिवारणं मृधे
यो मां रसाया जगदादिसूकरः ।
कृत्वाग्रदंष्ट्रे निरगादुदन्वतः
क्रीडन्निवेभः प्रणतास्मि तं विभुमिति ॥३९॥

प्रमथ्य दैत्यं प्रतिवारणं मृधे यः मां रसाया जगत् आदि सूकरः कृत्वा अग्र दंष्ट्रे निरगात् उदन्वतः क्रीडन् इव इभः प्रणतः आस्मि तं विभुम् इति ॥३९॥

मृधे	युद्धमें	यः	जो
प्रतिवारणं	रोकनेवाले	जगत् आदि	जगतके कारण
दैत्यं	दैत्य (हिरण्याक्ष) को	सूकरः	भगवान् वाराह
प्रमथ्य	मथ (मार) कर	मां	मुझे

अग्र दंष्ट्रे कृत्वा	दाढ़की नोकपर रखकर	**निरगात्**	निकले
रसाया	रसातलसे	**तं विभुं**	(उस) आप सर्व-व्यापकको
उदन्वतः	समुद्रसे	**प्रणतः अस्मि**	प्रणाम करती हूँ
इभः इव	हाथीके समान	**इति**	इस प्रकार ॥३९॥
क्रीडन्	खेल-सा करते		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे भुवनकोशवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१६॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

किम्पुरुषे वर्षे भगवन्तमादिपुरुषं लक्ष्मणाग्रजं सीताभिरामं रामं तच्चरणसंनिकर्षाभिरतः परमभागवतो हनुमान् सह किम्पुरुषैरविरतभक्तिरुपास्ते ॥१॥

किम्पुरुषे वर्षे भगवन्तं आदिपुरुषं लक्ष्मण अग्रजं सीता अभिरामं रामं तत् चरण संनिकर्ष अभिरतः परमभागवतः हनुमान् सह किम्पुरुषैः अविरत भक्तिः उपास्ते ॥१॥

किम्पुरुषे वर्षे	किम्पुरुष वर्षमें	**संनिकर्ष**	सान्निध्यमें
भगवन्तं	भगवान्	**अभिरतः**	भलीप्रकार लगे
आदिपुरुषं	आदिपुरुष	**परमभागवतः**	परमभगवद-भक्त
लक्ष्मण अग्रजं	लक्ष्मणजीके बड़े भाई	**हनुमान्**	हनुमानजी
		किम्पुरुषैः सह	किम्पुरुषोंके साथ
सीता अभिरामं	सीताजीको प्रसन्न करनेवाले	**अविरत भक्तिः**	अविचल भक्तिसे
		उपास्ते	उपासना करते हैं ॥१॥
रामं	श्रीरामकी		
तत् चरण	उनके चरणोंके		

आर्ष्टिषेणेन सह गन्धर्वैरनुगीयमानां परमकल्याणीं भर्तृभगवत्कथां समुपशृणोति स्वयं चेदं गायति ॥२॥

आर्ष्टिषेणेन सह गन्धर्वैः अनुगीयमानां परमकल्याणीं भर्तृभगवत्कथां समुपशृणोति स्वयं च इदं गायति ॥२॥

सह गन्धर्वैः	गन्धर्वोंके साथ	**अनुगीयमानां**	नित्य गायी जाती
आर्ष्टिषेणेन	आर्ष्टिसेन द्वारा	**परमकल्याणीं**	परमकल्याणदायिनी

भर्तृ भगवत्कथां	अपने स्वामी भगवान्‌की कथा	**स्वयं च**	स्वयं भी
समुपशृणोति	भली प्रकार सुनते हैं।	**इदं गायति**	यह गाते हैं ॥२॥

*श्रीहनुमान उवाच–**

ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मन उपासितलोकाय नमः साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नम इति ॥३॥

ॐ नमः भगवते उत्तमश्लोकाय नमः आर्य लक्षणशील व्रताय नमः उपशिक्षित आत्मन उपासित लोकाय नमः साधुवाद निकषणाय नमः ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नमः इति ॥३॥

ॐ भगवते	ओंकार स्वरूप भगवान्	**साधुवाद**	सत्पुरुषताकी (परीक्षाके लिए)
उत्तम श्लोकाय	उत्तम कीर्तिको	**निकषणाय नमः**	कसौटीके समानको नमस्कार।
नमः	नमस्कार,	**ब्रह्मण्यदेवाय**	ब्राह्मणोंको देवता माननेवाले
आर्य	सत्पुरुषोंके	**महापुरुषाय**	महापुरुष (पुरुषोत्तम)
लक्षणशील	लक्षण, आचरण,	**महाराजाय**	महाराजको
व्रताय नमः	नियमनिष्ठको नमस्कार,	**नमः**	नमस्कार।
उपशिक्षित	संयत	**इति**	इस प्रकार ॥३॥
आत्मन	चित्त		
उपासितलोकाय	लोकाराधकको		
नमः	नमस्कार।		

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

यत्तद्विशुद्धानुभवमात्रमेकं
स्वतेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थम् ।
प्रत्यक् प्रशान्तं सुधियोपलम्भनं
ह्यनामरूपं निरहं प्रपद्ये ॥४॥

यत् तत् विशुद्ध अनुभव मात्रं एकं स्वतेजसा ध्वस्त गुण व्यवस्थं प्रत्यक् प्रशान्तं सुधियः उपलम्भनं हि अनाम रूपं निः अहं प्रपद्ये ॥४॥

यत्	जो	**प्रत्यक्**	अन्तरात्मा,
विशुद्ध अनुभव	अनुभव	**प्रशान्तं**	अत्यन्त शान्त
मात्रं	स्वरूप,	**सुधियः**	शुद्ध बुद्धिमें
एकं	अद्वितीय	**उपलम्भनं**	लक्षित होनेवाले
स्वतेजसा	अपने तेजसे	**हि अनाम रूपं**	क्योंकि नाम-रूप रहित हैं
गुण व्यवस्थं	त्रिगुणोंकी व्यवस्था (प्रपंच)का	**तत् निः अहं**	उस अहंकारहीनकी
ध्वस्त	निरास किए	**प्रपद्ये**	शरण हूँ ॥४॥

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं
रक्षोवधायैव न केवलं विभोः ।
कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः
सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य ॥५॥

मर्त्य अवतारः तु इह मर्त्यशिक्षणं रक्षः वधाय एव न केवलं विभोः कुतः अन्यथा स्यात् रमतः स्व आत्मनः सीताकृतानि व्यसनानि ईश्वरस्य ॥५॥

विभोः	सर्वव्यापकका	**मर्त्यशिक्षणं**	मनुष्योंको शिक्षा देनेके लिए हुआ ।
इह	इस पृथ्वीपर	**केवलं**	केवल
मर्त्य अवतारः	मनुष्यावतार		
तु	तो		

रक्षः	राक्षसोंको
वधाय एव	मारनेके लिए ही
न	नहीं हुआ,
अन्यथा	नहीं तो
स्व आत्मनः	अपने आत्मामें ही
रमतः	रमण करते हुए
सीताकृतानि	सीताजीके द्वारा (उनके वियोगमें)
व्यसनानि	दुःख
ईश्वरस्य	सर्वेश्वरको
कुतः	कहांसे होंगे ॥५॥

न वै स आत्माऽऽत्मवतां सुहृत्तमः
सक्तस्त्रिलोक्यां भगवान् वासुदेवः ।
न स्त्रीकृतं कश्मलमश्नुवीत
न लक्ष्मणं चापि विहातुमर्हति ॥६॥

न वै स आत्मा आत्मवतां सुहृत्तमः सक्तः त्रिलोक्यां भगवान् वासुदेवः न स्त्रीकृतं कश्मलं अश्नुवीत न लक्ष्मणं च अपि विहातुं अर्हति ॥६॥

स वै	वे निश्चय ही
आत्मवतां	धीर-पुरुषोंके
आत्मा	आत्मा (तथा)
सुहृत्तमः	परम-सुहृद
भगवान्	भगवान्
वासुदेवः	वासुदेव
त्रिलोक्यां	त्रिलोकीमें (कहीं भी)
सक्तः न	आसक्त नहीं होते (अतः)
स्त्रीकृतं	पत्नीके लिए
कश्मलं	कष्ट
न अश्नुवीत	नहीं पा सकते
च लक्ष्मणं	और लक्ष्मणको
अपि	भी
विहातुं	त्याग
न अर्हति	नहीं सकते ॥६॥

न जन्म नूनं महतो न सौभगं
न वाङ् न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः ।
तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकस-
श्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः ॥७॥

न जन्म नूनं महतः न सौभगं न वाङ् न बुद्धिः न आकृतिः तोष हेतुः तैः यत् विसृष्टान् अपि नः वनौकसः चकार सख्ये बत लक्ष्मण अग्रजः ॥७॥

तोष हेतुः	(आपको) सन्तुष्ट करनेका कारण	**यत्**	क्योंकि
नूनं	निश्चय	**तैः**	इन
महतः जन्म न	उत्तम कुलमें जन्म नहीं,	**विसृष्टान्**	सबसे रहित होनेपर
सौभगं न	सुन्दरता नहीं,	**अपि**	भी
वाङ् न	बोलनेकी चतुराई नहीं,	**नः वनौकसः**	हम वन-वासियोंसे
बुद्धिः न	बुद्धिमानी नहीं	**लक्ष्मण अग्रजः**	लक्ष्मणजी के बड़े भाईने
आकृतिः न	आकृति नहीं होती	**बत**	अहो,
		सख्ये चकार	मित्रता की ॥७॥

सुरोऽसुरो वाप्यथ वानरो नरः
सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम् ।
भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं
य उत्तराननयत्कोसलान्दिवमिति ॥८॥

सुरः असुरः वा अपि अथ वानरः नरः सर्वात्मना यः सुकृतज्ञं उत्तमं भजेत रामं मनुज आकृतिं हरिं यः उत्तरान् अनयत् कोसलान् दिवं इति ॥८॥

सुरः	देवता हो	**भजेत**	भजन करे
वा असुरः	या असुर,	**मनुज**	(वे) मनुष्य
वानरः	वानर हो	**आकृतिं**	रूपमें
अथ नरः	या मनुष्य	**हरिं**	श्रीहरि हैं
अपि यः	कोई भी जो	**यः उत्तरान्**	जो उत्तरी
सर्वात्मना	सम्पूर्ण हृदयसे	**कोसलान्**	कोसल (अयोध्या) वासियोंको
उत्तमं	सर्वश्रेष्ठ	**दिवं अनयत्**	अपने धाम ले गये,
सुकृतज्ञं	अत्यन्त कृतज्ञ	**इति**	इस प्रकार ॥८॥
रामं	श्रीरामका		

श्रीशुक उवाच-*

भारतेऽपि वर्षे भगवान्नरनारायणाख्य आकल्पान्तमुपचितधर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्योपशमोपरमात्मोपलम्भनमनुग्रहायात्मवतामनुकम्पया तपोऽव्यक्तगतिश्चरति ॥९॥

भारते अपि वर्षे भगवान् नर नारायण आख्य आकल्पान्तं उपचित धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य उपशमः परमात्म उपलम्भनं अनुग्रहाय आत्मवतां अनुकम्पया तपः अव्यक्त गतिः चरति ॥९॥

भारते वर्षे अपि	भारत वर्षमें भी	**धर्म ज्ञान**	धर्म, ज्ञान,
नर	नर	**वैराग्य**	वैराग्य
नारायण आख्य	नारायण नामसे	**ऐश्वर्य**	ऐश्वर्य,
भगवान्	भगवान्	**उपशमः**	शान्ति (तथा)
अनुग्रहाय	दयावश	**परमात्म**	परमात्माको
आत्मवतां	संयमी पुरुषोंपर	**उपलम्भनं**	प्राप्त कराने वाला
अनुकम्पया	कृपा करके	**तपः**	तप
आकल्पान्तं	कल्पके प्रारम्भसे अन्त तक	**अव्यक्त गतिः**	अव्यक्त रहकर
		चरति	करते हैं ॥९॥

तं भगवान्नारदो वर्णाश्रमवतीभिर्भारतीभिः प्रजाभिर्भगवत्प्रोक्ताभ्यां सांख्ययोगाभ्यां भगवदनुभावोपवर्णनं सावर्णेरुपदेक्ष्यमाणः परमभक्तिभावेनोपसरति इदं चाभिगृणाति ॥१०॥

तं भगवान् नारदः वर्ण आश्रमवतीभिः भारतीभिः प्रजाभिः भगवत् प्रोक्ताभ्यां सांख्य योगाभ्यां भगवत् अनुभाव उपवर्णनं सावर्णेः उपदेक्ष्यमाणः परमभक्ति भावेन उपसरति इदं च अभिगृणाति ॥१०॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

भगवान् नारदः	भगवान् नारद
भगवत्	(स्वयं) भगवान्के द्वारा
प्रोक्ताभ्यां	उपदिष्ट
सांख्य योगाभ्यां	सांख्य और योग-शास्त्र सहित
भगवत्	भगवान्के
अनुभाव	प्रभावका
उपवर्णनं	वर्णन (करनेवाले पाञ्चरात्र) का
सावर्णेः	(आगामी मनु) सावर्णिको
उपदेक्ष्यमाणः	उपदेश करते हुए
वर्ण आश्रम-वतीभिः	वर्ण-आश्रम धर्मका पालन करनेवाली
भारतीभिः	भारतीय
प्रजाभिः	प्रजाके साथ
परमभक्ति	परमभक्ति
भावेन	भावसे
तं उपसरति	उन (नर-नारायण) के समीप जाकर
इदं च	यह (जप) करते
अभिगृणाति	और गाते हैं ॥१०॥

नारद उवाच■

ॐ नमो भगवते उपशमशीलायोपरतानात्म्याय नमोऽकिञ्चनवित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय परमहंसपरमगुरवे आत्मारामाधिपतये नमो नम इति ॥११॥

ॐ नमः भगवते उपशम शीलाय उपरत अनात्म्याय नमः अकिञ्चन वित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय परमहंस परमगुरवे आत्माराम अधिपतये नमो नमः इति ॥११॥

ॐ भगवते	ॐ स्वरूप भगवान्
उपशम शीलाय	शान्त स्वरूपको
नमः	नमस्कार
उपरत	अनात्म
अनात्म्याय	पदार्थोंसे विरक्त
अकिञ्चन	निर्धनोंके
वित्ताय नमः	परम-धनको नमस्कार
ऋषिऋषभाय	ऋषिश्रेष्ठ
परमहंस	परमहंसोंके
परमगुरवे	परमगुरु
आत्माराम	आत्मारामोंके
अधिपतये	अधीश्वर
नरनारायणाय	नर-नारायणको
नमो नमः	बार-बार नमस्कार ॥११॥

■ यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

गायति चेदम्—

गायति च इदं•

इदं	यह	। **गायति च**	गाते भी हैं

कर्तास्य सर्गादिषु यो न बध्यते
न हन्यते देहगतोऽपि दैहिकैः ।
द्रष्टुर्न दृग्यस्य गुणैर्विदूष्यते
तस्मै नमोऽसक्तविविक्तसाक्षिणे ॥१२॥

कर्ता अस्य सर्गादिषु यः न बध्यते न हन्यते देहगतः अपि दैहिकैः द्रष्टुः न दृक् यस्य गुणैः विदूष्यते तस्मै नमः असक्त विविक्त साक्षिणे ॥१२॥

अस्य सर्गादिषु	इस संसारकी सृष्टि आदिके	**यस्य द्रष्टुः**	जिस द्रष्टाकी
		दृक् गुणैः	दृष्टि गुणोंसे
कर्ता	कर्ता होनेपर भी	**विदूष्यते न**	दूषित नहीं होती,
यः न बध्यते	जो (कर्म) बन्धनमें नहीं पड़ते,	**तस्मै**	उन
		असक्त	अनासक्त
देहगतः अपि	शरीरोंमें रहनेपर भी	**विविक्त साक्षिणे**	विशुद्ध साक्षी स्वरूपको
दैहिकैः	शरीरके धर्म (भूख-प्यासादि) से	**नमः**	नमस्कार ॥१२॥
हन्यते न	पीड़ित नहीं होते,		

इदं हि योगेश्वर योगनैपुणं
हिरण्यगर्भो भगवान्जगाद यत् ।
यदन्तकाले त्वयि निर्गुणे मनो
भक्त्या दधीतोज्झितदुष्कलेवरः ॥१३॥

• यह वाक्य श्रीशुकदेवजीका है; किन्तु इतने अंशके लिए उवाच पृथक करना उपयुक्त नहीं लगता ।

इदं हि योगेश्वर योगनैपुणं हिरण्यगर्भः भगवान् जगाद यत् यत् अन्तकाले त्वयि निर्गुणे मनः भक्त्या दधीत उज्झित दुष्कलेवरः ॥१३॥

योगेश्वर	योगेश्वर !	**यत् अन्तकाले**	जो अन्त (मरने) के समय
इदं हि	यही	**उज्झित**	देहाभिमान
योगनैपुणं	योग साधनकी निपुणता हैं	**दुष्कलेवरः**	त्यागकर
यत्	जिसे	**भक्त्या**	भक्तिसे
भगवान्	भगवान्	**त्वयि निर्गुणे**	आप निर्गुणमें
हिरण्यगर्भः	ब्रह्माने	**मनः दधीत**	मन लगावे ॥१३॥
जगाद	बतलाया है		

यथैहिकामुष्मिककामलम्पटः
सुतेषु दारेषु धनेषु चिन्तयन् ।
शङ्केत विद्वान् कुकलेवरात्ययाद्
यस्तस्य यत्नः श्रम एव केवलम् ॥१४॥

यथा ऐहिक अमुष्मिक कामलम्पटः सुतेषु दारेषु धनेषु चिन्तयन् शङ्केत विद्वान् कुकलेवर अत्ययात् यः तस्य यत्नः श्रम एव केवलम् ॥१४॥

यथा	जैसे	**विद्वान्**	(वैसे ही) विद्वान् (यदि)
ऐहिक	लौकिक,	**कुकलेवर**	(इस) निन्दित शरीरकी
अमुष्मिक	पारलौकिक	**अत्ययात्**	मरणकी
कामलम्पटः	भोगेच्छु	**शङ्केत**	चिन्ता करे तो
सुतेषु दारेषु	पुत्र-स्त्री	**तस्य यः यत्नः**	उसका जो साधन है
धनेषु	धनकी	**केवलं श्रम एव**	केवल परिश्रम ही (व्यर्थ) है ॥१४॥
चिन्तयन्	चिन्ता करता रहता है		

तन्नः प्रभो त्वं कुकलेवरार्पितां
त्वन्मायया हंममतामधोक्षज ।

भिन्द्याम येनाशु वयं सुदुर्भिदं
विधेहि योगं त्वयि नः स्वभावमिति ॥१५॥

तत् नः प्रभो त्वं कुकलेवर अर्पितां त्वत् मायया अहं ममतां अधोक्षज भिन्द्याम येन आशु वयं सुदुर्भिदां विधेहि योगं त्वयि नः स्वभावम् इति ॥१५॥

अधोक्षज	अधोक्षज !	**येन्**	(गांठको) जिससे
प्रभो	प्रभो !	**वयं आशु**	हम शीघ्र
तत्	अतः	**भिन्द्याम**	काट सकें (वह)
त्वत् मायया	आपकी मायासे	**त्वयि योगं**	आपमें लगे रहें
कुकलेवर	इस निन्दित शरीरमें	**इति**	ऐसा
अर्पितां	लगायी	**नः स्वभावं**	हमारा स्वभाव
नः	हमारी	**विधेहि**	बना दीजिये ॥१५॥
अहं ममतां	अहंता-ममताको		
सुदुर्भिदां	बहुत कठिनाईसे कटनेवाली		

*श्रीशुक उवाच–**

भारतेऽप्यस्मिन् वर्षे सरिच्छैलाः सन्ति बहवो मलयो मङ्गलप्रस्थो मैनाकस्त्रिकूट ऋषभः कूटकः कोल्लकः सह्यो देवगिरिर्ऋष्यमूकः श्रीशैलो वेङ्कटो महेन्द्रो वारिधारो विन्ध्यः शुक्तिमानृक्षगिरिः पारियात्रो द्रोणश्चित्रकूटो गोवर्धनो रैवतकः ककुभो नीलो गोकामुख इन्द्रकीलः कामगिरिरिति चान्ये च शतसहस्रशः शैलास्तेषां नितम्बप्रभवा नदा नद्यश्च सन्त्यसङ्ख्याताः ॥१६॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

भारते अपि अस्मिन् वर्षे सरित् शैलाः सन्ति बहवः मलयः मङ्गलप्रस्थः मैनाकः त्रिकूट ऋषभः कूटकः कोल्लकः सह्यः देवगिरिः ऋष्यमूकः श्रीशैलः वेङ्कटः महेन्द्रः वारिधारः विन्ध्यः शुक्तिमान् ऋक्षगिरिः पारियात्रः द्रोणः चित्रकूटः गोवर्धनः रैवतकः ककुभः नीलः गोकामुखः इन्द्रकीलः कामगिरिः इति च अन्ये च शतसहस्रशः शैलाः तेषां नितम्बप्रभवा नदा नद्यः च सन्ति असङ्ख्याताः ॥१६॥

अस्मिन्	इस
भारते वर्षे अपि	भारतवर्षमें भी
सरित् शैलाः	नदियाँ और पर्वत
बहवः सन्ति	बहुतसे हैं (जैसे)
मलयः	मलय,
मङ्गलप्रस्थः	मंङ्गलप्रस्थ,
मैनाकः	मैनाक,
त्रिकूटः	त्रिकूट,
ऋषभः	ऋषभ,
कूटकः	कूटक,
कोल्लकः	कोल्लक,
सह्यः	सह्य,
देवगिरिः	देवगिरि,
ऋष्यमूकः	ऋष्यमूक
श्रीशैलः	श्रीशैल,
वेङ्कटः	वेङ्कट,
महेन्द्रः	महेन्द्र,
वारिधारः	वारिधार,
विन्ध्यः	विन्ध्य,
शुक्तिमान्	शुक्तिमान,
ऋक्षगिरिः	ऋक्षगिरि,
पारिमात्रः	परिमात्र,
द्रोणः	द्रोण,
चित्रकूटः	चित्रकूट,
गोवर्धनः	गोवर्धन,
रैवतकः	रैवतक,
ककुभः नीलः	ककुभ, नील,
गोकामुखः	गोकामुख,
इन्द्रकीलः	इन्द्रकील,
कामगिरिः	कामगिरि
इति	इसप्रकार (ये)
च अन्ये	और दूसरे
शतसहस्रशः	सैकड़ों-हजारों
शैलाः	पर्वत हैं।
तेषां	उनके
नितम्बप्रभवा	मध्यभागसे निकलनेवाली
नदा नद्यः च	नद और नदियां भी
असंख्याताः	असंख्य
सन्ति	हैं ॥१६॥■

■ पर्वतोंके तथा नदियोंके भी वर्तमान नाम तथा स्थानका पता भूगोलके विद्वानोंके शोधका विषय है। इनमें अनेक लुप्त हो गये हो सकते हैं।

एतासामपो भारत्यः प्रजा नामभिरेव पुनन्तीनामात्मना चोपस्पृशन्ति ॥१७॥

एतासां अपः भारत्यः प्रजा नामभिः एव पुनन्तीनां आत्मना च उपस्पृशन्ति ॥१७॥

नामभिः	(केवल) नामसे	**भारत्यः प्रजा**	भारतीय प्रजा
एव	ही	**आत्मना च**	शरीरसे भी
पुनन्तीनां	पवित्रकर देनेवाली	**उपस्पृशन्ति**	स्पर्श करती है ॥१७॥
एतासां	इनके		
अपः	जल		

चन्द्रवसा ताम्रपर्णी अवटोदा कृतमाला वैहायसी कावेरी वेणी पयस्विनी शर्करावर्ता तुङ्गभद्रा कृष्णा वेण्या भीमरथी गोदावरी निर्विन्ध्या पयोष्णी तापी रेवा सुरसा नर्मदा चर्मण्वती सिन्धुरन्धा शोणश्च नदौ महानदी वेदस्मृतिर्ऋषिकुल्या त्रिसामा कौशिकी मन्दाकिनी यमुना सरस्वती दृषद्वती गोमती सरयू रोधस्वती सप्तवती सुषोमा शतद्रूश्चन्द्रभागा मरुद्वृधा वितस्ता असिन्की विश्वेति महानद्यः ॥१८॥

चन्द्रवसा, ताम्रपर्णी, अवटोदा, कृतमाला, वैहायसी, कावेरी, वेणी, पयस्विनी, शर्करावर्ता, तुङ्गभद्रा, कृष्णा, वेण्या, भीमरथी, गोदावरी, निर्विन्ध्या, पयोष्णी, तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा, चर्मण्वती, सिन्धुः अन्धः, शोणः च नदौ (ये नद हैं।) महानदी, वेदस्मृतिः, ऋषिकुल्या, त्रिसामा, कौशिकी, मन्दाकिनी, यमुना, सरस्वती, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधस्वती, सप्तस्वती, सुषोमा, शतद्रूः चन्द्रभागा, मरुद्वृधा, वितस्ता, असिन्की, विश्वा, इति महानद्यः ॥१८॥

इति महानद्यः ये महानदियाँ हैं ॥१८॥

अस्मिन्नेव वर्षे पुरुषैर्लब्धजन्मभिः शुक्ललोहितकृष्णवर्णेन स्वारब्धेन कर्मणा दिव्यमानुषनारकगतयो बह्व्यश्च आत्मन आनुपूर्व्येण सर्वा ह्येव सर्वेषां विधीयन्ते यथावर्णविधानमपवर्गश्चापि भवति ॥१९॥

अस्मिन् एव वर्षे पुरुषैः लब्ध जन्मभिः शुक्ललोहित कृष्ण वर्णेन स्व आरब्धेन कर्मणा दिव्य मानुष नारक गतयः बह्व्यः च आत्मन आनुपूर्व्येण सर्वा हि एव सर्वेषां विधीयन्ते यथा वर्ण विधानं अपवर्गः च अपि भवति ॥१९॥

अस्मिन् एव वर्षे	इस वर्षमें ही	**आत्मन**	अपने
लब्ध जन्मभिः	जन्म लेने वाले	**आनुपूर्व्येण**	क्रमानुसार
पुरुषैः	पुरुषोंको	**सर्वा हि एव**	सभी ही (गतियाँ)
स्व आरब्धेन	अपने किये हुये	**सर्वेषां**	सबकी
शुक्ललोहित	सात्त्विक, राजस,	√ **विधीयन्ते**	होती हैं।
कृष्ण	तामस	**च यथा वर्ण**	और अपने वर्णके
कर्मणा	कर्मोंके अनुसार	**विधानं**	अनुसार (धर्माचरण
दिव्य मानुष	देवता, मनुष्य		करनेसे)
नारक	और नारकीय	**अपवर्गः**	मोक्ष
बह्व्यश्च गतयः	बहुत-सी गतियां	**अपि भवति**	भी होता है ॥१९॥

योऽसौ भगवति सर्वभूतात्मन्यनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयने परमात्मनि वासुदेवेऽनन्यनिमित्तभक्तियोगलक्षणो नानागतिनिमित्ताविद्याग्रन्थिरन्धनद्वारेण यदा हि महापुरुषपुरुषप्रसङ्गः ॥२०॥

यः असौ भगवति सर्वभूत आत्मनि अनात्म्ये अनिरुक्ते अनिलयने परमात्मनि वासुदेवे अनन्य निमित्त भक्तियोग लक्षणः नानागति निमित्त अविद्या ग्रन्थि रन्धन द्वारेण यदा हि महापुरुष पुरुष प्रसङ्गः ॥२०

यः असौ	जो यह (मोक्ष है वह)
सर्वभूत	समस्त प्राणियोंके
आत्मनि	आत्मा
अनात्म्ये	सर्वदोष रहित,
अनिरुक्ते	अनिर्वचनीय,
अनिलयने	निराधार,
परमात्मनि	परमात्मा
वासुदेवे	वासुदेवमें
अनन्य निमित्त	अनन्य निष्काम भावसे
भक्तियोग	भक्ति-योग
लक्षणः	स्वरूप ही है।
नानागति	नाना गतियोंके
निमित्त	कारण
अविद्या ग्रन्थि	अविद्या ग्रन्थिको
रन्धन द्वारेण	भस्म कर देनेके मार्गसे (प्राप्त होती है)
हि यदा	क्योंकि जब
महापुरुष पुरुष	पुरुषोत्तम भगवान्‌के भक्तोंका
प्रसङ्गः	सङ्ग मिलता है (तब वह भक्ति प्राप्त होती है) ॥२०

एतदेव हि देवा गायन्ति—

एतत् एव हि देवा गायन्ति–

देवा	देवता
हि	इसीलिए
एतत् एव	इसी प्रकार
गायन्ति	गाते हैं।

अहो अमीषां किमकारि शोभनं
प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे
मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः ॥२१॥

अहो अमीषां किं अकारि शोभनं प्रसन्न येषां स्वित् उत स्वयं हरिः यैः जन्म लब्धं नृषु भारत अजिरे मुकुन्दसेवा उपयिकं स्पृहा हि नः ॥२१॥

अहो अमीषां	अहो, इन लोगोंने
किं शोभनं	क्या पुण्य
अकारि	किया है
उत स्वित	अथवा तो
येषां स्वयं हरिः	जिनपर स्वयं श्रीहरि
प्रसन्न	प्रसन्न हैं,
यैः	जिससे

मुकुन्दसेवा	श्रीमुकुन्दकी सेवाके	जन्म लब्धं	जन्म पाया,
उपयिकं	उपयुक्त	हि नः स्पृहा	क्योंकि हम भी
भारत अजिरे	भारतवर्षके आंगनमें		(इस सौभाग्यकी) स्पृहा करते हैं ॥२१॥
नृषु	मनुष्य-योनिमें		

किं दुष्करैर्नः क्रतुभिस्तपोव्रतै-
र्दानादिभिर्वाद्युजयेन फल्गुना ।
न यत्र नारायणपादपङ्कज-
स्मृतिः प्रमुष्टातिशयेन्द्रियोत्सवात् ॥२२॥

किं दुष्करैः नः क्रतुभिः तपः व्रतैः दानादिभिः वा द्युजयेन फल्गुना न यत्र नारायण पादपङ्कज स्मृतिः प्रमुष्टा अतिशय इन्द्रिय उत्सवात् ॥२२॥

नः	हमारे	नारायण	श्रीनारायणके
फल्गुना	तुच्छ	पादपङ्कज	चरण-कमलकी
द्युजयेन	✓ स्वर्गदायी	स्मृतिः	स्मृति
दुष्करैः	कठिनाईसे किये गये	अतिशय	बहुत अधिक
क्रतुभिः	यज्ञोंसे,	इन्द्रिय	ऐन्द्रियक
तपः व्रतैं	तपस्यासे, व्रतसे,	उत्सवात्	भोग भोगनेसे
वा दानादिभिः	अथवा दानादिसे,	प्रमुष्टा	छिन गयी,
किं	क्या लाभ	न	नहीं रही ॥२२॥
यत्र	जहां		

कल्पायुषां स्थानजयात्पुनर्भवात्
क्षणायुषां भारतभूजयो वरम् ।
क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः
संन्यस्य संयान्त्यभयं पदं हरेः ॥२३॥

कल्प आयुषां स्थान जयात् पुनर्भवात् क्षण आयुषां भारत भूजयः वरं क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः सन्यस्य संयाति अभयं पदं हरेः ॥२३॥

कल्प आयुषां	कल्प पर्यन्त आयु वालोंके	**मनस्विनः**	मनस्वी
स्थानजयात्	स्थान (ब्रह्मलोक) पानेसे,	**मर्त्येन**	मनुष्य
पुनर्भवात्	जहाँसे फिर जन्म लेना पड़ता है	**क्षणेन**	एक क्षणमें
क्षण आयुषां	क्षण जीवियोंकी	**कृतं संन्यस्य**	अपने सब कर्म (भगवत्) अर्पित करके
भारतभूजयः	भारत भूमि पाना	**हरेः अभयं पदं**	श्रीहरिके अभय पदको
वरं	श्रेष्ठ है (क्योंकि)	**संयान्ति**	पहुँच जाते हैं ॥२३॥

न यत्र वैकुण्ठकथासुधापगा
न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः ।
न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः ।
सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम् ॥२४॥

न यत्र वैकुण्ठ कथा सुधा आपगा न साधवः भागवताः तत् आश्रयाः न यत्र यज्ञेश मखा महोत्सवाः सुरेश लोकः अपि न वै स सेव्यताम् ॥२४॥

यत्र	जहाँ	**यत्र यज्ञेश**	जहाँ यज्ञेश भगवान्के
वैकुण्ठ कथा	भगवान् वैकुण्ठनाथ की कथा रूपी	**मखाः**	यज्ञोंका
सुधा आपगा न	अमृत-सरिता नहीं है,	**महोत्सवाः**	महोत्सव
तत् आश्रयाः	उनकी ही शरणमें रहने वाले	**न**	नहीं होता
भागवताः	भगवद्-भक्त	**स वै**	वह निश्चय
साधवः न	साधु नहीं है,	**सुरेशः लोकः**	इन्द्रलोक हो तो
		अपि	भी
		न सेव्यतां	(उसका) सेवन मत करे ॥२४॥

प्राप्ता नृजातिं त्विह ये च जन्तवो
ज्ञानक्रियाद्रव्यकलापसम्भृताम् ।

न वै यतेरन्नपुनर्भवाय ते
भूयो वनौका इव यान्ति बन्धनम् ॥२५॥

प्राप्ता नृजातिं तु इह ये च जन्तवः ज्ञान क्रिया द्रव्य कलाप सम्भृतां न वै यतेरन् अपुनर्भवाय ते भूयः वनौका इव यान्ति बन्धनम् ॥२५॥

इह तु ये	इस भारतमें हो जो	**अपुनर्भवाय**	मोक्षके लिए
जन्तवः	प्राणी	**न च यतेरन्**	प्रयत्न नहीं ही करते
ज्ञान क्रिया	ज्ञान (बुद्धि) कर्म	**ते भूयः**	वे फिरसे
द्रव्य कलाप	पदार्थादि सामग्रीसे	**वनौका इव**	जंगली-पशु-पक्षियोंके समान
सम्भृतां	सम्पन्न		
नृजातिं प्राप्ता	मनुष्य-जन्म पाकर	**बन्धनं यान्ति**	बन्धनमें पड़ते हैं ॥२५॥
वै	निश्चित रूपसे		

यैः श्रद्धया बर्हिषि भागशो हवि-
निरुप्तमिष्टं विधिमन्त्रवस्तुतः ।
एकः पृथङ्नामभिराहुतो मुदा
गृह्णाति पूर्णः स्वयमाशिषां प्रभुः ॥२६॥

यैः श्रद्धया बर्हिषि भागशः हविः निरुप्तम् इष्टं विधि मन्त्र वस्तुतः एकः पृथङ् नामभिः आहुतः मुदा गृह्णाति पूर्णः स्वयं आशिषां प्रभुः ॥२६॥

यैः	जिन (भारत वासियों) के द्वारा	**मन्त्र वस्तुतः**	मन्त्र, पदार्थ पूर्वक
श्रद्धया	श्रद्धापूर्वक	**निरुप्तं आहुतः**	निरूपित करके आहुति देनेपर
पृथङ् नामभिः	(इन्द्रादि) अलग-अलग नामोंसे	**एकः पूर्णः**	एक परिपूर्ण
बर्हिषि	यज्ञमें	**स्वयं आशिषां**	स्वयं सब कामनाओंके
भागशः हविः	विभाग पूर्वक हवि	**प्रभुः**	स्वामी (प्रदाता)
इष्टं विधि	देवता, विधि,	**मुदा**	प्रसन्नता पूर्वक
		गृह्णाति	ग्रहण करते हैं ॥२६॥

सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां
नैवार्थदो यत्पुनरर्थिता यतः ।
स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छता-
मिच्छापिधानं निजपादपल्लवम् ॥२७॥

सत्यं दिशति अर्थितं अर्थितः नृणां न एव अर्थदः यत् पुनः अर्थिता यतः स्वयं विधत्ते भजतां अनिच्छतां इच्छापिधानं निज पादपल्लवम् ॥२७॥

सत्यं	यह सच है कि		जाता है (अतः)
नृणां अर्थितः	मनुष्योंके चाहनेसे	**स्वयं**	भगवान् स्वयं
अर्थितं	उनके चाहे पदार्थ	**इच्छापिधानं**	इच्छाओंको बन्द
न दिशति	(भगवान्) नहीं देते		कर देनेवाले
अर्थदः	भोग-पदार्थ देने	**निज**	अपने
	वाले (वे)	**पादपल्लवं**	चरण-पल्लव
न एव	नहीं ही हैं।	**भजतां**	भजन करनेवालेको
यतः	क्योंकि (पानेवाला)	**अनिच्छतां**	न चाहनेपर भी
पुनः अर्थिता	फिर मंगन ही रह	**विधत्ते**	प्रदान करते हैं ॥२७

यद्यत्र नः स्वर्गसुखावशेषितं
स्विष्टस्य सूक्तस्य कृतस्य शोभनम् ।
तेनाजनाभे स्मृतिमज्जन्म नः स्याद्
वर्षे हरिर्यद्भजतां शं तनोति ॥२८॥

यत् अत्र नः स्वर्गसुख अवशेषितं स्विष्टस्य सूक्तस्य कृतस्य शोभनं तेन अजनाभे स्मृतिमत् जन्म नः स्यात् वर्षे हरिः यत् भजतां शं तनोति ॥२८

अत्र नः	यहाँ हमारा	**कृतस्य**	कर्मोंका
स्वर्गसुख	स्वर्ग-सुख (भोगनेसे)	**शोभनं**	पुण्य
यत् स्विष्टस्य	जो (पूर्वकृत)	**अवशेषितं**	बचा हो
	यज्ञका	**तेन**	उस (के फल) से
सूक्तस्य	प्रवचनका,	**अजनाभे**	अजनाभ (भारत) में

नः स्मृतिमत्	हमारा (भगवान्‌की) स्मृति युक्त	**भजतां**	भजन करनेवालों का
		यत्	जो
जन्म स्यात्	जन्म हो,	**हरिः शं तनोति**	श्रीहरि कल्याण करते हैं ॥२८॥
वर्षे	जिस वर्षमें		

श्रीशुक उवाच–

जम्बूद्वीपस्य च राजन्नुपद्वीपानष्टौ हैक उपदिशन्ति सगरात्मजैरश्वान्वेषण इमां महीं परितो निखनद्भिरुपकल्पितान् ॥२९॥

जम्बूद्वीपस्य च राजन् उपद्वीपान् अष्टौ ह एक उपदिशन्ति सगर आत्मजैः अश्व अन्वेषण इमां महीं परितः निखनद्भिः उपकल्पितान् ॥२९॥

राजन्	परीक्षित् !	**निखनद्भिः**	खोदते समय
सगर आत्मजैः	राजा सागरके पुत्रों द्वारा	**उपकल्पितान्**	बनाये गये
		जम्बूद्वीपस्य	जम्बूद्वीपके
अश्व अन्वेषण	(यज्ञीय) अश्वके ढूंढ़नेमें	**ह एक**	निश्चित कोई
		अष्टौ उपद्वीपान्	आठ उपद्वीप
इमां महीं	इस पृथ्वीको	**उपदिशन्ति**	बतलाते हैं ॥२९॥
परितः	चारों ओरसे		

तद्यथा स्वर्णप्रस्थश्चन्द्रशुक्ल आवर्तनो रमणको मन्दरहरिणः पाञ्चजन्यः सिंहलो लङ्केति ॥३०॥

तत् यथा स्वर्णप्रस्थः चन्द्रशुक्लः आवर्तनः रमणकः मन्दरहरिणः पाञ्चजन्यः सिंहलः लङ्का इति ॥३०॥

तत् यथा	वे जैसे कि	**मन्दरहरिणः**	मन्दरहरिण,
स्वर्णप्रस्थः	स्वर्णप्रस्थ	**पाञ्चजन्यः**	पाञ्चजन्य
चन्द्रशुक्लः	चन्द्रशुक्ल,	**सिंहलः**	सिंहल
आवर्तनः	आवर्तन,	**लङ्का इति**	लङ्का, इस प्रकार हैं ॥३०॥
रमणकः	रमणक,		

एवं तव भारतोत्तम जम्बूद्वीपवर्षविभागो यथोपदेश-मुपवर्णित इति ॥३१॥

एवं तव भारत उत्तम जम्बूद्वीप वर्षविभागः यथा उपदेशं उपवर्णित इति ॥३१॥

भारत उत्तम	भरतवंशमें श्रेष्ठ परीक्षित !	**जम्बूद्वीप**	जम्बूद्वीपके
		वर्षविभागः	वर्षोंका विभाग
एवं तव	इस प्रकार तुमसे	**उपवर्णित इति**	वर्णन कर दिया है ॥३१॥
यथा उपदेशं	गुरु-मुखसे जैसा सुना था वैसा		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे जम्बूद्वीपवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

अथ विंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

अतः परं प्लक्षादीनां प्रमाणलक्षणसंस्थानतो वर्षविभाग उपवर्ण्यते ॥१॥

अतः परं प्लक्ष आदीनां प्रमाण लक्षण संस्थानतः वर्ष विभाग उपवर्ण्यते ॥१॥

अतः परं	इसके पश्चात्	**संस्थानतः**	स्थितिके अनुसार
प्लक्ष आदीनां	प्लक्ष आदि द्वीपोंका	**वर्षविभाग**	वर्ष-विभाग
प्रमाण	परिमाण	**उपवर्ण्यते**	वर्णन किया जा
लक्षण	चिह्न		रहा है ॥१॥

जम्बूद्वीपोऽयं यावत्प्रमाणविस्तारस्तावता क्षारोदधिना परिवेष्टितो यथा मेरुर्जम्ब्वाख्येन लवणोदधिरपि ततो द्विगुण-विशालेन प्लक्षाख्येन परिक्षिप्तो यथा परिखा बाह्योपवनेन। प्लक्षो जम्बूप्रमाणो द्वीपाख्याकरो हिरण्मय उत्थितो यत्राग्नि-रुपास्ते सप्तजिह्वस्तस्याधिपतिः प्रियव्रतात्मज इध्मजिह्वः स्वं द्वीपं सप्तवर्षाणि विभज्य सप्तवर्षनामभ्य आत्मजेभ्य आकलय्य स्वयमात्मयोगेनोपरराम ॥२॥

जम्बूद्वीपः अयं यावत् प्रमाण विस्तारः तावता क्षार उदधिना परिवेष्टितः यथा मेरुः जम्बू आख्येन लवण उदधिः अपि ततः द्विगुण विशालेन प्लक्ष आख्येन परिक्षिप्तः यथा परिखा बाह्य उपवनेना प्लक्षः जम्बू प्रमाणः द्वीप आख्यकरः हिरण्मय उत्थितः यत्र अग्निः उपास्ते सप्तजिह्वः तस्य अधिपतिः प्रियव्रत आत्मज इध्मजिह्वः स्वं द्वीपं सप्त वर्षाणि विभज्य सप्त वर्षनामभ्यः आत्मजेभ्यः आकलय्य स्वयं आत्मयोगेन उपरराम ॥२॥

अयं जम्बूद्वीपः	यह जम्बूद्वीप
यावत् प्रमाण	जितने परिमाणमें
विस्तारः	विस्तृत है
तावता	उतने ही बड़े
क्षार उदधिना	खारे समुद्रसे
परिवेष्टितः	चारों ओरसे घिरा है,
यथा मेरुः	जैसे सुमेरु
जम्बू आख्येन	जम्बू नामके द्वीपसे
लवण उदधिः	क्षार-समुद्र
अपि	भी
ततः	उस (समुद्र) से
द्विगुण विशालेन	दुगुने बड़े
प्लक्ष आख्येन	प्लक्ष नाम वाले (द्वीप) से
परिक्षिप्तः	चारों ओरसे घिरा है,
यथा परिखा	जैसे परकोटा
बाह्य उपवनेन	बाहरी बगीचेसे (घिरा होता है)
द्वीप आख्यकरः	उस द्वीपके नामका कारण,
हिरण्मय	स्वर्णमय
उत्थितः	और ऊँचा
प्लक्षः जम्बू-	(जम्बूद्वीप वाले)
प्रमाणः	जामुनके पेड़के बराबर वहां पाकड़ का पेड़ है।
यत्र सप्तजिह्वः	जहां सात जिह्वा वाले
अग्निः उपास्ते	अग्निकी उपासना होती है।
तस्य अधिपतिः	उस (द्वीप) के स्वामी
प्रियव्रत आत्मज	प्रियव्रतके पुत्र
इध्मजिह्वः	इध्मजिह्वने
स्वं द्वीपं	अपने (इस) द्वीपको
सप्त वर्षाणि	सात वर्षों (देशों) में
विभज्य	बांटकर
वर्षनामभ्यः	उन वर्षोंके ही नाम वाले
सप्त आत्मजेभ्य	अपने सात पुत्रोंको
आकलय्य	सौंपकर
स्वयं	स्वयं
आत्मयोगेन	आत्मयोगके द्वारा
उपरराम	उपरत हो गये ॥२॥

शिवं यवसं सुभद्रं शान्तं क्षेममभृतमभयमिति वर्षाणि तेषु गिरयो नद्यश्च सप्तैवाभिज्ञाताः ॥३॥

शिवं यवसं सुभद्रं शान्तं क्षेमं अमृतं अभयं इति वर्षाणि तेषु गिरयः नद्यः च सप्त एव अभिज्ञाताः ॥३॥

शिवं यवसं	शिव, यवस,
सुभद्रं शान्तं	सुभद्र, शान्त,
क्षेमं अमृतं	क्षेम, अमृत,
अभयं	अभय
इति वर्षाणि	इस नामके वर्ष (देश) हैं ।
तेषु गिरयः	उनमें पर्वत
च नद्यः	और नदियां
सप्त एव	सात-सात ही
अभिज्ञाताः	प्रसिद्ध हैं ॥३॥

मणिकूटो वज्रकूट इन्द्रसेनो ज्योतिष्मान् सुपर्णो हिरण्यष्ठीवो मेघमाल इति सेतुशैलाः । अरुणा नृम्णाऽऽङ्गिरसी सावित्री सुप्रभाता ऋतम्भरा सत्यम्भरा इति महानद्यः । यासां जलोपस्पर्शनविधूतरजस्तमसो हंसपतङ्गोर्ध्वायनसत्याङ्गसंज्ञाश्चत्वारो वर्णाः सहस्रायुषो विबुधोपमसन्दर्शनप्रजननाः स्वर्गद्वारं त्रय्या विद्यया भगवन्तं त्रयीमयं सूर्यमात्मानं यजन्ते ॥४॥

मणिकूटः वज्रकूटः इन्द्रसेनः ज्योतिष्मान् सुपर्णः हिरण्यष्ठीवः मेघमाल इति सेतुशैलाः । अरुणा नृम्णा आङ्गिरसी सावित्री सुप्रभाता ऋतम्भरा सत्यम्भरा इति महानद्य. यासां जल उपस्पर्शन विधूत रजः तमसः हंस पतङ्ग ऊर्ध्वायन सत्याङ्ग संज्ञाः चत्वारः वर्णाः सहस्र आयुषः विबुध उपम सन्दर्शन प्रजननाः स्वर्गद्वारं त्रय्या विद्यया भगवन्तं त्रयीमयं सूर्यं आत्मानं यजन्ते ॥४॥

मणिकूटः	मणिकूट,
वज्रकूटः	वज्रकूट,
इन्द्रसेनः	इन्द्रसेन,
ज्योतिष्मान्	ज्योतिष्मान्
सुपर्णः	सुपर्ण,
हिरण्यष्ठीवः	हिरण्यष्ठीव,
मेघमाल इति	मेघमाल, इस प्रकार
सेतुशैलाः	(सात) मर्यादा गिरि हैं ।
अरुणा नृम्णा	अरुणा, नृम्णा,
आङ्गिरसी	आङ्गिरसी,
सावित्री	सावित्री,
सुप्रभाता	सुप्रभाता,
ऋतम्भरा	ऋतम्भरा,
सत्यम्भरा	सत्यम्भरा,
इति महानद्यः	इस प्रकार (ये सात) महानदियां हैं ।
यासां जल	जिनके जलमें
उपस्पर्शन	स्नान करनेसे
विधूत रजः	धुले रजोगुण,
तमसः	तमोगुण
हंस पतङ्ग	हंस, पतङ्ग,

उर्ध्वायन	उर्ध्वायन,
सत्याङ्ग संज्ञाः	सत्याङ्ग नामवाले
चत्वारः वर्णाः	चारों वर्णोंके लोग
सहस्र	एक हजार वर्षकी
आयुषः	आयुवाले,
विबुध उपम	देवताओंके समान
सन्दर्शन	रूपवाले (तथा उन्हींके समान)
प्रजननाः	सन्तान उत्पन्न करनेवाले
त्रय्या विद्यया	त्रयी (कर्म, ज्ञान, उपासनारूप वेद) विद्या द्वारा
स्वर्गद्वारं	स्वर्गके द्वार भूत
आत्मानं	आत्मस्वरूप
भगवन्तं सूर्यं	भगवान सूर्यकी
यजन्ते	उपासना करते हैं ॥४॥

प्रत्नस्य विष्णो रूपं यत्सत्यस्यर्तस्य ब्रह्मणः ।
अमृतस्य च मृत्योश्च सूर्यमात्मानमीमहीति ॥५॥

प्रत्नस्य विष्णोः रूपं यत् सत्यस्य ऋतस्य ब्रह्मणः अमृतस्य च मृत्योः च सूर्यं आत्मानं ईमहि इति ॥५॥

इति	इस प्रकार (वे स्तुति करते हैं)
यत् प्रत्नस्य	जो पुराण-पुरुष
विष्णोः	भगवान् विष्णुके,
सत्यस्य	सत्य अनुष्ठान योग्य धर्म) के
ऋतस्य	ऋत (प्रतीत होने वाले धर्म) के,
अमृतस्य	अमरत्व (मोक्ष) के,
च मृत्योः	तथा मृत्युके
ब्रह्मणः	ब्रह्म (ज्योति-स्वरूप) के
रूपं	रूप हैं
आत्मानं सूर्यं	(उन) आत्मस्वरूप सूर्यकी
ईमहि	(हम) शरण हैं ॥५॥

प्लक्षादिषु पञ्चसु पुरुषाणामायुरिन्द्रियमोजः सहो बलं बुद्धि-विक्रम इति च सर्वेषामौत्पत्तिकी सिद्धिरविशेषेण वर्तते ॥६॥

प्लक्ष आदिषु पञ्चसु पुरुषाणां आयुः इन्द्रियं ओजः सहः बलं बुद्धिः विक्रम इति च सर्वेषां औत्पत्तिकी सिद्धिः अविशेषेण वर्तते ॥६॥

प्लक्ष आदिषु	प्लक्षसे लेकर	ओजः	ओज (मनोबल)
पञ्चसु	पांच (द्वीपों) में	सहः	सह (इन्द्रिय-बल)
सर्वेषां	सभी	बलं	(शरीर) बल,
पुरुषाणां	पुरुषोंको	बुद्धिः	बुद्धि,
औत्पत्तिकी	जन्मसे ही	विक्रम	पराक्रमकी
अविशेषेण	समान रूपसे	सिद्धिः	सिद्धि प्राप्त
आयु इन्द्रिय	आयु, इन्द्रिय,	वर्तते	रहती है ॥६॥

प्लक्षः स्वसमानेनेक्षुरसोदेनावृतो यथा तथा द्वीपोऽपि शाल्मलो द्विगुणविशालः समानेन सुरोदेनावृतः परिवृंक्ते ॥७॥

प्लक्षः स्वसमानेन इक्षुरस उदेन आवृतः यथा तथा द्वीपः अपि शाल्मलः द्विगुण विशालः समानेन सुरोदेन आवृतः परिवृङ्क्ते ॥७॥

यथा प्लक्षः	जैसे प्लक्ष-द्वीप	विशालः	बड़ा
स्वसमानेन	अपने बराबरके	समानेन	अपने बराबरके
इक्षुरस	गन्नेके रसके	सुरोदेन	मदिरा-सागरसे
उदेन	समुद्रसे	आवृतः	घिरा
आवृतः	घिरा है	परिवृङ्क्ते	(इक्षुरस समुद्रके) चारों ओर स्थित है ॥७॥
तथा शाल्मलः	वैसे ही शाल्मली		
द्वीपः अपि	द्वीप भी		
द्विगुण	उससे दोगुना		

यत्र ह वै शाल्मली प्लक्षायामा यस्यां वाव किल निलयमाहुर्भगवतश्छन्दःस्तुतः पतत्त्रिराजस्य सा द्वीपहूतये उपलक्ष्यते ॥८॥

यत्र ह वै शाल्मली प्लक्ष आयामा यस्यां वाव किल निलयं आहुः भगवतः छन्दः स्तुतः पतत्त्रिराजस्य सा द्वीपहूतये उपलक्ष्यते ॥८॥

यत्र ह वै	जहाँ तो निश्चय		बराबरका
प्लक्ष आयामा	प्लक्ष वृक्षके	शाल्मली	सेमरका वृक्ष है।

यस्यां	जिसपर	**निलयं आहुः**	निवास कहा गया है।
वाव किल	अरे निश्चय ही	**सा**	वह (शाल्मलिवृक्ष)
भगवतः छन्दः स्तुतः	भगवान् (विष्णु)की (अपने पंखोंसे) वेद-मन्त्रोंद्वारा स्तुति करनेवाले	**द्वीपहूतये उपलक्ष्यते**	द्वीपके नामका हेतु दिखायी पड़ता है ॥८॥
पतत्रिराजस्य	पक्षिराज (गरुड़)का		

तद्द्वीपाधिपतिः प्रियव्रतात्मजो यज्ञबाहुः स्वसुतेभ्यः सप्तभ्यस्तन्नामानि सप्तवर्षाणि व्यभजत्सुरोचनं सौमनस्यं रमणकं देववर्षं पारिभद्रमाप्यायनमविज्ञातमिति ॥९॥

तत् द्वीप अधिपतिः प्रियव्रत आत्मजः यज्ञबाहुः स्वसुतेभ्यः सप्तभ्यः तत् नामानि सप्तवर्षाणि व्यभजत् सुरोचनं सौमनस्यं रमणकं देववर्षं पारिभद्रं आप्यायनं अविज्ञातं इति ॥९॥

तत् द्वीप	उस द्वीपके	**सुरोचनं**	सुरोचन,
अधिपतिः	स्वामी	**सौमनस्यं**	सौमनस्य,
प्रियव्रत	प्रियव्रतके	**रमणकं**	रमणक,
आत्मजः	पुत्र	**देववर्षं**	देववर्ष,
यज्ञबाहुः	यज्ञबाहुने	**पारिभद्रं**	पारिभद्र,
स्वसुतेभ्यः	अपने पुत्रोंको	**आप्यायनं**	आप्यायन,
तत् नामानि	उनके ही नामवाले	**अविज्ञातं इति**	अविज्ञात इसप्रकार (उनके नाम हैं) ॥९॥
सप्तवर्षाणि	सातवर्ष		
व्यभजत्	बाँट दिये,		

तेषु वर्षाद्रयो नद्यश्च सप्तैवाभिज्ञाताः स्वरसः शतशृङ्गो वामदेवः कुन्दो मुकुन्दः पुष्पवर्षः सहस्रश्रुतिरिति । अनुमतिः सिनीवाली सरस्वती कुहू रजनी नन्दा राकेति ॥१०॥

तेषु वर्ष अद्रयः नद्यः च सप्त एव अभिज्ञाताः स्वरसः शतशृङ्गः वामदेवः कुन्दः मुकुन्दः पुष्पवर्षः सहस्रश्रुतिः इति । अनुमतिः सिनीवाली सरस्वती कुहू रजनी नन्दा राका इति ॥१०॥

तेषु	उन
वर्ष अद्रयः	वर्षोंमें पर्वत
च नद्यः	तथा नदियां
सप्त एव	सात-सात ही
अभिज्ञाताः	प्रसिद्ध हैं ।
स्वरसः	स्वरस,
शतशृङ्गः	शतशृंग,
वामदेवः कुन्दः	वामदेव, कुन्द,
मुकुन्दः	मुकुन्द,
पुष्पवर्षः	पुष्पवर्ष,
सहस्रश्रुतिः	सहस्रश्रुति
इति	ये (पर्वत) हैं ।
अनुमतिः	अनुमति,
सिनीवाली	सिनीवाली,
सरस्वती कुहू	सरस्वती, कुहू,
रजनी नन्दा	रजनी, नन्दा,
राका इति	राका ये (नदियां) हैं ॥१०॥

तद्वर्षपुरुषाः श्रुतधरवीर्यधरवसुन्धरेषन्धरसंज्ञा भगवन्तं वेदमयं सोममात्मानं वेदेन यजन्ते ॥११॥

तद् वर्ष पुरुषाः श्रुतधर वीर्यधर वसुन्धर इषन्धर संज्ञा भगवन्तं वेदमयं सोमं आत्मानं वेदेन यजन्ते ॥११॥

तद्	उस
वर्ष पुरुषाः	वर्षके पुरुष
श्रुतधर	श्रुतधर,
वीर्यधर	वीर्यधर,
वसुन्धर	वसुन्धर,
इषन्धर	इषन्धर,
संज्ञा	नामक (चार वर्णके)
भगवन्तं	भगवान्
वेदमयं	वेदमय
आत्मानं	आत्मस्वरूप
सोमं	चन्द्रमाकी
वेदेन यजन्ते	वेदके द्वारा यजन करते हैं ॥११॥

स्वगोभिः पितृदेवेभ्यो विभजन् कृष्णशुक्लयोः ।
प्रजानां सर्वासां राजान्धः सोमो न आस्त्विति ॥१२॥

स्वगोभिः पितृदेवेभ्यः विभजन् कृष्णशुक्लयोः प्रजानां सर्वासां राजा अन्धः सोमः नः अस्तु इति ॥१२॥

स्व गोभिः	अपनी किरणों द्वारा	**प्रजानां**	प्रजाको भी
कृष्णशुल्कयोः	कृष्णपक्ष और शुक्ल पक्षका	**अन्धः**	अन्न (आहार) देनेवाले,
विभजन्	विभाग करके	**सोमः नः**	चन्द्रमा हमारे
पितृदेवेभ्यः	पितरों तथा देवताओंको	**राजा अस्तु**	राजा हों
सर्वासां	सब	**इति**	इसप्रकार (प्रार्थना करते हैं) ॥१२॥

एवं सुरोदाद्बहिस्तद्द्विगुणः समानेनावृतो घृतोदेन यथापूर्वः कुशद्वीपो यस्मिन् कुशस्तम्बो देवकृतस्तद्द्वीपाख्याकरो ज्वलन इवापरः स्वशष्परोचिषा दिशो विराजयति ॥१३॥

एवं सुरोदात् बहिः तत् द्विगुणः समानेन आवृतः घृतोदेन यथा पूर्वः कुशद्वीपः यस्मिन् कुशस्तम्बः देवकृतः तत् द्वीप आख्याकरः ज्वलन इव अपरः स्वशष्परोचिषा दिशः विराजयति ॥१३॥

एवं	इसी प्रकार	**आख्याकरः**	नामका कारण
सुरोदात्	मदिरा सागरके	**देवकृतः**	भगवान्‌का बनाया
बहिः	बाहर	**अपरः**	दूसरे
तत् द्विगुणः	उससे दुगुना	**ज्वलन इव**	अग्निके समान
समानेन	अपने बराबरके	**कुशस्तम्बः**	कुशका खम्भे जैसा (वृक्ष) है,
घृतोदेन	घृत-समुद्रसे		
आवृतः	घिरा हुआ	**स्वशष्परोचिषा**	अपनी टहनियोंकी कान्तिसे
यथा पूर्वः	पहिलोंके समान		
कुशद्वीपः	कुश-द्वीप है,	**दिशः**	दिशाओंको
यस्मिन्	जिसमें	**विराजयति**	शोभित करता है ॥१३॥
तत् द्वीप	उस द्वीपके		

तद्द्वीपपतिः प्रैयव्रतो राजन् हिरण्यरेता नाम स्वं द्वीपं सप्तभ्यः स्वपुत्रेभ्यो यथाभागं विभज्य स्वयं तप आतिष्ठत वसु-वसुदानदृढरुचिनाभिगुप्तस्तुत्यव्रतविविक्तवामदेवनामभ्यः ॥१४॥

तत् द्वीपपतिः प्रियव्रतः राजन् हिरण्यरेता नाम स्वं द्वीपं सप्तभ्यः स्वपुत्रेभ्यः यथाभागं विभज्य स्वयं तप आतिष्ठत वसु वसुदान दृढ़रुचि नाभिगुप्त स्तुत्यव्रत विविक्त वामदेव नामभ्यः ॥१४॥

राजन्	परीक्षित !
तत् द्वीपपतिः	उस द्वीपके स्वामी
प्रियव्रतः	प्रियव्रतके पुत्र
हिरण्यरेता	हिरण्यरेता
नाम	नामकने
स्वं द्वीपं	अपने द्वीपको
वसु वसुदान	वसु, वसुदान,
दृढरुचि	दृढरुचि,
नाभिगुप्त	नाभिगुप्त,
स्तुत्यव्रत	स्तुत्यव्रत,
विविक्त	विविक्त
वामदेव	वामदेव,
नामभ्यः	नामवाले
स्वपुत्रेभ्यः	अपने पुत्रोंको
यथाभागं	विभागके अनुसार
विभज्य	बाँटकर
स्वयं	स्वयं
तप आतिष्ठत	तप करने लगे ॥१४॥

तेषां वर्षेषु सीमागिरयो नद्यश्चाभिज्ञाताः सप्त सप्तैव चक्रश्चतुः शृङ्गः कपिलश्चित्रकूटो देवानीक ऊर्ध्वरोमा द्रविण इति रसकुल्या मधुकुल्या मित्रविन्दा श्रुतविन्दा देवगर्भा घृतच्युता मन्त्रमालेति ॥१५॥

तेषां वर्षेषु सीमागिरयः नद्यः च अभिज्ञाताः सप्त सप्त एव चक्रः चतुः शृङ्गः कपिलः चित्रकूटः देवानीक, ऊर्ध्वरोमा द्रविण इति रसकुल्या मधुकुल्या मित्रविन्दा श्रुतविन्दा देवगर्भा घृतच्युता मन्त्रमाला इति ॥१५॥

तेषां वर्षेषु	उनके वर्षोंमें
सीमागिरयः	सीमा-पर्वत
च नद्यः	तथा नदियां
सप्त सप्त एव	सात-सात ही
अभिज्ञाताः	प्रसिद्ध हैं,
चक्रः चतुः	चक्र, चतु,
शृङ्गः कपिलः	शृंग, कपिल,
चित्रकूटः	चित्रकूट,
देवानीक	देवानीक,
ऊर्ध्वरोमा	ऊर्ध्वरोम,
द्रविण	द्रविण
इति	ये (सात पर्वत) हैं,
रसकुल्या	रसकुल्या,
मधुकुल्या	मधुकुल्या
मित्रविन्दा	मित्रविन्दा,

श्रुतविन्दा	श्रुतविन्दा	**मंत्र माला इति**	मन्त्रमाला ये (सात नदियां) हैं ॥१५॥
देवगर्भा	देवगर्भा		
घृतच्युता	घृतच्युता.		

यासां पयोभिः कुशद्वीपौकशः कुशलकोविदाभियुक्तकुलक-संज्ञा भगवन्तं जातवेदसरूपिणं कर्मकौशलेन यजन्ते ॥१६॥

यासां पयोभिः कुशद्वीप ओकशः कुशलकोविदाः अभियुक्त कुलक संज्ञा भगवन्तं जातवेदस रूपिणं कर्मकौशलेन यजन्ते ॥१६॥

कुशलकोविदा	कुशल, कोविद,	**जातवेदस**	अग्नि
अभियुक्त कुलक	अभियुक्त, कुलक	**रूपिणं**	स्वरूपकी
संज्ञा	नामके (चार वर्णके)	**कर्मकौशलेन**	(यज्ञादि) कर्म निपुणतासे
कुशद्वीप ओकशः	कुशद्वीपवासी		
यासां पयोभिः	जिनके जलसे	**यजन्ते**	भजन करते हैं ॥१६
भगवन्तं	भगवान्		

परस्य ब्रह्मणः साक्षाज्जातवेदोऽसि हव्यवाट् ।
देवानां पुरुषाङ्गानां यज्ञेन पुरुषं यजेति ॥१७॥

परस्य ब्रह्मणः साक्षात् जातवेदः असि हव्यवाट् देवानां पुरुष अङ्गानां यज्ञेन पुरुषं यज इति ॥१७॥

जातवेदः	अग्निदेव (आप)	**देवानां**	देवताओंका (तथा)
साक्षात्	साक्षात्	**पुरुषं**	परमपुरुषका
परस्य ब्रह्मणः	परमब्रह्मको	**यज्ञेन यज**	यज्ञके द्वारा भजन कीजिये,
हव्यवाट्	हवि पहुँचानेवाले		
असि	हो अतः	**इति**	इस प्रकार (स्तुति करते हैं) ॥१७॥
पुरुष	(विराट्) पुरुषके		
अङ्गानां	अंगभूत		

तथा घृतोदाद्बहिः क्रौञ्चद्वीपो द्विगुणः स्वमानेन क्षीरोदेन परित उपक्लृप्तो वृतो यथा कुशद्वीपो घृतोदेन यस्मिन् क्रौञ्चो नाम पर्वतराजो द्वीपनामनिर्वर्तक आस्ते ॥१८॥

तथा घृतोदात् बहिः क्रौञ्चद्वीपः द्विगुणः स्वमानेन क्षीरोदेन परित उपक्लृप्तः वृतः यथा कुशद्वीपः घृतोदेन यस्मिन् क्रौञ्चः नाम पर्वतराजः द्वीपनाम निर्वर्तक आस्ते ॥१८॥

यथा	जैसे	**क्षीरोदेन**	क्षीर-समुद्रसे
कुशद्वीपः	कुशद्वीप	**परित उपक्लृप्तः**	चारों ओरसे
घृतोदेन	घृत-सागरसे (घिरा है)	**वृतः**	घिरा है
		यस्मिन्	जिसमें
तथा	वैसे ही	**द्वीपनाम**	द्वीपके नामका
घृतोदात् बहिः	घृत-सागरसे बाहर	**निर्वर्तक**	कारण
क्रौञ्चद्वीपः	क्रौञ्चद्वीप	**क्रौञ्चः नाम**	क्रौञ्च नामका
स्वमानेन	अपने परिमाणसे	**पर्वतराजः**	पर्वतराज
द्विगुणः	दो गुने	**आस्ते**	है ॥१८॥

योऽसौ गुहप्रहरणोन्मथितनितम्बकुञ्जोऽपि क्षीरोदेनासिच्यमानो भगवता वरुणेनाभिगुप्तो विभयो बभूव ॥१९॥

यः असौ गुहप्रहरण उन्मथित नितम्ब कुञ्जः अपि क्षीरोदेन आसिच्यमानः भगवता वरुणेन अभिगुप्तः विभयः बभूव ॥१९॥

यः असौ	जो यह (पर्वत)	**क्षीरोदेन**	क्षीर-समुद्र द्वारा
गुहप्रहरण	(पहिले) कुमार कार्तिकके शस्त्र प्रहारसे	**आसिच्यमानः**	सिञ्चित होते रहनेसे
		भगवता वरुणेन	(तथा) भगवान् वरुण द्वारा
उन्मथित	क्षत-विक्षत	**अभिगुप्तः**	संरक्षित होनेसे
नितम्ब	मध्य भाग	**विभयः बभूव**	निर्भय हो गया ॥१९
कुञ्जः अपि	(तथा) कुञ्जोंके होने पर भी		

तस्मिन्नपि प्रैयव्रतो घृतपृष्ठो नामाधिपतिः स्वे द्वीपे वर्षाणि सप्त विभज्य तेषु पुत्रनामसु सप्त रिक्थादान् वर्षपान्निवेश्य स्वयं भगवान् भगवतः परमकल्याणयशस आत्मभूतस्य हरेश्चरणारविन्दमुपजगाम ॥२०॥

तस्मिन् अपि प्रैयव्रतः घृतपृष्ठः नाम अधिपतिः स्वे द्वीपे वर्षाणि सप्त विभज्य तेषु पुत्रनामसु सप्त रिक्थादान् वर्षपान् निवेश्य स्वयं भगवान् भगवतः परमकल्याण यशसः आत्मभूतस्य हरेः चरणारविन्दं उपजगाम ॥२०॥

तस्मिन् अपि	उसमें भी
घृतपृष्ठः नाम	घृतपृष्ठ नामके
प्रैयव्रतः	प्रियव्रतके पुत्र
अधिपतिः	स्वामी थे,
स्वे द्वीपे	अपने द्वीपको
सप्त वर्षाणि	सात वर्षोंमें
विभज्य	विभाजित करके
पुत्रनामसु तेषु	पुत्रोंके नामवाले उनमें
सप्त रिक्थादान्	सात उत्तराधिकारियोंको
वर्षपान् निवेश्य	वर्षपाल नियुक्त करके
स्वयं भगवान्	स्वयं ऐश्वर्य सम्पन्न होनेपर भी
भगवतः	भगवान्
परमकल्याण	परम कल्याणदायी
यशसः	सुयशवाले
आत्मभूतस्य	आत्मस्वरूप
हरेः	श्रीहरिके
चरणारविन्दं	पाद-पद्मोंकी
उपजगाम	शरण ली ॥२०॥

आमो मधुरुहो मेघपृष्ठः सुधामा भ्राजिष्ठो लोहितार्णो वनस्पतिरिति घृतपृष्ठसुतास्तेषां वर्षगिरयः सप्त सप्तैव नद्यश्चाभिख्याताः शुक्लो वर्धमानो भोजन उपबर्हिणो नन्दो नन्दनः सर्वतोभद्र इति अभया अमृतौघा आर्यका तीर्थवती वृत्तिरूपवती पवित्रवती शुक्लेति ॥२१॥

आमः मधुरुहः मेघपृष्ठः सुधामा भ्राजिष्ठः लोहितार्णः वनस्पतिः इति घृतपृष्ठसुताः तेषां वर्षगिरयः सप्त सप्त एव नद्यः च अभिख्याताः शुक्लः वर्धमानः भोजनः उपबर्हिणः नन्दः नन्दनः सर्वतोभद्र इति अभया अमृतौघा आर्यका तीर्थवती वृत्तिरूपवती पवित्रवती शुक्ला इति ॥२१॥

आमः मधुरुहः	आम, मधुरुह,
मेघपृष्ठः	मेघपृष्ठ,
सुधामा	सुधामा,
भ्राजिष्ठः	भ्राजिष्ठ,

लोहितार्णः	लोहितार्ण
वनस्पतिः इति	वनस्पति इस प्रकार (सात)
घृतपृष्ठसुताः	घृतपृष्ठके पुत्र हैं।
तेषां वर्षगिरयः	उनके वर्षके मर्यादा पर्वत
च नद्यः	और नदियां भी
सप्त सप्त एव	सात सात ही
अभिख्याताः	प्रसिद्ध हैं।
शुक्लः वर्धमानः	शुक्ल, वर्धमान,
भोजन	भोजन,
उपबर्हिणः	उपबर्हिण,
नन्दः नन्दनः	नन्द, नन्दन,
सर्वतोभद्र इति	सर्वतोभद्र ये (पर्वत) हैं
अभया अमृतौघा	अभया, अमृतौघा
आर्यका	आर्यका,
तीर्थवती	तीर्थवती,
वृत्तिरूपवती,	वृत्तिरूपवती,
पवित्रवती	पवित्रवती,
शुक्ला इति	शुक्ला ये (नदियां) हैं ॥२१॥

यासामम्भः पवित्रममलमुपयुञ्जानाः पुरुषऋषभद्रविणदेवकसंज्ञा वर्षपुरुषा आपोमयं देवमपां पूर्णेनाञ्जलिना यजन्ते ॥२२॥

यासां अम्भः पवित्रं अमलं उपयुञ्जानाः पुरुष ऋषभ द्रविण देवक संज्ञा वर्षपुरुषाः आपोमयं देवं अपां पूर्णेन अञ्जलिना यजन्ते ॥२२॥

यासां	जिनके
पवित्रं अमलं	पवित्र निर्मल
अम्भः	जलका
उपयुञ्जानाः	उपयोग करनेवाले
पुरुष ऋषभ	पुरुष, ऋषभ,
द्रविण देवक	द्रविण, देवक नामके
संज्ञा	(चारों वर्णके)
वर्षपुरुषाः	उस वर्षके पुरुष
अपां पूर्णेन	जलसे भरी
अञ्जलिना	अञ्जलिसे
आपोमयं देवं	जलमय परमात्माकी
यजन्ते	पूजा करते हैं ॥२२॥

आपः पुरुषवीर्याः स्थ पुनन्तीर्भूर्भुवः सुवः।
ता नः पुनीतामीवघ्नीः स्पृशतामात्मना भुव इति ॥२३॥

आपः पुरुषवीर्याः स्थ पुनन्तीः भूः भुवः स्वः ता नः पुनीतां इव अघ्नीः स्पृशतां आत्मना भुव इति ॥२३॥

आपः	जल	**भुव स्पृशतां**	शरीरसे स्पर्श करने वालोंको
पुरुषवीर्या. स्थ	विराट्-पुरुषमें स्थित उसका वीर्य है।	**अघ्नीः इव**	पापहारीकी भांति
		आत्मना	अपनी शक्तिसे
भू भुवः स्वः	भू, भुवः स्वर्गको	**पुनीतां**	पवित्र करें।
पुनन्तीः	पवित्र करता है,	**इति**	इस प्रकार (स्तुति करते हैं) ॥२३॥
ता नः	वह हम		

एवं पुरस्तात्क्षीरोदात्परित उपवेशितः शाकद्वीपो द्वात्रिंशल्लक्षयोजनायामः समानेन च दधिमण्डोदेन परीतो यस्मिन् शाको नाम महीरुहः स्वक्षेत्रव्यपदेशको यस्य ह महासुरभिगन्धस्तं द्वीपमनुवासयति ॥२४॥

एवं पुरस्तात् क्षीरोदात् परित उपवेशितः शाकद्वीपः द्वात्रिंशत् लक्ष योजन आयामः समानेन च दधिमण्डोदेन परीतः यस्मिन् शाकः नाम महीरुहः स्वक्षेत्र व्यपदेशकः यस्य ह महासुरभि गन्धः तं द्वीपं अनुवासयति ॥२४॥

एवं क्षीरोदात्	इसी प्रकार क्षीर-समुद्रसे	**स्वक्षेत्र**	अपने क्षेत्रके
		व्यपदेशकः	नामका सूचक
पुरस्तात्	आगे	**यस्मिन्**	जिसमें
परित	चारों ओरसे	**शाकः नाम**	शाक नामक
उपवेशितः	घेरे हुए	**महीरुहः**	वृक्ष है,
शाकद्वीपः	शाकद्वीप	**यस्य ह**	जिसकी ही
द्वात्रिंशत् लक्ष	बत्तीस लाख	**महासुरभिः**	महान् सौरभ
योजन आयामः	योजन विस्तारवाला	**गन्धः**	गन्ध
समानेन च	अपने बराबरके ही	**तं द्वीपं**	उस द्वीपको
दधिमण्डोदेन	मट्ठेके समुद्रसे	**अनुवासयति**	सर्वत्र सुवासित करती है ॥२४॥
परीतः	घिरा हुआ है,		

तस्यापि प्रैयव्रत एवाधिपतिर्नाम्ना मेधातिथिः सोऽपि विभज्य सप्त वर्षाणि पुत्रनामानि तेषु स्वात्मजान् पुरोजवमनोजवपवमानधूम्रानीकचित्ररेफबहुरूपविश्वधारसंज्ञान्निधाप्याधिपतीन् स्वयं भगवत्यनन्त आवेशितमतिस्तपोवनं प्रविवेश ॥२५॥

तस्य अपि प्रैयव्रत एव अधिपतिः नाम्ना मेधातिथिः सः अपि विभज्य सप्त वर्षाणि पुत्रनामानि तेषु स्व आत्मजान् पुरोजव मनोजव पवमान धूम्रानीक चित्ररेफ बहुरूप विश्वधार संज्ञान् निधाप्य अधिपतीन् स्वयं भगवति अनन्त आवेशित मतिः तपोवनं प्रविवेश ॥२५॥

तस्य अपि	उस (द्वीप) के भी
मेधातिथिः	मेधा तिथि नामके
नाम प्रैयव्रत	प्रियव्रतके
एव	पुत्र ही
अधिपतिः	स्वामी थे।
स अपि	उन्होंने भी
पुत्र नामानि	पुत्रोंके नामसे
सप्त वर्षानि	सात वर्षोंका
विभज्य	विभाजन करके
तेषु	उनमें
स्व आत्मजान्	अपने पुत्र
पूरोजव	पुरोजव,
मनोजव	मनोजव,
पवमान	पवमान,
धूम्रानीक	धूम्रानीक,
चित्ररेफ	चित्ररेफ,
बहुरूप	बहुरूप,
विश्वधार	विश्वधार
संज्ञान्	नाम वालोंको
अधिपति	अधिपति
निधाप्य	स्थापित करके
स्वयं	स्वयं
भगवयि अनन्त	भगवान् अनन्तमें
आवेशितः मतिः	बुद्धि लगाकर
तपोवनं	तपोवनमें
प्रविवेश	प्रवेश कर लिया ॥२५॥

एतेषां वर्षमर्यादागिरयो नद्यश्च सप्त सप्तैव ईशान उरुशृङ्गो बलभद्रः शतकेसरः सहस्रस्रोतो देवपालो महानस इति अनघाऽऽयुर्दा उभयस्पृष्टिरपराजिता पञ्चपदी सहस्रस्रुतिर्निजधृतिरिति ॥२६॥

एतेषां वर्षमर्यादा गिरयः नद्यः च सप्त सप्त एव ईशानः उरुशृङ्गः बलभद्रः शतकेसरः सहस्रस्रोतः देवपालः महानस इति अनघा आयुर्दा उभयस्पृष्टिः अपराजिता पञ्चपदी सहस्रस्रुतिः निजधृतिः इति ॥२६॥

एतेषां	इनमें
वर्षमर्यादा	वर्ष सीमा बनाने वाले
गिरयः	पर्वत
च नद्यः	और नदियां
सप्त सप्त एव	सात-सात ही हैं।
ईशानः	ईशान,
उरुशृङ्गः	उरुशृङ्ग,
बलभद्रः	बलभद्र,
शतकेसरः	शतकेसर,
सहस्रस्रोतः	सहस्रस्रोत,
देवपालः	देवपाल,
महानस इति	महानस ये (पर्वत) हैं,
अनघा आयुर्दा	अनघा, आयुर्दा,
उभयस्पृष्टिः	उभयस्पृष्टि,
अपराजिता	अपराजिता,
पञ्चपदी	पञ्चपदी,
सहस्रस्रुतिः	सहस्रस्रुति,
निजधृतिः इति	निजधृति ये (नदियां हैं ॥२६॥

तद्वर्षपुरुषा ऋतव्रतसत्यव्रतदानव्रतानुव्रतनामानो भगवन्तं वाय्वात्मकं प्राणायामविधूतरजस्तमसः परमसमाधिना यजन्ते ॥२७॥

तत् वर्ष पुरुषाः ऋतव्रत सत्यव्रत दानव्रत अनुव्रत नामानः भगवन्तं वायु आत्मकं प्राणायाम विधूत रजः तमसः परम समाधिना यजन्ते ॥२७॥

ऋतव्रत	ऋतव्रत,
सत्यव्रत	सत्यव्रत,
दानव्रत अनुव्रत	दानव्रत, अनुव्रत
नामानः	नामक (चार वर्णोंके)
तत् वर्ष पुरुषाः	उस वर्षके पुरुष
वायु आत्मकं	वायु स्वरूप
भगवन्तं	भगवान्‌की
प्राणायाम	प्राणायाम द्वारा
रजः तमसः	रजोगुण, तमोगुण
विधूत	नष्ट करके
परम समाधिना	परम समाधि द्वारा
यजन्ते	आराधना करते हैं ॥२७॥

अन्तः प्रविश्य भूतानि यो बिभर्त्यात्मकेतुभिः ।
अन्तर्यामीश्वरः साक्षात्पातु नो यद्वशे स्फुटम् ॥२८॥

अन्तः प्रविश्य भूतानि यः बिभर्ति आत्मकेतुभिः अन्तर्यामी ईश्वरः साक्षात् पातु नः यत् वशे स्फुटम् ॥२८॥

आत्मकेतुभिः	(प्राणदि रूप) अपनी ध्वजाओं द्वारा	**यत् वशे स्फुटं**	जिसके वशमें जगत है (वह)
भूतानि अन्तः	प्राणियोंके भीतर	**साक्षात्**	साक्षात्
प्रविश्य	प्रवेश करके	**अन्तर्यामी**	अन्तर्यामी
यः बिभर्ति	जो उनका धारण करता है,	**ईश्वरः**	सर्वसञ्चालक
		नः पातु	हमारी रक्षा करें ॥२८॥

एवमेव दधिमण्डोदात्परतः पुष्करद्वीपस्ततो द्विगुणायामः समन्तत उपकल्पितः समानेन स्वादूदकेन समुद्रेण बहिरावृतो यस्मिन् बृहत्पुष्करं ज्वलनशिखामलकनकपत्रायुतायुतं भगवतः कमलासनस्याध्यासनं परिकल्पितम् ॥२९॥

एवं एव दधिमण्डोदात् परतः पुष्कर द्वीपः ततः द्विगुण आयामः समन्ततः उपकल्पितः समानेन स्वादु उदकेन समुद्रेण बहिः आवृतः यस्मिन् बृहत् पुष्करं ज्वलन शिखा अमल कनकपत्र अयुत अयुतं भगवतः कमलासनस्य अध्यासनं परिकल्पितं ॥२९॥

एवं एव	इस प्रकार ही	**समानेन**	(वह) अपने बराबरके
दधिमण्डोदात्	मट्ठेके समुद्रसे	**स्वादु उदकेन**	स्वादिष्ट जलके
परतः	आगे	**समुद्रेण**	समुद्रसे
ततः द्विगुण	उससे दुगुने	**बहिः आवृतः**	बाहरसे घिरा है।
आयामः	विस्तार वाला	**यस्मिन्**	जिसमें
पुष्कर द्वीपः	पुष्कर द्वीप	**अमल ज्वलन**	अग्निकी निर्मल
समन्ततः	चारों ओर	**शिखा**	लपटके समान
उपकल्पितः	स्थित है,	**कनकपत्र**	स्वर्णमय

अयुत अयुतं	लाखों दलोंका	**कमलासनस्य**	ब्रह्माका
वृहत् पुष्करं	बहुत बड़ा कमल है।	**अध्यासनं**	बैठनेका आसन
भगवतः	(वह) भगवान्	**परिकल्पितं**	बनाया गया है ॥२९

तद्द्वीपमध्ये मानसोत्तरनामैक एवार्वाचीनपराचीन-वर्षयोर्मर्यादाचलोऽयुतयोजनोच्छ्रायायामो यत्र तु चतसृषु दिक्षु चत्वारि पुराणि लोकपालानामिन्द्रादीनां यदुपरिष्टात्सूर्यरथस्य मेरु परिभ्रमतः संवत्सरात्मकं चक्रं देवानामहोरात्राभ्यां परि-भ्रमति ॥३०॥

तत् द्वीपमध्ये मानसोत्तर नाम एक एव अर्वाचीन पराचीन वर्षयोः मर्यादा अचलः अयुत योजन उच्छ्राय आयामः यत्र तु चतसृषु दिक्षु चत्वारि पुराणि लोकपालानां इन्द्रादीनां यत् उपरिष्टात् सूर्यरथस्य मेरुं परिभ्रमतः संवत्सर आत्मकं चक्रं देवानां अहः रात्राभ्यां परिभ्रमति ॥३०॥

तत् द्वीपमध्ये	उस द्वीपके बीचमें	**अयुत योजन**	दस हजार योजन
अर्वाचीन	(उसके) पूर्वीय	**उच्छ्राय**	ऊँचा (उतना ही)
पराचीन	और पश्चिमी	**आयामः**	फैलाव वाला है।
वर्षयोः	प्रदेशको (पृथक करनेवाला)	**यत्र तु**	जहाँ तो
		चतसृषु दिक्षु	चारों दिशाओंमें
मानसोत्तर	मानसोत्तर	**इन्द्रादीनां**	इन्द्र आदि
नाम	नामका	**लोकपालानां**	लोकपालोंकी
एक एव	एक ही	**चत्वारि पुराणि**	चार पुरियां हैं■
मर्यादा अचलः	मर्यादा पर्वत है।		

■ यहाँके लोकपालोंकी पुरियां ब्रह्माजीके स्थानका वर्णन इसी स्कन्धके अध्याय १६ के गद्य २८-२९ के साथ देखते योग्य है। वहाँ जम्बू-द्वीपके इलावृतके मध्यमें सुमेरुके ऊपर ब्रह्मपुरी और उसके चारों ओर लोकपाल पुरियोंका वर्णन है।

यत् उपरिष्टात्	जिनके ऊपर
मेरुं परिभ्रमतः	सुमेरुके चारों ओर घूमते
सूर्यरथस्य	सूर्यके रथके
संवत्सर आत्मकं	संवत्सर स्वरूप
चक्रं	चक्र
देवानां	देवताओंका
अहः रात्राभ्यां	दिन-रात बनाता
परिभ्रमति	घूमता है ॥३०॥

तद्द्वीपस्याप्यधिपतिः प्रियव्रतो वीतिहोत्रो नामैतस्यात्मजौ रमणकधातकिनामानौ वर्षपती नियुज्य स स्वयं पूर्वजवद्भगवत्कर्मशील एवास्ते ॥३१॥

तत् द्वीपस्य अपि अधिपतिः प्रियव्रतः वीतिहोत्रः नाम एतस्य आत्मजौ रमणक धातकि नामानौ वर्षपती नियुज्य स स्वयं पूर्वजवत् भगवत् कर्मशील एव आस्ते ॥३१॥

तत् द्वीपस्य	उस द्वीपके
अपि	भी
अधिपतिः	अधिपति
प्रियव्रतः	प्रियव्रतके पुत्र
वीतिहोत्रः	वीतिहोत्र
नाम	नामक थे।
एतस्य आत्मजौ	उनके पुत्र
रमणक	रमणक और
धातकि	धातकि
नामानौ	नाम वालोंको
वर्षपती	वर्षोंका स्वामी
नियुज्य	बनाकर
स पूर्वजवत्	वे (अपने) पूर्वजोंके समान
भगवत्	भगवान्‌की
कर्मशील	सेवारूप कर्ममें
एव आस्ते	ही लगे रहे ॥३१

तद्वर्षपुरुषा भगवन्तं ब्रह्मरूपिणं सकर्मकेण कर्मणाऽऽराधयन्तीदं चोदाहरन्ति ॥३२॥

तत् वर्ष पुरुषा भगवन्तं ब्रह्मरूपिणं सकर्मकेण कर्मणा आराधयन्ति इदं च उदाहरन्ति ॥३२॥

तत् वर्ष पुरुषा	उस वर्षके निवासी
ब्रह्मरूपिणं	ब्रह्मा स्वरूप
भगवन्तं	भगवान्‌की
सकर्मकेण	सकाम
कर्मणा	कर्मों द्वारा
आराधयन्ति	आराधना करते हैं।
च इदं	और यह
उदाहरन्ति	स्तुति करते ॥३२॥

यत्तत्कर्ममयं लिङ्गं ब्रह्मलिङ्गं जनोऽर्चयेत् ।
एकान्तमद्वयं शान्तं तस्मै भगवते नम इति ॥३३॥

यत् तत् कर्ममयं लिङ्गं ब्रह्मलिङ्गं जनः अर्चयेत् एकान्तं अद्वयं शान्तं तस्मै भगवते नमः इति ॥३३॥

यत् कर्ममयं	जो कर्ममय	**एकान्तं**	नैष्ठिक
लिङ्गं	प्रतीक हैं	**अद्वयं**	अद्वितीय
तत्	उन	**शान्तं**	शान्त
ब्रह्मलिङ्गं	ब्रह्मा स्वरूप (भगवान्) की	**भगवते**	भगवान्को
		नमः	नमस्कार ।
जनः अर्चयेत्	लोगोंको अर्चना करनी चाहिए ।	**इति**	इस प्रकार (स्तुति करते हैं) ॥३३॥
तस्मै	उन		

*श्रीशुक उवाच–**

ततः परस्ताल्लोकालोकनामाचलो लोकालोकयोरन्तराले परित उपक्षिप्तः ॥३४॥

ततः परस्तात् लोकालोक नाम अचलः लोक अलोकयोः अन्तराले परित उपक्षिप्तः ॥३४॥

ततः परस्तात्	उसके आगे	**परित**	सब ओर
लोक	लोक (सूर्यादि द्वारा प्रकाशित)	**उपक्षिप्तः**	(सर्वेश्वर द्वारा) डाला हुआ
अलोकयोः	अलोक (अप्रकाशित भाग) के	**लोकालोक नाम अचलः**	लोकालोक नामक पर्वत है ॥३४॥
अन्तराले	बीचमें		

* अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'ऋषिरुवाच' है ।

यावन्मानसोत्तरमेर्वोरन्तरं तावती भूमिः काञ्चन्यन्या-ऽऽदर्शतलोपमा यस्यां प्रहितः पदार्थो न कथञ्चित्पुनः प्रत्युपलभ्यते तस्मात्सर्वसत्त्वपरिहृताऽऽसीत् ॥३५॥

यावत् मानसोत्तर मेरोः अन्तरं तावती भूमिः काञ्चन्यन्या आदर्श-तल उपमा यस्यां प्रहितः पदार्थः न कथञ्चित् पुनः प्रति उपलभ्यते तस्मात् सर्व सत्त्व परिहृता आसीत् ॥३५॥

यावत्	जितना	**पदार्थः**	पदार्थ
मानसोत्तर	मानसोत्तरसे	**कथञ्चित् पुनः**	कभी भी फिर
मेरोः अन्तरं	मेरुका अन्तर है	**न प्रति**	लौटकर नहीं
तावती भूमिः	उसका स्थल (शुद्धोदकके पार) है	**उपलभ्यते**	मिलता
		तस्मात्	इसलिए
काञ्चन्यन्या	वह स्वर्णमय है,	**सर्व**	सब
आदर्शतल	दर्पणके समान	**सत्त्व परिहृता**	प्राणियोंने छोड़ी
उपमा	(स्वच्छ) है,	**आसीत्**	है (वहां कोई नहीं रहता) ॥३५॥
यस्यां प्रहितः	जिसमें पहुँचा (गिरा)		

लोकालोक इति समाख्या यदनेनाचलेन लोकालोक-स्यान्तर्वर्तिनावस्थाप्यते ॥३६॥

लोकालोक इति समाख्या यत् अनेन अचलेन लोक अलोकस्य अन्तर्वर्तिना अवस्थाप्यते ॥३६॥

लोकालोक	लोकालोक	**लोक**	लोक और
इति समाख्या	यह नाम पड़नेका कारण है	**अलोकस्य**	अलोकके
		अन्तर्वर्तिना	मध्यमें
यत् अनेन	क्योंकि यह	**अवस्थाप्यते**	स्थित है ॥३६॥
अचलेन	पर्वत		

स लोकत्रयान्ते परित ईश्वरेण विहितो यस्मात्सूर्यादीनां ध्रुवापवर्गाणां ज्योतिर्गणानां गभस्तयोऽर्वाचीनांस्त्रींल्लोकानावितन्वाना न कदाचित्पराचीना भवितुमुत्सहन्ते तावदुन्नहनायामः ॥३७॥

स लोकत्रय अन्ते परित ईश्वरेण विहितः यस्मात् सूर्य आदीनां ध्रुव अपवर्गाणां ज्योतिर्गणानां गभस्तयः अर्वाचीनाः त्रीन्लोकान् अवितन्वाना न कदाचित् पराचीना भवितुं उत्सहन्ते तावत् उन्नहन आयामः ॥३७॥

स लोकत्रय	वह (पर्वत) तीनों लोकोंके	**अर्वाचीनाः**	नीचे ही
अन्ते	अन्तमें	**त्रीन्लोकान्**	तीनों लोकोंमें
परति	चारों ओर	**अवितन्वाना**	फैलती हुई
ईश्वरेण	परमेश्वर द्वारा	**कदाचित्**	कभी
विहितः	बनाया है।	**पराचीना भवितुं**	पार होनेका
यस्मात्	जिससे	**उत्सहन्ते न**	उत्साह नहीं करतीं
सूर्य आदीनां	सूर्य आदि	**तावत्**	वहीं तक
ध्रुव अपवर्गाणां	ध्रुव पर्यन्त	**उन्नहन आयामः**	ऊपर जानेका (उनका) विस्तार है ॥३७॥
ज्योतिर्गणानां	ज्योतिर्मण्डलकी		
गभस्तयः	किरणें		

एतावाँल्लोकविन्यासो मानलक्षणसंस्थाभिर्विचिन्तितः कविभिः स तु पञ्चाशत्कोटिगणितस्य भूगोलस्य तुरीयभागोऽयं लोकालोकाचलः ॥३८॥

एतावान् लोकविन्यासः मान लक्षण संस्थाभिः विचिन्तितः कविभिः स तु पञ्चाशत् कोटि गणितस्य भूगोलस्य तुरीय भागः अयं लोकालोक अचलः ॥३८॥

कविभिः	विद्वानों द्वारा	**एतावान्**	इतना ही
मान लक्षण	परिमाण, लक्षण,	**लोकविन्यासः**	लोकोंकी स्थिति
संस्थाभिः	स्थितिके द्वारा	**विचिन्तितः**	सोची गयी है।

स तु	वह तो	भूगोलस्य	(समस्त इस) भूगोलका
गणितस्य	गणितसे	तुरीय भागः	चौथाई भाग
पञ्चाशत् कोटि	पचास करोड़ योजन है।	अयं लोकालोक अचलः	यह लोकालोक पर्वत है ॥३८॥

तदुपरिष्टाच्चतसृष्वाशास्वात्मयोनिनाखिलजगद्गुरुणाधिनिवेशिता ये द्विरदपतय ऋषभः पुष्करचूडो वामनोऽपराजित इति सकललोकस्थितिहेतवः ॥३९॥

तत् उपरिष्टात् चतसृषु आशासु आत्मयोनिना अखिल जगत् गुरुणा अधिनिवेशिता ये द्विरद पतयः ऋषभः पुष्कर चूडः वामनः अपराजितः इति सकललोक स्थिति हेतवः ॥३९॥

अखिल जगत्	सम्पूर्ण विश्वके	स्थिति हेतवः	स्थितिके लिए
गुरुणा	गुरु	ये द्विरद पतयः	जो गजराज
आत्मयोनिना	स्वयम्भू (ब्रह्माजी) द्वारा	अधिनिवेशिता	नियुक्त किये हैं
		इति	(वे) इस प्रकार हैं
तत् उपरिष्टात्	उस (लोका-लोक) के ऊपर	ऋषभः	ऋषभ,
		पुष्करचूडः	पुष्करचूड,
चतसृषु आशासु	चारों दिशाओंमें	वामनः	वामन और
सकललोक	सब लोकोंकी	अपराजितः	अपराजित ॥३९॥

तेषां स्वविभूतीनां लोकपालानां च विविधवीर्योपबृंहणाय भगवान् परममहापुरुषो महाविभूतिपतिरन्तर्याम्यात्मनो विशुद्धसत्त्वं धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्याद्यष्टमहासिद्ध्युपलक्षणं विष्वक्सेनादिभिः स्वपार्षदप्रवरैः परिवारितो निजवरायुधोपशोभितैर्निजभुजदण्डैः सन्धारयमाणस्तस्मिन् गिरिवरे समन्तात्सकललोकस्वस्तय आस्ते ॥४०॥

तेषां स्वविभूतीनां लोक पालानां च विविधवीर्यं उपबृंहणाय भगवान् परम महापुरुषः महाविभूति पतिः अन्तर्यामी आत्मनः विशुद्ध सत्त्वं धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य आदि अष्टमहासिद्धि उपलक्षणं विष्वक्सेन आदिभिः स्वपार्षदप्रवरैः परिवारितः निजवर आयुध उपशोभित निजभुज-दण्डैः सन्धारयमाणः तस्मिन् गिरिवरे समन्तात् सकल लोक स्वस्तय आस्ते ॥४०॥

तेषां	उन (दिग्गजों) की
च स्वविभूतीनां	तथा अपनी विभूति रूप
लोक पालानां	लोकपालोंकी
विविधवीर्यं	अनेक प्रकारकी शक्तियोंको
उपबृंहणाय	बढ़ानेके लिए (तथा)
सकल लोक	सब लोकोंके
स्वस्तय	कल्याणके लिए
भगवान्	भगवान्
परम	सर्वोपरि
महापुरुषः	महापुरुष,
महाविभूति	महान् ऐश्वर्यके
पतिः	स्वामी,
अन्तर्यामी	अन्तर्यामी
विशुद्ध सत्त्वं	विशुद्ध सत्त्व
आत्मनः	विग्रह (श्रीहरि)
धर्म ज्ञान	धर्म, ज्ञान,
वैराग्य ऐश्वर्य	वैराग्य, ऐश्वर्य
आदि	आदि
अष्टमहासिद्धि	आठ महासिद्धियोंसे
उपलक्षणं	उपलक्षित,
स्वपार्षदप्रवरैः	अपने पार्षद श्रेष्ठ
विष्वक्सेन	विष्वक्सेन
आदिभिः	आदिसे
परिवारितः	घिरे हुए,
निजवर आयुध	अपने श्रेष्ठ आयुध (शंखचक्र आदि)
उपशोभित	सुशोभित
निजभुजदण्डैः	अपनी भुजाओंसे
सन्धारयमाणः	धारण किये
तस्मिन् गिरिवरे	उस श्रेष्ठ पर्वत (लोकालोक) पर
समन्तात् आस्ते	सब ओर विराज-मान हैं ॥४०॥

आकल्पमेवं वेषं गत एष भगवानात्मयोगमायया विर-चितविविधलोकयात्रागोपीयायेत्यर्थः ॥४१॥

आकल्पं एवं वेषं गतः एष भगवान् आत्म योगमायया विरचित विविध लोकयात्रा गोपीयाय इति अर्थः ॥४१॥

आत्म	अपनी	**इति अर्थः**	इसी प्रयोजनसे
योगमायया	योगमाया द्वारा	**एष भगवान्**	ये भगवान्
विरचित	निर्मित	**आकल्पं**	कल्प पर्यन्त
विविध	अनेक प्रकारके	**एवं वेष गतः**	इसी वेशमें रहते
लोकयात्रा	लोक-व्यवहारकी		हैं ॥४१॥
गोपीयाय	रक्षाके लिए		

योऽन्तर्विस्तार एतेन ह्यलोकपरिमाणं च व्याख्यातं यद्बहिर्लोकालोकाचलात् । ततः परस्ताद्योगेश्वरगतिं विशुद्धामुदाहरन्ति ॥४२॥

यः अन्तः विस्तार एतेन हि अलोक परिमाणं च व्याख्यातं यत् बहिः लोकालोक अचलात् ततः परस्तात् योगेश्वरगतिं विशुद्धां उदाहरन्ति ॥४२॥

यः	जो (लोकालोकके)	**अलोक**	अलोकके
अन्तः विस्तार	भीतरी भागका विस्तार है,	**परिमाणं च**	परिमाणको भी
		व्याख्यातं	बतला दिया (गया)
एतेन हि	इसके द्वारा ही	**ततः परस्तात्**	उससे आगे
यत्	जो	**विशुद्धां**	ठीक-ठीक
लोकालोक	लोकालोक	**योगेश्वरगतिं**	योगेश्वरोंकी ही गति
अचलात्	पर्वतसे	**उदाहरन्ति**	कही जाती है ॥४२॥
बहिः	बाहर है (उस)		

अण्डमध्यगतः सूर्यो द्यावाभूम्योर्यदन्तरम् । सूर्याण्डगोलयोर्मध्ये कोट्यः स्युः पञ्चविंशतिः ॥४३॥

अण्डमध्य गतः सूर्यः द्यावा भूम्योः यत् अन्तरं सूर्य अण्डगोलयोः मध्ये कोट्यः स्युः पञ्चविंशतिः ॥४३॥

द्यावा	स्वर्ग		(उस)
भूम्योः	पृथ्वीके	**अण्डमध्य**	ब्रह्माण्डके मध्य
यत् अन्तरं	मध्यका जो भाग है		(केन्द्र) में

सूर्यः गतः	सूर्य स्थित है।	पञ्चविंशतिः	पच्चीस
सूर्य	सूर्य तथा	कोटयः स्युः	करोड़ योजन
अण्डगोलयोः	ब्रह्माण्ड-गोलकके		है ॥४३॥
मध्ये	बीचमें		

मृतेऽण्ड एष एतस्मिन् यदभूत्ततो मार्तण्ड इति व्यपदेशः।
हिरण्यगर्भ इति यद्धिरण्याण्डसमुद्भवः ॥४४॥

मृते अण्ड एष एतस्मिन् यत् अभूत् ततः मार्तण्ड इति व्यपदेशः हिरण्यगर्भ इति यत् हिरण्य अण्ड समुद्भवः ॥४४॥

एष यत्	यह क्योंकि	हिरण्यगर्भ	हिरण्यगर्भ
एतस्मिन्	इस	इति यत्	इस प्रकार (कहा
मृते अण्ड	मरे हुए अण्ड		गया) क्योंकि
	(ब्रह्माण्ड) से	हिरण्य अण्ड	स्वर्णिम (ज्योतिमय)
अभूत्	उत्पन्न हुआ,		अण्डसे
ततः मार्तण्ड	इसलिए मार्तण्ड	समुद्भवः	उत्पन्न हुए ॥४४॥
इति व्यपदेशः	इस प्रकार निर्दिष्ट		
	हुआ।		

सूर्येण हि विभज्यन्ते दिशः खं द्यौर्मही भिदा।
स्वर्गापवर्गौ नरका रसौकांसि च सर्वशः ॥४५॥

सूर्येण हि विभज्यन्ते दिशः खं द्यौः मही भिदा स्वर्ग अपवर्गौ नरका रसा ओकांसि च सर्वशः ॥४५॥

हि सूर्येण	क्योंकि सूर्यके द्वारा	नरका	नरक
	ही	रसा ओकांसि	रसातलादि
दिशः खं	दिशाओं, आकाश,	सर्वशः	सभी
द्यौः मही	द्यु लोक (अन्तरिक्ष)	भिदा	भागोंका
	भूलोक	विभज्यन्ते	विभाजन होता
स्वर्ग	स्वर्ग		है ॥४५॥
अपवर्गौ	मोक्षके प्रदेश		
	(वैकुण्ठादि)		

देवतिर्यङ्मनुष्याणां सरीसृपसवीरुधाम् ।
सर्वजीवनिकायानां सूर्य आत्मा दृगीश्वरः ॥४६॥

देव तिर्यक् मनुष्याणां सरीसृप सवीरुधां सर्वजीव निकायानां सूर्य आत्मा दृक् ईश्वरः ॥४६॥

देव तिर्यक्	देवता, तिर्यक् (पशु-पक्षी)	**निकायानां**	समूहोंका
मनुष्याणां	मनुष्योंके साथ	**सूर्य आत्मा**	सूर्य आत्मा और
सरीसृप	सरकने वाले प्राणी,	**दृक् ईश्वरः**	नेत्रोंके अधिष्ठाता हैं ॥४६॥
सवीरुधां	वनस्पतियोंके साथ		
सर्वजीव	सभी जीव		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे भुवनकोशवर्णने समुद्वर्षसंनिवेशपरिमाणलक्षणो विंशोऽध्यायः ॥४६॥

अथ एकविंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

एतावानेव भूवलयस्य संनिवेशः प्रमाणलक्षणतो व्याख्यातः ॥१॥

एतावान् एव भूवलयस्य संनिवेशः प्रमाण लक्षणतः व्याख्यातः ॥१॥

एतावान् एव	इतना ही	**प्रमाण लक्षणतः**	परिमाण और लक्षण सहित
भूवलयस्य	भू-मण्डलका		
सन्निवेशः	विस्तार है,	**व्याख्यातः**	(वह) बतला दिया गया ॥१॥

एतेन हि दिवो मण्डलमानं तद्विद उपदिशन्ति यथा द्विदलयोर्निष्पावादीनां ते अन्तरेणान्तरिक्षं तदुभयसन्धितम् ॥२॥

एतेन हि दिवः मण्डलमानं तद् विद उपदिशन्ति यथा द्विदलयोः निष्पाः आदीनां ते अन्तरेण अन्तरिक्षं तत् उभय सन्धितम् ॥२॥

हि	क्योंकि	**यथा निष्पाः**	जैसे दालोंवाले
एतेन	इसीके अनुसार	**द्विदलयोः**	(चना, मटर आदि) द्विदलोंमें होते हैं
दिवः	द्युलोक		
मण्डलमानं	मण्डलका परिमाण	**ते अन्तरेण**	उनके मध्यमें
तद् विद	उसे जाननेवाले (विद्वान्)	**अन्तरिक्षं**	अन्तरिक्ष है,
		तत् उभय	वह दोनोंका
उपदिशन्ति	बतलाते हैं,	**सन्धितं**	सन्धि स्थान है ॥२॥

यन्मध्यगतो भगवांस्तपतामधिपतिस्तपन आतपेन त्रिलोकीं प्रतपत्यवभासयत्यात्मभासा स एष उदगयनदक्षिणायनवैषुवत-संज्ञाभिर्मान्द्यशैघ्र्यसमानाभिर्गतिभिरारोहणावरोहणसमानस्थानेषु यथासवनमभिपद्यमानो मकरादिषु राशिष्वहोरात्राणि दीर्घ-ह्रस्वसमानानि विधत्ते ॥३॥

यत् मध्यगतः भगवान् तपतां पतिः तपन आतपेन त्रिलोकीं प्रतपति अवभासयति आत्मभासा स एष उदगयन दक्षिणायन वैषुवत संज्ञाभिः मान्द्य शैघ्र्य समानाभिः गतिभिः आरोहण अवरोहण समान स्थानेषु यथा सवनं अभिपद्यमानः मकर आदिषु राशिषु अहः रात्राणि दीर्घ ह्रस्व समानानि विधत्ते ॥३॥

यत् मध्यगतः	जिसके मध्यमें स्थित
तपतां पतिः	तपाने वालों (ग्रह नक्षत्रादि) के स्वामी
भगवान् तपन	भगवान् सूर्य
आतपेन	(अपनी) धूपसे
त्रिलोकीं	तीनों लोकोंको
प्रतपति	तपाते हैं,
आत्मभासा	अपने प्रकाशसे
अवभासयति	प्रकाशित करते हैं।
स एष	वह ये
उदगयन	उत्तरायण,
दक्षिणायन	दक्षिणायन,
वैषुवत	विषुवत
संज्ञाभिः	नामवाली (क्रमशः)
मान्द्य शैघ्र्य	मन्द, शीघ्र,
समानाभिः	समान
गतिभिः	गतिसे
मकर आदिषु	मकर आदि
राशिषु	राशियोंमें (चलते हुए)
आरोहण	ऊँचे चढ़ते,
अवरोहण	नीचे उतरते,
समान स्थानेषु	समान स्थानमें
यथा सवनं	समयानुसार
अभिपद्यमानः	पहुँचकर
अहः रात्राणि	दिन-रात्रिको
दीर्घ ह्रस्व	बड़ी, छोटी या
समानानि	समान
विधत्ते	बनाते हैं ॥३॥

यदा मेषतुलयोर्वर्तते तदाहोरात्राणि समानानि भवन्ति यदा वृषभादिषु पञ्चसु च राशिषु चरति तदाहान्येव वर्धन्ते ह्रसति च मासि मास्येकैका घटिका रात्रिषु ॥४॥

यदा मेष तुलयोः वर्तते तदा अहः रात्राणि समानानि भवन्ति यदा वृषभ आदिषु पञ्चसु च राशिषु चरति तदा अहानि एव वर्धन्ते ह्रसति च मासि मासि एक एका घटिका रात्रिषु ॥४॥

यदा	जब (सूर्य)		कर्क, सिंह, कन्या)
मेष तुलयोः	मेष या तुला राशिमें	**पञ्चसु राशिषु**	पांच राशियोंमें
वर्तते	रहते हैं,	**चरति**	चलते हैं
तदा	तब	**तदा अहानि एव**	तब दिन ही
अहः रात्राणि	दिन और रात्रियाँ	**वर्धन्ते**	बढ़ते हैं।
समानानि	बराबर	**च मासि मासि**	तथा प्रत्येक महीने
भवन्ति	होते हैं,	**एक एका घटिका**	एक एक घड़ी
च यदा	और जब	**रात्रिषु**	रात्रियोंकी
वृषभ आदिषु	वृषभ आदि (मिथुन,	**ह्रसति**	घटती जाती है ॥४॥

यदा वृश्चिकादिषु पञ्चसु वर्तते तदाहोरात्राणि विपर्ययाणि भवन्ति ॥५॥

यदा वृश्चिक आदिषु पञ्चसु वर्तते तदा अहः रात्राणि विपर्ययाणि भवन्ति ॥५॥

यदा वृश्चिक	जब वृश्चिक	**तदा अहः**	तब दिन और
आदिषु	आदि	**रात्राणि**	रात्रियां
पञ्चसु	पांच (वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, मीन) राशियोंमें	**विपर्ययाणि**	उलटे (दिन घटते, रात्रियां बढ़ती)
		भवन्ति	होती हैं ॥५॥
वर्तते	रहते हैं		

यावद्दक्षिणायनमहानि वर्धन्ते यावदुदगयनं रात्रयः ॥६॥

यावत् दक्षिणायनं अहानि वर्धन्ते यावत् उदगयनं रात्रयः ॥६॥

दक्षिणायनं	(सूर्यके) दक्षिणायन।	**यावत्**	आरम्भ होने तक

अहानि वर्धन्ते	दिन बढ़ते हैं	**रात्रयः**	रात्रियां (बढ़ती हैं) ॥६॥
उदगयनं	उत्तरायण		
यावत्	आरम्भ होने तक		

एवं नव कोटय एकपञ्चाशल्लक्षाणि योजनानां मानसोत्तरगिरिपरिवर्तनस्योपदिशन्ति तस्मिन्नैन्द्रीं पुरीं पूर्वस्मान्मेरोर्देवधानीं नाम दक्षिणतो याम्यां संयमनीं नाम पश्चाद्वारुणीं निम्लोचनीं नाम उत्तरतः सौम्यां विभावरीं नाम तासूदयमध्याह्नास्तमयनिशीथानीति भूतानां प्रवृत्तिनिवृत्तिनिमित्तानि समयविशेषेण मेरोश्चतुर्दिशम् ॥७॥

एवं नव कोटय एकपञ्चाशत् लक्षाणि योजनानां मानसोत्तर गिरि परिवर्तनस्य उपदिशन्ति तस्मिन् ऐन्द्रीं पुरीं पूर्वस्मात् मेरोः देवधानीं नाम दक्षिणतः याम्यां संयमनीं नाम पश्चात् वारुणीं निम्लोचनीं नाम उत्तरतः सौम्यां विभावरीं नाम तासु उदय मध्याह्न अस्तमय निशीथानि इति भूतानां प्रवृत्ति निवृत्ति निमित्तानि समय विशेषेण मेरोः चतुर्दिशम् ॥७॥

एवं	इस प्रकार	**देवधानीं नाम**	देवधानी नामकी है।
नव कोटि	नौ करोड़	**दक्षिणतः**	दक्षिणकी ओर
एकपञ्चाशत्	इक्यावन	**याम्यां संयमनीं**	यमकी संयमनी
लक्षाणि	लाख	**नाम**	नामक पुरी है।
योजनानां	योजन	**पश्चात्**	पीछे (पश्चिम) की ओर
मानसोत्तर	मानसोत्तर	**वारुणीं**	वरुणकी
गिरि	गिरिकी	**निम्लोचनीं**	निम्लोचनी
परिवर्तनस्य	परिक्रमा (मार्ग) को	**नाम**	नामकी पुरी है।
उपदिशन्ति	(जानकार) बतलाते हैं,	**उत्तरतः**	उत्तरकी ओर
तस्मिन्	उस (पर्वत) पर	**सौम्यां**	चन्द्रमाकी पुरी
मेरोः पूर्वस्मात्	सुमेरुसे पूर्वकी ओर		
ऐन्द्रीं पुरीं	इन्द्रकी पुरी		

विभावरीं नाम	विभावरी नामकी है।*	**अस्तमय**	सायंकाल,
		निशीथानि	अर्धरात्रि
तासु	इन (पुरियोंमें)	**इति**	इस प्रकार
समय विशेषेण	विशेष समयके अनुसार	**भूतानां प्रवृत्ति निवृत्ति**	प्राणियोंकी प्रवृत्ति, निवृत्तिके
मेरोः चतुर्दिशं	सुमेरुके चारों ओर	**निमित्तानि**	निमित्त (होते रहते
उदय मध्याह्न	सूर्योदय, मध्याह्न,		हैं) ॥७॥

तत्रत्यानां दिवसमध्यङ्गत एव सदाऽऽदित्यस्तपति सव्येनाचलं दक्षिणेन करोति ॥८॥

तत्रत्यानां दिवस मध्यंगत एव सदा आदित्यः तपति सव्येन अचलं दक्षिणेन करोति ॥८॥

तत्रत्यानां	वहाँ (मानसोत्तर गिरिपर) रहने वालोंके लिए	**आदित्यः तपति**	सूर्य तपते हैं।
		सव्येन अचलं	पर्वतके बायेंसे (चलते)
सदा	सर्वदा	**दक्षिणेन करोति**	अपने दाहिने करते हैं ॥८॥
दिवस	दिनके		
मध्यंगत एव	मध्याह्न कालीन ही		

यत्रोदेति तस्य ह समानसूत्रनिपाते निम्लोचति यत्र क्वचन स्यन्देनाभितपति तस्य हैष समानसूत्रनिपाते प्रस्वापयति तत्र गतं न पश्यन्ति ये तं समनुपश्येरन् ॥९॥

यत्र उदेति तस्य ह समान सूत्र निपाते निम्लोचति यत्र क्वचन स्यन्देन अभितपति तस्य हि एष समान सूत्र निपाते प्रस्वापयति तत्र गतं न पश्यन्ति ये तं समनु पश्येरन् ॥९॥

---

* वरुणकी पुरीका नाम विभावरी आया है ३।।७।२६

यत्र उदेति	जहाँ उदय होते हैं	**निपाते**	डालक देखनेके स्थानपर
तस्य ह	उसके ठीक		
सूत्र निपाते	सूत डालकर मापने पर (दूसरी ओर)	**प्रस्वापयति**	(लोगोंको) प्रसुप्त कर देते हैं।
निम्लोचति	अस्त होते लगते हैं।	**तत्र गतं**	वहां रहनेवाले
यत्र क्वचन	जहाँ कहीं	**ये तं समनु**	जो उनको भली प्रकार
स्यन्देन	पसीनेसे भिगाकर		
अभितपति	संतप्त करते हैं	**पश्येरन्**	(दोपहरमें) देखते थे,
एष	ये (सूर्य भगवान्)	**न पश्यन्ति**	(रातके समय) नहीं देखते ॥९॥
तस्य हि	उसके ही		
समान सूत्र	ठीक सामने सूत		

यदा चैन्द्र्याः पुर्याः प्रचलते पञ्चदशघटिकाभिर्याम्यां सपादकोटिद्वयं योजनानां सार्धद्वादशलक्षाणि साधिकानि चोपयाति ॥१०॥

यदा च ऐन्द्रयाः पुर्याः प्रचलते पञ्चदश घटिकाभिः याम्यां सपाद कोटिद्वयं योजनानां सार्ध द्वादश लक्षाणि स अधिकानि च उपयाति ॥१०॥

यदा च	जब भी (सूर्य)	**सार्ध द्वादश**	साढ़े बारह
ऐन्द्रयाः पुर्याः	इन्द्रकी पुरीसे	**लक्षाणि**	लाखसे
प्रचलते	चलते हैं	**स अधिकानि**	कुछ (पचीस हजार) आदिके
पञ्चदश	पन्द्रह		
घटिकाभिः	घड़ीमें	**योजनानां च**	योजन भी
याम्यां	यमपुरीकी ओर	**उपयाति**	जाते हैं ॥१०॥
सपाद कोटिद्वयं	सवा दो करोड़		

एवं ततो वारुणीं सौम्यामैन्द्रीं च पुनस्तथान्ये च ग्रहाः सोमादयो नक्षत्रैः सह ज्योतिश्चक्रे समभ्युद्यन्ति सह वा निम्लोचन्ति ॥११॥

एवं ततः वारुणीं सौम्यां ऐन्द्रीं च पुनः तथा अन्ये च ग्रहाः सोमादयः नक्षत्रैः सह ज्योतिः चक्रे सम अभ्युद्यन्ति सह वा निम्लोचन्ति ॥११॥

एवं ततः	इसी प्रकार वहांसे	**ज्योतिः चक्रे**	ज्योतिश्चक्रमें
वारुणीं सौम्यां	वरुणकी, चन्द्रमाकी,	**सम अभ्युद्यन्ति**	साथ-साथ उदय होते
च पुनः ऐन्द्रीं	और फिर इन्द्रकी पुरी (पहुँचते हैं)	**वा सह**	अथवा साथ-साथ
सोमादयः ग्रहाः	चन्द्रमा आदि ग्रह	**निम्लोचन्ति**	अस्त होते हैं ॥११॥
नक्षत्रैः सह	नक्षत्रोंके साथ		

एवं मुहूर्तेन चतुस्त्रिंशल्लक्षयोजनान्यष्टशताधिकानि सौरो रथस्त्रयीमयोऽसौ चतसृषु परिवर्तते पुरीषु ॥१२॥

एवं मुहूर्तेन चतुः त्रिंशत् लक्ष योजनानि अष्टशत अधिकानि सौरो रथः त्रयीमयः असौ चतसृषु परिवर्तते पुरीषु ॥१२॥

एवं	इस प्रकार	**अधिकानि**	अधिक
असौ	यह	**त्रिंशत् लक्ष**	तीस लाख
त्रयीमयः	वेदमय	**योजनानि**	योजन (की गतिसे)
सौरो रथः	सूर्यका रथ	**चतसृषु पुरीषु**	चारों पुरियोंमें
मुहूर्तेन	एक मुहूर्तमें	**परिवर्तते**	घूमता रहता है ॥१२॥
अष्टशत	आठ सौ		

यस्यैकं चक्रं द्वादशारं षण्नेमि त्रिणाभि संवत्सरात्मकं समामनन्ति तस्याक्षो मेरोर्मूर्धनि कृतो मानसोत्तरे कृतेतरभागो यत्र प्रोतं रविरथचक्रं तैलयन्त्रचक्रवद् भ्रमन्मानसोत्तरगिरौ परिभ्रमति ॥१३॥

यस्य एकं चक्रं द्वादशारं षट् नेमिः त्रिणाभि संवत्सर आत्मकं समामनन्ति तस्य अक्षः मेरोः मूर्धनिकृतः मानसोत्तरे कृतः इतर भागः यत्र प्रोतं रविरथचक्रं तैलयन्त्र चक्रवत् भ्रमत् मानसोत्तर गिरौ परिभ्रमति ॥१३॥

यस्य	जिसका
एकं चक्रं	एक चक्र
द्वादशारं	बारह (मासरूप) अरे,
षट् नेमिः	छः (ऋतु रूप) नेमि (हाल)
त्रिणाभि	तीन (चौमासे रूप) नाभि वाला
संवत्सर आत्मकं	संवत्सर स्वरूप
समामनन्ति	मानते हैं।
तस्य अक्षः	उसकी धुरीका एक सिरा
मेरोः मूर्ध निकृतः	सुमेरुकी चोटीपर रखा है,
इतर भागः	दूसरा भाग (सिरा)
मानसोत्तरे कृतः	मानसोत्तर गिरि-पर रखा है।
यत्र प्रोतं	जिसमें पिरोया
रविरथचक्रं	सूर्यके रथका पहिया
तैलयन्त्र	कोल्हूके
चक्रवत्	पहियेके समान
भ्रमत्	घूमता हुआ
मानसोत्तर	मानसोत्तर
गिरौ	पर्वतके
परिभ्रमति	चारों ओर घूमता है ॥१३॥

तस्मिन्नक्षे कृतमूलो द्वितीयोऽक्षस्तुर्यमानेन सम्मित-स्तैलयन्त्राक्षवद् ध्रुवे कृतोपरिभागः ॥१४॥

तस्मिन् अक्षे कृतमूलः द्वितीयः अक्षः तुर्यमानेन सम्मितः तैलयन्त्र अक्षवत् ध्रुवे कृत उपरिभागः ॥१४॥

तस्मिन अक्षे	उस धुरीमें
कृतमूलः	मूल भाग जुड़ी
द्वितीयः अक्षः	दूसरी धुरी
तुर्यमानेन	उससे चौथाई परिमाण
सम्मितः	बराबर है
तैलयन्त्र	तेलके कोल्हूके
अक्षवत्	धुरीके समान
उपरिभागः	उसका ऊपरी भाग
ध्रुवे कृत	ध्रुवपर रखा है ॥१४

रथनीडस्तु षट्त्रिंशल्लक्षयोजनायतस्तत्तुरीय भाग-विशालस्तावान् रविरथयुगो यत्र हयाश्छन्दोनामानः सप्तारुण-योजिता वहन्ति देवमादित्यम् ॥१५॥

रथनीडः तु षट्त्रिंशत् लक्ष योजन आयतः तत् तुरीय भाग विशालः तावान् रविरथ युगः यत्र हयाः छन्दो नामानः सप्त अरुण योजिता वहन्ति देवं आदित्यम् ॥१५॥

रथनीडः तु	रथमें बैठनेका स्थान तो	**तावान्**	उतना ही (छत्तीस लाख योजन)
षट्त्रिंशत् लक्ष योजन	छत्तीस लाख योजन	**रविरथ युगः यत्र**	सूर्य-रथका जूआ है। जिसमें
आयतः	लम्बा	**छन्दो नामानः**	(गायत्री आदि) छन्दोंके नाम वाले
तत् तुरीय भाग	उसका चौथाई (नौ लाख योजन) भाग	**सप्त हयाः**	सात घोड़े
		अरुण योजिता	(सारथि) अरुण द्वारा जोते
विशालः	विशाल (चौड़ा) है,	**देवं आदित्यं वहन्ति**	सूर्य देवको ढोते हैं ॥१५॥

पुरस्तात्सवितुररुणः पश्चाच्च नियुक्तः सौत्ये कर्मणि किलास्ते ॥१६॥

पुरस्तात् सवितुः अरुणः पश्चात् च नियुक्तः सौत्ये कर्मणि किल आस्ते ॥१६॥

सवितुः पुरस्तात्	सूर्यके आगे	**नियुक्तः**	नियुक्त
पश्चात् च	पीछेकी (सूर्यकी) ओर (मुख किये)	**अरुणः किल**	अरुण ही
		आस्ते	हैं ॥१६॥
सौत्ये कर्मणि	सारथिके काममें		

तथा वालखिल्या ऋषयोऽङ्गुष्ठपर्वमात्राः षष्टिसहस्राणि पुरतः सूर्यं सूक्तवाकाय नियुक्ताः संस्तुवन्ति ॥१७॥

तथा वालखिल्या ऋषयः अङ्गुष्ठ पर्व मात्राः षष्टि सहस्राणि पुरतः सूर्यं सूक्तवाकाय नियुक्ताः संस्तुवन्ति ॥१७॥

तथा	इसी प्रकार	**मात्राः**	बराबर
षष्टि सहस्राणि	साठ हजार	**वालखिल्या**	वालखिल्य
अङ्गुष्ठ पर्व	अँगूठेके पोर	**ऋषयः**	ऋषिगण

सूर्यं पुरतः	सूर्यके आगे	नियुक्ताः	नियुक्त
सूक्तवाकाय	स्वस्ति वाचनके लिए	संस्तुवन्ति	(उनकी) स्तुति करते रहते हैं ॥१७॥

तथान्ये च ऋषयो गन्धर्वाप्सरसो नागा ग्रामण्यो यातुधाना देवा इत्येकैकशो गणाः सप्त चतुर्दश मासि मासि भगवन्तं सूर्यमात्मानं नानानामानं पृथङ्नानानामानः पृथक्-कर्मभिर्द्वन्द्वश उपासते ॥१८॥

तथा अन्ये च ऋषयः गन्धर्वाः अप्सरसः नागाः ग्रामण्यः यातुधानाः देवाः इति एक एकशः गणाः सप्त चतुर्दश मासि मासि भगवन्तं सूर्यं आत्मानं नाना नामानं पृथक् नाना नामानः पृथक् कर्मभिः द्वन्द्वशः उपासते ॥१८॥

तथा अन्ये च	इसी प्रकार दूसरे भी	नाना नामानं	अनेक नामवाले
ऋषयः गन्धर्वाः	ऋषि, गन्धर्व,	भगवन्तं सूर्यं	भगवान् सूर्यकी
नागाः ग्रामण्यः	नाग, यक्ष,	आत्मानं पृथक्	अपने भी अलग-अलग
यातु धानाः	राक्षस,		
देवाः	देवता	नाना नामानः	अनेक नामवाले
इति एक एकशः	इस प्रकार प्रत्येक	पृथक कर्मभिः	अलग-अलग कर्मों द्वारा
सप्त गणाः	(जोड़ेसे रहनेसे) सात गण	द्वन्द्वशः उपासते	दो-दो मिलकर उपासना करते हैं ॥१८॥
चतुर्दश	(कुल) चौदह		
मासि मासि	प्रत्येक महीनेमें		

लक्षोत्तरं सार्धनवकोटियोजनपरिमण्डलं भूवलयस्य क्षणेन सगव्यूत्युत्तरं द्विसहस्रयोजनानि स भुङ्क्ते ॥१९॥

लक्ष उत्तरं सार्ध नवकोटि योजन परिमण्डलं भूवलयस्य क्षणेन सगव्यूति उत्तरं द्विसहस्र योजनानि स भुङ्क्ते ॥१९॥

स	वे (सूर्य भगवान्)
भूवलयस्य	भूमण्डलके
लक्ष उत्तरं	एक लाख ऊपर
सार्ध नवकोटि	आधा अधिक नौ करोड़ (नौ करोड़ इक्यावन लाख)
योजन	योजन
परिमण्डलं	घेरेमें
सगव्यूति उत्तरं	दो ऊपर
द्विसहस्र	दो सहस्र
योजनानि	योजन
क्षणेन भुङ्क्ते	एकक्षणमें भोगते (जाते) हैं ॥१६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे ज्योतिश्चक्रसूर्यरथमण्डलवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

राजोवाच

यदेतद्भगवत आदित्यस्य मेरुं ध्रुवं च प्रदक्षिणेन परिक्रामतो राशीनामभिमुखं प्रचलितं चाप्रदक्षिणं भगवतोपवर्णितममुष्य वयं कथमनुमिमीमहीति ॥१॥

यद् एतद् भगवतः आदि त्यस्य मेरुं ध्रुवं च प्रदक्षिणेन परिक्रामतः राशीनां अभिमुखं प्रचलितं च प्रदक्षिणं भगवतः उपवर्णितं अमुष्य वयं कथं अनुमीमही इति ॥१॥

भगवतः	भगवन्	**राशीनां**	तथा राशियोंके
उपवर्णितं	आपके द्वारा वर्णित	**अभिमुखं**	सम्मुख
यद् एतद्	यह जो	**प्रचलितं**	चलते हुए
भगवतः	भगवान्	**च प्रदक्षिणं**	भी उनके बराबर दाहिने रहते हैं
आदि त्यस्य	सूर्यके		
मेरुं च ध्रुवं	सुमेर और ध्रुवकी	**अमुष्य**	इसका
प्रदक्षिणेन	प्रदक्षिणा करते	**इति वयं कथं**	इस प्रकार हम कैसे
परिक्रामतः	उनके चारों ओर घूमते हैं	**अनुमीमही**	अनुमान करें ॥१॥

श्रीशुक उवाच-*

यथा कुलालचक्रेण भ्रमता सह भ्रमतां तदाश्रयाणां पिपीलिकादीनां गतिरन्यैव प्रदेशान्तरेष्वप्युपलभ्यमानत्वादेवं नक्षत्रराशिभिरुपलक्षितेन कालचक्रेण ध्रुवं मेरुं च प्रदक्षिणेन

* अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'स होवाच' है।

परिधावता सह परिधावमानानां तदाश्रयाणां सूर्यादीनां ग्रहाणां गतिरन्यैव नक्षत्रान्तरे राश्यन्तरे चोपलभ्यमानत्वात् ॥२॥

यथा कुलाल चक्रेण भ्रमता सह भ्रमतां तत् आश्रयाणां पिपीलिका आदीनां गतिः अन्य एव प्रदेश अन्तरेषु अपि उपलभ्य मानत्वात् एवं नक्षत्र राशिभिः उपलक्षितेन कालचक्रेण ध्रुवं मेरुं च प्रदक्षिणेन परिधावता सह परिधावमानानां तत् आश्रयाणां सूर्य आदीनां ग्रहाणां गतिः अन्य एव नक्षत्र अन्तरे राशि अन्तरे च उपलभ्यमान त्वात् ॥२॥

यथा कुलाल	जैसे कुम्हारके
चक्रेण	चाकके
भ्रमता सह	घूमते समय उसके साथ
भ्रमतां	घूमते
तत् आश्रयणां	उसीपर स्थित
पिपीलिका	चींटी
आदीनां	आदि जीवोंको
गतिः	चाल
अन्य एव	दूसरे ही
प्रदेश अन्तरेषु	भिन्न स्थानसे
उप लभ्यमान	जान
त्वात्	पड़ती है
एव नक्षत्र	ऐसे ही नक्षत्र तथा
राशिभिः	राशियों द्वारा
उपलक्षितेन	पहिचाने जानेवाले
कालचक्रेण	काल-चक्रके
ध्रुवं च मेरुं	ध्रुव और सुमेरुकी
प्रदक्षिणेन	प्रदक्षिणा करते
परिधावता	दौड़ते हुएके
सह	साथ
परिधावमानानां	दौड़नेवाले
तत् आश्रयाणां	उसी (काल-चक्र) में स्थित रहनेवाले
सूर्य आदीनां	सूर्य आदि
ग्रहाणां	ग्रहोंकी
गतिः अन्य एव	गति दूसरे ही
नक्षत्र अन्तरे	नक्षत्रोंमें
च राशि अन्तरे	तथा भिन्न राशियोंमें
उपलभ्य	उपलब्ध
मानत्वात्	होनेके कारण (इसका अनुमान होता है) ॥२॥

स एष भगवानादिपुरुष एव साक्षान्नारायणो लोकानां स्वस्तय आत्मानं त्रयीमयं कर्मविशुद्धिनिमित्तं कविभिरपि च वेदेन विजिज्ञास्यमानो द्वादशधा विभज्य षट्सु वसन्तादिष्वृतुषु यथोपजोषमृतुगुणान् विदधाति ॥३॥

स एष भगवान् आदिपुरुषः एव साक्षात् नारायणः लोकानां स्वस्तय आत्मानं त्रयीमयं कर्मविशुद्धि निमित्तं कविभिः अपि च वेदेन विजिज्ञास्य मानः द्वादशधा विभज्य षट्सु वसन्त आदिषु ऋतुषु यथा उपजोषं ऋतुगुणान् विदधाति ॥३॥

स एष	वह ये
आदिपुरुषः	आदि-पुरुष
साक्षात्	साक्षात्
भगवान्	भगवान्
नारायणः एव	नारायण ही
लोकानां	लोकोंके
स्वस्तय	कल्याणके लिए
कर्मविशुद्धि	कर्मोंकी सम्पूर्ण शुद्धिके
निमित्तं	निमित्त
त्रयीमयं	वेदमय (क्योंकि)
कविभिः अपि	विद्वानों द्वारा भी
वेदेन	वेदके द्वारा
विजिज्ञास्यमानः	उनको जाननेकी इच्छा की जाती है
आत्मानं	अपनेको
द्वादशधा	बारह रूपोंमें
विभज्य	बाँटकर
षट्सु	छहो
वसन्त आदिषु	वसन्त आदि
ऋतुषु	ऋतुओंमें
यथा उपजोषं	उनके योग्य
ऋतुगुणान्	ऋतुओंके गुणोंका
विदधाति	विधान करते हैं ॥३

तमेतमिह पुरुषास्त्रय्या विद्यया वर्णाश्रमाचारानुपथा उच्चावचैः कर्मभिराम्नातैर्योगवितानैश्च श्रद्धया यजन्तोऽञ्जसा श्रेयः समधिगच्छन्ति ॥४॥

तं एतं इह पुरुषाः त्रय्या विद्यया वर्ण आश्रम आचार अनुपथाः उच्च अवचैः कर्मभिः आम्नातैः योगवितानैः च श्रद्धया यजन्तः अञ्जसा श्रेयः सम अधिगच्छन्ति ॥४॥

इह	इस (भारतवर्ष) में
वर्ण आश्रम	वर्ण आश्रमके
आचार	आचार
अनुपथाः	मार्गसे चलनेवाले
पुरुषाः	मनुष्य
तं एतं	उन इन (सूर्य भगवान्) की
त्रय्या विद्यया	वेदत्रयी द्वारा प्रतिपादित
उच्च अवचैः	बड़े-छोटे

कर्मभिः	कर्मोंसे,	**अञ्जसा**	सरलतासे
आम्नातैः	वेद विहित	**श्रेयः**	परम कल्याण
योगवितानैः च	योगके साधनोंसे भी	**सम**	भली
श्रद्धया यजन्तः	श्रद्धापूर्वक पूजन करते हुए	**अधिगच्छन्ति**	प्रकार पा लेते हैं ॥४॥

अथ स एष आत्मा लोकानां द्यावापृथिव्योरन्तरेण नभोवलयस्य कालचक्रगतो द्वादश मासान् भुङ्क्ते राशिसंज्ञान् संवत्सरावयवान्मासः पक्षद्वयं दिवा नक्तं चेति सपादर्क्षद्वय-मुपदिशन्ति यावता षष्ठमंशं भुञ्जीत स वै ऋतुरित्युपदिश्यते संवत्सरावयवः ॥५॥

अथ स एष आत्मा लोकानां द्यावा पृथिव्योः अन्तरेण नभोवलयस्य कालचक्र गतः द्वादश मासान् भुङ्क्ते राशिसंज्ञान् संवत्सर अवयवान् मासः पक्षद्वयं दिवा नक्तं च इति सपाद् अर्क्ष द्वयं उपदिशन्ति यावता षष्ठं अंशं भुञ्जीत स वै ऋतुः इति उपदिश्यते संवत्सर अवयवः ॥५॥

अथ स एष	अतः वे यही (सूर्य भगवान्)	**भुङ्क्ते**	भोगते हैं,
लोकानां आत्मा	सम्पूर्ण लोकोंके आत्मा हैं।	**मासः पक्षद्वयं**	(इनमें-से प्रत्येक) महीना दो पक्षका होता है।
द्यावा पृथिव्योः	द्युलोक और पृथ्वीके	**दिवा च नक्तं**	(पितृ मानसे) दिन और रात
अन्तरेण	मध्यमें	**इति**	इस प्रकार,
नभोवलयस्य	आकाश-मण्डलके	**सपाद् अर्क्ष द्वयं**	(सौरमानसे) सवा दो नक्षत्रका
कालचक्र गतः	कालचक्रमें स्थित होकर	**उपदिशन्ति**	बतलाया जाता है,
संवत्सर	संवत्सरके	**यावता**	जब तक
अवयवान्	अंगरूप	**संवत्सर**	संवत्सरके
राशिसंज्ञान्	राशि कहे जानेवाले	**अवयवः**	अंगका
द्वादश मासान्	बारह महीनोंको	**षष्ठं अंशं**	छठवां भाग

भुञ्जीत	(सूर्य) भोगते हैं,	उपदिश्यते	कहा जाता
स वै	वही		है ॥५॥
ऋतुः इति	ऋतु इस प्रकार		

अथ च यावतार्धेन नभोवीथ्यां प्रचरति तं कालमयनमाचक्षते ॥६॥

अथ च यावत् अर्धेन नभः वीथ्यां प्रचरति तं कालं अयनं आ चक्षते ॥६॥

अथ च	ऐसे ही	प्रचरति	चलते हैं,
यावत्	जब तक	तं कालं	उतने समयको
नभः वीथ्यां	आकाश-मार्गका	अयनं	अयन
अर्धेन	आधा भाग	आचक्षते	कहते हैं ॥६॥

अथ च यावन्नभोमण्डलं सह द्यावापृथिव्योर्मण्डलाभ्यां कात्स्न्र्येन स ह भुञ्जीत तं कालं संवत्सरं परिवत्सरमिडावत्सरमनुवत्सरं वत्सरमिति भानोर्मन्द्यशैघ्र्यसमगतिभिः समामनन्ति ॥७॥

अथ च यावत् नभोमण्डलं सह द्यावा पृथिव्योः मण्डलाभ्यां कात्स्न्र्येन स ह भुञ्जीत तं कालं संवत्सरं परिवत्सरं इडावत्सरं वत्सरं वत्सरं इति भानो मान्द्य शैघ्र्य सम गतिभिः समामनन्ति ॥७॥

अथ च	इस प्रकार ही	मण्डलाभ्यां	मण्डलोंके
भानोः	सूर्य देव (अपनी)	सह	सहित
मान्द्य शैघ्र्य	मन्द, तीव्र,	कात्स्न्र्येन	सम्पूर्ण
सम	सम	नभोमण्डलं	आकाश-मण्डलका
गतिभिः	गतिसे	स ह	वे (सूर्य) तो
यावत्	जब तक	भुञ्जीत	भोग करते (चक्कर
द्यावा पृथिव्योः	द्युलोक, पृथ्वी		लगा जाते) हैं

तं कालं	उतने समयको	इडावत्सरं	इडावत्सर,
संवत्सरं	(भावान्तर भेदसे) संवत्सर,	अनुवत्सरं	अनुवत्सर,
		वत्सरं इति	वत्सर इस प्रकार
परिवत्सरं	परिवत्सर,	समामनन्ति	कहा जाता है ॥७॥

एवं चन्द्रमा अर्कगभस्तिभ्य उपरिष्टाल्लक्षयोजनत उपलभ्यमानोऽर्कस्य संवत्सरभुक्ति पक्षाभ्यां मासभुक्ति सपादर्क्षाभ्यां दिनेनैव पक्षभुक्तिमग्रचारी द्रुततरगमनो भुङ्क्ते ॥८॥

एवं चन्द्रमा अर्क गभस्तिभ्यः उपरिष्टात् लक्षयोजनतः उपलभ्यमानः अर्कस्य संवत्सरभुक्ति पक्षाभ्यां मासंभुक्ति सपाद् अर्क्षाभ्यां दिनेन एव पक्षभुक्ति अग्रचारी द्रुततरगमनः भुङ्क्ते ॥८॥

एवं	इसीप्रकार	पक्षाभ्यां	दोनों पक्षों (एक महीने) में,
अर्क गभस्तिभ्यः	सूर्यकी किरणोंसे	मासंभुक्ति	एक महीनेके मार्गको
लक्षयोजनतः	एक लाख योजन	सपाद्	सवा दो
उपरिष्टात्	ऊपर	अर्क्षाभ्यां	दिनमें,
उपलभ्यमानः	मिलनेवाला	पक्षभुक्ति	एक पक्षके मार्गको
चन्द्रमा	चन्द्रमा	दिनेन एव	एक दिनमें ही
द्रुततरगमनः	बहुत तीव्र गतिसे चलनेवाला	भुङ्क्ते	भोग लेता (पार कर लेता) है ॥८॥
अग्रचारी	सब (ग्रह-नक्षत्रों)से आगे रहनेवाला		
अर्कस्य	सूर्यके		
संवत्सरभुक्ति	एक वर्षके भोग (मार्ग) को		

अथ चापूर्यमाणाभिश्च कलाभिरमराणां क्षीयमाणाभिश्च कलाभिः पितृणामहोरात्राणि पूर्वपक्षापरपक्षाभ्यां वितन्वानः सर्वजीवनिवहप्राणो जीवश्चैकमेकं नक्षत्रं त्रिंशता मुहूर्तैर्भुङ्क्ते ॥९॥

अथ च आपूर्यमाणाभिः च कलाभिः अमराणां क्षीयमाणाभिः च कलाभिः पितृणां अहः रात्राणि पूर्व पक्ष अपर पक्षाभ्यां वितन्वानः सर्वजीवनिवह प्राणः जीवः च एकं एकं नक्षत्रं त्रिंशता मुहूर्तैः भुङ्क्ते ॥९॥

अथ च	यह तो
पूर्व पक्ष	पहिले कृष्णपक्षमें
क्षीयमाणाभिः	घटती हुई
कलाभिः च	कलाओंके द्वारा ही
पितृणां	पितरोंके
च अपर	और दूसरे
पक्षाभ्यां	(शुक्लपक्षमें)
आपूर्यमाणाभिः	बढ़ती हुई
कलाभिः	कलाओंसे
अमराणां	देवताओंका
अहः रात्राणि	दिन-रात
वितन्वानः	विभाग करता है।
सर्वजीवनिवहः	सम्पूर्ण प्राणि समूहका
प्राणः जीवः च	प्राण और जीवन है।
एकं एकं नक्षत्रं	एक-एक नक्षत्रको
त्रिंशता मुहूर्तैः	तीस मुहूर्तमें
भुङ्क्ते	पार करता है ॥९॥

य एष षोडशकलः पुरुषो भगवान्मनोमयोऽन्नमयोऽमृतमयो देवपितृमनुष्यभूतपशुपक्षिसरीसृपवीरुधां प्राणाप्यायनशीलत्वात्सर्वमय इति वर्णयन्ति ॥१०॥

य एष षोडशकलः पुरुषः भगवान् मनोमयः अन्नमयः अमृतमयः देव पितृ मनुष्य भूत पशु पक्षि सरीसृप वीरुधां प्राण आप्यायन शीलत्वात् सर्वमय इति वर्णयन्ति ॥१०॥

य एष	यह जो
षोडशकलः	सोलह कलाओंवाले
मनोमयः	मनोमय,
अन्नमयः	अन्नमय,
अमृतमयः	अमृतमय
पुरुषः भगवान्	पुरुष भगवान् (चन्द्र) हैं
देव पितृ	देवता, पितर,
मनुष्य,	मनुष्य,
भूत पशु पक्षि	भूत, पशु, पक्षी,
सरीसृप वीरुधां	सरीसृप तथा पौधोंके
प्राण आप्यायन	प्राणोंको परितृप्त करनेवाले
शीलत्वात्	स्वभावके होनेसे (इन्हें)
सर्वमय इति	सर्वमय-इस प्रकार
वर्णयन्ति	वर्णन करते हैं ॥१०॥

तत उपरिष्टात्त्रिलक्षयोजनतो नक्षत्राणि मेरुं दक्षिणेनैव कालायन ईश्वरयोजितानि सहाभिजिताष्टाविंशतिः ॥११॥

ततः उपरिष्टात् त्रिलक्षयोजनतः नक्षत्राणि मेरुं दक्षिणेन एव काल अयन ईश्वर योजितानि सह अभिजित् अष्ट आविंशतिः ॥११॥

ततः	उन (चन्द्र) से	**योजितानि**	लगाये
त्रिलक्षयोजनतः	तीन लाख योजन	**काल अयन**	कालचक्रमें
उपरिष्टात्	ऊपर	**मेरुं**	सुमेरुको
सह अभिजित्	अभिजित्के साथ	**दक्षिणेन एव**	दाहिनी ओर रखकर ही (घूमते हैं) ॥११॥
अष्ट आविंशतिः	अट्ठाइस		
नक्षत्राणि	नक्षत्र		
ईश्वर	परमेश्वरके		

तत उपरिष्टादुशना द्विलक्षयोजनत उपलभ्यते पुरतः पश्चात्सहैव वार्कस्य शैघ्र्यमान्द्यसाम्याभिर्गतिभिरर्कवच्चरति लोकानां नित्यदानुकूल एव प्रायेण वर्षयंश्चारेणानुमीयते स वृष्टिविष्टम्भग्रहोपशमनः ॥१२॥

ततः उपरिष्टात् उशना द्विलक्ष योजनतः उपलभ्यते पुरतः पश्चात् सह एव व अर्कस्य शैघ्र्य मान्द्य साम्याभिः गतिभिः अर्कवत् चरति लोकानां नित्यदा अनुकूल एव प्रायेण वर्षयत् चारेण अनुमीयते स वृष्टि वृष्टम्भ ग्रह उपशमनः ॥१२॥

ततः द्विलक्ष	उससे दो लाख	**अर्कस्य**	सूर्यकी
योजनतः	योजन	**शैघ्र्य मान्द्य**	शोघ्र, मन्द,
उपरिष्टात्	ऊपर	**साम्याभिः**	समान
उशना	शुक्र पाया	**गतिभिः**	गतिसे
उपलभ्यते	जाता है,	**अर्कवत्**	सूर्यके समान

सह एव	(उनके) साथ ही	नित्यदा	सदा ही
पुरतः पश्चात्	आगे, पीछे,	अनुकूल	अनुकूल ही
व एव	या साथ ही	अनुमीयते	अनुमान किया जाता है।
चरति	चलता है।	वृष्टि विष्टम्भ	वर्षा रोकनेवाले
प्रायेण वर्षयत्	प्रायः वर्षा करते	ग्रह उपशमनः	ग्रहोंको शान्त करनेवाला
चारेण	चलनेके कारण	स	वह है ॥१२॥
लोकानां	लोगोंके		

उशनसा बुधो व्याख्यातस्तत उपरिष्टाद् द्विलक्षायोजनतो बुधः सोमसुत उपलभ्यमानः प्रायेण शुभकृद्यदार्कात् व्यतिरिच्येत तदातिवाताभ्रप्रायानावृष्ट्यादिभयमाशंसते ॥१३॥

उशनसा बुधः व्याख्यातः ततः उपरिष्टात् द्विलक्ष योजनतः बुधः सोमसुतः उपलभ्यमानः प्रायेण शुभकृत् यदा अर्कात् व्यतिरिच्येत तदा अतिवात अभ्रप्राय अनावृष्टि आदि भयं आशंसते ॥१३॥

उशनसा	शुक्र (की गति) द्वारा	उपलभ्यमानः	मिलते हैं,
बुधः	बुध (की गति) की	प्रायेण शुभकृत्	प्रायः शुभ करने-वाले हैं।
व्याख्यातः	व्याख्या हो गयी।	यदा अर्कात्	जब सूर्यसे
ततः	उस	व्यतिरिच्येत	पृथक पड़ते हैं
द्विलक्ष योजनतः	(शुक्र) से दो लाख योजन	तदा अतिवात	तब आंधी,
उपरिष्टात्	ऊपर	अभ्रप्राय	मेघहीनताप्राय
सोमसुतः	चन्द्रमाके पुत्र	अनावृष्टि	अनावृष्टि
बुधः	बुध	आदि भयं	आदि भय
		आशंसते	सूचित करते हैं ॥१

अत ऊर्ध्वमङ्गारकोऽपि योजनलक्षद्वितय उपलभ्यमानस्त्रिभिस्त्रिभिः पक्षैरेकैकशो राशीन्द्वादशानुभुङ्क्ते यदि न वक्रेणाभिवर्तते प्रायेणाशुभग्रहोऽघशंसः ॥१४॥

अत ऊर्ध्वं अङ्गारकः अपि योजन लक्ष द्वितय उपलभ्यमानः त्रिभिः त्रिभिः पक्षैः एक एकशः राशीन् द्वादश अनुभुङ्क्ते यदि न वक्रेण अभिवर्तते प्रायेण अशुभ ग्रहः अधशंसः ॥१४॥

अत	इस (बुध) से
लक्ष द्वितय	दो लाख
योजन	योजन
ऊर्ध्वं	ऊपर
अङ्गारकः अपि	मगल भी
उपलभ्यमानः	मिलता है,
त्रिभिः त्रिभिः	तीन तीन
पक्षैः	पक्षोंमें
एक एकशः	एक-एक करके
द्वादश राशीन्	बारहो राशियोंको
अनुभुङ्क्ते	पार करता है।
यदि वक्रेण	यदि वक्री होकर
न अभिवर्तते	नहीं चलता तो
प्रायेण	प्रायः
अशुभ ग्रहः	अशुभ ग्रह है,
अधशंसः	अमङ्गल सूचक है ॥१४॥

तत उपरिष्टाद् द्विलक्षयोजनान्तरगतो भगवान् बृहस्पतिरेकैकस्मिन् राशौ परिवत्सरं परिवत्सरं चरति यदि न वक्रः स्यात्प्रायेणानुकूलो ब्राह्मणकुलस्य ॥१५॥

ततः उपरिष्टात् द्विलक्ष योजन अन्तरगतः भगवान् बृहस्पतिः एक एकस्मिन् राशौ परिवत्सरं परिवत्सरं चरति यदि न वक्रः स्यात् प्रायेण अनुकूलः ब्राह्मणकुलस्य ॥१५॥

ततः द्विलक्ष	उस (मंगल) से दो लाख
योजन	योजन
अन्तरगतः	दूरीपर
उपरिष्टात्	ऊपर
भगवान्	भगवान्
बृहस्पतिः	बृहस्पति
एक एकस्मिन्	एक-एक
राशौ	राशिमें
यदि न वक्रः	यदि वक्री न
स्यात्	हों
परिवत्सरं	एक-एक

परिवत्सरं	वर्ष*	**ब्राह्मणकुलस्य**	ब्राह्मण-कुलके
चरति	चलते हैं।	**अनुकूलः**	अनुकूल रहते
प्रायेण	प्रायः		हैं ॥१५॥

तत उपरिष्टाद्योजनलक्षद्वयात्प्रतीयमानः शनैश्चर एकैकस्मिन् राशौ त्रिंशन्मासान् विलम्बमानः सर्वानेवानुपर्येति तावद्भिरनुवत्सरैः प्रायेण हि सर्वेषामशान्तिकरः ॥१६॥

ततः उपरिष्टात् योजन लक्षद्वयात् प्रतीयमानः शनैःचर एक एकस्मिन् राशौ त्रिंशत् मासान् विलम्बमानः सर्वान् एव अनुपर्येति तावद्भिः अनुवत्सरैः प्रायेण हि सर्वेषां अशान्तिकरः ॥१६॥

ततः उपरिष्टात्	उस (बृहस्पति) से ऊपर	**विलम्बमानः**	रुकता हुआ
लक्षद्वयात्	दो लाख	**तावद्भिः**	उतने ही (तीस)
योजन	योजनपर	**अनुवत्सरैः**	वर्षोंमें
प्रतीयमानः	प्रतीत होता	**सर्वान् एव**	सभी (राशियों) पर
शनैःचर	शनिश्चर	**अनुपर्येति**	घूम आता है,
एक एकस्मिन्	एक-एक	**प्रायेण हि**	प्रायः ही (यह)
राशौ	राशिपर	**सर्वेषां**	सबके लिए
त्रिंशत् मासान्	तीस-तीस महीने	**अशान्तिकरः**	अशान्ति कारक है ॥१६॥

तत उत्तरस्माद्दृषय एकादशलक्षयोजनान्तर उपलभ्यन्ते य एव लोकानां शमनुभावयन्तो भगवतो विष्णोर्यत्परमं पदं प्रदक्षिणं प्रक्रमन्ति ॥१७॥

ततः उत्तरस्मात् ऋषयः एकादश लक्ष योजन अन्तर उपलभ्यन्ते य एव लोकानां शं अनुभावयन्तः भगवतः विष्णोः यत् परमं पदं प्रदक्षिणं प्रक्रमन्ति ॥१७॥

---

* बृहस्पतिके एक वर्षको परिवत्सर कहते हैं।

ततः उत्तरस्मात्	उस (शनिश्चर) के ऊपर	**अनुभावयन्तः**	कामना करते हुए
एकादश लक्ष	ग्यारह लाख	**यत् भगवतः**	जो भगवान्
योजन अन्तर	योजनकी दूरीपर	**विष्णोः**	विष्णुका
ऋषयः	सप्तर्षि	**परमं पदं**	परम-पद (ध्रुव-लोक) है
उपलभ्यन्ते	मिलते हैं,	**प्रदक्षिणं**	(उसकी)
य एव लोकानां शं	जो सभी लोकोंकी शान्ति	**प्रक्रमन्ति**	प्रदक्षिणा करते रहते हैं ॥१७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां **पञ्चमस्कन्धे** ज्योतिश्चक्रवर्णने द्वाविंशोऽध्यायः ॥७१॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच—

अथ तस्मात्परतस्त्रयोदशलक्षयोजनान्तरतो यत्तद्विष्णोः परमं पदमभिवदन्ति यत्र ह महाभागवतो ध्रुव औत्तानपादिरग्निनेन्द्रेण प्रजापतिना कश्यपेन धर्मेण च समकालयुग्भिः सबहुमानं दक्षिणतः क्रियमाण इदानीमपि कल्पजीविनामाजीव्य उपास्ते तस्येहानुभाव उपवर्णितः ॥१॥

अथ तस्मात् परतः त्रयोदशलक्ष योजन अन्तरतः यत् तत् विष्णोः परमं पदं अभिवदन्ति यत्र ह महाभागवतः ध्रुवः औत्तानपादिः अग्निना इन्द्रेण प्रजापतिना कश्यपेन धर्मेण च समकालयुग्भिः सबहुमानं दक्षिणतः क्रियमाण इदानीं अपि कल्पजीविनां आजीव्य उपास्ते तस्य इह अनुभावः उपवर्णितः ॥१॥

अथ तस्मात्	फिर उन (सप्त-ऋषियों) से
त्रयोदशलक्ष	तेरह लाख
योजन अन्तरतः	योजनकी दूरीपर
यत् विष्णोः	जो भगवान् विष्णुका
परमं पदं	परम-पद
अभिवदन्ति	कहा जाता है
यत्र ह	वहाँ तो
महाभागवतः	परम-भगवद्-भक्त
औत्तानपादिः	उत्तानपादके पुत्र
ध्रुवः	ध्रुव (रहते हैं)
तत्	उनकी
अग्निना इन्द्रेण	अग्नि, इन्द्र,
प्रजापतिना	प्रजापति
कश्यपेन	कश्यप
च धर्मेण	तथा धर्म द्वारा
समकालयुग्भिः	एक ही समय एक साथ
सबहुमानं	बहुत आदर सहित
दक्षिणतः	प्रदक्षिणा की
क्रियमाण	जाती है।
इदानीं अपि	अब भी

कल्पजीविनां	कल्प पर्यन्त जीवन वालोंके	**तस्य इह**	उनके इस लोकका
आजीव्य	आधार रूपसे	**अनुभावः**	प्रभाव
उपास्ते	उपासित होते हैं।	**उपवर्णितः**	(चतुर्थ स्कन्धमें) वर्णन कर चुके हैं ।।१

स हि सर्वेषां ज्योतिर्गणानां ग्रहनक्षत्रादीनामनिमिषेणाव्यक्तरंहसा भगवता कालेन भ्राम्यमाणानां स्थाणुरिवावष्टम्भ-ईश्वरेण विहितः शश्वदवभासते ।।२।।

स हि सर्वेषां ज्योतिर्गणानां ग्रहनक्षत्र आदीनां अनिमिषेण अव्यक्तरंहसा भगवता कालेन भ्राम्यमाणानां स्थाणुः इव अवष्टम्भः ईश्वरेण विहितः शश्वत् अवभासते ।।२।।

अनिमिषेण	सदा जागनेवाले	**ईश्वरेण विहितः**	परमात्माके विधानसे बना
अव्यक्तरंहसा	अव्यक्त गति	**स्थाणु इव**	ठूंठके समान
भगवता	भगवान्	**अवष्टम्भः**	रोकनेवाला आधार है,
कालेन	कालके द्वारा	**शश्वत्**	(अतः) सदा (एक स्थानपर रहकर)
भ्राम्यमाणानां	घुमाये जाते हुए	**अवभासते**	प्रकाशित होता है ।।२।।
सर्वेषां	सभी		
ग्रहनक्षत्र	ग्रह, नक्षत्र		
आदीनां	आदि		
ज्योतिर्गणानां	ज्योतिर्गणोंका		
हि स	क्योंकि वही (ध्रुवलोक)		

यथा मेढीस्तम्भ आक्रमणपशवः संयोजितास्त्रिभिस्त्रिभिः सवनैर्यथास्थानं मण्डलानि चरन्त्येवं भगणा ग्रहादय एतस्मिन्नन्तर्बहिर्योगेन कालचक्र आयोजिता ध्रुवमेवावलम्ब्य वायुनोदीर्यमाणा आकल्पान्तं परिचङ्क्रमन्ति नभसि यथा मेघाः श्येनादयो वायुवशाः कर्मसारथयः परिवर्तन्ते एवं ज्योतिर्गणाः

प्रकृतिपुरुषसंयोगानुगृहीताः कर्मनिर्मितगतयो भुवि न पतन्ति ॥३॥

यथा मेढी स्तम्भ आक्रमण पशवः संयोजिताः त्रिभिः त्रिभिः सवनैः यथा स्थानं मण्डलानि चरन्ति एवं भगणा ग्रहादयः एतस्मिन् अन्तः बहिः योगेन कालचक्र आयोजिता ध्रुवं एव अवलम्ब्य वायुना उदीर्यमाणा आकल्पान्तं परिचङ्क्रमन्ति, नभसि यथा मेघाः श्येन आदयः वायुवशाः कर्मसारथयः परिवर्तन्ते एवं ज्योतिर्गणाः प्रकृति पुरुष संयोग अनुगृहीताः कर्मनिर्मित गतयः भुवि न पतन्ति ॥३॥

यथा मेढी	जैसे दाँवके बीचके
स्तम्भ	खम्भेके
आक्रमण पशवः	चारों ओर घूमने-वाले पशु
त्रिभिः त्रिभिः	तीन-तीन
सवनैः	रस्सियोंसे
संयोजिताः	बँधे हुए
यथा स्थानं	अपने स्थानके अनुसार
मण्डलानि	घेरेमें
चरन्ति	चलते हैं
एवं भगणा	इसी प्रकार नक्षत्र और
ग्रहादयः	ग्रह आदि
अन्तः बहिः	भीतर बाहरके
योगेन	क्रमसे
कालचक्र	कालचक्रमें
आयोजिताः	नियुक्त होकर
ध्रुवं एव	ध्रुव-लोकका ही
अवलम्ब्य	सहारा लेकर
वायुना	वायुसे
उदीर्यमाणाः	प्रेरित होकर
आकल्पान्तं	कल्पान्त पर्यन्त
परिचङ्क्रमन्ति	परिक्रमा करते रहते हैं।
यथा मेघाः	जैसे मेघ (और)
श्येन आदयः	बाज आदि (पक्षी)
वायुवशाः	वायुके वशमें रहते,
कर्मसारथयः	अपने कर्मोंके द्वारा संचालित
परिवर्तन्ते	घूमते रहते हैं,
एवं	इसी प्रकार
प्रकृति पुरुष संयोग	प्रकृति-पुरुषके संयोगसे
अनुगृहीताः	उत्पन्न
ज्योतिर्गणाः	ज्योतिर्गण
कर्मनिर्मित गतयः	कर्मसे बनायी गतिवाले
भुवि न पतन्ति	पृथ्वीपर नहीं गिरते॥३॥

केचनैतज्ज्योतिरनीकं शिशुमारसंस्थानेन भगवतो वासुदेवस्य योगधारणायामनुवर्णयन्ति ॥४॥

केचन एतत् ज्योतिः अनीकं शिशुमार संस्थानेन भगवतः वासुदेवस्य योगधारणायां अनुवर्णयन्ति ॥४॥

केचन	कोई लोग	**भगवतः**	भगवान्
एतत्	इस	**वासुदेवस्य**	वासुदेवको
ज्योतिः अनीकं	ज्योतिः-चक्रका	**योगधारणायां**	योग धारणाके अनुसार■
शिशुमार	✓ घड़ियालके		
संस्थानेन	रूपमें	**अनुवर्णयन्ति**	वर्णन करते हैं ॥४॥

यस्य पुच्छाग्रेऽवाकशिरसः कुण्डलीभूतदेहस्य ध्रुव उपकल्पितस्तस्य लाङ्गूले प्रजापतिरग्निरिन्द्रो धर्म इति पुच्छमूले धाता विधाता च कट्यां सप्तर्षयः। तस्य दक्षिणावर्तकुण्डलीभूतशरीरस्य यान्युदगयनानि दक्षिणपार्श्वे तु नक्षत्राण्युपकल्पयन्ति दक्षिणायनानि तु सव्ये। यथा शिशुमारस्य कुण्डलाभोगसन्निवेशस्य पार्श्वयोरुभयोरप्यवयवाः समसंख्या भवन्ति। पृष्ठे त्वजवीथी आकाशगङ्गा चोदरतः ॥५॥

यस्य पुच्छ अग्रे अवाक शिसः कुण्डलीभूत देहस्य ध्रुव उपकल्पितः तस्य लाङ्गूल प्रजापतिः अग्निः इन्द्रः धर्म इति पुच्छमूले धाता विधाता च कट्यां सप्तर्षयः तस्य दक्षिणावर्त कुण्डलीभूत शरीरस्य यानि उदगयनानि दक्षिण पार्श्वे तु नक्षत्राणि उपकल्पयन्ति दक्षिणायनानि तु सव्ये यथा शिशुमारस्य कुण्डल आभोग सन्निवेशस्य पार्श्वयोः उभयोः अपि अवयवाः समसंख्या भवन्ति पृष्ठे तु अजवीथी आकाशगङ्गा च उदरतः ॥५

■ शिशुमार रूपमें यह ज्योतिः-चक्र आकाशमें न स्थित है और न रहता है; क्योंकि ग्रह एक स्थानपर नहीं रहते। कभी-कभी दो या अधिक आठ ग्रह तक एकत्र हो जाते हैं। यह वर्णन धारणा (भावना) द्वारा योग (ध्यान) के सहायक रूपमें करनेके लिए है।

अवाक् शिरसः	नीचे सिर किये
यस्य	जिसके
कुण्डलीभूत	कुण्डली मारे
देहस्य	शरीरके
पुच्छ अग्रे	पूंछकी नोकपर
ध्रुव	ध्रुवकी
उपकल्पितः	कल्पना की गयी है।
तस्य लाङ्गूले	उसकी पूंछपर
प्रजापतिः	प्रजापति,
अग्निः	अग्नि,
इन्द्रः धर्म इति	इन्द्र और धर्म इसी क्रमसे है।
पुच्छमूले	पूंछकी जड़के पास
धाता विधाता	धाता, विधाता
च कट्यां	तथा कमरपर
सप्तर्षयः	सप्तर्षि हैं।
तस्य दक्षिणावर्त	उसके दाहिनी ओर
कुण्डलीभूत	कुण्डली बने
शरीरस्य	शरीरपर
यानि	जो (अभिजितसे पुनर्वसु तकके)
उदगयनानि	उत्तरायणके (चौदह)
नक्षत्राणि	नक्षत्रोंको
दक्षिण पार्श्वे तु	दाहिने बगलमें ही
दक्षिणायनानि	दक्षिणायनके
तु	(पुष्यसे उत्तराषाढ़ाके चौदह नक्षत्रोंको) तो
सव्ये	बायें (पार्श्वमें)
उपकल्पयन्ति	कल्पित करते हैं।
यथा	जैसे
कुण्डल आभोग	कुण्डली मारे
सन्निवेशस्य	पड़े हुए
शिशुमारस्य	घड़ियालके
उभयोः	दोनों
पार्श्वयोः	बगलोंमें
समसंख्या	बराबर संख्याके
अवयवाः	अंग
भवन्ति	होते हैं।
पृष्ठे तु	पीठपर तो
अजवीथी	अजवीथी
च उदरतः	और पेटपर
आकाशगङ्गा	आकाशगङ्गा है ॥५॥

पुनर्वसुपुष्यौ दक्षिणवामयोः श्रोण्योरार्द्राश्लेषे च दक्षिणवामयोः पश्चिमयोः पादयोरभिजिदुत्तराषाढे दक्षिणवामयोर्नासिकयोर्यथासंख्यं श्रवणपूर्वाषाढे दक्षिणवामयोर्लोचनयोर्धनिष्ठा मूलं च दक्षिणवामयोः कर्णयोर्मघादीन्यष्ट नक्षत्राणि दक्षिणायनानि वामपार्श्ववद्वक्षिषु युञ्जीत तथैव मृगशीर्षादीन्युदगय-

नानि दक्षिणपार्श्ववङ्क्रिषु प्रातिलोम्येन प्रयुञ्जीत शतभिषाज्येष्ठे स्कन्धयोर्दक्षिणवामयोर्न्यसेत् ॥६॥

पुनर्वसु पुष्यौ दक्षिण वामयोः श्रोण्योः आर्द्रा अश्लेषे च दक्षिण वामयोः पश्चिमयोः पादयोः अभिजित् उत्तराषाढे दक्षिण वामयोः नासिकयोः यथा संख्यं श्रवण पूर्वाषाढे दक्षिण वामयोः लोचनयोः धनिष्ठा मूलं च दक्षिण वामयोः कर्णयोः मघा आदीनि अष्ट नक्षत्राणि दक्षिणायनानि वाम पार्श्ववङ्क्रिषु युञ्जीत तथा एव मृगशीर्ष आदीनि उदगयनानि दक्षिण पार्श्ववङ्क्रिषु प्रातिलोम्येन प्रयुञ्जीत शतभिषा ज्येष्ठे स्कन्धयोः दक्षिण वामयोः न्यसेत् ॥६॥

यथा संख्यं	क्रमशः
पुनर्वसु पुष्यौ	पुनर्वसु, पुष्य
दक्षिण वामयोः	दाहिने, बायें
श्रोण्योः	नितम्ब भागपर
आर्द्रा अश्लेषे	आर्द्रा, अश्लेषा
दक्षिण वामयोः	दाहिने, बायें
पश्चिमयोः	पिछले
पादयोः	पैरोंपर,
अभिजित्	अभिजित्
उत्तराषाढे	उत्तराषाढ़ा
दक्षिण वामयोः	दाहिनी, बायीं
नासिकयोः	नासिका (छिद्र) पर,
श्रवण पूर्वाषाढे	श्रवण पूर्वाषाढ़ा
दक्षिण वामयोः	दाहिने, बायें
लोचनयोः	नेत्रोंपर,
धनिष्ठा मूलं च	धनिष्ठा और मूल
दक्षिण वामयोः	दाहिने, बायें
कर्णयोः	कानोंपर,
मघा आदीनि	मघा आदि
दक्षिणायनानि	दक्षिणायनके
अष्ट नक्षत्राणि	आठ नक्षत्रोंको
वाम	वायीं
पार्श्ववङ्क्रिषु	ओरकी पसलियोंपर
युञ्जीत	उपयोग करे,
तथा एव	इसी प्रकार
मृगशीर्ष	मृगशीर्ष
आदीनि	आदि
उदगयनानि	उत्तरायणके (आठ नक्षत्रोंको)
प्रातिलोम्येन	विपरीत क्रमसे
दक्षिण	दाहिनी
पार्श्ववङ्क्रिषु	ओरकी पसलियोंपर
प्रयुञ्जीत	प्रयुक्त करे,
शतभिषा ज्येष्ठे	शतभिषा, ज्येष्ठा
दक्षिण वामयोः	दाहिने, बायें
स्कन्धयोः	कन्धोंपर
न्यसेत्	रखे ॥६॥

उत्तराहनावगस्तिरधराहनौ यमो मुखेषु चाङ्गारकः शनैश्चर उपस्थे बृहस्पतिः ककुदि वक्षस्यादित्यो हृदये नारायणो मनसि चन्द्रो नाभ्यामुशना स्तनयोरश्विनौ बुधः प्राणापानयो राहुर्गले केतवः सर्वाङ्गेषु रोमसु सर्वे तारागणाः ॥७॥

उत्तराहनाः अगस्तिः अधराहनौ यमः मुखेषु च अङ्गारकः शनैश्चरः उपस्थे बृहस्पतिः ककुदि वक्षसि आदित्यः हृदये नारायणः मनसि चन्द्रः नाभ्यां उशना स्तनयोः अश्विनौ बुधः प्राण अपानयोः राहुः गले केवतः सर्वाङ्गेषु रोमसु सर्वे तारागणाः ॥७॥

√ **उत्तराहनाः**	ऊपरकी थूथनीमें	**मनसि**	मनमें
अगस्तिः	अगस्त्य,	**चन्द्रः**	चन्द्रमा,
अधराहनौ	नीचेकी ठोड़ीमें (नक्षत्र रूप) यम,	**नाभ्यां**	नाभिमें
		उशना	शुक्र,
मुखेषु च	मुखपर तो	**स्तनयोः**	स्तनोंपर
अङ्गारकः	मंगल,	**अश्विनौ**	दानों अश्विनी कुमार
उपस्थे	मूत्रेन्द्रियपर		
शनैश्चरः	शनैश्चर,	**प्राण अपानयोः**	प्राण अपानमें
ककुदि	ककुदपर	**बुधः**	बुध,
बृहस्पतिः	बृहस्पति,	**गले राहुः**	गलेमें राहु,
वक्षसि	वक्षस्थलपर	**सर्वाङ्गेषु**	सब अंगोंमें
आदित्यः	सूर्य	**केतवः**	केतु समूह,
हृदये	हृदयमें	**रोमसु**	रोमोंमें
नारायणः	नारायण,	**सर्वे तारागणाः**	सब तारागण हैं ॥७

एतदु हैव भगवतो विष्णोः सर्वदेवतामयं रूपमहरहः सन्ध्यायां प्रयतो वाग्यतो निरीक्षमाण उपतिष्ठेत नमो ज्योतिर्लोकाय कालायनायानिमिषां पतये महापुरुषायाभिधीमहीति ॥८॥

एतत् उ ह एव भगवतः विष्णोः सर्वदेवतामयं रूपं अहरहः सन्ध्यायां प्रयतः वाक्यतः निरीक्षमाणः उपतिष्ठेत नमः ज्योतिः लोकाय काल अयनाय अनिमिषां पतये महापुरुषाय अभिधीमहि इति ॥८॥

उ ह एव	निश्चय ही यह	**उपतिष्ठेत**	उपासना करें
भगवतः विष्णोः	भगवान् विष्णुका	**ज्योतिः लोकाय**	ज्योतिर्गणोंके प्रकाशक,
सर्वदेवतामयं रूपं	सर्वदेवमय रूप है।	**काल अयनाय अनिमिषां पतये**	कालचक्र स्वरूप, सर्वदेवाधिपति,
एतत्	इसको	**महापुरुषाय**	परम पुरुषको
अहरहः	प्रतिदिन	**नमः**	नमस्कार पूर्वक
सन्ध्यायां	सन्ध्याके समय	**अभिधीमहि**	(हम) ध्यान करते हैं ॥८॥
प्रयतः	एकाग्रता पूर्वक		
वाक्यतः	मौन होकर		
निरीक्षमाणः	देखते हुए		
इति	इस प्रकार		

ग्रहर्क्षतारामयमाधिदैविकं
पापापहं मन्त्रकृतां त्रिकालम् ।
नमस्यतः स्मरतो वा त्रिकालं
नश्येत तत्कालजमाशु पापम् ॥९॥

ग्रह अर्क्ष तारामयं आधिदैविकं पाप अपहं मन्त्रकृतां त्रिकालं नमस्यतः स्मरतः वा त्रिकालं नश्येत तत्कालजं आशु पापम् ॥९॥

ग्रह अर्क्ष	ग्रह, नक्षत्र	**नमस्यतः**	नमस्कार करनेवाले
तारामयं	तारामय	**वा**	अथवा
आधिदैविकं	आधिदैविक	**त्रिकालं**	तीनों समय
पाप अपहं	पाप-नाशक (यह रूप)	**स्मरतः**	स्मरण करनेवालेका
त्रिकालं	तीनों समय (प्रातः, दोपहर, शाम) को	**तत् कालजं**	उस समय किया
मन्त्रकृतां	मन्त्र जप करते	**पापं**	पाप
		आशु	तुरन्त
		नश्येत	नष्ट हो जाता है ॥९

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

अधस्तात्सवितुर्योजनायुते स्वर्भानुर्नक्षत्रवच्चरतीत्येके योऽसावमरत्वं ग्रहत्वं चालभत भगवदनुकम्पया स्वयमसुरापसदः सैंहिकेयो ह्यतदर्हस्तस्य तात जन्म कर्माणि चोपरिष्टाद्वक्ष्यामः॥१॥

अधस्तात् सवितुः योजन अयुते स्वर्भानुः नक्षत्रवत् चरति इति एके यः असौ अमरत्वं ग्रहत्वं च अलभत भगवत् अनुकम्पया स्वयं असुर अपसदः सैंहिकेयः हि अतदर्हः तस्य तात जन्म कर्माणि च उपरिष्टात् वक्ष्यामः ॥१

सवितुः	सूर्यसे
योजन अयुते	दस हजार योजन
अधस्तात्	नीचे
स्वर्भानुः	राहु
नक्षत्रवत्	नक्षत्रोंके समान
चरति	घूमता है
इति एके	इस प्रकार कोई (कहते हैं)
यः असौ	जिस इस (राहु) ने
भगवत्	भगवान्‌के
अनुकम्पया	अनुग्रहसे
अमरत्वं	अमरता
च ग्रहत्वं	और ग्रहत्व
अलभत	प्राप्त किया है।
हि स्वयं	क्योंकि स्वयं (तो)
सैंहिकेयः	(यह) सिंहिका का पुत्र
असुर अपसदः	असुराधम
अतदर्हः	इसके योग्य नहीं था।
तात	तात (परीक्षित) !
तस्य जन्म	उसको जन्म
च कर्माणि	और कर्मोंका
उपरिष्टात्	आगे
वक्ष्यामः	वर्णन करेंगे ॥१॥

यददस्तरणेर्मण्डलं प्रतपतस्तद्विस्तरतो योजनायुतमाचक्षते द्वादशसहस्रं सोमस्य त्रयोदशसहस्रं राहोर्यः पर्वणि तद्व्यवधानकृद्भिरानुबन्धः सूर्याचन्द्रमसावभिधावति ॥२॥

यत् अदः तरणेः मण्डलं प्रतपतः तत् विस्तरतः योजन अयुतं आचक्षते द्वादश सहस्रं सोमस्य त्रयोदश सहस्रं राहोः यः पर्वणि तत् व्यवधानकृत् वैर अनुबन्धः सूर्याचन्द्रमसाः अभिधावति ॥२॥

यत् अदः	यह जो	**तत्**	वह (राहु)
प्रतपतः	तपता हुआ	**व्यवधानकृत्**	(अपने अमृतपानमें) बाधा डालने वालेसे
तरणेः मण्डलं	सूर्य-मण्डल है,	**वैर अनुबन्धः**	बद्ध वैर होनेसे
तत् विस्तरतः	वह विस्तारमें	**पर्वणि**	पर्व (अमावस्या-पूर्णिमा) पर
योजन अयुतं	दस हजार योजन	**सूर्याचन्द्रमसा**	सूर्य या चन्द्रमाकी ओर
आचक्षते	कहा जाता है,	**अभिधावति**	(उन्हें ग्रसने) दौड़ता है ॥२॥
सोमस्य	चन्द्रमाका (मण्डल)		
द्वादश सहस्रं	बारह हजार (योजन)*		
राहोः	राहुका (मण्डल)		
त्रयोदश सहस्रं	तेरह हजार (योजन) है।		

तन्निशम्योभयत्रापि भगवता रक्षणाय प्रयुक्तं सुदर्शनं नाम भागवतं दयितमस्त्रं तत्तेजसा दुर्विषहं मुहुः परिवर्तमानमभ्यवस्थितो मुहूर्तमुद्विजमानश्चकितहृदय आरादेव निवर्तते तदुपरागमिति वदन्ति लोकाः ॥३॥

तत् निशम्य उभयत्र अपि भगवता रक्षणाय प्रयुक्तं सुदर्शनं नाम भागवतं दयितं अस्त्रं तत् तेजसा दुर्विषहं मुहुः परिवर्तमानं अभ्यवस्थितः मुहूर्तं उद्विजमानः चकित हृदयः आरात् एव निवर्तते तत् उपरागं इति वदन्ति लोकाः ॥३॥

---

* पिछले अध्यायका और यहाँका भी यह खगोल-वर्णन वर्तमान विज्ञान तथा भारतीय-ज्योतिषसे भी भिन्न है। यहां चन्द्रमाको सूर्यसे दो हजार योजन स्वतन्त्र ग्रह बतलाया है, जब कि ज्योतिष भी चन्द्रको छोटा तथा पृथ्वीका उपग्रह मानता है। अतः इस पौराणिक खगोलका रहस्य समझमें नहीं आता।

तत् निशम्य	यह देखकर
उभयत्र अपि	(सूर्य-चन्द्र) दोनोंकी ही
रक्षणाय	रक्षाके लिए
भगवता प्रयुक्तं	भगवान्‌के द्वारा नियुक्त
भागवतं	भगवान्‌का
दयितं अस्त्रं	प्रिय अस्त्र
सुदर्शनं नाम	सुदर्शन नामका (चक्र)
मुहुः परिवर्तमानं	बराबर घूमता रहता है।
तत् दुर्विषहं	उसके असह्य
तेजसा	तेजसे
उद्विजमानः	उद्विग्न होकर
चकित हृदयः	चकित-चित्त
मुहूर्तं	एक मुहूर्त
अभ्यवस्थितः	उनके सामने टिककर
आरात् एव	समीपसे ही
निवर्तते	लौट आता है,
तत् लोकाः	इसीको लोग
उपरागं इति	ग्रहण लगा, इस प्रकार
वदन्ति	कहते हैं ॥३॥

ततोऽधस्तात्सिद्धचारणविद्याधराणां सदनानि तावन्मात्र एव ॥४॥

ततः अधस्तात् सिद्ध चारण विद्याधराणां सदनानि तावत् मात्र एव ॥४॥

ततः	उस (राहु) से
तावत् मात्र एव	उतने ही (दस हजार योजन)
अधस्तात्	नीचे
सिद्ध चारण	सिद्ध, चारण,
विद्याधराणां	विद्याधरोंके
सदनानि	निवास हैं ॥४॥

ततोऽधस्ताद्यक्षरक्षः पिशाचप्रेतभूतगणानां विहाराजिरमन्तरिक्षं यावद्वायुः प्रवाति यावन्मेघा उपलभ्यन्ते ॥५॥

ततः अधस्तात् यक्ष रक्षः पिशाच प्रेत भूतगणानां विहार अजिरं अन्तरिक्षं यावत् वायुः प्रवाति यावत् मेघाः उपलभ्यन्ते ॥५॥

ततः अधस्तात्	उसके नीचे	**यक्ष रक्षः**	यक्ष, राक्षस,
यावत् वायुः	जहां तक वायु	**पिशाच प्रेत**	पिशाच, प्रेत
प्रवाति	चलता है,	**भूतगणानां**	भूतगणोंका
यावत् मेघाः	जहाँ तक मेघ	**विहार अजिरं**	क्रीड़ाङ्गण
उपलभ्यन्ते	पाये जाते हैं	**अन्तरिक्षं**	अन्तरिक्ष है ॥५॥

ततोऽधस्ताच्छतयोजनान्तर इयं पृथिवी यावद्धंसभासश्येन-सुपर्णादयः पतत्त्रिप्रवरा उत्पतन्तीति ॥६॥

ततः अधस्तात शतयोजन अन्तर इयं पृथिवी यावत् हंस भास श्येन सुपर्ण आदयः पतत्रि प्रवराः उत्पतन्ति इति ॥६॥

ततः अधस्तात	उसके नीचे	**यावत् हंस**	जहाँ तक हंस,
शतयोजन	सौ योजनकी	**भास श्येन**	गिद्ध, बाज,
अन्तरं	दूरीपर	**सुपर्ण आदयः**	गरुड़ आदि
इयं पृथिवी	यह पृथ्वी है।	**पतत्रि प्रवराः**	श्रेष्ठ पक्षी
इति	इस प्रकार	**उत्पतन्ति**	उड़ सकते हैं ॥६॥

उपवर्णितं भूमेर्यथासंनिवेशावस्थानमवनेरप्यधस्तात् सप्त भूविवरा एकैकशो योजनायुतान्तरेणायामविस्तारेणोपक्लृप्ता अतलं वितलं सुतलं तलातलं महातलं रसातलं पाताल-मिति ॥७॥

उपवर्णितं भूमेः यथा संनिवेश अवस्थानं अवनेः अपि अधस्तात् सप्त भूविवराः एक एकशः योजन अयुत अन्तरेण आयाम विस्तारेण उपक्लृप्ताः अतलं वितलं सुतलं तलातलं महातलं रसातलं पातालं इति ॥७

संनिवेश	विस्तार और	**अपि**	भी
अवस्थानं यथा	स्थितिके अनुसार	**सप्त भूविवराः**	सात भू-विवर (भू-गर्भ स्थित लोक) हैं
भूमेः उपवर्णितं	पृथ्वीका वर्णन हो चुका		
अवनेः अधस्तात्	भूमिके नीचे		

अतलं वितलं	अतल, वितल,
सुतलं तलातलं	सुतल, तलातल,
महातलं रसातलं	महातल, रसातल,
पातालं इति	पाताल इस प्रकार
एक एकशः	प्रत्येक
योजन अयुत	दस हजार योजनकी
अन्तरेण	(परस्पर) दूरीपर
आयाम	(इतने ही)
विस्तारेण	लम्बाई-चौड़ाईके
उपल्कृप्ताः	स्थित हैं ॥७॥

एतेषु हि बिलस्वर्गेषु स्वर्गादप्यधिककामभोगैश्वर्यानन्दभूतिविभूतिभिः सुसमृद्धभवनोद्यानाक्रीडविहारेषु दैत्यदानवकाद्रवेया नित्यप्रमुदितानुरक्तकलत्रापत्यबन्धुसुहृदनुचरा गृहपतय ईश्वरादप्यप्रतिहतकामा मायाविनोदा निवसन्ति ॥८॥

एतेषु हि बिलस्वर्गेषु स्वर्गात् अपि अधिक कामभोग ऐश्वर्य आनन्द भूति विभूतिभिः सुसमृद्ध भवन उद्यान आक्रीड विहारेषु दैत्य दानव काद्रवेया नित्य प्रमुदित अनुरक्त कलत्र अपत्य बन्धु सुहृत् अनुचराः गृहपतयः ईश्वरात् अपि प्रतिहत कामाः माया विनोदाः निवसन्ति ॥८॥

हि एतेषु	क्योंकि इन
बिलस्वर्गेषु	बिल स्वर्गोंमें
स्वर्गात् अपि	स्वर्गसे भी
अधिक	अधिक
कामभोग	विषय-भोग,
ऐश्वर्य आनन्द	ऐश्वर्य, आनन्द,
भूति विभूतिभिः	सन्तान-सुख, धन-सम्पत्तिसे
सुसमृद्ध	पूर्ण सम्पन्न,
भवन	भवन हैं,
उद्यान आक्रीड	बगीचों, क्रीड़ा-स्थलों,
विहारेषु	घूमनेके मैदानोंमें
दैत्य दानव	दैत्य, दानव
काद्रवेया	कद्रू की सन्तान (नाग)
नित्य प्रमुदितः	सदा प्रसन्न रहते हैं।
गृहपतयः	(वे) गृहस्वामी (गृहस्थ) हैं,
कलत्र अपत्य	स्त्री, पुत्र,
बन्धु सुहृत्	सम्बन्धी, मित्र
अनुचराः	सेवक-वर्ग
अनुरक्त	(उनसे) प्रेम करते हैं।
ईश्वरात् अपि	ईश्वर द्वारा भी
कामाः	उनके भोगोंमें

प्रतिहत	बाधा नहीं दी जाती।	**निवसन्ति**	(वहाँ) निवास करते हैं ॥८॥
माया विनोदाः	मायामयी क्रीड़ा करते हुए		

येषु महाराज मयेन मायाविना विनिर्मिताः पुरो नानामणिप्रवरप्रवेकविरचितविचित्रभवनप्राकारगोपुरसभाचैत्यचत्वरायतनादिभिर्नागासुरमिथुनपारावतशुकसारिकाकीर्णकृत्रिमभूमिभिर्विवरेश्वरगृहोत्तमैः समलकृङ्ताश्चकासति ॥९॥

येषु महाराज मयेन मायाविना विनिर्मिताः पुरः नाना मणि प्रवर प्रवेक विरचित विचित्र भवन प्राकार गोपुर सभा चैत्य चत्वर आयतन आदिभिः नाग असुर मिथुन पारावत शुकसारिका कीर्ण कृत्रिम भूमिभिः विवर ईश्वर गृह उत्तमैः समलङ्कृताः चकासति ॥९॥

महाराज	महाराज !	**चत्वर आयतन**	चबूतरे, आँगन
येषु	जिन (लोकों)में	**आदिभिः**	आदिसे
मायाविना	मायावी	**विरचित**	बनी हैं (उनमें)
मयेन	मयके द्वारा	**नाग असुर**	नाग और असुरोंके
विनिर्मिताः	बनायी	**मिथुन**	जोड़े
पुरः चकासति	पुरियां जगमगा रही हैं।	**पारावत, शुक सारिका कीर्ण**	कबूतर, तोते, मैनासे भरे हैं।
नाना	अनेक प्रकारके	**कृत्रिम भूमिभिः**	(ये)बनायी गयी भूमि
मणि प्रवर	श्रेष्ठ मणियोंसे	**विवर**	विवर (गुफामें)
प्रवेक	जड़ित	**ईश्वर गृह**	वहाँके स्वामियोंके
विचित्र भवन	विचित्र भवन	**उत्तमैः**	उत्तम भवनोंसे
प्राकार गोपुर	परकोटे, नगर-द्वार,	**समलंकृताः**	भली प्रकार अलंकृत हैं ॥९॥
सभा चैत्य	सभाभवन, मन्दिर		

उद्यानानि चातितरां मनइन्द्रियानन्दिभिःकुसुमफलस्तबकसुभगकिसलयावनतरुचिरविटपविटपिनां लताङ्गालिङ्गितानां

श्रीभिः समिथुनविविधविहङ्गमजलाशयानाममलजलपूर्णानां झष-कुलोल्लङ्घनक्षुभितनीरनीरजकुमुदकुवलयकह्लारनीलोत्पललोहि-तशतपत्रादिवनेषु कृतनिकेतनानामेकविहाराकुलमधुरविविधस्वना-दिभिरिन्द्रियोत्सवैरमरलोकश्रियमतिशयितानि ॥१०॥

उद्यानानि च अतितरां मन इन्द्रिय आनन्दिभिः कुसुम फल स्तबक सुभग किसलय अवनत रुचिर विटपविटपिनां लता अङ्ग आलिङ्गितानां श्रीभिः समिथुन विविधविहङ्गम जलाशयानां अमल जल पूर्णानां झषकुल उल्लङ्घन क्षुभित नीर नीरज कुमुद कुवलय कह्लार नील उत्पल लोहित शतपत्र आदि वनेषु कृत निकेतनानां एक विहार आकुल मधुर विविध स्वन आदिभिः इन्द्रिय उत्सवैः अमरलोकश्रियं अतिशयितानि ॥१०॥

उद्यानानि च	(वहाँके) बगीचे भी
मन इन्द्रिय	मन, इन्द्रियोंको
अतितरां	अत्यधिक
आनन्दिभिः	आनन्द देते हुए
अमरलोकश्रियं	स्वर्गकी शोभासे
अतिशयितानि	बहुत बढ़ गये हैं।
कुसुम फल	पुष्प और फलोंके
स्तबक	गुच्छोंसे,
सुभाग किसलय	सुन्दर नव-पल्लवोंसे
अवनत	झुकी हुई
लता अंग	लताओंके शरीरसे
आलिङ्गितानां	आलिंगित
रुचिर	मनोहर
विटपविटपिनां	वृक्षोंकी शाखाओंसे
श्रीभिः	सुशोभित हैं।
विविधविहङ्गम	अनेक प्रकारके पक्षी
समिथुन	अपने जोड़ेके साथ (रहते) हैं
अमल	निर्मल
जल पूर्णानां	जलसे भरे
जलाशयानां	जलाशयोंमें
झषकुल	मछलियोंके
उल्लङ्घन	उछलनेसे
क्षुभित नीर	पानीमें क्षोभ होता है (तथा उसमें लगे)
नीरज कुमुद	कमल, कुमुदिनी,
कुवलय कह्लार	श्वेत-कमल, रक्त-कमल,
नील उपल	नील-कमल,
लोहित	लाल-कमल,
शतपत्र आदि	शतपत्र आदि (भी हिलते हैं)
वनेषु	(उस) वनमें
कृत निकेतनानां	घोंसले बनाकर रहनेवाले
एक विहार	अविराम क्रीड़ा करते
आकुल	चञ्चल होकर (अपने)

विविध मधुर स्वन आदिभिः	अनेक प्रकारके मधुर बोली आदिसे	**इन्द्रिय उत्सवैः**	इन्द्रियोंको आनन्दित करते हैं ॥१०॥

यत्र ह वाव न भयमहोरात्रादिभिः कालविभागैरुपलक्ष्यते ॥११॥

यत्र ह वाव न भयं अहः रात्र अदिभिः काल विभागैः उपलक्ष्यते ॥११

यत्र ह वाव	जहां तो निश्चित ही	**काल विभागैः**	समय विभागका
अहः रात्र	दिन और रात रूपी	**भयं न**	खटका नहीं
अदिभिः	आदिसे	**उपलक्ष्यते**	दिखाई देता ॥११॥

यत्र हि महाहिप्रवरशिरोमणयः सर्वं तमः प्रबाधन्ते ॥१२

यत्र हि महा अहिप्रवर शिरः मणयः सर्वं तमः प्रबाधन्ते ॥१२॥

हि यत्र	क्योंकि जहां	**सर्वं तमः**	सम्पूर्ण अन्धकार
महा अहिप्रवर	महान् नाग श्रेष्ठोंके	**प्रबाधन्ते**	दूर करती रहती
शिरः मणयः	मस्तकोंकी मणियां		हैं ॥१२॥

न वा एतेषु वसतां दिव्यौषधिरसरसायनान्नपानस्नानादिभिराधयो व्याधयो वलीपलितजरादयश्च देहवैवर्ण्यदौर्गन्ध्यस्वेदक्लमग्लानिरिति वयोऽवस्थाश्च भवन्ति ॥१३॥

न वा एतेषु वसतां दिव्य औषधि रस रसायन अन्न पान स्नान आदिभिः आधयः व्याधयः वली पलित जरा आदयः च देह वैवर्ण्य दौर्गन्ध्य स्वेद क्लम ग्लानिः इति वयः अवस्थाः च भवन्ति ॥१३॥

एतेषु वसतां	इन (लोकों) में रहनेवालोंके	**रस रसायन**	रस तथा रसायनोंके
दिव्य औषधि	दिव्य औषधियोंके	**अन्न पान**	खाने, पीने (एवं उनसे)

स्नान आदिभिः	स्नान आदि करनेसे
आधयः व्याधयः	चिन्ता, रोग
वली	झुर्रियां पड़ना,
पलित	केश पकना,
जरा आदयः	बुढ़ापा आदि तथा
देह वैवर्ण्य	शरीरका कान्ति-हीन होना,
दौर्गन्ध्य	(देहसे) दुर्गन्धि आना,
स्वेद	पसीना,
क्लम	थकावट,
ग्लानिः	शिथिलता आना
इति वयः	इस प्रकार आयु (बढ़नेसे) होनेवाली
अवस्थाः च न वा भवन्ति	अवस्थाएँ भी नहीं ही होती हैं ॥१३॥

न हि तेषां कल्याणानां प्रभवति कुतश्चन मृत्युर्विना भगवत्तेजसश्चक्रापदेशात् ॥१४॥

न हि तेषा कल्याणानां प्रभवति कुतश्चन मृत्युः विना भगवत् तेजसः चक्र अपदेशात् ॥१४॥

हि	क्योंकि
तेषां कल्याणानां	उन पुण्य-पुरुषोंपर
मृत्युः	मृत्यु
भगवत्	भगवान्के
चक्र अपदेशात्	चक्र स्वरूप
तेजसः विना	तेजके बिना
कुतश्चन	किसी प्रकार
न प्रभवति	नहीं प्रभाव डाल सकती ॥१४॥

यस्मिन् प्रविष्टेऽसुरवधूनां प्रायः पुंसवनानि भयादेव स्रवन्ति पतन्ति च ॥१५॥

यस्मिन् प्रविष्टे असुर वधूनां प्रायः पुंसवनानि भयात् एव स्रवन्ति पतन्ति च ॥१५॥

यस्मिन्	जिस (चक्र) के
प्रविष्टे	प्रवेश करनेपर
असुर वधूनां	असुर-पत्नियोंके
पुंसवनानि	गर्भ
भयात् एव	भयसे ही
प्रायः स्रवन्ति	स्रवित होते
च पतन्ति	तथा गिर जाते हैं ॥१५॥

अथातले मयपुत्रोऽसुरो बलो निवसति येन ह वा इह सृष्टाः षण्णवतिर्मायाः काश्चनाद्यापि मायाविनो धारयन्ति यस्य च जृम्भमाणस्य मुखतस्त्रयः स्त्रीगणा उदपद्यन्त स्वैरिण्यः कामिन्यः पुंश्चल्य इति या वै बिलायनं प्रविष्टं पुरुषं रसेन हाटकाख्येन साधयित्वा स्वविलासावलोकनानुरागस्मितसंलापोपगूहनादिभिः स्वैरं किल रमयन्ति यस्मिन्नुपयुक्ते पुरुष ईश्वरोऽहं सिद्धोऽहमित्ययुतमहागजबलमात्मानमभिमन्यमानः कत्थते मदान्ध इव ॥१६॥

अथ अतले मयपुत्रः असुरः बलः निवसति येन ह वा इह सृष्टाः षट् नवतिः माया काश्चन अद्य अपि मायाविनः धारयन्ति यस्य च जृम्भमाणस्य मुखतः त्रयः स्त्रीगणा उदपद्यन्त स्वैरिण्यः कामिन्यः पुंश्चल्यः इति या वै बिल अयनं प्रविष्टं पुरुषं रसेन हाटक आख्येन साधयित्वा स्वविलास अवलोकन अनुराग स्मित संलाप उपगूहन आदिभिः स्वैरं किल रमयन्ति यस्मिन् उपयुक्ते पुरुषः ईश्वरः अहं सिद्धः अहं इति अयुत महागज बलं आत्मानं अभिमन्यमानः कत्थते मद अन्ध इव ॥१६॥

अथ अतले	उस अतलमें
मयपुत्रः	मयका पुत्र
असुर बलः	असुर बल
निवसति	रहता है।
येन ह वा	जिसको निश्चय ही
सृष्टाः	बनायी हुई
षट् नवतिः	छियानबे प्रकारकी
माया	मायामें से
काश्चन	कोई-कोई
इह मायाविनः	इस संसारमें मायावी लोग
अद्य अपि	अब भी
धारयन्ति	धारण करते हैं।
यस्य च	जिसके कि
जृम्भमाणस्य	जम्हाई लेनेपर
मुखतः	मुखसे
त्रयः स्त्रीगणा	तीन स्त्रीगण
उदपद्यन्त	उत्पन्न हुआ
स्वैरिण्यः	स्वेच्छा चारिणी (उनकी जिससे इच्छा हो उससे व्यभिचार करानेवाली)

कामिन्यः	कामिनियां (जब कामावेश हो तब किसीसे भी व्यभिचार करानेवाली)
पुंश्चल्यः	पुंश्चली (किसी भी पुरुषके संकेतपर व्यभिचारको प्रस्तुत)
इति	इस प्रकारके (स्त्रीगण)
या वै	जो निश्चय ही
बिल अयनं	इस बिल-निवासमें
प्रविष्टं	प्रविष्ट
पुरुषं	पुरुषको
रसेन साधयित्वा	(हाटक) रस पिलाकर भोग सक्षम बनाकर
स्वविलास अवलोकन अनुराग स्मित	अपने हाव, भाव, कटाक्ष पूर्वक देखने, प्रेमभरी मुस्कान,
संलाप	बातचीत
उपगूहन	आलिंगन
आदिभिः	आदि द्वारा
किल स्वैरं रमयन्ति	अरे, स्वेच्छा पूर्वक रमण कराती हैं।
यस्मिन् उपयुक्ते	जिस (हाटक-रसका) उपयोग करके
पुरुषः	पुरुष
मद अन्ध इव	मदसे अन्धा-सा होकर
कत्थते	बकवाद करने लगता है कि
अहं ईश्वरः	'मैं ईश्वर हूँ'
अहं सिद्धः	'मैं सिद्ध हूँ'
इति	इस प्रकार
आत्मानं	अपनेको
अयुत महागज बलं अभि	दस हजार बड़े हाथियोंके बलका मानने
मन्यमानः	लगता है ॥१६॥

ततोऽधस्ताद्वितले हरो भगवान् हाटकेश्वरः स्वपार्षद-भूतगणावृतः प्रजापतिसर्गोपबृंहणाय भवो भवान्या सह मिथुनी-भूत आस्ते यतः प्रवृत्ता सरित्प्रवरा हाटकी नाम भवयोर्वीर्येण यत्र चित्रभानुर्मातरिश्वना समिध्मान ओजसा पिबति तन्निष्ठ-यूतं हाटकाख्यं सुवर्णं भूषणेनासुरेन्द्रावरोधेषु पुरुषाः सह पुरुषीभिर्धारयन्ति ॥१७॥

ततः अधस्तात् वितले हरः भगवान् हाटकेश्वरः स्वपार्षद भूतगण आवतः प्रजापति सर्ग उपबृंहणाय भवः भवान्या सह मिथुनीभूतं आस्ते

यतः प्रवृत्ता सरित् प्रवरा हाटकी नाम भवयोः वीर्येण यत्र चित्रभानुः मातरिश्वना समिध्मान ओजसा पिबति तत् निष्ठ्यूतं हाटक आख्यं सुवर्ण भूषणेन असुरेन्द्र अवरोधेषु पुरुषाः सह पुरुषीभिः धारयन्ति ॥१७॥

ततः अधस्तात्	उसके नीचे	**सरित् प्रवरा**	श्रेष्ठ-नदी
भगवान्	भगवान्	**यतः प्रवृत्ता**	जहांसे निकलती है,
हाटकेश्वरः	हाटकेश्वर	**यत्र चित्रभानुः**	जहाँ चित्रभानु नामक अग्नि
स्वपार्षद	अपने पार्षद		
भूतगण	भूतगणोंसे	**मातरिश्वना**	वायुके द्वारा
आवृतः	घिरे रहते हैं।	**समिध्मानः**	प्रज्वलित किया
प्रजापति सर्ग	प्रजापतिकी सृष्टिका	**ओजसा पिबति**	उत्साहसे (उसे) पीता है।
उपबृंहणाय	विस्तार करनेके लिए	**तत् निष्ठ्यूतं**	उसका थूका हुआ
भवः	(वे) भगवान् शिव	**हाटक आख्यं**	हाटक नामके
भवान्या सह	भगवतीके साथ	**सुवर्णं**	स्वर्णका
मिथुनीभूतं	विहार करते	**भूषणेन**	आभूषणके रूपमें
आस्ते	रहते हैं।	**असुरेन्द्र**	दैत्यराजके
भवयोः वीर्येण	भगवान् शिवके वीर्यसे	**अवरोधेषु**	अन्तःपुरमें
		पुरुषाः	पुरुष
हाटकी नाम	हाटकी नामक	**पुरुषीभिः सह**	स्त्रियोंके साथ
		धारयन्ति	पहिनते हैं ॥१७॥

ततोऽधस्तात्सुतले उदारश्रवाः पुण्यश्लोको विरोचनात्मजो बलिर्भगवता महेन्द्रस्य प्रियं चिकीर्षमाणेनादितेर्लब्धकायो भूत्वा वटुवामनरूपेण पराक्षिप्तलोकत्रयो भगवदनुकम्पयैव पुनः प्रवेशित इन्द्रादिष्वविद्यमानया सुसमृद्धया श्रियाभिजुष्टः स्वधर्मेणाराधयंस्तमेव भगवन्तमाराधनीयमपगतसाध्वस आस्तेऽधुनापि ॥१८॥

ततः अधस्तात् सुतले उदारश्रवाः पुण्यश्लोकः विरोचन आत्मजः बलिः भगवता महेन्द्रस्य प्रियं चिकीर्षमाणेन अदितेः लब्धकायः भूत्वा

वटु वामन रूपेण पराक्षिप्त लोकत्रयः भगवत् अनुकम्पया एव पुनः प्रवेशित इन्द्र आदिषु अविद्यमानया सुसमृद्धया श्रियाभिजुष्टः स्वधर्मेण आराधयत् तं एव भगवन्तं आराधनीयं अपगत साध्वस आस्ते अधुना अपि ॥१८॥

ततः अधस्तात्	उस (वितल) के नीचे
सुतले	सुतलमें
उदारश्रवाः	महान् यशस्वी
पुण्यश्लोकः	पवित्र कीर्ति
विरोचन आत्मजः	विरोचनके पुत्र
बलिः	बलि रहते हैं।
महेन्द्रस्य	इन्द्रका
प्रियं	प्रिय
चिकीर्षमाणेन	करनेकी इच्छासे
आदितेः	अदितिके (गर्भसे)
लब्धकायः	अवतार लेकर
वटु वामन	वामन ब्रह्मचारी
रूपेण	रूप
भूत्वा	बनकर
लोकत्रयः	(बलिसे) तीनों लोक
पराक्षिप्त	छीन लिया,
भगवत्	भगवान्‌की
अनुकम्पया एव	कृपासे ही
पुनः	फिर
इन्द्र आदिषु	इन्द्र आदिके पास भी (जैसी)
सुसमृद्धया	उत्तम सम्पत्ति
अविद्यमानया	नहीं है (वैसी)
श्रियाभिजुष्टः	लक्ष्मीसे सम्पन्न (लोकमें)
प्रवेशित	प्रविष्ट करानेपर
तं एव	उन्हीं
आराधनीयं	आराधना योग्य
भगवन्तं	भगवान्‌की
स्वधर्मेण	अपने धर्माचरण द्वारा
आराधयत्	आराधना करते हुए
अपगत साध्वस	निर्भयता पूर्वक
अधुना अपि	इस समय भी
आस्ते	रहते हैं ॥१८॥

नो एवैतत्साक्षात्कारो भूमिदानस्य यत्तद्भगवत्यशेष-जीवनिकायानां जीवभूतात्मभूते परमात्मनि वासुदेवे तीर्थतमे पात्र उपपन्ने परया श्रद्धया परमादरसमाहित मनसा सम्प्रति-पादितस्य साक्षादपवर्गद्वारस्य यद्विलनिलयैश्वर्यम् ॥१९॥

नो एव एतत् साक्षात्कारः भूमिदानस्य यत् तत् भगवति अशेष जीव निकायानां जीव भूत आत्मभूते परमात्मनि वासुदेवे तीर्थतमे पात्र

उपपन्ने परया श्रद्धया परम आदर समाहित मनसा सम्प्रति पादितस्य साक्षात् अपवर्ग द्वारस्य यत् बिलनिलय ऐश्वर्यम् ॥१९॥

यत् भगवति	जो भगवान्	**सम्प्रति**	सम्पन्न
अशेष जीव	सम्पूर्ण	**पादितस्य**	किए गये
निकायानां	जीवोंके	**भूमिदानस्य**	भूमिदानका
जीव भूत	जीवन रूप	**यत्**	जो
आत्मभूते	आत्मस्वरूप	**बिलनिलय**	बिलस्वर्ग (सुतल)
परमात्मनि	परमात्मा		का
वासुदेवे	वासुदेवके	**ऐश्वर्य**	ऐश्वर्य मिलना
तीर्थतमे	पवित्रतम	**एतत्**	यह (इतना ही)
पात्र उपपन्ने	पात्रके आनेपर	**साक्षात्कारः**	साक्षात् फल
तत्	उस	**नो एव**	नहीं ही है,
परया श्रद्धया	परम श्रद्धासे	**साक्षात्**	(वह) साक्षात्
परम आदर	परम आदर पूर्वक	**अपवर्ग द्वारस्य**	मोक्षका साधन
समाहित मनसा	एकाग्र चित्तसे		है ॥१९॥

यस्य ह वाव क्षुतपतनप्रस्खलनादिषु विवशः सकृन्नामाभिगृणन् पुरुषः कर्मबन्धनमञ्जसा विधुनोति यस्य हैव प्रतिबाधनं मुमुक्षवोऽन्यथैवोपलभन्ते ॥२०॥

यस्य ह वाव क्षुत पतन प्रस्खलन आदिषु विवशः सकृत् नाम अभिगृणन् पुरुषः कर्म बन्धनं अञ्जसा विधुनोति यस्य ह एव प्रतिबाधनं मुमुक्षवः अन्यथा एव उपलभन्ते ॥२०॥

क्षुत पतन	छींकने,	**पुरुषः**	पुरुष
प्रस्खलन	फिसलने,	**अञ्जसा**	सरलतासे
आदिषु	आदिमें	**कर्म बन्धनं**	कर्मके बन्धनको
विवशः	विवश होकर	**विधुनोति**	नष्ट कर देता है,
यस्य ह वाव	जिनके निश्चित ही	**मुमुक्षवः**	मुमुक्षु लोग
सकृत्	एक बार मात्र	**यस्य**	जिस (कर्म-बन्धन)
नाम अभिगृणन्	नाम लेकरके		का

ह एव	निश्चित ही	अन्यथा एव	दूसरी ही तरह
प्रतिबाधनं	प्रतिकार		(बड़े कष्टसे)
		उपलभन्ते	कर पाते हैं ॥२०॥

तद्भक्तानामात्मवतां सर्वेषामात्मन्यात्मद आत्मतयैव ॥२१॥

तत् भक्तानां आत्मवतां सर्वेषां आत्मनि आत्मतया एव ॥२१॥

तत् आत्मवतां	अतः संयमी	आत्मतया एव	आत्मरूपसे ही
भक्तानां	भक्तोंके लिए		(स्थित) भगवान्‌को
सर्वेषां	सबके		भूमिदानका इतना
आत्मनि	अन्तःकरणमें		ही फल नहीं हो
			सकता ॥२१॥

न वै भगवान्नूनममुष्यानुजग्राह यदुत पुनरात्मानुस्मृति-मोषणं मायामयभोगैश्वर्यमेवातनुतेति ॥२२॥

न वै भगवान् नूनं अमुष्य अनुजग्राह यत् उत पुनः आत्मानुस्मृति मोषणं मायामय भोग ऐश्वर्य एव आतनुते इति ॥२२॥

नूनं	निश्चय	भोग ऐश्वर्य	भोग ऐश्वर्य
अमुष्य	इस (बलि) को	एव इति	ही इस प्रकार
यत् उत पुनः	यदि वह फिरसे	आतनुते	प्रदान किया तो
आत्मानुस्मृति	अपनी स्मृति	वै	निश्चय
मोषणं	चुरा लेनेवाला	अनुजग्राहन	कृपा नहीं की ॥२२॥
मायामय	मायिक		

यत्तद्भगवतानधिगतान्योपायेन याच्ञाच्छलेनापहृतस्व-शरीरावशेषितलोकत्रयो वरुणपाशैश्च सम्प्रतिमुक्तो गिरिदर्यां चापविद्ध इति होवाच ॥२३॥

यत् तत् भगवता न अधिगत अन्य उपायेन याच्ञा छलेन अपहृत स्वशरीर अवशेषित लोकत्रयः वरुण पाशैः च सम्प्रतिमुक्तः गिरिदर्यां च अपविद्ध इति ह उवाच ॥२३॥

तत् भगवता	उन भगवान्‌को	**अपहृत**	छीन लिया
अन्य उपायेन	दूसरे उपायसे	**वरुण पाशैः**	वरुणके पाशसे
यत्	क्योंकि जो	**च सम्प्रतिमुक्तः**	बाँधे जाकर
अधिगत न	प्राप्त नहीं हुआ	**गिरिदर्यां**	पर्वतकी गुफामें
याच्ञा छलेन	याचनाके बहाने	**अपविद्धः च**	डाल दिये जानेपर भी
स्वशरीर	उसके अपने शरीरको		
अवशेषित	बचाकर	**इति ह**	इस प्रकार ही
लोकत्रयः	तीनों लोक	**उवाच**	बोला ॥२३॥

बलिरुवाच■

नूनं बतायं भगवानर्थेषु न निष्णातो योऽसाविन्द्रो यस्य सचिवो मन्त्राय वृत एकान्ततो बृहस्पतिस्तमतिहाय स्वयमुपेन्द्रेणात्मानमयाचतात्मनश्चाशिषो नो एव तद्दास्यमतिगम्भीरवयसः कालस्य मन्वन्तर परिवृत्तं कियल्लोकत्रयमिदम् ॥२४॥

नूनं बत अयं भगवान् अर्थेषु न निष्णातः यः असौ इन्द्रः यस्य सचिवः मन्त्राय वृतः एकान्ततः बृहस्पतिः तं अतिहाय स्वयं उपेन्द्रेण आत्मानं अयाचत आत्मनः च आशिषः नो एव तत् दास्यं अति गम्भीर वयसः कालस्य मन्वन्तर परिवृत्तं कियत् लोकत्रयं इदम् ॥२४॥

नूनं बत	निश्चय खेदकी बात है कि	**यः भगवान्**	जो ऐश्वर्य शाली है,
यः असौ इन्द्रः	जो यह इन्द्र है,	**अर्थेषु**	(सच्चे) प्रयोजनमें
		निष्णातः न	निपुण नहीं है,

■ यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

यस्य सचिवः	जिसके मन्त्री
मन्त्राय	मन्त्रणा करनेके लिए
एकान्ततः	अनन्य भावसे स्वीकृत
बृहस्पतिः	बृहस्पति हैं
तं अतिहाय	उनको छोड़कर
स्वयं उपेन्द्रेण	स्वयं भगवान् वामन द्वारा
आत्मानः च	अपने लिए
आत्मानं	मुझसे
आशिषः	कामना
ययाचत	पूर्ति मांगी
च तत् दस्यं	औरउनका दास्य
नो एव	नहीं ही (मांगा)
अति	अत्यन्त
गम्भीर वयसः	गम्भीर (अनन्त) आयु वाले
कालस्य	कालमें
मन्वन्तर	एक मन्वन्तर तक
परिवृत्तं	सीमित
इदं लोकत्रयं	इन तीन लोकोंका राज्यका
कियत्	क्या (मूल्य) है ॥२४॥

यस्यानुदास्यमेवास्मत्पितामहः किल वव्रे न तु स्वपित्र्यं यदुताकुतोभयं पदं दीयमानं भगवतः परमिति भगवतो परते खलु स्वपितरि ॥२५॥

यस्य अनुदास्यं एव अस्मत् पितामहः किल वव्रे न तु स्वपित्र्यं यत् अकुतः भयं पदं दीयमानं भगवतः परमिति भगवत उपरते खलु स्वपितरि ॥२५॥

अस्मत्	हमारे
पितामहः	पितामह (प्रह्लाद)ने
स्वपितरि	अपने पिता (हिरण्यकशिपु)के
उपरते	मर जानेपर
यत् स्वपित्र्यं	जो अपने पिताका
अकुतः भयं	सब ओरसे निर्भय
पदं	स्थान
भगवतः	भगवान्के
दीयमानं	देनेपर भी
न तु	नहीं ही लिया
किल	अहो
यस्य	जिनका
अनुदास्यं	बराबर दासत्व
एव वव्रे	ही मांगा ॥२५॥

तस्य महानुभावस्यानुपथममृजितकषायः को वास्मद्विधः परिहीणभगवदनुग्रह उपजिगमिषतीति ॥२६॥

तस्य महानुभावस्य अनुपथं अमृजित कषायः कः वा अस्मत् विधः परिहीण भगवत अनुग्रह उपजिगमिषति इति ॥२६॥

तस्य	उन	**कषायः**	करने वाला
महानुभावस्य	महाप्रभावशालीके	**कः वा**	भला कौन
अनुपथं	पीछे चलनेके मार्गपर	**भगवत अनुग्रह**	भगवान्‌की कृपासे
		परिहीण	वञ्चित
अस्मत् विधः	मेरे समान	**इति**	इस प्रकार
अमृजित	वासना-मलको परिमार्जित न	**उपजिगमिषति**	पहुँच सकता है ॥२६॥

*श्रीशुक उवाच—**

तस्यानुचरितमुपरिष्टाद्विस्तरिष्यते यस्य भगवान् स्वयमखिलजगद्गुरुर्नारायणो द्वारि गदापाणिरवतिष्ठते निजजनानुकम्पितहृदयो येनाङ्गुष्ठेन पदा दशकन्धरो योजनायुतायुतं दिग्विजय उच्चाटितः ॥२७॥

तस्य अनुचरितं उपरिष्टात् विस्तरिष्यते यस्य भगवान् स्वयं अखिल जगद्गुरुः नारायणः द्वारि गदापाणिः अवतिष्ठते निजजन अनुकम्पित हृदयः येन अङ्गुष्ठेन पदा दशकन्धरः योजन अयुत अयुतं दिग्विजय उच्चाटितः ॥२७॥

तस्य	उन (वलि)का	**जगद्गुरुः**	जगतके गुरु
अनुचरितं	चरित	**स्वयं नारायणः**	स्वयं नारायण
उपरिष्टात्	आगे	**निजजन**	अपने भक्तपर
विस्तरिष्यते	विस्तार किया जायगा	**अनुकम्पित**	अनुग्रहपूर्ण
		हृदयः	हृदयसे
यस्य द्वारि	जिनके द्वारपर	**गदापाणिः**	हाथमें गदा लेकर
भगवान्	भगवान्	**अवतिष्ठते**	खड़े रहते हैं।
अखिल	अखिल	**येन पदा**	जिन्होंने पैरके

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

अंगुष्ठेन	अंगूठेसे	**अयुत अयुतं**	लाखों
दिग्विजय	दिग्विजय करने आनेपर)	**योजन**	योजन (दूर)
		उच्चाटितः	फेंक दिया गया ॥२७॥
दशकन्धरः	रावण		

ततोऽधस्तात्तलातले मयो नाम दानवेन्द्रस्त्रिपुराधिपतिर्भगवता पुरारिणा त्रिलोकीशं चिकीर्षुणा निर्दग्धस्वपुरत्रयस्तत्प्रसादाल्लब्धपदो मायाविनामाचार्यो महादेवेन परिरक्षितो विगतसुदर्शनभयो महीयते ॥२८॥

ततः अधस्तात् तलातले मयः नाम दानवेन्द्रः त्रिपुर अधिपतिः भगवता पुरारिणा त्रिलोक ईशं चिकीर्षुणा निर्दग्ध स्वपुरत्रयः तत् प्रसादात् लब्धपदः मायाविनां आचार्यः महादेवेन परिरक्षितः विगत सुदर्शनभयः महीयते ॥२८॥

ततः अधस्तात्	उस (सुतल-लोक) के नीचे	**पुरारिणा**	भगवान् त्रिपुरारि द्वारा
तलातले	तलातल-लोकमें	**स्वपुरत्रयः**	अपने तीनों पुरोंके
मायाविनां	मायावियोंका	**निर्दग्ध**	जला दिये जानेपर
आचार्यः	आचार्य	**महादेवेन**	भगवान् शिवकी
मयः नाम	मय नामका	**प्रसादात्**	कृपासे
दानवेन्द्रः	दानवराज (रहता) है,	**लब्धपदः**	(तलातलमें) स्थान पाकर
त्रिपुर	(वह) त्रिपुरका	**परिरक्षितः**	(शिवजीसे) सुरक्षित
अधिपतिः	स्वामी	**सुदर्शन**	सुदर्शन-चक्रके
त्रिलोक ईशं	त्रिलोकीका स्वामी	**भयः विगत**	भयसे रहित होकर
चिकीर्षुणा	बननेकी इच्छा करनेपर	**महीयते**	(वहांके निवासियों द्वारा) सम्मानित होता है ॥२८॥

ततोऽधस्तान्महातले काद्रवेयाणां सर्पाणां नैकशिरसां क्रोधवशो नाम गणः कुहकतक्षककालियसुषेणादिप्रधाना महाभोगवन्तः पतत्त्रिराजाधिपतेः पुरुषवाहादनवरतमुद्विजमानाः स्वकलत्रापत्यसुहृत्कुटुम्बसङ्गेन क्वचित्प्रमत्ता विहरन्ति ॥२९॥

ततः अधस्तात् महातले काद्रवेयाणां सर्पाणां न एक शिरसां क्रोधवशः नाम गणः कुहकः तक्षकः कालियः सुषुणः आदि प्रधाना महाभोगवन्तः पतस्त्रिराज अधिपतेः पुरुष वाहात् अनवरतं उद्विजमानाः स्व कलत्र अपत्य सुहृत् कुटुम्बसङ्गेन क्वचित् प्रमत्ता विहरन्ति ॥२९॥

ततः अधस्तात्	उस (तलातल) के नीचे
महातले	महातलमें
काद्रवेयाणां	कद्रू से उत्पन्न
न एक शिरसां	अनेक सिरवाले
सर्पाणां	सर्पोंका
क्रोधवशः नाम	क्रोधवश नामक
गणः	समूह है,
कुहकः सक्षकः	(उनमें) कुहक, तक्षक
कालियः सुषुणः	कालिय, सुषेण
आदि प्रधाना	आदि प्रधान
महाभोगवन्तः	बड़े शरीरवाले हैं,
पतत्रिराज	पक्षियोंके नायकोंके भी
अधिपतेः	स्वामी
पुरुष वाहात्	परम पुरुषके वाहन (गरुड़) से
अनवरतं	निरन्तर
उद्विजसानाः	उद्विग्न रहते भी
स्व कलत्र	अपने स्त्री,
अपत्य सुहृत्	पुत्र, मित्र,
कुटुम्बसङ्गेन	कुटुम्बकी आसक्तिसे
क्वचित् प्रमत्ता	कभी प्रमत्त होकर
विहरन्ति	विहार करने लगते हैं ॥२९॥

ततोऽधस्ताद्रसातले दैतेया दानवाः पणयो नाम निवातकवचाः कालेया हिरण्यपुरवासिन इति विबुधप्रत्यनीका उत्पत्त्या महौजसो महासाहसिनो भगवतः सकललोकानुभावस्य हरेरेव तेजसा प्रतिहतबलावलेपा बिलेशया इव वसन्ति ये वै सरमयेन्द्रदूत्या वाग्भिर्मन्त्रवर्णाभिरिन्द्राद्बिभ्यति ॥३०॥

ततः अधस्तात् रसातले दैतेयाः दानवाः पणयः नाम निवात कवचाः कालेयाः हिरण्य पुरवासिनः इति विबुध प्रत्यनीका उत्पत्त्या महा ओजसः महासाहसिनः भगवतः सकल लोक अनुभावस्य हरेः एव तेजसा प्रतिहत बल अवलेपा बिलेशया इव वसन्ति ये वै सरमया इन्द्र दूत्या वाक्भिः मन्त्र वर्णाभिः इन्द्रात् बिभ्यति ॥३०॥

ततः अधस्तात्	उसके नीचे
रसातले	रसातलमें
पणयः नाम	पणि नामक
दैतेयाः दानवाः	दैत्य, दानव (रहते हैं)
निवात कवचाः	निवात कवच,
कालेयाः	कालेय,
हिरण्य	हिरण्य
पुरवासिनः	पुरवासी
इति	इस प्रकार (इनका भेद है।)
विबुध	देवताओंके (ये)
प्रत्यनीका	विरोधी
उत्पत्त्या	जन्मसे
महा ओजसः	बड़े ओजस्वी,
महासाहसिनः	महान् साहसी हैं (किन्तु)
सकल लोक	सब लोकोंमें
अनुभावस्य	प्रभावशाली,
हरेः एव	श्रीहरिके ही
तेजसा	तेजसे
प्रतिहत बल	बलाभिमान नष्ट
अवलेपा	हो जानेसे
बिलेशया इव	बिलमें रहने वालोंके समान (छिपकर)
वसन्ति	रहते हैं।
ये वै	जो निश्चित ही
इन्द्र दूत्या	इन्द्रकी दूती
सरमया	सरमाके
मन्त्र वर्णाभिः	मन्त्राक्षरवाली
वाक्भिः	वाणीके कारण
इन्द्रात्	इन्द्रसे
बिभ्यति	डरते हैं ॥३०॥

ततोऽधस्तात्पाताले नागलोकपतयो वासुकिप्रमुखाः शङ्खकुलिकमहाशङ्खश्वेतधनञ्जयधृतराष्ट्रशङ्खचूडकम्बलाश्वतर-देवदत्तादयो महाभोगिनो महामर्षा निवसन्ति येषामु ह वै पञ्च-सप्तदशशतसहस्रशीर्षाणां फणासु विरचिता महामणयो रोचिष्णवः पातालविवरतिमिरनिकरं स्वरोचिषा विधमन्ति ॥३१॥

ततः अधस्तात् पाताले नागलोक पतयः वासुकि प्रमुखाः शङ्ख कुलिक महाशङ्ख श्वेत धनञ्जय धृतराष्ट्र शङ्खचूड कम्बल अश्वतर देवदत्त आदयः महाभोगिनः महामर्षा निवसन्ति येषां उ ह वै पञ्च सप्त दश शत सहस्र शीर्षाणां फणासु विरचिता महामणयः रोचिष्णवः पाताल विवर तिमिर निकरं स्वरोचिषा विधमन्ति ॥३१॥

ततः अधस्तात्	उसके नीचे
पाताले	पातालमें
नागलोक	नाग-लोकके
पतयः	अधिपति
वासुकि प्रमुखाः	जिनमें वासुको प्रमुख हैं वे
शङ्ख कुलिक	शङ्ख, कुलिक,
महाशङ्ख श्वेत	महाशङ्ख, श्वेत,
धनञ्जय	धनञ्जय,
धृतराष्ट्र	धृतराष्ट्र,
शङ्खचूड कम्बल	शङ्खचूड, कम्बल,
अश्वतर देवदत्त	अश्वतर, देवदत्त,
आदयः	आदि
महाभोगिनः	महाभोग (सर्प देहवाले)
महामर्षा	बड़े क्रोधी
निवसन्ति	रहते हैं।
उ ह वै	निश्चित रूपसे
येषां पञ्च	जिनके पांच,
सप्त	सात,
दश शत	दस, सौ,
सहस्र शीर्षाणां	सहस्र मस्तक वालोंके
फणासु	फणोंमें
विरचिता	निर्मित
रोचिष्णवः	कान्तिमान
महामणयः	महामणियां
पाताल विवर	पाताल रूपी बिलके
तिमिर निकरं	प्रगाढ़ अन्धकारको
स्वरोचिषा	अपने प्रकाशसे
विधमन्ति	नष्ट कर देती हैं ॥३१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे शङ्खादिस्थितिबिलस्वर्गमर्यादानिरूपणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

तस्य मूलदेशे त्रिंशद्योजनसहस्रान्तर आस्ते या वै कला भगवतस्तामसी समाख्यातानन्त इति सात्वतीया द्रष्टृदृश्ययोः सङ्कर्षणमहमित्यभिमानलक्षणं यं सङ्कर्षणमित्याचक्षते ॥१॥

तस्य मूलदेशे त्रिंशत् योजन सहस्र अन्तर आस्ते या वै कला भगवतः तामसी समाख्याता अनन्त इति सात्वतीया द्रष्टृदृश्ययोः सङ्कर्षणं अहं इति अभिमान लक्षणं यं सङ्कर्षणं इति आचक्षते ॥१॥

तस्य	उस (पाताल) के
मूलदेशे	मूल प्रदेशमें
त्रिंशत् सहस्र	तीस हजार
योजन	योजन
अन्तर	दूरीपर
या वै	जो निश्चित
भगवतः	भगवान्‌की
तामसी कला	तामसी कला
अनन्त इति	अनन्त इस नामसे
समाख्याता	प्रसिद्ध है
आस्ते	(वे) हैं ।
द्रष्टृदृश्ययोः	द्रष्टा और दृश्यको
सङ्कर्षणं	खींचकर एक कर देनेवाले
अहं इति	अहंकार रूपा
अभिमान लक्षणं	अभिमान रूपिणी
यं	जिस (कला) को
सात्वतीया	पाञ्चरात्रके अनुयायी
सङ्कर्षणं	संकर्षण
इति आचक्षते	इस नामसे कहते हैं ॥१॥

यस्येदं क्षितिमण्डलं भगवतोऽनन्तमूर्तेः सहस्रशिरस एकस्मिन्नेव शीर्षणि ध्रियमाणं सिद्धार्थ इव लक्ष्यते ॥२॥

यस्य इदं क्षितिमण्डलं भगवतः अनन्तमूर्तेः सहस्र शिरसि एकस्मिन् एव शीर्षणि ध्रियमाणं सिद्धार्थ इव लक्ष्यते ॥२॥

यस्य सहस्र	जिन एक सहस्र
शिरसि	सिर वाले
अनन्तमूर्तेः	अनन्त मूर्ति
भगवतः	भगवान्के
एकस्मिन् एव	एक ही
शीर्षणिध्रियमाणं	सिरपर रखा हुआ
इदं	यह
क्षितिमण्डलं	भूमण्डल
सिद्धार्थ इव	सरसोंके दानेकी भांति
लक्ष्यते	दिखाई देता है ॥२॥

यस्य ह वा इदं कालेनोपसञ्जिहीर्षतोऽमर्षविरचितरुचिरभ्रमद्भ्रुवोरन्तरेण साङ्कर्षणो नाम रुद्र एकादशव्यूहस्त्र्यक्षस्त्रिशिखं शूलमुत्तम्भयन्नुदतिष्ठत् ॥३॥

यस्य ह वा इदं कालेन उपसञ्जिहीर्षतः अमर्ष विरचित रुचिर भ्रमत् भ्रुवोः अन्तरेण साङ्कर्षणः नाम रुद्र एकादश व्यूहः त्र्यक्षः त्रिशिखं शूलं उत्तम्भयन् उदतिष्ठत् ॥३॥

कालेन	प्रलय काल आनेपर
यस्य ह वा इदं	जिनके इस विश्वका निश्चित
उपसञ्जिहीर्षतः	उपसंहार करनेकी इच्छा करनेपर
अमर्ष भ्रमत्	क्रोधसे घूमती
रुचिर विरचित	मनोहर हो गयी
भ्रुवोः अन्तरेण	भृकुटियोंके मध्य भागसे
साङ्कर्षणः नाम	सांकर्षण नामक
एकादश व्यूहः	ग्यारह व्यूह वाले
त्र्यक्षः रुद्र	त्रिनयन रुद्र
त्रिशिखं शूलं	त्रिशूल
उत्तम्भयन्	उठाये
उदतिष्ठत्	उत्पन्न हो जाते हैं ॥३॥

यस्याङ्घ्रिकमलयुगलारुणविशदनखमणिषण्डमण्डलेष्वहिपतयः सह सात्वतर्षभैरेकान्तभक्तियोगेनावनमन्तः स्ववदनानि परिस्फुरत्कुण्डलप्रभामण्डितगण्डस्थलान्यतिमनोहराणि प्रमुदितमनसः खलु विलोकयन्ति ॥४॥

यस्य अङ्घ्रि कमल युगल अरुण विशद नख मणिषण्ड मण्डलेषु अहिपतयः सह सात्वत ऋषभैः एकान्त भक्तियोगेन अवनमन्तः स्ववदनानि परिस्फुरत् कुण्डल प्रभामण्डित गण्डस्थलानि अति मनोहराणि प्रमुदित मनसः खलु विलोकयन्ति ॥४॥

अरुण मणिषण्ड	लाल-मणियोंके समान
विशद	स्वच्छ
नख मण्डलेषु	नख मण्डलवाले
यस्य अङ्घ्रि	जिनके दोनों
कमल युगल	चरण-कमलों
एकान्त	अनन्य
भक्तियोगेन	भक्ति-भावसे
सात्वत ऋषभैः	प्रधान भक्तोंके
सह	साथ
अवनमन्तः	प्रणाम करते समय
अहिपतयः	नागराज गण
परिस्फुरत्	चमकते हुए
कुण्डल	कुण्डलोंकी
प्रभामण्डित	कान्तिसे शोभित
गण्डस्थलानि	कपोलोंवाले
अति	अत्यन्त
मनोहराणि	सुन्दर
स्ववदनानि	अपने मुखोंको
विलोकयन्ति	देखते हैं तो
खलु	अहो (उनका)
प्रमुदित मनसः	चित्त प्रसन्न हो जाता है ॥४॥

यस्यैव हि नागराजकुमार्य आशिष आशासानाश्चारुभुजवलयविलसितविशदविपुलधवलसुभगरुचिरभुजरजतस्तम्भेष्वगुरुचन्दनकुङ्कुमपङ्कानुलेपेनावलिम्पमानास्तदभिमर्शनोन्मथितहृदयमकरध्वजावेशरुचिरललितस्मितास्तदनुरागमदमुदितमदविघूर्णितारुणकरुणावलोकनयनवदनारविन्दं सव्रीडं किल विलोकयन्ति ॥५॥

यस्य एव हि नागराज कुमार्यः आशिष आशासानाः चारु अङ्ग वलय विलसित विशद विपुल धवल सुभग रुचिर भुज रजत स्तम्भेषु अगुरु चन्दन कुङ्कुम पङ्क अनुलेपेन अवलिम्पमानाः तत् अभिमर्शन उन्मथित हृदय मकरध्वज आवेश रुचिर ललित स्मिताः तद् अनुराग मद मुदित मद विघूर्णित अरुण करुण अवलोक नयन वद अरविन्दं सव्रीडं किल विलोक यन्ति ॥५॥

नागराज	नागराजोंकी
कुमार्यः	कुमारियां
हि यस्य एव	क्योंकि जिनसे ही
आशिष	(अपनी) कामनाओं (की पूर्ति) को
√आशासानाः	✓ चाहती हैं,
चारु अङ्ग	मनोहर शरीरकी
वलय विलसित	कङ्कण भूषित
विशद विपुल	स्वच्छ विशाल,
धवल सुभग	श्वेत, सुडौल,
रुचिर	सुन्दर
रजत	चांदीके
स्तम्भेषु	खम्भोंके समान
भुज	भुजाओंपर
अगुरु चन्दन	अरगजा, चन्दन,
कुङ्कुम पङ्क	केशरके पङ्क
अनुलेपन	अङ्गराग
अवलिम्पमानाः	लगाते समय
तत् अभिमर्शन	उन (भुजाओं) के स्पर्शसे
उन्मथित हृदय	मथित होते हृदयमें
मकरध्वज	काम
आवेश	आवेशसे
रुचिर	मनोहर
ललित स्मित	सुन्दर मुस्कान सहित
तत्	उनके
अनुराग मद	प्रेम मदसे
मुदित	प्रफुलत
मद विघूर्णित	मद-विह्वल
करुण अवलोक	कृपावलोकन युक्त
अरुण नयन	लाल नेत्रों वाले
वदनारविन्दं	मुख-कमलको
किल सव्रीडं	सलज्ज ही
विलोकयन्ति	देखती हैं ॥५॥

स एव भगवाननन्तोऽनन्तगुणार्णव आदिदेव उपसंहृतामर्षरोषवेगो लोकानां स्वस्तय आस्ते ॥६॥

स एव भगवान् अनन्तः अनन्त गुण अर्णव आदिदेव उपसंहृत अमर्ष रोषवेगः लोकानां स्वस्तय आस्ते ॥६॥

स एव	वही
अनन्त गुण	अनन्त गुणोंके
अर्णव	समुद्र
आदिदेव	आदिदेव
भगवान् अनन्तः	भगवान् अनन्त
लोकानां	लोकोंके (समस्त)
स्वस्तय	कल्याणके लिए
अमर्ष	(अपनी) असहन शीलता और
रोषवेगः	क्रोधके वेगको
उपसंहृत	रोके हुए
आस्ते	विराजमान हैं ॥६॥

ध्यायमानः सुरासुरोरगसिद्धगन्धर्वविद्याधरमुनिगणैरनवरतमदमुदितविकृतविह्वललोचनः सुललितमुखरिकामृतेनाप्यायमानः स्वपार्षदविबुधयूथपतीनपरिम्लानरागनवतुलसिकामोदमध्वासवेन माद्यन्मधुकरव्रातमधुरगीतश्रियं वैजयन्तीं स्वां वनमालां नीलवासा एककुण्डलो हलककुदि कृतसुभगसुन्दरभुजो भगवान्माहेन्द्रो वारणेन्द्र इव काञ्चनीं कक्षामुदारलीलो बिभर्ति ॥७॥

ध्यायमानः सुर असुर उरग सिद्ध गन्धर्व विद्याधर मुनिगणैः अनवरत मदमुदित विकृत विह्वल लोचनः सुललित मुखरिक अमृतेन आप्यायमानः स्वपार्षद विबुध यूथपतीन् अपरिम्लानराग नवतुलसिका आमोद मधु आसवेन माद्यन् मधुकर व्रात मधुर गीत श्रियं वैजयन्तीं स्वां वनमालां नीलवासा एक कुण्डलः हल ककुदि कृत सुभग सुन्दर भुजः भगवान् माहेन्द्रः वारणेन्द्र इव काञ्चनीं कक्षां उदार लीलः बिभर्ति ॥७॥

सुर असुर	देवता, असुर,	**विबुध यूथपतीन्**	देव-यूथपोंको
उरग सिद्ध	नाग, सिद्ध,	**सुललित**	अत्यन्त सुन्दर
गन्धर्व	गन्धर्व,	**मुखरिक अमृतेन**	वचनामृतसे
विद्याधर	विद्याधर	**आप्यायमानः**	सन्तुष्ट करते रहते हैं।
मुनिगणैः	मुनिगणों द्वारा		
ध्यायमानः	(उनका) ध्यान किया जाता है।	**अपरिम्लानराग**	जिसकी शोभा कभी कुम्हलाती नहीं उस
अनवरत	(वे) निरन्तर	**नवतुलसिका**	नवीन तुलसीकी
मदमुदित	(प्रेम) मदसे मुदित,	**आमोद**	सुगन्धि और
विकृत विह्वल	चञ्चल और विह्वल	**मधु आसवेन**	मधुर-मकरन्द
लोचनः	नेत्र वाले हैं।	**माद्यन्**	पीकर मतवाले हुए
स्वपार्षद	अपने पार्षद	**मधुकर व्रात**	भौंरोंके झुण्डकी

मधुर गीत श्रियं	मधुर गुंजारकी शोभावाली	**नीलवासा**	नीलाम्बर,
		एककुण्डलः	एक ही कुण्डल
स्वां वैजयन्तीं	अपनी वैजयन्ती	**कृत हल ककुदि**	पीठके ककुदपर रखा हल
वनमालां	वनमालाको		
माहेन्द्रः वारणेन्द्र	इन्द्रके गजराज (ऐरावत)	**सुभग सुन्दर**	सुडौल सुन्दर
		भुजः	भुजा (हाथ) में
काञ्चनीं कक्षां	गलेमें पड़ी स्वर्ण शृंखला	**उदार लीलः**	(वे) उदार लीलामय
इव	की भाँति (तथा)	**बिभर्ति**	धारण करते हैं ॥७॥

य एष एवमनुश्रुतो ध्यायमानो मुमुक्षूणामनादिकालकर्म वासनाग्रथितमविद्यामयं हृदयग्रन्थि सत्त्वरजस्तमोमयमन्तर्हृदयं गत आशु निर्भिनत्ति तस्यानुभावान् भगवान् स्वायम्भुवो नारदः सह तुम्बुरुणा सभायां ब्रह्मणः संश्लोकयामास ॥८॥

य एष एवं अनुश्रुतः ध्यायमानः मुमुक्षूणां अनादि काल कर्म वासना ग्रथितं अविद्यामयं हृदयग्रन्थि सत्त्व रजः तमोमयं अन्तः हृदयं गतः आशु निर्भिनत्ति तस्य अनुभावान् भगवान् स्वायम्भुवः नारदः सह तुम्बुरुणा सभायां ब्रह्मणः संश्लोकयामास ॥८॥

य एष	जो ये (भगवान् अनन्त)	**अनादि काल**	अनादि कालसे
		कर्म वासना	कर्म-वासनासे
एवं अनुश्रुतः	इस प्रकार (माहात्म्य) बार-बार सुननेसे तथा	**ग्रथितं**	उलझी
		सत्त्व रजः	सत्त्व, रज,
		तमोमयं	तम गुणमयी
ध्यायमानः	ध्यान करनेसे	**अविद्यामयं**	अविद्यारूपी
अन्तः हृदयं गतः	हृदयके भीतर प्रकट होकर	**हृदयग्रंथि**	हृदय-ग्रन्थिको
		आशु निर्भिनत्ति	शीघ्र काट देते हैं,
मुमुक्षूणां	मोक्षकी इच्छा वालोंकी	**तस्य अनुभावान्**	उनके प्रभावोंका
		ब्रह्मणः सभायां	ब्रह्माकी सभामें

स्वायम्भुवः	ब्रह्माजीके पुत्र	तुम्बुरुणा सह	तुम्बुरु (गन्धर्व) के साथ
भगवान् नारदः	भगवान् नारदने	संश्लोकयामास	गान किया ॥८॥

उत्पत्तिस्थितिलयहेतवोऽस्य कल्पाः
सत्त्वाद्याः प्रकृतिगुणा यदीक्षयाऽऽसन् ।
यद्रूपं ध्रुवमकृतं यदेकमात्मन्
नानाधात्कथमु ह वेद तस्य वर्त्म ॥९॥

उत्पत्ति स्थिति लय हेतवः अस्य कल्पाः सत्त्व आद्याः प्रकृति गुणाः यत् ईक्षया आसन् यत् रूपं ध्रुवं अकृतं यत् एकं आत्मन् नानाधात् कथं उ ह वेद तस्य वर्त्म ॥९॥

उत्पत्ति स्थिति लय	उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयके	ध्रुवं अकृतं	ध्रुव (अनन्त) अकृत (अनादि) है,
हेतवः	कारण	यत् एक आत्मन्	जो अकेले होते हुए
अस्य कल्पाः	इन्होंने ही कल्पित किये हैं,	नानाधात्	(इस) नानात्मक (प्रपञ्च) को धारण किए हैं,
सत्त्व आद्याः	सत्त्व आदि	तस्य वर्त्म	उनके मार्ग (स्वरूप) को
प्रकृति गुणाः	प्रकृतिके गुण	उ ह	निश्चित रूपसे
यत् ईक्षया	जिनको दृष्टि पड़नेसे	कथं वेद	(कोई) कैसे जान सकता है ॥९॥
आसन्	उत्पन्न हुए,		
यत् रूपं	जिनका स्वरूप		

मूर्ति नः पुरुकृपया बभार सत्त्वं
संशुद्धं सदसदिदं विभाति यत्र ।
यल्लीलां मृगपतिराददेऽनवद्या-
मादातुं स्वजनमनांस्युदारवीर्यः ॥१०॥

मूर्ति नः पुरु कृपया बभार सत्त्वं संशुद्धं सद् असद् इदं विभाति यत्र
यत् लीलां मृगपतिः आददे अनवद्यां आदातुं स्वजन मनांसि उदार वीर्यः ॥१०

यत्र इदं	जिनमें यह
सद् असद्	कारण कार्य रूप (जगत)
विभाति	भास रहा है,
यत् अनवद्यां	जिनकी निष्कलंक
लीलां	लीलाको (आदर्श मानकर)
मृगपतिः आददे	सिंहने अपनाया है,
स्वजन मनांसि	अपने जनोंके मनको
आदातुं	ग्रहण (आकर्षित) करनेके लिए
नः पुरु कृपया	हमपर बहुत कृपा करके
संशुद्धम् सत्त्वं	शुद्ध सत्त्व-गुणमयी
मूर्ति	श्रीविग्रह
उदार वीर्यः	(उन) उदार पराक्रमने
बभार	धारण किया है ॥१०

यन्नाम श्रुतमनुकीर्तयेदकस्मा-
दार्तो वा यदि पतितः प्रलम्भनाद्वा ।
हन्त्यंहः सपदि नृणामशेषमन्यं
कं शेषाद्भगवत आश्रयेन्मुमुक्षुः ॥११॥

यत् नाम श्रुतं अनुकीर्त येत् अकस्मात् आर्तः वा यदि पतितः प्रलम्भनात् वा हन्ति अंहः सपदि नृणां अशेषं अन्यं कं शेषात् भगवतः आश्रयेन् मुमुक्षुः ॥११॥

यत् श्रुतं नाम	जिनका सुना हुआ नाम
अकस्मात्	अचानक
यदि आर्तः	यदि दुःखी
वा पतितः	या पतित (पुरुष)
वा प्रलम्भनात्	अथवा हँसीमें
अनुकीर्तं येत्	ले लेता है तो
सपदि नृणां	तुरन्त उस मनुष्यके
अशेषं अंहः	सम्पूर्ण पापोंको
हन्ति	(वह नाम) नष्ट कर देता है।
मुमुक्षुः	मुमुक्षु (पुरुष)
भगवतः शेषात्	(ऐसे) भगवान् शेषसे
अन्यं	भिन्न
कं आश्रयेन्	किसका आश्रय ले सकता है ॥११॥

मूर्ध्न्यर्पितमणुवत्सहस्रमूर्ध्नो
भूगोलं सगिरिसरित्समुद्रसत्त्वम् ।
आनन्त्यादनिमितविक्रमस्य भूम्नः
को वीर्याण्यधिगणयेत्सहस्रजिह्वः ॥१२॥

मूर्धनि अर्पितं अणुवत् सहस्र मूर्ध्नः भूगोलं सगिरि सरित् समुद्र सत्त्वं आनन्त्यात् अनिमित विक्रमस्य भूम्नः कः वीर्याणि अधिगणयेत् सहस्र जिह्वः ॥१२॥

सगिरि सरित् समुद्र सत्त्वं	पर्वतों, नदियों, समुद्रों तथा प्राणियों सहित	**आनन्त्यात्**	अनन्त होनेके कारण
		अनिमित	अपरिमित
		विक्रमस्य भूम्नः	पराक्रम विभुके
भूगोलं	पृथ्वी-मण्डल	**वीर्याणि**	पराक्रमोंको
सहस्र मूर्ध्नः	(उन) सहस्रशीर्षाके	**सहस्र जिह्वः**	सहस्र जीभवाला भी
मूर्धनि	एक मस्तकपर	**कः अधिगणयेत्**	गणना कौन कर सकता है ॥१२॥
अणुवत् अर्पितं	एक अणुके समान रखा है,		

एवम्प्रभावो भगवाननन्तो
दुरन्तवीर्योरुगुणानुभावः ।
मूले रसायाः स्थित आत्मतन्त्रो
यो लीलया क्ष्मां स्थितये बिभर्ति ॥१३॥

एवं प्रभावः भगवान् अनन्तः दुरन्त वीर्यः उरु गुण अनुभावः मूले रसायः स्थितः आत्मतन्त्रः यः लीलया क्ष्मां स्थितये बिभर्ति ॥१३॥

एवं प्रभावः	ऐसे प्रभावशाली	**रसायः मूले**	रसातलके मूलमें
दुरन्त वीर्यः	अनन्त पराक्रम	**स्थितः**	स्थित होकर
उरुगुण	बहुत (असंख्य) गुण	**स्थितये**	(संसारकी) स्थितिके लिए
अनुभावः	प्रभाव वाले		
आत्मतन्त्रः	स्वतन्त्र (होनेपर भी)	**लीलया**	लीला पूर्वक
यः भगवान्	जो भगवान्	**क्ष्मां बिभर्ति**	पृथ्वीको धारण करते हैं ॥१३॥
अनन्तः	अनन्त		

एता ह्येवेह नृभिरुपगन्तव्या गतयो यथाकर्मविनिर्मिता यथोपदेशमनुवर्णिताः कामान् कामयमानैः ॥१४॥

एता हि एव इह नृभिः उपगन्तव्या गतयः यथा कर्म विनिर्मिता यथा उपदेशं अनुवर्णिताः कामान् कामयमानैः ॥१४॥

कामान्	भोगोंको	**एता हि एव**	इतनी ही मात्र
कामयमानैः	चाहनेवाले	**गतयः**	गतियां हैं,
नृभिः	मनुष्योंकी	**यथा उपदेशं**	जैसा गुरुमुखसे
यथा कर्म	कर्मानुसार		सुना था
विनिर्मिता	बनी हुई	**अनुवर्णिताः**	वर्णन कर
उपगन्तव्या	पहुँचनेकी		दिया ॥१४॥
इह	इस (संसार) में		

एतावतीर्हि राजन् पुंसः प्रवृत्तिलक्षणस्य धर्मस्य विपाकगतय उच्चावचा विसदृशा यथाप्रश्नं व्याचख्ये किमन्यत्कथयाम इति ॥१५॥

एतावतीः हि राजन् पुंसः प्रवृत्ति लक्षणस्य धर्मस्य विपाक गतयः उच्च अवचा विसदृशा यथाप्रश्नं व्याचख्ये किं अन्यत् कथयाम इति ॥१५॥

राजन्	राजन् !	**गतयः**	गतियां
पुंसः	मनुष्यको	**एतावतीः हि**	इतनी ही हैं
प्रवृत्ति लक्षणस्य	प्रवृत्ति रूप	**यथाप्रश्नं**	(तुम्हारे) प्रश्नके
धर्मस्य	धर्मके		अनुसार
विपाक	परिणाममें (प्राप्त	**व्याचख्ये**	बतला दीं ।
	होने वाली)	**इति**	इस प्रकार
उच्च अवचा	ऊँची, नीची,	**अन्यत् किं**	और क्या
विसदृशा	परस्पर विलक्षण	**कथयाम**	बतलाऊँ ? ॥१५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे भूविवरविध्युपवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः

राजोवाच

महर्ष एतद्वैचित्र्यं लोकस्य कथमिति ॥१॥

महर्ष एतत् वैचित्र्यं लोकस्य कथं इति ॥१॥

महर्ष	महर्षि !	**इति**	इस प्रकार
लोकस्य	लोगोंकी (इतनी विभिन्न)	**एतत्**	यह
		कथं	क्यों है ॥१॥
वैचित्र्यं	विचित्रता		

श्रीशुक उवाच-*

त्रिगुणतवात्कर्तुः श्रद्धया कर्मगतयः पृथग्विधाः सर्वाएव सर्वस्य तारतम्येन भवन्ति ॥२॥

त्रिगुणत्वात् कर्तुः श्रद्धया कर्मगतयः पृथक् विधाः सर्वा एव सर्वस्य तारतम्येन भवन्ति ॥२॥

कर्तुः	कर्ताके	**पृथक् विधाः**	भिन्न-भिन्न प्रकार-
श्रद्धया	(और) श्रद्धाके भी		की
त्रिगुणत्वात्	त्रिगुणात्मक (सात्विक, राजस, तामस) होनेसे	**सर्वा एव**	सभी (गतियां)
		तारतम्येन	कम-अधिक
		सर्वस्य	सबकी
कर्मगतयः	कर्मकी गतियां	**भवन्ति**	होती हैं ॥२॥

---

* अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'ऋषिरुवाच' है।

अथेदानीं प्रतिषिद्धलक्षणस्याधर्मस्य तथैव कर्तुः श्रद्धया वैसादृश्यात्कर्मफलं विसदृशं भवति या ह्यनाद्यविद्यया कृत-कामानां तत्परिणामलक्षणाः सृतयः सहस्रशः प्रवृत्तास्तासां प्राचुर्येणानुवर्णयिष्यामः ॥३॥

अथ इदानीं प्रतिषिद्ध लक्षणस्य अधर्मस्य तथा एव कर्तुः श्रद्धया वैसादृश्यात् कर्मफलं विसदृशं भवति या हि अनादि अविद्यया कृत कामानां तत् परिणाम लक्षणाः सृतयः सहस्रशः प्रवृत्ताः तासां प्राचुर्येण अनुवर्ण-यिष्यामः ॥३॥

प्रतिषिद्ध	निषिद्ध
लक्षणस्य	कर्मरूप अधर्मके
कर्तुः श्रद्धया	कर्ताकी श्रद्धाके
वैसादृश्यात्	विषम होनेसे
तथा एव	वैसे ही
कर्मफलं	(उनके) कर्मका फल
विसदृशं भवति	असमान होता है।
या हि	जो कि
अनादि	अनादि
अविद्यया	अविद्याके वशमें
कृत कामानां	कामना पूर्वक किए गये कर्म
तत् परिणाम	उनके परिणाम
लक्षणाः सृतयः	स्वरूप गतियां
सहस्रशः	हजारों
प्रवृत्ताः	चल रही हैं
अथ इदानीं	अब इस समय
तासां प्राचुर्येण	उनका विस्तारसे
अनुवर्णयिष्यामः	वर्णन करूँगा ॥३॥

राजोवाच–

नरका नाम भगवन् किं देशविशेषा,अथवा बहिस्त्रिलोक्या आहोस्विदन्तराल इति ॥४॥

नरका नाम भगवन् किं देश विशेषा अथवा बहिः त्रिलोक्या आहो-स्वित् अन्तराल इति ॥४॥

भगवन्	भगवन् !
नरका नाम	नरक नामक
किं देश विशेषा	क्या (पृथ्वीके ही) देश विशेष हैं,

अथवा	अथवा	**आहोस्वित्**	अथवा
बहिः त्रिलोक्या	तीनों लोकोंसे बाहर हैं,	**अन्तराज इति**	इसी प्रकार (भूविलोंकी भांति पृथ्वीके) भीतर (कहीं) हैं ॥४॥

*श्रीशुक उवाच-**

अन्तराल एव त्रिजगत्यास्तु दिशि दक्षिणस्यामधस्ताद्भूमेरुपरिष्टाच्च जलाद्यस्यामग्निष्वात्तादयः पितृगणा दिशि स्वानां गोत्राणां परमेण समाधिना सत्या एवाशिष आशासाना निवसन्ति ॥५॥

अन्तराल एव त्रिजगति अस्तु दिशि दक्षिणस्यां अधस्तात् भूमेः उपरिष्टात् च जलात् यस्यां अग्निष्वात्त आदयः पितृगणा दिशि स्वानां गोत्राणां परमेण समाधिना सत्या एव आशिष आशासाना निवसन्तिः ॥५॥

त्रिजगति	त्रिलोकीके	**आदयः**	आदि
अन्तराल एव	भीतर ही हैं।	**पितृगणा**	पितृगण
अस्तु	अस्तु	**स्वानां गोत्राणां**	अपने वंशजोंके लिए
दिशि दक्षिणस्यां	दक्षिण दिशामें	**परमेण**	अत्यन्त
भूमेः अधस्तात्	पृथ्वीसे नीचे	**समाधिना**	एकाग्रता पूर्वक
च जलात्	और जलके	**सत्या एव**	सत्य होनेवाली
उपरिष्टात्	ऊपर हैं।	**आशिष**	मंगल
यस्यां दिशि	जिस दिशामें	**आशासाना**	कामना करते
अग्निष्वात्त	अग्निष्वात्त	**निवसन्ति**	बसते हैं ॥५॥

यत्र ह वाव भगवान् पितृराजो वैवस्वतः स्वविषयं प्रापितेषु स्वपुरुषैर्जन्तुषु सम्परेतेषु यथाकर्मावद्यं दोषमेवानुल्लङ्घितभगवच्छासनः सगणो दमं धारयति ॥६॥

---

* अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'ऋषिरुवाच' है।

यत्र ह वाव भगवान् पितृराजः वैवस्वतः स्वविषयं प्रापितेषु स्वपुरुषैः जन्तुषु सम्परेतेषु यथा कर्म अवद्यं दोषं एव अनुल्लङ्घित भगवत् शासनः सगणः दमं धारयति ॥६॥

यत्र ह वाव	जहां निश्चित ही
पितृराजः	पितृराज
वैवस्वतः	सूर्य-पुत्र (यम)
भगवत् शासनः	भगवान्‌की आज्ञाका
अनुल्लङ्घित	उल्लंघन न करके
स्वपुरुषैः	अपने दूतों द्वारा
सम्परेतेषु जन्तुषु	मृत प्राणियोंको
स्वविषयं	अपने सम्मुख
प्रातितेषु	लानेपर
यथा कर्म अवद्यं	(उनके) दुष्कर्मोंके अनुसार
दोषं एव	पापके ही फलस्वरूप
सगणः	अपने गणोंके साथ
दमं धारयति	दण्ड देते हैं ॥६॥

तत्र हैके नरकानेकविंशतिं गणयन्ति अथ तांस्ते राजन्नामरूपलक्षणतोऽनुक्रमिष्यामस्तामिस्रोऽन्धतामिस्रो रौरवो महारौरवः कुम्भीपाकः कालसूत्रमसिपत्रवनं सूकरमुखमन्धकूपः कृमिभोजनः सन्दंशस्तप्तसूर्मिर्वज्रकण्टकशाल्मली वैतरणी पूयोदः प्राणरोधो विशसनं लालाभक्षः सारमेयादनमवीचिरयः पानमिति । किञ्च क्षारकर्दमो रक्षोगणभोजनः शूलप्रोतो दन्दशूकोऽवटनिरोधनः पर्यावर्तनः सूचीमुखमित्यष्टाविंशतिर्नरका विविधयातनाभूमयः ॥७॥

तत्र ह एके नरकान् एकविंशतिं गणयन्ति अथ तांस्ते राजन् नाम रूप लक्षणतः अनुक्रमिष्यामः तामिस्रः अन्धतामिस्रः रौरवः महारौरवः कुम्भीपाकः कालसूत्रं असिपत्रवनं सूकर मुखं अन्धकूपः कृमिभोजनः सन्दंशः तप्तसूर्मिः वज्र कण्टक शाल्मली वैतरणी पूयोदः प्राणरोधः विशसनं लाला भक्षः सारमेयादनं अवीचिः अयः पानं इति किञ्च क्षारकर्दमः रक्षोगण भोजनः शूलप्रोतः दन्दशूकः अवट निरोधनः पर्यावर्तनः सूचीमुखं इति अष्टाविंशतिः नरका विविध यातना भूमयः ॥७॥

तत्र ह एके	कोई-कोई वहां तो
नरकान्	नरकोंकी
गणयन्ति	गणना
एकविंशतिं	इक्कीस करते हैं।
राजन्	राजन् !
अथ तांस्ते	अब उनको तुम्हें
नाम रूप	नाम, रूप,
लक्षणतः	लक्षण सहित
अनुक्रमिष्यामः	क्रमशः बतलाता हूँ,
तामिस्रः	तामिस्र,
अन्धतामिस्रः	अन्धतामिस्र
रौरवः	रौरव,
महारौरवः	महारौरव,
कुम्भीपाकः	कुम्भीपाक,
कालसूत्रं	कालसूत्र,
असिपत्रवनं	असिपत्रवन,
सूकरमुखः	सूकरमुख,
अन्धकूपः	अन्धकूप,
कृमिभोजनः	कृमिभोजन,
सन्दंशः	सन्दंश,
तप्तसूर्मिः	तप्तसूर्मि,
वज्रकण्टक	वज्रकण्टक
शाल्मली	शाल्मली,
वैतरणी पूयोदः	वैतरणी, पूयोद
प्राणरोधः	प्राणरोध,
विशसनं	विशसन,
लालाभक्षः	लालाभक्ष,
सारमेयादनं	सारमेयादन
अवीचिः	अवीचि,
अयः पानं	अयः पान
इति	इस प्रकार
किञ्च	इनके अतिरिक्त
क्षारकर्दमः	क्षारकर्दम,
रक्षोगण	रक्षोगण
भोजनः	भोजन,
शूलप्रोतः	शूलप्रोत,
दन्दशूकः	दन्दशूक,
अवट निरोधनः	अवट निरोधन,
पर्यावर्तनः	पर्यावर्तन,
सूचीमुखं	सूचीमुखं
इति	इस प्रकार
अष्टाविंशतिः	अट्ठाइस
नरकाः	नरक
विविध यातना	अनेक प्रकारकी यातनाके
भूमयः	स्थान हैं ॥७॥

तत्र यस्तु परवित्तापत्यकलत्राण्यपहरति स हि कालपाशबद्धो यमपुरुषैरतिभयानकैस्तामिस्रे नरके बलान्निपात्यते अनशनानुदपानदण्डताडनसंतर्जनादिभिर्यातनाभिर्यात्यमानो जन्तुर्यत्र कश्मलमासादित एकदैव मूर्च्छामुपयाति तामिस्रप्राये ॥८॥

तत्र यः तु परवित्त अपत्य कलत्राणि अपहरति स हि कालपाश बद्धः यमपुरुषैः अतिभयानकैः तामिस्रे नरके बलात् निपात्यते अनशन अनुदपान

दण्ड ताडन संतर्जन आदिभिः यातनाभिः यात्यमानः जन्तुः यत्र कश्मलं आसादितः एकदैव मूर्छां उपयाति तामिस्रप्राये ॥८॥

तत्र यः तु	वहां जो भी
परवित्त	दूसरेके धन,
अपत्य कलत्राणि	पुत्र, स्त्री आदिका
अपहरति	हरण करता है
स हि	वह निश्चय
अतिभयानकैः	अत्यन्त भयानक
यमपुरुषैः	यमदूतों द्वारा
कालपाश बद्धः	कालपाशमें बाँधकर
तामिस्रे नरके	तामिस्र नरकमें
बलात्	बलपूर्वक
निपात्यते	गिरा दिया जाता है।
तामिस्रप्राये	उस अन्धकार-पूर्ण (नरक) में
अनशन-	अन्न-जल
अनुदपान	न देते,
दंड ताडन	डंडेसे मारने,
संतर्जन	डांटने
आदिभिः	आदि
यातनाभिः	पीड़ाओं द्वारा
यात्यमानः	पीड़ित किए जानेपर
एकदैव	एकाएक
मूर्छां उपयाति	मूर्छित हो जाता है ॥८॥

एवमेवान्धतामिस्रे यस्तु वञ्चयित्वा पुरुषं दारादीनुपयुङ्क्ते यत्र शरीरी निपात्यमानो यातनास्थो वेदनया नष्टमतिर्नष्टदृष्टिश्च भवति यथा वनस्पतिर्वृश्च्यमानमूलस्तस्मादन्धतामिस्रं तमुपदिशन्ति ॥९॥

एवं एव अन्ध तामिस्रे यः तु वञ्चयित्वा पुरुषं दारादीन् उपयुङ्क्ते यत्र शरीरी निपात्यमानः यातनास्थः वेदनया नष्टमतिः नष्ट दृष्टिः च भवति यथा वनस्पतिः वृश्च्यमान मूलः तस्मात् अन्धतामिस्रं तं उपदिशन्ति ॥९॥

एवं एव	इसी प्रकार
यः तु पुरुषं	जो कि पुरुषको
वञ्चयित्वा	धोखा देकर
दारादीन्	(उसकी) पत्नी आदिका
उपयुङ्क्ते	उपभोग करता है (वह)
यत्र अन्ध-	जिस अन्ध-
तामिस्रे	तामिस्र (नरक) में
निपात्यमानः	गिराये जानेपर

शरीरी	प्राणी
यातनास्थः	यातना पाते हुए
वेदनया	पीड़ासे (उसकी)
नष्टमतिः	बुद्धि नष्ट हो जाती है,
च नष्ट दृष्टिः	और दृष्टि नष्ट हो जाती है,
यथा वनस्पतिः	जैसे वृक्ष
वृश्च्यमान मूलः	जड़ काटे जानेपर,
तस्मात् तं	इसलिए उसे
अन्धतामिस्रं	अन्धतामिस्र
उपदिशन्ति	कहते हैं ॥९॥

यस्त्विह वा एतदहमिति ममेदमिति भूतद्रोहेण केवलं स्वकुटुम्बमेवानुदिनं प्रपुष्णाति स तदिह विहाय स्वयमेव तदशुभेन रौरवे निपतति ॥१०॥

यः तु इह वा एतत् अहं इति मम इदं इति भूतद्रोहेण केवलं स्वकुटुम्बं एव अनुदिनं प्रपुष्णाति स तत् इह विहाय स्वयं एव तत् अशुभेन रौरवे निपतति ॥१०॥

यः तु इह वा	जो भी इस (संसार) में
एतत् अहं	'यह शरीर मैं हूँ'
इति	इस प्रकार
मम इदं	'ये मेरे हैं'
इति	इस प्रकार (अहंता ममता करके)
भूतद्रोहेण	प्राणियोंसे द्रोह करके
केवलं	केवल
स्वकुटुम्बं एव	अपने कुटुम्बका ही
अनुदिनं	प्रतिदिन
प्रपुष्णाति	पोषण करता है
स तत्	वह उस (शरीर और परिवार) को
इह विहाय	यहीं छोड़कर
स्वयं एव	स्वयं ही
तत् अशुभेन	उस पापसे
रौरवे निपतति	रौरव नरकमें गिरता है ॥१०॥

ये त्विह यथैवामुना विहिंसिता जन्तवः परत्र यमयातनामुपगतं त एव रुरवो भूत्वा तथा तमेव विहिंसन्ति तस्माद्रौरवमित्याहू रुरुरिति सर्पादतिक्रूरसत्त्वस्यापदेशः ॥११॥

ये तु इह यथा एव अमुना विहिंसिता जन्तवः परत्र यमयातनां उपगतं त एव रुरवः भूत्वा तथा तं एव विहिंसन्ति तस्मात् रौरवं इति आहू रुरुः इति सर्पात् अतिक्रूर सत्त्वस्य अपदेशः ॥११॥

इह	इस लोकमें
ये तु जन्तवः	जो भी प्राणी
यथा एव	जैसे
अमुना	इसके द्वारा
विहिंसिता	मारे गये हैं,
परत्र	परलोकमें
यमयातनां	यम-यातना
उपगतं	पाने पहुँचनेपर
त एव	वही (उसके द्वारा मारे गये प्राणी)
रुरवः भूत्वा	रुरु होकर
तथा तं एव	उसी प्रकार उसे ही
विहिंसन्ति	मारते हैं,
तस्मात्	इसलिए
रौरवं इति आहू	(उस नरकको) रौरव कहते हैं।
रुरु इति	रुरु यह
सर्पात् अतिक्रूर	सर्पसे भी अत्यन्तक्रूर
सत्त्वस्य अपदेशः	प्राणीका नाम है ॥११॥

एवमेव महारौरवो यत्र निपतितं पुरुषं क्रव्यादा नाम रुरवस्तं क्रव्येण घातयन्ति यः केवलं देहम्भरः ॥१२॥

एवं एव महारौरवः यत्र निपतितं पुरुषं क्रव्यादा नाम रुरवः तं क्रव्येण घातयन्ति यः केवलं देहम्भरः ॥१२॥

एवं एव	इसी प्रकार
महारौरवः	महारौरव नरक है
यः केवलं	जो केवल (दूसरेकी चिन्ता छोड़कर)
देहम्भरः	अपने शरीरका ही पोषक रहा है
यत्र निपतितं	(उसके) जहां गिरनेपर
क्रव्यादा नाम	क्रव्याद नामके
रुरवः	(कच्चा मांस खानेवाले) रुरु
तं क्रव्येण	उसे मांसके लोभसे
घातयन्ति	मारते हैं ॥१२॥

यस्त्विह वा उग्रः पशून् पक्षिणो वा प्राणत उपरन्धयति तमपकरुणं पुरुषादैरपि विगर्हितममुत्र यमानुचराः कुम्भीपाके तप्ततैले उपरन्धयन्ति ॥१३॥

यः तु इह वा उग्रः पशून् पक्षिणः वा प्राणत उपरुन्धयति तं अपकरुणं पुरुषादैः अपि विगर्हितं अमुत्र यम अनुचराः कुम्भीपाके तप्ततैले उपरुन्धयन्ति ॥१३॥

यः तु	जो भी कोई	**पुरुषादैः अपि**	राक्षसोंसे भी (अधिक)
उग्रः	क्रूर	**विगर्हितं**	निन्दितको
इह	इस लोकमें	**अमुत्र**	यमलोकमें
पशून् वा पक्षिणः	पशुओं या पक्षियोंको	**यम अनुचराः**	यमराजके सेवक
प्राणत	जीवित	**कुम्भीपाके**	कुम्भीपाक (नरक) में
उपरुन्धयति	पकाता है	**तप्ततैले**	खौलते तेलमें
तं अपकरुणं	उस हृदयहीन	**उपरुन्धयन्ति**	राँधते हैं ॥१३॥

यस्त्विह पितृविप्रब्रह्मध्रुक् स कालसूत्रसंज्ञके नरके अयुतयोजनपरिमण्डले ताम्रमये तप्तखले उपर्यधस्तादग्न्यर्काभ्यामतितप्यमानेऽभिनिवेशितः क्षुत्पिपासाभ्यां च दह्यमानान्तर्बहिः शरीर आस्ते शेते चेष्टतेऽवतिष्ठति परिधावति च यावन्ति पशुरोमाणि तावद्वर्षसहस्राणि ॥१४॥

यः तु इह पितृ विप्र ब्रह्म ध्रुक् स कालसूत्र संज्ञके नरके अयुत योजन परिमण्डले ताम्रमये तप्तखले उपरि अधस्तात् अग्नि अर्काभ्यां अतितप्यमाने अभिनिवेशितः क्षुत् पिपासाभ्यां च दह्यमानः अन्तः बहिः शरीर आस्ते शेते चेष्टते अवतिष्ठति परिधावति च यावन्ति पशुरोमाणि तावत् वर्ष सहस्राणि ॥१४॥

यः तु इह	जो भी इस लोकमें	**संज्ञके**	नामक
पितृ विप्र	पिता-माता, ब्राह्मण तथा	**नरके**	नरकमें
		अभिनिवेशितः	डाला जाता है।
ब्रह्म ध्रुक्	वेदसे द्रोह करता है,	**ताम्रमये**	(वह) तांबेका
स कालसूत्र	वह काल सूत्र		बना है।

अयुत योजन	दस हजार योजन
परिमण्डले	घेरेका
उपरि अधस्तात्	ऊपर और नीचे
अग्नि अर्काभ्यां	अग्नि और सूर्य द्वारा
तप्तखले	तपता मैदान है,
अतितप्यमाने	अत्यन्त तपाया जाता है।
क्षुत् पिपासाभ्यां	(इसमें) भूख प्याससे
अन्तः बहिः	बाहर-भीतरसे
शरीर च	शरीर भी
दह्यमानः	जलता हुआ
पशुरोमाणि	उस नर पशुमें
यावन्ति च	जितने भी
रोमाणि	रोम हैं,
तावत् वर्ष	उतने वर्ष-
सहस्राणि	सहस्र तक
आस्ते शेते	कभी बैठता है, लेटता है,
चेष्टते	छटपटाता है,
अवतिष्ठति	खड़ा रहता है,
परिधावति	(कभी) दौड़ता है ॥१४॥

यस्त्विह वै निजवेदपथादनापद्यपगतः पाखण्डं चोपगतस्तमसिपत्रवनं प्रवेश्य कशया प्रहरन्ति तत्र हासावितस्ततो धावमान उभयतोधारैस्तालवनासिपत्रैश्छिद्यमानसर्वाङ्गो हा हतोऽस्मीति परमया वेदनया मूर्च्छितः पदे पदे निपतति स्वधर्महा पाखण्डानुगतं फलं भुङ्क्ते ॥१५॥

यः तु इह वै निजवेद पथात् अनापदि अपगतः पाखण्डं च उपगतः तं असिपत्रवनं प्रवेश्य कशया प्रहरन्ति तत्र ह असौ इतस्ततः धावमानः उभयतः धारैः तालवन असिपत्रैः छिद्यमान सर्वाङ्गः हा हतोऽस्मि इति परमया वेदनया मूर्च्छितः पदे पदे निपतति स्वधर्महा पाखण्ड अनुगतं फलं भुङ्क्ते ॥१५॥

यः तु इह	जो भी यहां
अनापदि	आपत्तिकाल न होनेपर भी
निजवेद पथात्	अपने वैदिक मार्गको
अपगतः	छोड़कर
च पाखण्डं	अन्य पाखण्ड (धर्म)
उपगतः	अपनाता है,
तं	उसे
असिपत्रवनं	असिपत्रवनमें
प्रवेश्य	ले जाकर
कशया प्रहरन्ति	कोड़ोंसे मारते हैं,
तत्र ह असौ	वहां तो यह

इतस्ततः	इधर-उधर
धावमानः	दौड़ता हुआ
तालवन	तालवनके
असिपत्रैः	तलवारके समान पत्तोंसे
सर्वाङ्गैः	सब
छिद्यमानैः	अंगोंके कटनेसे
'हा हतोऽस्मि'	'हाय मारा गया'
इति	इस प्रकार (चिल्लाता)
परमया वेदनया	घोर पीड़ासे
मूर्च्छितः	मूर्छित होता
पदे पदे	पद-पदपर
निपतति	गिरता है,
स्वधर्महा	(इस प्रकार) अपने धर्मको छोड़नेवाला
पाखण्ड अनुगतं	पाखण्डके पीछे जानेका
फलं भुङ्क्ते	फल भोगता है ॥१५

यस्त्विह वै राजा राजपुरुषो वा अदण्ड्ये दण्डं प्रणयति ब्राह्मणे वा शरीरदण्डं स पापीयान्नरकेऽमुत्र सूकरमुखे निपतति तत्रातिबलैर्विनिष्पिष्यमाणावयवो यथैवेहेक्षुखण्ड आर्तस्वरेण स्वनयन् क्वचिन्मूर्च्छितः कश्मलमुपगतो यथैवेहादृष्टदोषा उपरुद्धाः ॥१६॥

यः तु इह वै राजा राजपुरुषः वा अदण्ड्ये दण्डं प्रणयति ब्राह्मणे वा शरीरदण्डं स पापीयान् नरके अमुत्र सूकरमुखे निपतति तत्र अतिबलैः विनिष्पिष्यमाण अवयवः यथा इव इह इक्षु खण्ड आर्तस्वरेण स्वनयन् क्वचित् मूर्च्छितः कश्मलं उपगतः यथैव इह अदृष्ट दोषा उपरुद्धाः ॥१६॥

यः तु इह वै	जो भी इस लोकमें तो
राजा वा	राजा या
राजपुरुषः	राजकर्मचारी
अदण्ड्ये	निरपराधको
दण्डं वा	दण्ड देते अथवा
ब्राह्मणे	ब्राह्मणको
शरीरदण्डं	शारीरिक दण्ड
प्रणयति	देते हैं,
स पापीयान्	वह पापिष्ठ
अमुत्र	उस लोकमें
सूकरमुखे	सूकर मुख
नरके निपतति	नरकमें गिरता है।
यथा इव इह	जैसे इस लोकमें
इक्षु खण्डः	गन्नोंको (पेरते हैं)
तत्र अतिबलैः	वहाँ बहुत बलवान (यमदूत द्वारा)
विनिष्पिष्यमाण	पीसे (कुचले) जाते

अवयवः	अंगोंसे
यथा इव इह	जैसे इस लोकमें
अदृष्ट दोषा	निरपराध लोग
उपरुद्धाः	सताये जानेपर
कश्मलं उपगतः	कष्ट पाते थे
आर्तस्वरेण	आर्त स्वरसे
स्वनयन्	चिल्लाता हुआ,
क्वचित् मूर्च्छितः	कभी मूर्छित हो जाता है ॥१६॥

यस्त्विह वै भूतानामीश्वरोपकल्पितवृत्तीनामविविक्तपरव्यथानां स्वयं पुरुषोपकल्पितवृत्तिर्विविक्त परव्यथो व्यथामाचरति स परत्रान्धकूपे तदभिद्रोहेण निपतति तत्र हासौ तैर्जन्तुभिः पशुमृगपक्षिसरीसृपैर्मशकयूकामत्कुणमक्षिकादिभिर्ये के चाभिद्रुग्धास्तैः सर्वतोऽभिद्रुह्यमाणस्तमसि विहतनिद्रानिर्वृतिरलब्धास्थानः परिक्रामति यथा कुशरीरे जीवः ॥१७॥

यः तु इह वै भूतानां ईश्वर उपकल्पित वृत्तीनां अविविक्त परव्यथानां स्वयं पुरुष उपकल्पित वृत्तिः विविक्त परव्यथः व्यथां आचरति स परत्र अन्धकूपे तत् अभिद्रोहेण निपतति तत्र ह असौ तैः जन्तुभिः पशु मृग पक्षि सरीसृपैः मशक यूका मत्कुण मक्षिकादिभिः ये के च अभिद्रुग्धाः तैः सर्वतः अभिद्रुह्यमाणः तमसि विहत निद्रा निर्वृतिः अलब्ध अवस्थानः परिक्रामति यथा कुशरीरे जीवः ॥१७॥

यः तु इह वै	जो कोई भी इस लोकमें
स्वयं परव्यथः	स्वयं दूसरोंकी पीड़ा
विविक्त	समझनेवाला (होकर)
पुरुष उपकल्पित	परमात्मा द्वारा दी गयी
वृत्तिः	(विधि-निषेधयुक्त) आजीविकावाला
परव्याथानां	दूसरेकी पीड़ा
अविविक्त	न जाननेवाले
ईश्वर	ईश्वर
उपकल्पित	प्रदत्त
वृत्तीनां	आजीविकावाले
भूतानां	प्राणियोंको
व्यथां आचरति	पीड़ा देता है,
स परत्र	वह परलोकमें
तत् अभिद्रोहेण	उस द्रोहके कारण
अन्धकूपे	अन्धकूप नरकमें
निपतति	गिरता है,
तत्र ह असौ	वहां तो यह
जन्तुः	प्राणी

पशु मृगपक्षि	पशु, मृग, पक्षी,
सरीसृपैः मशक	सर्पादि सरकनेवाले, मच्छर
यूका मत्कुण	जोंक, खटमल
मक्षिकादिभिः	मक्खियों द्वारा
ये के च	जिस किसीसे भी
अभिद्रुग्धाः	द्रोह किया था
तैः	उनके द्वारा
सर्वतः	चारों ओरसे
अभिद्रुह्यमाणः	द्रोह किये (सताये) जानेसे
विहत निद्रा	निद्रा और शान्ति
निर्वृतिः	नष्ट हो जाती है,
अलब्ध	स्थान न
अवस्थानः	मिलनेसे
यथा कुशरीरे	जैसे रोगी
जीवः	शरीरमें जीव
परिक्रामति	छटपटाता-घूमता रहता है ॥१७॥

यस्त्विह वा असंविभज्याश्नाति यत्किञ्च नोपनतमनिर्मितपञ्चयज्ञो वायससंस्तुतः स परत्र कृमिभोजने नरकाधमे निपतति तत्र शतसहस्रयोजने कृमिकुण्डे कृमिभूतः स्वयं कृमिभिरेव भक्ष्यमाणः कृमिभोजनो यावत्तदत्ताप्रहुतादोऽनिर्वेशमात्मानं यातयते ॥१८॥

यः तु इह वा असंविभज्य अश्नाति यत् किञ्चित् न उपनतं अनिर्मित पञ्चयज्ञः वायस संस्तुतः स परत्र कृमिभोजने नरक अधमे निपतति तत्र शतसहस्रयोजने कृमिकुण्डे कृमिभूतः स्वयं कृमिभिः एव भक्ष्यमाणः कृमि भोजनः यावत् तत् अत्त अप्रहुत आदो अनिर्वेशं आत्मानं यातयते ॥१८॥

यः तु इह वा	जो भी इस लोकमें ही
यत् किञ्चित्	जो कुछ भी
उपनतं	मिला है उसे
असंविभज्य	बिना बांटे ही
पञ्चयज्ञः	पञ्च-महायज्ञ
अनिर्मित	किये बिना
अश्नाति	खा लेता है,
वायस संस्तुतः	(उसे) कौएके समान कहा गया है
स परत्र	वह परलोकमें
कृमिभोजने	कृमिभोजन नामक
नरक अधमे	अधम नरकमें
निपतति	गिरता है।
तत्र	वहाँ
शतसहस्रयोजने	एक लाख योजनके

कृमिकुण्डे	कीडोंके कुण्डमें	**न अत्त**	न बांटने
कृमिभूतः	कीड़ा होकर	**अप्रहुत**	पञ्च-महायज्ञ न करने
कृमिभिः एव	कीड़ोंके द्वारा ही	**आदो आत्मानं**	आदि अपने (पापों-का)
भक्ष्यमाणः	खाया जाता हुआ		
स्वयं	स्वयं	**अनिर्वेशं**	प्रायश्चित नहीं हो जाता
कृमि भोजनः	कीड़े ही खाता है।		
यावत् तत्	जब तक उस	**यातयते**	कष्ट भोगता रहता है ॥१८॥

यस्त्विह वै स्तेयेन बलाद्वा हिरण्यरत्नादीनि ब्राह्मणस्य वापहरत्यन्यस्य वानापदि पुरुषस्तममुत्र राजन् यमपुरुषा अयस्मयैरग्निपिण्डैः सन्दंशैस्त्वचि निष्कुषन्ति ॥१९॥

यः तु इह वै स्तेयेन बलात् वा हिरण्य रत्न आदीनि ब्राह्मणस्य वा अपहरति अन्यस्य वा अनापदि पुरुषः तं अमुत्र राजन् यमपुरुषाः अयस्मयैः अग्निपिण्डैः सन्दंशैः त्वचि निष्कुषन्ति ॥१९॥

राजन्	राजन् !	**अपहरति**	अपहरण करता है
यः तु इह वै	जो भी इस लोकमें तो	**अमुत्र**	परलोकमें
		तं पुरुषः	उस प्राणीको
स्तेयेन	चोरीसे	**यमपुरुषाः**	यमराजके सेवक
वा बलात्	अथवा बलपूर्वक	**सन्दंशैः**	सन्दंश नरकमें
ब्राह्मणस्य	ब्राह्मणका	**अयस्मयैः**	लोहेसे बने
वा अनापदि	अथवा आपत्ति न होनेपर भी	**अग्निपिण्डैः**	तप्त गोलेसे
		निष्कुषन्ति	चमड़ेको दागते हैं
अन्यस्य	दूसरे किसीका	**सन्दंशै**	संडासीसे
हिरण्य वा	सोना अथवा	**त्वचि**	बाल खींचते हैं ॥१९॥
रत्न आदीनि	रत्न आदि		

यस्त्विह वा अगम्यां स्त्रियमगम्यं वा पुरुषं योषिदभिगच्छति तावमुत्र कशया ताडयन्तस्तिग्मया सूर्म्या लोहमय्या पुरुषमालिङ्गयन्ति स्त्रियं च पुरुषरूपया सूर्म्या ॥२०॥

यः तु इह वा अगम्यां स्त्रियं अगम्यं वा पुरुषं योषित् अभिगच्छति ताः अमुत्र कशया ताडयन्तः तिग्मया सूर्म्या लोहमय्या पुरुषं आलिङ्ग यन्ति स्त्रियं च पुरुष रूपया सूर्म्या ॥२०॥

यः तु इह वा	जो भी कोई इस लोकमें
अगम्यां स्त्रियं	अगम्या स्त्रीसे
वा अगम्यं पुरुषं	अथवा अगम्य पुरुषसे
योषित्	स्त्री
अभिगच्छति	सहवास करती है
ताः अमुत्र	उन दोनोंको परलोकमें
कशया ताडयन्तः	कोड़ोंसे मारते हुए
लोहमय्या	लोहेसे बनी
तिग्मया सूर्म्या	तप्त स्त्री मूर्तिसे
च स्त्रियं	और स्त्रीको
पुरुष रूपया	पुरुषाकृति
सूर्म्या	तप्त मूर्तिसे
आलिङ्ग यन्ति	आलिंगन कराते हैं ॥२०॥

यस्त्विह वै सर्वाभिगमस्तममुत्र निरये वर्तमानं वज्र-कण्टकशाल्मलीमारोप्य निष्कषन्ति ॥२१॥

यः तु इह वै सर्व अभिगमः तं अमुत्र निरये वतमानं वज्र कण्टक शाल्मलीं आरोप्य निष्कर्षन्ति ॥२१॥

यः तु इह वै	जो भी तो इस लोकमें
सर्व अभिगमः	(पशु आदि) सभीसे व्यभिचार करता है
अमुत्र तं	परलोकमें उसे
निरये वर्तमानं	नरकमें ले जाकर
वज्र कण्टक	वज्रके समान कांटो वाले
शल्मलीं	सेमर-वृक्षपर
आरोप्य	चढ़ाकर
निष्कर्षन्ति	नीचे खींचते हैं ॥२१॥

ये त्विह वै राजन्या राजपुरुषा वा अपाखण्डा धर्मसेतून् भिन्दन्ति ते सम्परेत्य वैतरण्यां निपतन्ति भिन्नमर्यादास्तस्यां निरयपरिखाभूतायां नद्यां यादोगणैरितस्ततो भक्ष्यमाणा आत्मना न वियुज्यमानाश्चासुभिरुह्यमानाः स्वाघेन कर्मपाकमनुस्मरन्तो विण्मूत्रपूयशोणितकेशनखास्थिमेदोमांसवसावाहिन्यामुपतप्यन्ते ॥२२

ये तु इह वै राजन्या राजपुरुषा वा अपाखण्डा धर्मसेतून् भिन्दन्ति ते सम्परेत्य वैतरण्यां निपतन्ति भिन्न मर्यादाः तस्यां निरय परिखा भूतायां नद्यां यादो गणैः इतः ततः भक्ष्यमाणः आत्मना न वियुज्यमानाः च असुभिः उह्यमानाः स्व अघेन कर्मपाकं अनुस्मरन्तः विट् मूत्र पूय शोणित केश नख अस्थि मेदः मांस वसा वाहिन्यां उपतप्यन्ते ॥२२॥

ये तु इह	जो भी इस लोकमें
वै राजन्या	कोई राजा
वा राजपुरुषा	अथवा राजकर्मचारी
अपाखण्डा	पाखण्डी न होनेपर भी
धर्मसेतून्	धर्मकी मर्यादाको
भिन्दन्ति	तोड़ते हैं,
सम्परेत्य	मरनेपर
ते भिन्न मर्यादाः	वे मर्यादा तोड़नेवाले
वैतरण्यां	वैतरणीमें
निपतन्ति	गिरते हैं,
तस्यां	उस
निरय परिखा	नरककी खाईके
भूतायां	समान
विट् मूत्र पूय	विष्ठा, मूत्र, पीव,
शोणित केश	रक्त केश,
नख	नख,
अस्थि	हड्डी,
मेदः मांस	मज्जा, मांस,
वसा वाहिन्यां	चर्बी बहनेवाली
नद्यां	नदीमें
यादो गणैः	जलचरों द्वारा
इतः ततः	जहां-तहांसे
भक्ष्यमाणा	खाये जाते हुए भी
आत्मना	शरीर
वियुज्यमानाः	छूटता नहीं,
असुभिः	प्राण उसे
उह्यमानाः	ढोये जाते हैं,
स्व अघेन	अपने पापका
कर्म पाकं	कर्म-फल
अनुस्मरन्तः	बार-बार स्मरण करते हुए
उपतप्यन्ते	सन्तप्त होते रहते हैं ॥२२॥

ये त्विह वै वृषलीपतयो नष्टशौचाचारनियमास्त्यक्त-लज्जाः पशुचर्यां चरन्ति ते चापि प्रेत्य पूयविण्मूत्रश्लेष्ममला-पूर्णार्णवे निपतन्ति तदेवातिबीभत्सितमश्नन्ति ॥२३॥

ये तु इह वै वृषलीपतयः नष्ट शौच आचार नियमाः त्यक्त लज्जाः पशुचर्यां चरन्ति ते च अपि प्रेत्य पूय विट् मूत्र श्लेष्म मल आपूर्ण अर्णवे निपतन्ति तत् एव अति बीभत्सितं अश्नन्ति ॥२३॥

ये तु इह वै	जो कोई भी तो इस लोकमें
शौच	पवित्र
आचार नियमाः	आचरणके नियमोंके
नष्ट	नष्ट करके
त्यक्त लज्जाः	निर्लज्ज होकर
वृषलीपतयः	भ्रष्ट शूद्राओंको रखकर
पशुचर्यां चरन्ति	पशुओंके समान आचरण करते हैं,
ते च अपि प्रेत्य	वे भी मरकर
पूय विट् मूत्र	पीव, विष्ठा, मूत्र,
श्लेष्म मल	कफ, मलसे
आपूर्ण अर्णवे	भरे हुए समुद्रमें
निपतन्ति	गिरते हैं
तत् एव	उसी
अति बीभत्सितं	अत्यन्त घृणित वस्तुओंको
अश्नन्ति	खाते हैं ॥२३॥

ये त्विह वै श्वगर्दभपतयो ब्राह्मणादयो मृगयाविहारा अतीर्थे च मृगान्निघ्नन्ति तानपि सम्परेताँल्लक्ष्यभूतान् यमपुरुषा इषुभिर्विध्यन्ति ॥२४॥

ये तु इह वै श्व गर्दभ पतयः ब्राह्मण आदयः मृगया विहाराः अतीर्थे च मृगान् निघ्नन्ति तान् अपि सम्परेतान् लक्ष्य भूतान् यम पुरुषाः इषुभिः विध्यन्ति ॥२४॥

ये तु इह	जो कोई इस लोकमें
ब्राह्मण	ब्राह्मण
आदयः वै	आदि (द्विज) होकर भी
श्व गर्दभ पतयः	कुत्ते या गधे पालते हैं,
मृगया विहाराः	आखेट खेलते हैं,
अतीर्थे अपि	आखेट-शास्त्रके विपरीत भी
मृगान् निघ्नन्ति	पशुओंको मारते हैं,
तान् अपि	उनको भी
सम्परेतान्	मरनेपर
यम पुरुषाः	यमराजके सेवक
लक्ष्य भूतान्	लक्ष्य बनाकर
इषुभिः	बाणोंसे
विध्यन्ति	मारते हैं ॥२४॥

ये त्विह वै दाम्भिका दम्भयज्ञेषु पशून् विशसन्ति तानमुष्मिँल्लोके वैशसे नरके पतितान्निरयपतयो यातयित्वा विशसन्ति ॥२५॥

ये तु इह वै दाम्भिका दम्भयज्ञेषु पशून् विशसन्ति तान् अमुष्मिन् लोके वैशसे नरके पतितान् निरय पतयः यातयित्वा विशसन्ति ॥२५॥

वै	चाहे	**अमुष्मिन् लोके**	परलोकमें
इह	इस लोकमें	**वैशसे नरके**	वैशस नरकमें
ये तु	जो भी	**पतितान्**	गिराकर
दाम्भिका	पाखण्डी लोग	**निरय पतयः**	उस नरकके नायक-लोग
दम्भयज्ञेषु	पाखण्डपूर्ण यज्ञमें		
पशून् विशसन्ति	पशुओंका वध करते हैं,	**यातयित्वा**	पीड़ा दे देकर
		विशसन्ति	मारते हैं ॥२५॥
तान्	उनको		

यस्त्विह वै सवर्णां भार्यां द्विजो रेतः पाययति काममोहितस्तं पापकृतममुत्र रेतः कुल्यायां पातयित्वा रेतः सम्पाययन्ति ॥२६॥

यः तु इह वै सवर्णां भार्यां द्विजः रेतः पाययति काममोहितः तं पापकृतं अमुत्र रेतः कुल्यायां पातयित्वा रेतः सम्पाययन्ति ॥२६॥

वै	चाहे	**तं पापकृतं**	उस पाप करने वालेको
यः तु द्विजः	जो कोई द्विजाति		
इह	इस लोकमें	**अमुत्र**	परलोकमें
काममोहितः	कामातुर होकर	**रेतः कुल्यायां**	रेतः कुल्यामें
सवर्णां भार्यां	अपने वर्णको पत्नीको	**पातयित्वा**	गिराकर
		रेतः	वीर्य
रेतः पाययति	वीर्यपान कराता है	**सम्पाययन्ति**	पिलाते हैं ॥२६॥

ये त्विह वै दस्यवोऽग्निदा गरदा ग्रामान् सार्थान् वा विलुम्पन्ति राजानो राजभटा वा तांश्चापि हि परेत्य यमदूता वज्रदंष्ट्राः श्वानः सप्तशतानि विंशतिश्च सरभसं खादन्ति ॥२७॥

ये तु इह वै दस्यवः अग्निदा गरदा ग्रामान् सार्थान् वा विलुम्पन्ति राजानः राजभटा वा तान् च अपि हि परेत्य यमदूता वज्रदंष्ट्राः श्वानः सप्तशतानि विंशतिः च सरभसं खादन्ति ॥२७॥

ये तु इह	जो भी इस लोकमें	**वा सार्थान्**	अथवा व्यापारियोंके दलको
वै दस्यवः	चाहे डाकू हों	**विलुम्पन्ति**	लूट लेते हैं,
वा राजानः	अथवा राजा या	**तान् च**	उनको भी
राजभटा	राज-सैनिक,	**अपि हि**	निश्चय ही
अग्निदा	कहीं (किसीके घरमें) आग लगा देते हैं	**यमदूता**	यमके दूत
		सप्तशतानि	सात सौ
गरदा	(किसीको) विष दे देते हैं,	**वज्रदंष्ट्राः**	वज्र जैसे दांत वाले
		श्वानः	कुत्ते
ग्रामान्	गावोंको	**सरभसं खादन्ति**	बड़े वेगसे काटते हैं ॥२७॥

यस्त्विह वा अनृतं वदति साक्ष्ये द्रव्यविनिमये दाने वा कथञ्चित्स वै प्रेत्य नरकेऽवीचिमत्यधः शिरा निरवकाशे योजनशतोच्छ्रायाद् गिरिमूर्ध्नः सम्पात्यते यत्र जलमिव स्थलमश्मपृष्ठमवभासते तदवीचिमत्तिलशो विशीर्यमाणशरीरो न म्रियमाणः पुनरारोपितो निपतति ॥२८॥

यः तु इह वा अनृतं वदति साक्ष्ये द्रव्यविनिमये दाने वा कथञ्चित् स वै प्रेत्य नरके अवीचिमति अधः शिरा निरवकाशे योजनशत उच्छ्रायात् गिरिमूर्ध्नः सम्पात्यते यत्र जलं इव स्थलं अश्मपृष्ठं अवभासते तत् अवीचिमत् तिलशः विशीर्यमाण शरीरः नम्रियमाणः पुनः आरोपितः निपतति ॥२८॥

यः तु इह वा	जो भी कोई इस लोकमें	**वा दाने**	अथवा दानमें
		साक्ष्ये	गवाही देनेमें
द्रव्यविनिमये	धनके लेन-देनमें	**कथञ्चित्**	किसी भी प्रकार

अनृतं वदति	झूठ बोलता है
स वै प्रेत्य	निश्चय वह मरकर
अवीचिमति	अवीचिमान्
नरके	नरकमें
अधः शिरा	नीचे सिर करके
योजनशत	सौ योजन
उच्छ्रायात्	ऊँचाईसे
निरवकाशे	ठोस
गिरिमूर्ध्नः	पहाड़की चोटीपर
सम्पात्यते	गिराया जाता है,
यत्र जलं इव	जहां जलकी भांति
अश्मपृष्ठं	पत्थरका ठोस
स्थलं	स्थल
अवभासते	प्रतीत होता है।
तत् अवीचिमत्	इसीसे उसका नाम अवीचिमान है,
तिलशः	(वहां गिराये जाने पर) तिलके बराबर
विशीर्यमाण	टुकड़े
शरीरः	शरीरके हो जाते हैं; पर
नम्रियमाणः	मरता नहीं
पुनः आरोपितः	बार-बार ऊपर ले जाकर
निपतति	पटका जाता है ॥२८॥

यस्त्विह वै विप्रो राजन्यो वैश्यो वा सोमपीथस्तत्कलत्रं वा सुरां व्रतस्थोऽपि वा पिबति प्रमादस्तेषां निरयं नीतानामुरसि पदाऽऽक्रम्यास्ये वह्निना द्रवमाणं काष्णायसं निषिञ्चन्ति ॥२९॥

यः तु इह वै विप्रः राजन्यः वैश्यः वा सोमपीथः तत् कलत्रं वा सुरां व्रतस्थः अपि वा पिबति प्रमादतः तेषां निरयं नीतानां उरसि पदा आक्रम्य आस्ये वह्निना द्रव्यमाणं काष्णं आयसं निषिञ्चन्ति ॥२९॥

यः तु इह वै	जो भी इस लोकमें कोई
विप्रः राजन्यः	ब्राह्मण, क्षत्रिय
वा वैश्यः	अथवा वैश्य
व्रतस्थः अपि	व्रती होनेपर भी
वा	अथवा
प्रमादतः	प्रमादवश
सोमपीथः	सोमपान करता है
वा तत् कलत्रं	अथवा उसकी पत्नी
सुरां पिबति	मदिरा पीती है
तेषां	उनको
निरय नीतानां	नरक ले जानेपर
उरसि पदा	छातीको पैरसे
आक्रम्य	दबाकर
आस्ये	मुखमें
वह्निना द्रवमाणं	आगसे पिघलाया
काष्णं आयसं	शीशा (काला लोहा)
निषिञ्चन्ति	डालते हैं ॥२९॥

अथ च यस्त्विह वा आत्मसम्भावनेन स्वयमधमो जन्मतपोविद्याचारवर्णाश्रमवतो वरीयसो न बहु मन्येत स मृतक एव मृत्वा क्षारकर्दमे निरयेऽवाक्शिरा निपातितो दुरन्ता यातना ह्यश्नुते ॥३०॥

अथ च यः तु इह वा आत्म सम्भावनेन स्वयं अधमः जन्म तपः विद्या आचार वर्ण आश्रमवतः वरीयसः न बहु मन्येत स मृतक एव मृत्वा क्षारकर्दमे निरये अवाक्शिरा निपातितः दुरन्ता यातना हि अश्नुते ॥३०॥

अथ च	और भी,
यः तु वा	जो भी कोई
इह	इस लोकमें
स्वयं अधमः	स्वयं निम्न श्रेणीका होनेपर भी
आत्म	अपनेको
सम्भावनेन	बड़ा मानेके कारण
जन्म तपः विद्या	कुल, तपस्या, विद्या,
आचार	आचार,
वर्ण आश्रमवतः	वर्ण, आश्रमसे
वरीयसः	अपनेसे श्रेष्ठको*
न बहु मन्येत	आदरणीय नहीं मानता
स मृतक एव	वह (जीता हुआ भी) मरे जैसा ही है,
मृत्वा	मरकर
क्षरकर्दमे	क्षार कर्दम
निरये	नरकमें
अवाक्शिरा	नीचे सिर किये
निपातितः	गिराया जाता है,
दुरन्ता	अपार
यातना हि	कष्ट ही
अश्नुते	भोगता है ॥३०॥

ये त्विह वै पुरुषाः पुरुषमेधेन यजन्ते याश्च स्त्रियो नृपशून् खादन्ति तांश्च ते पशव इव निहता यमसदने यातयन्तो

---

* सनातन-धर्मके अनुसार त्यागी सबसे बड़ा है। ब्राह्मणोंमें क्रमशः त्याग, तप, विद्या आयुसे बडप्पन होता है।

क्षत्रियोंमें त्याग, तप, विद्या, बल (सैन्यबल एवं शस्त्र-बल, देह-बल) से बडप्पन होता है।

वैश्यमें विद्या, धन तथा आयुसे क्रमशः बडप्पन होता है, शूद्रमें वह जिसका सेवक है उसके बड़प्पनसे और आयुसे बड़प्पन होता है।

रक्षोगणाः सौनिका इव स्वधितिनावदायासृक् पिबन्ति नृत्यन्ति च गायन्ति च हृष्यमाणा यथेह पुरुषादाः ॥३१॥

ये तु इह वै पुरुषाः पुरुषमेधेन यजन्ते याः च स्त्रियः नृपशून् खादन्ति तात् च ते पशव इव निहता यमसदने यातयन्तः रक्षोगणाः सौनिका इव स्वधितिना अवदाय असृक् पिबन्ति नृत्यन्ति च गायन्ति च हृष्यमाणा यथा इह पुरुषादाः ॥३१॥

ये तु वै	जो भी कोई
पुरुषाः इह	पुरुष इस लोकमें
पुरुषमेधेन	नरमेध द्वारा
यजन्ते	यज्ञ करते हैं,
च याः स्त्रियः	और जो स्त्रियां
नृपशून्	पशुओंकी भांति पुरुषोंको
खादन्ति	खा जाती हैं,
तात् च ते	उनको वे ही
पशव इव	पशुके समान
निहताः	मारे गये लोग
यमसदने	यमलोकमें
रक्षोगणाः	राक्षस होकर
यातयन्तः	पीड़ा देते हुए
सौनिका इव	कसाईके समान
यथा इह	जैसे इस लोकमें
पुरुषादाः	नरभक्षी-पुरुष (करते थे)
स्वधितिना	अपनी कुल्हाड़ीसे
अवदाय	काटकर
असृक् पिबन्ति	(उनका) रक्त पीते हैं,
च नृत्यन्ति	और नाचते
च गायन्ति	तथा गाते
हृष्यमाणा	हर्षित होते हैं ॥३१॥

ये त्विह वा अनागसोऽरण्ये ग्रामे वा वैश्रम्भकैरुपसृतानुपविश्रम्भ्य जिजीविषून् शूलसूत्रादिषूपप्रोतान् क्रीडनकतया यातयन्ति तेऽपि च प्रेत्य यमयातनासु शूलादिषु प्रोतात्मानः क्षुत्तृड्भ्यां चाभिहताः कङ्कवटादिभिश्चेतस्ततस्तिग्मतुण्डैराहन्यमाना आत्मशमलं स्मरन्ति ॥३२॥

ये तु इह वा अनागसः अरण्ये ग्रामे वा वैश्रम्भकैः उपसृतान् उपविश्रम्भ्य जिजीविषून् शूल सूत्र आदिषु उपप्रोतान् क्रीडनकतया यातयन्ति ते अपि च प्रेत्य यमयातनासु शूल आदिषु प्रोत आत्मानः क्षुत् तृट्भ्यां च

अभिहताः कङ्क वट आदिभिः च इतः ततः तिग्मतुण्डैः आहन्यमाना आत्म शमलं स्मरन्ति ॥३२॥

ये तु वा	जो कोई भी
इह	इस लोकमें
अनागसः	निरपराध
जिजीविषून्	जीनेकी इच्छा रखनेवाले
ग्रामे वा अरण्ये	गाँव या वनमें
वैश्रम्भकैः	विश्वास दिलानेके उपायोंसे
उपविश्रम्भ्य	विश्वास दिलाकर
उपसृतान्	समीप आयोंको
शूल सूत्र आदिषु	काटें या सूत आदिमें
उपप्रोतान्	बींधकर या बाँधकर
क्रीडनकतया	खिलवाड़ करते हुए
यातयन्ति	पीड़ा देते हैं,
ते अपि च	उनको भी
प्रेत्य	मरनेपर
यमयातनासु	यम-यातनाके समय
शूल आदिषु	शूलप्रोत आदि नरकोंमें
प्रोत आत्मानः	(शूलसे) उनको वेधा जानेपर
क्षुत् तृट्भ्यां	भूख-प्याससे
च अभिहताः	भी सताये जानेपर,
कङ्क वट	कङ्क, वटेर
आदिभिः	आदि द्वारा
च इतः ततः	भी जहां-तहां
तिग्मतुण्डैः	तीखी चोचोंसे
आहन्यमाना	मारे जानेपर
आत्म शमलं	अपने पापोंको
स्मरन्ति	स्मरण करते हैं ॥३२

ये त्विह वै भूतान्युद्वेजयन्ति नरा उल्बणस्वभावा यथा दन्दशूकास्तेऽपि प्रेत्य नरके दन्दशूकाख्ये निपतन्ति यत्र नृप दन्दशूकाः पञ्चमुखाः सप्तमुखा उपसृत्य ग्रसन्ति यथा बिलेशयान् ॥३३॥

ये तु इह वै भूतानि उद्वेजयन्ति नराः उल्बण स्वभावा यथा दन्दशूकाः ते अपि प्रेत्य नरके दन्दशूक आख्ये निपतन्ति यत्र नृप दन्दशूकाः पञ्चमुखाः सप्तमुखाः उपसृत्य ग्रसन्ति यथा बिलेशयान् ॥३३॥

ये तु वै	जो कोई भी
इह	इस लोकमें
नृप	राजन् !
उल्बण स्वभावा	उग्र स्वभाव
नराः	पुरुष

यथा दन्दशूकाः	जैसे सर्पके समान	**सप्तमुखाः**	सात मुख
भूतानि	प्राणियोंको	**दन्दशूकाः**	वाले सर्प
उद्वेजयन्ति	उद्विग्न करते हैं	**यथा बिलेशयान्**	चूहोंके समान (उन्हें)
ते अपि प्रेत्य	वे भी मरकर		
दन्दशूक आख्ये	दन्दशूक नामक	**उपसृत्य**	पास आकर
नरके निपतन्ति	नरकमें गिरते हैं	**ग्रसन्ति**	निगल लेते हैं ॥३३॥
यत्र पञ्चमुखाः	जहां पांच मुखवाले,		

ये त्विह वा अन्धावटकुसूलगुहादिषु भूतानि निरुन्धन्ति तथामुत्र तेष्वेवोपवेश्य सगरेण वह्निना धूमेन निरुन्धन्ति ॥३४॥

ये तु इह वा अन्ध अवट कुसूल गुहादिषु भूतानि निरुन्धन्ति तथा अमुत्र तेषु एव उपवेश्य सगरेण वह्निना धूमेन निरुन्धन्ति ॥३४॥

ये तु इह	जो कोई इस लोकमें	**तथा तेषु एव**	वैसे ही उन्हीं स्थानोंमें
अन्ध अवट	अँधेरी खत्तियों,		
कुसूल	कोठों	**उपवेश्य**	प्रवेश कराके
वा गुहादिषु	अथवा गुफादिमें	**सगरेण**	विषैले
भूतानि	प्राणियोंको	**वह्निना धूमेन**	अग्नि-धूममें
निरुन्धन्ति	बन्द कर देते हैं	**निरुन्धन्ति**	घुटने डालते हैं ॥३४
अमुत्र	परलोकमें		

यस्त्विह वा अतिथीनभ्यागतान् वा गृहपतिरसकृदुपगत-मन्युर्दिधक्षुरिव पापेन चक्षुषा निरीक्षते तस्य चापि निरये पापदृष्टेरक्षिणी वज्रतुण्डा गृध्राः कङ्ककाकवटादयः प्रसह्योरुबलादुत्पाटयन्ति ॥३५॥

यः तु इह वा अतिथीन् अभ्यागतान् वा गृहपतिः असकृत् उपगत-मन्युः दिधक्षुः इव पापेन चक्षुषा निरीक्षते तस्य च अपि निरये पापदृष्टेः अक्षिणी वज्रतुण्डा गृध्राः कङ्क काक वट आदयः प्रसह्य उरु बलात् उत्पाटयन्ति ॥३५॥

यः तु वा	जो कोई भी
इह	इस लोकमें
गृहपतिः	गृहस्थ
अतिथीन्	अतिथिको
वा अभ्यागतान्	अथवा अभ्यागतको*
असकृत्	बार-बार
उपगतमन्युः	क्रोधमें भरकर
दिधक्षुः इव	मानो जला देगा इस प्रकार
पापेन चक्षुषा	पाप दृष्टिसे
निरीक्षते	देखता है,
तस्य च अपि	उसके भी
पापदृष्टेः	पाप-दृष्टि वालेके
अक्षिणी निरये	नेत्र नरकमें
वज्रतुण्डा	वज्रके समान चोंचवाले
गृधाः कङ्क	गोध, कंक,
काक वट	कौए, बटेर
आदयः	आदि
प्रसह्य बलात्	अत्यन्त बलात्कार से
उत्पाटयन्ति	उखाड़ (निकाल) लेते हैं ॥३५॥

यस्त्विह वा आढ्याभिमतिरहङ्कृतिस्तिर्यक्प्रेक्षणः सर्वतोऽभिविशङ्की अर्थव्ययनाशचिन्तया परिशुष्यमाणहृदयवदनो निर्वृतिमनवगतो ग्रह इवार्थमभिरक्षति स चापि प्रेत्य तदुत्पादनोत्कर्षणसंरक्षणशमलग्रहः सूचीमुखे नरके निपतति यत्र ह वित्तग्रहं पापपुरुषं धर्मराजपुरुषा वायका इव सर्वतोऽङ्गेषु सूत्रैः परिवयन्ति ॥३६॥

यः तु इह वा आढ्याभिमतिः अहङ्कृतिः तिर्यक् प्रेक्षणः सर्वतः अभिविशङ्की अर्थव्ययनाश चिन्तया परिशुष्यमाण हृदयवदनः निर्वृति अनवगतःग्रह इव अर्थ अभिरक्षति स च अपि प्रेत्य तत् उत्पादन उत्कर्षण संरक्षण शमल ग्रहः सूचीमुखे नरके निपतति यत्र ह वित्तग्रहं पापपुरुषं धर्मराजपुरुषा वायका इव सर्वतः अङ्गेषु सूत्रैः परिवयन्ति ॥३६॥

---

* बिना सूचना अचानक आये अपरिचितको अतिथि कहते हैं और परिचित, सम्बन्धी सूचना देकर या बिना सूचना आवें तो अभ्यागत कहे जाते हैं; किन्तु भिक्षुक अतिथि या अभ्यागत नहीं माना जाता।

यः तु वा	जो कोई भी
इह आढ्याभिमतिः	इस लोकमें अपनेको धनी माननेवाला
अहङ्कृतिः	अहंकारी
तिर्यक् प्रेक्षणः	टेढी आंखसे देखनेवाला
सर्वतः	सब
अभिविशङ्की	ओरसे सबपर सन्देह करनेवाला,
अर्थव्ययनाश	धनके खर्च या नाशको
चिन्तया	चिन्तासे
परिशुष्यमाण	सूखते
हृदयवदनः	चित्त और मुखसे
निर्वृतिं	चैन न
अनवगतः	पाकर
ग्रह इव अर्थं	यक्षकी भांति धनको
अभिरक्षति	रक्षा किया करता है,
स च अपि प्रेत्य	वह भी मरकर
तत् उत्पादन	उस (धन) के उपार्जन,
उत्कर्षण	बढ़ाने और
संरक्षण	रक्षणमें
शमलग्रह	हुए पापोंसे
सूचीमुखे नरके	सूची मुख नरकमें
निपतति	गिरता है,
यत्र ह वित्तग्रहं	जहां कि (उस) अर्थ-पिशाच
पापपुरुषं	पापी-पुरुषके
सर्वतः अङ्गेषु	सभी अंगोंको
वायका इव	दर्जीकी भांति
धर्मराजपुरुषा	यमराजके सेवक
सूत्रैः परिवयन्ति	धागेसे सीते हैं ॥३६

एवंविधा नरका यमालये सन्ति शतशः सहस्रशस्तेषु सर्वेषु च सर्व एवाधर्मवर्तिनो ये केचिदिहोदिता अनुदिताश्चावनिपते पर्यायेण विशन्ति तथैव धर्मानुवर्तिन इतरत्र इह तु पुनर्भवे त उभयशेषाभ्यां निविशन्ति ॥३७॥

एवं विधा नरकः यम आलये सन्ति शतशः सहस्रशः तेषु सर्वेषु च सर्व एव अधर्म वर्तिनः ये केचित् इह उदिता अनुदिताः च अवनिपते पर्यायेण विशन्ति तथा एव धर्म अनुवर्तिनः इतरत्र इह तु पुनः भवे त उभय शेषाभ्यां निविशन्ति ॥३७॥

अवनिपते	राजन् !
एवं विधा	इस प्रकारके
नरकाः	नरक
यम आलये	यमलोकमें
शतशः	सैकड़ों,
सहस्रशः सन्ति	हजारों हैं,

तेषु सर्वेषु च	उन सबमें ही
ये केचित् इह	जो कोई यहां
उदिता	बतलाते गये,
च अनुदिताः	और नहीं बतलाये गये
सर्व एव अधर्म	सभी अधर्म
वर्तिनः	करनेवाले
पर्यायेण	बारी-बारीसे
विशन्ति	जाते हैं
तथा एव	इसी प्रकार
धर्म अनुवर्तिनः	धर्म करनेवाले
इतरत्र	दूसरी ओर (स्वर्गादिमें जाते हैं)
पुनः इह तु भवे	फिर इस लोकमें जन्म लेनेवाले
त उभय	उन दोनों
शेषाभ्यां	(पाप-पुण्य) के बचे भागसे
निविशन्ति	आते हैं ॥३७॥

निवृत्तिलक्षणमार्ग आदावेव व्याख्यातः ॥ एतावानेवाण्डकोशो यश्चतुर्दशधा पुराणेषु विकल्पित उपगीयते यत्तद्भगवतो नारायणस्य साक्षान्महापुरुषस्य स्थविष्ठं रूपमात्ममायागुणमयमनुवर्णितमादृतः पठति शृणोति श्रावयति स उपगेयं भगवतः परमात्मनोऽग्राह्यमपि श्रद्धाभक्तिविशुद्धबुद्धिर्वेद ॥३८॥

निवृत्ति लक्षण मार्गः आदाः एव व्याख्यातः एतावान् एव अण्डकोशः यः चतुर्दशधा पुराणेषु विकल्पित उपगीयते यत् तद् भगवतः नारायणस्य साक्षात् महापुरुषस्य स्थविष्ठं रूपं आत्ममाया गुणमयं अनुवर्णितं आदृतः पठति शृणोति श्रावयति स उपगेयं भगवतः परमात्मनः अग्राह्यं अपि श्रद्धा भक्ति विशुद्ध बुद्धिः वेद ॥३८॥

निवृत्ति लक्षण	निवृत्तिरूप
मार्गः आदाः एव	मार्ग पहिले ही
व्याख्यातः	बतलाया गया है।
एतावान् एव	इतना ही
अण्डकोशः	ब्रह्माण्ड है
यः पुराणेषु	जो पुराणोंमें
चतुर्दशधा	चौदह
विकल्पित	लोकोंके रूपमें
उपगीयते	वर्णन किया जाता है,
यत् तद्	जो कि
साक्षात्	साक्षात्
महापुरुषस्य	परमपुरुष
भगवतः	भगवान्
नारायणस्य	नारायणके

आत्ममाया	अपनी मायाके
गुणमयं	गुणोंसे बना
स्थविष्ठं रूपं	स्थूल रूपके
अनुवर्णितं	वर्णनको
आदृतः पठति	आदर पूर्वक पढ़ता है,
शृणोति	सुनता है,
श्रावयति	सुनाता है,
स उपगेयं	वह शास्त्र वर्णित
परमात्मनः	परमात्माके
अग्राह्यं अपि	अग्राह्य स्वरूपको भी
श्रद्धा भक्ति	श्रद्धा भक्तिसे
विशुद्ध बुद्धिः	शुद्ध हुई बुद्धिसे
वेद	जान सकता है ॥३८

श्रुत्वा स्थूलं तथा सूक्ष्मं रूपं भगवतो यतिः ।
स्थूले निर्जितमात्मानं शनैः सूक्ष्मं धिया नयेदिति ॥३९॥

श्रुत्वा स्थूलं तथा सूक्ष्म रूपं भगवतः यतिः स्थूले निर्जितं आत्मानं शनैः सूक्ष्मं धिया नयेत् इति ॥३९॥

यतिः	यत्नशील
भगवतः	भगवान्के
स्थूलं तथा	स्थूल तथा
सूक्ष्म	सूक्ष्म
रूपं श्रुत्वा	रूपका (वर्णन) श्रवण करके
स्थूले	स्थूल रूपमें
निर्जितं आत्मानं	चित्त लग जानेपर
धिया शनैः	बुद्धिके द्वारा धीरे-धीरे
इति सूक्ष्मं नयेत्	इस प्रकार सूक्ष्ममें ले जाय ॥३९॥

भूद्वीपवर्षसरिदद्रिनभःसमुद्र-
पातालदिङ्नरकभागणलोकसंस्था ।
गीता मया तव नृपाद्भुतमीश्वरस्य
स्थूलं वपुः सकलजीवनिकायधाम ॥४०॥

भूद्वीप वर्ष सरित् अद्रि नभः समुद्र पाताल दिक् नरक भागण लोक संस्था गीता मया तव नृप अद्भुतं ईश्वरस्य स्थूलं वपुः सकल जीव निकाय धाम ॥४०॥

नृप	राजन् !	**सकल जीव**	सब जीव
भूद्वीप	पृथ्वीके द्वीप,	**निकाय**	समूहोंका
वर्ष सरित्	वर्ष, नदियां और	**धाम**	निवास-स्थान
अद्रि	पर्वत,	**ईश्वरस्य**	भगवान्‌के
नभः समुद्र	आकाश, समुद्र,	**स्थूलं**	विराट्
पाताल दिक्	पाताल, दिशाएँ,	**अद्भुतं वपुः**	अद्भुत रूपका
नरक भागण	नरक, ज्योति-	**मया**	मैंने
	मण्डल,	**तव गीता**	तुमसे वर्णन कर
लोक संस्था	लोकोंकी स्थितिरूपी		दिया ॥४०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यामष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे नरकानुवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

॥ इति पञ्चमः स्कन्धः समाप्तः ॥

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

॥ षष्ठ स्कन्ध ॥

अथ प्रथमोऽध्यायः

राजोवाच–

निवृत्तिमार्गः कथित आदौ भगवता यथा ।
क्रमयोगोपलब्धेन ब्रह्मणा यदसंसृतिः ॥१॥

निवृत्तिमार्गः कथितः आदौ भगवता यथा क्रमयोग उपलब्धेन ब्रह्मणा यत् असंसृतिः ॥१॥

भगवता	भगवन् आपने	**ब्रह्मणा**	ब्रह्माजी(के लोक)को
आदौ	पहिले	**उपलब्धेन**	प्राप्त करके
निवृत्तिमार्गः	निवृत्ति-मार्गका	**यत्**	जिनके द्वारा
कथितः	वर्णन किया	**असंसृतिः**	मोक्ष प्राप्त
यथा	जैसे		करता है ॥१॥
क्रमयोग	क्रमशः		

प्रवृत्तिलक्षणश्चैव त्रैगुण्यविषयो मुने ।
योऽसावलीनप्रकृतेर्गुणसर्गः पुनः पुनः ॥२॥

प्रवृत्ति लक्षणः च एव त्रैगुण्य विषयः मुने यः असाः अवलीन प्रकृतेः गुणसर्गः पुनः पुनः ॥२॥

मुने	मुनिवर !	**अलीन प्रकृतेः**	प्रकृतिका लय न
प्रवृत्ति लक्षणः	प्रवृत्ति स्वरूप		होनेसे
त्रैगुण्य विषयः	त्रिगुणोंके विषय	**पुनः पुनः**	बार-बार
	(स्वर्गादि)	**गुणसर्गः**	त्रिगुणमय संसारमें
एव च	का भी(वर्णन किया)		जन्मता है ॥२॥
यः असाः	(जिनमें) यह जीव		

अधर्मलक्षणा नाना नरकाश्चानुवर्णिताः ।
मन्वन्तरश्चव्याख्यात आद्यः स्वायम्भुवो यतः॥३॥

अधर्मलक्षणा नाना नरकाः च अनुवर्णिताः मन्वन्तरः च व्याख्यातः आद्यः स्वायम्भुवः यतः ॥३॥

अधर्मलक्षणा	अधर्मके (फलसे) मिलनेवाले	**यतः आद्यः**	जिसमें पहिले
		स्वायम्भुवः	स्वायम्भू मनु हुए
नाना	अनेक प्रकारके	**मन्वन्तरः च**	उस मन्वन्तरका भी
नरकाः च	नरकोंका भी	**व्याख्यातः**	वर्णन किया ॥३॥
अनुवर्णिताः	(आपने) वर्णन किया,		

प्रियव्रतोत्तानपदोर्वंशस्तच्चरितानि च ।
द्वीपवर्षसमुद्राद्रिनद्युद्यानवनस्पतीन् ॥४॥

प्रियव्रत उत्तानपदः वंशः तत् चरितानि च द्वीप वर्ष समुद्र अद्रि नदी उद्यान वनस्पतीन् ॥४॥

प्रियव्रत	प्रियव्रत तथा	**द्वीप वर्ष**	द्वीपों, वर्षों
उत्तानपदः	उत्तानपादके	**समुद्र अद्रि**	समुद्रों, पर्वतों,
वंशः	वंशका एवं	**नदी उद्यान**	नदियों, बगीचों
तत्	उनके	**वनस्पतीन्**	वृक्षोंका (वर्णन
चरितानि च	चरित्रोंका भी (वर्णन किया)		किया) ॥४॥

धरामण्डलसंस्थानं भागलक्षणमानतः ।
ज्योतिषां विवराणां च यथेदमसृजद्विभुः ॥५॥

धरामण्डल संस्थानं भाग लक्षण मानतः ज्योतिषां विवराणां च यथा इदं असृजत् विभुः ॥५॥

विभुः	सर्वव्यापक ईश्वरने	**संस्थानं**	स्थितिका
यथा इदं	जैसे इस संसारकी	**भाग लक्षण**	विभाग, लक्षण,
असृजत्	सृष्टि की (उस)	**मानतः**	परिमाणके साथ
धरामण्डल	भू-मण्डलकी		(वर्णन किया) ॥५॥
ज्योतिषां	ग्रह-नक्षत्रोंका		
च विवराणां	तथा पातालादि		
	भू-विवरोंका		

अधुनेह महाभाग यथैव नरकान्नरः ।
नानोग्रयातनान्नेयात्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥६॥

अधुना इह महाभाग यथा इव नरकात् नरः नाना उग्र यातनात् नेयात् तत् मे व्याख्यातुं अर्हसि ॥६॥

महाभाग	महाभाग !	**यातनात्**	यातनावाले
अधुना	इस समय	**नरकात्**	नरकोंसे
इह	इसी संसारमें	**नेयात्**	निकल (बच) सके
यथा इव	जैसे भी	**तत् मे**	वह मुझे (आपको)
नरः	मनुष्य	**व्याख्यातुं**	बतलाना
नाना उग्र	अनेक प्रकारकी	**अर्हसि**	चाहिए ॥६॥
	दारुण		

श्रीशुक उवाच—

न चेदिहैवापचितिं यथांहसः
कृतस्य कुर्यान्मनउक्तिपाणिभिः ।
ध्रुवं स वै प्रेत्य नरकानुपैति
ये कीर्तिता मे भवतस्तिग्मयातनाः ॥७॥

न चेत् इह एव अपचितिं यथा अंहसः कृतस्य कुर्यात् मन उक्ति पाणिभिः ध्रुवं स वै प्रेत्य नरकान् उपैति ये कीर्तिता मे भवतः तिग्म यातनाः ॥७॥

मन उक्ति	मन, वचन,
पाणिभिः	हाथसे,
कृतस्य	किये गये
यथा अंहसः	पापोंके अनुसार
इह एव	इस जीवनमें ही
चेत् अपचितिं	यदि प्रायश्चित
न कुर्यात्	नहीं कर लेता तो
वै स प्रेत्य	निश्चय वह मरकर
ये मे	जो मैंने
भवतः	तुमसे
तिग्म यातनाः	तीक्ष्ण यातनादायी
नरकान्	नरक
कीर्तिता	बतलाये हैं (उनमें)
ध्रुवं उपैति	निश्चित रूपसे जाता है ॥७॥

तस्मात्पुरैवाश्विह पापनिष्कृतौ
यतेत मृत्योरविपद्यताऽऽत्मना ।
दोषस्य दृष्ट्वा गुरुलाघवं यथा
भिषक् चिकित्सेत रुजां निदानवित् ॥८॥

तस्मात् पुरा एव आशु इह पाप निष्कृतौ यतेत मृत्योः अविपद्यता आत्मना दोषस्य दृष्ट्वा गुरुलाघवं यथा भिषक् चिकित्सेत रुजां निदानवित् ॥८॥

तस्मात्	इसलिए
मृत्योः	मृत्युसे और
आत्मना	शरीरके
अविपद्यता	रोगी होनेसे
पुरा एव	पहिले ही
आशु	शीघ्र
इह	इसी जीवनमें
दोषस्य	दोषका
गुरुलाघवं	भारी हल्कापन
दृष्ट्वा	देखकर (उसके अनुसार)
पाप निष्कृतौ	पापके प्रायश्चितका
यतेत	प्रयत्न करे,
यथा रुजां	जैसे रोगोंका
निदानवित्	निदान जाननेवाला
भिषक्	वैद्य
चिकित्सेत	चिकित्सा करता है ॥८॥

राजोवाच–

दृष्टश्रुताभ्यां यत्पापं जानन्नप्यात्मनोऽहितम् ।
करोति भूयो विवशः प्रायश्चित्तमथो कथम् ॥९॥

दृष्ट श्रुताभ्यां यत् पापं जानन् अपि आत्मनः अहितं करोति भूयः विवशः प्रायश्चितं अथो कथम् ॥९॥

दृष्ट	(राजदण्ड, निन्दादि) देखकर,	**भूयः**	पुनः
श्रुताभ्यां	(शास्त्रोंमें) सुनकर	**विवशः**	विवश होकर
यत् पापं	क्योंकि पापको	**करोति**	(उसे) करता है
आत्मनः	अपना	**अथो**	अतः उसका
अहितं	शत्रु	**प्रायश्चितं**	प्रायश्चित
जानन् अपि	जानता है, फिर भी	**कथम्**	कैसे हो सकता है ॥९॥

क्वचिन्निवर्ततेऽभद्रात्क्वचिच्चरति तत्पुनः ।
प्रायश्चित्तमतोऽपार्थं मन्ये कुञ्जरशौचवत् ॥१०॥

क्वचित् निवर्तते अभद्रात् क्वचित् चरति तत् पुनः प्रायश्चितं अतः अपार्थं मन्ये कुञ्जर शौचवत् ॥१०॥

क्वचित्	कभी	**कुञ्जर**	हाथीके
अभद्रात्	पापोंसे	**शौचवत्**	स्नानके समान
निवर्तते	निवृत्त हो जाता है,	**प्रायश्चित्तं**	प्रायश्चितको
क्वचित्	कभी	**अपार्थं मन्ये**	व्यर्थ मानता हूँ ॥१०॥
पुनः चरति	फिर करने लगता है,		
अतः	अतः		

श्रीशुक उवाच–

कर्मणा कर्मनिर्हारो न ह्यात्यन्तिक इष्यते ।
अविद्वदधिकारित्वात्प्रायश्चित्तं विमर्शनम् ॥११॥

कर्मणा कर्मनिर्हारः न हि आत्यन्तिक इष्यते अविद्वत् अधिकारित्वात् प्रायश्चित्तं विमर्शनम् ॥११॥

कर्मणा	कर्मके द्वारा	**अधिकारित्वात्**	अधिकारी होनेसे (कर्मरूप प्रायश्चित विधान है।)
हि	क्योंकि		
आत्यन्तिक	सम्पूर्ण रूपसे		
कर्मनिर्हारः	कर्मका निराकरण	**प्रायश्चित्तं**	(ठीक) प्रायश्चित तो)
न इष्यते	नहीं हो सकता		
अविद्वत्	अज्ञानी	**विमर्शनं**	तत्त्व-विचार ही है ॥११॥

नाश्नतः पथ्यमेवान्नं व्याधयोऽभिभवन्ति हि ।
एवं नियमकृद्राजन् शनैः क्षेमाय कल्पते ॥१२॥

न अश्नतः पथ्यं एव अन्नं व्याधयः अभिभवन्ति हि एवं नियमकृत् राजन् शनैः क्षेमाय कल्पते ॥१२॥

राजन्	राजन् !	**एवं**	इसी प्रकार
हि	क्योंकि	**नियमकृत्**	नियमोंका पालन करनेवाला
पथ्यं एव	पथ्य ही		
अन्नं	भोजन	**शनैः**	धीरे-धीरे
न अश्नतः	न करनेपर	**क्षेमाय**	कल्याण
व्याधयः	रोग	**कल्पते**	प्राप्त कर लेता है ॥१२॥
अभिभवन्ति	दबा लेते हैं		

तपसा ब्रह्मचर्येण शमेन च दमेन च ।
त्यागेन सत्यशौचाभ्यां यमेन नियमेन च ॥१३॥

तपसा ब्रह्मचर्येण शमेन च दमेन च त्यागेन सत्य शौचाभ्यां यमेन नियमेन च ॥१३॥

तपसा	तपस्या,	**त्यागेन**	त्यागसे,
ब्रह्मचर्येण	ब्रह्मचर्य पालन,	**सत्य शौचाभ्यां**	सत्य तथा पवित्रतासे,
च शमेन	तथा मनकी स्थिरता,	**यमेन**	यमों (अहिंसादि) के
		च नियमेन	तथा नियमोंके
च दमेन	और इन्द्रिय-दमन,		पालनसे ॥१३॥

देहवाग्बुद्धिजं धीरा धर्मज्ञाः श्रद्धयान्विताः ।
क्षिपन्त्यघं महदपि वेणुगुल्ममिवानलः ॥१४॥

देह वाक् बुद्धिजं धीरा धर्मज्ञाः श्रद्धया अन्विताः क्षिपन्ति अघं महत् अपि वेणुगुल्मं इव अनलः ॥१४॥

धर्मज्ञाः	धर्मको जाननेवाले,	महत् अघं अपि	भारी पापको भी
श्रद्धया अन्विताः	श्रद्धालु,	वेणुगुल्मं	बाँसके झुरमुटको
धीरा	धीर-पुरुष	अनलः इव	अग्निके समान
देह वाक्	शरीर, वाणी तथा	क्षिपन्ति	नष्ट कर देते हैं ॥१४
बुद्धिजं	बुद्धिसे उत्पन्न		

केचित्केवलया भक्त्या वासुदेवपरायणाः ।
अघं धुन्वन्ति कात्स्न्र्येन नीहारमिव भास्करः ॥१५॥

केचित् केवलया भक्त्या वासुदेव परायणाः अघं धुन्वन्ति कात्स्न्र्येन नीहारं इव भास्करः ॥१५॥

केचित्	कोई	नीहारं इव	जैसे कुहरेको
वासुदेव	भगवान् वासुदेव	कात्स्न्र्येन	पूर्णतः
परायणाः	परायण भक्त	अघं धुन्वन्ति	पापको नष्ट कर
केवलया भक्त्या	केवल भक्ति द्वारा		देते हैं ॥१५॥
भास्करः	सूर्य		

न तथा ह्यघवान् राजन् पूयेत तपआदिभिः ।
यथा कृष्णार्पितप्राणस्तत्पूरुषनिषेवया ॥१६॥

न तथा हि अघवान् राजन् पूयेत तप आदिभिः यथा कृष्ण अर्पित प्राणः तत् पूरुष निषेवया ॥१६॥

राजन्	राजन् !	अघवान्	पापी
हि	क्योंकि	तथा न पूयेत	वैसा पवित्र नहीं
तप आदिभिः	तपस्या आदिसे		होता,

यथा	जैसा	तत् पूरुष	उनके भक्तोंकी
कृष्ण अर्पित	श्रीकृष्णको अर्पित	निषेवया	सेवासे (होता
प्राणः	जीवन (व्यक्ति)		है) ॥१६॥

सध्रीचीनो ह्ययं लोके पन्थाः क्षेमोऽकुतोभयः ।
सुशीलाः साधवो यत्र नारायणपरायणाः ॥१७॥

सध्रीचीनः हि अयं लोके पन्थाः क्षेमः अकुतः भयः सुशीलाः साधवः यत्र नारायण परायणाः ॥१७॥

लोके हि	संसारमें क्योंकि	नारायण	नारायण
अयं क्षेमः	यह कल्याणका	परायणाः	परायण
अकुतः भयः	सर्वथा भय-रहित	सुशीलाः	सुशील
सध्रीचीनः	सर्वश्रेष्ठ	साधवः	साधु-पुरुष चलते
पन्थाः	मार्ग है,		हैं ॥१७॥
यत्र	जिसमें		

प्रायश्चित्तानि चीर्णानि नारायणपराङ्मुखम् ।
न निष्पुनन्ति राजेन्द्र सुराकुम्भमिवापगाः ॥१८॥

प्रायश्चित्तानि चीर्णानि नारायण पराङ्मुखं न निष्पुनन्ति राजेन्द्र सुरा कुम्भं इव आपगाः ॥१८॥

राजेन्द्र	राजेन्द्र !	नारायण	भगवान् नारायणसे
सुरा कुम्भं	शराबके घड़ेको	पराङ्मुखं	विमुखको
आपगाः इव	नदियोंके समान	निष्पुनन्ति न	पवित्र नहीं कर
चीर्णानि	किये गये		पाते ॥१८॥
प्रायश्चित्तानि	प्रायश्चित		

सकृन्मनः कृष्णपदारविन्दयो-
र्निवेशितं तद्गुणरागि यैरिह ।

न ते यमं पाशभृतश्च तद्भटान्
स्वप्नेऽपि पश्यन्ति हि चीर्णनिष्कृताः ॥१९॥

सकृत् मनः कृष्ण पदारविन्दयोः निवेशितं तद् गुणरागि यैः इह न ते यमं पाशभृतः च तत् भटान् स्वप्ने अपि पश्यन्ति हि चीर्ण निष्कृताः ॥१९

यैः	जिन लोगोंने	**निवेशितं**	प्रविष्ट कर दिया
इह	इस जीवनमें	**हि**	क्योंकि (उन्होंने)
तत् गुणरागि	उनके गुणोंके अनुरागी	**चीर्ण निष्कृताः**	समस्त प्रायश्चित कर लिए,
मनः	मनको	**स्वप्ने अपि ते**	स्वप्नमें भी वे
सकृत्	एक बार भी	**पाशभृतः ममं**	पाशधारी यमराजको
कृष्ण	श्रीकृष्णके	**च तद् भटान्**	तथा उनके दूतोंको
पदारविन्दयोः	चरणारविन्दमें	**न पश्यन्ति**	नहीं देखते ॥१९॥

अत्र चोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
दूतानां विष्णुयमयोः संवादस्तं निबोध मे ॥२०॥

अत्र च उदाहरन्ति इमं इतिहासं पुरातनं दूतानां विष्णु यमयोः संवादः तं निबोध मे ॥२०॥

अत्र च	इस विषयमें तो	**इतिहासं**	इतिहासका
विष्णु यमयोः	विष्णु और यमराज के	**इमं उदाहरन्ति**	यह उदाहरण दिया जाता है,
दूतानां संवादः	दूतोंकी बातचीतके	**तं मे**	उसे मुझसे
पुरातनं	प्राचीन	**निबोध**	सुनो ॥२०॥

कान्यकुब्जे द्विजः कश्चिद्दासीपतिरजामिलः ।
नाम्ना नष्टसदाचारो दास्याः संसर्गदूषितः ॥२१॥

कान्यकुब्जे द्विजः कश्चित् दासीपतिः अजामिलः नाम्ना नष्ट सदाचारः दास्याः संसर्ग दूषितः ॥२१॥

कान्यकुब्जे	कान्यकुब्ज (कन्नौज) में	दासीपतिः	दासीपति
		दास्याः संसर्ग	दासीके संसर्गसे
कश्चित्	कोई	दूषितः	दूषित
अजामिलः	अजामिल	नष्ट सदाचारः	सदाचार-भ्रष्ट
नाम्ना	नामका	द्विजः	ब्राह्मण था ॥२१॥

बन्ध्यक्षकैतवैश्चोर्यैर्गर्हितां वृत्तिमास्थितः ।
बिभ्रत्कुटुम्बमशुचिर्यातयामास देहिनः ॥२२॥

बन्दि अक्ष कैतवैः चोर्यैः गर्हितां वृत्तिं आस्थितः बिभ्रत् कुटुम्बं अशुचिः यातयामास देहिनः ॥२२॥

अशुचिः	वह अपवित्र	गर्हितां	निन्दिस
देहिनः	प्राणियोंको	वृत्तिं आस्थितः	आजीविका करता
बन्दि	बन्दी बनाकर	कुटुम्बं	अपने कुटुम्बका
यातयामास	पीड़ा देता था,	बिभ्रत्	पालन करता था ॥२२॥
अक्ष कैतवैः	जुएसे, धोखा-धड़ीसे,		
चोर्यैः	चोरीसे,		

एवं निवसतस्तस्य लालयानस्य तत्सुतान् ।
कालोऽत्यगान्महान् राजन्नष्टाशीत्यायुषः समाः ॥२३॥

एवं निवसतः तस्य लालयानस्य तत् सुतान् कालः अत्यगात् महान् राजन् अष्ट अशीति आयुषः समाः ॥२३॥

राजन्	राजन् !	आयुषः	आयुके
तस्य एवं	उसके इस प्रकार	अष्ट	अट्ठासी
निवसतः	निवास करते हुए,	आशीति समाः	वर्षका
तत्	उस (दासी) के	महान् कालः	महान् काल
सुतान्	पुत्रोंका	अत्यगात्	बीत गया ॥२३॥
लालयानस्य	लालन करते		

तस्य प्रवयसः पुत्रा दश तेषां तु योऽवमः ।
बालो नारायणो नाम्ना पित्रोश्च दयितो भृशम् ॥२४॥

तस्य प्रवयसः पुत्रा दश तेषां तु यः अवमः बालः नारायणः नाम्ना पित्रोः च दयितः भृशम् ॥२४॥

तस्य दश	उसके दस	बालः	बालक था,
पुत्रा	पुत्र	नाम्ना	(उसका) नाम
√प्रवयसः	√ बड़ी आयुके (हो गये) थे	नारायणः	नारायण था,
		पित्रोः च	पिताका भी
तेषां तु	उनमें तो	भृशं दयितः	अत्यन्त प्यारा
यः अवमः	जो (सबसे) छोटा		था ॥२४॥

स बद्धहृदयस्तस्मिन्नर्भके कलभाषिणि ।
निरीक्षमाणस्तल्लीलां मुमुदे जरठो भृशम् ॥२५॥

स बद्धहृदयः तस्मिन् अर्भके कलभाषिणि निरीक्षमाणः तत् लीलां मुमुदे जरठः भृशम् ॥२५॥

तस्मिन्	उस	तत् लीलां	उसके खेल
कलभाषिणि	मधुरभाषी	निरीक्षमाणः	देख देखकर
अर्भके	बालकमें	भृशं मुमुदे	बहुत आनन्दित
बद्धहृदयः	हृदय लगाये		होता था ॥२५॥
स जरठः	वह बूढ़ा (अजामिल)		

भुञ्जानः प्रपिबन् खादन् बालकस्नेहयन्त्रितः ।
भोजयन् पाययन्मूढो न वेदागतमन्तकम् ॥२६॥

भुञ्जानः प्रपिबन् खादन् बालक स्नेह यन्त्रितः भोजयन् पाययन् मूढः न वेद आगतं अन्तकम् ॥२६॥

बालक स्नेह	बालकके स्नेहसे	**पाययन्**	पिलानेमें लगा
यन्त्रितः	बँधा हुआ (वह)	**मूढः**	मूर्ख बना
भुञ्जानः	भोजन करते,	**अन्तकं**	कालको
प्रपिबन्	पीते,	**आगतं**	आया
खादन्	कुछ चबाते (समय)	**न वेद**	नहीं जान सका ॥२६
भोजयन्	(बालकको) खिलाने		

स एवं वर्तमानोऽज्ञो मृत्युकाल उपस्थिते ।
मतिं चकार तनये बाले नारायणाह्वये ॥२७॥

स एवं वर्तमानः अज्ञः मृत्युकाल उपस्थिते मतिं चकार तनये बाले नारायण आह्वये ॥२७॥

स अज्ञः	उस अज्ञानीने	**आह्वये**	नामक
एवं वर्तमानः	इसी प्रकार रहता हुआ,	**बाले तनये**	बालक पुत्रमें
मृत्युकाल	मरनेका समय	**मतिं चकार**	बुद्धि लगायी (उसीके सम्बन्धमें सोचने लगा) ॥२७॥
उपस्थिते	आनेपर		
नारायण	नारायण		

स पाशहस्तांस्त्रीन्दृष्ट्वा पुरुषान् भृशदारुणान् ।
वक्रतुण्डानूर्ध्वरोम्ण आत्मानं नेतुमागतान् ॥२८॥

स पाशहस्तान् त्रीन् दृष्ट्वा पुरुषान् भृशदारुणान् वक्रतुण्डान् ऊर्ध्वरोम्ण आत्मानं नेतुं आगतान् ॥२८॥

स	उसने	**वक्रतुण्डान्**	टेढ़े मुँह वाले
आत्मानं	अपनेको	**ऊर्ध्वरोम्ण**	खड़े रोमवाले
नेतुं आगतान्	लेनेको आये,	**त्रीन् पुरुषान्**	तीन पुरुषोंको
पाशहस्तान्	हाथोंमें फन्दा लिए	**दृष्ट्वा**	देखकर ॥२८॥
भृशदारुणान्	बहुत ही भयानक		

दूरे क्रीडनकासक्तं पुत्रं नारायणाह्वयम् ।
प्लावितेन स्वरेणोच्चैराजुहावाकुलेन्द्रियः ॥२९॥

दूरे क्रीडनक आसक्तं पुत्रं नारायण आह्वयं प्लावितेन स्वरेण उच्चैः आजुहाव आकुल इन्द्रियः ॥२९॥

दूरे	(वहांसे) दूर	**पुत्रं**	अपने पुत्रको
क्रीडनक	खिलौनेमें	**आकुल इन्द्रियः**	व्याकुल इन्द्रिय
आसक्तं	आसक्त (लगे)	**प्लावितेन स्वरेण**	दीर्घ स्वरसे
नारायण	नारायण	**उच्चैः**	जोरसे
आह्वयं	नामवाले	**आजुहाव**	पुकारा ॥२९॥

निशम्य म्रियमाणस्य ब्रुवतो हरिकीर्तनम् ।
भर्तुर्नाम महाराज पार्षदाः सहसाऽपतन् ॥३०॥

निशम्य म्रियमाणस्य ब्रुवतः हरिकीर्तनं भर्तुः नाम महाराज पार्षदाः सहसा अपतन् ॥३०॥

महाराज	महाराज !	**ब्रुवतः**	पुकारना
म्रियमाणस्य	मरते हुए का	**निशम्य**	सुनकर
हरिकीर्तनं	भगवन्नान-कीर्तन	**पार्षदाः**	भगवान्‌के पार्षद
भर्तुः नाम	(विशेषतः) अपने स्वामीका नाम	**सहसा**	अचानक
		अपतन्	झपट पड़े ॥३०॥

विकर्षतोऽन्तर्हृदयाद्दासीपतिमजामिलम् ।
यमप्रेष्यान् विष्णुदूता वारयामासुरोजसा ॥३१॥

विकर्षतः अन्तः हृदयात् दासीपतिम् अजामिलं यमप्रेष्यान् विष्णुदूता वारयामासुः ओजसा ॥३१॥

दासीपतिम्	दासीके पति	**यमप्रेष्यान्**	यमराजके दूतोंको
अजामिलं	अजामिल (के सूक्ष्म-शरीर) को	**विष्णुदूता**	भगवान् विष्णुके दूतोंने
अन्तः हृदयात्	हृदयके भीतरसे	**ओजसा**	बलपूर्वक
विकर्षतः	खींचते हुए	**वारयामासुः**	रोक दिया ॥३१॥

ऊचुर्निषेधितास्तांस्ते वैवस्वतपुरःसराः ।

उचुः निषेधिताः तान् ते वैवस्वतपुरः सराः

ते	वे	**निषेधिताः**	रोके जानेपर
वैवस्वतपुरः सराः	यमराजके आगे चलनेवाले (दूत)	**तान् उचुः**	उन विष्णु-दूतोंसे बोले

*यमदूता ऊचुः**

के यूयं प्रतिषेद्धारो धर्मराजस्य शासनम् ॥३२॥

के यूयं प्रतिषेद्धारः धर्मराजस्य शासनम् ॥३२॥

धर्मराजस्य	धर्मराजके	**यूयं के**	आप लोग कौन हैं ? ॥३२॥
शासनं	शासन (आदेश) को		
प्रतिषेद्धारः	रोकनेवाले		

कस्य वा कुत आयाताः कस्मादस्य निषेधथ ।
किं देवा उपदेवा वा यूयं किं सिद्धसत्तमाः ॥३३॥

कस्य वा कुत आयाताः कस्मात् अस्य निषेधथ किं देवाः उपदेवा वा यूयं किं सिद्धसत्तमाः ॥३३॥

कस्य	किसके (सेवक) हैं ?	**किं यूयं देवाः**	क्या आप लोग देवता हैं ?
वा कुत	अथवा कहांसे		
आयाताः	आये हैं ?	**वा उपदेवा**	अथवा उपदेवता हैं ?
अस्य	इसे (ले जानेसे)		
कस्मात्	किस लिए	**किं सिद्धसत्तमाः**	क्या सिद्धोत्तम हैं ? ॥३३॥
निषेधथ	रोकते हैं ?		

सर्वे पद्मपलाशाक्षाः पीतकौशेयवाससः ।
किरीटिनः कुण्डलिनो लसत्पुष्करमालिनः ॥३४॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

सर्वे पद्म पलाश अक्षाः पीतकौशेयवाससः किरीटिनः कुण्डलिनः लसत् पुष्कर मालिनः ॥३४॥

सर्वे	(आप) सब	किरीटिनः	मुकुटधारी,
पद्मपलाश-	कमल-दल	कुण्डलिनः	कुण्डल पहिने
अक्षाः	लोचन,	पुष्कर मालिनः	कमल-मालासे
पीतकौशेय-	पीला रेशमी	लसत्	सुशोभित हैं ॥३४॥
वाससः	वस्त्र पहिने,		

सर्वे च नूत्नवयसः सर्वे चारुचतुर्भुजाः ।
धनुर्निषङ्गासिगदाशङ्खचक्राम्बुजश्रियः ॥३५॥

सर्वे च नूत्नवयसः सर्वे चारु चतुर्भुजाः धनुः निषङ्ग असि गदा शङ्ख चक्र अम्बुज श्रियः ॥३५॥

सर्वे च	सभी	असि गदा	तलवार, गदा,
नूत्नवयसः	नयी अवस्थावाले,	शङ्ख चक्र	शङ्ख, चक्र,
सर्वे चारु	सब सुन्दर चार	अम्बुज श्रियः	कमलसे शोभित
चतुर्भुजाः	भुजाओंके		हैं ॥३५॥
धनुः निषङ्ग	धनुष, तरकस,		

दिशो वितिमिरालोकाः कुर्वन्तः स्वेन रोचिषा ।
किमर्थं धर्मपालस्य किङ्करान्नो निषेधथ ॥३६॥

दिशः वितिमिर आलोकाः कुर्वन्तः स्वेन रोचिषा किं अर्थं धर्मपालस्य किङ्करान् नः निषेधथ ॥३६॥

स्वेन रोचिषा	अपनी कान्तिसे	धर्मपालस्य	धर्मराजके
दिशः	दिशाओंको	नः किङ्करान्	हम सेवकोंको
वितिमिर	अन्धकारहीन	किं अर्थं	किस प्रयोजनसे
आलोकाः	प्रकाशपूर्ण	निषेधथ	रोक रहे हैं ॥३६॥
कुर्वन्तः	कर रहे हैं,		

श्रीशुक उवाच—

इत्युक्ते यमदूतैस्तैर्वासुदेवोक्तकारिणः ।
तान् प्रत्यूचुः प्रहस्येदं मेघनिर्ह्रादया गिरा ॥३७॥

इति उक्ते यमदूतैः तैः वासुदेव उक्तकारिणः तान् प्रति ऊचुः प्रहस्य इदं मेघ निर्ह्रादया गिरा ॥३७॥

तैः यमदूतैः	उन यमदूतों द्वारा	**तान् प्रति**	उनसे
इति उक्ते	ऐसा कहनेपर	**मेघ निर्ह्रादया**	मेघ गर्जनके समान
वासुदेव	भगवान् वासुदेवके	**गिरा**	वाणीसे
उक्तकारिणः	आज्ञाकारी	**इदं ऊचुः**	यह बोले ॥३७॥
प्रहस्य	हंसकर		

यूयं वै धर्मराजस्य यदि निर्देशकारिणः ।
ब्रूत धर्मस्य नस्तत्त्वं यच्च धर्मस्य लक्षणम् ॥३८॥

यूयं वै धर्मराजस्य यदि निर्देश कारिणः ब्रूत धर्मस्य नः तत्त्वं यत् च धर्मस्य लक्षणम् ॥३८॥

यदि यूयं	यदि तुम लोग	**धर्मस्य तत्त्वं**	धर्मका तत्त्व
वै	सचमुच	**च यत्**	और जो
धर्मराजस्य	धर्मराजके	**धर्मस्य लक्षणं**	धर्मका लक्षण है,
निर्देश कारिणः	आज्ञापालक हो तो	**ब्रूत**	बतलाओ ॥३८॥
नः	हमको		

कथंस्विद् ध्रियते दण्डः किं वास्य स्थानमीप्सितम् ।
दण्ड्याः किं कारिणः सर्वे आहोस्वित्कतिचिन्नृणाम् ॥३९॥

कथं स्वित् ध्रियते दण्डः किं वा अस्य स्थानं ईप्सितं दण्ड्याः किं कारिणः सर्वे आहोस्वित् कतिचित् नृणाम् ॥३९॥

दण्डः कथं स्वित्	दण्ड किस प्रकार	कारिणः	कर्म करनेवाले
ध्रियते	दिया जाता है ?	दण्ड्याः	दण्डनीय हैं,
वा किं	अथवा कौन	आहोस्वित्	अथवा
अस्य ईप्सितं	इसका अभीष्ट	नृणां कतिचित्	मनुष्योंमें कुछ
स्थानं	स्थान (पात्र) है ?		(दंडनीय हैं) ॥३६॥
किं सर्वे	क्या सब		

यमदूता ऊचुः—

वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः ।
वेदो नारायणः साक्षात्स्वयम्भूरिति शुश्रुम ॥४०॥

वेदप्रणिहितः धर्मः हि अधर्मः तत् विपर्ययः वेदः नारायणः साक्षात् स्वयम्भूः इति शुश्रुम ॥४०॥

वेदप्रणिहितः	वेदोंमें जिनका विधान है वे	हि	क्योंकि
धर्मः	(कर्म) धर्म हैं,	वेदः	वेद
तत् विपर्ययः	उनसे उलटे (वेदोंमें जिनका निषेध है)	साक्षात्	साक्षात्
अधर्मः	(वे) अधर्म हैं ।	नारायणः	नारायण
		स्वयम्भू	स्वयं प्रकट हैं ।
		इति	ऐसा
		शुश्रुम	हम सुनते हैं ॥४०॥

येन स्वधाम्न्यमी भावा रजः सत्त्वतमोमयाः ।
गुणनामक्रियारूपैर्विभाव्यन्ते यथातथम् ॥४१॥

येन स्वधाम्नि अमी भावाः रजः सत्त्व तमः मयाः गुण नाम क्रिया रूपैः विभाव्यन्ते यथातथम् ॥४१॥

येन स्वधाम्नि	जिन स्वयं प्रकाश (वेदों) द्वारा	णनागुम	गुण, नाम
अमी	ये (संसारके)	क्रिया रूपैः	क्रियाके रूपमें
रजः सत्त्व	राजसिक सात्त्विक	यथातथं	ठीक-ठीक
तमः मयाः	तामसिक	विभाव्यन्ते	निश्चित किए जाते हैं ॥४१॥
भावाः	भाव		

सूर्योऽग्निः खं मरुद्गावः सोमः सन्ध्याहनी दिशः ।
कं कुः कालो धर्म इति ह्यते दैह्यस्य साक्षिणः ॥४२॥

सूर्यः अग्निः खं मरुत् गावः सोमः सन्ध्या अहनी दिशः कं कुः कालः धर्म इति हि एते दैह्यस्य साक्षिणः ॥४२॥

सूर्यः अग्निः	सूर्य, अग्नि,	**कुः कालः**	पृथ्वी, काल और
खं मरुत्	आकाश, वायु	**धर्म इति**	धर्म, इस प्रकार
गावः सोमः	इन्द्रियां, चन्द्रमा,	**हि एते**	क्योंकि इतने
सन्ध्या अहनी	सन्ध्या, रात, दिन,	**दैह्यस्य**	देहधारीके (कर्मोंके)
दिशः कं	दिशाएँ, जल,	**साक्षिणः**	साक्षी हैं ॥४२॥

एतैरधर्मो विज्ञातः स्थानं दण्डस्य युज्यते ।
सर्वे कर्मानुरोधेन दण्डमर्हन्ति कारिणः ॥४३॥

एतैः अधर्मः विज्ञातः स्थानं दण्डस्य युज्यते सर्वे कर्म अनुरोधेन दण्डं अर्हन्ति कारिणः ॥४३॥

एतैः	इनके द्वारा (जब)	**कर्म अनुरोधेन**	कर्माग्रहके कारण
अधर्मः विज्ञातः	अधर्म जाना जाता है,	**सर्वे कारिणः**	सब कर्मशील (कर्मानुसार)
दण्डस्य	(तब) दण्डके	**दण्डं अर्हन्ति**	दण्डनीय होते हैं ॥४३॥
स्थानं	पात्रका		
युज्यते	निर्णय होता है,		

सम्भवन्ति हि भद्राणि विपरीतानि चानघाः ।
कारिणां गुणसङ्गोऽस्ति देहवान् न ह्यकर्मकृत् ॥४४॥

सम्भवन्ति हि भद्राणि विपरीतानि च अनघाः कारिणां गुण सङ्गः अस्ति देहवान् न हि अकर्मकृत् ॥४४॥

अनघाः	निष्पापो,
हि भद्राणि	क्योंकि पुण्य
च विपरीतानि	और विपरीत (पाप) भी
सम्भवन्ति	होते ही हैं।
हि कारिणां	क्योंकि कर्म करने-वालेका
गुणसंगः अस्ति	गुणोंसे सम्बन्ध रहता ही है (और)
देहवान्	शरीरधारी
अकर्मकृत् न	कर्म किये बिना नहीं रह सकता ॥४४॥

येन यावान् यथाधर्मो धर्मो वेह समीहितः ।
स एव तत्फलं भुङ्क्ते तथा तावदमुत्र वै ॥४५॥

येन यावान् यथा अधर्मः धर्मः वा इह समीहितः स एव तत् फलं भुङ्क्ते तथा तावत् अमुत्र वै ॥४५॥

येन यावान्	जिसने, जितना,
यथा	जैसे
अधर्मः	अधर्म
वा धर्मः	अथवा धर्म
इह समीहितः	इस लोकमें किया है,
अमुत्र	परलोकमें
स एव	वही
तत् फलं वै	उसका फल ही
तथा तावत्	वैसे उतना
भुङ्क्ते	भोगता है ॥४५॥

यथेह देवप्रवरास्त्रैविध्यमुपलभ्यते ।
भूतेषु गुणवैचित्र्यात्तथान्यत्रानुमीयते ॥४६॥

यथा इह देव प्रवराः त्रैविध्यं उपलभ्यते भूतेषु गुणवैचित्र्यात् तथा अन्यत्र अनुमीयते ॥४६॥

देव प्रवराः	देव श्रेष्ठो !
यथा इह	जैसे इस लोकमें
भूतेषु	प्राणियोंमें
गुणवैचित्र्यात्	गुणोंकी विचित्रताके कारण
त्रैविध्यं	त्रिविधता (सात्त्विक, राजस, तामस स्वभाव प्राणी)
उपलभ्यते	मिलते हैं,
तथा अन्यत्र	वैसे ही दूसरे लोकोंमें भी
अनुमीयते	अनुमान कर लिया जाता है ॥४६॥

वर्तमानोऽन्ययोः कालो गुणाभिज्ञापको यथा ।
एवं जन्मान्ययोरेतद्धर्माधर्मनिदर्शनम् ॥४७॥

वर्तमानः अन्ययोः कालः गुण अभिज्ञापकः यथा एवं जन्मनि अयोः एतत् धर्म अधर्म निदर्शनम् ॥४७॥

वर्तमानः कालः	वर्तमान काल	**एवं एतत्**	इसी प्रकार इस (प्राणी) का
यथा अन्ययोः	जैसे दूसरे (भूत भविष्य) के	**धर्म अधर्म**	पाप-पुण्य
गुण	गुणोंका	**अयोः जन्मनि**	अगले-पिछले जन्मोंका
अभिज्ञापकः	सूचक है,	**निदर्शनं**	सूचक है ॥४७॥

मनसैव पुरे देवः पूर्वरूपं विपश्यति ।
अनुमीमांसतेऽपूर्वं मनसा भगवानजः ॥४८॥

मनसा एव पुरे देवः पूर्वरूपं विपश्यति अनुमीमांसते अपूर्वं मनसा भगवान् अजः ॥४८॥

भगवान्	ऐश्वर्यशाली	**विपश्यति**	देख लेते हैं और
अजः	अजन्मा	**मनसा**	मनसे ही
पुरे देवः	सबके हृदयमें विराजमान् (हमारे स्वामी)	**अपूर्वं**	(उसके अगले) प्रारब्धका
मनसा एव	मनसे ही	**अनुमीमांसते**	विचार कर लेते हैं ॥४८॥
पूर्वरूपं	(प्राणीका) पहिला रूप		

यथाज्ञस्तमसा युक्त उपास्ते व्यक्तमेव हि ।
न वेद पूर्वमपरं नष्टजन्मस्मृतिस्तथा ॥४९॥

यथा अज्ञः तमसा युक्तः उपास्ते व्यक्तं एव हि न वेद पूर्वं अपरं नष्ट जन्मस्मृतिः तथा ॥४९॥

यथा अज्ञः	जैसे अज्ञानी पुरुष	पूर्वं अपरं	(सोनेसे) पहिले और (जागनेके) बादको
तमसा युक्तः	निद्रायुक्त (स्वप्न देखते समय)	न वेद	नहीं जानता
व्यक्तं एव हि	(उस समयके) व्यक्त देहको ही	तथा	ऐसे ही
उपास्ते	अपना स्वीकार करता है,	जन्मस्मृतिः	(दूसरे) जन्मोंकी स्मृति
		नष्ट	नष्ट हो जाती है ॥४६॥

पञ्चभिः कुरुते स्वार्थान् पञ्च वेदाथ पञ्चभिः ।
एकस्तु षोडशेन त्रीन् स्वयं सप्तदशोऽश्नुते ॥५०॥

पञ्चभिः कुरुते स्व अर्थान् पञ्च वेद अथ पञ्चभिः एकः तु षोडशेन त्रीन् स्वयं सप्तदशः अश्नुते ॥५०॥

पञ्चभिः	पांच (कर्मेन्द्रियों) से (पुरुष)	षोडशेन	सोलहवें (मन) के द्वारा
स्व अर्थान्	अपने प्रयोजन (पूर्ण)	स्वयं एकः तु	स्वयं एक (जीव) तो
कुरुते	करता है,	सप्तदशः	सत्रहवां है जो
अथ पञ्चभिः	और पांच (ज्ञानेन्द्रियों) से	त्रीन्	तीनों (गुणों) को
पञ्च वेद	पांच (रूप रसादि विषयों) को जानता है,	अश्नुते	भोगता है ॥५०॥

तदेतत् षोडशकलं लिङ्गं शक्तित्रयं महत् ।
धत्तेऽनु संसृतिं पुंसि हर्षशोकभयार्तिदाम् ॥५१॥

तत् एतत् षोडशकलं लिङ्गं शक्तित्रयं महत् धत्ते अनु संसृतिं पुंसि हर्ष शोक भय आर्तिदाम् ॥५१॥

तत् एतत्	वह यह
षोडशकलं	सोलह कलावाला
शक्तित्रयं	(सत्त्व आदि) तीन शक्तियों वाला
लिङ्ग महत्	लिङ्ग शरीर अनादि है,
पुंसि	(यही) पुरुषके लिए
हर्ष शोक	हर्ष, शोक,
भय आर्तिदं	भय, पीड़ा देनेवाले
अनु संसृतिं	बार-बार जन्म-मरण चक्रको
धत्ते	धारण करता है ॥५१॥

देह्यज्ञोऽजितषड्वर्गो नेच्छन् कर्माणि कार्यते ।
कोशकार इवात्मानं कर्मणाऽऽच्छाद्य मुह्यति ॥५२॥

देहि अज्ञः अजित षड्वर्गः न इच्छन् कर्माणि कार्यते कोशकार इव आत्मानं कर्मणा आच्छाद्य मुह्यति ॥५२॥

अज्ञः देही	अज्ञानी जीव
षड्वर्गः	षड्वर्ग (काम-क्रोध, लोभ मोह, मद, मत्सर) को
अजित	न जीतकर
न इच्छन्	न चाहनेपर भी
कर्माणि	कर्मोंको
कार्यते	करना पड़ता है,
कोशकार इव	रेशमके कीड़ेकी भांति
आत्मानं	अपनेको
कर्मणा आच्छाद्य	कर्मोंसे ढककर
मुह्यति	मोहित हो जाता है ॥५२॥

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत ।
कार्यते ह्यवशः कर्म गुणैः स्वाभाविकैर्बलात् ॥५३॥

न हि कश्चित् क्षणं अपि जातु तिष्ठति अकर्मकृत कार्यते हि अवशः कर्म गुणैः स्वाभाविकैः बलात् ॥५३॥

हि	क्योंकि
कश्चित् जातु	कोई जन्म लेनेवाला
क्षणं अपि	एक क्षण भी
अकर्मकृत	बिना कर्म किये
न तिष्ठति	नहीं रहता,
हि स्वाभाविकैः	क्योंकि नैसर्गिक
गुणैः बलात्	गुणोंसे बलपूर्वक
अवशः	विवश करके
कर्म कार्यते	कर्म कराया जाता है ॥५३॥

लब्ध्वा निमित्तमव्यक्तं व्यक्ताव्यक्तं भवत्युत ।
यथायोनि यथाबीजं स्वभावेन बलीयसा ॥५४॥

लब्ध्वा निमित्तं अव्यक्तं व्यक्त अव्यक्तम् भवति उत यथा योनि यथा बीजं स्वभावेन बलीयसा ॥५४॥

अव्यक्तं	अव्यक्त (पूर्व जन्मके संस्कारों) के	**स्वभावेन**	बलवान स्वभावके अनुसार
निमित्तं लब्ध्वा	निमित्तको पाकर	**अव्यक्तं**	अव्यक्त (लिंग शरीर)
यथा योनि	माताके अनुरूप		
उत यथा बीजं	अथवा पिताके अनुरूप	**व्यक्त भवति**	व्यक्त (स्थूल देह) हो जाता है ॥५४॥
बलीयसा	(अथवा) अपने		

एष प्रकृतिसङ्गेन पुरुषस्य विपर्ययः ।
आसीत् स एव नचिरादीशसङ्गाद्विलीयते ॥५५॥

एष प्रकृति सङ्गेन पुरुषस्य विपर्ययः आसीत् स एव न चिरात् ईश सङ्गात् विलीयते ॥५५॥

एष पुरुषस्य विपर्ययः	यह पुरुषकी उलटी दशा	**ईश सङ्गात्**	ईश्वरमें आसक्ति होनेसे
प्रकृति सङ्गेन	प्रकृतिमें आसक्तिसे	**न चिरात्**	अविलम्ब
आसीत्	है ।	**विलीयते**	लीन (नष्ट) हो जाती है ॥५५॥
स एव	वही		

अयं हि श्रुतसम्पन्नः शीलवृत्तगुणालयः ।
धृतव्रतो मृदुर्दान्तः सत्यवान्मन्त्रविच्छुचिः ॥५६॥

अयं हि श्रुतसम्पन्नः शील वृत्त गुण आलयः धृतव्रतः मृदुः दान्तः सत्यवान् मन्त्रवित् शुचिः ॥५६॥

अयं हि	यह (आजामिल) तो	धृतव्रतः	व्रतधारी,
श्रुतसम्पन्नः	शास्त्रज्ञान सम्पन्न,	मृदुः दान्तः	विनयी, जितेन्द्रिय
शील वृत्त	शील, सदाचार,	सत्यवान्	सत्यवादी,
गुण आलयः	गुणोंका निवास ही था,	मन्त्रवित्	मन्त्रवेत्ता,
		शुचिः	पवित्र था ॥५६॥

गुर्वग्न्यतिथिवृद्धानां शुश्रूषुर्निरहङ्कृतः ।
सर्वभूतसुहृत्साधुर्मितवागनसूयकः ॥५७॥

गुरु अग्नि अतिथि वृद्धानां शुश्रूषुः निरहङ्कृतः सर्वभूत सुहृत् साधुः मितवाक् अनसूयकः ॥५७॥

गुरु अग्नि	गुरु, अग्नि,	साधुः	सज्जन,
अतिथि वृद्धानां	अतिथि एवं वृद्धोंकी	मितवाक्	अल्पभाषी तथा
शुश्रूषुः	सेवा करनेवाला,	अनसूयकः	किसीके गुणमें दोष न देखने वाला था ॥५७॥
निरहङ्कृतः	अहंकारहीन,		
सर्वभूत सुहृत्	सब प्राणियोंका मित्र,		

एकदासौ वनं यातः पितृसन्देशकृद् द्विजः ।
आदाय तत आवृत्तः फलपुष्पसमित्कुशान् ॥५८॥

एकदा असौ वनं यातः पितृसन्देशकृत् द्विजः आदाय तत् आवृत्तः फल पुष्प समित् कुशान् ॥५८॥

पितृसन्देशकृत्	पिताका आज्ञा-पालक	तत् फल पुष्प	वहांसे फल, फूल,
असौ द्विजः	यह ब्राह्मण	समित् कुशान्	समिधाएँ और कुश
एकदा	एक बार	आदाय	लेकर
वनं यातः	वनमें गया,	आवृत्तः	लौट रहा था ॥५८॥

ददर्श कामिनं कञ्चिच्छूद्रं सह भुजिष्यया ।
पीत्वा च मधु मैरेयं मदाघूर्णितनेत्रया ॥५९॥

ददर्श कामिनं कञ्चित् शूद्रं सह भुजिष्यया पीत्वा च मधु मैरेयं मदाघूर्णित नेत्रया ॥५९॥

कञ्चित्	किसी	**मदाघूर्णित**	नशेसे घूमते
कामिनं शूद्रं	कामी शूद्रको	**नेत्रया**	नेत्रोंवाली
मैरेयं मधु	महुएकी शराब	**भुजिष्यया**	वेश्याके
पीत्वा च	पीकरके	**सह ददर्श**	साथ देखा ॥५९॥

मत्तया विश्लथन्नीव्या व्यपेतं निरपत्रपम् ।
क्रीडन्तमनु गायन्तं हसन्तमनयान्तिके ॥६०॥

मत्तया विश्लथत् नीव्या व्यपेतं निरपत्रपं क्रीडन्तं अनु गायन्तं हसन्तं अनया अन्तिके ॥६०॥

मत्तया	मतवाली	**अनया अन्तिके**	इसके पास ही
विश्लथत्	फिसलते हुए	**क्रीडन्तं**	खेलते हुए
नीव्या	कटि बन्धनसे	**अनु गायन्तं**	बीच-बीचमें गाता हुआ,
व्यपेतं	(वस्त्र) रहित (स्त्रीके साथ)	**हसन्तं**	हँसता था ॥६०॥
निरपत्रपं	निर्लज्ज (शूद्र)		

दृष्ट्वा तां कामलिप्तेन बाहुना परिरम्भिताम् ।
जगाम हृच्छयवशं सहसैव विमोहितः ॥६१॥

दृष्ट्वा तां कामलिप्तेन बाहुना परिरम्भितां जगाम हृच्छयवशं सहसा एव विमोहितः ॥६१॥

कामलिप्तेन	कामोद्दीपक (अंगरागादिसे) लिप्त	**तां दृष्ट्वा**	उस (वेश्या) को देखकर
बाहुना	(शूद्रकी) भुजाओंसे	**सहसा एव**	अचानक ही
परिरम्भितां	आलिंगित	**विमोहितः**	मोहित होकर
		हृच्छयवशं	कामके वश
		जगाम	हो गया ॥६१॥

स्तम्भयन्नात्मनाऽऽत्मानं यावत्सत्त्वं यथाश्रुतम् ।
न शशाक समाधातुं मनो मदनवेपितम् ॥६२॥

स्तम्भयन् आत्मना आत्मानं यावत् सत्त्वं यथा श्रुतं न शशाक समाधातुं मनः मदन वेपितम् ॥६२॥

यावत् सत्त्वं	जितना धैर्य था,	**आत्मानं**	अपनेको ही
यथा श्रुतं	जितना ज्ञान था (उसके अनुसार)	**स्तम्भयन्**	स्थिर करनेकी चेष्टा की,
मदन वेपितं	कामवेगसे चञ्चल	**समाधातुं**	किन्तु स्थिर करनेमें
मनः	मनको,	**शशाक न**	समर्थ नहीं
आत्मना	अपनी बुद्धिसे		हुआ ॥६२॥

तन्निमित्तस्मरव्याजग्रहग्रस्तो विचेतनः ।
तामेव मनसा ध्यायन् स्वधर्माद्विरराम ह ॥६३॥

तत् निमित्त स्मर व्याज ग्रह ग्रस्तः विचेतनः तां एव मनसा ध्यायन् स्वधर्मात् विरराम ह ॥६३॥

तत् निमित्त	उस (वेश्या) को निमित्त बनाकर	**तां एव मदसा ध्यायन्**	उसीका मनसे चिन्तन करता हुआ
व्याज	इसी बहाने		
स्मर ग्रह	काम पिशाच द्वारा	**स्वधर्मात्**	अपने धर्मसे
ग्रस्तः	पकड़ा जाकार	**विरराम ह**	उपरत (विमुख) हो गया ॥६३॥
विचेतनः	(उसकी) चेतना नष्ट हो गयी,		

तामेव तोषयामास पित्र्येणार्थेन यावता ।
ग्राम्यैर्मनोरमैः कामैः प्रसीदेत यथा तथा ॥६४॥

तां एव तोषयामास पित्र्येण अर्थेन यावता ग्राम्यैः मनोरमैः कामैः प्रसीदेत यथा तथा ॥६४॥

यावता	जितना भी	मनोरमैः	सुन्दर
पित्र्येण	पितकाकी	ग्राम्यैः कामैः	कामोपभोगकी सम्पत्तियोंसे
अर्थेन	सम्पत्ति थी (उससे)		
यथा	जैसे (वह वेश्या)	तां एव	उसीको
प्रसीदेत	प्रसन्न हो	तोषयामास	सन्तुष्ट किया ॥६४॥
तथा	उस प्रकारके		

विप्रां स्वभार्यामप्रौढां कुले महति लम्भिताम् ।
विससर्जाचिरात्पापः स्वैरिण्यापाङ्गविद्धधीः ॥६५॥

विप्रां स्वभार्यां अप्रौढां कुले महति लम्भितां विससर्ज अचिरात् पापः स्वैरिण्य अपाङ्ग विद्ध धीः ॥६५॥

स्वैरिण्य	(उस) स्वेच्छा चारिणीके	लम्भितां	आयी
		अप्रौढां	युवती
अपाङ्गः	कटाक्षसे	विप्रां	ब्राह्मणी
विद्ध धीः	बिंधा बुद्धि	स्वभार्यां	अपनी पत्नीको
पापः	(यह) पापी	अचिरात्	बहुत समयसे
महति कुले	बड़े कुलमें-से	विससर्ज	छोड़ रखा है ॥६५॥

यतस्ततश्चोपनिन्ये न्यायतोऽन्यायतो धनम् ।
बभारास्याः कुटुम्बिन्याः कुटुम्बं मन्दधीरयम् ॥६६॥

यतः ततः च उपनिन्ये न्यायतः अन्यायतः धनं बभार अस्याः कुटुम्बिन्याः कुटुम्बं मन्दधीः अयम् ॥६६॥

न्यायतः	न्याय पूर्वक या	अस्याः	इस
अन्यायतः	अन्यायसे	कुटुम्बिन्याः	बड़े कुटुम्ब वालीके
यतः ततः	इधर-उधर	कुटुम्बं	कुटुम्बका
च	चाहे जहांसे	बभार	भरण-पोषण कर रहा था ॥६६॥
धनं उपनिन्ये	धन उठा लाता था,		
अयं मन्दधीः	यह मन्द बुद्धि (इस प्रकार)		

यदसौ शास्त्रमुल्लङ्घ्य स्वैरचार्यार्यगर्हितः ।
अवर्तत चिरं कालमघायुरशुचिर्मलात् ॥६७॥

यत् असौ शास्त्रं उल्लङ्घ्य स्वैर आचार आर्य गर्हितः अवर्तत चिरं कालं अघायुः अशुचिः मलात् ॥६७॥

यत् असौ	क्योंकि इसने	**अवर्तत**	किया है (अतः)
शास्त्रं	शास्त्राज्ञाका	**मलात्**	दूषित कर्म (एवं अन्नसे)
उल्लंघ्य	उलंघन करके	**अघायुः**	इसका जीवन पापमय है,
आर्य गर्हितः	श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा निन्दित	**अशुचिः**	(यह) अपवित्र है ॥६७॥
स्वैर आचार	स्वच्छन्दाचरण		
चिरं कालं	बहुत समय तक		

ततः एनं दण्डपाणेः सकाशं कृतकिल्बिषम् ।
नेष्यामोऽकृतनिर्वेशं यत्र दण्डेन शुद्ध्यति ॥६८॥

ततः एनं दण्डपाणेः सकाशं कृतकिल्बिषं नेष्यामः अकृत निर्वेशं यत्र दण्डेन शुद्ध्यति ॥६८॥

अकृत निर्वेशं	(अपने) पापोंका प्रायश्चितन करनेवाले	**कृतकिल्बिषं**	पाप करनेवाले (इसे) को
एनं	इनको	**नेष्यामः**	(हम) ले जाएँगे,
ततः	इसलिए	**यत्र**	जहां
दण्डपाणेः	यमराजके	**दण्डेन**	दण्ड मिलनेसे
सकाशं	समीप	**शुद्ध्यति**	शुद्ध हो जायगा ॥६८

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धेऽजामिलोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच—

एवं ते भगवद्दूता यमदूताभिभाषितम् ।
उपधार्याथ तान् राजन् प्रत्याहुर्नयकोविदाः ॥१॥

एवं ते भगवद्दूता यमदूत अभिभाषितं उपधार्य अथ तान् राजन् प्रति आहुः नयकोविदाः ॥१॥

राजन्	राजन् !	**नयकोविदाः**	नीति-निपुण
एवं	इस प्रकार	**ते भगवद्दूता**	वे भगवान्‌के दूत
यमदूत	यमदूतोंका	**अथ तान् प्रति**	फिर उनसे
अभिभाषितं	अभिभाषण	**आहुः**	बोले ॥१॥
उपधार्य	सुनकर		

विष्णुदूता ऊचुः—

अहो कष्टं धर्मदृशामधर्मः स्पृशते सभाम् ।
यत्रादण्ड्येष्वपापेषु दण्डो यैर्ध्रियते वृथा ॥२॥

अहो कष्टं धर्मदृशां अधर्मः स्पृशते सभां यत्र अदण्ड्येषु अपापेषु दण्डः यैः ध्रियते वृथा ॥२॥

अहो कष्टं	यह आश्चर्य और खेदकी बात है कि	**अदण्ड्येषु**	जो दण्डनीय नहीं है उसे
धर्मदृशां सभां	धर्मज्ञोंकी सभाको	**यैः वृथा**	जिनके द्वारा व्यर्थ
अधर्मः स्पृशते	अधर्म छू रहा है ।	**दण्डः ध्रियते**	दण्ड दिया जाता है ॥२॥
यत्र अपापेषु	जहाँ निष्पाप,		

प्रजानां पितरो ये च शास्तारः साधवः समाः ।
यदि स्यात्तेषु वैषम्यं कं यान्ति शरणं प्रजाः ॥३॥

प्रजानां पितरः ये च शास्तारः साधवः समाः यदि स्यात् तेषु वैषम्यं कं यान्ति शरणं प्रजाः ॥३॥

प्रजानां	प्रजाके	**वैषम्यं स्यात्**	विषमता हो जाय तो
ये च पितरः	जो तो माता-पिता,	**प्रजाः**	प्रजा
शास्तारः	शासक,	**कं शरणं**	किसकी शरण
साधवः	सत्पुरुष,	**यान्ति**	जायगी ॥३॥
समाः	समदर्शी हैं,		
यदि तेषु	यदि उनमें ही		

यद्यदाचरति श्रेयानितरस्तत्तदीहते ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥४॥

यद् यद् आचरति श्रेयान् इतरः तत् तत् ईहते स यत् प्रमाणं कुरुते लोकः तत् अनुवर्तते ॥४॥

श्रेयान्	सत्पुरुष	**स यत् प्रमाणं**	वे जिसे (अपने आचरणसे) प्रामाणिक
यद् यद्	जो जो	**कुरुते**	बनाते हैं,
आचरति	आचरण करते हैं,	**लोकः**	लोग
इतरः	दूसरे भी	**तत् अनुवर्तते**	उसीका अनुकरण करते हैं ॥४॥
तत् तत्	वही वही		
ईहते	करते हैं ।		

यस्याङ्के शिर आधाय लोकः स्वपिति निर्वृतः ।
स्वयं धर्ममधर्मं वा न हि वेद यथा पशुः ॥५॥

यस्य अङ्के शिर आधाय लोकः स्वपिति निर्वृतः स्वयं धर्मं अधर्मं वा न हि वेद यथा पशुः ॥५॥

लोकः	(साधारण) लोग	यस्य अङ्के	(वे) जिसकी गोदमें
धर्मं अधर्मं वा	धर्म या अधर्म	शिर आधाय	सिर रखकर
यथा पशुः	पशुओंके समान	निर्वृतः	निश्चिन्त
स्वयं न हि वेद	स्वयं नहीं ही जानते	स्वपिति	सोते हैं ॥५॥

स कथं न्यर्पितात्मानं कृतमैत्रमचेतनम् ।
विश्रम्भणीयो भूतानां सघृणो द्रोग्धुमर्हति ॥६॥

सः कथं न्यर्पित आत्मानं कृतमैत्रं अचेतनं विश्रम्भणीयः भूतानां सघृणः द्रोग्धुं अर्हति ॥६॥

सः सघृणः	वह दयालु,	न्यर्पित	समर्पण किये
भूतानां	प्राणियोंका	अचेतनं	अज्ञानी लोगोंके साथ
विश्रम्भणीयः	विश्वास-पात्र,	कथं द्रोग्धुं	कैसे द्रोह (विश्वास-घात)
कृतमैत्रं	मित्रता करनेवाले,		
आत्मानं	आत्म	अर्हति	कर सकता है ॥६॥

अयं हि कृतनिर्वेशो जन्मकोट्यंहसामपि ।
यद् व्याजहार विवशो नाम स्वस्त्ययनं हरेः ॥७॥

अयं हि कृतनिर्वेशः जन्म कोटि अंहसां अपि यत् व्याजहार विवशः नाम स्वस्त्ययनं हरेः ॥७॥

अयं हि	इसने तो	यत् विवशः	क्योंकि विवश होकर (सही)
कोटि जन्म	करोड़ों जन्मोंके		
अंहसां अपि	पापोंका भी	हरेः	श्रीहरिका
कृतनिर्वेशः	प्रायश्चित कर लिया,	स्वस्त्ययनं	कल्याण-धाम
		नाम व्याजहार	नामका उच्चारण किया ॥७॥

एतेनैव ह्यघोनोऽस्य कृतं स्यादघनिष्कृतम् ।
यदा नारायणायेति जगाद चतुरक्षरम् ॥८॥

एतेन एव हि अघोना अस्य कृतं स्यात् अघ निष्कृतं यदा नारायणाय इति जगाद चतुः अक्षरम् ॥८॥

यदा	जब	**एतेन एव हि**	इतनेसे ही
नारायणाय	नारायण	**अघोना अस्य**	इस पापीके
इति चतुः अक्षरं	इस प्रकार चार अक्षर	**अघ निष्कृतं**	पापोंका प्रायश्चित
		कृतं स्यात्	कर लिया गया ॥८॥
जगाद	बोला		

स्तेनः सुरापो मित्रध्रुग् ब्रह्महा गुरुतल्पगः ।
स्त्रीराजपितृगोहन्ता ये च पातकिनोऽपरे ॥९॥

स्तेनः सुरापः मित्र ध्रुक् ब्रह्म हा गुरुतल्पगः स्त्री राज पितृ गोहन्ता ये च पातकिनः अपरे ॥९॥

स्तेनः	चोर,	**स्त्री राज**	स्त्री, राजा,
सुरापः	शराबी,	**पितृ गोहन्ता**	पिता और गायका हत्यारा
मित्र ध्रुक्	मित्र-द्रोही,		
ब्रह्म हा	ब्रह्म-हत्यारा,	**च ये अपरे**	और जो दूसरे
गुरुतल्पगः	गुरु-पत्नीगामी,	**पातकिनः**	पापी हैं ॥९॥

सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम् ।
नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः ॥१०॥

सर्वेषां अपि अघवतां इदं एव सुनिष्कृतं नाम व्याहरणं विष्णोः यतः तत् विषया मतिः ॥१०॥

सर्वेषां	सभी	**नाम व्याहरणं**	नाम लिया जाय,
अघवतां अपि	पापियोंके लिए भी	**यतः**	जिससे
इदं एव	यही	**तत् विषया**	उन (श्रीहरि) के विषयकी
सुनिष्कृतं	श्रेष्ठ प्रायश्चित है,		
विष्णोः	भगवान् विष्णुका	**मतिः**	बुद्धि बने ॥१०॥

न निष्कृतैरुदितैर्ब्रह्मवादिभि-
स्तथा विशुद्धत्यघवान् व्रतादिभिः ।
यथा हरेर्नामपदैरुदाहृतै-
स्तदुत्तमश्लोकगुणोपलम्भकम् ॥११॥

न निष्कृतैः उदितैः ब्रह्मवादिभिः तथा विशुद्धचति अघवान् व्रतादिभिः यथा हरेः नाम पदैः उदाहृतैः तत् उत्तम श्लोक गुण उपलम्भकम् ॥११॥

ब्रह्मवादिभिः	वेद-वेत्ताओं द्वारा	यथा	जैसा
उदितैः	बतलाये गये	हरेः नाम पदैः	श्रीहरिके नामके पदोंके
व्रतादिभिः	व्रत आदि	उदाहृतैः	उच्चारणसे,
निष्कृतैः	प्रायश्चितोंसे	तत् उत्तम	वे पवित्र कीर्ति
अघवान्	पापी	श्लोक	भगवान्के)
तथा न	वैसा नहीं	गुण उपलम्भकं	गुणोंके सूचक हैं ॥११
विशुद्धचति	शुद्ध होता		

नैकान्तिकं तद्धि कृतेऽपि निष्कृते
मनः पुनर्धावति चेदसत्पथे ।
तत्कर्मनिर्हारमभीप्सतां हरे-
र्गुणानुवादः खलु सत्त्वभावनः ॥१२॥

न एकान्तिकं तत् हि कृते अपि निष्कृते मनः पुनः धावति चेत् असत् पथे तत् कर्म निर्हारं अभीप्सतां हरेः गुण अनुवादः खलु सत्त्वभावनः ॥१२॥

हि	क्योंकि	तत्	वह (प्रायश्चित)
निष्कृते	प्रायश्चित	एकान्तिकं न	आत्यन्तिक (पूरा)
कृते अपि	कर लेनेपर भी		नहीं है ।
चेत् मनः	यदि मन	तत्	अतः
पुनः असत् पथे	फिर कुमार्गमें	कर्म निर्हारं	कर्मके नाशको
धावति	दौड़ता हो तो	अभीप्सतां	चाहनेवालेको

सत्त्वभावनः	चित्तको शुद्ध करनेवाला	हरेः	श्रीहरिका
		गुण अनुवादः	गुण-गान है ॥१२॥
खलु	निश्चय		

अथैनं मापनयत कृताशेषाघनिष्कृतम् ।
यदसौ भगवन्नाम म्रियमाणः समग्रहीत् ॥१३॥

अथ एनं मा अपनयत कृत अशेष अघ निष्कृतं यत् असौ भगवन्नाम म्रियमाणः समग्रहीत् ॥१३॥

अथ	अतः	यत् असौ	क्योंकि इसने
अशेष अघ	सम्पूर्ण पापोंका	म्रियमाणः	मरते समय
निष्कृतं कृत	प्रयश्चित कर चुके	भगवन्नाम	भगवान्का नाम
एनं	इसको	समग्रहीत्	लिया है ॥१३॥
मा अपनयत	मत ले जाओ,		

साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा ।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ॥१४॥

साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनं एव वा वैकुण्ठ नाम ग्रहणं अशेष अघहरं विदुः ॥१४॥

साङ्केत्यं	संकेतके लिए,	ग्रहणं	लेना
पारिहास्यं	हंसीके लिए,	अशेष अघ	सम्पूर्ण पापोंका
वा स्तोभं	अथवा तान लेनेमें,	हरं	नाशक
वा हेलनं एव	या अवहेलनासे ही	विदुः	जाना गया
वैकुण्ठ नाम	भगवान्का नाम		है ॥१४॥

पतितः स्खलितो भग्नः सन्दष्टस्तप्त आहतः ।
हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातनाम् ॥१५॥

पतितः स्खलितः भग्नः सन्दष्टः तप्तः आहतः हरिः इति अवशेन आह पुमान् न अर्हति यातनाम् ॥१५॥

पतितः	गिरते समय,	हरिः इति	हरि इस प्रकार
स्खलितः	फिसलते समय,	आह	उच्चारण कर लेने
भग्नः	अंग-भंग होते समय,		वाला
		पुमान्	पुरुष
सन्दष्टः	(किसीके) डँसनेपर,	यातनां	यम-यातना
तप्तः	जलनेपर,	न अर्हति	नहीं पाना
आहतः	घायल होनेपर		चाहिए ॥१५॥
अवशेन	विवश होकर		

गुरूणां च लघूनां च गुरूणि च लघूनि च ।
प्रायश्चित्तानि पापानां ज्ञात्वोक्तानि महर्षिभिः ॥१६॥

गुरूणां च लघूनां च गुरूणि च लघूनि च प्रायश्चित्तानि पापानां ज्ञात्वा उक्तानि महर्षिभिः ॥१६॥

महर्षिभिः	महर्षियों द्वारा	लघूनां च	छोटे ही
गुरूणां च	बड़े-बड़े	प्रायश्चित्तानि	प्रायश्चित
पापानां च	पापोंके लिए तो	ज्ञात्वा	(शास्त्रसे) जानकर
गुरूणि च	बड़े-बड़े ही	उक्तानि	बतलाये हैं ॥१६॥
च लघूनां	और छोटे (पापों) के लिए		

तैस्तान्यघानि पूयन्ते तपोदानजपादिभिः ।
नाधर्मजं तद्धृदयं तदपीशाङ्घ्रिसेवया ॥१७॥

तैः तानि आघानि पूयन्ते तपः दान जप आदिभिः न अधर्मजं तत् हृदयं तत् अपि ईश अङ्घ्रि सेवया ॥१७॥

तैः	उन	पूयन्ते	पवित्र हो जाते हैं,
तपः दान	तपस्या, दान	तत्	(पर) उसका
जप आदिभिः	जप आदिसे	अधर्मजं	अधर्मको उत्पन्न
तानि अघानि	उन पापोंसे		करनेवाला

हृदयं न	चित्त नहीं (पवित्र) होता,	**ईश अङ्घ्रि सेवया**	भगवान्‌के चरणोंकी सेवासे (पवित्र हो जाता है) ॥१७॥
तत् अपि	वह (चित्त) भी		

अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत् ।
सङ्कीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः ॥१८॥

अज्ञानात् अथवा ज्ञानात् उत्तम श्लोक नाम यत् संकीर्तितं अघं पुंसः दहेत् एधः यथा अनलः ॥१८॥

अज्ञानात्	अनजानमें	**यथा अनलः**	जैसे अग्नि
अथवा	अथवा	**एधः**	ईंधन (सूखी लकड़ी) को
ज्ञानात्	जान बूझकर		
संकीर्तितं	लिया गया	**पुंसः अघं**	(वैसे ही) पुरुषके पापको
यत् उत्तम	क्योंकि पवित्र कीर्ति		
श्लोक	भगवान्‌का	**दहेत्**	भस्म कर देता
नाम	नाम है,		है ॥१८॥

यथागदं वीर्यतममुपयुक्तं यदृच्छया ।
अजानतोऽप्यात्मगुणं कुर्यान्मन्त्रोऽप्युदाहृतः ॥१९॥

यथा अगदं वीर्यतमं उपयुक्तं यदृच्छया अजानतः अपि आत्मगुणं कुर्यात् मन्त्रः अपि उदाहृतः ॥१९॥

यथा वीर्यतमं	जैसे बहुत शक्तिशाली	**आत्मगुणं**	अपना गुण (प्रभाव)
		कुर्यात्	करती है,
अगदं	औषधि	**मन्त्रः अपि**	(ऐसे ही) मन्त्र भी
यदृच्छया	अकस्मात्	**उदाहृतः**	उच्चारण मात्रसे
अजानतः अपि	अनजानमें भी		(प्रभाव करता
उपयुक्तं	उपयोग कर लेनेपर		है ।) ॥१९॥

श्रीशुक उवाच–

त एवं सुविनिर्णीय धर्मं भागवतं नृप ।
तं याम्यपाशान्निर्मुच्य विप्रं मृत्योरमूमुचन् ॥२०॥

त एवं सुविनिर्णीय धर्मं भागवतं नृप तं याम्यपाशान् निर्मुच्य विप्रं मृत्योः अमूमुचन् ॥२०॥

नृप	राजन्	**तं विप्रं**	उस ब्राह्मण (अजामिल) को
त	उन (भगवत्पार्षदों) ने	**याम्यपाशान्**	यमराजके फन्दोंको
भागवतं धर्मं	भागवत् धर्मका	**निर्मुच्य**	खोलकर
सुविनिर्णीय	निर्णय सुनाकर	**मृत्योः**	मृत्युसे
		अमूमुचन्	छुड़ा दिया ॥२०॥

इति प्रत्युदिता याम्या दूता यात्वा यमान्तिके ।
यमराज्ञे यथा सर्वमाचचक्षुररिन्दम ॥२१॥

इति प्रति उदिता याम्या दूता यात्वा यम अन्तिके यमराज्ञे यथा सर्वं आच चक्षुः अरिन्दम् ॥२१॥

अरिन्दम	शत्रुनाशक परीक्षित !	**यात्वा**	जाकर
इति	इस प्रकार	**यमराज्ञे**	यमराजसे
प्रति उदिता	प्रत्युत्तर पाकर	**सर्वं आचचक्षुः**	सब ज्योंका त्यों सुना दिया ॥२१॥
याम्या दूता	यमराजके दूत		
यम अन्तिके	यमराजके पास		

द्विजः पाशाद्विनिर्मुक्तो गतभीः प्रकृतिं गतः ।
ववन्दे शिरसा विष्णोः किङ्करान् दर्शनोत्सवः ॥२२॥

द्विजः पाशात् विनिर्मुक्तः गतभीः प्रकृतिं गतः ववन्दे शिरसा विष्णोः किङ्करान् नर्शन उत्सवः ॥२२॥

द्विजः	(वह) ब्राह्मण (अजामिल)	विष्णोः	भगवान् विष्णुके
पाशात्	यमपाशसे	किङ्करान्	दूतोंको
विनिर्मुक्तः	छूट जानेपर	नर्शन उत्सवः	(उनके) दर्शनसे प्रसन्न होकर
गतभीः	निर्भय हो गया,	शिरसा ववन्दे	सिर झुकाकर
प्रकृतिं गतः	स्वस्थ होकर		प्रणाम किया ॥२२॥

तं विवक्षुमभिप्रेत्य महापुरुषकिङ्कराः ।
सहसा पश्यतस्तस्य तत्रान्तर्दधिरेऽनघ ॥२३॥

तं विवक्षुं अभिप्रेत्य महापुरुष किङ्कराः सहसा पश्यतः तस्य तत्र अन्तः दधिरे अनघ ॥२३॥

अनघ	निष्पाप परीक्षित् !	किङ्कराः	पार्षद
तं विविक्षुं	उसे बोलनेकी इच्छा करते	तस्य पश्यतः	उसके देखते-देखते
अभिप्रेत्य	जानकर	सहसा तत्र	अचानक वहीं
महापुरुष	पुरुषोत्तम भगवान्के	अन्तः दधिरे	अन्तर्धान हो गये ॥२३॥

अजामिलोऽप्यथाकर्ण्य दूतानां यमकृष्णयोः ।
धर्मं भागवतं शुद्धं त्रैविद्यं च गुणाश्रयम् ॥२४॥

अजामिलः अपि अथाकर्ण्य दूतानां यम कृष्णयोः धर्मं भागवतं शुद्धं त्रैविद्यं च गुणाश्रयम् ॥२४॥

अजामिलः अपि	अजामिलने भी	त्रैविद्यं	वेद-प्रतिपादित
कृष्णयोः	भगवान्के (दूतोंसे)	गुणाश्रयं	सगुण (प्रवृत्तिपरक) धर्म
शुद्धं	शुद्ध		
भागवतं धर्मं	भागवत् धर्म और	अथाकर्ण्य	सुनकर ॥२४॥
यम दूतानां	यमदूतोंसे उनका		

भक्तिमान् भगवत्याशु माहात्म्यश्रवणाद्धरेः ।
अनुतापो महानासीत्स्मरतोऽशुभमात्मनः ॥२५॥

भक्तिमान् भगवति आशु माहात्म्य श्रवणात् हरेः अनुतापः महान् आसीत् स्मरतः अशुभं आत्मनः ॥२५॥

हरेः माहात्म्य	श्रीहरिकी महिमा	**आत्मनः अशुभं**	अपने पापोंका
श्रवणात्	सुननेसे	**स्मरतः**	स्मरण करके
भगवति	भगवान्‌में	**महान् अनुतापः**	भारी पश्चाताप
आशु	शीघ्र	**आसीत्**	हुआ ॥२५॥
भक्तिमान्	भक्तिमान् (हो गया तथा)		

*अजामिलोवाच–**

अहो मे परमं कष्टमभूदविजितात्मनः ।
येन विप्लावितं ब्रह्म वृषल्यां जायताऽऽत्मना ॥२६॥

अहो मे परमं कष्टं अभूत् अविजित आत्मनः येन विप्लावितं ब्रह्म वृषल्यां जायता आत्मना ॥२६॥

अहो मे	अरे मेरे लिए	**वृषल्यां**	शूद्रा (के गर्भ) से
परमं कष्टं	अत्यन्त दुःखकी बात	**आत्मना जायता**	(पुत्र रूपमें) अपने-को ही उत्पन्न करके
अभूत्	हो गयी कि	**ब्रह्म विप्लाविता**	ब्राह्मणत्व नष्ट कर दिया ॥२६॥
अविजित आत्मनः	अजितेन्द्रिय		
येन	जिस मैंने		

धिङ्मां विगर्हितं सद्भिर्दुष्कृतं कुलकज्जलम् ।
हित्वा बालां सतीं योऽहं सुरापामसतीमगाम् ॥२७॥

धिक् मां विगर्हितं सद्भिः दुष्कृतं कुलकज्जलं हित्वा बालां सतीं यः अहं सुरापां असतीं अगाम् ॥२७॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है; किन्तु आगे श्लोक ३८ के पश्चात् 'श्रीशुक उवाच' होनेसे इसकी आवश्यकता स्पष्ट है।

सद्भिः	सत्पुरुषोंसे	**सतीं बालां**	सती अबोध (पत्नी)
विगर्हितं	निन्दित,		को
दुष्कृतं	पापी,	**हित्वा**	त्यागकर
कुलकज्जलं	कुल-कलंक	**सुरापां**	शराब पीने वाली
मां धिक्	मुझे धिक्कार है,	**असतीं**	कुलटाका
यः अहं	जिस मैंने	**अगाम्**	संसर्ग किया ॥२७॥

वृद्धावनाथौ पितरौ नान्यबन्धू तपस्विनौ ।
अहो मयाधुना त्यक्तावकृतज्ञेन नीचवत् ॥२८॥

वृद्धाः अनाथौ पितरौ न अन्य बन्धु तपस्विनौ अहो मया अधुना त्यक्ताः अकृतज्ञेन नीचवत् ॥२८॥

पितरौ	(मेरे) माता-पिता	**तपस्विनौ**	तपस्वी थे,
वृद्धाः	वृद्ध थे,	**अहो नीचवत्**	अरे नीचके समान
अनाथौ	असहाय थे,	**अधुना**	इस समय
न अन्य बन्धु	उनका कोई दूसरा सम्बन्धी भी नहीं था,	**मया अकृतज्ञेन त्यक्ताः**	मुझ कृतघ्न द्वारा त्याग दिये गये ॥२८

सोऽहं व्यक्तं पतिष्यामि नरके भृशदारुणे ।
धर्मघ्नाः कामिनो यत्र विन्दन्ति यमयातनाः ॥२९॥

सो अहं व्यक्तं पतिष्यामि नरके भृशदारुणे धर्मघ्नाः कामिनः यत्र विन्दन्ति यमयातनाः ॥२९॥

यत्र	जहां	**भृशदारुणे**	अत्यन्त दारुण
धर्मघ्नाः	धर्म-नाशक	**नरके**	नरकमें
कामिनः	कामी	**सो अहं**	ऐसा मैं
यमयातनाः	यम-यातना	**व्यक्तं**	स्पष्ट है कि
विन्दन्ति	पाते हैं	**पतिष्यामि**	गिरूँगा ॥२९॥

किमिदं स्वप्न आहोस्वित् साक्षात् दृष्टमिहाद्भुतम् ।
क्व याता अद्य ते ये मां व्यकर्षन् पाशपाणयः ॥३०॥

किं इदं स्वप्न आहोस्वित् साक्षात् दृष्टं इह अद्भुतं क्व याता अद्य ते ये मां व्यकर्षन् पाशपाणयः ॥३०॥

किं इदं	यह क्या था,	ये पाशपाणयः	जो हाथमें फन्दे लिए
इह अद्भुतं	यहां (जो) अद्भुत	अद्य मां	आज मुझे
दृष्टं	दीखा	व्यकर्षन्	खींच रहे थे
स्वप्न	स्वप्न था	ते क्व याता	वे कहां चले
आहोस्वित्	अथवा		गये ? ॥३०॥
साक्षात्	साक्षात् था ।		

अथ ते क्व गताः सिद्धाश्चत्वारश्चारुदर्शनाः ।
व्यमोचयन्नीयमानं बद्ध्वा पाशैरधो भुवः ॥३१॥

अथ ते क्व गताः सिद्धाः चत्वारः चारु दर्शनाः व्यमोचयन् नीयमानं बद्ध्वा पाशैः अधः भुवः ॥३१॥

अथ	और (जिन)	भुवः अधः	पृथ्वीके नीचे
चत्वारः	चारों	नीयमानं	ले जाते हुए (मुझे)
चारु दर्शनाः	अत्यन्त सुन्दर	व्यमोचयन्	छुड़ाया
सिद्धाः	सिद्धोंने	ते क्व गताः	वे कहां चले
पाशैः बद्ध्वा	फन्दोंसे बाँधकर		गये ॥३१॥

अथापि मे दुर्भगस्य विबुधोत्तमदर्शने ।
भवितव्यं मङ्गलेन येनात्मा मे प्रसीदति ॥३२॥

अथ अपि मे दुर्भगस्य विबुध उत्तम दर्शने भवितव्यं मङ्गलेन येन आत्मा मे प्रसीदति ॥३२॥

अथ अपि	फिर भी	भवितव्यं	हेतु होने चाहिए,
मे दुर्भगस्य	मुझ भाग्यहीनको	येन मे आत्मा	जिस (दर्शन) से
मङ्गलेन	(किसी पूर्वके) पुण्यसे		मेरा चित्त
विबुध उत्तम	देवश्रेष्ठोंके	प्रसीदति	प्रसन्न हो रहा
दर्शने	दर्शनके		है ॥३२॥

अन्यथा म्रियमाणस्य नाशुचेर्वृषलीपतेः ।
वैकुण्ठनाम ग्रहणं जिह्वा वक्तुमिहार्हति ॥३३॥

अन्यथा म्रियमाणस्य न अशुचेः वृषलीपतेः वैकुण्ठ नाम ग्रहणं जिह्वा वक्तुं इह अर्हति ॥३३॥

अन्यथा	नहीं तो	वैकुण्ठ नाम	भगवन्नाम
म्रियमाणस्य	मरते हुए	ग्रहणं वक्तुं	लेकर उच्चारण
अशुचेः	अपवित्र		करनेमें
वृषलीपतेः	शूद्राके पतिकी	न अर्हति	नहीं समर्थ हो
जिह्वा	जीभ		सकती ॥३३॥
इह	इस जीवनमें		

क्व चाहं कितवः पापो ब्रह्मघ्नो निरपत्रपः ।
क्व च नारायणेत्येतद्भगवन्नाम मङ्गलम् ॥३४॥

क्व च अहं कितवः पापः ब्रह्मघ्नः निरपत्रपः क्व च नारायण इति एतत् भगवन्नाम मङ्गलम् ॥३४॥

क्व च अहं	कहां तो मैं	नारायण इति	नारायण इस प्रकार
कितवः पापः	कपटी, पापी,		(बोलना)
ब्रह्मघ्न	ब्रह्मतेजका नाशक	एतत्	यह
निरपत्रपः	निर्लज्ज	मङ्गलं	मंगलमय
क्व च	और कहां	भगवन्नाम	भगवन्नाम ॥३४॥

सोऽहं तथा यतिष्यामि यतचित्तेन्द्रियानिलः ।
यथा न भूय आत्मानमन्धे तमसि मज्जये ॥३५॥

सो अहं तथा यतिष्यामि यत चित्त इन्द्रिय अनिलः यथा न भूयः आत्मानं अन्धे तमसि मज्जये ॥३५॥

स अहं	वह मैं	यथा भूयः	जैसे फिर
चित्त इन्द्रिय	चित्त, इन्द्रिय	आत्मानं	अपनेको
अनिलः	प्राण-वायुको	अन्धे तमसि	अन्धकारपूर्ण नरकमें
यत	संयमित करके		
तथा	वैसा	न मज्जये	न डुबाऊँ ॥३५॥
यतिष्यामि	प्रयत्न करूँगा		

विमुच्य तमिमं बन्धमविद्याकामकर्मजम् ।
सर्वभूतसुहृच्छान्तो मैत्रः करुण आत्मवान् ॥३६॥

विमुच्य तं इमं बन्धं अविद्या काम कर्मजं सर्वभूत सुहृत् शान्तः मैत्रः करुण आत्मवान् ॥३६॥

अविद्या	अविद्या, (अज्ञानके कारण)	सर्वभूत सुहृत्	सब प्राणियोंका हितैषी
काम	कामना (होनेसे)	शान्तः	शान्त
तं कर्मजं	हुए उन कर्मोंके फलसे	मैत्रः	सबका मित्र,
		करुण	दयावान
इमं बन्धं	इस बन्धनको	आत्मवान्	धैर्यशाली (बनूँगा) ॥३६॥
विमुच्य	त्यागकर		

मोचये ग्रस्तमात्मानं योषिन्मय्याऽऽत्ममायया ।
विक्रीडितो ययैवाहं क्रीडामृग इवाधमः ॥३७॥

मोचये ग्रस्तं आत्मानं योषिन् मय्या आत्ममायया विक्रीडितः यया एव अहं क्रीडामृग इव अधमः ॥३७॥

यया एव	जिसके द्वारा	अहं अधमः	मैं अधम
क्रीडामृग इव	खिलौनेके मृगके समान	विक्रीडितः	बहुत खेल खिलाया गया (उस)

योषित् मय्या	स्त्री रूपिणी	ग्रस्तं आत्मानं	ग्रस्त अपनेको
आत्ममायया	भगवान्‌की मायासे	मोचये	मुक्त करूँगा ॥३७॥

ममाहमिति देहादौ हित्वामिथ्यार्थधीर्मतिम् ।
धास्ये मनो भगवति शुद्धं तत्कीर्तनादिभिः ॥३८॥

मम अहं इति देह आदौ हित्वा मिथ्या अर्थ धीः मतिं धास्ये मनः भगवति शुद्धं तत् कीर्तन आदिभिः ॥३८॥

मम अहं इति	मेरा-मैं इस प्रकार	भगवति	भगवान्‌में
देह आदौ	शरीर आदि	तत् कीर्तन	उनके कीर्तन
मिथ्या	असत् तत्त्वोंमें	आदिभिः	आदिसे
अर्थ धीः	सत् (प्रयोजनीय) बुद्धि	शुद्धं मनः	शुद्ध हुए मनको
		मतिं	और बुद्धिको
हित्वा	छोड़कर	धास्ये	लगाऊँगा ॥३८॥

श्रीशुक उवाच–

इति जातसुनिर्वेदः क्षणसङ्गेन साधुषु ।
गङ्गाद्वारमुपेयाय मुक्तसर्वानुबन्धनः ॥३९॥

इति जात सुनिर्वेदः क्षणसङ्गेन साधुषु गङ्गाद्वारं उपेयाय मुक्त सर्व अनुबन्धनः ॥३९॥

साधुषु	सत्पुरुषोंके	सर्व अनुबन्धनः	सब पिछले बन्धनोंसे
क्षणसङ्गेन	एकक्षणके संगसे	मुक्त	छूटकर
इति	इस प्रकार	गङ्गाद्वारं	हरिद्वार
सुनिर्वेदः	उत्तम वैराग्य	उपेयाय	चला गया ॥३९॥
जात	उत्पन्न होनेसे		

स तस्मिन् देवसदन आसीनो योगमाश्रितः ।
प्रत्याहृतेन्द्रियग्रामो युयोज मन आत्मनि ॥४०॥

स तस्मिन् देवसदन आसीनः योगं आश्रितः प्रत्याहृत इन्द्रियग्रामः युयोज मन आत्मनि ॥४०॥

तस्मिन् देवसदन	वहाँ भगवान्‌के मन्दिरमें	प्रत्याहृत	प्रत्याहार करके
		परमात्मनि	परमात्मामें
स आसीनः	वह बैठ गया,	युजोज	(मन) लगा दिया ॥४०॥
योगं आश्रितः	योगका सहारा लेकर		
इन्द्रिय ग्रामः	इन्द्रिय समूहका		

ततो गुणेभ्य आत्मानं वियुज्यात्मसमाधिना ।
युयुजे भगवद्धाम्नि ब्रह्मण्यनुभवात्मनि ॥४१॥

ततः गुणेभ्यः आत्मानं वियुज्य आत्म समाधिना युयुजे भगवत् धाम्नि ब्रह्मणि अनुभव आत्मनि ॥४१॥

ततः	फिर	अनुभव	अनुभव
आत्मानं	चित्तको	आत्मनि	स्वरूप
गुणेभ्यः	गुणोंसे	ब्रह्मणि	ब्रह्म
वियुज्य	पृथक् करके	भगवत् धाम्नि	भगवान्‌के स्वरूपमें
आत्म	अपनी	युयुजे	लगा दिया ॥४१॥
समाधिना	एकाग्रता द्वारा		

यर्ह्युपारतधीस्तस्मिन्नद्राक्षीत्पुरुषान् पुरः ।
उपलभ्योपलब्धान् प्राग् ववन्दे शिरसा द्विजः ॥४२॥

यर्हि उपारत धीः तस्मिन् अद्राक्षीत् पुरुषान् पुरः उपलभ्य उपलब्धान् प्राक् ववन्दे शिरसा द्विजः ॥४२॥

तस्मिन्	उस स्थितिमें	प्राक् उपलब्धान्	(तब) पहिले मिले
यर्हि	जब	पुरुषान्	पुरुषों (भगवत्पार्षदों) को
धीः उपारत	बुद्धिसे भी उपरामता हो गयी	पुरः अद्राक्षीत्	सामने ही देखा,

द्विजः	ब्राह्मणने	शिरसा ववन्दे	(उन्हें) शिरसे
उपलभ्य	(उनके) पास जाकर		वन्दना की ॥४२॥

हित्वा कलेवरं तीर्थे गङ्गायां दर्शनादनु ।
सद्यः स्वरूपं जगृहे भगवत्पार्श्ववर्तिनाम् ॥४३॥

हित्वा कलेवरं तीर्थे गङ्गायां दर्शनात् अनु सद्यः स्वरूपं जगृहे भगवत् पार्श्ववर्तिनाम् ॥४३॥

दर्शनात् अनु	उनके दर्शनके पश्चात्	भगवत् पार्श्ववर्तिनां	भगवान्‌के पार्षदोंका
गङ्गायां तीर्थे	गंगाजलमें	स्वरूपं जगृहे	स्वरूप धारण कर लिया ॥४३॥
कलेवरं हित्वा	शरीर त्यागकर		
सद्यः	तत्काल		

साकं विहायसा विप्रो महापुरुषकिङ्करैः ।
हैमं विमानमारुह्य ययौ यत्र श्रियः पतिः ॥४४॥

साकं विहायसा विप्रः महापुरुष किङ्करैः हैमं विमानं आरुह्य ययौ यत्र श्रियः पतिः ॥४४॥

महापुरुष किङ्करैः साकं	पुरुषोत्तम भगवान्‌के सेवकोंके साथ	विहायसा यत्र श्रियः पतिः	आकाश-मार्गसे जहां भगवान् लक्ष्मी-पति (रहते हैं)
विप्रः	वह ब्राह्मण	ययौ	चला गया ॥४४॥
हैमं विमानं आरुह्य	स्वर्णमय विमानपर चढ़कर		

एवं स विप्लावितसर्वधर्मा
दास्याः पतिः पतितो गर्ह्यकर्मणा ।
निपात्यमानो निरये हतव्रतः
सद्यो विमुक्तो भगवन्नाम गृह्णन् ॥४५॥

एवं स विप्लावित सर्व धर्मा दास्याः पतिः पतितः गर्ह्य कर्मणा निपात्यमानः निरये हतव्रतः सद्यः विमुक्तः भगवन्नाम गृह्णन् ॥४५॥

एवं स	इस प्रकार वह
सर्व धर्मा	सब धर्मोंको
विप्लावित	नष्ट करने वाला
दास्याः पतिः	दासीपति
गर्ह्य कर्मणा	(अपने) निन्दित कर्मोंसे
पतितः	पतित
हतव्रतः	नियमच्युत होनेसे
निरये	नरकमें
निपात्यमानः	गिराये जाते समय
भगवन्नाम	भगवन्नाम
गृह्णन्	लेनेसे
सद्यः विमुक्तः	तुरन्त छूट गया ॥४५

नातः परं कर्मनिबन्धकृन्तनं
मुमुक्षतां तीर्थपदानुकीर्तनात् ।
न यत्पुनः कर्मसु सज्जते मनो
रजस्तमोभ्यां कलिलं ततोऽन्यथा ॥४६॥

न अतः परं कर्म निबन्ध कृन्तनं मुमुक्षतां तीर्थपद अनुकीर्तनात् न यत् पुनः कर्मसु सज्जते मनः रजः तमः भ्यां कलिलं ततः अन्यथा ॥४६॥

मुमुक्षतां	संसारसे मुक्त होनेकी इच्छा वालोंके लिए
अतःअनुकीर्तनात्	इस (भगवान्) के कीर्तनसे
परं	श्रेष्ठ
कर्म निबन्ध	कर्म बन्धनको
कृन्तनं	काटने वाला (साधन)
न	नहीं है ।
तीर्थपद	तीर्थोंको तीर्थ बनाने वाले
यत् पुनः	जिससे फिर
मनः कर्मसु	मन कर्मोंमें
सज्जते न	आसक्त नहीं होता ।
ततः अन्यथा	इससे भिन्न (साधन) में
रजः तमः भ्यां	रजोगुण तमोगुणसे
कलिलं	मलिन हो जाता है ॥४६॥

य एवं परमं गुह्यमितिहासमघापहम् ।
शृणुयाच्छ्रद्धया युक्तो यश्च भक्त्यानुकीर्तयेत् ॥४७॥

यः एवं परमं गुह्यं इतिहासं अघ अपहं शृणुयात् श्रद्धया युक्तः यः च भक्त्या अनुकीर्तयेत् ॥४७॥

यः एवं	जो इस प्रकारके	च यः	और जो
परमं गुह्यं	परम रहस्यमय	भक्त्या	भक्ति पूर्वक
अघ अपहं	पापहारी	अनुकीर्तयेत्	इसका बार-बार
इतिहासं	इतिहासको		कीर्तन करता
श्रद्धया युक्तः	श्रद्धासहित		है ॥४७॥
शृणुयात्	सुनता है		

न वै स नरकं याति नेक्षितो यमकिङ्करैः ।
यद्यप्यमङ्गलो मर्त्यो विष्णुलोके महीयते ॥४८॥

न वै स नरकं याति न ईक्षितः यमकिङ्करैः यद्यपि अमङ्गलः मर्त्यः विष्णुलोके महीयते ॥४८॥

स वै	वह निश्चय	अमङ्गलः	पापी भी हो (तो
नरकं न याति	नरक नहीं जाता,		भी)
यमकिङ्करैः	यमराजके दूतोंद्वारा	विष्णुलोके	वैकुण्ठमें
न ईक्षितः	देखा भी नहीं जाता	महीयते	सम्मानित होता
यद्यपि मर्त्यः	यद्यपि वह मनुष्य		है ॥४८॥

म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन् पुत्रोपचारितम् ।
अजामिलोऽप्यगाद्धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन् ॥४९॥

म्रियमाणः हरेः नाम गृणन् पुत्र उपचारितं अजामिलः अपि अगात् धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन् ॥४९॥

म्रियमाणः	मरते समय	अजामिलः अपि	अजामिल (जैसा पापी) भी
पुत्र	पुत्रके	धाम अगात्	भगवद्धाम चला गया
उपचारितं	बहानेसे	पुनः श्रद्धया	फिर श्रद्धासे
हरेः नाम	श्रीहरिका नाम	गृणन् किं	लेनेपर तो कहना ही क्या ॥४९॥
गृणन्	पुकार कर		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धेऽजामिलोपाख्याने द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

राजोवाच-

निशम्य देवः स्वभटोपवर्णितं
प्रत्याह किं तान् प्रति धर्मराजः ।
एवं हताज्ञो विहतान्मुरारे-
र्नैदेशिकैर्यस्य वशे जनोऽयम् ॥१॥

निशम्य देवः स्वभट उपवर्णितं प्रति आह किं तान् प्रति धर्मराजः एवं हत आज्ञः विहतान् मुरारेः नैदेशिकैः यस्य वशे जनः अयम् ॥१॥

यस्य वशे	जिनके वशमें	एवं हत आज्ञः	अपनी आज्ञाका इस प्रकार भंग होना
अयं जनः	ये सब लोग हैं,	निशम्य	सुनकर
स्वभट	अपने सैनिकों द्वारा	देवः धर्मराजः	देव यमराजने
उपवर्णितं	बतलायी	तान् प्रति	उनसे
मुरारेः	श्रीहरिके	किं आह	क्या कहा ॥१॥
नैदेशिकैः	आज्ञा पालकों द्वारा		
विहतान्	की गयी		

यमस्य देवस्य न दण्डभङ्गः
कुतश्चनर्षे श्रुतपूर्व आसीत् ।
एतन्मुने वृश्चति लोकसंशयं
न हि त्वदन्य इति मे विनिश्चितम् ॥२॥

यमस्य देवस्य न दण्डभङ्गः कुतश्चन् ऋषे श्रुत पूर्व आसीत् एतत् मुने वृश्चति लोकसंशयं न हि त्वत् अन्य इति मे विनिश्चितम् ॥२॥

ऋषे	महर्षि !
कुतश्चन्	किसी भी प्रकार
यमस्य देवस्य	देव यमराजके
दण्डभङ्गः	दण्डको रोक देना
न श्रुत पूर्व	पहिले (कभी) नहीं सुना गया
आसीत्	है
मुने	मुनिवर !
एतत्	इस विषयमें
लोकसंशयं	लोगोंके सन्देहका
वृश्चति	निवारण करें
हि	क्योंकि
त्वत् अन्य	आपके अतिरिक्त दूसरा कोई
न	(समर्थ) नहीं है
इति मे	ऐसा मेरा
विनिश्चितं	पूरा निश्चय है ॥२॥

श्रीशुक उवाच-

भगवत्पुरुषैः राजन् याम्याः प्रतिहतोद्यमाः ।
पतिं विज्ञापयामासुर्यमं संयमनीपतिम् ॥३॥

भगवत् पुरुषैः राजन् याम्याः प्रतिहत उद्यमाः पतिं विज्ञापयामासुः यमं संयमनी पतिम् ॥३॥

राजन्	राजन् !
भगवत् पुरुषैः	भगवान्के पार्षदों द्वारा
याम्याः	यमदूतोंका
उद्यमाः	प्रयत्न
प्रतिहत	व्यर्थ कर दिये जानेपर
संयमनी पतिं	संयमनी पुरीके स्वामी
पतिं यमं	अपने स्वामी यमराजको
विज्ञापयामासुः	(उन्होंने) सूचित किया ॥३॥

यमदूता ऊचुः

कति सन्तीह शास्तारो जीवलोकस्य वै प्रभो ।
त्रैविध्यं कुर्वतः कर्म फलाभिव्यक्तिहेतवः ॥४॥

कति सन्ति इह शास्तारः जीवलोकस्य वै प्रभो त्रैविध्यं कुर्वतः कर्मं फल अभिव्यक्ति हेतवः ॥४॥

प्रभो !	प्रभो !
फल अभिव्यक्ति	फल प्रकट होनेके
हेतवः	कारण
त्रैविध्यं	तीनों (सात्त्विक, राजस, तामस) प्रकारके
कर्म कुर्वतः	कर्म करनेवाले
जीवलोकस्य	जीव (मनुष्य) लोकके
इह	इस संसारमें
वै कति	निश्चित कितने
शास्तारः सन्ति	शासक हैं ? ॥४॥

यदि स्युर्बहवो लोके शास्तारो दण्डधारिणः ।
कस्य स्यातां न वा कस्य मृत्युश्चामृतमेव वा ॥५॥

यदि स्युः बहवः लोके शास्तारः दण्डधारिणः कस्य स्यातां न वा कस्य मृत्युः च अमृतं एव वा ॥५॥

यदि लोके	यदि संसारमें
दण्डधारिणः	दण्ड देने वाले
शास्तारः	शासक
बहवः स्युः	बहुत हों तो
मृत्युः	मृत्यु
च अमृतं एव वा	और जीवन ही फिर
कस्य स्यातां	किसका हो
वा कस्य न	अथवा किसका न हो (यह ठीक निर्णय कैसे होगा ?) ॥५॥

किन्तु शास्तृबहुत्वे स्याद्बहूनामिह कर्मिणाम् ।
शास्तृत्वमुपचारो हि यथा मण्डलवर्तिनाम् ॥६॥

किं तु शास्तृ बहुत्वे स्यात् बहूनां इह कर्मिणां शास्तृ त्वं उपचारः हि यथा मण्डल वर्तिनाम् ॥६॥

इह	इस लोकमें
बहूनां कर्मिणां	बहुत कर्म करनेवाले होनेसे
किं तु	यदि तो
बहुत्वे स्यात्	बहुतसे
शास्तृ	शासक हों तो
हि शास्तृ त्वं	फिर शासकपना
उपचारः	औपचारिक (नाम-मात्रका) होगा
यथा	जैसे
मण्डल वर्तिनां	(सम्राटके अधीन) एक-एक मण्डलके स्वामियोंका ॥६॥

अतस्त्वमेको भूतानां सेश्वराणामधीश्वरः ।
शास्ता दण्डधरो नृणां शुभाशुभविवेचनः ॥७॥

अतः त्वं एकः भूतानां स ईश्वराणां अधीश्वरः शास्ता दण्डधरः नृणां शुभ अशुभ विवेचनः ॥७॥

अतः	अत एव	**नृणां**	मनुष्योंके
स ईश्वराणां	(अपने) स्वामियोंके साथ	**शुभ अशुभ**	पाप-पुण्यके
		विवेचनः	निर्णायक
भूतानां	प्राणियोंके	**दण्डधरः**	दण्डदाता (और)
त्वं एकः	आप अकेले	**शास्ता**	शासक (हैं ।) ॥७॥
अधीश्वरः	अधीश्वर हैं ।		

तस्य ते विहतो दण्डो न लोके वर्ततेऽधुना ।
चतुर्भिरद्भुतैः सिद्धैराज्ञा ते विप्रलम्भिता ॥८॥

तस्य ते विहतः दण्डः न लोके वर्तते अधुना चतुः भिः अद्भुतैः सिद्धैः आज्ञा ते विप्रलम्भिता ॥८॥

तस्य ते	ऐसे आपके द्वारा	**अद्भुतैः**	अद्भुत
विहतः दण्डः	विधान किया दण्ड	**चतुः भिः सिद्धैः**	चार सिद्धोंने
अधुना	इस समय	**ते आज्ञा**	आपकी आज्ञाका
लोके न वर्तते	संसारमें नहीं चल रहा है ।	**विप्रलम्भिता**	उल्लंघन किया है ॥८॥

नीयमानं तवादेशादस्माभिर्यातनागृहान् ।
व्यमोचयन् पातकिनं छित्त्वा पाशान् प्रसह्य ते ॥९॥

नीयमानं तव आदेशात् अस्माभिः यातना गृहान् व्यमोचयन् पातकिनं छित्वा पाशान् प्रसह्य ते ॥९॥

तव आदेशात्	आपकी आज्ञासे	**यातना गृहान्**	यातनागार (नरक) में
अस्माभिः	हम लोगों द्वारा		

नीयमानं	लाये जाते	**ते पाशान्**	आपके पाशोंको
पातकिनं	पापीको	**छित्त्वा**	काटकर
प्रसह्य	बलपूर्वक	**व्यमोचयन्**	छुड़ा दिया ॥९॥

तांस्ते वेदितुमिच्छामो यदि नो मन्यसे क्षमम् ।
नारायणेत्यभिहिते मा भैरित्याययुर्द्रुतम् ॥१०॥

तान् ते वेदितुं इच्छामः यदि नः मन्यसे क्षमं नारायण इति अभिहिते मा भैः इति आययुः द्रुतम् ॥१०॥

यदि नः	यदि हमको	**इच्छामः**	इच्छा करते हैं
क्षमं मन्यसे	इसके योग्य मानते हों तो	**नारायणः**	नारायण
		इति अभिहिते	इस प्रकार बोलनेपर
ते	आपसे	**'मा भैः'**	'डरो मत'
तान् वेदितुं	उनको (हम) जाननेकी	**इति**	ऐसा कहते
		द्रुतं आययुः	शीघ्र आ पहुँचे ॥१०

श्रीशुक उवाच–

इति देवः स आपृष्टः प्रजासंयमनो यमः ।
प्रीतः स्वदूतान् प्रत्याह स्मरन् पादाम्बुजं हरेः ॥११॥

इति देवः स आपृष्टः प्रजा संयमनः यमः प्रीतः स्वदूतान् प्रति आह स्मरन् पादाम्बुजं हरेः ॥११॥

स देवः	वे देव	**हरेः पादाम्बुजं**	श्रीहरिके चरण कमलोंका
प्रजा संयमनः	पूजाके शासक		
यमः	यमराज	**स्मरन्**	स्मरण करते हुए
इति आपृष्टः	इस प्रकार पूछे जानेपर	**स्वदूतान् प्रति**	अपने दूतोंसे
		आह	बोले ॥११॥
प्रीतः	प्रसन्न होकर		

यम उवाच—

परो मदन्यो जगतस्तस्थुषश्च
ओतं प्रोतं पटवद्यत्र विश्वम् ।
यदंशतोऽस्य स्थितिजन्मनाशा
नस्योतवद् यस्य वशे च लोकः ॥१२॥

परः मत् अन्यः जगतः तस्थुषः च ओतं प्रोतं पटवत् यत्र विश्वं यत् अंशतः अस्य स्थिति जन्म नाशा नसि ओतवत् यस्य वशे च लोकः ॥१२॥

मत् अन्यः	मुझसे भिन्न	**अस्य**	इस संसारकी
जगतः तस्थुषः च	चराचरके	**स्थिति जन्म**	स्थिति, सृष्टि, प्रलय
परः	स्वामी (एक हैं)	**नाशा**	करनेवाले (विष्णु,
यत्र विश्वं	जिनमें विश्व		ब्रह्मा, रुद्र) हैं,
पटवत्	(सूतमें) वस्त्रकी	**च नसि ओतवत्**	और नाकको रस्सीमें
	भांति		बँधेकी भांति
ओतं प्रोतं	ओत-प्रोत है,	**यस्य वशे**	जिसके वशमें
यत् अंशतः	जिनके अंशसे	**लोकः**	सब लोक हैं ॥१२॥

यो नामभिर्वाचि जनान्निजायां
बध्नाति तन्त्यामिव दामभिर्गाः ।
यस्मै बलिं त इमे नामकर्म-
निबन्धबद्धाश्चकिता वहन्ति ॥१३॥

यः नामभिः वाचि जनान् निजायां बन्धनाति तन्त्यां इव दामभिः गाः यस्मै बलिं त इमे नाम कर्म निबन्ध बद्धाः चकिता वहन्ति ॥१३॥

तन्त्यां दामभिः	छोटी रस्सियोंसे बाँधकर फिर बड़ी रस्सीमें बँधे	**जनान्**	लोगोंको
		निजायां वाचि	अपनी (वेदरूप) वाणीसे
गाः इव	पशुओंके समान	**बध्नाति**	बाँध देता है,
यः नामभिः	जो नामों द्वारा (बाँधकर)	**त इमे**	वे (लोग) इस
		नाम कर्म	नाम और कर्मके

निबन्ध बद्धाः	आग्रहसे बँधे (लोग)	यस्मै बलिं	जिसे उपहार
चकिताः	भयभीत होकर	वहन्ति	दे रहे हैं ॥१३॥

अहं महेन्द्रो निर्ऋतिः प्रचेताः
सोमोऽग्निरीशः पवनोऽर्को विरिञ्चः ।
आदित्यविश्वे वसवोऽथ साध्या
मरुद्गणा रुद्रगणाः ससिद्धाः ॥१४॥

अहं महेन्द्रः निर्ऋतिः प्रचेताः सोमः अग्निः ईशः पवनः अर्कः विरिञ्चः आदित्य विश्वे वसवः अथ साध्या मरुत्गणाः रुद्रगणाः ससिद्धाः ॥१४॥

अहं महेन्द्रः	मैं (यम) इन्द्र,	विश्वे	विश्वे देवा
निर्ऋतिः	निर्ऋति देवता,	वसवः अथ	(आठो) वसु और
प्रचेताः सोमः	वरुण, चन्द्रमा,	साध्या	साध्यगण,
अग्निः ईशः	अग्नि, शिव,	मरुतगणाः	मरुद्गण,
पवनः अर्कः	वायु, सूर्य	रुद्रगणाः	रुद्रगण
विरिञ्चः	ब्रह्मा,	ससिद्धाः	सिद्धोंके साथ ॥१४॥
आदित्य	आदित्य,		

अन्ये च ये विश्वसृजोऽमरेशा
भृग्वादयोऽस्पृष्टरजस्तमस्काः ।
यस्येहितं न विदुः स्पृष्टमाया
सत्त्वप्रधाना अपि किं ततोऽन्ये ॥१५॥

अन्ये च ये विश्वसृजः अमर ईशाः भृगु आदयः अस्पृष्ट रजः तमस्काः यस्य ईहितं न विदुः स्पृष्टमायाः सत्त्व प्रधाना अपि किं ततः अन्ये ॥१५॥

च ये अन्ये	और जो दूसरे	सत्त्व प्रधाना	सत्त्वगुण प्रधान
विश्वसृजः	विश्व-स्रष्टा (प्रजा-पति)	अपि	(होनेपर) भी
		स्पृष्टमायाः	माया-ग्रस्त होनेसे
अमर ईशाः	देवताओंके स्वामी	यस्य ईहितं	जिनकी चेष्टाको
अस्पृष्ट रजः	रजोगुण,	न विन्दुः	नहीं जानते
तमस्काः	तमोगुणसे अछूते	ततः अन्ये	तब दूसरे
भृगु आदयः	भृगु आदि	किं	क्या (जानेंगे) ॥१५॥

यं वै न गोभिर्मनसासुभिर्वा
हृदा गिरा वासुभृतो विचक्षते ।
आत्मानमन्तर्हृदि सन्तमात्मनां
चक्षुर्यथैवाकृतयस्ततः परम् ॥१६॥

यं वै न गोभिः मनसा असुभिः वा हृदा गिरा वा असुभृतः विचक्षते आत्मनं अन्तः हृदि सन्तं आत्मनां चक्षुः यथा एव आकृतयः ततः परम् ॥१६॥

यथा आकृतयः	जैसे आकृतियां (घट-पटादि)	वा असुभिः	अथवा प्राण (प्राणायाम) से,
ततः परं	उनसे परे (प्रकाशक)	हृदा गिरा वा	हृदय या वाणीसे
चक्षुः	नेत्रोंको (नहीं देख सकते)	आत्मनं अन्तः	अपने ही भीतर
		हृदि	हृदयमें
असुभृतः	(वैसे ही कोई प्राणी	आत्मनां सन्तं	आत्मा रूपसे विद्यमान
यं वै	जिसे निश्चय ही		
गोभिः मनसा	इन्द्रियोंसे, मनसे,	विचक्षते	नहीं देख सकते॥१६॥

तस्यात्मतन्त्रस्य हरेरधीशितुः
परस्य मायाधिपतेर्महात्मनः ।
प्रायेण दूता इह वै मनोहरा-
श्चरन्ति तद्रूपगुणस्वभावाः ॥१७॥

तस्य आत्म तन्त्रस्य हरेः अधीशितुः परस्य माया अधिपतेः महात्मनः प्रायेण दूता इह वै मनोहराः चरन्ति तद् रूप गुण स्वभावाः ॥१७॥

तस्य आत्म	उन परम	तद् रूप गुण	उन्हींके रूप, गुण,
तन्त्रस्य	स्वतन्त्र	स्वभावाः	स्वभाव वाले
अधीशितुः	सर्वेश्वर	मनोहराः	मनोहर
माया अधिपतेः	मायापति	दूता वै	दूत निश्चय ही
परस्य	परमपुरुष,	प्रायेण इह	प्रायः इस संसारमें
महात्मनः	महात्मा	चरन्ति	विचरण करते रहते
हरेः	श्रीहरिके		हैं ॥१७॥

भूतानि विष्णोः सुरपूजितानि
दुर्दर्शलिङ्गानि महाद्भुतानि ।
रक्षन्ति तद्भक्तिमतः परेभ्यो
मत्तश्च मर्त्यानथ सर्वतश्च ॥१८॥

भूतानि विष्णोः सुरपूजितानि दुर्दर्श लिङ्गानि महा अद्भुतानि रक्षन्ति तद् भक्तिमतः परेभ्यः मत्तः च मर्त्यान् अथ सर्वतः च ॥१८॥

सुरपूजितानि	देवताओंसे भी पूजित	मर्त्यान्	मनुष्योंकी
दुर्दर्श लिङ्गानि	दुर्लभ दर्शन वाले,	परेभ्यः	शत्रुओंसे
महा अद्भुतानि	अत्यन्त अद्भुत	च मत्तः	तथा मुझसे
विष्णोः भूतानि	भगवान् विष्णुके स्वरूप भूत (पार्षद)	अथ सर्वतः च	और सब ओरसे ही
		रक्षन्ति	रक्षा करते हैं ॥१८॥
तद् भक्तिमतः	उन (भगवान्) के भक्तिमान		

धर्मं तु साक्षाद्भगवत्प्रणीतं
न वै विदुर्ऋषयो नापि देवाः ।
न सिद्धमुख्या असुरा मनुष्याः
कुतश्च विद्याधरचारणादयः ॥१९॥

धर्मं तु साक्षात् भगवत् प्रणीतं न वै विदुः ऋषयः न अपि देवाः न सिद्धमुख्याः असुराः मनुष्याः कुतः च विद्याधर चारण आदयः ॥१९॥

साक्षात् भगवत्	साक्षात् भगवान् द्वारा	**असुराः**	असुर,
		मनुष्याः	मनुष्य
प्रणीतं धर्मं	निर्मित (भागवत) धर्मको	**न**	नहीं (जानते)
		विद्याधर चारण	विद्याधर, चारण
ऋषयः न	ऋषि नहीं	**च आदयः कुतः**	आदि तो कहाँसे (जान सकते हैं) ॥१९॥
वै विदुः	ही जानते,		
देवाः अपि न	देवता भी नहीं,		
सिद्धमुख्याः	सिद्ध-प्रधान,		

स्वयम्भूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः ।
प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम् ॥२०॥

स्वयंभूः नारदः शम्भुः कुमारः कपिलः मनुः प्रह्लादः जनकः भीष्मः बलिः वैयासकिः वयम् ॥२०॥

स्वयम्भूः	ब्रह्माजी,	**प्रह्लादः जनकः**	प्रह्लाद, जनक,
नारद शम्भुः	नारद, शिव,	**भीष्मः बलिः**	भीष्म, राजा बलि,
कुमारः	सनकादि (चारों) कुमार,	**वैयासकिः**	व्यासनन्दन शुक-देवजी और
कपिलः मनुः	कपिल, मनु,	**वयम्**	हम (यमराज) ॥२०

द्वादशैते विजानीमो धर्मं भागवतं भटाः ।
गुह्यं विशुद्धं दुर्बोधं यं ज्ञात्वामृतमश्नुते ॥२१॥

द्वादश एते विजानीमः धर्मं भागवतं भटाः गुह्यं विशुद्धं दुर्बोधं यं ज्ञात्वा अमृतं अश्नुते ॥२१॥

भटाः	अरे दूतो !	**दुर्बोधं**	जाननेमें कठिन
एते द्वादश	ये बारह ही	**भागवतं धर्मं**	भागवत धर्मको
गुह्यं विशुद्धं	गोपनीय, परमशुद्ध,	**विजानीमः**	जानते हैं,

यं ज्ञात्वा	जिसे जानकर (जाननेवाला)	अमृतं अश्नुते	अमरत्व भोगता है ॥२१॥

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां धर्मः परः स्मृतः ।
भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः ॥२२॥

एतावान् एव लोके अस्मिन् पुंसां धर्मः परः स्मृतः भक्तियोगः भगवति तत् नाम ग्रहण आदिभिः ॥२२॥

अस्मिन् लोके	इस (मनुष्य) लोकमें	भगवति	भगवान्‌में
एतावान् एव	इतना मात्र ही	तत् नाम	उनके नाम
पुंसां परः धर्मः	पुरुषका परम-धर्म	ग्रहण आदिभिः	लेने आदिके द्वारा
स्मृतः	कहा गया है	भक्तियोगः	भक्ति हो ॥२३॥

नामोच्चारणमाहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः ।
अजामिलोऽपि येनैव मृत्युपाशादमुच्यत ॥२३॥

नाम उच्चारण माहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः अजामिलः अपि येन एव मृत्युपाशात् अमुच्यत ॥२३॥

पुत्रकाः	मेरे नन्हे बच्चो,	अजामिलः अपि	अजामिल (जैसा पापी) भी
हरेः	श्रीहरिके	मृत्युपाशात्	मृत्युके फन्दोंसे
नाम उच्चारण	नाम लेनेकी	अमुच्यत	छूट गया ॥२३॥
माहात्म्यं पश्यत	महिमा देखो		
येन एव	केवल जिससे		

एतावतालमघनिर्हरणाय पुंसां
सङ्कीर्तनं भगवतो गुणकर्मनाम्नाम् ।
विक्रुश्य पुत्रमघवान् यदजामिलोऽपि
नारायणेति म्रियमाण इयाय मुक्तिम् ॥२४॥

एतावत अलं अघ निर्हरणाय पुंसां संकीर्तनं भगवतः गुणकर्मनाम्नां विक्रुश्य पुत्रं अघवान् यत् अजामिलः अपि नारायण इति म्रियमाण इयाय मुक्तिम् ॥२४॥

भगवतः	भगवान्के
गुणकर्मनाम्नां	गुण, कर्म, नामोंका
संकीर्तनं	संकीर्तन
पुंसां	पुरुषके
अघ निर्हरणाय	पाप नष्ट करनेके लिए
एतावत अलं	इतना ही पर्याप्त है,
यत् अघवान्	क्योंकि पापी
अजामिलः अपि	अजामिल भी
म्रियमाण	मरते समय
नारायण इति	'नारायण' इस प्रकार
पुत्रं विक्रुश्य	पुत्रको पुकारकर
मुक्तिं इयाय	मुक्ति पा गया ॥२४॥

प्रायेण वेद तदिदं न महाजनोऽयं
देव्या विमोहितमतिर्बत माययालम् ।
त्रय्यां जडीकृतमतिर्मधुपुष्पितायां
वैतानिके महति कर्मणि युज्यमानः ॥२५॥

प्रायेण वेद तत् इदं न महाजनः अयं देव्या विमोहित मतिः बत मायया अलं त्रय्यां जडीकृत मतिः मधुः पुष्पितायां वैतानिके महति कर्मणि युज्यमानः ॥२५॥

बत	अहो
मायया देव्या	माया देवी द्वारा
अलं विमोहित	पूर्ण मोहित
मतिः	बुद्धि
मधु पुष्पितायां	मधुर पुष्पिता (अर्थ-वादमयी)
त्रय्यां	वेदत्रयी (की वाणी) से
जडीकृत मतिः	जड़ बनी बुद्धिके कारण
वैतानिके	बड़े यज्ञोंके
महति कर्मणि	महान् (विस्तार-वाले) कर्मोंमें
युज्यमानः	लगकर
अयं महाजनः	ये बड़े विद्वान भी
प्रायेण	प्रायः
तत् इदं	उस इस (भागवत-धर्म) को
न वेद	नहीं जानते ॥२५॥

एवं विमृश्य सुधियो भगवत्यनन्ते
सर्वात्मना विदधते खलु भावयोगम् ।
ते मे न दण्डमर्हन्त्यथ यद्यमीषां
स्यात् पातकं तदपि हन्त्युरुगायवादः ॥२६॥

एवं विमृश्य सुधियः भगवति अनन्ते सर्वं आत्मना विदधते खलु भावयोगं ते मे न दण्डं अर्हन्ति अथ यदि अमीषां स्यात् पातकं तत् अपि हन्ति उरुगाय वादः ॥२६॥

एवं विमृश्य	ऐसा विचार करके	**अथ यदि**	फिर यदि
सुधियः	अच्छी बुद्धिवाले	**अमीषां**	इन लोगोंका
सर्वं आत्मना	सम्पूर्ण मनसे	**पातकं स्यात्**	(कुछ) पाप भी हो
भगवति अनन्ते	भगवान् अनन्तमें	**तत् अपि**	उसे भी
भावयोगं	भक्तिभाव	**उरुगाय**	उत्तम श्लोक भगवान्‌का
खलु विदधते	ही करते हैं,		
ते मे दण्डं	वे मेरे दण्डके	**बादः हन्ति**	कीर्तन नष्ट कर
अर्हन्ति न	भागी नहीं होते,		देता है ॥२६॥

ते देवसिद्धपरिगीतपवित्रगाथा
ये साधवः समदृशो भगवत्प्रपन्नाः ।
तान् नोपसीदत हरेर्गदयाभिगुप्तान्
नैषां वयं न च वयः प्रभवाम दण्डे ॥२७॥

ते देव सिद्ध परिगीत पवित्र गाथा ये साधवः समदृशः भगवत् प्रपन्नाः तान् न उपसीदत हरेः गदया अभिगुप्तान् न एषां वयं न च वयः प्रभवाम दण्डे ॥२७॥

ये साधवः	जो सत्पुरुष	**देव सिद्ध**	देवता, सिद्धों द्वारा
समदृशः	समदर्शी और	**परिगीत**	गाया जाता है,
भगवत् प्रपन्नाः	भगवान्‌की शरणमें हैं	**तान्**	उन
ते गाथा	उनका चरित	**हरेः गदया**	श्रीहरिकी गदासे

अभिगुप्तान्	सुरक्षितोंके	न वयं	न हम
उपसीदत न	पास मत जाना,	च न वयः	और न काल
एषां दण्डे	इनको दण्ड देनेमें	प्रभवाम	समर्थ हैं ॥२७॥

तानानयध्वमसतो विमुखान् मुकुन्द-
पादारविन्दमकरन्दरसादजस्रम् ।
निष्किञ्चनैः परमहंसकुलै रसज्ञै-
र्जुष्टाद् गृहे निरयवर्त्मनि बद्धतृष्णान् ॥२८॥

तान् आनयध्वं असतः विमुखान् मुकुन्द पादारविन्द मकरन्द रसात् अजस्रं निष्किञ्चनैः परम हंस कुलैः रसज्ञैः जुष्टात् गृहे निरयवर्त्मनि बद्ध तृष्णान् ॥२८॥

निष्किञ्चनैः	अकिंचन,	विमुखान्	विमुख होकर
रसज्ञैः	रसज्ञ	निरयवर्त्मनि	नरकके मार्गरूप
परम हंस कुलैः	परमहंस-गणों द्वारा	गृहे	गृहस्थाश्रममें
अजस्रं जुष्टात्	निन्तर सेवित	बद्ध तृष्णान्	तृष्णासे बँधे (जो हैं)
मुकुन्द	मुकुन्दके	तान् असतः	उन दुष्टोंको
पादारविन्द	चरण-कमल	आनयध्वं	ले आओ ॥२८॥
मकरन्द रसात्	मकरन्द-रससे		

जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं
चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम् ।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि
तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान् ॥२९॥

जिह्वा न वक्ति भगवत् गुण नामधेयं चेतः च न स्मरति तत् चरणारविन्दं कृष्णाय नः नमति यत् शिर एकदा अपि तान् आनयध्वं असतः अकृत विष्णु कृत्यान् ॥२९॥

जिह्वा भगवत्	(जिनकी) जीभ भगवान्के	गुण नामधेयं	गुणों और नामोंको
		न वक्ति	नहीं बोलती,

च चेतः	और (जिसका) चित्त	कृष्णाय	श्रीकृष्णके लिए
तत्	उनके	नः नमति	नहीं झुकता
चरणारविन्दं	चरण-कमलोंका	विष्णु कृत्यान्	भगवत्-सेवा
न स्मरति	स्मरण नहीं करता	अकृत	न करनेवाले
यत् शिर	जिसका मस्तक	तान् असतः	उन दुष्टोंको
एकदा अपि	एक बार भी	आनयध्वं	ले आओ ॥२९॥

तत् क्षम्यतां स भगवान् पुरुषः पुराणो
नारायणः स्वपुरुषैर्यदसत्कृतं नः ।
स्वानामहो नविदुषां रचिताञ्जलीनां
क्षान्तिर्गरीयसि नमः पुरुषाय भूम्ने ॥३०॥

तत् क्षम्यतां स भगवान् पुरुषः पुराणः नारायणः स्वपुरुषैः यत् असत् कृतं नः स्वानां अहो नविदुषां रचित अञ्जलीनां क्षान्तिः गरीयसि नमः पुरुषाय भूम्ने ॥३०॥

स्वपुरुषैः	अपने सेवकों द्वारा	अञ्जलीनां	हाथ
यत् नः	जो हमसे ही	रचित	जोड़े
असत् कृतं	(भगवान्का) अपमान हुआ	स्वानां	अपने जनोंका (अपराध)
स भगवान्	वे भगवान्	क्षान्तिः	क्षमा कर देना (उनकी)
पुराणः पुरुषः	पुराण-पुरुष	गरीयसि	महानता है,
नारानणः	नारायण	भूम्ने पुरुषाय	(उन) भूमा-पुरुषको
तत् क्षम्यतां	उसे क्षमा करें,	नमः	नमस्कार ॥३०॥
अहो	अहो		
नविदुषां	अज्ञानी		

*श्रीशुक उवाच**—

तस्मात् संकीर्तनं विष्णोर्जगन्मङ्गलमंहसाम् ।
महतामपि कौरव्य विद्ध्यैकान्तिकनिष्कृतिम् ॥३१॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

तस्मात् सङ्कीर्तन विष्णोः जगत् मङ्गलं अंहसां महतां अपि कौरव्य विद्धि ऐकान्तिक निष्कृतिम् ॥३१॥

कौरव्य	परीक्षित !	महतां	महा
तस्मात्	इसलिए	अंहसां अपि	पापोंका भी
जगत् मङ्गलं	विश्व कल्याणकारी	ऐकान्तिक	आत्यन्तिक
विष्णोः	भगवान् विष्णुका	निष्कृतिं विद्धि	प्रायश्चित जानो ॥३१॥
सङ्कीर्तनं	कीर्तन		

शृण्वतां गृणतां वीर्याण्युद्दामानि हरेर्मुहुः ।
यथा सुजातया भक्त्या शुद्धयेन्नात्मा व्रतादिभिः ॥३२॥

शृण्वतां गृणतां वीर्याणि उद्दामानि हरेः मुहुः यथा सुजातया भक्त्या शुद्धयेत न आत्मा व्रतादिभिः ॥३२॥

उद्दामानि	निर्बन्ध	भक्त्या	भक्तिसे
मुहुः	बार-बार	यथा आत्मा	जैसा चित्त
हरेः वीर्याणि	भगवान् श्रीहरिके पराक्रमोंका	शुद्ध्येत व्रतादिभिः न	शुद्ध होता है (वैसा) व्रत आदिसे नहीं होता है ॥३२॥
शृण्वतां गृणतां	सुनने, वर्णन करनेसे		
सुजातया	भली प्रकार उत्पन्न		

कृष्णाङ्घ्रिपद्ममधुलिण् न पुनर्विसृष्ट-
मायागुणेषु रमते वृजिनावहेषु ।
अन्यस्तु कामहत आत्मरजः प्रमार्ष्टु-
मीहेत कर्म यत एव रजः पुनः स्यात् ॥३३॥

कृष्ण अङ्घ्रि पद्म मधुलिट् न पुनः विसृष्ट माया गुणेषु रमते वृजिन आवहेषु अन्यः तु कामहत आत्मरजः प्रमार्ष्टुम् ईहेत कर्म यत एव रजः पुनः स्यात् ॥३३॥

कृष्ण अङ्घ्रि	श्रीकृष्णके चरण	कामहत	कामनाओंके मारे
पद्म मधुलिट्	कमल-मधुका स्वाद लेनेवाला	अन्यः तु	दूसरे तो
		आत्मरजः	अपने मनोमलको
वृजिन आवहेषु	कष्टदायी	प्रमार्ष्टुम्	मांजनेके लिए
विसृष्ट माया	त्यागे हुए मायाके	कर्म ईहेत	कर्म करना चाहते हैं
गुणषु	गुणोंमें	यत एव पुनः	जिनसे कि फिर
पुनः न रमते	फिर नहीं रमता,	रजः स्यात्	दोष होते हैं ॥३३॥

इत्थं स्वभर्तृ गदितं भगवन्महित्वं
संस्मृत्य विस्मितधियो यमकिङ्करास्ते ।
नैवाच्युताश्रयजनं प्रति शङ्कमाना
द्रष्टुं च बिभ्यति ततः प्रभृति स्म राजन् ॥३४॥

इत्थं स्वभर्तृ गदितं भगवत् महित्वं संस्मृत्य विस्मितधियः यमकिङ्कराः ते न एव अच्युत आश्रयजनं प्रति शङ्कमाना द्रष्टुं च बिभ्यति ततः प्रभृति स्म राजन् ॥३४॥

राजन्	राजन् !	ततः प्रभृति स्म	उस समयसे ही
इति	इस प्रकार	अच्युत	भगवान्के
स्वभर्तृ गदितं	अपने स्वामीकी कही	आश्रयजनं	आश्रितजनसे
भगवत् महित्वं	भगवान्की महिमा-का	प्रति शङ्कमाना	आशङ्कित रहने लगे,
		न एव द्रष्टुं	(उन्हें) नहीं ही देखते
संस्मृत्य	स्मरण करके		
विस्मितधियः	विस्मित बुद्धि	च बिभ्यति	और (उनसे) डरते हैं ॥३४॥
ते यमकिङ्कराः	वे यमराजके सेवक		

इतिहासमिमं गुह्यं भगवान् कुम्भसम्भवः ।
कथयामास मलय आसीनो हरिमर्चयन् ॥३५॥

इतिहासं इमं गुह्यं भगवान् कुम्भ सम्भवः कथयामास मलय आसीनः हरिं अर्चयन् ॥३५॥

इमं गुह्यं	इस गोपनीय	**मलय आसीनः**	मलय पर्वतपर बैठकर
इतिहासं	इतिहासको	**हरिं अर्चयन्**	श्रीहरिकी पूजा करते हुए
भगवान्	भगवान्	**कथयामास**	कहा है ॥३५॥
कुम्भ सम्भवः	अगस्त्यने		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे यमपुरुषसंवादे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

राजोवाच-

देवासुरनृणां सर्गो नागानां मृगपक्षिणाम् ।
सामासिकस्त्वया प्रोक्तो यस्तु स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥१॥

देव असुर नृणां सर्गः नागानां मृग पक्षिणां सामासिकः त्वया प्रोक्तः यः तु स्वायम्भुवे अन्तरे ॥१॥

यः तु	जो तो	**सर्गः**	सृष्टि हुई थी
स्वायम्भुवे	स्वायम्भुव	**त्वया**	आपने
अन्तरे	मन्वन्तरमें	**सामासिकः**	(उसका) संक्षिप्त
देव असुर	देव, असुर,		रूपमें
नृणां नागानां	मनुष्य, नाग,	**प्रोक्तः**	वर्णन किया है ॥१॥
मृग पक्षिणां	पशु, पक्षियोंकी		

तस्यैव व्यासमिच्छामि ज्ञातुं ते भगवन् यथा ।
अनुसर्गं यया शक्त्या ससर्ज भगवान् परः ॥२॥

तस्य एव व्यासं इच्छामि ज्ञातुं ते भगवन् यथा अनुसर्गं यया शक्त्या ससर्ज भगवान् परः ॥२॥

भगवन्	भगवन् !	**अनुसर्गं**	पीछेकी सृष्टि
ते तस्य एव	आपसे उसीका	**ससर्ज**	उत्पन्न की
व्यासं	विस्तार	**ज्ञातुं इच्छामि**	जानना चाहता
भगवान् परः	परम पुरुष भगवान्ने		हूँ ॥२॥
यया शक्त्या	जिन शक्तियोंसे		

सूत उवाच–

इति सम्प्रश्नमाकर्ण्य राजर्षेर्बादरायणिः ।
प्रतिनन्द्य महायोगी जगाद मुनिसत्तमाः ॥३॥

इति सम्प्रश्नं आकर्ण्य राजर्षेः बादरायणिः प्रतिनन्द्य महायोगी जगाद मुनिसत्तमाः ॥३॥

मुनिसत्तमाः	(शौनकादि) मुनि-श्रेष्ठो !	**बादरायणिः**	व्यास-नन्दन शुक-देवजी
राजर्षेः	राजर्षि परीक्षितका	**प्रतिनन्द्य**	उसका अभिनन्दन करके
इति सम्प्रश्नं	इस प्रकारका प्रश्न	**जगाद**	बोले ॥३॥
आकर्ण्य	सुनकर		
महायोगी	महायोगी		

श्रीशुक उवाच–

यदा पचेतसः पुत्रा दश प्राचीनबर्हिषः ।
अन्तः समुद्रादुन्मग्ना ददृशुर्गां द्रुमैर्वृताम् ॥४॥

यदा प्रचेतसः पुत्रा दश प्राचीन बर्हिषः अन्तः समुद्रात् उन्मग्ना ददृशुः गां द्रुमैः वृताम् ॥४॥

यदा प्राचीन	जब प्राचीन	**उन्मग्ना**	ऊपर निकले (तो)
बर्हिषः	वर्हिके	**गां द्रुमैः वृतां**	पृथ्वीको वृक्षोंसे घिरी
प्रचेतसः	प्रचेता नामके		
दश पुत्रा	दसो पुत्र	**ददृशुः**	देखा ॥४॥
अन्तः समुद्रात्	समुद्रके भीतरसे		

द्रुमेभ्यः क्रुध्यमानास्ते तपोदीपितमन्यवः ।
मुखतो वायुमग्निं च ससृजुस्तद्दिधक्षया ॥५॥

द्रुमेभ्यः क्रुध्यमानाः ते तपः दीपित मन्यवः मुखतः वायुं अग्निं च ससृजुः तत् विधक्षया ॥५॥

ते द्रुमेभ्यः	वे वृक्षोंपर	तत् विधक्षया	उन (वृक्षों) को भस्म कर देनेकी इच्छासे
क्रुध्यमानाः	क्रोधित होकर		
तपः दीपित	तपस्यासे प्रदीप्त		
मन्यवः	क्रोधवाले	मुखतः	अपने मुखसे
		वायुं च अग्निं	वायु और अग्नि
		ससृजुः	उत्पन्न की ॥५॥

ताभ्यां निर्दह्यमानांस्तानुपलभ्य कुरूद्वह ।
राजोवाच महान् सोमो मन्युं प्रशमयन्निव ॥६॥

ताभ्यां निर्दह्यमानान् तान् उपलभ्य कुरुद्वह राजा उवाच महान् सोमः मन्युं प्रशमयन् इव ॥६॥

कुरुद्वह	परीक्षित !	महान् राजा	राजाधिराज
ताभ्यां	उस (वायु-अग्नि) से	सोमः	चन्द्रमा
तान्	उन (वृक्षों) को	मन्युं	(उनके) क्रोधको
निर्दह्यमानान्	जलाये जाते	प्रशमयन् इव	शान्त करते हुए-से
उपलभ्य	पाकर (देखकर)	उवाच	बोले ॥६॥

सोम उवाच—*

मा द्रुमेभ्यो महाभागा दीनेभ्यो द्रोग्धुमर्हथ ।
विवर्धयिषवो यूयं प्रजानां पतयः स्मृताः ॥७॥

मा द्रुमेभ्यः महाभागा दीनेभ्यः द्रोग्धुं अर्हथ विवर्धयिषवः यूयं प्रजानां पतयः स्मृताः ॥७॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

महाभागा	महाभागो !	**मा अर्हथ**	नहीं करना चाहिए (क्योंकि)
दीनेभ्यः	विचारे	**विवर्धयिषवः**	(प्रजाको) बढ़ाने-वाले
द्रुमेभ्यः	वृक्षोंसे (आप सबको)	**प्रजानां पतयः स्मृताः**	(आप) प्रजापति कहे गये हैं ॥७॥
द्रोग्धुं	शत्रुता		

अहो प्रजापतिपतिर्भगवान् हरिरव्ययः ।
वनस्पतीनोषधीश्च ससर्जोर्जमिषं विभुः ॥८॥

अहो प्रजापति पतिः भगवान् हरिः अव्ययः वनस्पतीन् ओषधीः च ससर्ज ऊर्जं आमिषं विभुः ॥८॥

अहो	अरे,	**वनस्पतीन्**	वृक्षोंको
प्रजापति पतिः	प्रजापतियोंके स्वामी	**च ओषधीः**	और औषधियों (तृणादि) को
अव्ययः	अविनाशी		
विभुः	सर्वव्यापक	**ऊर्जं आमिषं**	शक्तिदायी आहार
भगवान् हरिः	भगवान् श्रीहरिने	**ससर्ज**	बनाया है ॥८॥

अन्नं चराणामचरा ह्यपदः पादचारिणाम् ।
अहस्ता हस्तयुक्तानां द्विपदां च चतुष्पदः ॥९॥

अन्नं चराणां अचराः हि अपदः पादचारिणां अहस्ताः हस्तयुक्तानां द्विपदां च चतुष्पदः ॥९॥

हि	क्योंकि	**अपदः**	बिना पैर वाले (तृणादि)
चराणां	चलने वालों (पक्षी आदि) के	**अहस्ताः**	बिना हाथ वाले (पशु, फल आदि)
अचराः	स्थावर (वृक्ष आदि)		
पादचारिणां	पैरोंसे चलनेवालों (पशुओं) के	**हस्तयुक्तानां**	हाथ वालों (बन्दर, गुरिले आदि)

च चतुष्पदः	और चार पैर वाले (पशु)	**अन्नं**	आहार (के साधन) हैं ॥९॥
द्विपदां	दो पैर वाले (मनुष्यों) के		

यूयं च पित्रान्वादिष्टा देवदेवेन चानघाः ।
प्रजासर्गाय हि कथं वृक्षान् निर्दग्धुमर्हथ ॥१०॥

यूयं च पित्रा अन्वादिष्टा देवदेवेन च अनघाः प्रजासर्गाय हि कथं वृक्षान् निर्दग्धुं अर्हथ ॥१०॥

अनघाः	निष्पापो !	**अन्वादिष्टा**	आदेश प्राप्त हैं (फिर)
यूयं च	आप लोग भी		
पित्रा	अपने पिता	**वृक्षान्**	वृक्षोंको
च देवदेवेन	तथा देवाधिदेव भगवान् द्वारा	**निर्दग्धुं**	जलानेके
		कथं अर्हथ	कैसे योग्य हैं ॥१०॥
प्रजासर्गाय	प्रजाकी सृष्टिके लिए		

आतिष्ठत सतां मार्गं कोपं यच्छत दीपितम् ।
पित्रा पितामहेनापि जुष्टं वः प्रपितामहैः ॥११॥

आतिष्ठत सतां मार्गं कोपं यच्छत दीपितं पित्रा पितामहेन अपि जुष्टं वः प्रपितामहैः ॥११॥

वः	आप लोगोंके	**सतां मार्गं**	सत्पुरुषोंके मार्गपर
पित्रा पितामहेन	पिता, पितामह,	**आतिष्ठत**	बने रहिये !
प्रपितामहैः	प्रपितामहसे	**दीपितं कोपं**	प्रदीप्त क्रोधको
अपि	भी	**यच्छत**	शान्त कीजिए ॥११॥
जुष्टं	सेवित		

तोकानां पितरौ बन्धू दृशः पक्ष्म स्त्रियाः पतिः ।
पतिः प्रजानां भिक्षूणां गृह्यज्ञानां बुधः सुहृत् ॥१२॥

तोकानां पितरौ बन्धू दृशः पक्ष्म स्त्रियाः पतिः पतिः प्रजानां भिक्षूणां गृह अज्ञानां बुधः सुहृत् ॥१२॥

तोकानां	शिशुओंके (जैसे)	**भिक्षूणां**	भिक्षुकोंके
बन्धू	सम्बन्धी (रक्षक)	**गृह**	गृहस्थ,
पितरौ	माता, पिता,	**अज्ञानां**	अज्ञानियोंके
दृशः	नेत्रोंके	**बुधः**	ज्ञानी (रक्षक) हैं
पक्ष्म	पलक,	**प्रजानां**	प्रजाका (वैसे ही)
स्त्रियाः	स्त्रियोंके	**सुहृत्**	हितैषी
पतिः	(उनके) पति,	**पतिः**	राजा है ॥१२॥

अन्तर्देहेषु भूतानामात्माऽऽस्ते हरिरीश्वरः ।
सर्वं तद्धिष्ण्यमीक्षध्वमेवं वस्तोषितो ह्यसौ ॥१३॥

अन्तः देहेषु भूतानां आत्मा आस्ते हरिः ईश्वरः सर्वं तत् धिष्ण्यं ईक्षध्वं एवं वः तोषितः हि असौ ॥१३॥

भूतानां हि	प्राणियोंके क्योंकि	**ईक्षध्वं**	देखो
अन्तः देहेषु	शरीरके भीतर	**एवं असौ**	इस प्रकार ये
ईश्वरः हरिः	सर्व संचालक श्रीहरि		(परमात्मा)
आत्मा आस्ते	आत्मा रूपसे	**वः तोषितः**	आप लोगों द्वारा
	विराजमान हैं,		सन्तुष्ट कर लिये
सर्वं तत् धिष्ण्यं	(अतः) सबको		जाएँगे ॥१३॥
	उनका मन्दिर		

यः समुत्पतितं देह आकाशान्मन्युमुल्बणम् ।
आत्मजिज्ञासया यच्छेत् स गुणानतिवर्तते ॥१४॥

यः समुत् पतित देह आकाशात् मन्युं उल्बणं आत्मजिज्ञासया यच्छेत् स गुणान् अतिवर्तते ॥१४॥

यः देह	जो हृदय	**समुत् पतितं**	उबलते
आकाशात्	आकाशमें	**उल्बणं मन्युं**	भयंकर क्रोधको

आत्मजिज्ञासया	आत्म विचारसे	**स गुणान्**	वह (प्रकृतिके) गुणोंसे
यच्छेत्	नियन्त्रित कर लेता है,	**अतिवर्तते**	पार हो जाता है ॥१४॥

अलं दग्धैर्द्रुमैर्दीनैः खिलानां शिवमस्तु वः ।
वार्क्षी ह्येषा वरा कन्या पत्नीत्वे प्रतिगृह्यताम् ॥१५॥

अलं दग्धैः द्रुमैः दीनैः खिलानां शिवं अस्तु वः वार्क्षी हि एषा वरा कन्या पत्नीत्वे प्रतिगृह्यताम् ॥१५॥

दीनैः द्रुमैः	बिचारे वृक्षोंको	**कन्या**	कन्या
दग्धैः अलं	जलाना बन्द कीजिए ।	**हि वरा**	क्योंकि श्रेष्ठा है
वार्क्षी	वृक्षोंकी	**पत्नीत्वे**	पत्नीके रूपमें
		प्रतिगृह्यतां	ग्रहण कीजिए ॥१५॥

श्रीशुक उवाच-*

इत्यामन्त्र्य वरारोहां कन्यामाप्सरसीं नृप ।
सोमो राजा ययौ दत्त्वा ते धर्मेणोपयेमिरे ॥१६॥

इति आमन्त्र्य वरारोहां कन्यां आप्सरसीं नृप सोमः राजा ययौ दत्त्वा ते धर्मेण उपयेमिरे ॥१६॥

नृप	राजन् परीक्षित !	**वरारोहां**	सुन्दरी
इति आमन्त्र्य	इस प्रकार समझाकर	**कन्यां दत्त्वा**	कन्या देकर
राजा सोमः	राजा चन्द्र	**ययौ**	चले गये
आप्सरसीं	अप्सरा (प्रम्लोचा) की	**ते धर्मेण**	उन्होंने धर्म पूर्वक
		उपयेमिरे	(उससे) विवाह किया ॥१६॥

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

तेभ्यस्तस्यां समभवद् दक्षः प्राचेतसः किल ।
यस्य प्रजाविसर्गेण लोका आपूरितास्त्रयः ॥१७॥

तेभ्यः तस्यां समभवत् दक्षः प्राचेतसः किल यस्य प्रजाविसर्गेण लोकाः आपूरिताः त्रयः ॥१७॥

तेभ्यः	उन (प्रचेताओं) से	**यस्य**	जिनकी
तस्यां	उससे	**प्रजाविसर्गेण**	प्रजा-सृष्टिसे
प्राचेतसः दक्षः	प्राचेतस दक्ष	**त्रयः लोकाः**	तीनों लोक
समभवत्	उत्पन्न हुए	**आपूरिताः**	भर गये ॥१७॥
किल	अरे		

यथा ससर्ज भूतानि दक्षो दुहितृवत्सलः ।
रेतसा मनसा चैव तन्ममावहितः शृणु ॥१८॥

यथा ससर्ज भूतानि दक्षः दुहितृ वत्सलः रेतसा मनसा च एव तत् मम अवहितः शृणु ॥१८॥

दुहितृ वत्सलः	पुत्रियोंसे स्नेह करनेवाले	**भूतानि ससर्ज**	प्राणियोंकी सृष्टि की
दक्षः	दक्षने	**तत् मम**	वह मेरी बात
यथा मनसा	जैसे मन (संकल्प) से	**अवहितः**	एकाग्र होकर
च रेतसा एव	और वीर्यसे भी	**शृणु**	सुनो ॥१८॥

मनसैवासृजत्पूर्वं प्रजापतिरिमाः प्रजाः ।
देवासुरमनुष्यादीन्नभःस्थलजलौकसः ॥१९॥

मनसा एव असृजत् पूर्वं प्रजापतिः इमाः प्रजाः देव असुर मनुष्य आदीन् नभः स्थल जलौकसः ॥१९॥

पूर्वं	पहिले	**नभः स्थल**	आकाश, पृथ्वी,
प्रजापतिः	प्रजापति (दक्ष) ने	**जलौकसः**	जलमें रहने वाली
मनसा एव	मनसे ही	**इमाः**	इस

देव असुर मनुष्य आदीन् प्रजाः	देवता, असुर, मनुष्य आदि प्रजाको	**असृजत्**	उत्पन्न किया ॥१९॥

तमबृंहितमालोक्य प्रजासर्गं प्रजापतिः ।
विन्ध्यपादानुपव्रज्य सोऽचरद् दुष्करं तपः ॥२०॥

तं अबृंहितं आलोक्य प्रजासर्गं प्रजापतिः विन्ध्यपादान् उपव्रज्य सः अचरत् दुष्करं तपः ॥२०॥

तं प्रजासर्गं	उस प्रजा सृष्टिको	**उपव्रज्य**	पहुँचकर
अबृंहितं	बढ़ते न	**सः दुष्करं**	उन्होंने कठिन
आलोक्य	देखकर	**तपः**	तपस्या
प्रजापतिः	प्रजापति दक्षने	**अचरत्**	की ॥२०॥
विन्ध्यपादान्	विन्ध्याचलके नीचे		

तत्राघमर्षणं नाम तीर्थं पापहरं परम् ।
उपस्पृश्यानुसवनं तपसातोषयद्धरिम् ॥२१॥

तत्र अघमर्षणं नाम तीर्थं पाप हरं परं उपस्पृश्य अनुसवनं तपसा तोषयत् हरिम् ॥२१॥

तत्र अघमर्षणं	वहां अघमर्षण	**अनुसवनं**	त्रिकाल
नाम	नामके	**उपस्पृश्य**	स्नान करके
परं	सम्पूर्ण	**तपसा**	तपस्यासे
पाप	महापापोंको भी	**हरिं**	श्रीहरिको
हरं	नष्ट करने वाले	**तोषयत्**	सन्तुष्ट करने लगे ॥२१॥
तीर्थं	तीर्थमें		

अस्तौषीद्धंसगुह्येन भगवन्तमधोक्षजम् ।
तुभ्यं तदभिधास्यामि कस्यातुष्यद् यतो हरिः ॥२२॥

अस्तौषीत् हंसगुह्येन भगवन्तं अधोक्षजं तुभ्यं तत् अभिधास्यामि कस्य अतुष्यत् यतः हरिः ॥२२॥

हंसगुह्येन	हंसगुह्य स्तोत्रसे	**अभिधास्यामि**	बतलाऊँगा
भगवन्तं	भगवान्	**यतः हरिः**	जिससे श्रीहरि
अधोक्षजं	अधोक्षज की	**कस्य**	प्रजापतिपर
अस्तौषीत्	स्तुति करने लगे	**अतुष्यत्**	सन्तुष्ट हुए ॥२२॥
तत् तुभ्यं	वह तुमको		

प्रजापतिरुवाच -

नमः परायावितथानुभूतये
गुणत्रयाभासनिमित्तबन्धवे ।
अदृष्टधाम्ने गुणतत्त्वबुद्धिभि-
र्निवृत्तमानाय दधे स्वयम्भुवे ॥२३॥

नमः पराय अवितथ अनुभूतये गुणत्रय आभास निमित्त बन्धवे अदृष्ट धाम्ने गुण तत्त्व बुद्धिभिः निवृत्त मानाय दधे स्वयम्भुवे ॥२३॥

पराय	(प्रकृति आदिसे) परस्वरूप,	**गुण तत्त्व बुद्धिभिः**	इन्द्रिय, पञ्चभूत, बुद्धिके द्वारा तथा
अवितथ	अव्यर्थ	**निवृत्त मानाय**	(अन्य) प्रमाणों की पहुँचसे परे,
अनुभूतये	अनुभव	**स्वयंभुवे**	स्वयं प्रकाश
गुणत्रय	तीनों गुणोंकी	**दधे नमः**	(आपका) ध्यान करते हुए प्रणाम करते हैं ॥२३॥
आभास	प्रतीतिके		
निमित्त	निमित्त,		
बन्धवे	(सबके) बन्धु,		
अदृष्ट धाम्ने	अदृश्य स्वरूप,		

न यस्य सख्यं पुरुषोऽवैति सख्युः
सखा वसन् संवसतः पुरेऽस्मिन् ।
गुणो यथा गुणिनो व्यक्तदृष्टे-
स्तस्मै महेशाय नमस्करोमि ॥२४॥

न यस्य सख्यं पुरुषः अवैति सख्युः सखा वसन् संवसतः पुरे अस्मिन्
गुणः यथा गुणिनः व्यक्त दृष्टेः तस्मै महेशाय नमः करोमि ॥२४॥

यथा गुणः	जैसे (रस रूपादि) गुण	**यस्य सख्युः**	जिस सखाकी
गुणिनः	गुणवान् (रसना नेत्रादि इन्द्रियों को नहीं जानते वैसे ही	**सख्यं**	सहृदयताको
		न अवैति	नहीं जान पाता
		तस्मै	उस
		व्यक्त	व्यक्त
अस्मिन्	इस (देहरूप)	**दृष्टेः**	(संसार) के द्रष्टा
पुरे	नगरमें	**महेशाय**	महेश्वरको
संवसतः	साथ रहते हुए	**नमः**	नमस्कार
सखा	सखा होनेपर भी	**करोमि**	करता हूँ ॥२४॥
पुरुषः	पुरुष		

देहोऽसवोऽक्षा मनवो भूतमात्रा
नात्मानमन्यं च विदुः परंयत् ।
सर्वं पुमान् वेद गुणांश्च तज्ज्ञो
न वेद सर्वज्ञमनन्तमीडे ॥२५॥

देहः असवः अक्षा मनवः भूत मात्रा न आत्मानं अन्यं च विदुः परं
यत् सर्वं पुमान् वेद गुणांन् च तत् ज्ञः न वेद सर्वज्ञं अनन्तं इडे ॥२५॥

देहः असवः	देह, प्राण,	**सर्वं गुणांन् च**	इन सबको और त्रिगुणोंको भी
अक्षा मनवः	इन्द्रियां, मन-बुद्धि,	**वेद**	जानता है,
भूत मात्रा	पंचभूत, तन्मात्राएँ (जड़ होनेसे)	**तत् ज्ञः**	वह भी दृश्य होनेसे
		न वेद	(आपको) नहीं जानता,
आत्मानं	अपने आपको		
च अन्यं	और दूसरेको	**सर्वज्ञं**	(आप) सर्वज्ञ
न विदुः	नहीं जानतीं,	**अनन्तं**	अनन्तको
यत् परं पुमान्	जो इनसे परे जीव है	**इडे**	स्तुति करता हूँ॥२५॥

यदोपरामो मनसो नामरूप-
रूपस्य दृष्टस्मृतिसम्प्रमोषात् ।
य ईयते केवलया स्वसंस्थया
हंसाय तस्मै शुचिसद्मने नमः ॥२६॥

यदा उपरामः मनसः नाम रूप रूपस्य दृष्ट स्मृति सम्प्रमोषात् य ईयते केवलया स्व संस्थया हंसाय तस्मै शुचि सद्मने नमः ॥२६॥

नाम रूप	नाम और रूप	केवलया	तब) केवल
रूपस्य	स्वरूप	**स्व संस्थया**	स्वरूप स्थिति में
दृष्ट	देखे और	**य ईयते**	जो प्रकाशित होते हैं
स्मृति	स्मृति संस्कार के	**तस्मै**	उन
सम्प्रमोषात्	लुप्त होनेपर (समाधि में)	**शुचि सद्मने**	शुद्ध हृदय भवनमें रहने वाले
यदा	जब	**हंसाय**	शुद्ध रूप हंसको
मनसः उपरामः	मनसे भी उपरामता हो जाती है	**नमः**	नमस्कार ॥२६॥

मनीषिणोऽन्तर्हृदि संनिवेशितं
स्वशक्तिभिर्नवभिश्च त्रिवृद्भिः ।
वह्निं यथा दारुणि पाञ्चदश्यं
मनीषया निष्कर्षन्ति गूढम् ॥२७॥

मनीषिणः अन्तः हृदि संनिवेशितं स्वशक्तिभिः नवभिः च त्रिवृद्भिः वह्निं यथा दारुणि पाञ्चदश्यं मनीषया निष्कर्षन्ति गूढम् ॥२७॥

यथा	जैसे	**पाञ्चदश्यं**	(सामके) पन्द्रह मंत्रों द्वारा
दारुणि गूढं वह्निं	काष्ठ में छिपे (सामधेनी नामक) अग्निको	**निष्कर्षन्ति**	प्रकट करते (खींचते) हैं,

अन्तः हृदि	हृदयके भीतर	**नवभिः**	नौ (सत्ताइस)
संनिवेशितं	छिपे हुए (आपको)	**स्वशक्तिभिः**	अपनी शक्तियोंसे
मनीषिणः	ज्ञानी लोग	**मनीषया**	बुद्धि द्वारा (ढूँढ़ते
त्रिवृद्भिः	तिगुनी की गयी		हैं) ॥२७॥

स वै ममाशेषविशेषमाया-
निषेधनिर्वाणसुखानुभूतिः ।
स सर्वनामा स च विश्वरूपः
प्रसीदतामनिरुक्तात्मशक्तिः ॥२८॥

स वै मम अशेष विशेष माया निषेध निर्वाणसुख अनुभूतिः स सर्वनामा स च विश्वरूपः प्रसीदतां अनिरुक्त आत्मशक्तिः ॥२८॥

अशेष विशेष	समस्त विशेषताओं वाली	**अनिरुक्त**	निरूपण नहीं हो सकता
माया निषेध	मायाका निषेध कर देनेपर	**वै स**	निश्चय वही आप
निर्वाणसुख	परम सुख	**सर्वनामा**	सब नाम वाले,
अनुभूतिः	अनुभव स्वरूप आपकी	**च स**	और वही आप
आत्मशक्तिः	अपनी शक्तिका	**विश्वरूपः**	विश्वरूप हो
		स मम	वह आप मुझपर
		प्रसीदतां	प्रसन्न हों ॥२८॥

यद्यन्निरुक्तं वचसा निरूपितं
धियाक्षभिर्वा मनसा वोत यस्य ।
मा भूत् स्वरूपं गुणरूपं हि तत्तत्
स वै गुणापायविसर्गलक्षणः ॥२९॥

यत् यत् निरुक्तं वचसा निरूपितं धिया आक्षभिः वा मनसा वा उत यस्य मा भूत् स्वरूपं गुणरूपं हि तत् तत् स वै गुण अपाय विसर्ग लक्षणः ॥२९॥

यत् यत्	जो-जो
निरुक्तं	निरूपण होता है,
वचसा	वाणी से
वा	अथवा
धिया	बुद्धिसे
उत अक्षभिः	या इन्द्रियोंसे,
वा मनसा	अथवा मनसे
यस्य निरूपितं	जिसका भी निरूपण हो
तत् तत्	वह सब
हि	क्योंकि
गुणरूपं	गुणोंके ही स्वरूप-का है,
स्वरूपं	स्व (आत्माका रूप
मा भूत्	नहीं हो सकता
स वै	वह तो निश्चय
गुण अपाय	गुणोंके नाश और
विसर्ग	उत्पत्तिका
लक्षणः	स्वरूप है ॥३०॥

यस्मिन् यतो येन च यस्य यस्मै
यद् यो यथा कुरुते कार्यते च ।
परावरेषां परमं प्राक् प्रसिद्धं
तद् ब्रह्म तद्धेतुरनन्यदेकम् ॥३०॥

यस्मिन् यतः येन च यस्य यस्मै यत् यः यथा कुरुते कार्य ते च पर अवरेषां परमं प्राक् प्रसिद्धं तत् ब्रह्म तत् हेतुः अनन्यत् एकम् ॥३०॥

यस्मिन्	जिसमें,
यतः	जहाँसे,
येन च	जिसके द्वारा
यस्य	जिसका,
यस्मै	जिसके लिए
यत्	जहां,
यः	जो,
यथा	जैसे
कुरुते	किया जाता है
च कार्य ते	तथा कराया जाता है,
पर अवरेषां	उस कारण-कार्य (रूप विश्व)से
परमं	श्रेष्ठ
प्राक् प्रसिद्धं	पहिलेसे विद्यमान (अनादि)
तत् अनन्यत् हेतुः	वह एकमात्र कारण,
एकं	अद्वितीय है,
तत् ब्रह्म	वही ब्रह्म है ॥३०॥

यच्छक्तयो वदतां वादिनां वै
विवादसंवादभुवो भवन्ति ।
कुर्वन्ति चैषां मुहुरात्ममोहं
तस्मै नमोऽनन्तगुणाय भूम्ने ॥३१॥

यत् शक्तयः वदतां वादिनां वै विवाद संवाद भुवः भवन्ति कुर्वन्ति च एषां मुहुः आत्म मोहं तस्मै नमः अनन्त गुणाय भूम्ने ॥३१॥

यत् शक्तयः	जिसकी शक्तियां	मुहुः	बार-बार
वै वादिनां	निश्चय वादी-प्रतिवादीके	आत्म मोहं	उनको मोहमें
विवाद संवाद	विवाद और संवाद (ऐक्यमत्य) का	कुर्वन्ति	डालती हैं,
भुवः भवन्ति	आधार होती हैं,	तस्मै	उन
च एषां	और जिनके विषयमें	अनन्त गुणाय	अनन्त गुणशाली
		भूम्ने नमः	सर्वव्यापकको नमस्कार ॥३१॥

अस्तीति नास्तीति च वस्तुनिष्ठयो-
रेकस्थयोर्भिन्नविरुद्ध धर्मयोः ।
अवेक्षितं किञ्चन योगसांख्ययोः
समं परं ह्यनुकूलं बृहत्तत् ॥३२॥

अस्ति इति न अस्ति इति च वस्तुनिष्ठयोः एकस्थयोः भिन्न विरुद्ध धर्मयोः अवेक्षितं किञ्च न योग सांख्ययोः समं परं हि अनुकूलं बृहत् तत् ॥३२॥

एकस्थयोः	एक ही	इति	इस प्रकार
वस्तुनिष्ठयोः	वस्तुके सम्बन्धमें	विरुद्ध धर्मयोः	परस्पर विरोधी धर्म
आस्ति	(सगुण ईश्वर) है,	किञ्च	क्या
इति	इस प्रकार,	योग साख्ययोः	योग और सांख्य
च न अस्ति	और नहीं है,	न अवेक्षितं	नहीं देखते ?

हि	क्योंकि	समं	सम
अनुकूलं	(दोनों बातें) उसके अनुरूप हैं	परं	(दोनोंसे) परे (अतिर्वचनीया है ॥३२॥
तत् बृंहत्	वह व्यापक		

योऽनुग्रहार्थं भजतां पादमूल-
मनामरूपो भगवाननन्तः ।
नामानि रूपाणि च जन्मकर्मभि-
र्भेजे स मह्यं परमः प्रसीदतु ॥३३॥

यः अनुग्रह अर्थं भजतां पादमूलं अनाम अरूपः भगवान् अनन्तः नामानि रूपाणि च जन्मकर्मभिः भेजे स मह्यं परमः प्रसीदतु ॥३३॥

यः भगवान्	जिन भगवान्	जन्मकर्मभिः	अवतार लेकर लीलाके द्वारा
अनन्तः	अनन्तने	नामानि	नामोंको
अनाम अरूपः	बिना नामका निराकार (होने पर भी)	च रूपाणि	और रूपोंको
पादमूलं	(अपने) चरणोंका	भेजे	स्वीकार किया
भजतां	भजन करने वालों पर	स परमः	वे परम पुरुष
अनुग्रह अर्थं	कृपा करनेके लिए	मह्यं प्रसीदतु	मुझपर प्रसन्न हों ॥३३॥

यः प्राकृतैर्ज्ञानपथैर्जनानां
यथाशयं देहगतो विभाति ।
यथानिलः पार्थिवमाश्रितो गुणं
स ईश्वरो मे कुरुतान्मनोरथम् ॥३४॥

यः प्राकृतैः ज्ञानपथैः जनानां यथा आशयं देहगतः विभाति यथा अनिलः पार्थिवं आश्रितः गुणं स ईश्वरः मे कुरुतात् मनोरथम् ॥३४॥

यथा अनिलः	जैसे वायु	गुणं आश्रितः	गुणोंको अपना लेता है (वैसे ही)
पार्थिवं	पृथ्वीके तत्त्वों (पुष्पादि)के	यः जानानां	जो भक्तोंके

प्राकृतैःज्ञानपथैः	प्राकृत ज्ञानके मार्ग (नेत्रादि) से	**विभाति**	शोभित होता है,
यथा आशयं	अन्तःकरणके भावके अनुसार	**स ईश्वरः**	वह सर्वसमर्थ
देहगतः	शरीर धारण करके (दर्शन देकर,	**मे मनोरथं**	मेरी कामना
		कुरुतात्	पूर्ण करें ॥३४॥

श्रीशुक उवाच–

इति स्तुतः संस्तुवतः स तस्मिन्नघर्षणे ।
आविरासीत् कुरुश्रेष्ठ भगवान् भक्तवत्सलः ॥३५॥

इति स्तुतः संस्तुवतः स तस्मिन् अघमर्षणे आविः आसीत् कुरुश्रेष्ठ भगवान् भक्तवत्सलः ॥३५॥

कुरुश्रेष्ठ	परीक्षित्	**संस्तुवतः**	स्तुति करनेपर
तस्मिन्	उस	**भक्तवत्सलः**	भक्तवत्सल
अघमर्षणे	अघमर्षण तीर्थमें	**स भगवान्**	वे भगवान्
इति स्तुतः	इस स्तोत्रसे	**आविः आसीत्**	प्रकट हो गये ॥३५॥

कृतपादः सुपर्णांसे प्रलम्बाष्टमहाभुजः ।
चक्रशङ्खासिचर्मेषुधनुः पाशगदाधरः ॥३६॥

कृतपादः सुपर्ण अंसे प्रलम्ब अष्ट महाभुजः चक्रशङ्ख असि चर्म इषु धनुः पाश गदाधरः ॥३६॥

सुपर्ण अंसे	गरुड़के कन्धोंपर	**असि चर्म**	तलवार, ढाल,
कृतपादः	पैर रखे हुए,	**इषु धनुः**	बाण, धनुष,
प्रलम्ब अष्ट	लम्बी आठ	**पाश, गदाधरः**	पाश, गदा,
महाभुजः	महान् भुजाओंमें		लिए हुए ॥३६॥
चक्रशङ्ख	चक्र, शङ्ख,		

पीतवासा घनश्यामः प्रसन्नवदनेक्षणः ।
वनमालानिवीताङ्गो लसच्छ्रीवत्सकौस्तुभः ॥३७॥

पीतवासा घनश्यामः प्रसन्नवदन ईक्षणः वनमाला निवीत अङ्गः लसत् श्रीवत्स कौस्तुभः ॥३७॥

पीतवासा	पीताम्बर पहिने,	**वनमाला निवीत**	वनमाला पहिने,
घनश्यामः	मेघके समान श्यामवर्ण,	**श्रीवत्स**	श्रीवत्स चिह्न और
		कौस्तुभः	कौस्तुभ मणिसे
प्रसन्नवदन	प्रसन्न मुख	**लसत् अङ्गः**	सुशोभित शरीर ॥३७॥
ईक्षणः	और नेत्र,		

महाकिरीटकटकः स्फुरन्मकरकुण्डलः ।
काञ्च्यङ्गुलीयवलयनूपुराङ्गदभूषितः ॥३८॥

महाकिरीट कटकः स्फुरत् मकरकुण्डलः काञ्ची अंगुलीय वलय नूपुर अङ्गद भूषितः ॥३८॥

महाकिरीट	बहुमूल्य मुकुट,	**अंगुलीय**	अँगूठी
कटकः	कङ्कण,	**वलय**	कड़े,
स्फुरत्	चमकते	**नूपुर अङ्गद**	नूपुर, अंगदसे
मकरकुण्डल	मकराकृति कुण्डल,	**भूषितः**	आभूषित ॥३८॥
काञ्ची	करधनी		

त्रैलोक्यमोहनं रूपं बिभ्रत् त्रिभुवनेश्वरः ।
वृतो नारदनन्दाद्यैः पार्षदैः सुरयूथपैः ॥३९॥

त्रैलोक्य मोहनं रूपं बिभ्रत् त्रिभुवनेश्वरः वृतः नारद नन्द आद्यैः पार्षदैः सुरयूथपैः ॥३९॥

त्रिभुवनेश्वरः	त्रिभुवनपति	**आद्यैः**	आदि
त्रैलोक्य मोहनं	त्रिलोकीको मोहित करने वाला	**सुरयूथपैः**	देव-यूथप
		पार्षदैः	पार्षदोंसे
रूपं विभ्रत्	धारण किये,	**वृतः**	घिरे हुए ॥३९॥
नारद नन्द	नारद, नन्द		

स्तूयमानोऽनुगायद्भिः सिद्धगन्धर्वचारणैः ।
रूपं तन्महदाश्चर्यं विचक्ष्यागतसाध्वसः ॥४०॥

स्तूयमानः अनुगायद्भिः सिद्ध गन्धर्व चारणैः रूपं तत् महत् आश्चर्यं विचक्ष्य आगत साध्वसः ॥४०॥

अनुगायद्भिः	पीछे गाते चलते,	**महत् आश्चर्यं**	महान् आश्चर्यजनक
सिद्ध गन्धर्व	सिद्ध, गन्धर्व,	**रूपं विचक्ष्य**	रूपको देखकर
चारणैः	चारणों द्वारा	**आगत साध्वसः**	(दक्षको) सहमना आ गया ॥४०॥
स्तूयमानः	स्तुति किये जाते		
तत्	उस		

ननाम दण्डवद् भूमौ प्रहृष्टात्मा प्रजापतिः ।
न किञ्चनोदीरयितुमशकत् तीव्रया मुदा ।
आपूरितमनोद्वारैर्ह्रदिन्य इव निर्झरैः ॥४१॥

ननाम दण्डवत् भूमौ प्रहृष्ट आत्मा प्रजापतिः न किञ्चन उदीरयितुं अशकत् तीव्रया मुदा आपूरित मनः द्वारैः ह्रदिन्य इव निर्झरैः ॥४१॥

हृष्ट आत्मा	अत्यन्त हर्षित चित्त	**न अशकत्**	समर्थ नहीं हुए,
प्रजापतिः	प्रजापति दक्ष	**निर्झरैः**	झरनों द्वारा
भूमौ	पृथ्वीपर	**ह्रदिन्य इव**	नदीकी भाँति
दण्डवत् ननाम	दण्डवत प्रणाम करते पड़ गये	**मनः द्वारैः**	मनके ऊपर
तीव्रया मुदा	तीव्र आनन्दके कारण	**आपूरित**	परिपूर्ण हो गये ॥४१॥
किञ्चन	कुछ भी		
उदीरमितुं	बोलनेमें		

तं तथावनतं भक्तं प्रजाकामं प्रजापतिम् ।
चित्तज्ञः सर्वभूतानामिदमाह जनार्दनः ॥४२॥

तं तथा अवनतं भक्तं प्रजाकामं प्रजापतिं चित्तज्ञः सर्वभूतानां इदं आह जनार्दनः ॥४२॥

तं तथा	उनको इस प्रकार	**सर्वभूतानां**	सब प्राणियोंके
अवनतं	नम्रतासे झुके	**चित्तज्ञः**	हृदयकी बात
भक्तं	अपने भक्त		जानने वाले
प्रजाकामं	सन्तान चाहनेवाले	**जनार्दनः**	भगवान् जनार्दनने
प्रजापतिं	प्रजापति (दक्ष)से	**इदं आह**	यह कहा ॥४२॥

श्रीभगवानुवाच-

प्राचेतस महाभाग संसिद्धस्तपसा भवान् ।
यच्छ्रद्धया मत्परया मयि भावं परं गतः ॥४३॥

प्राचेतस महाभाग संसिद्धः तपसा भवान् यत् श्रद्धया मत्परया मयि भावं परं गतः ॥४३॥

महाभाग	महाभाग	**यत्**	क्योंकि
प्राचेतस	प्रचेतानन्दन,	**मत्परया**	मुझमें परम
भवान्	तुम	**श्रद्धया**	श्रद्धासे
तपसा	तपस्यासे	**मयि**	मुझमें
संसिद्धः	सिद्ध (सफल) हो गये	**परं भावः**	परम प्रेमभाव;
		गतः	प्राप्त हो गया ॥४३

प्रीतोऽहं ते प्रजानाथ यत्तेऽस्योद्बृंहणं तपः ।
ममैष कामो भूतानां यद् भूयासुर्विभूतयः ॥४४॥

प्रीतः अहं ते प्रजानाथ यत् ते अस्य उद्बृंहणं तपः मम एष कामः भूतानां यत् भूय असुः विभूतयः ॥४४॥

प्रजानाथ	प्रजापति	**एष मम**	यह मेरी
ते अहं	तुमपर मैं	**कामः**	इच्छा है
प्रीतः	प्रसन्न हूँ,	**यत् भूतानां**	कि प्राणियोंकी
यत्	क्योंकि	**असुः**	प्राण (वृद्धि)
ते तपः	तुम्हारी तपस्या	**विभूतयः**	समृद्धि
अस्य	इस संसारकी	**भूय**	हो ॥४४॥
उद्बृंहणं	अभिवृद्धिके लिए है ।		

ब्रह्मा भवो भवन्तश्च मनवो विबुधेश्वराः ।
विभूतयो मम ह्येता भूतानां भूतिहेतवः ॥४५॥

ब्रह्मा भवः भवन्तः च मनवः विबुधेश्वराः विभूतयः मम हि एता भूतानां भूतिहेतवः ॥४५॥

हि	क्योंकि	**मनवः**	मनु लोग
भूतानां	प्राणियोंकी	**च विबुधेश्वराः**	तथा देवनायक
भूतिहेतवः	अभिवृद्धिके कारण	**एता**	ये सब
ब्रह्मा भवः	ब्रह्मा, शिव,	**मम विभूतयः**	मेरी विभूतियाँ
भवन्तः	तुम (प्रजापतिगण)		हैं ॥४५॥

तपो मे हृदयं ब्रह्मंस्तनुर्विद्या क्रियाऽऽकृतिः ।
अङ्गानि क्रतवो जाता धर्म आत्मासवः सुराः ॥४६॥

तपः मे हृदयं ब्रह्मन् तनुः विद्या क्रिया आकृतिः अङ्गानि क्रतवःजाता धर्म आत्मा असवः सुराः ॥४६॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**अङ्गानि जाता**	मेरे अङ्ग उत्पन्न
तपः मे	तपस्या मेरा		हुए हैं,
हृदयं	हृदय है,	**धर्म आत्मा**	धर्म आत्मा है ।
विद्या तनुः	विद्या शरीर है,	**सुराः आसवः**	देवता प्राण
क्रिया आकृतिः	कर्म आकृति है,		हैं ॥४६॥
क्रतवः	यज्ञोंसे		

अहमेवासमेवाग्रे नान्यत् किञ्चान्तरं बहिः ।
संज्ञानमात्रमव्यक्तं प्रसुप्तमिव विश्वतः ॥४७॥

अहं एव आसं एव अग्रे न अन्यत् किञ्च अन्तरं बहिः संज्ञानमात्रं अव्यक्तं प्रसुप्तं इव विश्वतः ॥४७॥

अहं एव	मैं ही	**अन्तरं बहिः**	बाहर-भीतर
अग्रे आसं एव	पहिले था ही	**किञ्च**	कुछ भी

अन्यत् न	दूसरा नहीं था	विश्वतः	चारों ओर
अव्यक्तं	अव्यक्त	प्रसुप्तं इव	सुषुप्तिके समान
संज्ञानमात्रं	ज्ञानमात्र था		था ॥४७॥

मय्यनन्तगुणेऽनन्ते गुणतो गुणविग्रहः ।
यदाऽऽसीत् तत एवाद्यः स्वयम्भूः समभूदजः ॥४८॥

मयि अनन्त गुणे अनन्ते गुणतः गुणविग्रहः यत् आसीत् तत एव आद्यः स्वयम्भूः समभूत् अजः ॥४८॥

मयि अनन्त	मुझ अनन्त	आसीत्	उत्पन्न हुआ
गुणे	गुणवाले	तत एव	उससे ही
अनन्ते	अनन्तमें	आद्यः	आदि पुरुष
गुणतः	(मायाके) गुणोंसे	स्वयम्भू	स्वयंभू
यत् गुणविग्रहः	जो गुण स्वरूप (विराट्)	अजः	ब्रह्मा
		समभूत्	उत्पन्न हुए ॥४८॥

स वै यदा महादेवो मम वीर्योपबृंहितः ।
मेने खिलमिवात्मानमुद्यतः सर्गकर्मणि ॥४९॥

स वै यदा महादेवः मम वीर्य उपबृंहितः मेने खिलं इव आत्मानं उद्यतः सर्गकर्मणि ॥४९॥

यदा वै	जबकि	उद्यतः	उद्यत हुए (तब)
मम वीर्य	मेरे तेजसे	आत्मानं	अपनेको
उपबृंहितः	अभिवृद्ध किये गये	खिलं इव	अपूर्णकी भांति
स महादेवः	वे देवश्रेष्ठ	मेने	मानने लगे ॥४९॥
सर्गकर्मणि	सृष्टि करनेके लिए		

अथ मेऽभिहितो देवस्तपोऽतप्यत दारुणम् ।
नव विश्वसृजो युष्मान् येनादावसृजद् विभुः ॥५०॥

अथ मे अभिहितः देवः तपः अतप्यत दारुणं नव विश्व सृजः युष्मान् येन आदौ असृजत् विभुः ।।

अथ मे	तब मेरे द्वारा	**युष्मान्**	तुम
अभिहितः	आदेश दिये जाने पर	**नव विश्व**	नौ विश्व
देवः	उन देवने	**सृजः**	सृष्टाओंकी
दारुणं तपः	घोर तपस्या	**विभुः असृजत्**	उन समर्थने सृष्टि
अतप्यत	की		की ।।५०।।
येन	जिसके द्वारा		
आदौ	प्रारम्भमें		

एषा पञ्चजनस्याङ्ग दुहिता वै प्रजापतेः ।
असिन्की नाम पत्नीत्वे प्रजेश प्रतिगृह्यताम् ।।५१।।

एषा पञ्चजनस्य अङ्ग दुहिता वै प्रजापतेः असिन्की नाम पत्नीत्वे प्रजेश प्रतिगृह्यताम् ।।५१।।

अङ्ग	प्रिय दक्ष !	**दुहिता**	पुत्री है,
एषा	यह	**प्रजेश**	प्रजापति !
पञ्चजनस्य	पञ्चजन	**पत्नीत्वे**	इसे पत्नी रूपमें
प्रजापतेः वै	प्रजापतिकी ही	**प्रतिगृह्यतां**	ग्रहण करो ।।५१।।
असिन्की नाम	असिन्की नामकी		

मिथुनव्यवायधर्मस्त्वं प्रजासर्गमिमं पुनः ।
निथुनव्यवायधर्मिण्यां भूरिशो भावयिष्यसि ।।५२।।

मिथुन व्यवाय धर्मः त्वं प्रजासर्गं इमं पुनः मिथुन व्यवाय धर्मिण्यां भूरिशः भावयिष्यसि ।।५२।।

मिथुन व्यवाय	जोड़ेसे स्त्री सहवास रूप	**इमं**	इस
		मिथुन व्यवाय	जोड़ेसे स्त्री सहवास रूप
धर्मः	धर्मके द्वारा		
त्वं पुनः	तुम फिर	**धर्मिण्यां**	धर्मवाली

भूरिशः	बहुत अधिक	भावयिष्यसि	करोगे ॥५२॥
प्रजासर्ग	प्रजाकी सृष्टि		

त्वत्तोऽधस्तात् प्रजाः सर्वा मिथुनीभूय मायया ।
मदीयया भविष्यन्ति हरिष्यन्ति च मे बलिम् ॥५३॥

त्वत्तः अधस्तात् प्रजाः सर्वाः मिथुनीभूय मामया मदीयया भविष्यन्ति हरिष्यन्ति च मे बलिम् ॥५३॥

त्वत्तः	तुमसे	भविष्यन्ति	होगी
अधस्तात्	पीछे होने वाली	च मे	और मुझे
सर्वाः प्रजाः	सब प्रजा	बलिं	उपहार
मदीयया मायया	मेरी मायसे	हरिष्यन्ति	देगी ॥५३॥
मिथुनीभूय	(स्त्री-पुरुष) जोड़ेसे ही उत्पन्न होने वाली		

श्रीशुक उवाच–

इत्युक्त्वा मिषतस्तस्य भगवान् विश्वभावनः ।
स्वप्नोपलब्धार्थ इव तत्रैवान्तर्दधे हरिः ॥५४॥

इति उक्त्वा मिषतः तस्य भगवान् विश्वभावनः स्वप्न उपलब्ध अर्थ इव अन्तर्दधे हरिः ॥५४॥

इति उक्त्वा	ऐसा कहकर	स्वप्न उपलब्ध	स्वप्नमें मिले
तस्य	उनके	अर्थं इव	पदार्थके समान
मिषतः	देखते-देखते	तत्र एव	वहीं
विश्वभावनः	विश्वपालक	अन्तर्दधे	अन्तर्धान हो
भगवान् हरिः	भगवान् श्रीहरि		गये ॥५४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच—

तस्यां स पाञ्चजन्यां वै विष्णुमायोपबृंहितः ।
हर्यश्वसंज्ञानयुतं पुत्रानजनयद् विभुः ॥१॥

तस्यां स पाञ्चजन्यां वै विष्णुमाया उपबृंहितः हर्यश्व संज्ञान् अयुतं पुत्रान् अजनयत् विभुः ॥१॥

विष्णुमाया	भगवान् विष्णुकी माया (शक्ति)से
वै	निश्चय
उपबृंहित	अभिवृद्धि शक्ति
स विभुः	उन (दक्ष) ने
तस्यां	उस
पाञ्चजन्यां	पञ्चजनकी पुत्रीसे
हर्यश्व संज्ञान्	हर्यश्व नामक
अयुतं	दस सहस्र
पुत्रान् अजनयत्	पुत्र उत्पन्न किये ॥४७॥

अपृथग्धर्मशीलास्ते सर्वे दाक्षायणा नृप ।
पित्रा प्रोक्ताः प्रजासर्गे प्रतीचीं प्रययुर्दिशम् ॥२॥

अपृथक् धर्मशीलाः ते सर्वे दाक्षायणा नृप पित्रा प्रोक्ताः प्रजासर्गे प्रतीचीं प्रययुः दिशम् ॥२॥

नृप	राजन् !
ते सर्वे	वे सब
दाक्षायणा	दक्षपुत्र
अपृथक् धर्मशीलाः	अभिन्न आचरण एवं स्वभावके थे,
पित्रा	पिताके
प्रजासर्गे	प्रजा उत्पन्न करनेके लिये
प्रोक्ताः	कहने पर
प्रतीचीं दिशं	पश्चिम दिशामें
प्रययुः	चले गये ॥२॥

तत्र नारायणसरस्तीर्थं सिन्धुसमुद्रयोः ।
सङ्गमो यत्र सुमहन्मुनिसिद्धनिषेवितम् ॥३॥

तत्र नारायणसरः तीर्थं सिन्धु समुद्रयोः सङ्गमः यत्र सुमहत् मुनि सिद्ध निषेवितम् ॥३॥

यत्र सिन्धु	जहाँ सिन्धु नदी और	सुमहत्	अत्यन्त महान्
समुद्रयोः	समुद्रका	नारायणसरः	नारायण-सरोवर
सङ्गमः तत्र	मिलन होता है वहां	तीर्थं	तीर्थ है ॥३॥
मुनि सिद्ध	मुनियों तथा सिद्धोंसे		
निषेवितं	बराबर सेवन किया जानेवाला		

तदुपस्पर्शनादेव विनिर्धूतमलाशयाः ।
धर्मे पारमहंस्ये च प्रोत्पन्नमतयोऽप्युत ॥४॥

तत् उपस्पर्शनात् एव विनिर्धूत अमल आशयाः धर्मे पारमहंस्ये च प्रोत्पन्न मतयः अपि उत ॥४॥

तत्	उस (सरोवर) में	उत	यद्यपि
उपस्पर्शनात् एव	स्नान करनेसे ही	पारमहंस्ये	(वे) परमहंसोंके
विनिर्धूत	धुलकर	धर्मे	(निवृति) धर्ममें ही
अमल आशयाः	निर्मल चित्तवालों-की	प्रोत्पन्न मतयः	बुद्धि लग गयी फिर भी ॥४॥

तेपिरे तप एवोग्रं पित्रादेशेन यन्त्रिताः ।
प्रजाविवृद्धये यत्तान् देवर्षिस्तान् ददर्श ह ॥५॥

ते पिरे तप एव उग्रं पितृ आदेशेन यन्त्रिताः प्रजा विवृद्धये यत्तान् देवर्षिः तान् ददर्श ह ॥५॥

पितृ आदेशेन	पिताकी आज्ञासे	उग्रं तप एव	घोर तपस्या ही
यन्त्रिताः	नियन्त्रित होनेके कारण	ते पिरे	तपने (करने)लगे;
		प्रजा विवृद्धये	प्रजाकी वृद्धिके लिए

यत्तान् तान्	यत्नवान उनको	ददर्श	देखा ॥५॥
देवर्षिः ह	देवर्षिने दयापूर्वक		

उवाच चाथ हर्यश्वाः कथं स्रक्ष्यथ वै प्रजाः ।
अदृष्ट्वान्तं भुवो यूयं बालिशा बत पालकाः ॥६॥

उवाच च अथ हर्यश्वाः कथं स्रक्ष्यथ वै प्रजाः अदृष्ट्वा अन्तं भुवः यूयं बालिशा बत पालकाः ॥६॥

उवाच च	बोलेभी	भुवः अन्तं	पृथ्वीका अन्त
अथ हर्यश्वाः	अरे, हर्यश्वो !	अदृष्ट्वा	देखे बिना
पालकाः बत	प्रजापालक होने परभी	प्रजाः कथं वै	प्रजाकी कैसे तो
		स्रक्ष्यथ	सृष्टि करोगे ॥६॥
यूयं बालिशा	तुम लोग मूर्खहो,		

तथैकपुरुषं राष्ट्रं बिलं चादृष्टनिर्गमम् ।
बहुरूपां स्त्रियं चापि पुमांसं पुंश्चलीपतिम् ॥७॥

तथा एक पुरुषं राष्ट्रं बिलं च अदृष्ट निर्गमं बहुरूपां स्त्रियं च अपि पुमांसं पुंश्चली पतिम् ॥७॥

तथा	इसी प्रकार	च बहुरूपां	तथा बहुत रूप बनाने वाली
एक पुरुषं	एक ही पुरुषवाले		
राष्ट्रं	राष्ट्रको	स्त्रियं	स्त्रीको
अदृष्ट निर्गमं	जिससे निकलनेका मार्ग नहीं दीखता	च पुंश्चली पतिं	एवं व्यभिचारिणीके पति
बिलं	उस बिलको	पुमांसं	पुरुषको ॥७॥

नदीमुभयतोवाहां पञ्चपञ्चाद्भुतं गृहम् ।
क्वचिद्धंसं चित्रकथं क्षौरपव्यं स्वयं भ्रमिम् ॥८॥

नदीं उभयतः वाहां पञ्चपञ्च अद्भुतं गृहं क्वचित् हंसं चित्रकथं क्षौरपव्यं स्वयं भ्रमिम् ॥८॥

उभयतः वाहां	दोनों ओर बहने वाली	**चित्रकथं हंसं**	विचित्र कथावाले हंसको,
नदीं	नदीको,	**स्वयं भ्रमिं**	अपने आप घूमते रहनेवाले
पञ्चपञ्च	पच्चीस (तत्वों)से बने	**क्षौरपव्यं**	चक्रको
अद्भुतं गृहं	अद्भुत घरको,	**क्वचित्**	कभी देखा है ॥८॥

कथं स्वपितुरादेशमविद्वांसो विपश्चितः ।
अनुरूपमविज्ञाय अहो सर्गं करिष्यथ ॥९॥

कथं स्वपितुः आदेशं अविद्वांसः विपश्चितः अनुरूपं अविज्ञाय अहो सर्गं करिष्यथ ॥९॥

अहो	अहो,	**अनुरूपं**	अनुकूल (तथ्य) को
विपश्चितः	सर्वज्ञ	**अविज्ञाय**	बिना जाने
स्वपितुः	अपने पिताकी	**कथं**	कैसे
आदेशं	आज्ञाको	**सर्गं करिष्यथ**	सृष्टि करोगे ॥९॥
अविद्वांसः	समझे बिना उसके		

*श्रीशुक उवाच-**

तन्निशम्याथ हर्यश्वा औत्पत्तिकमनीषया ।
वाचःकूटं तु देवर्षेः स्वयं विममृशुर्धिया ॥१०॥

तत् निशम्य अथ हर्यश्वाः औत्पत्तिक मनीषया वाचः कूटं तु देवर्षेः स्वयं विममृशुः धिया ॥१०॥

---

* अध्यायके प्रारम्भसे 'श्रीशुक उवाच' ही चल रहा है; किन्तु श्लोक ६ से नारदजी बोलने लगे, अतः वहां 'नारदोवाच' होना चाहिए था, तब यहां 'श्रीशुक उवाच' संगत होता। पर यह उवाच सभी प्रतियोंमें है—श्लोक ६ का प्रारम्भिक शब्द 'उवाच....' शुकदेवजीका होनेसे वहाँ 'नारदोवाच' मैंने बढ़ाया नहीं।

अथ देवर्षेः	तब देवर्षि नारदजी-	**मनीषया**	प्रतिभाशाली होनेसे
	की	**स्वयं धिया**	अपनी बुद्धिसे
तत् कूटं वाचः	उस कूट वाणीको तो	**विममृशुः**	विचार करने
निशम्य	सुनकर		लगे ॥१०॥
औत्पत्तिक	जन्मजात		

भूः क्षेत्रं जीवसंज्ञं यदनादि निजबन्धनम् ।
अदृष्ट्वा तस्य निर्वाणं किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥११॥

भूः क्षेत्रं जीवसंज्ञं यत् अनादि निज बन्धनं अदृष्ट्वा तस्य निर्वाणं किं असत् कर्मभिः भवेत् ॥११॥

भूः क्षेत्रं	भूमि लिङ्ग शरीर है,	**बन्धनं**	बन्धन है ।
जीवसंज्ञं	जिसे जीव कहा	**तस्य निर्वाणं**	उसका मोक्ष
	जाता है,	**अदृष्ट्वा**	देखे (जाने) बिना
यत्	जिससे	**असत् कर्मभिः**	अनुपयोगी कर्मोंसे
निज अनादि	आत्माका अनादि	**किं भवेत्**	क्या होगा ॥११॥

एक एवेश्वरस्तुर्यो भगवान् स्वाश्रयः परः ।
तमदृष्ट्वाभवं पुंसः किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१२॥

एक एव ईश्वरः तुर्यः भगवान् स्वाश्रयः परः तं अदृष्ट्वा अभवं पुंसः किं असत् कर्मभिः भवेत् ॥१२॥

ईश्वरःएक एव	ईश्वर एक ही हैं,	**तं अभवं**	उन, नित्यमुक्त
तुर्यः	(वे) तुरीय-तत्त्व,	**पुंसः**	परमपुरुषको
स्वाश्रयः	अपने ही आश्रयमें	**अदृष्ट्वा**	देखे बिना
	स्थित	**असत् कर्मभिः**	तथ्यहीन कर्मोंसे
परः	सबसे परे	**किं भवेत्**	क्या लाभ
भगवान्	भगवान् हैं,		होगा ॥१२॥

पुमान् नैवैति यद् गत्वा बिलस्वर्गं गतो यथा ।
प्रत्यग्धामाविद इह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१३॥

पुमान् न एव एति यद् गत्वा बिलस्वर्गं गतः यथा प्रत्यक् धाम आविदः इह किं असत् कर्मभिः भवेत् ॥१३॥

यथा बिलस्वर्गं	जैसे बिल स्वर्ग (अतल-पातालादि)में	**इह आविदः**	इस जीवनमें जाने बिना
गतः	गया हुआ (नहीं लौटता)	**असत् कर्मभिः**	असत् (संसार)के कर्मोंसे
यद् गत्वा	जहाँ जाकर	**किं भवेत्**	क्या लाभ होगा ॥१३॥
पुमान् न एव एति	पुरुष नहीं ही लौट आता		
प्रत्यक् धाम	(उस) अन्तःज्योति स्वरूपको		

नानारूपाऽऽत्मनो बुद्धिः स्वैरिणीव गुणान्विता।
तन्निष्ठामगतस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१४॥

नाना रूपा आत्मनः बुद्धिः स्वैरिणी इव गुण अन्विता तत् निष्ठां अमगत् अस्य इह किं असत् कर्मभिः भवेत् ॥१४॥

आत्मनः	अपनी	**तत् निष्ठां**	उसके स्वरूपसे
बुद्धिः	बुद्धि	**अमगत् अस्य**	तादात्म्य करनेवाले इस (पुरुष)का
नाना रूपा	अनेक रूप धारिणी	**असत् कर्मभिः**	असत् कर्मोंसे
स्वैरिणी इव	कुलटाकी भांति	**किं भवेत्**	क्या कल्याण होगा ॥१४॥
गुण अन्विता	(सत्त्व, रज, तम) गुणोंसे युक्त होती है,		
इह	इस जीवनमें		

तत्सङ्गभ्रंशितैश्वर्यं संसरन्तं कुभार्यवत्।
तद्गतीरबुधस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१५॥

तत् संग भ्रंशित ऐश्वर्यं संसरन्तं कुभार्यवत् तत् गतिः अबुधस्य इह किं असत् कर्मभिः भवेत् ॥१५॥

तत् सङ्ग	उस (बुद्धि) में आसक्ति करके
भ्रंशित ऐश्वर्य	ऐश्वर्य भ्रष्ट
कुभार्यवत्	कुलटा पत्नीके पतिके समान
संसरन्तं	आवागमनमें पड़े
तत्गति	उस (बुद्धि)की चालोंको
अबुधस्य	न जाननेवालेका
इह	इस संसारमें
असत् कर्मभिः	अकल्याणकारी कर्मोंसे
किं भवेत्	क्या हित होगा ॥१५॥

सृष्टच्प्ययकरीं मायां वेलाकूलान्तवेगिताम् ।
मत्तस्य तामविज्ञस्य किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१६॥

सृष्टि अप्यय करीं मायां वेला कूलान्तवे गितां मत्तस्य तां अविज्ञस्य किं असत् कर्मभिः भवेत् ॥१६॥

सृष्टि अप्यय करीं मायां	सृष्टि और प्रलय करने वाली माया
वेला कूलान्त	किनारे और किनारों के अन्त (मध्य) में
वेगितां	वेगवाली (नदी) है,
तां अविज्ञस्य	उसके स्वरूपको न जानकर
मत्तस्य	प्रमाद ग्रस्तका
असत् कर्मभिः	असत् (सांसारिक) कर्मोंसे
किं भवेत्	क्या (उद्धार) होगा ॥१६॥

पञ्चविंशतितत्त्वानां पुरुषोऽद्भुतदर्पणम् ।
अध्यात्ममबुधस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१७॥

पञ्च विंशति तत्त्वानां पुरुषः अद्भुत दर्पणं अध्यात्मं अबुधस्य इह किं असत् कर्मभिः भवेत् ॥१७॥

पञ्च विंशति	पच्चीस
तत्त्वानां	तत्वोंका (बना मनुष्य देह)
पुरुषः	इस पुरीमें रहनेवाले का
अद्भुत दर्पणं	अद्भुत दर्पण है। इसीमें आत्म-साक्षात्कार होता है।
अध्यात्मं	इस आध्यात्म-तत्वको

अबुधस्य	न जाननेवाले का	असत् कर्मभिः	असत् कर्मोंसे
इह	इस संसारमें	किं भवेत्	क्या होगा ॥१७॥

ऐश्वरं शास्त्रमुत्सृज्य बन्धमोक्षानुदर्शनम् ।
विविक्तपदमज्ञाय किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१८॥

ऐश्वरं शास्त्रं उत्सृज्य बन्धमोक्ष अनुदर्शनं विविक्तपदं अज्ञाय किं असत् कर्मभिः भवेत् ॥१८॥

बन्धमोक्ष अनुदर्शनं	बन्धन और मोक्षको ठीक-ठीक दिख-लानेवाले	विविक्तपदं	ऐकान्तिक-पद (मोक्ष)को
		अज्ञाय	जाने बिना
ऐश्वरं शास्त्रं	भगवद्वाणी रूप शास्त्रको	असत् कर्मभिः	बहिर्मुख करनेवाले कर्मोंसे
उत्सृज्य	(जो हंसके समान है) त्यागकर	किं भवेत्	क्या भला होगा ॥१८॥

कालचक्रं भ्रमिस्तीक्ष्णं सर्वं निष्कर्षयज्जगत् ।
स्वतन्त्रमबुधस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१९॥

कालचक्रं भ्रमिः तीक्ष्णं सर्वं निष्कर्षयन् जगत् स्वतन्त्रं अबुधस्य इह किं असत् कर्मभिः भवेत् ॥१९॥

कालचक्रं	कालरूपी चक्र	इह	इस लोकमें
तीक्ष्णं भ्रमिः	तीक्ष्णं धारवाला घूमता चक्र है	अबुधस्य	इस (कालचक्र)को न जानकर
स्वतन्त्र	स्वतन्त्र है,	असत् कर्मभिः	लौकिक असत् कर्मोंसे
सर्वं जगत्	सम्पूर्ण संसारको		
निष्कर्षयन्	अपनी ओर खींचता रहता है	किं भवेत्	क्या (रक्षा) सम्भव है ॥१९॥

शास्त्रस्य पितुरादेशं यो न वेद निवर्तकम् ।
कथं तदनुरूपाय गुणविश्रम्भ्युपक्रमेत् ॥२०॥

शास्त्रस्य पितुः आदेशं यः न वेद निवर्तकं कथं तत् अनुरूपाय गुण विश्रम्भ्य उपक्रमेत् ॥२०॥

शास्त्रस्य पितुः	शास्त्ररूप पिताका	**तत् अनुरूपाय**	उस(शास्त्र तात्पर्य)
आदेशं	आदेश		के अनुकूल
निवर्तकं	निवृत्त करने	**कथं उपक्रमेत्**	कैसे उपराम
	वाला है		होगा ॥२०॥
यः न वेद	जो इसे नहीं		
	जानता,		
गुण विश्रम्भ्य	गुण (शब्दादि		
	विषयों)पर विश्वास		
	करके		

इति व्यवसिता राजन् हर्यश्वा एकचेतसः ।
प्रययुस्तं परिक्रम्य पन्थानमनिवर्तनम् ॥२१॥

इति व्यवसिता राजन् हर्यश्वा एकचेतसः प्रययुः तं परिक्रम्य पन्थानं अनिवर्तनम् ॥२१॥

राजन्	राजन् !	**अनिवर्तनं**	न लौटने वाले
एकचेतसः	अभिन्न हृदय		(मोक्षके)
हर्यश्वा	हर्यश्व	**पन्थानं**	मार्गपर
इति व्यवसिता	ऐसा निश्चय करके	**प्रययुः**	चल पड़े ॥२१॥
तं परिक्रम्य	उन (नारदजी)की		
	परिक्रमा करके		

स्वरब्रह्मणि निर्भातहृषीकेशपदाम्बुजे ।
अखण्डं चित्तमावेश्य लोकाननुचरन्मुनिः ॥२२॥

स्वरब्रह्मणि निर्भात हृषीकेश पदाम्बुजे अखण्डं चित्तं आवेश्य लोकान् अनुचरन् मुनिः ॥२२॥

मुनिः	देवर्षि नारद	**निर्भात**	प्रकाशित
स्वरब्रह्मणि	संगीत-लहरीमें	**हृषीकेश**	हृषीकेशके

पदाम्बुजे	चरण-कमलोंमें	लोकान्	लोकोंमें
चित्तं अखण्डं	अखण्ड रूपसे चित्त-को	अनुचरन्	विचरने लगे ॥२२॥
आवेश्य	प्रविष्ट करके(तन्मय होकर		

नाशं निशम्य पुत्राणां नारदाच्छीलशालिनाम् ।
अन्वतप्यत कः शोचन सुप्रजस्त्वं शुचां पदम् ॥२३॥

नाशं निशम्य पुत्राणां नारदात् शीलशालिनां अनु अतप्यत कः शोचत् सुप्रजः त्वं शुचां पदम् ॥२३॥

शीलशालिनां	शीलवान्	अनु अतप्यत	बार-बार संतप्त होने लगे
पुत्राणां	पुत्रोंका		
नारदात्	नारद द्वारा	सुप्रजः त्वं	उत्तम सन्तान होना भी
नाशं	नाश (के समान कर्तव्यच्युत होना)	शुचां पदं	शोकका स्थान (कारण) है ॥२३॥
निशम्य	सुनकर		
कः शोचत्	प्रजापति (दक्ष) शोक करके		

स भूयः पाञ्चजन्यायामजेन परिसान्त्वितः ।
पुत्रानजनयद् दक्षः शबलाश्वान् सहस्रशः ॥२४॥

स भूयः पाञ्चजन्यायां अजेन परिसान्त्वितः पुत्रान् अजनयत् दक्षः शबलाश्वान् सहस्त्रशः ॥२४॥

अजेन	ब्रह्माजी द्वारा	शबलाश्वान्	शबलाश्व नामक
परिसान्त्वितः	भली प्रकार सम-झानेपर	सहस्त्रशः	एक सहस्र
		पुत्रान् अजनयत्	पुत्र उत्पन्न किए ॥२४॥
स दक्षः भूयः	उन दक्षने फिर		
पाञ्चजन्यायां	पाञ्चजनी (पत्नी)से		

तेऽपि पित्रा समादिष्टाः प्रजासर्गे धृतव्रताः ।
नारायणसरो जग्मुर्यत्र सिद्धाः स्वपूर्वजाः ॥२५॥

ते अपि पित्रा समादिष्टाः प्रजासर्गे धृतव्रताः नारायणसरः जग्मुः यत्र सिद्धाः स्वपूर्वजाः ॥२५॥

ते अपि	वे भी	**यत्र स्वपूर्वजाः**	जहां अपने अग्रज
प्रजासर्गे	सन्तान उत्पन्न करनेके लिए	**सिद्धाः**	सिद्ध हुए थे (उसी)
पित्रा	पिताका	**नारायणसरः**	नारायण-सरोवर-पर
समादिष्टाः	आदेश पाकर	**जग्मुः**	गये ॥२५॥
धृतव्रताः	व्रत धारण करके		

तदुपस्पर्शनादेव विनिर्धूतमलाशयाः ।
जपन्तो ब्रह्म परमं तेपुस्तेऽत्र महत् तपः ॥२६॥

तत् उपस्पर्शनात् एव विनिर्धूतमल आशयाः जपन्तः ब्रह्म परमं तेपुः ते अत्र महत् तपः ॥२६॥

तत् उपस्पर्शनात्	उसमें स्नान करनेसे	**जपन्तः**	जप करते हुए
एव	ही	**अत्र ते**	यहाँ उन्होंने
आशयाः	उनके चित्तका	**महत् तपः तेपुः**	महान् तपस्या की ॥२६॥
विनिर्धूतमल	मल भली प्रकार धुल गया,		
परमं ब्रह्म	परमब्रह्म (स्वरूप प्रणव) का		

अब्भक्षाः कतिचिन्मासान् कतिचिद् वायुभोजनाः ।
आराधयन् मन्त्रमिममभ्यस्यन्त इडस्पतिम् ॥२७॥

अप् भक्षाः कतिचित् मासान् कतिचित् वायुभोजनाः आराधयन् मन्त्रं इमं अभ्यस्यन्तः इडस्पतिम् ॥२७॥

कतिचित्	कुछ	इमं मन्त्रं	इस मन्त्रका
मासान्	महीने	अभ्यस्यन्त	जप करते हुए
अप्भक्षाः	केवल जल पीकर रहे,	इडस्पतिं	मन्त्राधिप (भगवान्)की
कतिचित्	कुछ (महीने)	आराधयन्	आराधना करने लगे ॥२७॥
वायु भोजनाः	वायु-भोजन (श्वास लेते) रहे,		

ॐ नमो नारायणाय पुरुषाय महात्मने ।
विशुद्धसत्त्वधिष्ण्याय महाहंसाय धीमहि ॥२८॥

ॐ नमः नारायणाय पुरुषाय महात्मने विशुद्धसत्त्व धिष्ण्याय महाहंसाय धीमहि ॥२८॥

ॐ	ओंकार स्वरूप	विशुद्धसत्त्व	शुद्ध अन्त करणमें
नारायणाय	नारायणको	धिष्ण्याय	रहने वाले
नमः	नमस्कार	महाहंसाय	महाहंसका
महात्मने	महान् आत्मा रूप	धीमहि	(हम) ध्यान करते
पुरुषाय	परम-पुरुष जो		हैं ॥२८॥

इति तानपि राजेन्द्र प्रतिसर्गधियो मुनिः ।
उपेत्य नारदः प्राह वाचःकूटानि पूर्ववत् ॥२९॥

इति तान् अपि राजेन्द्र प्रतिसर्गधियः मुनिः उपेत्य नारदः प्राह वाचः कूटानि पूर्ववत् ॥२९॥

राजेन्द्र	राजेन्द्र परीक्षित !	नारदः मुनिः	नारद मुनि
इति	इस प्रकार (तपमें लगे)	उपेत्य	पास आकर
तान् अपि	उनसे भी	पूर्ववत्	पहिलेके समान
प्रतिसर्गधियः	सृष्टिमें उलटी (निवृत्ति) में लगी बुद्धिवाले	कूटानि वाचः	कूट-वचन
		प्राह	बोले ॥२९॥

दाक्षायणाः संशृणुत गदतो निगमं मम ।
अन्विच्छतानुपदवीं भ्रातॄणां भ्रातृवत्सलाः ॥३०॥

दाक्षायणाः संशृणुत गदतः निगमं मम अन्विच्छत अनुपदवीं भ्रातॄणां भ्रातृवत्सलाः ॥३०॥

दाक्षायणाः	दक्षपुत्रो !	**भ्रातॄणां अनुपदवीं**	(अतः) भाइयोंके मार्गका
मम गदतः	मेरे कहे	**अन्विच्छत**	अनुसंधान करो ॥३०॥
निगमं	उपदेशको		
संशृणुत	सुनो,		
भ्रातृवत्सलाः	(तुम) भाइयोंसे प्रेम करनेवाले हो		

भ्रातॄणां प्रायणं भ्राता योऽनुतिष्ठति धर्मवित् ।
स पुण्यबन्धुः पुरुषो मरुद्भिः सह मोदते ॥३१॥

भ्रातॄणां प्रायणं भ्राता यः अनुतिष्ठति धर्मवित् स पुण्यबन्धुः पुरुषः मरुत्भिः सह मोदते ॥३१॥

यः धर्मवित्	जो धर्मज्ञ	**पुरुषः मरुत्भिः सह मोदते**	पुरुष मरुद्गणोंके साथ आनन्द भोगता है ॥३१॥
भ्राता भ्रातॄणां	भाई भाइयोंके		
प्रायणं	श्रेष्ठ मार्गपर		
अनुतिष्ठति	पीछे चलता है		
स पुण्यबन्धुः	वह पुण्यवान्का भाई		

एतावदुक्त्वा प्रययौ नारदोऽमोघदर्शनः ।
तेऽपि चान्वगमन् मार्गं भ्रातॄणामेव मारिष ॥३२॥

एतावत् उक्त्वा प्रययौ नारदः अमोघ दर्शनः ते अपि च अनु अगमन् मार्गं भ्रातॄणां एव मारिष ॥३२॥

अमोघ दर्शनः	जिनका दर्शन व्यर्थ नहीं जाता वे	**नारदः**	नारदजी
		एतावत् उक्त्वा	इतना ही कहकर

प्रययौ	चले गये।	**भातृणां एव**	भाइयोंके ही
ते मारिष	वे मारिषा	**मार्गं**	मार्गके
अपि च	(असिन्की)के पुत्र भी	**अनु अगमन्**	पीछे चल पड़े ॥३२॥

सध्रीचीनं प्रतीचीनं परस्यानुपथं गताः।
नाद्यापि ते निवर्तन्ते पश्चिमा यामिनीरिव ॥३३॥

सध्रीचीनं प्रतीचीनं परस्य अनुपथं गताः न अद्य अपि ते निवर्तन्ते पश्चिमा यामिनीः इव ॥३३॥

प्रतीचीनं	अन्तर्मुख होनेवाले	**पश्चिमा**	बीती हुई
सध्रीचीनं	अत्यन्त सुन्दर	**यामिनीः इव**	रात्रिकी भांति
परस्य	परमपुरुषकी	**अद्य अपि**	आज तक भी
अनुपथं	ओर जानेवाले मार्गपर	**न निवर्तन्ते**	(वे) नहीं लौटे हैं ॥३३॥
गताः	गये		

एतस्मिन् काल उत्पातान् बहून् पश्यन् प्रजापतिः।
पूर्ववन्नारदकृतं पुत्रनाशमुपाश्रृणोत् ॥३४॥

एतस्मिन् काल उत्पातान् बहून् पश्यन् प्रजापतिः पूर्ववत् नारदकृतं पुत्र नाशं उपाश्रृणोत् ॥३४॥

एतस्मिन् काल	इसी समयमें	**नारदकृतं**	नारद द्वारा किया
बहुन् उत्पातान्	बहुतसे अपशकुन	**पुत्र नाशं**	अपने पुत्रोंका चौपट होना
प्रजापतिः	प्रजापति दक्ष	**उपाश्रृणोत्**	सुना ॥३४॥
पश्यन्	देख रहे थे कि		
पूर्ववत्	पहिलेके समान		

चुक्रोध नारदायासौ पुत्रशोकविमूर्च्छितः।
देवर्षिमुपलभ्याह रोषाद्विस्फुरिताधरः ॥३५॥

चुक्रोध नारदाय असौ पुत्रशोक विमूर्च्छितः देवर्षि उपलभ्य आह रोषात् विस्फुरित अधरः ॥३५॥

असौ	ये दक्ष	देवर्षि उपलभ्य	देवर्षिके मिलनेपर
पुत्रशोक	पुत्रोंके शोकसे	रोषात्	क्रोधसे
विमूर्च्छितः	अत्यन्त व्याकुल होकर	विस्फुरित	फड़कते
		अधरः	ओष्ठ
नारदाय	नारदजीपर	आह	बोले ॥३५॥
चुक्रोध	क्रुद्ध हो गये		

दक्ष उवाच—

अहो असाधो साधूनां साधुलिङ्गेन नस्त्वया ।
असाध्वकार्यभकाणां भिक्षोर्मार्गः प्रदर्शितः ॥३६॥

अहो असाधोः साधूनां साधुलिङ्गेन नः त्वया असाधु अकार्यः भकाणां भिक्षोः मार्गः प्रदर्शितः ॥३६॥

अहो असाधोः	अरे दुष्ट !	असाधु अकार्यः	अपकार किया है जो
साधुलिङ्गेन	साधुओंके वेशमें रहनेवाले	भकाणां	(मेरे) बच्चोंको
त्वया	तुमने	भिक्षोः मार्गः	भिक्षुकोंका मार्ग
नः साधूनां	हम सज्जनोंका	प्रदर्शितः	दिखला दिया ॥३६॥

ऋणैस्त्रिभिरमुक्तानाममीमांसितकर्मणाम् ।
विद्यातः श्रेयसः पाप लोकयोरुभयोः कृतः ॥३७॥

ऋणैः त्रिभिः अमुक्तानां अमीमांसित कर्मणां विद्यातः श्रेयसः पाप लोकयोः उभयोः कृतः ॥३७॥

ऋणै त्रिभिः	तीनों (पितृ-ऋण, ऋषि-ऋण, देव-ऋण) ऋणोंसे	कर्मणां	कर्मों (उनके फलकी नश्वरता) का
अमुक्तानां	(वे) सन्तानोत्पादन, वेदाध्ययन और यज्ञ करके) छूटे नहीं थे,	अमीमांसित	(अभी) विचार नहीं किया था,
		पाप	पापी (तूने)

उभयोः लोकयोः	दोनों लोकोंके	कृतः	कर दिया ॥३७॥
श्रेयसः विघातः	कल्याणका नाश		

एवं त्वं निरनुक्रोशो बालानां मतिभिद्धरेः ।
पार्षदमध्ये चरसि यशोहा निरपत्रपः ॥३८॥

एवं त्वं निः अनुक्रोशः बालानां मतिभित् हरेः पार्षद मध्ये चरसि यशोहा निरपत्रपः ॥३८॥

त्वं एवं	तू इस प्रकारका	निरपत्रपः	निर्लज्ज होकर
निः अनुक्रोशः	निर्दय,	हरेः पार्षद	श्रीहरिके पार्षदोंके
बालानां	बालकोंकी	मध्ये चरसि	बीचमें घूमता है,
मतिभित्	बुद्धि-भ्रमित करने-वाला	यशोहा	(उनके भी) यश-का नाशक है ॥३८॥

ननु भागवता नित्यं भूतानुग्रहकातराः ।
ऋते त्वां सौहृदघ्नं वै वैरङ्करमवैरिणाम् ॥३९॥

ननु भागवता नित्यं भूत अनुग्रह कातराः ऋते त्वां सौहृदघ्नं वै वैरं कृत अवैरिणाम् ॥३९॥

ननु	निश्चय	वै सौहृदघ्नं	निश्चय मित्रता नाशक
भागवता	भगवद्भक्त		
नित्यं	सदा	अवैरिणां	शत्रुता न करने वालोंसे भी
भूत अनुग्रह	प्राणियोंपर कृपा करनेके लिए	वैरं कृत	शत्रुता करनेवाले
कातराः	आतुर रहते हैं,	त्वां ऋते	तुझे छोड़कर ॥३९॥

नेत्थं पुंसां विरागः स्यात् त्वया केवलिना मृषा ।
मन्यसे यदुपशमं स्नेहपाशनिकृन्तनम् ॥४०॥

न इत्थं पुंसां विरागः स्यात् त्वया केवलिना मृषा मन्यसे यत् उपशमं स्नेहपाश निकृन्तनम् ॥४०॥

त्वया मृषा	तुझ झूठे	**यत्**	जो
केवलिना	वैराग्य वेशधारीके द्वारा	**उपशमं**	वैराग्यको ही
		स्नेहपाश	स्नेह-बन्धनको
पुंसां इत्थं	पुरुषको इस प्रकार	**निकृन्तनं**	काटनेवाला
विरागः न	वैराग्य नहीं होता,	**मन्यसे**	मानने हो ॥४०॥

नानुभूय न जानाति पुमान् विषयतीक्ष्णताम् ।
निर्विद्येत स्वयं तस्मान्न तथा भिन्नधीः परैः ॥४१॥

न अनुभूय न जानाति पुमान् विषय तीक्ष्णतां निर्विद्येत स्वयं तस्मात् न तथा भिन्नधीः परैः ॥४१॥

न अनुभूय	बिना अनुभव किये	**निर्विद्येत**	विरक्त हो जाता है,
पुमान्	पुरुष	**तथा परैः**	वैसा (वैराग्य) दूसरों द्वारा
विषय तीक्ष्णतां	विषय-भोगोंकी कटुता	**भिन्नधीः**	बुद्धिभ्रम (उत्पन्न करने) से
न जानाति	नहीं जान पाता	**न**	नहीं होता ॥४१॥
तस्मात्	इसलिए		
स्वयं	स्वयं (कटुताके कारण)		

यन्नस्त्वं कर्मसन्धानां साधूनां गृहमेधिनाम् ।
कृतवानसि दुर्मर्षं विप्रियं तव मर्षितम् ॥४२॥

यत् नः त्वं कर्म सन्धानां साधूनां गृहमेधिनां कृतवान् असि दुर्मर्षं विप्रियं तव मर्षितम् ॥४२॥

कर्म सन्धानां	कर्मयोगमें लगे,	**त्वं कृतवान् असि**	तुमने (पहिले) किया था,
साधूनां	सज्जन	**तव मर्षितं**	(वह) तुम्हारा अपराध हमने सह लिया था ॥४२॥
गृहमेधिनां	गृहस्थ		
नः त्वं	हमारा तुमने		
यत् दुर्मर्षं	जो दुःसह		
विप्रियं	अप्रिय		

तन्तुकृन्तन यन्नस्त्वमभद्रमचरः पुनः ।
तस्माल्लोकेषु ते मूढ न भवेद्भ्रमतः पदम् ॥४३॥

तन्तु कृन्तन यत् नः त्वं अभद्रं अचरः पुनः तस्मात् लोकेषु ते मूढ न भवेत् भ्रमतः पदम् ॥४३॥

यत् त्वं	क्योंकि तुमने	**तस्मात्**	इसलिए
नः तन्तु कृन्तन	हमारी वंश पर-म्पराको काटनेका	**मूढ**	मूर्ख !
		लोकेषु भ्रमतः	लोकेमें घूमते हुए
पुनः अभद्रं	फिर अमंगलकारी	**ते पदं**	तुझे ठहरनेका स्थान
अचरः	आचरण किया है	**न भवेत्**	(कहीं)न हो ॥४३॥

श्रीशुक उवाच–

प्रतिजग्राह तद् बाढं नारदः साधुसम्मतः ।
एतावान् साधुवादो हि तितिक्षेतेश्वरः स्वयम् ॥४४॥

प्रति जग्राह तद् बाढं नारदः साधु सम्मतः एतावान् साधुवादः हि तितिक्षेत् ईश्वरः स्वयम् ॥४४॥

साधु सम्मतः	संत शिरोमणि	**साधुवादः**	साधुताका नाम (स्वरूप) है कि
नारदः	नारदजीने		
तद् बाढं	उस (शाप) को 'अच्छा' कहकर	**स्वयं ईश्वरः**	स्वयं (प्रतिभार में) समर्थ होते हुए भी
प्रति जग्राह	स्वीकार कर लिया।	**तितिक्षेत्**	(दूसरेका अपकार) सहन करले ॥४४॥
हि एतावान्	क्योंकि इतना ही		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे नारदशापो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

अथ षष्ठोऽध्याय

श्रीशुक उवाच-

ततः प्राचेतसोऽसिक्न्यामनुनीतः स्वयम्भुवा ।
षष्टिं सञ्जनयामास दुहितॄः पितृवत्सलाः ॥१॥

ततः प्राचेतसः असिक्न्यां अनुनीतः स्वयम्भुवा षष्टिं सञ्जनयामास दुहितॄः पितृवत्सलाः ॥१॥

ततः	तब	**षष्टिं**	साठ
स्वयम्भुवा	ब्रह्माजी द्वारा	**पितृवत्सलाः**	पितासे प्रेम करने-वाली
अनुनीतः	अनुनय-विनय करनेपर	**दुहितॄः**	पुत्रियाँ
प्राचेतसः	प्रचेतानन्दन दक्षने	**सञ्जनयामास**	उत्पन्न कीं ॥१॥
असिक्न्यां	(अपनी पत्नी) असिन्कीमें		

दश धर्माय कायेन्दोर्द्विषट् त्रिणव दत्तवान् ।
भूताङ्गिरः कृशाश्वेभ्यो द्वे द्वे तार्क्ष्याय चापराः ॥२॥

दश धर्माय काय इन्दोः द्विषट् त्रिणव दत्तवान् भूत अङ्गिरः कृशाश्वेभ्यः द्वे द्वे तार्क्ष्याय च अपराः ॥२॥

दश धर्माय	दस कन्याएँ धर्मको दीं	**इन्दो त्रिणव**	चन्द्रमाको तीन नव (सत्ताइस)
काय द्विषट्	काय (एक शरीर) और दो छः कश्यपको (बारह-तेरह)	**भूत अङ्गिरः**	भूत, अंगिरा
		कृशाश्वेभ्यः	कृशाश्वको
		द्वे द्वे	दो-दो

च अपराः	और दूसरी शेष (चार)	तार्क्ष्याय	तार्क्ष्य (नामधारी) कश्यपको
		दत्तवान्	दीं ॥२॥

नामधेयान्यमूषां त्वं सापत्यानां च मे शृणु ।
यासां प्रसूतिप्रसवैर्लोका आपूरितास्त्रयः ॥३॥

नाम धेयानि अमूषां त्वं स अपत्यानां च मे शृणु यासां प्रसूति प्रसवैः लोका आपूरिताः त्रयः ॥३॥

त्वं	तुम	यासां	जिनसे
अमूषां	इनके	प्रसूति प्रसवैः	उत्पन्न सन्तानोंके वंशसे
स अपत्यानां	पुत्रोंके साथ		
नाम धेयानि	नाम	त्रयः लोका	तीनों लोक
मे शृणु	मुझसे सुनो,	आपूरिताः	भर गये ॥३॥

भानुर्लम्बा ककुब्जामिर्विश्वा साध्या मरुत्वती ।
वसुर्मुहूर्ता सङ्कल्पा धर्मपत्न्यः सुताञ्शृणु ॥४॥

भानुः लम्बा ककुभ् जामिः विश्वा साध्या मरुत्वती वसुः मुहूर्ता सङ्कल्पा धर्मपत्न्यः सुतान् शृणु ॥४॥

भानुः लम्बा	भानु, लम्बा,	मुहूर्ता सङ्कल्पा	मुहूर्ता संकल्पा
ककुभ् जामिः	ककुभ, जामि	धर्मपत्न्यः	ये धर्मकी पत्नियाँ हैं,
विश्वा साध्या	विश्वा, साध्या,	सुतान् शृणु	इनके पुत्रोंके (नाम) सुनो ॥४॥
मरुत्वती वसुः	मरुत्वती, वसु,		

भानोस्तु देवऋषभ इन्द्रसेनस्ततो नृप ।
विद्योत आसील्लम्बायास्ततश्च स्तनयित्नवः ॥५॥

भानोः तु देवऋषभ इन्द्रसेनः ततः नृप विद्योत आसीत् लम्बायाः ततः च स्तनयित्नवः ॥५॥

नृप	राजन् !	**लम्बायाः**	लम्बासे
भानोः तुः	भानुका तो (पुत्र)	**विद्योत आसीत्**	विद्योत हुआ,
देवऋषभ	देवऋषभ था,	**च ततः**	और उससे
ततः इन्द्रसेनः	उससे इन्द्रसेन (हुआ)	**स्तनयित्नवः**	मेघगण हुए ॥५॥

ककुभः सङ्कटस्तस्य कीकटस्तनयो यतः ।
भुवो दुर्गाणि जामेयः स्वर्गो नन्दिस्ततोऽभवत् ॥६॥

ककुभः सङ्कटः तस्य कीकटः तनयः यतः भुवः दुर्गाणि जामेयः स्वर्गः नन्दिः ततः अभवत् ॥६॥

तस्य ककुभः	उस ककुभके	**जामेयः स्वर्गः**	जामिका पुत्र स्वर्ग
कीकटः	कीकट	**यतः नन्दिः**	उससे नन्दी
यतः तनयः	जिसके पुत्र	**अभवत्**	हुआ ॥६॥
भुवः दुर्गाणि	पृथ्वीपर किलोंके अभिमानी देवता हुए		

विश्वेदेवास्तु विश्वाया अप्रजांस्तान् प्रचक्षते ।
साध्यो गणस्तु साध्याया अर्थसिद्धिस्तु तत्सुतः ॥७॥

विश्वेदेवाः तु विश्वायाः अप्रजान तान् प्रचक्षते साध्यः गणः तु साध्याया अर्थ सिद्धिः तु तत् सुतः ॥७॥

विश्वायाः तु	विश्वाके तो	**साध्यायां तु**	साध्यासे तो
विश्वेदेवाः	विश्वेदेव हुए,	**साध्यः गणः**	साध्य-गण हुए,
तान् अप्रजान्	उनको निःसन्तान	**तत् सुतः तु**	उनका पुत्र तो
प्रचक्षते	(शास्त्रोंमें) कहा गया है ।	**अर्थ सिद्धिः**	अर्थ सिद्ध हुआ ॥७॥

मरुत्वांश्च जयन्तश्च मरुत्वत्यां बभूवतुः ।
जयन्तो वासुदेवांश उपेन्द्र इति यं विदुः ॥८॥

मरुत्वान् च जयन्तः च मरुत्वत्यां बभूवतुः जयन्तः वासुदेव अंश उपेन्द्र इति यं विदुः ॥८॥

मरुत्वत्यां च	मरुत्वतीमें तो	**वासुदेव अंश**	वासुदेव भगवान्‌का अंश है
मरुत्वान्	मरुत्वान्	**यं उपेन्द्र**	जिसे उपेन्द्र
च जयन्तः	और जयन्त	**इति विदुः**	इस नामसे भी जाना
बभूवतुः	उत्पन्न हुए,		जाता है ॥८॥
जयन्तः	(इनमें) जयन्त		

मौहूर्तिका देवगणा मुहूर्तायाश्च जज्ञिरे ।
ये वै फलं प्रयच्छन्ति भूतानां स्वस्वकालजम् ॥९॥

मौहूर्तिका देवगणा मुहूर्तायाः च जज्ञिरे ये वै फलं प्रयच्छन्ति भूतानां स्व स्व कालजम् ॥९॥

मुहूर्तायाः	मुहूर्तासे तो	**स्व स्व कालजं**	अपने-अपने कालमें होनेवाला
मौहूर्तिका	मुहूर्ताभिमानी		
देवगणा	देवगण	**फलं**	फल
जज्ञिरे	उत्पन्न हुए	**भूतानां**	प्राणियोंको
ये वै	जो निश्चय	**प्रयच्छन्ति**	देते हैं ॥९॥

सङ्कल्पायाश्च सङ्कल्पः कामः सङ्कल्पजः स्मृतः ।
वसवोऽष्टौ वसोः पुत्रास्तेषां नामानि मे शृणु ॥१०॥

सङ्कल्पायाः च सङ्कल्पः कामः सङ्कल्पजः स्मृतः वसवः अष्टौ वसोः पुत्राः तेषां नामानि मे शृणु ॥१०॥

सङ्कल्पायाः च	सङ्कल्पासे तो	**वसोः पुत्राः**	वसुके पुत्र
सङ्कल्पः	संकल्प हुआ,	**अष्टौ वसवः**	आठों वसु हैं
कामः	काम	**तेषां नामानि**	उनके नाम
सङ्कल्पजः	सङ्कल्पसे उत्पन्न	**मे शृणु**	मुझसे सुनो ॥१०॥
स्मृतः	बतलाया गया है,		

द्रोणः प्राणो ध्रुवोऽर्कोऽग्निर्दोषो वसुर्विभावसुः ।
द्रोणस्याभिमतेः पत्न्या हर्षशोकभयादयः ॥११॥

द्रोणः प्राणः ध्रुवः अर्कः अग्निः दोषः वसुः विभावसुः द्रोणस्य अभिमतेः पत्न्या हर्ष शोक भय आदयः ॥११॥

द्रोणः प्राणः	द्रोण, प्राण,	**अभिमतेः**	असिमतिसे
ध्रुवः अर्कः	ध्रुव, अर्क,	**हर्ष शोक**	हर्ष, शोक,
अग्निः दोषः	अग्नि, दोष,	**भय आदयः**	भय आदि (के
वसुः विभावसुः	वसु, विभावसु,		अभिमानी देवता)
द्रोणस्य पत्न्या	(इनमें) द्रोणकी पत्नी		हुए ॥११॥

प्राणस्योर्जस्वती भार्या सह आयुः पुरोजवः ।
ध्रुवस्य भार्या धरणिरसूत विविधाः पुरः ॥१२॥

प्राणस्य उर्जस्वती भार्या सह आयुः पुरोजवः ध्रुवस्य भार्या धरणिः असूत विविधाः पुरः ॥१२॥

प्राणस्य	प्राणकी	**भार्या धरणिः**	पत्नी धरणिने
भार्या उर्जस्वती	पत्नी उर्जस्वतीने	**विविधाः पुरः**	नाना प्रकारके
सह आयुः	सह, आयु,		नगरोंके अधिदेव-
पुरोजवः	पुरोजवको,		ताओंको
ध्रुवस्य	(और) ध्रुवकी	**असूत**	जन्म दिया ॥१२॥

अर्कस्य वासना भार्या पुत्रास्तर्षादयः स्मृताः ।
अग्नेर्भार्या वसोर्धारा पुत्रा द्रविणकादयः ॥१३॥

अर्कस्य वासना भार्या पुत्राः तर्ष आदयः स्मृताः अग्नेः भार्या वसोः धारा पुत्राः द्रविणक आदयः ॥१३॥

अर्कस्य	अर्कंकी	**भार्या धारा**	पत्नी धाराके
भार्या वासना	पत्नी वासनासे	**पुत्राः**	पुत्र
तर्ष आदयः	तर्ष (तृष्णा) आदि	**द्रविणक आदयः**	द्रविणक आदि
पुत्राः स्मृताः	पुत्र बताये जाते हैं।		हुए ॥१३॥
अग्ने वसोः	अग्नि नामक वसुकी		

स्कन्दश्च कृत्तिकापुत्रो ये विशाखादयस्ततः ।
दोषस्य शर्वरीपुत्रः शिशुमारो हरेः कला ॥१४॥

स्कन्दः च कृत्तिकापुत्रः ये विशाखा आदयः ततः दोषस्य शर्वरीपुत्रः शिशुमारः हरेः कला ॥१४॥

कृत्तिकापुत्रः	कृत्तिकाके पुत्र	**विशख आदयः**	विशाख आदि थे (वे हुए)
स्कन्दः च	स्कन्द (कुमार कार्तिक) भी (अग्निसे ही उत्पन्न हुए)	**दोषस्य**	दोषकी
		शर्वरीपुत्रः	पत्नी शर्वरीके पुत्र
		हरेः कला	श्री हरिकी कलासे
ततः	उनसे जो	**शिशुमारः**	शिशुमार (मण्डल) हुआ ॥१४॥

वसोराङ्गिरसीपुत्रो विश्वकर्मा कृतीपतिः ।
ततो मनुश्चाक्षुषोऽभूद् विश्वेसाध्या मनोः सुताः ॥१५॥

वसोः आङ्गिरसी पुत्रः विश्वकर्मा कृतीपतिः ततः मनुः चाक्षुषः अभूत् विश्वेसाध्याः मनोः सुताः ॥१५॥

वसोः	वसुकी (पत्नी)	**मनुः अभूत्**	मनु हुए,
आङ्गिरसी	आंगिरसीके	**विश्वेसाध्या**	विश्वेदेव और साध्यगण
पुत्रः कृतीपतिः	पुत्र शिल्पकलाके अधिपति	**मनोः सुताः**	मनुके पुत्र हुए ॥१५॥
विश्वकर्मा	विश्वकर्मा हुए,		
ततः चाक्षुषः	उनसे चाक्षुष		

विभावसोरसूतोषा व्युष्टं रोचिषमातपम् ।
पञ्चयामोऽथ भूतानि येन जाग्रति कर्मसु ॥१६॥

विभावसोः असूत उषा व्युष्टं रोचिषं आतपं पञ्चयामः अथ भूतानि येन जाग्रति कर्मसु ॥१६॥

विभावसोः	विभावसुकी (पत्नी)
उषा व्युष्टं	उषाने व्युष्ट,
रोचिषं आतपं	रोचिष, आतपको
असूत	जन्म दिया,
अथ पञ्चयामः	फिर (उनमेंसे आतप-के) पञ्चयाम (दिवस) नामक पुत्र हुआ
येन भूतानि	जिसके कारण प्राणी
कर्मसु जाग्रति	(अपने) कर्मोंमें जागते (लगे) रहते हैं ॥१६॥

सरूपासूत भूतस्य भार्या रुद्रांश्च कोटिशः ।
रैवतोऽजो भवो भीमो वाम उग्रो वृषाकपिः ॥१७॥

सरूपा असूत भूतस्य भार्या रुद्रान् च कोटिशः रैवतः अजः भवः भीमः वाम उग्रः वृषाकपि ॥१७॥

भूतस्य भार्या	भूतकी पत्नी
सरुपा कोटिशः	सरूपाने करोड़ों
रुद्रान् च	रुद्रोंको
असूत	उत्पन्न किया (इनमें)
रैवतः अजः	रैवत, अज,
भवः भीमः	भव, भीम,
वाम उग्रः	वाम, उग्र,
वृषाकपिः	वृषाकपि ॥१७॥

अजैकपादहिर्बुध्न्यो बहुरूपो महानिति ।
रुद्रस्य पार्षदाश्चान्ये घोरा भूतविनायकाः ॥१८॥

अजैकपादः अहिर्बुध्न्यः बहुरूपः महान् इति रुद्रस्य पार्षदाः च अन्ये घोरा भूत विनायकाः ॥१८॥

अजैकपादः	अजैकपाद
अहिर्बुध्न्यः	अहिर्बुध्न्य
बहुरूपः महान्	बहुरूप, महान्
इति	इस प्रकार (ग्यारह मुख्य) हैं ।
अन्ये	(भूतकी) दूसरी पत्नी (भूता) से
घोरा भूत	भयंकर भूत
च विनायकाः	और विनायक
रुद्रस्य पार्षदाः	(ग्यारहवें) प्रधान रुद्र (महान्) के पार्षद हुए ॥१८॥

प्रजापतेरङ्गिरसः स्वधा पत्नी पितॄनथ ।
अथर्वाङ्गिरसं वेदं पुत्रत्वे चाकरोत् सती ॥१९॥

प्रजापतेः अङ्गिरसः स्वधा पत्नी पितॄन् अथ अथर्वाङ्गिरसं वेदं पुत्रत्वे च अकरोत् सती ॥१९॥

प्रजापतेः	प्रजापति
अङ्गिरसः	अंगिराकी
स्वधा पत्नी	स्वधा नामक पत्नीने
पितॄन्	पितरोंको (जन्म दिया)
अथ सती	और (दूसरी पत्नी) सतीने
अथर्वाङ्गिरसं	अथर्वाङ्गिरस (नामके)
वेदं पुत्रत्वे च अकरोत्	वेदको पुत्र रूपमें ही बना (स्वीकार कर) लिया ॥१९॥

कृशाश्वोऽर्चिषि भार्यायां धूम्रकेशमजीजनत् ।
धिषणायां वेदशिरो देवलं वयुनं मनुम् ॥२०॥

कृशाश्वः अर्चिषि भार्यायां धूम्रकेशं अजीजनत् धिषणायां वेद शिरः देवलं वयुनं मनुम् ॥२०॥

कृशाश्वः	कृशाश्वने
अर्चिषि	अर्चि नामक
भार्यायां	पत्नीसे
धूम्रकेशं	धूम्रकेशको
अजीजनत्	उत्पन्न किया ।
धिषणायां	(दूसरी पत्नी) धिषणासे
वेदशिरः देवलं वयुनं मनुं	वेदशिरा देवल, वयुन और मनु-को ॥२०॥

तार्क्ष्यस्य विनता कद्रूः पतङ्गी यामिनीति च ।
पतङ्ग्यसूत पतगान् यामिनी शलभानथ ॥२१॥

तार्क्ष्यस्य विनता कद्रूः पतङ्गी यामिनी इति च पतङ्गी असूत पतगान् यामिनी शलभान् अथ ॥२१॥

तार्क्ष्यस्य	तार्क्ष्य (नामवाले कश्यपजी) की
विनता कद्रूः	विनता, कद्रू
पतङ्गी च	पतङ्गी और
यामिनी	यामिनी
इति	ये (चार पत्नियां) थीं,
पतङ्गी पतगान्	पतंगीने पक्षियोंको
अथ यामिनी	और यामिनीने
शलभान् असूत	शलभों (पतंगों)को उत्पन्न किया ॥२१॥

सुपर्णासूत गरुडं साक्षाद् यज्ञेशवाहनम् ।
सूर्यसूतमनूरुं च कद्रूर्नागाननेकशः ॥२२॥

सुपर्णा असूत गरुडं साक्षात् यज्ञेश वाहनं सूर्यसूतं अनूरुं च कद्रूः नागान् अनेकशः ॥२२॥

साक्षात् यज्ञेश	साक्षात् यज्ञेश भगवान् विष्णुके
वाहनं गरुडं	वाहन गरुड़को
च सूर्यसूतं	और सूर्यके सारथी
अनूरुं	अरुणको
सुपर्णा असूत	सुपर्णाने उत्पन्न किया
कद्रूः अनेकशः	कद्रूने अनेकों
नागान्	नाग (उत्पन्न किये) ॥२२॥

कृत्तिकादीनि नक्षत्राणीन्दोः पत्न्यस्तु भारत ।
दक्षशापात् सोऽनपत्यस्तासु यक्ष्मग्रहार्दितः ॥२३॥

कृत्तिका आदीनि नक्षत्राणि इन्दोः पत्न्यः तु भारत दक्षशापात् सः अनपत्यः तासु यक्ष्मग्रह आर्दितः ॥२३॥

भारत	परीक्षित् !
कृत्तिका आदीनि नक्षत्राणि	कृत्तिकादि (सत्ताइस) नक्षत्र
इन्दोः पत्न्यः तु	चन्द्रमाकी पत्नियां तो हैं;
दक्षशापात्	दक्षके शापसे
यक्ष्मग्रह आर्दितः	यक्ष्मा रोगसे पीड़ित होनेके कारण
सः तास	वह (चन्द्र) उन पत्नियोंसे
अनपत्यः	बिना सन्तानका है ॥२३॥

पुनः प्रसाद्य तं सोमः कला लेभे क्षयेदिताः ।
शृणु नामानि लोकानां मातॄणां शङ्कराणि च ॥२४॥

पुनः प्रसाद्य तं सोमः कला लेभे क्षयेत् इताः शृणु नामानि लोकानां मातॄणां शङ्कराणि च ॥२४॥

तं पुनः	उन (दक्ष) को फिर	**कला लेभे**	कलाएँ प्राप्त कीं ।
प्रसाद्य	प्रसन्न करके	**लोकानां**	(अब) सब लोकोंका
सोमः	चन्द्रमाने	**शङ्कराणि**	मंगल करनेवाले
क्षयेत् इताः	(कृष्ण पक्षमें) क्षीण होनेपर (शुक्ल-पक्ष-में) बढ़ने वाली	**मातॄणां**	लोक माताओंके
		नामानि च	नामोंको भी
		शृणु	सुनो ॥२४॥

अथ कश्यपपत्नीनां यत्प्रसूतमिदं जगत् ।
अदितिर्दितिर्दनुः काष्ठा अरिष्टा सुरसा इला ॥२५॥

अथ कश्यप पत्नीनां यत् प्रसूतं इदं जगत् अदितिः दितिः दनुः काष्ठा अरिष्टा सुरसा इला ॥२५॥

इदं जगत्	यह (पूरा) संसार	**अदितिः दितिः**	अदिति, दिति,
यत् प्रसूतं	जिनसे उत्पन्न हुआ	**दनुः काष्ठा**	दनु, काष्ठा,
अथ कश्यप	अब कश्यपजीकी	**अरिष्टा सुरसा,**	अरिष्टा, सुरसा,
पत्नीनां	पत्नियोंका	**इला**	इला ॥२५॥

मुनिः क्रोधवशा ताम्रा सुरभिः सरमा तिमिः ।
तिमेर्यादोगणा आसन् श्वापदाः सरमासुताः ॥२६॥

मुनिः क्रोधवशा ताम्रा सुरभिः सरमा तिमिः तिमेः यादोगणाः आसन् श्वापदाः सरमासुताः ॥२६॥

मुनिः क्रोधवशा	मुनि, क्रोधवशा,	**सरमा तिमिः**	सरमा और तिमि
ताम्रा सुरभिः	ताम्रा, सुरभि,	**तिमेः**	तिमिसे

यादोगणाः	जलचर जीव	**श्वापदाः**	(कुत्ते, बाघ आदि)
आसन्	हुए,		हिंसक प्राणी
सरमासुताः	सरमाकी सन्तान		हैं ॥२६॥

सुरभेर्महिषा गावो ये चान्ये द्विशफा नृप ।
ताम्रायाः श्येनगृध्राद्या मुनेरप्सरसां गणाः ॥२७॥

सुरभेः महिषा गावः ये च अन्ये द्विशफा नृप ताम्रायाः श्येन गृध्र आद्या मुनेः अप्सरसां गणाः ॥२७॥

नृप	राजन् !	**ताम्रायाः**	ताम्राकी (सन्तति)
सुरभेः	सुरभिके (सन्तान)	**श्येन गृध्र आद्या**	बाज, गीध आदि
महिषा गावः	भैंस, गाय		(शिकारी पक्षी)
च ये अन्ये	और जो दूसरे	**मुनेः**	मुनिकी (सन्तान)
द्विशफा	दो भागमें बँटे खुर	**अप्सरसां गणाः**	अप्सराओंका समूह
	वाले पशु हैं,		है ॥२७॥

दन्द शूकादयः सर्पा राजन् क्रोधवशात्मजाः ।
इलाया भूरुहाः सर्वे यातुधानाश्च सौरसाः ॥२८॥

दन्द शूक आदयः सर्पा राजन् क्रोधवशा आत्मजाः इलायाः भूरुहाः सर्वे यातुधानाः च सौरसाः ॥२८॥

राजन्	राजन् !	**इलायाः**	इलाके
क्रोधवशा	क्रोधवशाके	**सर्वे भूरुहाः**	सब वृक्षादि
आत्मजाः	पुत्र		वनस्पति
दन्द शूक	डंसने वाले बिच्छू	**च सौरसाः**	और सुरसाके
सर्पा आदयः	सांप आदि,	**यातुधानाः**	राक्षस हुए ॥२८॥

अरिष्टायाश्च गन्धर्वाः काष्ठाया द्विशफेतराः ।
सुता दनोरेकषष्टिस्तेषां प्राधानिकाञ् शृणु ॥२९॥

अरिष्टायाः च गन्धर्वाः काष्ठाया द्विशफ इतराः सुता दनोः एक षष्टिः तेषां प्राधानिकान् शृणु ॥२९॥

अरिष्टायाः	अरिष्टाके	दनोः सुता	दनुके पुत्र
गन्धर्वाः	गन्धर्व लोग,	एक षष्टिः	इकसठ हैं
च काष्ठाया	और काष्ठाके	तेषां	उनमें
द्विशफ इतराः	दो भागमें बँटे खुर वालोंको छोड़कर (घोड़े, गधे आदि) सब चौपाये	प्राधानिकान्	प्रधान-प्रधान (के
		शृणु	नाम) सुनो ॥२९॥

द्विमूर्धा शम्बरोऽरिष्टो हयग्रीवो विभावसुः ।
अयोमुखः शंकुशिराः स्वर्भानुः कपिलोऽरुणः ॥३०॥

द्विमूर्धा, शम्बरः, अरिष्टः, हयग्रीवः, विभावसुः, अयोमुखः शंकुशिराः स्वर्भानुः, कपिलः, अरुणः ॥३०॥*

पुलोमा वृषपर्वा च एकचक्रोऽनुतापनः ।
धूम्रकेशो विरुपाक्षो विप्रचित्तिश्च दुर्जयः ॥३१॥

पुलोमा, वृषपर्वा, च, एकचक्रः अनुतापनः, धूम्रकेशः विरुपाक्षः, विप्रचित्तिः, च (और), दुर्जयः ॥३१॥*

स्वर्भानोः सुप्रभां कन्यामुवाह नमुचिः किल ।
वृषपर्वणस्तु शर्मिष्ठां ययातिर्नाहुषो बली ॥३२॥

स्वर्भानोः सुप्रभां कन्यां उवाह नमुचिः किल वृषपर्वणः तु शर्मिष्ठां ययातिः नाहुषः बली ॥३२॥

स्वर्भानोः कन्यां	स्वर्भानुकी कन्या	तु वृषपर्वणः	तथा वृषपर्वाकी (पुत्री)
सुप्रभां	सुप्रभासे	शर्मिष्ठां	शर्मिष्ठासे
किल नमुचिः	अरे, नमुचिने	बली नाहुषः	बलवान नहुषनंदन
उवाह	विवाह किया	ययातिः	ययातिने ॥३२॥

* केवल नाम होनेके कारण इनका अन्वय, अर्थ नहीं हो सकता ।

वैश्वानरसुता याश्च चतस्रश्चारुदर्शनाः ।
उपदानवी हयशिरा पुलोमा कालका तथा ॥३३॥

वैश्वानर सुता याः च चतस्रः चारुदर्शनाः उपदानवी हयशिरा पुलोमा कालका तथा ॥३३॥

वैश्वानर याः	(दनुके पुत्र) वैश्वानरकी जो	**उपदानवी**	उपदानवी,
		हयशिरा	हयशिरा,
चतस्रः	चार	**पुलोमा तथा**	पुलोमा तथा
चारु दर्शनाः	सुन्दरी	**कालका**	कालका थीं ॥३३॥
सुता	कन्याएँ		

उपदानवीं हिरण्याक्षः क्रतुर्हयशिरां नृप ।
पुलोमां कालकां च द्वे वैश्वानरसुते तु कः ॥३४॥

उपदानवीं हिरण्याक्षः क्रतुः हयशिरां नृप पुलोमां कालकां च द्वे वैश्वानर सुते तु कः ॥३४॥

नृप	राजन् ! (उनमें-से)	**तु वैश्वानर**	तथा वैश्वानरकी
उपदानवीं	उपदानवीको	**द्वे सुते**	दो पुत्रियों
हिरण्याक्षः	हिरण्याक्षने,	**पुलोमां च**	पुलोमा और
हयशिरां	हयशिराको	**कालकां**	कालकाको
क्रतुः	क्रतुने (विवाहा)	**कः**	प्रजापति ॥३४॥

उपयेमेऽथ भगवान् कश्यपो ब्रह्मचोदितः ।
पौलोमाः कालकेयाश्च दानवा युद्धशालिनः ॥३५॥

उपयेमे अथ भगवान् कश्यपः ब्रह्मचोदितः पौलोमाः कालकेयाः च दानवा युद्धशालिनः ॥३५॥

कश्यपः अथ	कश्यपजीने फिर	**युद्धशालिनः**	युद्धवीर
भगवान्	समर्थ होनेसे	**पौलोमाः**	पौलोम
ब्रह्मचोदितः	ब्रह्माजीकी प्रेरणासे	**च कालकेयाः**	तथा कालकेय
उपयेमे	विवाह लिया (उनसे)	**दानवा**	दानव हुए ॥३५॥

तयोः षष्टिसहस्राणि यज्ञघ्नांस्ते पितुः पिता ।
जघान स्वर्गतो राजन्नेक इन्द्रप्रियङ्करः ॥३६॥

तयोः षष्टिसहस्राणि यज्ञघ्नान् ते पितुः पिता जघान स्वर्गतः राजन् एक इन्द्रप्रियङ्करः ॥३६॥

राजन्	राजन् !
तयोः यज्ञघ्नान्	उनमें यज्ञ नाशक
षष्टिसहस्राणि	साठ हजार (निवात-कवच नामक दानवों) को
इन्द्रप्रियङ्करः	इन्द्रको प्रसन्न करने-के लिए
ते पितुः पिता	तुम्हारे पितामह (अर्जुन) ने
स्वर्गतः	स्वर्ग जाकर
एक जघान	अकेली ही मार दिया ॥३६॥

विप्रचित्तिः सिंहिकायां शतं चैकमजीजनत् ।
राहुज्येष्ठं केतुशतं ग्रहत्वं य उपागतः ॥३७॥

विप्रचित्तिः सिंहिकायां शतं च एकं अजीजनत् राहुज्येष्ठं केतुशतं ग्रहत्वं यः उपागतः ॥३७॥

सिंहिकायां	सिंहिका (पत्नी) से
विप्रचित्तिः	विप्रचित्तिने
शतं च एकं	एक सौ एक (पुत्र)
अजीजनत्	उत्पन्न किये ।
राहुज्येष्ठं	उनमें राहु सबसे बड़ा था
यः ग्रहत्वं	जो ग्रहोंके
उपागतः	समकक्ष हो गया
केतुशतं	(शेष) सौ केतु हुए ॥३७॥

अथातः श्रूयतां वंशो योऽदितेरनुपूर्वशः ।
यत्र नारायणो देवः स्वांशेनावतरद् विभुः ॥३८॥

अथ अतः श्रूयतां वंशः यः अदितेः अनुपूर्वशः यत्र नारायणः देवः स्व अंशेन आवतरत् विभुः ॥३८॥

अथ	अब	**अतः**	अतः
यत्र	जिस (वंश) में	**यः अदितेः वंशः**	जो आदितिका वंश है
नारायणः देवः	भगवान् नारायणने	**अनुपूर्वशः**	क्रमानुसार (उसको)
विभुः	सर्वव्यापक (होने-पर भी) वे	**श्रूयतां**	सुनो ॥३८॥
स्व अंशेन	अपने अंश से		
अवतरत्	अवतार लिया		

विवस्वानर्यमा पूषा त्वष्टाथ सविता भगः ।
धाता विधाता वरुणो मित्रः शक उरुक्रमः ॥३९॥

विवस्वान, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, अथ सविता, भगः, धाता, विधाता, वरुणः,मित्रः,शक,उरुक्रमः (वामन) (यही बारह आदित्य कहलाये) ॥३९॥*

विवस्वतः श्राद्धदेवं संज्ञासूयत वै मनुम् ।
मिथुनं च महाभागा यमं देवं यमीं तथा ।
सैव भूत्वाथ वडवा नासत्यौ सुषुवे भुवि ॥४०॥

विवस्वतः श्राद्धदेवं संज्ञा असूयत वै मनुं मिथुनं च महाभागा यमं देवं यमीं तथा स एव भूत्वा अथ वडवा नासत्यौ सुषुवे भुवि ॥४०॥

विवस्वतः	विवस्वानसे (उनकी पत्नी)	**यमं देवं तथा**	देव यमराज तथा
महाभागा संज्ञा	महाभागा संज्ञाने	**यमीं**	यमुनाको
वै श्राद्धदेवं मनुं	अहो श्राद्धदेव (वैवस्वत) मनु	**असूयत**	उत्पन्न किया
		अथ	फिर
च मिथुनं	तथा एक जोड़े (युग्मज)	**स एव भुवि**	उसने ही पृथ्वीपर
		वडवा भूत्वा	घोड़ी बनकर
		नासत्यौ	अश्विनी कुमारोंको
		सुषुवे	जन्म दिया ॥४०॥

छाया शनैश्चरं लेभे सावर्णिं च मनुं ततः ।
कन्यां च तपतीं या वै वव्रे संवरणं पतिम् ॥४१॥

---

* सब संज्ञा (नाम) हैं।

छाया शनैश्चरं लेभे सावर्णि च मनुं ततः कन्यां च तपतीं या वै वव्रे संवरणं पतिम् ॥४१॥

छाया	(संज्ञाकी ही) छायाने	**लेभे**	पाया (पैदा किया)
ततः शनैश्चरं	फिर शनैश्चरको,	**या**	जिस (कन्या)ने
सावर्णि मनुं	और सावर्णि मनुको	**संवरणं**	संवरणको
च तपतीं	तपती (नामकी)	**पतिं वव्रे**	पति रूपमें वरण किया ॥४१॥
कन्यां वै	कन्याको भी		

अर्यम्णो मातृका पत्नी तयोश्चर्षणयः सुताः ।
यत्र वै मानुषी जातिर्ब्रह्मणा चोपकल्पिता ॥४२॥

अर्यम्णः मातृका पत्नी तयोः चर्षणयः सुताः यत्र वै मानुषी जातिः ब्रह्मणा च उपकल्पिता ॥४२॥

अर्यम्णः	अर्यमाकी	**वै यत्र**	निश्चय जिनके (आधार पर)
मातृका पत्नी	पत्नी मातृका थी,	**ब्रह्मणा च**	ब्रह्माजीने भी
तयोः सुताः	उसके पुत्र	**मानुषी जातिः**	मनुष्य जातिकी
चर्षणयः	चर्षणी हुए,	**उपकल्पिता**	कल्पना की ॥४२॥

पूषानपत्यः पिष्टादो भग्नदन्तोऽभवत् पुरा ।
योऽसौ दक्षाय कुपितं जहास विवृतद्विजः ॥४३॥

पूषा अनपत्यः पिष्टादः भग्नदन्तः अभवत् पुरा यः असौ दक्षाय कुपितं जहास विवृत द्विजः ॥४३॥

पूषा अनपत्यः	पूषा सन्तानहीन हैं	**यः असौ**	जिन्होंने
पिष्टादः	पिसा भोजन खाने-वाले हैं, क्योंकि	**दक्षाय कुपितं**	दक्षपर (शिवके) क्रोध करनेपर
पुरा	पहिले ही	**विवृत द्विजः**	दांत खोलकर
भग्नदन्तः	टूटे दांतवाले	**जहास**	हंसे थे ॥४३॥
अभवत्	हो गये,		

त्वष्टुर्दैत्यानुजा भार्या रचना नाम कन्यका ।
संनिवेशस्तयोर्जज्ञे विश्वरूपश्च वीर्यवान् ॥४४॥

त्वष्टुः दैत्य अनुजा भार्या रचना नाम कन्यका संनिवेशः तयोः जज्ञे विश्वरूपः च वीर्यवान् ॥४४॥

दैत्य अनुजा	दैत्योंकी छोटी बहिन	**तयोः संनिवेशः**	उससे संनिवेश
		च वीर्यवान्	और तेजस्वी
कन्यका रचना	कुमारी रचना	**विश्वरूपः**	विश्वरूप
नाम	नामकी	**जज्ञे**	उत्पन्न हुए ॥४४॥
त्वष्टुः भार्या	त्वष्टाकी पत्नी थी		

तं वव्रिरे सुरगणा स्वस्रीयं द्विषतामपि ।
विमतेन परित्यक्ता गुरुणाऽऽङ्गिरसेन यत् ॥४५॥

तं वव्रिरे सुरगणाः स्वस्रीयं द्विषतां अपि विमतेन परित्यक्ता गुरुणा आङ्गिरसेन यत् ॥४५॥

द्विषतां	शत्रुओंके	**परित्यक्ता**	त्याग दिये जानेपर
स्वस्रीयं अपि	भानजे होनेपर भी	**सुरगुणाः**	देवताओंने
विमतेन	अपमानित होनेसे	**तं**	उन (विश्वरूप)को
गुरुणा	अपने गुरु	**वव्रिरे**	(पुरोहित रूपमें)
आङ्गिरसेन	आङ्गिरानन्दन (बृहस्पति) द्वारा		वरण किया ॥४५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

राजोवाच—

कस्य हेतोः परित्यक्ता आचार्येणात्मनः सुराः ।
एतदाचक्ष्वभगवञ्छिष्याणामक्रमं गुरौ ॥१॥

कस्य हेतोः परित्यक्ताः आचार्येण आत्मनः सुराः एतत् आचक्ष्व भगवन् शिष्याणां अक्रमं गुरौ ॥१॥

भगवन्	भगवन् !	**शिष्याणां**	शिष्योंका
आचार्येण	आचार्य द्वारा	**एतत्**	यह
कस्य हेतोः	किस कारणसे	**गुरौ अक्रमं**	गुरुका अतिक्रमण
आत्मनः	अपने (शिष्य)	**आचक्ष्व**	बतलाइये ॥१॥
सुराः	देवता		
परित्यक्ताः	त्यागे गये,		

श्रीशुक उवाच—

इन्द्रस्त्रिभुवनैश्वर्यमदोल्लङ्घितसत्पथः ।
मरुद्भिर्वसुभी रुद्रैरादित्यैर्ऋभुभिर्नृप ॥२॥

इन्द्रः त्रिभुवन ऐश्वर्य मद उल्लङ्घित सत्पथः मरुद्भिः वसुभी रुद्रैः आदित्यैः ऋभुभिः नृप ॥२॥

नृप	राजन् !	**मरुद्भिः वसुभी**	(एक दिन) मरुद्गणों, वसुओं
त्रिभुवन ऐश्वर्य	त्रिलोकीका ऐश्वर्य पानेके	**रुद्रैः आदित्यैः**	रुद्रों, आदित्यों,
मद	घमण्डसे	**ऋभुभिः**	ऋभुगणों ॥२॥
इन्द्रः सत्पथः	इन्द्र सदाचारका		
उल्लङ्घित	उल्लंघन करने लगे थे,		

विश्वेदेवैश्च साध्यैश्च नासत्याभ्यां परिश्रितः ।
सिद्धचारणगन्धर्वैर्मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥३॥

विश्वेदेवैः च साध्यैः च नासत्याभ्यां परिश्रितः सिद्ध चारण गन्धर्वैः मुनिभिः ब्रह्मवादिभिः ॥३॥

विश्वेदेवैः	विश्वेदेवगण,	**सिद्ध चारण**	सिद्धों, चारणों
च साध्यैः	और साध्यगण	**गन्धर्वैः**	गन्धर्वों,
च नासत्याभ्यां	तथा अश्विनी-कुमारोंसे	**ब्रह्मवादिभिः**	वेदज्ञ
परिश्रितः	चारों ओरसे घिरे,	**मुनिभिः**	मुनियोंसे ॥३॥

विद्याधराप्सरोभिश्च किन्नरैः पतगोरगैः ।
निषेव्यमाणो मघवान् स्तूयमानश्च भारत ॥४॥

विद्याधर अप्सरोभिः च किन्नरैः पतग उरगैः निषेव्यमाणः मघवान् स्तूयमानः च भारत ॥४॥

भारत	परीक्षित !	**पतग**	पक्षियों,
विद्याधर	विद्याधरों,	**उरगैः**	सर्पों द्वारा
अप्सरोभिः	अप्सराओं द्वारा	**निषेव्यमाणः**	सेवित होते
स्तूयमानः	स्तुति किये जाते	**मघवान्**	इन्द्रका ॥४॥
च किन्नरैः	तथा किन्नरों,		

उपगीयमानो ललितमास्थानाध्यासनाश्रितः ।
पाण्डुरेणातपत्रेण चन्द्रमण्डलचारुणा ॥५॥

उपगीयमानः ललितं आस्थान अधि आसन आश्रितः पाण्डुरेण आतपत्रेण चन्द्रमण्डल चारुणा ॥५॥

ललितं	ललित स्वरसे	**आस्थानं**	स्वर्गके
उपगीयमानः	यशोगान हो रहा था,	**अधि आसनं**	सिंहासनपर
		आश्रितः	बैठे हुए

चन्द्रमण्डल	चन्द्रमण्डलके समान	पाण्डुरेण	श्वेत
चारुणा	सुन्दर	आतपत्रेण	छत्रसे ॥५॥

युक्तश्चान्यैः पारमेष्ठ्यैश्चामरव्यजनादिभिः ।
विराजमानः पौलोम्या सहार्धासनया भृशम् ॥६॥

युक्तः च अन्यैः पारमेष्ठयैः चामर व्यजन आदिभिः विराजमानः पौलोम्या सह अर्ध आसनया भृशम् ॥६॥

च अन्यै	तथा दूसरे	अर्ध आसनया	आधे आसनपर बैठने वाली
पारमेष्ठयैः	महाराजोचित	भृशं पौलोम्या	बराबर शचीके
चामर व्यजन	चँवर, पँखे	सह	साथ
आदिभिः युक्तः	आदिसे युक्त	विराजमानः	सुशोभित ॥६॥

स यदा परमाचार्यं देवानामात्मनश्च ह ।
नाभ्यनन्दत संप्राप्तं प्रत्युत्थानासनादिभिः ॥७॥

स यदा परम आचार्यं देवानां आत्मनः च ह न अभ्यनन्दत संप्राप्तं प्रत्युत्थान आसन आदिभिः ॥७॥

स	उन (इन्द्र) ने	प्रत्युत्थान	उठकर खड़े होने,
यदा देवानां	जब देवताओंके	आसन	आसन
आत्मनः ह	तथा अपने भी	आदिभिः	आदि देनेके द्वारा
परम आचार्यं	परमाचार्य (बृहस्पति) का	अभ्यनन्दत न	स्वागत नहीं किया ॥७॥
सम्प्रात	वहां आनेपर		

वाचस्पतिं मुनिवरं सुरासुरनमस्कृतम् ।
नोच्चचालासनादिन्द्रः पश्यन्नपि सभागतम् ॥८॥

वाचस्पतिं मुनिवरं सुर आसुर नमस्कृतं न उच्चचाल आसनात् इन्द्रः पश्यन् अपि सभा आगतम् ॥८॥

मुनिवरं	मुनिश्रेष्ठ
सुर असुर	देव, असुर सबको
नमस्कृतं	नमस्कृत
वाचस्पतिं	वृहस्पतिजीको
सभा आगतं	सभामें आया
पश्यन् अपि	देखकर भी
इन्द्रः	इन्द्र
आसनात्	अपने सिंहासनसे
न उच्चचाल	नहीं उठे ॥८॥

ततो निर्गत्य सहसा कविराङ्गिरसः प्रभुः ।
आययौ स्वगृहं तूष्णीं विद्वान् श्रीमदविक्रियाम् ॥९॥

ततः निर्गत्य सहसा कविः आङ्गिरसः प्रभुः आययौ स्वगृहं तूष्णीं विद्वान् श्रीमद विक्रियाम् ॥९॥

कविः प्रभुः	विद्वान्, समर्थ
आङ्गिरसः	अंगिरा-नन्दन
श्रीमद् विक्रियां	ऐश्वर्य मदका दोष
विद्वान्	जानकर
सहसा	अचानक
तूष्णीं ततः	चुपचाप वहांसे
निर्गत्य	निकलकर
स्वगृहं आययौ	अपने घर आ गये ॥९॥

तर्ह्येव प्रतिबुद्ध्येन्द्रो गुरुहेलनमात्मनः ।
गर्हयामास सदसि स्वयमात्मानमात्मना ॥१०॥

तर्हि एव प्रतिबुद्ध्य इन्द्रः गुरु हेलनं आत्मनः गर्हयामास सदसि स्वयं आत्मानं आत्मना ॥१०॥

तर्हि एव	उसी समय
आत्मनः	अपने द्वारा
गुरु हेलनं	गुरुकी अवहेलनासे
प्रतिबुद्ध्य	सावधान होकर
सदसि	सभामें
स्वयं आत्मना	स्वयं अपने द्वारा
आत्मानं	अपनी
गर्हयामास	निन्दा करने लगे ॥१०॥

अहो बत ममासाधु कृतं वै दभ्रबुद्धिना ।
यन्मयैश्वर्यमत्तेन गुरुः सदसि कात्कृतः ॥११॥

अहो बत मम असाधु कृतं वै दभ्र बुद्धिना यत् मया ऐश्वर्यमत्तेन गुरुः सदसि कात् कृतः ॥११॥

अहो बत	अहो, बड़े खेदकी बात है	यत् मया	जो मुझ
		ऐश्वर्यमत्तेन	ऐश्वर्यसे मतवालेने
दभ्रबुद्धिना	हीन बुद्धिवाले (मैंने)	सदसि	सभामें
वै मम	निश्चय अपना ही	गुरुः कात् कृतः	गुरुका अपमान
असाधु कृतं	अहित कर लिया,		किया ॥११॥

को गृध्येत् पण्डितो लक्ष्मीं त्रिविष्टपपतेरपि ।
ययाहमासुरं भावं नीतोऽद्य विबुधेश्वरः ॥१२॥

कः गृध्येत् पण्डितः लक्ष्मीं त्रिविष्टपपतेः अपि यया अहं आसुरं भावं नीतः अद्य विबुध ईश्वरः ॥१२॥

कः पण्डितः	कौन विवेकवान्	विबुध ईश्वरः	देवराज भी
त्रिविष्टपपतेः	स्वर्गाधिपकी	आसुरं भावं	असुर भाव (रजोगुण) में
अपि	भी		
लक्ष्मीं गृध्येत्	सम्पत्तिको चाहेगा,	नीतः	पहुँचा दिया गया ॥१२॥
अद्य यया	आज जिसके द्वारा		
अहं	मैं		

ये पारमेष्ठ्यं धिषणमधितिष्ठन् न कञ्चन ।
प्रत्युत्तिष्ठेदिति ब्रूयुर्धर्मं ते न परं विदुः ॥१३॥

ये पारमेष्ठ्यं धिषणं अधितिष्ठन् न कञ्चन प्रति उत्तिष्ठेत् इति ब्रूयुः धर्मं ते न परं विदुः ॥१३॥

पारमेष्ठ्यं धिषणं	सार्वभौम राज सिंहासनपर	न उत्तिष्ठेत्	देनेके लिए न उठे
		ये इति ब्रूयुः	जो ऐसा कहते हैं,
अधितिष्ठन्	बैठा हुआ (सम्राट्)	ते परं धर्मं	वे श्रेष्ठ धर्म
कञ्चन	किसीके लिए भी	न विदुः	नहीं जानते ॥१३॥
प्रति	आदर		

तेषां कुपथदेष्टॄणां पततां तमसि ह्यधः ।
ये श्रद्दध्युर्वचस्ते वै मज्जन्त्यश्मप्लवा इव ॥१४॥

तेषां कुपथदेष्टॄणां पततां तमसि हि अधः ये श्रद्दधुः वचः ते वै मज्जन्ति अश्मप्लवा इव ॥१४॥

अधः तमसि	नीचे नरकमें	**श्रद्दधुः**	श्रद्धा कर लेते हैं
पततां	गिरते हुए	**वै ते**	निश्चय वे
हि तेषां	क्योंकि उन	**अश्मप्लवा इव**	पत्थरकी नौकाके समान
कुपथदेष्टॄणां	कुमार्ग बतलाने वालोंकी	**मज्जन्ति**	डूब जाते हैं ॥१४॥
वचः ये	बातपर जो		

अथाहममराचार्यमगाधधिषणं द्विजम् ।
प्रसादयिष्ये निशठः शीर्ष्णा तच्चरणं स्पृशन् ॥१५॥

अथ अहं अमर आचार्यं अगाधधिषणं द्विजं प्रसादयिष्ये निशठः शीर्ष्णा तत् चरणं स्पृशन् ॥१५॥

अथ अहं	अब मैं	**द्विजं**	विप्रवर (बृहस्पति-जी) को
निशठः	बहुत शठता करने-वाला	**शीर्ष्णा**	सिरसे
अमर आचार्यं	देवगुरु	**तत् चरणं**	उनके चरणोंको
अगाथधिषणं	अथाह बुद्धि	**स्पृशन्**	स्पर्श करके
		प्रसादयिष्ये	प्रसन्न करूँगा ॥१५॥

एवं चिन्तयतस्तस्य मघोनो भगवान् गृहात् ।
बृहस्पतिर्गतोऽदृष्टां गतिमध्यात्ममायया ॥१६॥

एवं चिन्तयतः तस्य मघोनः भगवान् गृहात् बृहस्पतिः गतः अदृष्टां गतिं अध्यात्म मायया ॥१६॥

तस्य मघोनः	उन इन्द्रके	**अध्यात्म मायया**	अपनी योग-शक्तिसे
एवं चिन्तयतः	ऐसा सोचते समय ही	**अदृष्टां**	अन्तर्धान
भगवान्	समर्थ	**गतिं गतः**	हो गये ॥१६॥
बृहस्पतिः	बृहस्पतिजी		

गुरोर्नाधिगतः संज्ञां परीक्षन् भगवान् स्वराट् ।
ध्यायन् धिया सुरैर्युक्तः शर्म नालभतात्मनः ॥१७॥

गुरोः न अधिगतः संज्ञां परीक्षन् भगवान् स्वराट् ध्यायन् धिया सुरैः युक्तः शर्म न अलभत आत्मनः ॥१७॥

भगवान् स्वराट्	समर्थ इन्द्रने	**सुरैः युक्तः**	देवताओंके साथ
परीक्षन्	चारों ओर ढुंढ़वाने पर भी	**धिया ध्यायन्**	(अपनी) बुद्धिसे सोचते हुए
गुरोः संज्ञां	गुरुका पता	**आत्मनः शर्म**	चित्तमें शान्ति
न अधिगतः	न पाकर	**न अलभत**	नहीं पा सके ॥१७॥

तच्छ्रुत्वैवासुराः सर्व आश्रित्यौशनसं मतम् ।
देवान् प्रत्युद्यमं चक्रुर्दुर्मदा आततायिनः ॥१८॥

तत् श्रुत्वा एव असुराः सर्व आश्रित्य औशनसं मतं देवान् प्रति उद्यमं चक्रुः दुर्मदा आततायिनः ॥१८॥

तत्	(देवताओंकी) इस दशाको	**औशनसं मतं**	शुक्राचार्यकी सलाहको
श्रुत्वा एव	सुनकर ही	**आश्रित्य**	मानकर
दुर्मदा	मदोन्मत	**देवान् प्रति**	देवताओंके विरुद्ध
आततायिनः	आततायी	**उद्यमं चक्रुः**	उद्योग प्रारम्भ कर दिया ॥१८॥
सर्व असुराः	सब असुरोंने		

तैर्विसृष्टेषुभिस्तीक्ष्णैर्निर्भिन्नाङ्गोरुबाहवः ।
ब्रह्माणं शरणं जग्मुः सहेन्द्रा नतकन्धराः ॥१९॥

तैः विसृष्टैः इषुभिः तीक्ष्णैः निर्भिन्न अङ्ग उरु बाहवः ब्रह्माणं शरणं जग्मुः सह इन्द्रा नतकन्धराः ॥१९॥

तैः विसृष्टैः	उन (असुरों) के द्वारा छोड़े	**सह इन्द्राः**	इन्द्रके साथ
तीक्ष्णैः इषुभिः	तीक्ष्ण बाणोंसे	**नतकन्धराः**	कन्धे (सिर) झुकाये
निर्भिन्न अङ्गः	कटे-फटे शरीर,	**ब्रह्माणं**	ब्रह्माजीकी शरणमें
उरु बाहवः	जांघें, भुजा वाले (देवता)	**जग्मुः**	गये ॥१९॥

तांस्तथाभ्यर्दितान् वीक्ष्य भगवानात्मभूरजः ।
कृपया परया देव उवाच परिसान्त्वयन् ॥२०॥

तान् तथा अभ्यर्दितान् वीक्ष्य भगवान् आत्मभूः अजः कृपया परया देवः उवाच परिसान्त्वयन् ॥२०॥

तान् तथा	उन (देवताओं) को उस प्रकार	**भगवान्**	भगवान्
अभ्यर्दितान्	रौंदा हुआ	**आत्मभूः**	स्वयम्भू
वीक्ष्य	देखकर	**अजः देवः**	अजन्मा देव
परया कृपया	परम कृपासे	**परिसान्त्वयन्**	सान्त्वना देते हुए
		उवाच	बोले ॥२०॥

ब्रह्मोवाच–

अहो बत सुरश्रेष्ठा ह्यभद्रं वः कृतं महत् ।
ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं दान्तमैश्वर्यान्नाभ्यनन्दत ॥२१॥

अहो बत सुरश्रेष्ठा हि अभद्रं वः कृतं महत् ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं दान्तं ऐश्वर्यात् न अभ्यनन्दत ॥२१॥

सुरश्रेष्ठा	देवनायको !	**ऐश्वर्यात्**	ऐश्वर्यशाली होनेके कारण
अहो बत	अरे बड़े खेदकी बात है	**ब्रह्मिष्ठं दान्तं**	ब्रह्मज्ञानी, जितेन्द्रिय
हि	क्योंकि	**ब्राह्मणं**	ब्राह्मणका
वः महत्	तुम लोगोंने बहुत	**अभ्यनन्दत न**	सत्कार नहीं किया ॥२१॥
अभद्रं	बुरा काम		
कृतं	किया है		

तस्यायमनयस्यासीत् परेभ्यो वः पराभवः ।
प्रक्षीणेभ्यः स्ववैरिभ्यः समृद्धानां च यत् सुराः ॥२२॥

तस्य अयं अनयस्य आसीत् परेभ्यः वः पराभवः प्रक्षीणेभ्यः स्ववैरिभ्यः समृद्धानां च यत् सुराः ॥२२॥

सुराः	देवताओ,	**प्रक्षीणेभ्यः**	बहुत दुर्बल होनेपर
तस्य अनयस्य	उसी अन्यायका (फल)	**वः समृद्धानां च**	तुम सम्पन्नोंकी
		स्ववैरिभ्यः	अपने शत्रुओंसे
आसीत्	है कि	**यत् अयं**	जो यह
परेभ्यः	शत्रुओंके	**पराभवः**	पराजय हुई ॥२२॥

मघवन् द्विषतः पश्य प्रक्षीणान् गुर्वतिक्रमात् ।
सम्प्रत्युपचितान् भूयः काव्यमाराध्य भक्तितः ।
आददीरन् निलयनं ममापि भृगुदेवताः ॥२३॥

मघवन् द्विषतः पश्य प्रक्षीणान् गुरुः अतिक्रमात् सं प्रति उपचितान् भूयः काव्यं आराध्य भक्तितः आददीरन् निलयनं मम अपि भृगु देवताः ॥२३॥

मघवन्	इन्द्र,	**उपचितान्**	सम्पन्न हो गये ।
द्विषतः पश्य	(अपने) शत्रुओंको देखो,	**भृगु देवताः**	शुक्राचार्यको आराध्य माननेवाले
गुरुः अतिक्रमात्	गुरुका तिरस्कार करके	**काव्यं आराध्य**	शुक्राचार्यकी आराधना करके
प्रक्षीणान्	दुर्बल हो गये थे,	**मम निलयनं**	मेरा लोक
भूयः सं प्रति	फिर उन (गुरु) के प्रति	**अपि**	भी
भक्तितः	भक्ति-भाव होनेसे	**आददीरन्**	छीन ले सकते हैं ॥२३॥

त्रिविष्टपं किं गणयन्त्यभेद्य-
मन्त्रा भृगूणामनुशिक्षितार्थाः ।

न विप्रगोविन्दगवीश्वराणां
भवन्त्यभद्राणि नरेश्वराणाम् ॥२४॥

त्रिविष्टपं किं गणयन्ति अभेद्य मन्त्रा भृगूणां अनुशिक्षित अर्थाः न विप्र गोविन्द गौ ईश्वराणां भवन्ति अभद्राणि नरेश्वराणां ॥२४॥

अभेद्य मन्त्राः	इनकी मन्त्रणा फूटती नहीं,	विप्र गोविन्द	ब्राह्मण, गोविन्द और
भृगूणां	भृगुवंशियों द्वारा	गौ ईश्वराणां	गौको आराध्य माननेवाले
अर्थाः	अर्थशास्त्रकी	नरेश्वराणां	राजाओंका
अनुशिक्षित	इन्हें शिक्षा दी गयी है,	अभद्राणि	अमंगल
त्रिविष्टपं	स्वर्गको (ये)	न भवन्ति	नहीं होता ॥२४॥
किं गणयन्ति	क्या गिनते हैं।		

तद् विश्वरूपं भजताशु विप्रं
तपस्विनं त्वाष्ट्रमथात्मवन्तम् ।
सभाजितोऽर्थान् स विधास्यते वो
यदि क्षमिष्यध्वमुतास्य कर्म ॥२५॥

तत् विश्वरूपं भजत आशु विप्रं तपस्विनं त्वाष्ट्रं अथ आत्मवन्तं सभाजितः अर्थान् स विधास्यते वः यदि क्षमिष्यध्वं उत अस्य कर्म ॥२५॥

तत् त्वाष्ट्रं	अतः त्वष्टाके पुत्र	कर्म क्षमिष्यध्वं	कर्मको क्षमाकर दोगे तो
तपस्विनं विप्रं	तपस्वी ब्राह्मण	सभाजितः	सम्मानित होनेपर
आत्मवन्तं	संयमी	वः अर्थान्	तुम्हारे प्रयोजनोंको
विश्वरूपं	विश्वरूपकी	स विधास्यते	वे पूरा करेंगे ॥२५॥
आशु भजत	शीघ्र सेवा करो,		
यदि उत अस्य	यदि तो इनके		

श्रीशुक उवाच-

त एवमुदिता राजन् ब्रह्मणा विगतज्वराः ।
ऋषिं त्वाष्ट्रमुपव्रज्य परिष्वज्येदमब्रुवन् ॥२६॥

त एवं उदिता राजन् ब्रह्मणा विगतज्वराः ऋषिं त्वाष्ट्रं उपव्रज्य परिष्वज्य इदं अब्रुवन् ॥२६॥

राजन्	राजन् !	त्वाष्ट्रं ऋषिं	त्वष्टानन्दन ऋषि (विश्वरूप) के
एवं ब्रह्मणा	इस प्रकार ब्रह्माजी के	उपव्रज्य	पास जाकर
उदिता	कहनेपर	परिष्वज्य	(उनका) आलिंगन करके
त विगतज्वराः	वे चिन्ता रहित हो गये ।	इदं अब्रुवन्	यह बोले ॥२६॥

देवा ऊचुः-

वयं तेऽतिथयः प्राप्ता आश्रमं भद्रमस्तु ते ।
कामः सम्पाद्यतां तात पितॄणां समयोचितः ॥२७॥

वयं ते अतिथयः प्राप्ता आश्रमं भद्रं अस्तु ते कामः सम्पाद्यतां तात पितॄणां समय उचितः ॥२७॥

तात	तात !	पितॄणां	(हम) पितरोंकी
वयं ते अतिथयः	हम तुम्हारे अतिथि	समय उचितः	समयके अनुसार उचित
ते आश्रमं प्राप्ता	तुम्हारे आश्रमपर आये हैं ।	कामः सम्पाद्यतां	इच्छा पूरी करो ॥२७॥
भद्रं अस्तु	(तुम्हारा) कल्याण हो,		

पुत्राणां हि परो धर्मः पितृशुश्रूषणं सताम् ।
अपि पुत्रवतां ब्रह्मन् किमुत ब्रह्मचारिणाम् ॥२८॥

पुत्राणां हि परः धर्मः पितृ शुश्रूषणं सतां अपि पुत्रवतां ब्रह्मन् किं उत ब्रह्मचारिणाम् ॥२८॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**पुत्रवतां अपि**	पुत्रवानोंके लिये भी है,
हि	क्योंकि	**ब्रह्मचारिणां**	ब्रह्मचारियोंके लिए
पुत्राणां परः	पुत्रोंका परम	**किं उत**	फिर कहना ही क्या ॥२८॥
धर्मः	धर्म		
पितृ शुश्रूषणं	माता-पिताकी सेवा		
सतां	सज्जन		

आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः ।
भ्राता मरुत्पतेर्मूर्तिर्माता साक्षात् क्षितेस्तनुः ॥२९॥

आचार्यः ब्रह्मणः मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः भ्राता मरुत्पतेः मूर्तिः माता साक्षात् क्षितेः तनुः ॥२९॥

आचार्यः	आचार्य	**भ्राता मरुत्पतेः**	भाई इन्द्रके
ब्रह्मणः मूर्तिः	वेदके स्वरूप,	**मूर्तिः**	स्वरूप,
पिता प्रजापतेः	पिता प्रजापति ब्रह्माके	**माता साक्षात्**	माता साक्षात्
मूर्तिः	स्वरूप	**क्षितेः तनुः**	पृथ्वी रूपा ही हैं ॥२९॥

दयाया भगिनी मूर्तिर्धर्मस्यात्मातिथिः स्वयम् ।
अग्नेरभ्यागतो मूर्तिः सर्वभूतानि चात्मनः ॥३०॥

दयाया भगिनी मूर्तिः धर्मस्य आत्मा अतिथिः स्वयं अग्नेः अभ्यागतः मूर्तिः सर्वभूतानि च आत्मनः ॥३०॥

भगिनी	बहिन	**अग्नेः**	अग्निकी (मूर्ति)
दयाया मूर्तिः	दयाकी मूर्ति,	**च सर्वभूतनि**	और सब प्राणी
अतिथिः	अतिथि	**स्वयं आत्मनः**	स्वयं अपने आत्माके
धर्मस्य आत्मा	धर्मका स्वरूप,	**मूर्तिः**	स्वरूप हैं ॥३०॥
अभ्यागतः	अभ्यागत		

तस्मात् पितॄणामार्तानामार्ति परपराभवम् ।
तपसापनयंस्तात सन्देशं कर्तुमर्हसि ॥३१॥

तस्मात् पितॄणां आर्तानां आर्ति परपराभवं तपसा अपनयन् तात सन्देशं कर्तुं अर्हसि ॥३१॥

तस्मात् आर्तानां	इसलिए (हम) दुःखी	**अपनयन्**	दूर करके
पितॄणां	पितरोंका	**तात सन्देशं**	तात (तुम्हें हमारी) आज्ञा
परपराभवं	शत्रुओंसे पराजय रूप	**कर्तुं अर्हसि**	पालन करना चाहिए ॥३१॥
आर्ति तपसा	दुःख (अपनी) तपस्यासे		

वृणीमहे त्वोपाध्यायं ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं गुरुम् ।
यथाञ्जसा विजेष्यामः सपत्नांस्तव तेजसा ॥३२॥

वृणीमहे तु उपाध्यायं ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं गुरुं यथा अञ्जसा विजेष्यामः सपत्नान् तव तेजसा ॥३२॥

ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं	ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण होनेसे	**यथा तव तेजसा**	जैसे तुम्हारे तेजसे
गुरुं	(तुम) श्रेष्ठ हो	**अञ्जसा**	सरलतासे
उपाध्यायं तु	(तुमको हम) उपाध्याय (पुरोहित)	**सपत्नान्**	शत्रुओंको
वृणीमहे	वरण करते हैं	**विजेष्यामः**	'हम) जीत लेंगे ॥३२॥

न गर्हयन्ति ह्यर्थेषु यविष्ठाङ्घ्र्यभिवादनम् ।
छन्दोभ्योऽन्यत्र न ब्रह्मन् वयो ज्यैष्ठ्यस्य कारणम् ॥३३॥

न गर्हयन्ति हि अर्थेषु यविष्ठ अङ्घ्रि अभिवादनं छन्दोभ्यः अन्यत्र न ब्रह्मन् वयः ज्यैष्ठ्यस्य कारणम् ॥३३॥

हि	क्योंकि	**ब्रह्मन्**	ब्रह्मन् !
अर्थेषु	प्रयोजन होनेपर	**छन्दोभ्यः**	वैदिक-ज्ञानको
यविष्ठ अङ्घ्रि	छोटेके चरणोंमें	**अन्यत्र**	छोड़कर
अभिवादनं	प्रणाम करना	**वयः ज्यैष्ठचस्य**	अवस्था बड़े होनेका
गर्हयन्ति न	निन्दित नहीं माना जाता और	**कारणं न**	कारण नहीं है ॥३३॥

*श्रीशुक उवाच-**

अभ्यर्थितः सुरगणैः पौरोहित्ये महातपाः ।
स विश्वरूपस्तानाह प्रसन्नः श्लक्ष्णया गिरा ॥३४॥

अभ्यर्थितः सुरगणैः पौरोहित्ये महामपाः स विश्वरूपः तान् आह प्रसन्नः श्लक्ष्णया गिरा ॥३४॥

सुरगणैः	देवताओं द्वारा	**विश्वरूपः**	विश्वरूप
पौरोहित्ये	पुरोहित बननेके लिये	**प्रसन्नः**	प्रसन्न होकर
अभ्यर्थितः	प्रार्थना करनेपर	**श्लक्ष्णया गिरा**	प्रिय वाणीसे
महामपा	उदार चित्त	**तान् आह**	उनसे बोले ॥३४॥

विश्वरूप उवाच-

विगर्हितं धर्मशीलैर्ब्रह्मवर्चउपव्ययम् ।
कथं नु मद्विधो नाथा लोकेशैरभियाचितम् ।
प्रत्याख्यास्यति तच्छिष्यः स एव स्वार्थ उच्यते ॥३५॥

विगर्हितं धर्मशीलैः ब्रह्मवर्च उपव्ययं कथं नु मद्विधः नाथा लोकेशैः अभियाचितं प्रत्याख्यास्यति तत् शिष्यः स एव स्वार्थ उच्यते ॥३५॥

---

*अन्य प्रतियोंमें यहां 'ऋषिरुवाच' है ।

धर्मशीलैः	धर्मशील लोगों द्वारा	अभियाचितं	प्रार्थना किये जानेपर
ब्रह्मवर्चं	ब्रह्मतेजको	तत् शिष्यः	उनका सेवक
उपक्षयं	क्षीण करनेवाले (पौरोहित्यकी)	कथं नु	कैसे भला
		प्रत्याख्यास्यति	मनाकर सकेगा,
विगर्हितं	निन्दा की गयी हैं; किन्तु	स एव	वही (आपकी आज्ञाका पालन)
यत् विधः	मेरे समानके	स्वार्थ उच्यते	(मेरा) स्वार्थ कहा गया है ॥३५॥
नाथा	स्वामियों		
लोकेशैः	लोकपालों द्वारा		

अकिञ्चनानां हि धनं शिलोञ्छनं
तेनेह निर्वर्तितसाधुसत्क्रियः ।
कथं विगर्ह्यं नु करोम्यधीश्वराः
पौरोधसं हृष्यति येन दुर्मतिः ॥३६॥

अकिञ्चनानां हि धनं शिल उञ्छनं तेन एह निर्वर्तित साधु सत् क्रियः कथं विगर्ह्यं नु करोमि अधीश्वराः पौरोधसं हृष्यति येन दुर्मतिः ॥३६॥

अधीश्वराः	लोकपालो !	निर्वर्तित	सम्पन्न हो जाते हैं
अकिञ्चनानां	हम अकिञ्चनोंका		फिर
धनं	धन	विगर्ह्यं	निन्दित
शिल उञ्छनं	खेत या बाजारमें गिरे दाने हैं,	पौरोधसं	पौरोहित्य
		नु कथं करोमि	भला कैसे करूँ
तेन एह साधु	उससे ही भली प्रकार	येन दुर्मतिः	जिससे दुर्बुद्धि
		हृष्यति	बढ़ती है ॥३६॥
सत् क्रियः	आवश्यक कार्य		

तथापि न प्रतिब्रूयां गुरुभिः प्रार्थितं कियत् ।
भवतां प्रार्थितं सर्वं प्राणैरर्थैश्च साधये ॥३७॥

तथा अपि न प्रतिब्रूयां गुरुभिः प्रार्थितं कियत् भवतां प्रार्थितं सर्वं प्राणैः अर्थैः च साधये ॥३७॥

तथा अपि	ऐसा होनेपर भी	**भवतां सर्वं**	आप लोगोंकी सब
न प्रतिब्रूयां	अस्वीकार नहीं करूँगा	**प्रार्थितं**	मांग
		प्राणैः च अर्थैः	प्राण और धन (तपः शक्ति) से
गुरुभिः	पूजनीयों द्वारा		
प्रार्थितं कियत्	मांगा ही कितना गया है,	**साधये**	सम्पन्न करूँगा ॥३७

श्रीशुक उवाच—

तेभ्य एवं प्रतिश्रुत्य विश्वरूपो महातपाः ।
पौरोहित्यं वृतश्चक्रे परमेण समाधिना ॥३८॥

तेभ्यः एवं प्रतिश्रुत्य विश्वरूपः महातपाः पौरोहित्यं वृतः चक्रे परमेण समाधिना ॥३८॥

तेभ्यः	उन (देवताओं) से	**पौरोहित्यं वृतः**	पुरोहित-पदपर वरण होकर
एवं प्रतिश्रुत्य	ऐसी प्रतिज्ञा करके		
महातपाः	महातपस्वी	**परमेण**	अत्यन्त
विश्वरूपः	विश्वरूप	**समाधिना**	एकाग्रता पूर्वक
		चक्रे	उसे करने लगे ॥३८॥

सुरद्विषां श्रियं गुप्तामौशनस्यापि विद्यया ।
आच्छिद्यादान्महेन्द्राय वैष्णव्या विद्यया विभुः ॥३९॥

सुरद्विषां श्रियं गुप्तां औशनस्य अपि विद्यया आच्छिद्य अदात् महेन्द्राय वैष्णव्या विद्यया विभुः ॥३९॥

औशनस्य	शुक्राचार्यकी	**गुप्तां**	रक्षित
विद्यया अपि	विद्यासे भी	**सुरद्विषां श्रियं**	देव द्वेषियोंकी लक्ष्मी

विभुः	समर्थ (विश्वरूप) ने	आच्छिद्य	(शुक्राचार्यकी विद्या)
वैष्णव्या	वैष्णवी		काटकर
विद्यया	विद्यासे	महेन्द्राय	इन्द्रको
		अदात्	दे दी ॥३९॥

यया गुप्तः सहस्राक्षो जिग्येऽसुरचमूर्विभुः ।
तां प्राह स महेन्द्राय विश्वरूप उदारधीः ॥४०॥

यया गुप्तः सहस्राक्षः जिग्ये असुर चमूः विभुः तां प्राह स महेन्द्राय विश्वरूपः उदारधीः ॥४०॥

यया गुप्तः	जिससे रक्षित होकर	उदारधीः	उदार बुद्धि
विभुः सहस्राक्षः	समर्थ देवराजने	विश्वरूपः	विश्वरूपने
असुर चमूः	असुर-सेनाको	तां महेन्द्राय	वह (विद्या) इन्द्रको
जिग्ये	जीत लिया	प्राह	बतलायी ॥४२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

राजोवाच—

यया गुप्तः सहस्राक्षः सवाहान् रिपुसैनिकान् ।
क्रीडन्निव विनिर्जित्य त्रिलोक्या बुभुजे श्रियम् ॥१॥

यया गुप्तः सहस्राक्षः सवाहान् रिपुसैनिकान् क्रीडन् इव विनिर्जित्य त्रिलोक्या बुभुजे श्रियम् ॥१॥

सहस्राक्षः	महेन्द्रने	**क्रीडन् इव**	खेलते हुएसे
यया गुप्तः	जिससे रक्षित होकर	**विनिर्जित्य**	जीतकर
सवाहान्	वाहनोंके साथ	**त्रिलोक्या श्रियं**	त्रिभुवनकी लक्ष्मीका
रिपुसैनिकान्	शत्रु सैनिकोंको	**बुभुजे**	उपभोग किया ॥१॥

भगवंस्तन्ममाख्याहि वर्म नारायणात्मकम् ।
यथाऽऽततायिनः शत्रून् येन गुप्तोऽजयन्मृधे ॥२॥

भगवन् तत् मम आख्याहि वर्म नारायण आत्मकं यथा आततायिनः शत्रून् येन गुप्तः अजयत् मृधे ॥२॥

भगवन्	भगवन् !	**अजयत्**	(इन्द्रने) जीता
येन गुप्तः	जिससे रक्षित होकर		(वह और)
आततायिनः	आततायी	**नारायण**	नारायण
शत्रून्	शत्रुओंको	**आत्मकं**	स्वरूप
यथा मृधे	जैसे युद्धमें	**तत् वर्म**	वह कवच
		मम आख्याहि	मुझे सुनाइये ॥२॥

श्रीशुक उवाच—

वृतः पुरोहितस्त्वाष्ट्रो महेन्द्रायानुपृच्छते ।
नारायणाख्यं वर्माह तदिहैकमनाः शृणु ॥३॥

वृतः पुरोहितः त्वाष्ट्रः महेन्द्राय अनुपृच्छते नारायण आख्यं वर्म आह तत् इह एकमनाः शृणु ॥३॥

त्वाष्ट्रः	त्वष्ट्रा-नन्दन (विश्वरूप)	नारायण आख्यं	नारायण नामक
पुरोहितः वृतः	पुरोहित रूपमें वरण हो जानेपर	वर्म आह	कवच कहा
अनुपृच्छते	बार-बार पूछनेवाले	तत् इह	वह इस समय
महेन्द्राय	इन्द्रसे	एकमनाः शृणु	एकाग्र चित्तसे सुनो ॥३॥

विश्वरूप उवाच—

धौताङ्घ्रिपाणिराचम्य सपवित्र उदङ्मुखः ।
कृतस्वाङ्गकरन्यासो मन्त्राभ्यां वाग्यतः शुचिः ॥४॥

धौत अङ्घ्रिपाणिः आचम्य सपवित्र उदङ्मुखः कृतः स्वाङ्ग करन्यासः मन्त्राभ्यां वाक्यतः शुचिः ॥४॥

अङ्घ्रिपाणिः	पैर-हाथ	उदङ्मुखः	उत्तर मुख होकर
धौत	धोकर,	वाक्यतः	मौन होकर
आचम्य	आचमन करके	स्वाङ्ग	अपना अंगन्यास,
शुचिः	पवित्र होकर	करन्यासः	करन्यास
सपवित्र	पवित्रा पहिनकर	मन्त्राभ्यां कृतः	मन्त्रोंसे करके ॥४॥*

* 'ॐ नमो नारायणाय' और 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इन मन्त्रोंसे अंगन्यास करना चाहिए ।

नारायणमयं वर्म सन्नह्येद् भय आगते ।
पादयोर्जानुनोरूर्वोरुदरे हृद्यथोरसि ॥५॥

नारायणमयं वर्म सन्नह्येत् भय आगते पादयोः जानुनोः उर्वोः उदरे हृदि अथ उरसि ॥५॥

भय आगते	भय (का अवसर) आनेपर	**पादयोः जानुनोः**	(क्रमशः) पैरोंमें, घुटनोंमें
नारायणमयं	नारायणमय	**उर्वोः उदरे**	जांघोंमें, पेटमें,
वर्म सन्नह्येत्	कवच धारण करे,	**अथ हृदि उरसि**	और हृदय तथा छातीमें ॥५॥

मुखे शिरस्यानुपूर्व्यादोङ्कारादीनि विन्यसेत् ।
ॐ नमो नारायणायेति विपर्ययमथापि वा ॥६॥

मुखे शिरसि आनुपूर्व्यात् ओंकार आदीनि विन्यसेत् ॐ नमो नारायणाय इति विपर्ययं अथ अपि वा ॥६॥

मुखे शिरसि	मुख और सिर (इन आठ अंगों) में	**आदीनि**	प्रारम्भ करके (एक-एक अक्षर)
ॐ नमो	ॐ नमः	**वा अथ**	अथवा फिर
नारायणाय	नारायणाय	**विपर्ययं**	उलटे क्रमसे (पैरसे प्रारम्भ करके या सिरसे प्रारम्भ करके) ॥६॥
इति	इस (अष्टाक्षर मन्त्र) के		
ओंकार	ओंकारसे		

करन्यासं ततः कुर्याद् द्वादशाक्षरविद्यया ।
प्रणवादियकारान्तमङ्गुल्यङ्गुष्ठपर्वसु ॥७॥

करन्यासं ततः कुर्यात् द्वादशाक्षर विद्यया प्रणव आदि यकार अन्तं अंगुलि अंगुष्ठ पर्वसु ॥७॥

ततः	फिर
द्वादशाक्षर	द्वादशाक्षर
विद्यया	मन्त्रसे
प्रणवादि	प्रणव (ॐ) से
	प्रारम्भ करके
यकार अन्तं	'य' कार पर्यन्त
अंगुलि	अंगुलियों तथा
अंगुष्ठ पर्वसु	अंगूठेकी गांठोंमें
	(एक-एक अक्षरसे)
करन्यासं कुर्यात्	करन्यास करे ॥७॥

न्यसेद्धृदय ओङ्कारं विकारमनु मूर्धनि ।
षकारं तु भ्रुवोर्मध्ये णकारं शिखया दिशेत् ॥८॥

वेकारं नेत्रयोर्युञ्ज्यान्नकारं सर्वसन्धिषु ।
मकारमस्त्रमुद्दिश्य मन्त्रमूर्तिर्भवेद् बुधः ॥९॥

सविसर्गं फडन्तं तत् सर्वदिक्षु विनिर्दिशेत् ।
ॐ विष्णवे नम इति ॥१०॥

न्यसेत् हृदय ओङ्कारं विकारं अनु मूर्धनि षकारं तु भ्रुवोः मध्ये णकारं शिखया दिशेत् वेकारं नेत्रयोः युञ्ज्यात् नकारं सर्वसन्धिषु मकारं अस्त्रं उद्दिश्य मन्त्रमूर्तिः भवेत् बुधः सविसर्गं फट् अन्तं तत् सर्वदिक्षु विनिर्दिशेत् ॐ विष्णवे नमः इति ॥८,९,१०॥

ॐ विष्णवे नमः	ॐ विष्णवे नमः
इति	इस मन्त्रसे (फिर
	इस प्रकार
	अंगन्यास करे)
हृदय ओङ्कारं	हृदयमें 'ॐ' का
न्यसेत्	न्यास करे
अनु मूर्धनि	मूर्धाके ऊपर
विकारं	'वि' का,
भ्रुवोः मध्ये	दोनों भौंहोंके बीचमें
षकारं तु	(पूरे) 'ष' का ही
शिखया	शिखामें
णकारं दिशेत्	'ण' का निर्देश करे,
नेत्रयोः वेकारं	दोनों नेत्रोंमें 'वे' का
युञ्ज्यात्	(न्यासके लिए)
	उपयोग करे,
सर्वसान्धिषु	सब सन्धियोंमें
नकारं	'न' का
मकारं अस्त्रं	'म' अस्त्रके
उद्दिश्य	उद्देश्यसे
सविसर्गं	विसर्गके साथ
अन्तं फट्	अन्तमें फट् लगाकर
	(मः अस्त्राय फट्)

सर्वदिक्षु	सब दिशाओंमें		प्रकार)
विनिर्दिशेत्	संकेत करे।	मन्त्रमूर्तिः	मन्त्र-स्वरूप
बुधः	बुद्धिमान (इस	भवेत्	हो जाय ॥८,९,१०॥

आत्मानं परमं ध्यायेद् ध्येयं षट्शक्तिभिर्युतम् ।
विद्यातेजस्तपोमूर्तिमिमं मन्त्रमुदाहरेत् ॥११॥

आत्मानं परमं ध्यायेत् ध्येयं षट्शक्तिभिः युतं विद्या तेजः तपः मूर्तिम् इमं मन्त्रं उदाहरेत् ॥११॥

षट्शक्तिभिः	छः (ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी ज्ञान, वैराग्य) शक्तियोंसे	आत्मानं परमं	अपनेको भी उन्हीं-का स्वरूप ध्यान करें।
युतं ध्येयं	युक्त आराध्य-देवका	विद्या तेजः तपः	(फिर) विद्या, तेज, तप
ध्यायेत्	ध्यान करे।	मूर्तिम् इमं मन्त्रं उदाहरेत्	स्वरूप इस मन्त्रका उच्चारण करे ॥११॥

ॐ हरिर्विदध्यान्मम सर्वरक्षां
न्यस्ताङ्घ्रिपद्मः पतगेन्द्रपृष्ठे ।
दरारिचर्मासिगदेषुचाप-
पाशान् दधानोऽष्टगुणोऽष्टबाहुः ॥१२॥

ॐ हरिः विदध्यात् मम सर्वरक्षां न्यस्त अङ्घ्रि पद्मः पतगेन्द्र पृष्ठे दर अरि चर्म असि गद इषु चाप पाशान् दधानः अष्ट गुणः अष्ट बाहुः ॥१२॥

अष्ट गुणः	(अणिमादि) आठो सिद्धिसे युक्त	असि गद इषु चाप पाशान्	तलवार, गदा, बाण, धनुष, पाश
दर अरि चर्म	शंख, चक्र, ढाल,	दधानः	लिये

अष्ट बाहुः	अष्टभुज,	**ॐ हरिः**	ओंकार स्वरूप श्रीहरि
पतगेन्द्र पृष्ठे	पक्षिराज गरुड़की पीठपर	**मम सर्वरक्षां**	मेरी सब प्रकारसे रक्षा
अङ्घ्रि पद्म	चरण-कमल	**विदध्यात्**	करें ॥१२॥
न्यस्त	रखे		

जलेषु मां रक्षतु मत्स्यमूर्ति-
र्यादोगणेभ्यो वरुणस्य पाशात् ।
स्थलेषु मायावटुवामनोऽव्यात्
त्रिविक्रमः खेऽवतु विश्वरूपः ॥१३॥

जलेषु मां रक्षतु मत्स्यमूर्तिः यादोगणेभ्यः वरुणस्य पाशात् स्थलेषु माया वटु वामनः अव्यात् त्रिविक्रमः खे अवतु विश्वरूपः ॥१३॥

जलेषु	जलमें	**माया वटु**	मायासे
मत्स्यमूर्तिः	मत्स्य स्वरूप भगवान्	**वामनः**	वामन ब्रह्मचारी बने
यादोगणेभ्यः	जल जीवोंसे और	**अव्यात्**	(भगवान्) रक्षा करें
वरुणस्य पाशात्	वरुणके पाशसे	**खे विश्वरूपः**	आकाशमें विश्वरूप
मां रक्षतु	मेरी रक्षा करें।	**त्रिविक्रमः अवतु**	त्रिविक्रम भगवान् रक्षा करें ॥१३॥
स्थलेषु	स्थलपर		

दुर्गेष्वटव्याजिमुखादिषु प्रभुः
पायान्नृसिंहोऽसुरयूथपारिः ।
विमुञ्चतो यस्य महाट्टहासं
दिशो विनेदुर्न्यपतंश्च गर्भाः ॥१४॥

दुर्गेषु अटवि आजिमुख आदिषु प्रभुः पायात् नृसिंहः असुर यूथप अरिः विमुञ्चतः यस्य महा अट्टहासं दिशः विनेदुः न्यपतन् च गर्भाः ॥१४॥

यस्य महा	जिनके घोर	असुर यूथप	दैत्य यूथपोंके
अट्टहासं	अट्टहास	अरिः	शत्रु
विमुञ्चतः	करनेपर	प्रभुः नृसिंहः	(वे) भगवान् नृसिंह
दिशः विनेदुः	दिशाएँ गूंज उठी	दुर्गेषु अटवि	किलों, वनों
च गर्भाः	और (दैत्य स्त्रियोंके) गर्भ	आजिमुख आदिषु	युद्ध भूमि आदिमें
न्यपतन्	गिर गये	पायात्	रक्षा करें ॥१४॥

रक्षत्वसौ माध्वनि यज्ञकल्पः
स्वदंष्ट्रयोन्नीतधरो वराहः ।
रामोऽद्रिकूटेष्वथ विप्रवासे
सलक्ष्मणोऽव्याद् भरताग्रजोऽस्मान् ॥१५॥

रक्षतु असौ मा अध्वनि यज्ञकल्पः स्वदंष्ट्रया उन्नीतधरः वराहः रामः अद्रिकूटेषु अथ विप्रवासे सलक्ष्मणः अव्यात् भरत अग्रजः अस्मान् ॥१५॥

स्वदंष्ट्रया	अपनी दाढ़ोंपर	रामः	परशुरामजी,
उन्नीतधरः	पृथ्वीको उठाये	अथ विप्रवासे	और प्रवासके समय
यज्ञकल्पः	यज्ञ स्वरूप	सलक्ष्मणः	लक्ष्मणजीके साथ
असौ वराहः	ये वाराह भगवान्	भरत अग्रजः	भरतजीके बड़े भाई (श्रीराम)
अध्वनि	मार्गमें	अस्मान् अव्यात्	हमारी रक्षा करें ॥१५॥
मा रक्षतु	मेरी रक्षा करें,		
अद्रिकूटेषु	पर्वतोंके शिखरोंपर		

मामुग्रधर्मादखिलात् प्रमादा-
न्नारायणः पातु नरश्च हासात् ।
दत्तस्त्वयोगादथ योगनाथः
पायाद् गुणेशः कपिलः कर्मबन्धात् ॥१६॥

माम् उग्रधर्मात् अखिलात् प्रमादात् नारायणः पातु नरः च हासात् दत्तः तु अयोगात् अथ योगनाथः पायात् गुणेशः कपिलः कर्मबन्धात् ॥१६॥

उग्रधर्मात्	(मारणादि) भयानक अभिचारोंसे
अखिलात्	तथा सब
प्रमादात्	सावधानियोंसे
नारायणः	भगवान् नारायण
माम् पातु	मुझे बचाते रहें,
च नरः हासात्	तथा नर गर्वसे
अथ	तथा
योगनाथः	योगेश्वर
दत्तः तु	दत्तात्रेय तो
अयोगात्	योगके विघ्नोंसे,
गुणेशः कपिलः	त्रिगुणाधिप कपिल-जी
कर्मबन्धात्	कर्म-बन्धनसे
पायात्	रक्षा करें ॥१६॥

सनत्कुमारोऽवतु कामदेवा-
द्धयशीर्षा मां पथि देवहेलनात् ।
देवर्षिवर्यः पुरुषार्चनान्तरात्
कूर्मो हरिर्मां निरयादशेषात् ॥१७॥

सनत्कुमारः अवतु कामदेवात् हयशीर्षा मां पथि देवहेलनात् देवर्षि वर्यः पुरुष अर्चन अन्तरात् कूर्मः हरिः मां निरयात् अशेषात् ॥१७॥

सनत्कुमारः	सनत्कुमारजी
कामदेवात्	कामदेवसे
अवतु	रक्षा करें,
पथि	मार्गमें
देवहेलनात्	(प्रणाम आदि न करने रूपी) देवताओंकी उपेक्षासे
हयशीर्षा	हयशीर्ष भगवान् तथा
पुरुष	भगवत्
अर्चन अन्तरात्	सेवापराधोंसे
देवर्षि वर्यः मां	देवर्षि श्रेष्ठ नारदजी मुझे (बचावें)
कूर्मः हरिः	कच्छप भगवान्
अशेषात्	समस्त
निरयात्	नरकोंसे
मां	मेरी (रक्षा करें) ॥१७॥

धन्वन्तरिर्भगवान् पात्वपथ्याद्
द्वन्द्वाद् भयादृषभो निर्जितात्मा ।
यज्ञश्च लोकादवताज्जनान्ताद्
बलो गणात् क्रोधवशादहीन्द्रः ॥१८॥

धन्वन्तरिः भगवान् पातु अपथ्यात् द्वन्द्वात् भयात् ऋषभः निर्जित आत्मा यज्ञः च लोकात् अवतात् जनान्तात् बलः गणात् क्रोधवशात् अहीन्द्रः ॥१८॥

भगवान्	भगवान्	लोकात्	लोकापवादसे,
धन्वन्तरिः	धन्वन्तरि	बलः	बलरामजी
अपथ्यात्	कुपथ्यसे	जनान्तात्	लोगों द्वारा मिलने-वाले कष्टोंसे
पातु	रक्षा करें,		
द्वन्द्वात् भयात्	(सुख-दुःखादि) द्वन्द्वोंके भयसे	अहीन्द्रः	शेष भगवान्
		क्रोधवशात्	क्रोधवश
निर्जित आत्मा	जितेन्द्रिय	गणात्	नामक सर्पोंसे
ऋषभः	ऋषभदेवजी	अवतात्	रक्षा करें ॥१८॥
च यज्ञः	और यज्ञ भगवान्		

द्वैपायनो भगवानप्रबोधाद्
बुद्धस्तु पाखण्डगणात् प्रमादात् ।
कल्किः कलेः कालमलात् प्रपातु
धर्मावनायोरुकृतावतारः ॥१९॥

द्वैपायनः भगवान् अप्रबोधात् बुद्धः तु पाखण्ड गणात् प्रमादात् कल्किः कलेः कालमलात् प्रपातु धर्म अवनाय कृतः अवतारः ॥१९॥

भगवान्	भगवान्	बुद्धः तु	बुद्ध भगवान् तो
द्वैपायनः	श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास	पाखण्ड गणात्	पाखण्डी लोगोंसे और
अप्रबोधात्	अज्ञानसे,	प्रमादात्	प्रमादसे,

धर्म अवनाय कृतः अवतारः	धर्मकी रक्षाके लिए अतवार धारण करनेवाले	**कल्किः कलेः कालमलात्** **प्रपातु**	भगवान् कल्कि कलिकालके दोषोंसे रक्षा करें ॥१९॥

मां केशवो गदया प्रातरव्याद्
गोविन्द आसङ्गवमात्तवेणुः ।
नारायणः प्राह्ण उदात्तशक्ति-
र्मध्यन्दिने विष्णुररीन्द्रपाणिः ॥२०॥

मां केशवः गदया प्रातः अव्यात् गोविन्द आसङ्गवं आत्तवेणुः नारायणः प्राह्ण उद् आत्त शक्तिः मध्यंदिने विष्णुः अरीन्द्र पाणिः ॥२०॥

केशवः गदया	केशव भगवान् गदासे	**नारायणः**	नारायण
प्रातः	सबेरे,	**प्राह्ण**	पहिले प्रहरमें,
आत्तवेणुः	वंशी लिये	**अरीन्द्र पाणिः**	चक्रराज हाथमें लिए
गोविन्द	गोविन्द	**विष्णुः मध्यंदिने**	विष्णु भगवान् दोपहरमें
आसङ्गवं	दिन निकलनेपर,	**मां अव्यात्**	मेरी रक्षा करें ॥२०॥
उद् आत्त शक्तिः	शक्ति उठाये		

देवोऽपराह्णे मधुहोग्रधन्वा
सायं त्रिधामावतु माधवो माम् ।
दोषे हृषीकेश उतार्धरात्रे
निशीथ एकोऽवतु पद्मनाभः ॥२१॥

देवः अपराह्णे मधुहा उग्रधन्वा सायं त्रिधामा अवतु माधवः मां दोषे हृषीकेश उत अर्धरात्रे निशीथ एकः अवतु पद्मनाभः ॥२१॥

अपराह्णे	तीसरे प्रहरमें	**सायं त्रिधामा**	सायं काल (ब्रह्मादि) त्रिमूर्तिधारी
उग्रधन्वा	प्रचण्ड धनुष लिए		
मधुहा देवः	मधूसूदन भगवान्,	**माधवः अवतु**	माधव रक्षा करें,

दोषे हृषीकेश	रात्रिके प्रारम्भमें हृषीकेश,	निशीथ	तथा उसके बाद तीसरे प्रहरमें
उत अर्धरात्रे	और आधी रात (दूसरे प्रहर) में	एकः पद्मनाभः	अकेले कमलनाभ भगवान्
		मां अवतु	मेरी रक्षा करें ॥२१

श्रीवत्सधामापररात्र ईशः
प्रत्यूष ईशोऽसिधरो जनार्दनः ।
दामोदरोऽव्यादनुसन्ध्यं प्रभाते
विश्वेश्वरो भगवान् कालमूर्तिः ॥२२॥

श्रीवत्सधामा पररात्र ईशः प्रत्यूष ईशः असिधरः जनार्दनः दामोदरः अव्यात् अनुसन्ध्यं प्रभाते विश्वेश्वरः भगवान् कालमूर्तिः ॥२२॥

श्रीवत्सधामा	श्रीवत्सलाञ्छन	दामोदरः	दामोदर भगवान्
ईशः	भगवान्	प्रभाते	अरुणोदयके समय तथा
पररात्र	रात्रिके पिछले प्रहरमें,	कालमूर्तिः	कालस्वरूप
असिधरः	तलवार लिए	विश्वेश्वरः	विश्वेश्वर भगवान्
जनार्दनः	जनार्दन	अनुसन्ध्यं	सब सन्ध्याओंमें
ईशः प्रत्यूष	भगवान् ब्रह्ममुहूर्तमें	अव्यात्	रक्षा करें ॥२२॥

चक्रं युगान्तानलतिग्मनेमि
भ्रमत् समन्ताद् भगवत्प्रयुक्तम् ।
दन्दग्धि दन्दग्ध्यरिसैन्यमाशु
कक्षं यथा वातसखो हुताशः ॥२३॥

चक्रं युगान्त अनल तिग्मनेमि भ्रमत् समन्तात् भगवत् प्रयुक्तं दन्दग्धि दन्दग्धि अरि सैन्यं आशु कक्षं यथा वातसखः हुताशः ॥२३॥

युगान्त	प्रलयकालीन	आशु	शीघ्र
अनल	अग्नि के समान	अरिसैन्यं	शत्रु सेनाको
तिग्मनेमि	प्रज्वलित तीक्ष्ण धार वाले	दन्दग्धि	जलादो,
		दन्दग्धि	जलादो,
चक्रं	सुदर्शन चक्र	यथा	जैसे
भगवत्	भगवान्	वातसखः	वायुसे मिलकर
प्रयुक्तं	द्वार छोड़े गये	हुताशः कक्षं	अग्नि फूसके झोपड़ेको ॥२३॥
समन्तात्	चारों ओर		
भ्रमत्	घूमते हुए		

गदेऽशनिस्पर्शनविस्फुलिङ्गे
निष्पिण्ढि निष्पिण्ढ्यजितप्रियासि ।
कूष्माण्डवैनायकयक्षरक्षो-
भूतग्रहांश्चूर्णय चूर्णयारीन् ॥२४॥

गदे अशनि स्पर्शन विस्फुलिङ्गे निष्पिण्ढि निष्पिण्ढि अजितप्रिया असि कूष्माण्ड वैनायक यक्ष रक्षः भूत ग्रहान् चूर्णय चूर्णय अरीन् ॥२४॥

अशनि स्पर्शन	वज्र-कठोर	यक्ष रक्षः	यक्ष, राक्षस,
विस्फुलिङ्गे	चिनगारियाँ फेंकती	भूत ग्रहान्	भूत और ग्रहोंको
गदे	गदा !	निष्पिण्ढि	कुचल दो,
	तुम	निष्पिण्ढि	कुचल दो,
अजित	भगवान् अजितको	अरीन	(हमारे) शत्रओंको
प्रिया असि	प्यारी हो,	चूर्णय चूर्णय	चूर-चूर कर दो ॥२४॥
कूष्माण्ड	कूष्माण्ड,		
वैनायक	विनायक,		

त्वं यातुधानप्रमथप्रेतमातृ-
पिशाचविप्रग्रहघोरदृष्टीन् ।
दरेन्द्र विद्रावय कृष्णपूरितो
भीमस्वनोऽरेर्हृदयानि कम्पयन् ॥२५॥

त्वं यातुधान प्रमथ प्रेत मातृ पिशाच विप्रग्रह घोर दृष्टीनू दरेन्द्र विद्रावय कृष्णपूरितः भीमस्वनः अरेः हृदयानि कम्पयन् ॥२५॥

कृष्णपूरितः	भगवान कृष्णसे बजाये जाते	**यातुधान प्रमथ**	यातुधान, प्रमथ,
दरेन्द्र त्व	शंखराज तुम	**प्रेत मातृ**	प्रेत, मातृका
भीमस्वनः	अपने घोर शब्दसे	**पिशाच**	पिशाच,
अरेः हृदयानि	(हमारे) शत्रुओंके हृदयोंको	**विप्रग्रह**	ब्रह्मराक्षस आदि
कम्पयन्	कम्पित करते	**घोर दृष्टीन्**	क्रूर दृष्टिवालोंको
		विद्रावय	भगा दीजिए ॥२५॥

त्वं तिग्मधारासिवरारिसैन्य-
मीशप्रयुक्तो मम छिन्धि छिन्धि ।
चक्षूंषि चर्मञ्छतचन्द्र छादय
द्विषामघोनां हर पापचक्षुषाम् ॥२६॥

त्वं तिग्मधार असिवर अरिसैन्यं ईश प्रयुक्तः मम छिन्धि छिन्धी चक्षूंषि चर्मन् शतचन्द्र छादय द्विषां अघोनां हर पाप चक्षुषाम् ॥२६॥

तिग्मधार	तीक्ष्ण धार वाली	**चर्मन्**	(भगवान्‌की) ढाल
असिवर	श्रेष्ठ (भगवान् की) तलवार !	**अघोनां द्विषं**	पापी शत्रुओंकी
त्वं मम	तुम मेरे	**चक्षूंषि**	आँखोंको
अरिसैन्यं ईश	शत्रु सेनाको	**छादय**	ढँक दीजिये
छिन्धि छिन्धि	टुकड़े-टुकड़े	**पाप चक्षुषां**	(उन) पाप दृष्टिवालोंके
प्रयुक्तः	काट दो	**हर**	(नेत्र) हरण कर
शतचन्द्र	सैकड़ों मण्डलवाले		लीजिये ॥२६॥

यन्नो भयं ग्रहेभ्योऽभूत् केतुभ्यो नृभ्य एव च ।
सरीसृपेभ्यो दंष्ट्रिभ्यो भूतेभ्योंऽहोभ्य एव वा ॥२७॥

यत् नः भयं ग्रहेभ्यः अभूत् केतुभ्यः नृभ्य एव च सरीसृपेभ्यः दंष्ट्रिभ्यः भूतेभ्यः अहःभ्य एव वा ॥२७॥

नः यत् भयं	हमको जो भय	दंष्ट्रिभ्यः	हिंसक पशुओंसे,
ग्रहेभ्यः केतुभ्यः	ग्रहोंसे, धूमकेतुसे,	भूतेभ्यः	भूत-प्रेतोंसे,
च नृभ्य एव	और मनुष्योंसे,	वा	अथवा
सरीसृपेभ्यः	(सर्पादि) रेंगने वालोंसे,	अहःभ्यः एव	पापी-प्राणियोंसे ही
		अभूत्	होवे ॥२७॥

सर्वाण्येतानि भगवन्नामरूपास्त्रकीर्तनात् ।
प्रयान्तु संक्षयं सद्यो ये नः श्रेयःप्रतीपकाः ॥२८॥

सर्वाणि एतानि भगवत् नाम रूप अस्त्र कीर्तनात् प्रयान्तु संक्षयं सद्यः ये नः श्रेयः प्रतीपकाः ॥२८॥

ये नः	(और) जो हमारे	अस्त्र	अस्त्रोंका
श्रेयः प्रतीपकाः	मंगलके विरोधी हों	कीर्तनात्	कीर्तन करनेसे
एतानि सर्वाणि	ये सब	सद्यः	तुरन्त
भगवत्	भगवान् के	संक्षयं प्रयान्तु	नष्ट हो जायं ॥२८॥
नाम रूप	नाम, रूप तथा		

गरुडो भगवान् स्तोत्रस्तोभश्छन्दोमयः प्रभुः ।
रक्षत्वशेषकृच्छ्रेभ्यो विष्वक्सेनः स्वनामभिः ॥२९॥

गरुडः भगवान् स्तोत्रः तोभः छन्दः मयः प्रभुः रक्षतु अशेष कृच्छ्रेभ्यः विष्वक्सेनः स्वनामभिः ॥२९॥

छन्दः मयः	वेदमन्त्रोंकी	स्वनामभिः	अपने नाम (उच्चारण)के प्रभावसे
स्तोत्रः	स्तुतियोंसे	अशेष	सब
तोभः	स्तुत होनेवाले	कृच्छ्रेभ्यः	विपत्तियोंसे
प्रभुः भगवान्	समर्थ भगवान्	रक्षतु	(हमारी) रक्षा करें ॥२९॥
गरुडः	गरुड़ और		
विष्वक्सेनः	विष्वक्सेनजी		

सर्वापद्भ्यो हरेर्नामरूपयानायुधानि नः ।
बुद्धीन्द्रियमनःप्राणान् पान्तु पार्षदभूषणाः ॥३०॥

सर्व आपत्भ्यः हरेः नाम रूप यान आयुधानि नः बुद्धि इन्द्रिय मनः प्राणान् पान्तु पार्षद भूषणाः ॥३०॥

हरेः नाम	श्रीहरिके नाम,	**नः बुद्धि इन्द्रिय**	हमारी बुद्धि, इन्द्रिय
रूप, यान	रूप, वाहन,	**मनः**	मन
आयुधानि	आयुध	**प्राणान् पान्तु**	और प्राणोंकी रक्षा करें ॥३०॥
पार्षद भूषणाः	श्रेष्ठ-पार्षद		
सर्व आपत्भ्यः	सब विपत्तियोंसे		

यथा हि भगवानेव वस्तुतः सदसच्च यत् ।
सत्येनानेन नः सर्वे यान्तु नाशमुपद्रवाः ॥३१॥

यथा हि भगवान् एव वस्तुतः सत् असत् च यत् सत्येन अनेन नः सर्वे यान्तु नाशं उपद्रवाः ॥३१॥

यथा हि	जैसे कि	**अनेन सत्येन**	इस सत्यके प्रभावसे
यत् सत्	जो भी कारण-	**नः सर्वे**	हमारे सब
असत् च	कार्य रूपमें है	**उपद्रवाः**	उपद्रव
वस्तुतः	वस्तुतः	**नाशं यान्तु**	नष्ट हो जायं ॥३१॥
भगवान् एव	भगवान ही हैं,		

यथैकात्म्यानुभावानां विकल्परहितः स्वयम् ।
भूषणायुधलिङ्गाख्या धत्ते शक्तीः स्वमायया ॥३२॥

यथा एकात्म्य अनुभावानां विकल्प रहितः स्वयं भूषण आयुध लिङ्ग आख्या धत्ते शक्तीः स्वमायया ॥३२॥

यथा	जैसे	**अनुभावानां**	अनुभव करनेवालों-
एकात्म्य	(ब्रह्म आत्माकी) एकताका		के लिए
		विकल्प रहितः	भेदोंसे रहित

स्वयं	स्वयं (भगवान् ही)	लिङ्ग आख्या	चिह्न (रूप) और नाम
स्वमायया	अपनी माया	धत्ते	धारण करते हैं ॥३२॥
शक्तिः	शक्तिसे		
भूषण आयुध	आभूषण, आयुध		

तेनैव सत्यमानेन सर्वज्ञो भगवान् हरिः ।
पातु सर्वैः स्वरूपैर्नः सदा सर्वत्र सर्वगः ॥३३॥

तेन एव सत्यमानेन सर्वज्ञः भगवान् हरिः पातु सर्वैः स्वरूपैः नः सदा सर्वत्र सर्वगः ॥३३॥

तेन एव	इसी	सर्वैः स्वरूपैः	अपने सब रूपोंसे
सत्यमानेन	सच्ची मान्यतासे	सदा सर्वत्र	सर्वदा, सर्वत्र
सर्वज्ञः सर्वगः	सर्वज्ञ, सर्वव्यापी	नः पातु	हमारी रक्षा करें ॥३३॥
भगवान् हरिः	भगवान् श्रीहरि		

विदिक्षु दिक्षूर्ध्वमधः समन्ता-
दन्तर्बहिर्भगवान् नारसिंहः ।
प्रहापयँल्लोकभयं स्वनेन
स्वतेजसा ग्रस्तसमस्ततेजाः ॥३४॥

विदिक्षु दिक्षु ऊर्ध्वं अधः समन्तात् अन्तः बहिः भगवान् नारसिंहः प्रहापयन् लोक भयं स्वनेन स्वतेजसा ग्रस्त समस्त तेजाः ॥३४॥

स्वनेन	अपनी गर्जनासे	विदिक्षु दिक्षु	(ईशानादि)कोणोंमें, दिशाओंमें,
लोक भय	सबके भयको	ऊर्ध्वं अधः	ऊपर, नीचे,
प्रहापयन्	दूर करते हुए,	अन्तः बहिः	भीतर-बाहर
स्वतेजसा	अपने तेजसे	समन्तात्	सब ओरसे (हमारी रक्षा करें) ॥३४॥
समस्त तेजाः	सब तेजोंको		
ग्रस्त	ग्रस लेनेवाले		
भगवान्	भगवान्		
नारसिंहः	नृसिंह		

मघवन्निदमाख्यातं वर्म नारायणात्मकम् ।
विजेष्यस्यञ्जसा येन दंशितोऽसुरयूथपान् ॥३५॥

मघवन् इदं आख्यातं वर्म नारायण आत्मकं विजेष्यसि अञ्जसा येन दंशितः असुर यूथपान् ॥३५॥

मघवन्	महेन्द्र !	**अञ्जसा**	सरलतापूर्वक
इदं नारायण	यह नारायण	**असुर यूथपान्**	असुर सेना नायकोंको-
आत्मकं	स्वरूप	**विजेष्यसि**	जीत लोगे ॥३५॥
वर्म आख्यातं	कवच बतला दिया		
येन दंशितः	जिस कवचको धारण करके		

एतद् धारयमाणस्तु यं यं पश्यति चक्षुषा ।
पदा वा संस्पृशेत् सद्यः साध्वसात् स विमुच्यते ॥३६॥

एतत् धारयमाणः तु यं यं पश्यति चक्षुषा पदा वा संस्पृशेत् सद्यः साध्वसात् स विमुच्यते ॥३६॥

एतत्	इसको	**स सद्यः**	वह तत्काल
धारयमाणः	धारण करनेवाला	**साध्वसात्**	भयसे
तु	तो	**विमुच्यते**	मुक्त हो जाता है ॥३६॥
यं यं	जिस-जिसको		
चक्षुषा पश्यति	आँखसे देख लेता है,		
वा पदा	अथवा पैरसे		
संस्पृशेत्	छू देता है,		

न कुतश्चिद् भयं तस्य विद्यां धारयतो भवेत् ।
राजदस्युग्रहादिभ्यो व्याघ्रादिभ्यश्च कर्हिचित् ॥३७॥

न कुतश्चित् भयं तस्य विद्यां धारयतः भवेत् राज दस्यु ग्रह आदिभ्यः व्याघ्र आदिभ्यः च कर्हिचित् ॥३७॥

विद्यां धारयतः	इस विद्याको धारण करनेवाले	च व्याघ्र आदिभ्यः	तथा बाघ आदिसे
तस्य	किसीको भी	कुतश्चित्	कहीं भी,
राज दस्यु	राजा, डाकू	कर्हिचित्	कभी भी,
ग्रह आदिभ्यः	ग्रह आदिसे,	भयं न भवेत्	भय नहीं होता ॥३७॥

इमां विद्यां पुरा कश्चित् कौशिको धारयन् द्विजः ।
योगधारणया स्वाङ्गं जहौ स मरुधन्वनि ॥३८॥

इमां विद्यां पुरा कश्चित् कौशिकः धारयन् द्विजः योगधारणया स्व अङ्गम् जहौ स मरुधन्वनि ॥३८॥

पुरा कश्चित्	पुराने समयमें कोई	स मरुधन्वनि	उसने मरुस्थलमें
कौशिकः द्विजः	कौशिक गोत्रीय ब्राह्मण	योगधारणया	योगधारणा द्वारा
इमां विद्यां	इस विद्याको	स्व अङ्गं	अपना शरीर
धारयन्	धारण करते हुए	जहौ	त्याग दिया ॥३८॥

तस्योपरि विमानेन गन्धर्वपतिरेकदा ।
ययौ चित्ररथः स्त्रीभिर्वृतो यत्र द्विजक्षयः ॥३९॥

तस्य उपरि विमानेन गन्धर्वपतिः एकदा ययौ चित्ररथः स्त्रीभिः वृतः यत्र द्विजक्षयः ॥३९॥

एकदा	एकबार	यत्र द्विजक्षयः	जहाँ वह ब्राह्मण मरा था,
गन्धर्वपतिः	गन्धर्वराज	तस्य उपरि	उस स्थानके ऊपर
चित्ररथः	चित्ररथ	ययौ	गये ॥३९॥
स्त्रीभिः वृतः	स्त्रियोंसे घिरे		
विमानेन	विमानद्वारा		

गगनान्न्यपतत् सद्यः सविमानोह्यवाक्शिराः ।
स वालखिल्यवचनादस्थीन्यादाय विस्मितः ।
प्रास्य प्राचीसरस्वत्यां स्नात्वा धाम स्वमन्वगात् ॥४०॥

गगनात् न्यपतत् सद्यः सविमानः हि अवाक् शिराः स वालखिल्य वचनात् अस्थीनि आदाय विस्मितः प्रास्य प्राची सरस्वत्यां स्नात्वा धाम स्वं अन्वगात् ॥४०॥

सद्यः गगनात्	तुरन्त आकाशसे	**अस्थीनि आदाय**	उसकी हड्डियाँ लेकर
सविमानः हि	विमानके साथ ही		
अवाक् शिराः	नीचे सिर किये	**प्राची**	पूर्ववाहिनी
न्यपतत्	गिर गये	**सरस्वत्यां**	सरस्वतीमें
विस्मितः	(इससे) विस्मित हो गये	**प्रास्य**	डालकर वहाँ
		स्नात्वा	स्नान करके
वालखिल्य	फिर वालखिल्य	**स्वं धाम**	तब अपने धाम
वचनात्	मुनियोंके कहनेसे	**अन्वगात्**	चले गये ॥४०॥

श्रीशुक उवाच–

य इदं शृणुयात् काले यो धारयति चादृतः ।
तं नमस्यन्ति भूतानि मुच्यते सर्वतो भयात् ॥४१॥

य इदं शृणुयात् काले यः धारयति च आदृतः तं नमस्यन्ति भूतानि मुच्यते सर्वतः भयात् ॥४१॥

य इदं काले	जो इसको समयपर	**नमस्यन्ति**	झुक जाते हैं
शृणुयात्	सुनता है	**सर्वतः भयात्**	(वह) सब ओरसे भयसे
च यः आदृतः	और जो आदरपूर्वक		
धारयति	धारण करता है,	**मुच्यते**	मुक्त हो जाता है ॥४१॥
तं भूतानि	उसके सामने सब प्राणी		

एतां विद्यामधिगतो विश्वरूपाच्छतक्रतुः ।
त्रैलोक्यलक्ष्मीं बुभुजे विनिर्जित्य मृधेऽसुरान् ॥४२॥

एतां विद्यां अधिगतः विश्वरूपात् शतक्रतुः त्रैलोक्य लक्ष्मीं बुभुजे विनिर्जित्य मृधे असुरान् ॥४२॥

विश्वरूपात्	विश्वरूपसे	**विनिर्जित्य**	जीतकर
एतां विद्यां	इस विद्याको	**त्रैलोक्य**	त्रिभुवनकी
अधिगतः	प्राप्त करके	**लक्ष्मीं**	लक्ष्मीका
शतक्रतुः	शक्रने	**बुभुजे**	उपभोग करने
मृधे असुरान्	युद्धमें असुरोंको		लगे ॥४२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे नारायणवर्मकथनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

अथ नवमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच—

तस्यासन् विश्वरूपस्य शिरांसि त्रीणि भारत ।
सोमपीथं सुरापीथमन्नादमिति शुश्रुम ॥१॥

तस्य आसन् विश्वरूपस्य शिरांसि त्रीणि भारत सोमपीथं सुरापीथं अन्नादं इति शुश्रुम ॥१॥

भारत	परीक्षित !	अन्नादं	अन्न खानेवाला
तस्य	उन	त्रीणि शिरांसि	तीन सिर
विश्वरूपस्य	विश्वरूपके	आसन् इति	थे ऐसा
सोमपीथं	सोमपान करनेवाला,	शुश्रुम	सुना है ॥१॥
सुरापीथं	शराब पीनेवाला और		

स वै बर्हिषि देवेभ्यो भागं प्रत्यक्षमुच्चकैः ।
अवदद् यस्य पितरो देवाः सप्रश्रयं नृप ॥२॥

स वै बर्हिषि देवेभ्यः भागं प्रत्यक्षं उच्चकैः अवदत् यस्य पितरः देवाः सप्रश्रयं नृप ॥२॥

नृप	परीक्षित !	प्रत्यक्षं उच्चकैः	प्रत्यक्ष ऊँचे स्वरसे
वै स	निश्चय वे	देवेभ्यः भागं	देवताओंका भाग
यस्य पितरः	जिनके पिता (त्वष्टा)	सप्रश्रयं	बड़ी नम्रतासे
देवाः	देवता थे ।	अवदत्	बोलकर देते थे ॥२॥
बर्हिषि	यज्ञमें		

स एव हि ददौ भागं परोक्षमसुरान् प्रति ।
यजमानोऽवहद् भागं मातृस्नेहवशानुगः ॥३॥

स एव हि ददौ भागं परोक्षं असुरान् प्रति यजमानः अवहत् भागं मातृस्नेहवश अनुग ॥३॥

यजमानः	यज्ञ करते समय	**परोक्षं**	छिपाकर
मातृस्नेहवशः	माताके स्नेहके वश	**असुरान् प्रति**	असुरोंके लिए
अनुगः	उनके अनुयायी होकर	**भागं अवहत्**	भाग उठाकर
		ददौ	दे देते थे ॥३॥
स एव हि	वह (विश्वरूप) ही		

तद् देवहेलनं तस्य धर्मालीकं सुरेश्वरः ।
आलक्ष्य तरसा भीतस्तच्छीर्षाण्यच्छिनद् रुषा ॥४॥

तत् देवहेलनं तस्य धर्म अलीकं सुरेश्वरः आलक्ष्य तरसा भीतः तत् शीर्षाणि अच्छिनत् रुषा ॥४॥

तस्य तत्	उनका वह	**सुरेश्वरः**	इन्द्र
देव-	देवताओंकी	**तरसा भीतः**	सरसा डर गये,
हेलनं	अवहेलना तथा	**रुषा तत्**	क्रोधसे उनके
अलीकं धर्म	कपट पूर्ण धर्म	**शीर्षाणि**	मस्तक
आलक्ष्य	देखकर	**अच्छिनत्**	काट दिये ॥४॥

सोमपीथं तु यत् तस्य शिर आसीत् कपिञ्जलः ।
कलविङ्कः सुरापीथमन्नादं यत् स तित्तिरिः ॥५॥

सोमपीथं तु यत् तस्य शिर आसीत् कपिञ्जलः कलविङ्कः सुरापीथं अन्नादं यत् स तित्तिरिः ॥५॥

तस्य	उनका	**सोमपीथं**	सोमपान करनेवाला
यत् शिर	जो सिर		था वह तो

कपिञ्जलः	पपीहा,	**स तित्तिरिः**	वह तीतर
सुरापोथं	शराब पीनेवाला	**आसीत्**	हो गया ॥५॥
कलविङ्कः	गौरैया		
यत् अन्नादं	जो अन्न खानेवाला था		

ब्रह्महत्यामञ्जलिना जग्राह यदपीश्वरः ।
संवत्सरान्ते तदघं भूतानां स विशुद्धये ।
भूम्यम्बुद्रुमयोषिद्भ्यश्चतुर्धा व्यभजद्धरिः ॥६॥

ब्रह्महत्यां अञ्जलिना जग्राह यदपि ईश्वरः संवत्सर अन्ते तत् अघं भूतानां स विशुद्धये भूमि अम्बु द्रुम योषित्भ्यः चतुर्धा व्यभजत् हरिः ॥६॥

यदपि हरिः	यद्यपि इन्द्र	**स भूतानां**	उन्होंने प्राणियोंकी
ईश्वरः	(वह पाप नष्ट कर देनेमें) समर्थ थे तो भी	**विशुद्धये**	शुद्धताके लिए*
		तत् अघं	उस पापको
		भूमि अम्बु द्रुम	भूमि, जल, वृक्ष
ब्रह्महत्यां	ब्रह्महत्याको	**योषित्भ्यः**	स्त्रियोंमें
अञ्जलिना	हाथ जोड़कर	**चतुर्धा**	चार भागोंमें
जग्राह	ग्रहण कर लिया,	**व्यभजत्**	बाँट दिया ॥६॥
संवत्सर अन्ते	एक वर्षके अन्तमें		

भूमिस्तुरीयं जग्राह खातपूरवरेण वै ।
ईरिणं ब्रह्महत्याया रूपं भूमौ प्रदृश्यते ॥७॥

भूमिः तुरीयं जग्राह खातपूर वरेण वै ईरिणं ब्रह्महत्यायाः रूपं भूमौ प्रदृश्यते ॥७॥

---

* इन्द्र वर्षाके देवता हैं। हत्या लगी रहनेपर वर्षा करते तो ब्रह्म-हत्यारेका छुआ जल पीकर सब प्राणी अपवित्र हो जाते।

वै खातपूर	निश्चय गढ्डा होने-पर (स्वतः क्रमशः) भर जायगा	**जग्राह**	ग्रहणकर लिया।
		ब्रह्महत्याया	ब्रह्महत्याका
वरेण	(इस) वरदानको पाकर	**रूपं**	रूप
		भूमौ	पृथ्वीमें
भूमिः तुरीयं	भूमि ले (पापका) चौथाई भाग	**ईरिणं**	ऊसर (कहीं-कहीं)
		प्रदृश्यते	दिखलायी पड़ता है ॥७॥

तुर्यं छेदविरोहेण वरेण जगृहुर्द्रुमाः।
तेषां निर्यासरूपेण ब्रह्महत्या प्रदृश्यते ॥८॥

तुर्यं छेदविरोहेण वरेण जगृहुः द्रुमाः तेषां निर्यास रूपेण ब्रह्महत्या प्रदृश्यते ॥८॥

छेद विरोहेण	(कोई भाग)काटनेपर फिर उग जायगा	**तेषां निर्यास**	उनमें गोंदके
		रूपेण	रूपमें
वरेण	इस वरदानके बदले	**ब्रह्महत्या**	ब्रह्महत्या
तुर्यं द्रुमाः	चौथाई (पाप)	**प्रदृश्यते**	दीखती है ॥८॥
जगृहुः	वृक्षोंने ग्रहण किया,		

शश्वत्कामवरेणांहस्तुरीयं जगृहुः स्त्रियः।
रजोरूपेण तास्वंहो मासि मासि प्रदृश्यते ॥९॥

शश्वत् काम वरेण अंहः तुरीयं जगृहुः स्त्रियः रजःरूपेण ताः सु अंहः मासि मासि प्रदृश्यते ॥९॥

शश्वत् काम	सर्वदा पुरुषसे सह-वासकी शक्ति	**मासि मासि**	प्रत्येक महीने
		रजः	रजस्वला होनेके
वरेण	इस वरदानके बदले	**रूपेण**	रूपमें
अंहः तुरीयं	पापका चौथाई भाग	**प्रदृश्यते**	दिखलायी देता है ॥९॥
स्त्रियः जगृहुः	स्त्रियोंने ग्रहण किया		
ताः सु अंहः	उनमें वह पाप		

द्रव्यभूयोवरेणापस्तुरीयं जगृहुर्मलम् ।
तासु बुद्बुदफेनाभ्यां दृष्टं तद्धरति क्षिपन् ॥१०॥

द्रव्य भूयः वरेण आपः तुरीयं जगृहुः मलं तासु बुद्बुद फेनाभ्यां दृष्टं तत् हरति क्षिपन् ॥१०॥

द्रव्यः भूयः	(किसीमें मिलानेपर वह) द्रव्य बढ़ जायगा	**तासु बुद्बुद फेनाभ्यां**	उसमें बुलबुले और फेनके द्वारा वह
वरेण	इस वरदानसे	**दृष्टं**	दीखता है,
आपः तुरीयं	जलने चौथाई	**तत् क्षिपन्**	उस (फेनादिको) हटाकर
मलं	पाप	**हरति**	(जल) लेते हैं॥१०॥
जगृहुः	ग्रहण किया,		

हतपुत्रस्ततस्त्वष्टा जुहावेन्द्राय शत्रवे ।
इन्द्रशत्रो विवर्धस्व माचिरं जहि विद्विषम् ॥११॥

हतपुत्रः ततः त्वष्टा जुहाव इन्द्राय शत्रवे इन्द्रशत्रुः विवर्धस्व माचिरं जहि विद्विषं ॥११॥

ततः हतपुत्रः	तब पुत्रके मारे जानेपर	**विवर्धस्व**	तुम्हारी अभिवृद्धि हो,
त्वष्टा	त्वष्टाने	**विद्विषं**	अपने शत्रुको
इन्द्राय शत्रवे	शत्रु इन्द्रके (विपरीत)	**माचिरं जहि**	शीघ्र मार डालो,
इन्द्रशत्रुः	हे इन्द्रके शत्रु	**जुहाव**	(इस मन्त्रसे) हवन करने लगे ॥११॥

अथान्वाहार्यपचनादुत्थितो घोरदर्शनः ।
कृतान्त इव लोकानां युगान्तसमये यथा ॥१२॥

अथ अन्वाहार्यपचनात् उत्थितः घोरदर्शनः कृतान्त इव लोकानां युगान्त समये यथा ॥१२॥

अथ	तत्र	लोकानां	सब लोकोंके लिए
अन्वाहार्य-	अन्वाहार्य-	कृतान्त इव	(साक्षात्) काल
पचनात्	पचन (नामक		समान
	दक्षिणाग्निसे	घोरदर्शनः	भयानकाकृति
यथा युगान्त	जैसे प्रलयके	उत्थितः	(एक दैत्य) उठ
समये	समय		खड़ा हुआ ॥१२॥

विष्वग्विवर्धमानं तमिषुमात्रं दिने दिने ।
दग्धशैलप्रतीकाशं सन्ध्याभ्रानीकवर्चसम् ॥१३॥

विष्वक् विवर्धमानं तं इषुमात्रं दिने दिने दग्धशैल प्रतीकाशं सन्ध्या अभ्र अनीक वर्चसम् ॥१३॥

इषुमात्रं	बाणके बराबर	प्रतीकाशं	समान (काला)
तं दिने दिने	उसे प्रतिदिन	सन्ध्या	सन्ध्या कालीन
विष्वक्	चारों ओर	अभ्र अनीक	मेघ-मण्डलके समान
विवर्धमानं	बढ़ता,	वर्चसम्	कान्तिवाला
दग्धशैल	जले हुए पर्वतके		(देखकर) ॥१३॥

तप्तताम्रशिखाश्मश्रुं मध्याह्नार्कोग्रलोचनम् ॥१४॥
तप्ततान्र शिखाश्मश्रुं मध्याह्न अर्क उग्र लोचनं ॥१४॥

तप्ततान्र	तपाये तांबेके समान	मध्याह्न	दोपहरके
शिखाश्मश्रुं	सिरके केश और	अर्क	सूर्यके समान
	दाढ़ीवाले,	उग्र लोचनं	उग्र नेत्रको ॥१४॥

देदीप्यमाने त्रिशिखे शूल आरोप्य रोदसी ।
नृत्यन्तमुन्नदन्तं च चालयन्तं पदा महीम् ॥१५॥

देदीप्यमाने त्रिशिखे शूल आरोप्य रोदसी नृत्यन्तं उन्नदन्तं च चालयन्तं पदा महीम् ॥१५॥

देदीप्यमाने	चमकते हुए	उन्नदन्तं	चिल्लाते,
त्रिशिखे शूलं	त्रिशूलको	च पदा महीं	और पैरोंसे (कूद-कूदकर) पृथ्वीको
रोदसी	आकाशमें		
आरोप्य	उठाकर	चालयन्तं	कँपाते हुए ॥१५॥
नृत्यन्तं	नाचते,		

दरीगम्भीरवक्त्रेण पिबता च नभस्तलम् ।
लिहता जिह्वयर्क्षाणि ग्रसता भुवनत्रयम् ॥१६॥

दरीगम्भीर वक्त्रेण पिबता च नभस्तलं लिहता जिह्वया अर्क्षाणि ग्रसता भुवनत्रयम् ॥१६॥

दरीगम्भीर	गुफाके समान गहरे	अर्क्षाणि	नक्षत्रोंको
वक्त्रेण	मुखके द्वारा	लिहता	चाटता सा,
नभस्तलं च	आकाशको ही	भुवनत्रयं	तीनों लोकोंको
पिबता च	पी जाता सा,	ग्रसता	निगल जाता सा ॥१६॥
जिह्वया	जिह्वासे		

महता रौद्रदंष्ट्रेण जृम्भमाणं मुहुर्मुहुः ।
वित्रस्ता दुद्रुवुर्लोका वीक्ष्य सर्वे दिशो दश ॥१७॥

महता रौद्र दंष्ट्रेण जृम्भमाणं मुहुः मुहुः वित्रस्ता दुद्रुवुः लोका वीक्ष्य सर्वे दिशः दश ॥१७॥

महता रौद्र	बड़े-बड़े भयानक	सर्वे लोका	सब लोग
दंष्ट्रेण	दाँतोंको दिखाते हुए	दिशः दश	दसो दिशाओंमें
मुहुः मुहुः	बार-बार	दुद्रुवुः	आग गये ॥१७॥
जृम्भमाणं	जम्हाई लेते (उसे)		
वीक्ष्य वित्रस्ता	देखकर अत्यन्त डरे हुए		

येनावृता इमे लोकास्तमसा त्वाष्ट्रमूर्तिना ।
स वै वृत्र इति प्रोक्तः पापः परमदारुणः ॥१८॥

येन आवृता इमे लोकाः तमसा त्वाष्ट्रमूर्तिना स वै वृत्र इति प्रोक्तः पापः परमदारुणः ॥१८॥

येन तमसा	जिस तमोगुणी	परमदारुणः	अत्यन्त क्रूर
त्वाष्ट्रमूर्तिना	त्वष्टाके पुत्रसे	पापः	पापी
इमे लोकाः	ये सब लोक	वृत्र इति	वृत्र इस
आवृता	घेर लिये गये,	प्रोक्तः	नामसे कहा
वै स	निश्चय वह		गया ॥१८॥

तं निजघ्नुरभिद्रुत्य सगणा विबुधर्षभाः ।
स्वैः स्वैर्दिव्यास्त्रशस्त्रौघैः सोऽग्रसत् तानि कृत्स्नशः ॥१९॥

तं निजघ्नुः अभिद्रुत्य सगणा विबुधर्षभाः स्वैः स्वैः दिव्यास्त्र शस्त्रौघैः सः अग्रसत् तानि कृत्स्नशः ॥१९॥

सगणा	अपने सेवकोंके साथ	शस्त्रौघैः	तथा शस्त्र समूहोंसे
विबुधर्षभाः	देवनायकोंने	तं निजघ्नुः	उसे मारा
अभिद्रुत्य	दौड़ते हुए पास आकर	सः तानि	उसने उन
		कृत्स्नशः	सभी (अस्त्र-
स्वैः स्वैः	अपने-अपने		शस्त्रोंको)
दिव्यास्त्र	दिव्यास्त्रों	अग्रसत्	निगल लिया ॥१९॥

ततस्ते विस्मिताः सर्वे विषण्णा ग्रस्ततेजसः ।
प्रत्यञ्चमादि पुरुषमुपतस्थुः समाहिताः ॥२०॥

ततः ते विस्मिताः सर्वे विषण्णा ग्रस्ततेजसः प्रत्यञ्चं आदि पुरुषं उपतस्थुः समाहिताः ॥२०॥

ततः ते	तब तो वे	समाहिताः	एकाग्र चित्तसे
सर्वे	सब (देवता)	प्रत्यञ्चम्	हृदयमें स्थित
विस्मिताः	आश्चर्यमें पड़ गये ।	आदि पुरुषं	आदि पुरुष
ग्रस्ततेजसः	प्रभाव छीने जानेसे		परमात्माकी
विषण्णा	उदास होकर	उपतस्थुः	शरणमें गये ॥२०॥

देवा ऊचुः—

वाय्वम्बराग्न्यप्क्षितयस्त्रिलोका
ब्रह्मादयो ये वयमुद्विजन्तः ।
हराम यस्मै बलिमन्तकोऽसौ
बिभेति यस्मादरणं ततो नः ॥२१॥

वायु अम्बर अग्नि अप् क्षितयः त्रिलोका ब्रह्मा आदयः ये वयं उद्विजन्तः हराम यस्मै बलिं अन्तकः असौ बिभेति यस्मात् अरणं ततः नः ॥२१॥

वायु अम्बर	वायु, आकाश,	**ये वयं**	जो हम लोग हैं,
अग्नि अप्	अग्नि, जल	**उद्विजन्तः**	उद्विग्न होकर
क्षितयः	पृथ्वी आदि (पञ्चभूत)	**यस्मै बलिं हराम**	जिसे उपहार देते हैं,
त्रिलोका	(इनसे बने) तीनों लोक	**असौ अन्तकः**	वह यह काल
ब्रह्मा आदयः	(उनके अधिपति) ब्रह्मा आदि	**यस्मात् बिभेति**	जिससे डरता है
		ततः नः अरणं	वही प्रभु अब हमारे रक्षक हैं ॥२१॥

अविस्मितं तं परिपूर्णकामं
स्वेनैव लाभेन समं प्रशान्तम् ।
विनोपसर्पत्यपरं हि बालिशः
श्वलाङ्गुलेनातितितर्ति सिन्धुम् ॥२२॥

अविस्मितं तं परिपूर्ण कामं स्वेन एव लाभेन समं प्रशान्तं विना उपसर्पति अपरं हि बालिशः श्वलाङ्गुलेन अतितितर्ति सिन्धुम् ॥२२॥

तं	उन	**स्वेन एव**	अपने स्वरूपो-
अविस्मितं	कभी आश्चर्यमें न पड़ने वाले	**लाभेन**	पलब्धिसे ही
		परिपूर्ण कामं	सर्वथा पूर्णकाम,

समं प्रशान्तं	सबके प्रति समान, अत्यन्त शान्त	हि बालिशः	क्योंकि मूर्ख है (वह)
विना अपरं	आपको छोड़कर (कोई)	श्वलाङ्गुलेन	कुत्ते की पूँछके सहारे
उपसर्पति	दूसरेके समीप जाता है।	सिन्धुं अतितितर्ति	समुद्रके पार जाना चाहता है ॥२२॥

यस्योरुशृङ्गे जगतीं स्वनावं
मनुर्यथाऽऽबध्य ततार दुर्गम् ।
स एव नस्त्वाष्ट्रभयाद् दुरन्तात्
त्राताऽऽश्रितान् वारिचरोऽपि नूनम् ॥२३॥

यस्य उरुशृङ्गे जगतीं स्वनावं मनुः यथा आबध्य ततार दुर्गं स एव नः त्वाष्ट्र भयात् दुरन्तात् त्राता आश्रितान् वारिचरः अपि नूनम् ॥२३॥

यस्य उरुशृङ्गे	जिनके बड़े भारी सींगमें	वारिचरः अपि	जलचर होनेपर भी
जगतीं	पृथ्वी रूपी	नः आश्रितान्	हम शरणागतोंको
स्वनावं	अपनी नौकाको	दुरन्तात्	दुस्तर
आबध्य	बाँधकर	त्वाष्ट्र भयात्	वृत्रासुरके भयसे
यथा मनुः	जैसे मनु	नूनं त्राता	निश्चय बचावेंगे ॥२३॥
दुर्गं ततार	(प्रलय) सङ्कटको पारकर गये		

पुरा स्वयम्भूरपि संयमाम्भ-
स्युदीर्णवातोर्मिरवैः करालें ।
एकोऽरविन्दात् पतितस्ततार
तस्माद् भयाद् येन स नोऽस्तु पारः ॥२४॥

पुरा स्वयम्भूः अपि संयम अम्भसि उदीर्ण वात उर्मिरवैः करालेऽकः अरविन्दात् पतितः ततार तस्मात् भयात् येन स नः अस्तु पारः ॥२४॥

पुरा स्वयम्भूः	पहिले ब्रह्माजी	**पतितः**	गिरनेपर भी
अपि	भी	**येन**	जिसके सहारे
उदीर्ण वात	उठती आँधी तथा	**तस्मात् भयात्**	उस भयसे
करालेऽकः	भयानक	**ततार**	पार हो गये
उर्मिरवैः	लहरोंके शब्दवाले	**स नः**	वही (प्रभु) हम
संयम अम्भसि	प्रलय समुद्रमें		लोगोंके लिए
एकः	अकेले (अपने आसन)	**पारः अस्तु**	(इस विपत्ति समुद्रमें)
अरविन्दात्	कमलसे		किनारे बनें ॥२४॥

य एक ईशो निजमायया नः
ससर्ज येनानुसृजाम विश्वम् ।
वयं न यस्यापि पुरः समीहतः
पश्याम लिङ्गं पृथगीशमानिनः ॥२५॥

य एक ईशः निजमायया नः ससर्ज येन अनुसृजाम विश्वं वयं न यस्य अपि पुरः समीहतः पश्याम लिङ्गं पृथक् ईश मानिनः ॥२५॥

य एक ईशः	जिन अद्वितीय प्रभने	**पृथक्**	(उससे) पृथक
निजमायया	अपनी मायासे	**ईश मानिनः**	अपनेको समर्थ
नः ससर्ज	हम सबको उत्पन्न		माननेवाले
	किया,	**पुरः समीहतः**	सम्मुख सचेष्ट रहते
येन	जिनकी कृपासे (हम)		भी
विश्वं	संसारकी	**यस्य लिङ्गं**	जिसका चिह्न
अनुसृजाम	सृष्टि करते हैं	**न पश्याम**	नहीं देख पाते ॥२५॥
वयं	हम		

यो नः सपत्नैर्भृशमर्द्यमानान्
देवर्षितिर्यङ्नृषु नित्य एव ।
कृतावतारस्तनुभिः स्वमायया
कृत्वाऽऽत्मसात् पाति युगे युगे च ॥२६॥

यः नः सपत्नैः भृशं अर्द्यमानान् देवः ऋषि तिर्यङ् नृषु नित्य एव कृता अवतारः तनुभिः स्वमायया कृत्वा आत्मसात् पाति युगे युगे च ॥२६॥

सपत्नैः भृशं	शत्रुओं द्वारा बार-बार	देवः ऋषि	देवता, ऋषि,
अर्द्यमानान्	रौंदे जाते हुए	तिर्यङ्	पशु आदि,
नः	हम लोगोंको	च नृषु	तथा मनुष्यका
यः आत्मसात्	जो अपना समझकर	अवतारः	अवतार
कृत्वा	बनाकर	तनुभिः कृतः	शरीर धारण करके
स्वमायया	अपनी मायासे	युगे युगे पाति	युग युगमें रक्षा करता है ॥२६॥

तमेव देवं वयमात्मदैवतं
परं प्रधानं पुरुषं विश्वमन्यम् ।
व्रजाम सर्वे शरणं शरण्यं
स्वानां स नो धास्यति शं महात्मा॥२७॥

तं एव देवं वयं आत्म दैवतं परं प्रधानं पुरुषं विश्वं अन्यं व्रजाम सर्वे शरणं शरण्यं स्वानां स नः धास्यति शं महात्मा ॥२७॥

यं एव देवं	जो अकेले सबके आराध्य,	विश्वं	विश्वरूप एवं
आत्म दैवतं	हमारे भी इष्टदेव हैं	अन्यं परं	इनसे भिन्न परम-पुरुष हैं,
प्रधानं पुरुषं	प्रकृति और पुरुष तथा	शरण्यं	शरण लेने योग्य उनकी

वयं सर्वे	हम सब	**नः स्वानां**	हम निजजनोंका
शरणं व्रजाम	शरणागत हैं	**शं धास्यति**	कल्याण करेंगे॥२७॥
स महात्मा	वे उदार शिरोमणि		

श्रीशुक उवाच–

इति तेषां महाराज सुराणामुपतिष्ठताम् ।
प्रतीच्यां दिश्यभूदाविः शङ्खचक्रगदाधरः ॥२८॥

इति तेषां महाराज सुराणां उपतिष्ठतां प्रतीच्यां दिशि अभूत आविः शङ्ख चक्र गदाधरः ॥२८॥

महाराज	महाराज !	**शङ्ख चक्र**	शंख, चक्र,
इति	इस प्रकार	**गदाधरः**	गदाधारी (प्रभु)
तेषां सुराणां	उन देवताओंके	**प्रतीच्यां दिशि**	पश्चिम दिशामें
उपतिष्ठतां	स्तुति करनेपर	**आविः अभूत**	प्रकट हुए ॥२८॥

आत्मतुल्यैः षोडशभिर्विना श्रीवत्सकौस्तुभौ ।
पर्युपासितमुन्निद्रशरदम्बुरुहेक्षणम् ॥२९॥

आत्मतुल्यैः षोडशभिः विना श्रीवत्स कौस्तुभौ पर्युपासितं उन्निद्र शरत् अम्बुरुह ईक्षणम् ॥२९॥

विना श्रीवत्स कौस्तुभौ	श्रीवत्स और कौस्तुभमणिको छोड़कर	**पर्युपासितं**	चारों ओरसे उपासित
आत्मतुल्यै	अपने ही समान (रूपके)	**उन्निद्र शरत्**	खिले हुए, शरत्-कालीन
षोडशभिः	सोलह (पार्षदों) द्वारा	**अम्बुरुह ईक्षणं**	कमल-नेत्र (भगवान) को ॥२९॥

दृष्ट्वा तमवनौ सर्वे ईक्षणाह्लादविक्लवाः ।
दण्डवत् पतिता राजञ्छनैरुत्थाय तुष्टुवुः ॥३०॥

दृष्ट्वा तं अवनौ सर्व इक्षण आह्लाद विक्लवाः दण्डवत् पतिता राजन् शनैः उत्थाय तुष्टुवुः ॥३०॥

राजन्	राजन् !	**अवनौ दण्डवत्**	पृथ्वीपर दण्डकेसमान
तं दृष्ट्वा	उन (भगवान्)को देखकर	**पतिता**	गिरकर
		शनैः उत्थाय	फिर धीरेसे उठकर
इक्षण आह्लाद	(उनके) दर्शनानन्दसे	**तुष्टुवुः**	स्तुति करने लगे ॥३०॥
विक्लवाः	विह्वल होकर		

देवा ऊचुः –

नमस्ते यज्ञवीर्याय वयसे उत ते नमः ।
नमस्ते ह्यस्तचक्राय नमः सुपुरुहूतये ॥३१॥

नमः ते यज्ञवीर्याय वयसे उत ते नमः नमः ते ह्यस्त चक्राय नमः सुपुरुहूतये ॥३१॥

यज्ञवीर्याय	यज्ञशक्ति स्वरूप	**ह्यस्त चक्राय**	घूमत चक्र लिए
ते नमः	आपको नमस्कार,	**ते नमः**	आपको नमस्कार,
उत वयसे	तथा सर्व सञ्चालक	**सुपुरुहूतये नमः**	अनन्त नामाको नमस्कार ॥३१॥
ते नमः	आपको नमस्कार,		

यत् ते गतीनां तिसृणामीशितुः परमं पदम् ।
नार्वाचीनो विसर्गस्य धातर्वेदितुमर्हति ॥३२॥

यत् ते गतीनां तिसृणां ईशितुः परमं पदं न अर्वाचीनः विसर्गस्य धातः वेदितुं अर्हति ॥३२॥

तिसृणां गतीनां	(उत्तम, मध्यम, अधम) तीनों गतियोके	**परमं पदं**	परमपद है तथा
		धातः	विधाता (आपकी इस)
ईशितुः	नियामक	**विसर्गस्य**	सृष्टिको
यत् ते	जो आपका	**न वेदितुं अर्हति**	(कोई) जान सकने योग्य नहीं है ॥३२॥
अर्वाचीनः	अलौकिक		

ॐ नमस्तेऽस्तु भगवन् नारायण वासुदेवादिपुरुष महापुरुष महानुभाव परममङ्गल परमकल्याण परमकारुणिक केवल जगदाधार लोकैकनाथ सर्वेश्वर लक्ष्मीनाथ परमहंसपरिव्राजकैः परमेणात्मयोगसमाधिना परिभावितपरिस्फुटपारमहंस्य धर्मेणोद्घाटिततमः कपाटद्वारे चित्तेऽपावृत आत्मलोके स्वयमुपलब्धनिजसुखानुभवो भवान् ॥३३॥

ॐ नमः ते अस्तु भगवन् नारायण वासुदेव आदिपुरुष महापुरुष महानुभाव परममङ्गल परमकल्याण परमकारुणिक केवल जगदाधार लोक एकनाथ सर्वेश्वर लक्ष्मीनाथ परमहंस परिव्राजकैः परमेण आत्मयोग समाधिना परिभावित परिस्फुट पारमहंस्य धर्मेण उद्घाटित तमः कपाट-द्वारे चित्ते अपावृत आत्मलोके स्वयं उपलब्ध निज सुख अनुभवः भवान् ॥३३॥

ॐ भगवन्	ओंकार स्वरूप भगवान्
नारायण	नारायण,
वासुदेव	वासुदेव,
आदिपुरुष	आदिपुरुष,
महापुरुष	पुरुषोत्तम,
महानुभाव	महाप्रभावशाली,
परममङ्गल	परम मंगलमय,
परमकल्याण	परम कल्याण रूप,
केवल	अद्वितीय,
जगदाधार	जगतके आधार,
लोक एकनाथ	लोकके एकमात्र स्वामी,
सर्वेश्वर	सर्वेश्वर,
लक्ष्मीनाथ	रमापति,
परमहंस	.परमहंस
परिव्राजकैः	परिव्राजकलोग
परमेण	परम
आत्मयोग	आत्मयोगकी
समाधिना	एकाग्रता द्वारा
परिभावित	भली प्रकार चिन्तन करनेसे
परिस्फुट	पूर्ण स्पष्ट
पारमहंस्य	परमहंसोंके
धर्मेण	धर्म द्वारा
तमः कपाट-	अज्ञान रूपी
द्वारे	किवाड़ोंके
उद्घाटित	खुल जानेपर
अपावृत चित्ते	निरावरण चित्तमें
आत्मलोके	स्वयं प्रकाश

स्वयं उपलब्ध	नित्य प्राप्त	भवान्	आप हैं, (ऐसे)
निजसुख	आत्मानन्द	ते नमः अस्तु	आपको नमस्कार
अनुभवः	अनुभव स्वरूप		है ॥३३॥

दुरवबोध इव तवायं विहारयोगो यदशरणोऽशरीर इदमनवेक्षितास्मत्समवाय आत्मनैवाविक्रियमाणेन सगुणमगुणः सृजसि पासि हरसि ॥३४॥

दुरवबोध इव तव अयं विहार योगः यत् अशरणः अशरीरः इदं अनवेक्षित अस्मात् समवाय आत्मना एव अविक्रियमाणेन सगुणं अगुणः सृजसि पासि हरसि ॥३४॥

तव अयं	आपका यह	आत्मना एव	अपने द्वारा ही
विहार योगः	लीला-विहार	अविक्रियमाणेन	निर्विकार रहते
दुरवबोध इव	दुर्बोध जैसा है	अगुणः	(आप) निर्गुण
यत् अशरणः	क्योंकि किसीकी सहायताके बिना	इदं सगुणं:	इस सगुण (जगत-की)
अशरीरः	निराकार रहकर	सृजसि पासि	सृष्टि, पालन
अस्मत् समवाय	हम (देवता) लोगों-की सहायताकी	हरसि	संहार करते हैं ॥३४॥
अनवेक्षित	अपेक्षा न करके		

अथ तत्र भवान् किं देवदत्तवदिह गुणविसर्गपतितः पारतन्त्र्येण स्वकृतकुशलाकुशलं फलमुपाददात्याहोस्विदात्माराम उपशमशीलः समञ्जसदर्शन उदास्त इति ह वाव न विदामः ॥३५॥

अथ तत्र भवान् किं देवदत्त वत् इह गुण विसर्ग पतितः पारतन्त्र्येण स्वकृत कुशल अकुशलं फलं उपाददात्य आहोस्वित् आत्माराम उपशमशीलः समञ्जसदर्शन उदास्त इति ह वाव न विदामः ॥३५॥

अथ तत्र	अतः इस (कर्म) में	आहोस्वित्	अथवा
किं भवान्	क्या आप	आत्माराम	आत्माराम
देवदत्त वत्	देवदत्त (सामान्य पुरुष)के समान	उपशमशीलः	विरक्त
		समञ्जसदर्शन	सबसे उदासीन
गुण विसर्ग	इस गुणोंके कार्य	उदास्त इति	साक्षी मात्र हैं, इस प्रकार
इह पतितः	इस संसारमें पड़े हुए		
पारतन्त्र्येण	परतन्त्र होकर	ह वाह	निश्चित रूपसे
स्वकृत	अपने किये	न विदामः	(हम) नहीं जानते ॥३५॥
कुशल अकुशलं	अच्छे-बुरे (कर्मों)का		
फलं उपाददात्य	फल भोगते हैं,		

न हि विरोध उभय भगवत्यपरिगणितगुणगणे ईश्वरेऽनवगाह्यमाहात्म्येऽर्वाचीनविकल्पवितर्कविचारप्रमाणाभासकुतर्कशास्त्रकलिलान्तः करणाश्रयदुरवग्रहवादिनां विवादानवसर उपरतसमस्तमायामये केवल एवात्ममायामन्तर्धाय को न्वर्थो दुर्घट इव भवति स्वरूपद्वयाभावात् ॥३६॥

न हि विरोध उभय भगवति अपरिगणित गुणगणे ईश्वरे अनवगाह माहात्म्ये अर्वाचीन विकल्प वितर्क विचार प्रमाण आभास कुतर्क शास्त्र कलिल अन्तःकरण आश्रय दुरवग्रह वादिनां विवाद अनवसर उपरत समस्त मायामये केवल एव आत्ममायां अन्तर्धाय कः नु अर्थः दुर्घट इव भवति स्वरूप द्वय अभावात् ॥३६॥

भगवति	आप भगवानमें	ईश्वरे	ईश्वरमें
हि उभय	क्योंकि दोनोंमें	अर्वाचीन	आधुनिक
विरोध न	विरोध नहीं है।	वितर्क विचार	वितर्क, विचार,
अपरिगणित	असंख्य	प्रमाण आभास	झूठे प्रमाणोंसे
गुणगणे	गुणगण वाले	कुतर्क शास्त्र	कुतर्कपूर्ण शास्त्र पढ़नेसे
अनवगाह	अथाह		
माहात्म्ये	महिमाशाली	कलिल	मलावृत

अन्तःकरण	अन्तःकरणमें
आश्रय दुरवग्रह	बसे दुराग्रहपूर्ण
वादिनां विवाद	तर्क करने वालोंके विवादका
अनवसर	यहां अवसर ही नहीं है,
समस्त	समस्त
मायामये	मायामय (संसार)से
उपरत	उदासीन
केवल एव	अद्वितीय
आत्ममायां	अपनी मायाको
अन्तर्धाय	छिपा लेनेपर
स्वरूप द्वय	दोनों स्वरूप (कर्तृत्व भोक्तृत्व और उदासीनता) का
अभावात्	अभाव हो जाने से
कः नु अर्थः	भला कौन-सी बात (आपमें)
दुर्घट इव भवति	न होने जैसी हो सकती है ॥३६॥

समविषममतीनां मतमनुसरसि यथा रज्जुखण्डः सर्पादिधियाम् ॥३७॥

सम विषम मतीनां मतं अनुसरसि यथा रज्जुखण्डः सर्प आदि धियां ॥३७॥

सम विषम	समान और विषम
मतीनां	बुद्धिवालोंके
मतं अनुसरसि	मतके अनुसार ही आप प्रतीत होते हैं,
यथा रज्जुखण्डः	जैसे रस्सीका टुकड़ा
सर्प आदि	सर्प (माला, लकड़ी) आदि
धियां	समझने वालों-को ॥३७॥

स एव हि पुनः सर्ववस्तुनि वस्तुस्वरूपः सर्वेश्वरः सकलजगत्कारणकारणभूतः सर्वप्रत्यगात्मत्वात् सर्वगुणाभासोपलक्षित एक एव पर्यवशेषितः ॥३८॥

स एव हि पुनः सर्ववस्तुनि वस्तुस्वरूपः सर्वेश्वरः सकल जगत् कारण कारणभूतः सर्वप्रत्यक् आत्मत्वात् सर्वगुण आभास उपलक्षित एक एव परि अवशेषितः ॥३८॥

हि स एव	क्योंकि वही आप	सर्वप्रत्यक्	सबके
सर्ववस्तुनि	सब वस्तुओंमें	आत्मत्वात्	अन्तरात्मा होनेसे
वस्तुस्वरूपः	उस वस्तुके रूपमें हैं,	सर्वगुण	सब गुणोंके
सर्वेश्वरः	सबके स्वामी हैं,	आभास	आभाससे
सकल जगत्	सम्पूर्ण जगतके	उपलक्षित	संकेतित हैं
कारण	कारण (प्रकृति, ब्रह्मादि) के	एक एव	अकेले ही
		परि अवशेषितः	अन्तमें बच रहते हैं ॥३८॥
कारणभूतः	कारण स्वरूप हैं,		

अथ ह वाव तव महिमामृतरससमुद्रविप्रुषा सकृदवलीढया स्वमनसि निष्यन्दमानानवरतसुखेन विस्मारितदृष्टश्रुतविषय-सुखलेशाभासाः परमभागवता एकान्तिनो भगवति सर्वभूतप्रिय-सुहृदि सर्वात्मनि नितरां निरन्तरं निर्वृतमनसः कथमु ह वा एते मधुमथन पुनः स्वार्थकुशला ह्यात्मप्रियसुहृदः साधव-स्त्वच्चरणाम्बुजानुसेवां विसृजन्ति न यत्र पुनरयं संसारपर्या-वतः ॥३९॥

अथ ह वाव तव महिमा अमृतरस समुद्र विप्रुषा सकृत् अवलीढया स्वमनसि निष्यन्दमान अनवरत सुखेन विस्मारित दृष्टश्रुत विषयसुखलेश आभासाः परम भागवता एकान्तिनः भगवति सर्वभूत प्रिय सुहृदि सर्वात्मनि नितरां निरन्तरं निर्वृत मनसः कथं उ ह वा एते मधुमथन पुनः स्वार्थ कुशला हि आत्मप्रिय सुहृदः साधवः त्वत् चरणाम्बुज अनुसेवां विसृजन्ति न यत्र पुनः अयं संसार पर्यावर्तः ॥३९॥

अथ ह वाव	अहो निश्चय ही	अवलीढया	चाटनेसे
तव महिमा	आपके माहात्म्यके	स्वमनसि	अपने हृदयसे
अमृतरस	अमृतरस	अनवरत	अविराम
समुद्र विप्रुषा	सागरके सीकरको	निष्यन्दमान	झरते
सकृत्	केवल एक बार	सुखेन	सुखके द्वारा

दृष्टश्रुत	देखे (लौकिक) सुने (पारलौकिक)
विषयसुखलेश	विषयोंका लेशमात्र सुख
आभासाः	जो प्रतीतिमात्र हैं,
विस्मारित	विस्मृत कर दिया गया है,
एकान्तिनः	वे अनन्य
परम भागवता	परम भगवत् भक्त,
सर्वभूत	सब प्राणियोंके
प्रिय सुहृदि	प्रिय हितैषी,
सर्वात्मनि	सर्वात्मामें
नितरां निरन्तरां	प्रगाढ़ निरन्तर
निर्वृत मनसः	मन लगाये रहने-वाले
कथं उ ह वा	भला कैसे तो
मधुमथन	मधुसूदन !
एते साधवः	ये सत्पुरुष
पुनः स्वार्थ	फिर अपने स्वार्थमें
कुशला	परम प्रवीण
हि	होकर
आत्मप्रिय	अपने प्रिय
सुहृदः	सुहृद
त्वत् चरणाम्बुज	आपके चरण-कमलोंकी
अनुसेवां	सेवा
विसृजन्ति	छोड़ देंगे,
यत्र पुनः	जहाँ फिर
अयं संसार	इस संसार में
पर्यावर्तः	चक्कर काटना
न	नहीं होता ॥३९॥

त्रिभुवनात्मभवन त्रिविक्रम त्रिनयन त्रिलोकमनोहरानुभाव तवैव विभूतयो दितिजदनुजादयश्चापि तेषामनुपक्रमसमयोऽयमिति स्वात्ममायया सुरनरमृगमिश्रितजलचराकृतिभिर्यथापराधं दण्डं दण्डधर दधर्थ एवमेनमपि भगवञ्जहि त्वाष्ट्रमुत यदि मन्यसे ॥४०॥

त्रिभुवन आत्मभवन त्रिविक्रम त्रिनयन त्रिलोक मनोहर अनुभाव तव एव विभूतयः दितिज दनुजः आद्य च अपि तेषां अनुपक्रम समयः अयं इति स्वात्ममायया सुर नर मृग मिश्रित जलचर आकृतिभिः यथा अपराधं दण्डं दण्डधर दधर्थ एवं एनं अपि भगवन् जहि त्वाष्ट्रं उत यदि मन्यसे ॥४०॥

त्रिभुवन	त्रिलोकीको
आत्मभवन	अपने भीतर रखने-वाले,
त्रिविक्रम	त्रिविक्रम (आप)
त्रिनयन	त्रिनेत्र (शिवस्वरूप)
त्रिलोक मनोहर	त्रिभुवन सुन्दर

अनुभाव	प्रभाव वाले हैं।
दितिज दनुज च	दैत्य और दानव
आढ्य अपि	इत्यादि भी
तव एव	आपकी ही
विभूतयः	विभूतियाँ हैं,
तेषां अनुपक्रम	उनके अवनतिका
अयं समयः	यह समय है
इति	इसलिए
स्वात्ममायया	अपनी मायासे
सुर नर मृग	देवता, मनुष्य, पशु,
मिश्रित जलचर	मिश्रित, जलचर
आकृतिभिः	आकृतियोंके द्वारा
यथा अपराधं	अपराधके अनुसार
दण्डधर दण्डं	आप दण्डधारी दंड
दधर्थ	देते रहे हैं
एवं यदि	इसी प्रकार यदि
उतमन्यसे	जँचे तो
एनं त्वाष्ट्रं	इस वृत्रासुरको
अपि	भी
जहि	मार दीजिए ॥४०॥

अस्माकं तावकानां तव नतानां तत ततामह तव चरणनलिनयुगलध्यानानुबद्धहृदयनिगडानां स्वलिङ्गविवरणेनात्मसात्कृतानामनुकम्पानुरञ्जितविशदरुचिरशिशिरस्मितावलोकेन विगलितमधुरमुखरसामृतकलया चान्तस्तापमनघार्हसि शमयितुम् ॥४१॥

अस्माकं तावकानां तव नतानां तत ततामह तव चरणनलिन युगल ध्यान अनुबद्ध हृदय निगडानां स्वलिङ्ग विवरणेन आत्मसात् कृतानां अनुकम्पा अनुरञ्जित विशद रुचिर शिशिर स्मित अवलोकेन विगलित मधुर मुखरस अमृत कलया च अन्तः तापं अनघ अर्हसि शमयितुम् ॥४१॥

तव नतानां	आपके सम्मुख प्रणत
तावकानां	आपके निजजन
तत ततामह	आप (हमारे) पिता, पितामह हैं,
अस्माकं	हम लोगोंका
तव युगल	आपके दोनों
चरण नलिन	चरण-कमलोंके
ध्यान निगडानां	ध्यानरूपी बेड़ीसे
अनुबद्ध हृदय	अनुबद्ध हृदय वालोंको
स्वलिङ्ग	अपने स्वरूपका
विवरणेन	दर्शन देकर
आत्मसात्	(आपने) अपना
कृतानां	लिया है,
अनुकम्पा	(अब) कृपा से
अनुरञ्जित	रंगी हुई
विशद रुचिर	विशद, सुन्दर,
शिशिर स्मित	शीतल मुस्कानयुक्त
अवलोकेन	चितवनसे तथा
विगलित मधुर	झरते मधुर

मुखरस अमृत कलया	मुख-रसामृतकी कला (वाणी) से	**शमयितुं**	(आपको) शान्त कर देना
अनघ	निष्पाप प्रभु	**अर्हसि**	चाहिए ॥४१॥
अन्तः तापं च	(हमारे) हृदयके तापको भी		

अथ भगवंस्तवास्माभिरखिलजगदुत्पत्तिस्थितिलयनिमित्तायमानदिव्यमायाविनोदस्य सकलजीवनिकायानामन्तर्हृदयेषु बहिरपि च ब्रह्मप्रत्यगात्मस्वरूपेण प्रधानरूपेण च यथादेशकालदेहावस्थानविशेषं तदुपादानोपलम्भकतयानुभवतः सर्वप्रत्ययसाक्षिण आकाशशरीरस्य साक्षात्परब्रह्मणः परमात्मनः कियानिह वा अर्थविशेषो विज्ञापनीयः स्याद् विस्फुलिङ्गादिभिरिव हिरण्यरेतसः ॥४२॥

अथ भगवन् तव अस्माभिः अखिल जगत् उत्पत्ति स्थिति लय निमित्तायमान दिव्य माया विनोदस्य सकल जीव निकायानां अन्तः हृदयेषु बहिः अपि च ब्रह्म प्रत्यगात्म स्वरूपेण प्रधान रूपेण च यथा देशकाल देह अवस्थान विशेषं तत् उपादान उपलम्भकतया अनुभवतः सर्वप्रत्यय साक्षिणः आकाश शरीरस्य साक्षात् परब्रह्मणः परमात्मनः कियान् इह वा अर्थ विशेषः विज्ञापनीयः स्यात् विस्फुलिङ्ग आदिभिः इव हिरण्यरेतसः ॥४२॥

विस्फुलिंग आदिभिः	चिनगारियों आदि द्वारा	**विज्ञापनीयः**	सूचित करने योग्य
हिरण्यरेतसः	अग्निकी	**स्यात्**	हो सकता है क्योंकि
इव	भांति	**अखिल जगत्**	सम्पूर्ण जगतकी
अस्माभिः	हम लोगों द्वारा	**उत्पत्ति स्थिति**	उत्पत्ति, स्थिति,
भगवन् तव	भगवान् आपको	**लय**	प्रलयकी
इह कियान्	इस जगतमें कितना	**निमित्तायमान**	निमित्त बनने वाली
अर्थ विशेषः	प्रयोजन विशेष	**माया दिव्य**	मायासे दिव्य
		विनोदस्य	विनोद करनेवाले,

सकल जीव	सम्पूर्ण जीव
निकायानां	समूहोंके
अन्तः हृदयेषु	हृदयके भीतर
ब्रह्म प्रत्यगात्म	ब्रह्म और अन्तर्यामी
स्वरूपेणं	स्व रूप से
च बहिः अपि	और बाहर भी
प्रधान रूपेण च	प्रकृतिके रूपमें भी
देशकाल	देश, काल
देह अवस्थान	शरीर अवस्थाके
यथा	अनुसार
विशेषं	(उनके) विशेष रूपमें,
तत् उपादान	उनके उपादान एवं
उपलम्भकतया	प्रकाशकके रूपमें
अनुभवतः	(अपनेको) अनुभव करते हुए
सर्वप्रत्यय	समस्त वृत्तियोंके
साक्षिणः	साक्षी
आकाश	आकाश
शरीरस्य	शरीरी
साक्षात्	साक्षात्
परब्रह्म	परमब्रह्म
परमात्मनः	परमात्मा आप हैं ॥४२॥

अत एव स्वयं तदुपकल्पयास्माकं भगवतः परमगुरोस्तव चरणशतपलाशच्छायां विविधवृजिनसंसारपरिश्रमोपशमनीमुपसृतानां वयं यत्कामेनोपसादिताः ॥४३॥

अत एव स्वयं तत् उपकल्पय अस्माकं भगवतः परमगुरोः तव चरण शतपलाशच्छायां विविध वृजिन संसार परिश्रम उपशमनीं उपसृतानां वयं यत् कामेन उपसादिताः ॥४३॥

अत एव	अतएव
विविध वृजिन	नाना कष्टोंसे पूर्ण
संसार परिश्रम	संसार रूप परिश्रमको
उपशमनीं	शान्त कर देने वाली
भगवतः	भगवान्
परमगुरोः	परमगुरु
तव चरण	आपके चरणरूपी
शतपलाशच्छायां	शतदलकी छायामें
उपसृतानां	शरण लेनेवाले
वयं यत् कामेन	हम लोग जिस कामनासे
उपसादिताः	आये हैं
तत् स्वयं	वह स्वयं
अस्माकं	हमारा (प्रयोजन)
उपकल्पय	पूरा कीजिए ॥४३॥

अथो ईश जहि त्वाष्ट्रं ग्रसन्तं भुवनत्रयम् ।
ग्रस्तानि येन नः कृष्ण तेजांस्यस्त्रायुधानि च ॥४४॥

अथः ईश जहि त्वाष्ट्रं ग्रसन्तं भुवनत्रयं ग्रस्तानि येन नः कृष्ण तेजांसि अस्त्र आयुधानि च ॥४४॥

ईश कृष्ण	सर्व समर्थ श्रीकृष्ण !	**ग्रस्तानि**	निगल लिया है,
येन नः	जिसने हमारे	**अथः भुवनत्रयं**	अब तीनों लोकोंको
तेजांसि	तेजको	**ग्रसन्तं**	निगलनेको उद्यत
च अस्त्र	तथा अस्त्र-	**त्वाष्ट्रं जहि**	वृत्रासुरको मार
आयुधानि	शस्त्रोंको		दीजिए ॥४४॥

हंसाय दह्रनिलयाय निरीक्षकाय
कृष्णाय मृष्टयशसे निरुपक्रमाय ।
सत्संग्रहाय भवपान्थनिजाश्रमाप्ता-
वन्ते परीष्टगतये हरये नमस्ते ॥४५॥

हंसाय दह्रनिलयाय निरीक्षकाय कृष्णाय मृष्टयशसे निरुपक्रमाय सत् संग्रहाय भवपान्थ निजाश्रम आप्ताः अन्ते पर ईष्ट गतये हरये नमः ते ॥४५॥

हंसाय	शुद्ध स्वरूप,	**भवपान्थ**	संसारके पथिक
दह्रनिलयाय	हृदय गुहामें रहनेवाले,	**निजाश्रम**	अपने परिश्रमसे
		अन्ते	अन्तमें
निरीक्षकाय	साक्षी,	**गतये पर ईष्ट**	चलते-चलते थक जाते हैं,
कृष्णाय	श्रीकृष्ण,		
मृष्टयशसे	उज्ज्वल यशवाले,	**आप्ताः**	तब प्राप्त होनेवाले
निरुपक्रमाय	सब उपक्रमोंसे रहित,	**हरये**	श्रीहरि
सत् संग्रहाय	संत लोगों द्वारा संग्रहणीय,	**ते**	आपको
		नमः	नमस्कार ॥४५॥

श्रीशुक उवाच–

अथैवमीडितो राजन् सादरं त्रिदशैर्हरिः ।
स्वमुपस्थानमाकर्ण्य प्राह तानभिनन्दितः ॥४६॥

अथ एवं ईडितः राजन् सादरं त्रिदशैः हरिः स्वं उपस्थानं आकर्ण्य प्राह तान् अभिनन्दितः ॥४६॥

राजन्	राजन्	**अभिनन्दितः**	(देवताओंसे) सम्मानित होकर
अथ एवं	तब इस प्रकार		
त्रिदशैः सादरं	देवताओं द्वारा आदर सहित	**स्वं उपस्थानं**	अपना स्तवन
		आकर्ण्य	सुनकर
ईडितः	स्तुति करनेपर	**तान् प्राह**	उनसे बोले ॥४६॥
हरिः	श्रीहरि		

श्रीभगवानुवाच–

प्रीतोऽहं वः सुरश्रेष्ठा मदुपस्थानविद्यया ।
आत्मैश्वर्यस्मृतिः पुंसां भक्तिश्चैव यया मयि ॥४७॥

प्रीतः अहं सुरश्रेष्ठा मत् उपस्थान विद्यया आत्म ऐश्वर्य स्मृतिः पुंसां भक्तिः च एव यया मयि ॥४७॥

सुरश्रेष्ठा	देवश्रेष्ठो !	**भक्तिः एव**	भक्ति भी होगी
यया	जिसके द्वारा	**मत् उपस्थान**	मेरी स्तुति रूप
पुंसां	पुरुषोंको	**विद्यया**	इस विद्यासे
आत्म ऐश्वर्य	आत्माके ऐश्वर्यका	**अहं प्रीतः**	मैं प्रसन्न हुआ ॥४७॥
स्मृतिः	स्मरण		
च मयि	और मुझमें		

किं दुरापं मयि प्रीते तथापि विबुधर्षभाः ।
मय्येकान्तमतिर्नान्यन्मत्तो वाञ्छति तत्त्ववित् ॥४८॥

किं दुरापं मयि प्रीते तथा अपि विबुधऋषभाः मयि एकान्त मतिः न अन्यत् मत्तः वाञ्छति तत्त्ववित् ॥४८॥

विबुधऋषभाः	देवनायको,	**तत्त्ववित्**	तत्वज्ञानी
मयि प्रीते	मेरे प्रसन्न होनेपर	**एकान्त मतिः**	अनन्य बुद्धि भक्त
किं दुरापं	क्या दुष्प्राप्य रहता है;	**मत्तः अन्यत्**	मुझसे और कुछ
		न वाञ्छति	नहीं चाहता ॥४८॥
तथा अपि	फिर भी		

न वेद कृपणः श्रेय आत्मनो गुणवस्तुदृक् ।
तस्य तानिच्छतो यच्छेद् यदि सोऽपि तथाविधः ॥४९॥

न वेद कृपणः श्रेयः आत्मनः गुण वस्तु दृक् तस्य तान् इच्छतः यच्छेत् यदि सः अपि तथा विधः ॥४९॥

गुण वस्तु दृक्	गुणमय (संसारको) सत्य देखने वाला	**इच्छतः**	इच्छा करनेपर
		यदि सः अपि	यदि वह (देनेवाला) भी
कृपणः	अज्ञानी		
आत्मनः श्रेयः	अपना कल्याण	**तथा विधः**	उसीके जैसा (अज्ञानी) है
न वेद	नहीं जानता		
तस्य तान्	उसके द्वारा उन्हीं (असत् विषयों) का	**यच्छेत्**	तभी (वह वस्तु) देगा ॥४९॥

स्वयं निःश्रेयसं विद्वान् न वक्त्यज्ञाय कर्म हि ।
न राति रोगिणोऽपथ्यं वाञ्छतो हि भिषक्तमः ॥५०॥

स्वयं निः श्रेयसं विद्वान् न वक्ति अज्ञाय कर्म हि न राति रोगिणः अपथ्यं वाञ्छतः हि भिषक्तमः ॥५०॥

हि	क्योंकि	**अज्ञाय**	अज्ञानीको
स्वयं निः श्रेयसं	स्वयं परमकल्याण-को	**कर्म न वक्ति**	कर्म-मार्ग नहीं बतलाता
विद्वान्	जाननेवाला	**हि**	जैसे

भिषक्तमः	श्रेष्ठ वैद्य	अपथ्यं	कुपथ्य
रोगिणः	रोगीका	न राति	(उसे) नहीं देता
वाञ्छतः	अभीष्ट		॥५०॥

मघवन् यात भद्रं वो दध्यञ्चमृषिसत्तमम् ।
विद्याव्रततपःसारं गात्रं याचत मा चिरम् ॥५१॥

मघवन् यात भद्रं वः दध्यञ्चं ऋषिसत्तमं विद्या व्रत तपः सारं गात्रं याचत मा चिरम् ॥५१॥

वः भद्रं	तुम लोगोंका कल्याण हो ।	दध्यञ्चं	दधीचिसे (उनकी)
		विद्या व्रत तपः	विद्या, व्रत, तपस्या- का
मघवन्	इन्द्र !		
मा चिरं	देर मत करो	सारं गात्रं	सारभूत शरीर
यात	जाओ,	याचत	मांगो ॥५१॥
ऋषिसत्तमं	परमश्रेष्ठ ऋषि		

स वा अधिगतो दध्यङ्ङश्विभ्यां ब्रह्म निष्कलम् ।
यद् वा अश्वशिरो नाम तयोरमरतां व्यधात् ॥५२॥

स वा अधिगतः दध्यङ् अश्विभ्यां ब्रह्म निष्कलं यद् वा अश्व शिरः नाम तयोः अमरतां व्यधात् ॥५२॥

स वा	उन्होंने निश्चय	यद् वा	जिससे कि
निष्कलं	कला रहित शुद्ध	अश्व सिरः नाम	उनका नाम अश्व- सिरा हो गया
ब्रह्म	ब्रह्मज्ञान		
अधिगतः	पाया है ।	तयोः	(उस विद्याके प्रभाव- से) वे दोनों (अश्विनी कुमार)
दध्यङ्	उन दधीचिने,		
अश्विभ्यां	घोड़ेके सिरसे (अश्विनी कुमारों- को) उपदेश दिया	अमरतां व्यधात्	देवता हो गये ॥५१॥

दध्यङ्ङाथर्वणस्त्वष्ट्रे वर्माभेद्यं मदात्मकम् ।
विश्वरूपाय यत् प्रादात् त्वष्टा यत् त्वमधास्ततः ॥५३॥

दध्यङ् आथर्वणः त्वष्ट्रे वर्म अभेद्यं मदात्मकं विश्वरूपाय यत् प्रादात् त्वष्टा यत् त्वं अधाः ततः ॥५३॥

आथर्वणः	अथर्ववेदी	यत् विश्वरूपाय	जिसे (उन्होंने) विश्वरूपको
दध्यङ्	दधीचि ने ही	प्रादात्	दिया,
मदात्मकं	मेरा स्वरूप भूत	ततः यत् त्वं	फिर जिनसे तुमने
अभेद्यं वर्म	अभेद्य (नारायण) कवच	अधाः	धारण किया ॥५३॥
त्वष्ट्रे	त्वष्ट्राको (दिया था)		

युष्मभ्यं याचितोऽश्विभ्यां धर्मज्ञोऽङ्गानि दास्यति ।
ततस्तैरायुधश्रेष्ठो विश्वकर्मविनिर्मितः ।
येन वृत्रशिरो हर्ता मत्तेजउपबृंहितः ॥५४॥

युष्मभ्यं याचितः अश्विभ्यां धर्मज्ञः अङ्गानि दास्यति ततः तैः आयुध श्रेष्ठः विश्वकर्म विनिर्मितः येन वृत्र शिरः हर्ता यत् तेज उपबृंहितः ॥५४॥

युष्मभ्यं	तुम लोगों द्वारा (विशेषतः)	विश्वकर्म विनिर्मितः	विश्वकर्मा द्वारा बनाये
अश्विभ्यां	अश्विनी कुमारों द्वारा	आयुध श्रेष्ठः	श्रेष्ठ आयुध (वज्र) होगा,
याचितः	मांगनेपर	येन	जिसके द्वारा
धर्मज्ञः	वे धर्मज्ञ	यत् तेज	मेरे तेजसे
अङ्गानि	अपना शरीर	उपबृंहितः	अभिवृद्ध होकर
दास्यति	दे देंगे,	वृत्र शिरः हर्ता	वृत्रके सिरको काटने वाले बनोगे ॥५४॥
ततः तैः	तब उससे		

तस्मिन् विनिहते यूयं तेजोऽस्त्रायुधसम्पदः ।
भूयः प्राप्स्यथ भद्रं वो न हिंसन्ति च मत्परान् ॥५५॥

तस्मिन् विनिहते यूयं तेजः अस्त्र आयुध सम्पदः भूयः प्राप्स्यथ भद्रं वः न हिंसन्ति च मत् परान् ॥५५॥

तस्मिन्	उसके	**च**	क्योंकि
विनिहते	मारे जानेपर	**मत् परान्**	मेरे परायण (जनोंको)
यूयं तेजः	तुम लोग तेज,	**हिंसन्ति न**	कोई सता नहीं सकता ॥५५॥
अस्त्र आयुध	अस्त्र-शस्त्र,		
सम्पदः भूयः	सम्पत्ति फिर		
प्राप्स्यथ	प्राप्त कर लोगे,		
वः भद्रं	तुम लोगोंका कल्याण हो		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥९॥

अथ दशमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच—

इन्द्रमेवं समादिश्य भगवान् विश्वभावनः ।
पश्यतामनिमेषाणां तत्रैवान्तर्दधे हरिः ॥ १ ॥

इन्द्रं एवं समादिश्य भगवान् विश्वभावनः पश्यतां अनिमेषाणां तत्र एव अन्तर्दधे हरिः ॥१॥

एवं इन्द्रं	इस प्रकार इन्द्रको	**तत्र एव**	वहीं
समादिश्य	आदेश देकर	**अन्तर्दधे**	अन्तर्धान हो गये ॥१॥
विश्वभावनः	विश्व-रक्षक		
भगवान् हरिः	भगवान् श्रीहरि		
अनिमेषाणां	देवताओंके		
पश्यतां	देखते-देखते		

तथाभियाचितो देवैर्ऋषिराथर्वणो महान् ।
मोदमान उवाचेदं प्रहसन्निव भारत ॥ २ ॥

तथा अभियाचितः देवैः ऋषिः आथर्वणः महान् मोदमान उवाच इदं प्रहसन् इव भारत ॥२॥

भारत	परीक्षित !	**मोदमान**	प्रसन्न होकर
तथा	उसी प्रकार	**प्रहसन् इव**	हँसते हुए-से
देवैः	देवताओं द्वारा	**इदं उवाच**	यह बोले ॥२॥
अभियाचितः	माँगे जानेपर		
महान् आथर्वणः	महान् अथर्ववेदी		
ऋषिः	ऋषि (दधीचि)		

दक्षयज्ञे उवाच-*

अपि वृन्दारका यूयं न जानीथ शरीरिणाम् ।
संस्थायां यस्त्वभिद्रोहो दुःसहश्चेतनापहः ॥ ३ ॥

अपि वृन्दारका यूयं न जानीथ शरीरिणां संस्थायां यः तु अभिद्रोहः दुःसहः चेतनापहः ॥३॥

वृन्दारका अपि	देवता होनेपर भी	**संस्थायां**	मरते समय
यूयं न जानीथ	तुम लोग नहीं जानते कि	**चेतनापहः**	चेतना नष्ट कर देनेवाला
शरीरिणां	देहधारीको	**दुःसहः**	असह्य
यः तु	जो तो	**अभिद्रोहः**	कष्ट होता है ॥३॥

जिजीविषूणां जीवानामात्मा प्रेष्ठ इहेप्सितः ।
क उत्सहेत तं दातुं भिक्षमाणाय विष्णवे ॥ ४ ॥

जिजीविषूणां जीवानां आत्मा प्रेष्ठः इह ईप्सितः कः उत्सहेत तं दातुं भिक्षमाणाय विष्णवे ॥४॥

जिजीविषूणां	जीवनकी इच्छा रखने वाले	**विष्णवे**	साक्षात् भगवान विष्णुके
जीवानां	प्राणियोंको	**भिक्षमाणाय**	मांगनेपर भी
इह आत्मा	इस संसारमें शरीर	**तं दातुं**	उसे देनेका
ईप्सितः प्रेष्ठः	अभीष्ट और परम-प्रिय है,	**कः उत्सहेत**	कौन उत्साह करेगा ॥४॥

देवा ऊचुः -

किं नु तद् दुस्त्यजं ब्रह्मन् पुंसां भूतानुकम्पिनाम् ।
भवद्विधानां महतां पुण्यश्लोकेड्यकर्मणाम् ॥ ५ ॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

किं नु तत् दुस्त्यजं ब्रह्मन् पुंसां भूत अनुकम्पिनां भवत् विधानां महतां पुण्यश्लोक ईडच कर्मणाम् ॥५॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**पुण्यश्लोक**	पवित्र-कीर्ति
भवत् विधानां	आप जैसे	**महतां**	महापुरुषोंके लिए
भूत	प्राणियोंपर	**किं नु तत्**	भला क्या ऐसा है जो
अनुकम्पिनां	कृपा करनेवाले	**दुस्त्यजं**	त्याग देना (उन्हें)
ईडच कर्मणां	प्रशंसनीय कर्मा		कठिन हो ॥५॥

ननु स्वार्थपरो लोको न वेद परसंकटम् ।
यदि वेद न याचेत नेति नाह यदीश्वरः ॥६॥

ननु स्वार्थपरः लोकः न वेद परसङ्कटं यदि वेद न याचेत न इति न आह यत् ईश्वरः ॥६॥

ननु	निश्चय	**यदि वेद**	यदि जानते होते तो
स्वार्थपरः	स्वार्थ परायण	**याचेत न**	मांगते ही नहीं
लोकः	लोग	**यत् ईश्वरः**	क्योंकि समर्थ पुरुष
परसंकटं	दूसरेका कष्ट	**न इति**	नहीं (देंगे) ऐसा
न वेद	नहीं समझते	**न आह**	नहीं कहते ॥६॥

*दधयङ् उवाच-**

धर्मं वः श्रोतुकामेन यूयं मे प्रत्युदाहृताः ।
एष वः प्रियमात्मानं त्यजन्तं संत्यजाम्यहम् ॥७॥

धर्मं वः श्रोतुकामेन यूयं मे प्रति उदाहृताः एष वः प्रियं आत्मानं त्यजन्तं संत्यजामि अहम् ॥७॥

वः धर्मं	आप लोगोंसे धर्म	**प्रति उदाहृताः**	प्रत्युत्तर दिया था
श्रोतुकामेन	सुननेकी इच्छासे	**त्यजन्तं**	(एक दिन स्वयं)
मे यूयं	मैंने आप लोगोंको		छोड़ देनेवाले

* अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'ऋषिरुवाच' है ।

एष प्रियं	इस प्रिय	वः	आप लोगोंके लिए
आत्मानं	देहको	अहं	मैं
		संत्यजामि	छोड़ रहा हूँ ॥७॥

योऽध्रुवेणात्मना नाथा न धर्मं न यशः पुमान् ।
ईहेत भूतदयया स शोच्यः स्थावरैरपि ॥८॥

यः अध्रुवेण आत्मना नाथा न धर्मं न यशः पुमान् ईहेत भूतदयया स शोच्यः स्थावरैः अपि ॥८॥

नाथा	जगत् स्वामियो !	ईहेत	पाना चाहता
यः अध्रुवेण	जो नश्वर	स पुमान्	वह पुरुष
आत्मना	शरीर द्वारा	स्थावरैः	स्थावरों (वृक्षादि)से
भूतदयया	प्राणियोंपर दयाके द्वारा	अपि शोच्यः	भी शोचनीय (गया-बीता) है ।८।
न धर्मं न यशः	न धर्म, न यश		

एतावानव्ययो धर्मः पुण्यश्लोकैरुपासितः ।
यो भूतशोकहर्षाभ्यामात्मा शोचति हृष्यति ॥९॥

एतावान् अव्ययः धर्मः पुण्यश्लोकैः उपासितः यः भूतशोक हर्षाभ्यां आत्मा शोचति हृष्यति ॥९॥

पुण्यश्लोकैः	पवित्र कीर्ति (महा-पुरुषों) द्वारा	भूतशोक	प्राणियोंके शोकमें
		आत्मा	स्वयं भी
उपासितः	अपनाया गया	शोचति	शोक करता है
अव्ययः धर्मः	अविनाशी धर्म	हर्षाभ्यां	उनके हर्षसे
एतावान् यः	इतना ही है कि	हृष्यति	हर्षित होता है ॥९॥

अहो दैन्यमहो कष्टं पारक्यैः क्षणभंगुरैः ।
यन्नोपकुर्यादस्वार्थैर्मर्त्यः स्वज्ञातिविग्रहैः ॥१०॥

अहो दैन्यं अहो कष्टं पारक्यैः क्षण भंगुरैः यत् न उपकुर्यात् अस्वार्थैः मर्त्यः स्वज्ञाति विग्रहैः ॥१०॥

अहो दैन्यं	यह कितनी कृपणता है	**अस्वार्थैः**	किसी स्वार्थमें न आनेवाले इन
अहो	यह कितने	**स्वज्ञाति**	अपनी जाति (धनादि) तथा
कष्टं	दुःखकी बात है		
यत् पारक्यैः	कि जो पराया है	**विग्रहैः**	शरीरसे
क्षण	एक क्षणमें	**उपकुर्यात्**	परोपकार
भंगुरैः	नष्ट हो जानेवाला है	**न**	नहीं करता ॥१०॥
मर्त्यः	मरणधर्मा मनुष्य		

श्रीशुक उवाच–

एवं कृतव्यवसितो दध्यङ्ङाथर्वणस्तनुम् ।
परे भगवति ब्रह्मण्यात्मानं सन्नयञ्जहौ ॥११॥

एवं कृतव्यवसितः दध्यङ् आथर्वणः तनुं परे भगवति ब्रह्मणि आत्मानं सन्नयन् जहौ ॥११॥

आथर्वणः	अथर्ववेदी	**परे ब्रह्मणि**	परम ब्रह्ममें
दध्यङ्	दधीचिने	**आत्मानं**	अपनेको
एवं	ऐसा	**सन्नयन्**	लीन करके
कृतव्यवसितः	निश्चय करके	**तनुं**	शरीर
भगवति	भगवान्	**जहौ**	त्याग दिया ॥११॥

यताक्षासुमनोबुद्धिस्तत्त्वदृग् ध्वस्तबन्धनः ।
आस्थितः परमं योगं न देहं बुबुधे गतम् ॥१२॥

यतः अक्षः असु मनः बुद्धिः तत्त्वदृक् ध्वस्त बन्धनः आस्थितः परमं योगं न देहं बुबुधे गतम् ॥१२॥

अक्षः मनः	इन्द्रिय, मन,	परमं	परम दशा (समाधि) में
बुद्धिः	बुद्धिको	योगं	योगकी
यतः	संयमित करके	आस्थितः	स्थित होनेसे
तत्त्वदृक्	तत्त्व चिन्तनसे	देहं गतं	शरीर छूटना
ध्वस्त	नष्ट हो गया,	न बुबुधे	ज्ञात नहीं हुआ ॥१२॥
बन्धनः	(कर्म) बन्धन		

अथेन्द्रो वज्रमुद्यम्य निर्मितं विश्वकर्मणा ।
मुनेः शुक्तिभिरुत्सिक्तो भगवत्तेजसान्वितः ॥१३॥

अथ इन्द्रः वज्रं उद्यम्य निर्मितं विश्वकर्मणा मुनेः शुक्तिभिः उत्सिक्तः भगवत् तेजसा अन्वितः ॥१३॥

अथ मुनेः	फिर मुनि (दधीचि) की	विश्वकर्मणा	विश्वकर्मा
शुक्तिभिः	हड्डीसे	निर्मितं	निर्मित
उत्सिक्तः	बनाया	वज्रं उद्यम्य	वज्र उठाकर
		भगवत् तेजसा	भगवान्‌के तेजसे
		अन्वितः इन्द्रः	सम्पन्न इन्द्र ॥१३॥

वृतो देवगणैः सर्वैर्गजेन्द्रोपर्यशोभत ।
स्तूयमानो मुनिगणैस्त्रैलोक्यं हर्षयन्निव ॥१४॥

वृतः देवगणैः सर्वैः गजेन्द्र उपरि अशोभत स्तूयमानः मुनिगणैः त्रैलोक्यं हर्षयन् इव ॥१४॥

सर्वैः देवगणैः	सब देवगणोंसे	हर्षयन् इव	हर्षित करते हुएसे
वृतः	घिरे	गजेन्द्र	गजराज ऐरावतके
मुनिगणैः	मुनिगणोंसे	उपरि	ऊपर
स्तूयमानः	स्तुत होते	अशोभत	सुशोभित हुए ॥१४॥
त्रैलोक्यं	त्रिलोकीको		

वृत्रमभ्यद्रवच्छेत्तुमसुरानीकयूथपैः ।
पर्यस्तमोजसा राजन् क्रुद्धो रुद्र इवान्तकम् ॥१५॥

वृत्रं अभ्यद्रवत् छेत्तुं असुर अनीकयूथपैः पर्यस्तं ओजसा राजन् क्रुद्धः रुद्र इव अन्तकम् ॥१५॥

राजन्	राजन् !	**पर्यस्तं वृत्रं**	घिरे हुए वृत्रको
क्रुद्धः	क्रोधमें भरे	**छेत्तुं**	काट डालनेके लिए
रुद्र अन्तकं	रुद्र कालपर (आक्रमण करें)	**ओजसा**	उत्साहपूर्वक
		अभ्यद्रवत्	उसकी ओर दौड़ पड़े ॥१५॥
इव	इस प्रकार		
असुर	असुर		
अनीकयूथपैः	सेनापतियोंसे		

ततः सुराणामसुरैः रणः परमदारुणः ।
त्रेतामुखे नर्मदायामभवत् प्रथमे युगे ॥१६॥

ततः सुराणां असुरैः रणः परमदारुणः त्रेतामुखे नर्मदायां अभवत् प्रथमे युगे ॥१६॥

ततः प्रथमे	तब पहिले (स्वायम्भुव)	**सुराणां**	देवताओंका
		असुरैः	असुरोंसे
युगे	मन्वन्तरके पहिले	**परमदारुणः**	अत्यन्त घोर
त्रेतामुखे	त्रेतायुगके प्रारम्भमें	**रणः**	युद्ध
नर्मदायां	नर्मदा किनारे	**अभवत्**	हुआ ॥१६॥

रुद्रैर्वसुभिरादित्यैरश्विभ्यां पितृवह्निभिः ।
मरुद्भिर्ऋभुभिः साध्यैर्विश्वेदेवैर्मरुत्पतिम् ॥१७॥

रुद्रैः वसुभिः आदित्यैः अश्विभ्यां पितृ वह्निभिः मरुत्भिः ऋभुभिः साध्यैः विश्वेदेवैः मरुत्पतिम् ॥१७॥

रुद्रैः वसुभिः	रुद्रों, वसुओं,	**अश्विभ्यां**	दोनों अश्विनी कुमारों
आदित्यैः	आदित्यों,		

पितृ वह्निभिः	पितरों, अग्नियों,	**साध्यैः**	साध्यगणों
मरुत्भिः	मरुद्गणों,	**विश्वेदेवैः**	विश्वेदेवोंके साथ
ऋभुभिः	ऋभुओं,	**मरुत्पतिम्**	देवराज ॥१७॥

दृष्ट्वा वज्रधरं शक्रं रोचमानं स्वया श्रिया ।
नामृष्यन्नसुरा राजन् मृधे वृत्रपुरःसराः ॥१८॥

दृष्ट्वा वज्रधरं शक्रं रोचमानं स्वया श्रिया न अमृष्यन् असुराः राजन् मृधे वृत्रपुरःसराः ॥१८॥

शक्रं वज्रधरं	इन्द्रको वज्र लिये	**मृधे वृत्रपुरः**	युद्धमें वृत्र जिनके आगे
स्वया श्रिया	अपने वैभवसे	**सराः**	चलता था वे
रोचमानं	सुशोभित	**असुराः**	असुर
दृष्ट्वा	देखकर	**अमृष्यन् न**	सहन नहीं कर सके ॥१८॥
राजन्	राजन् !		

नमुचिः शम्बरोऽनर्वा द्विमूर्धा ऋषभोऽम्बरः ।
हयग्रीवः शंकुशिरा विप्रचित्तिरयोमुखः ॥१९॥

नमुचिः, शम्बरः, अनर्वा, द्विमूर्धा, ऋषभः, अम्बरः, हयग्रीवः, शंकुशिरा, विप्रचित्तिः, अयोमुखः (ये केवल असुरोंके नाम हैं) ॥१९॥

पुलोमा वृषपर्वा च प्रहेतिर्हेतिरुत्कलः ।
दैतेया दानवा यक्षा रक्षांसि च सहस्रशः ॥२०॥

पुलोमा, वृषपर्वा च प्रहेतिः हेतिः उत्कलः (ये केवल असुरोंके नाम हैं) **दैतेया दानवा यक्षा रक्षांसि च सहस्रशः ॥२०॥**

दैतेया दानवा	दैत्य, दानव,	**सहस्रशः**	हजारों थे ॥२०॥
यक्षा च रक्षांसि	यक्ष और राक्षस		

सुमालिमालिप्रमुखाः कार्तस्वरपरिच्छदाः ।
प्रतिषिध्येन्द्रसेनाग्रं मृत्योरपि दुरासदम् ॥२१॥

सुमालि मालि प्रमुखाः कार्तस्वर परिच्छदाः प्रतिषिध्य इन्द्र सेना अग्रं मृत्योः अपि दुरासदम् ॥२१॥

सुमालि माली	सुमाली और माली	**मृत्योः अपि**	मृत्युके लिए भी
प्रमुखाः	उनमें प्रमुख थे,	**दुरासदं**	अजेय
कार्तस्वर	स्वर्णकी साज-	**इन्द्र सेना**	इन्द्रकी सेनाको
	सज्जासे	**अग्रं**	आगे आकर
परिच्छदाः	सजे,	**प्रतिषिध्य**	रोका ॥२१॥

अभ्यर्दयन्नसंभ्रान्ताः सिंहनादेन दुर्मदाः ।
गदाभिः परिघैर्बाणैः प्रासमुद्गरतोमरैः ॥२२॥

अभ्यर्दयन् असंभ्रान्ताः सिंहनादेन दुर्मदाः गदाभिः परिघैः बाणैः प्रास मुद्गर तोमरैः ॥२२॥

दुर्मदाः	(वे) घमण्डी	**बाणैः प्रास**	वाण, प्रास,
सिंहनादेन	गर्जना करते हुए	**मुद्गर, तोमरैः**	मुद्गर, तोमरोंसे
असंभ्रान्ताः	सावधान होकर	**अभ्यर्दयन्**	(देवताओंको)रोंदने
गदाभिः परिघैः	गदा, लाठी,		लगे ॥२२॥

शूलैः परश्वधैः खड्गैः शतघ्नीभिर्भुशुण्डिभिः ।
सर्वतोऽवाकिरन् शस्त्रैरस्त्रैश्च विबुधर्षभान् ॥२३॥

शूलैः परश्वधैः खड्गैः शतघ्नीभिः भुशुण्डिभिः सर्वतः अवाकिरन् शस्त्रैः अस्त्रैः च विबुध ऋषभान् ॥२३॥

शूलैः परश्वधैः	भालों, फरसों,	**सर्वतः**	चारों ओरसे
शतघ्नीभिः	तोपों,	**शस्त्रैः च**	शस्त्रों और
भुशुण्डिभिः	बन्दूकोंसे	**अस्त्रैः**	अस्त्रोंकी
विबुध ऋषभान्	देवनायकोंपर	**अवाकिरन्**	झड़ी लगा दी ॥२३॥

न तेऽदृश्यन्त संछन्नाः शरजालैः समन्ततः ।
पुङ्खानुपुङ्खपतितैर्ज्योतींषीव नभोघनैः ॥२४॥

न ते अदृश्यन्त संछन्नाः शरजालैः समन्ततः पुङ्ख अनुपुङ्ख पतितैः ज्योतींषी इव नभः घनैः ॥२४॥

समन्ततः	चारों ओरसे	**नभः घनैः**	आकाशके मेघोंसे घिर जानेपर
पुङ्ख	एककी पूँछसे सटे	**ज्योतींषी इव**	तारोंके समान
अनुपुङ्ख	दूसरे	**ते न अदृश्यन्त**	वे (देवता) दिखाई नहीं पड़ते
पतितैः	गिरनेवाले		॥२४॥
शरजालैः	बाणोंके जालसे		
संछन्नाः	ढक जानेसे		

न ते शस्त्रास्त्रवर्षौघा ह्यासेदुः सुरसैनिकान् ।
छिन्नाः सिद्धपथे देवैर्लघुहस्तैः सहस्रधा ॥२५॥

न ते शस्त्र अस्त्र वर्षा ओघा हि आसेदुः सुरसैनिकान् छिन्नाः सिद्धपथे देवैः लघुहस्तैः सहस्रधा ॥२५॥

ते शस्त्र अस्त्र वर्षा ओघा हि	वह शस्त्र-अस्त्र वर्षाकी बाढ़ तो	**देवैः**	देवताओंके
सुरसैनिकान्	देव-सैनिकोंके	**लघुहस्तैः**	हाथकी स्फूर्तिसे
आसेदुः न	पास तक नहीं पहुँच सकी,	**सिद्धपथे**	आकाशमें ही
		सहस्रधा	सहस्रों
		छिन्नाः	टुकड़ोंमें काट दी गयी ॥२५॥

अथ क्षीणास्त्रशस्त्रौघा गिरिशृङ्गद्रुमोपलैः ।
अभ्यवर्षन् सुरबलं चिच्छिदुस्तांश्च पूर्ववत् ॥२६॥

अथ क्षीण अस्त्र शस्त्र ओघा गिरिशृङ्ग द्रुम उपलैः अभ्यवर्षन् सुरबलं चिच्छिदुः तान् च पूर्ववत् ॥२६॥

अथ अस्त्र शस्त्र	फिर अस्त्र-शस्त्र	अभ्यवर्षन्	वर्षा करने लगे
ओघा क्षीण	समूह समाप्त होने पर	तान्	(देवताओंने) उनक
सुरबलं	देवताओंकी सेनापर	च	भी
गिरिशृङ्ग	पर्वत-शिखर	पूर्ववत्	पहिलेके समान
द्रुम उपलैः	वृक्ष, चट्टानोंकी (असुर)	चिच्छिदुः	काट दिया ॥२६॥

तानक्षतान् स्वस्तिमतो निशाम्य
शस्त्रास्त्रपूगैरथ वृत्रनाथाः ।
द्रुमैर्दृषद्भिर्विविधाद्रिशृङ्गै-
रविक्षतांस्तत्रसुरिन्द्रसैनिकान् ॥२७॥

तान् अक्षतान् स्वस्तिमतः निशाम्य शस्त्र अस्त्र पूगैः अथ वृत्रनाथाः द्रुमैः दृषत्भिः विविध अद्रिशृङ्गैः अविक्षतान् तत्र सुर इन्द्र सैनिकान् ।२७।

अथ	तब जिनका	अक्षतान्	घायल न हुआ
वृत्रनाथाः	स्वामी वृत्र था उन असुरोंने	स्वस्तिमतः	सकुशल,
शस्त्र अस्त्र	अस्त्र-शस्त्र	द्रुमैः दृषत्भिः	वृक्षों, चट्टानों,
पूगैः	समूहसे	विविध	अनेक
तान् इन्द्र	उन इन्द्रके	अद्रिशृङ्गैः	पर्वत शिखरोंसे भी
सैनिकान् सुरान्	सैनिक देवताओंको	अविक्षतां	घाव रहित
		निशाम्य	देखा ॥२७॥

सर्वे प्रयासा अभवन् विमोघाः
कृताः कृता देवगणेषु दैत्यैः ।
कृष्णानुकूलेषु यथा महत्सु
क्षुद्रैः प्रयुक्ता रुशती रुक्षवाचः ॥२८॥

सर्वे प्रयासाः अभवन् विमोघाः कृताः कृता देवगणेषु दैत्यैः कृष्ण अनुकूलेषु यथा महत्सु क्षुद्रैः प्रयुक्ता रुशती रुक्षवाचः ॥२८॥

यथा	जैसे
कृष्ण	कृष्णके
अनुकूलेषु	अनुकूल रहनेवाले
महत्सु	महापुरुषोंपर
क्षुद्रैः	तुच्छ लोगों
प्रयुक्ता	द्वारा कही
रुशती	अमंगलमय
रुक्षवाचः	रूखी-वाणी (निष्क्रियभाव होती है)
देवगणेषु	देवताओंके (विरुद्ध)
दैत्यैः	दैत्यों द्वारा
कृताः कृता	बार-बार किये गये
सर्वे प्रयासाः	सब प्रयत्न
विमोघाः	व्यर्थ
अभवन्	हो गये ॥२८॥

ते स्वप्रयासं वितथं निरीक्ष्य
हरावभक्ता हतयुद्धदर्पाः ।
पलायनायाजिमुखे विसृज्य
पतिं मनस्ते दधुरात्तसाराः ॥२९॥

ते स्वप्रयासं वितथं निरीक्ष्य हराः अभक्ता हतयुद्ध दर्पाः पलायनाय आजिमुखे विसृज्य पतिं मनः ते दधुः आत्तसाराः ॥२९॥

हराः अभक्ता	भगवद् विमुख
ते	वे (असुर)
स्वप्रयासं	अपने प्रयासको
वितथं निरीक्ष्य	व्यर्थ गया देखकर
हतयुद्ध दर्पाः	युद्ध करनेका गर्व नष्ट हो गया
आत्तसाराः	उत्साहहीन हो गये,
आजिमुखे	युद्ध भूमिमें
पतिं	अपने स्वामी (वृत्र) को
विसृज्य	छोड़कर
ते पलायनाय	उन्होंने भागनेका
मनः दधे	संकल्प कर लिया ॥२९॥

वृत्रोऽसुरांस्ताननुगान् मनस्वी
प्रधावतः प्रेक्ष्य बभाष एतत् ।
पलायितं प्रेक्ष्य बलं च भग्नं
भयेन तीव्रेण विहस्य वीरः ॥३०॥

वृत्रः असुरान् तान् अनुगान् मनस्वी प्रधावतः प्रेक्ष्य बभाष एतत् पलायितं प्रेक्ष्य बलं च भग्नं भयेन तीव्रेण विहस्य वीरः ॥३०॥

मनस्वी वीरः	धीर वीर	**भग्नं बलं**	तितर-बितर हुई सेनाको
वृत्रः	वृत्र ने	**पलायितं**	भागते
तान अनुगान्	उन अपने अनुचरों	**प्रेक्ष्य**	देखकर
असुरान्	असुरोंको	**विहस्य**	अट्ठहास करके
प्रधावतः प्रेक्ष्य	भागते हुए देखकर	**एतत् बभाष**	यह कहा ॥३०॥
च तीव्रेण भयेन	तथा अत्यन्त भयके कारण		

कालोपपन्नां रुचिरां मनस्विना-
मुवाच वाचं पुरुषप्रवीरः ।
हे विप्रचित्ते नमुचे पुलोमन्
मयानर्वञ्छम्बर मे शृणुध्वम् ॥३१॥

काल उपपन्नां रुचिरां मनस्विनां उवाच वाचं पुरुष प्रवीरः हे विप्रचित्ते नमुचे पुलोमन् मयान् अर्वन् शम्बर मे शृणुध्वम् ॥३१॥

प्रवीरः पुरुषः	वीर शिरोमणि पुरुष (वृत्र) ने	**हे विप्रचित्ते**	हे विप्रचित्ति,
काल उपपन्नां	समयोचित	**नमुचे**	नमुचि,
मनस्विनां	मनस्वियोंको	**पुलोमन् मयान्**	पुलोमा, मय
रुचिरां	सुन्दर लगने वाली	**अर्वन् शम्बर**	अर्वा, अम्बर,
वाचं उवाच	सार्थक वाणी बोला–	**मे शृणुध्वं**	मेरी बात सुनो ॥३१॥

जातस्य मृत्युर्ध्रुव एष सर्वतः
प्रतिक्रिया यस्य न चेह कल्पता ।
लोको यशश्चाथ ततो यदि ह्यमुं
को नाम मृत्युं न वृणीत युक्तम् ॥३२॥

जातस्य मृत्युः ध्रुवः एष सर्वतः प्रतिक्रिया यस्य न च इह कल्पता लोकः यशः च अथ ततः यदि हि अमुं कः नाम मृत्युं न वृणीत युक्तम् ॥३२॥

इह	क्योंकि
एष ध्रुवः	यह निश्चित है कि
जातस्य	जो उत्पन्न हुआ है
सर्वतः मृत्युः	उसकी मृत्यु कहीं भी होगी,
च इह	और इस लोकमें
यस्य प्रतिक्रिया	जिसका प्रतिकार
न कल्पता	(सृष्टिकर्त्ताने) मनायी ही नहीं है।
अथ यदि	अब यदि
ततः	उससे
लोकः यशः च	लोकमें यश भी (मिलता हो)
कः नाम	भला कौन ऐसा है जो
अमुं युक्तं मृत्युं	ऐसी उपयुक्त मृत्यु
वृणीत न	वरण नहीं करेगा ॥३२॥

द्वौ संमताविह मृत्यू दुरापौ
यद् ब्रह्मसंधारणया जितासुः।
कलेवरं योगरतो विजह्याद्
यदग्रणीर्वीरशयेऽनिवृत्तः ॥३३॥

द्वौ संमताः इह मृत्यु दुरापौ यद् ब्रह्म संधारणया जित असुः कलेवरं योगरतः विजह्यात् यत् अग्रणीः वीरशये अनिवृत्तः ॥३३॥

इह	इस लोकमें
द्वौ मृत्यु	दोकी ही मृत्यु
संमताः	चाहने योग्य और
दुरापौ	दुष्प्राप्य है
यद्	जो
ब्रह्म संधारणया	ब्रह्म चिन्तन द्वारा
जित असुः	प्राणोंको जीतकर
योगरतः	योगमें स्थित होकर
कलेवरं	शरीर
विजह्यात्	छोड़ दे,
यत्	अथवा
अग्रणीः	(सेनाके) आगे रहकर
अनिवृत्तः	बिना पीछे लौटे
वीरशये	वीर-शैय्या ले ले ॥३३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे इन्द्रवृत्रासुरयुद्धवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अथ एकादशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच—

त एवं शंसतो धर्मं वचः पत्युरचेतसः ।
नैवागृह्णन् भयत्रस्ताः पलायनपरा नृप ॥ १ ॥

त एवं शंसतः धर्मं वचः पत्युः अचेतसः न एव अगृह्णन् भयत्रस्ताः पलायनपरा नृप ॥१॥

नृप	राजन् !	पलायनपरा	भागते हुए
एवं धर्मं	इस प्रकार धर्मकी बात	पत्युः वचः	अपने स्वामीकी बात
शंसतः	कहने पर भी	त न एव	उन्होंने नहीं ही
भयस्त्रस्ताः	भयभीत	अगृह्णन्	ग्रहण की ॥१॥
अचेतसः	अचेत		

विशीर्यमाणां पृतनामासुरीमसुरर्षभः ।
कालानुकूलैस्त्रिदशैः काल्यमानामनाथवत् ॥ २ ॥

विशीर्यमाणां पृतनां आसुरीं असुर ऋषभः काल अनुकूलैः त्रिदशैः काल्यमानां अनाथवत् ॥२॥

अनाथवत्	बिना नायकके समान	त्रिदशैः	देवताओं द्वारा
आसुरीं पृतनां	असुरोंकी सेनाको	काल्यमानां	खदेड़ी जाती
विशीर्यमाणां	छिन्न-भिन्न होती	असुर ऋषभः	असुर श्रेष्ठ वृत्र ॥२॥
काल अनुकूलैः	समयके अनुकूल पड़नेसे		

दृष्ट्वातप्यत संक्रुद्ध इन्द्रशत्रुरमर्षितः ।
तान् निवार्यौजसा राजन् निर्भर्त्स्येदमुवाच ह ॥ ३ ॥

दृष्ट्वा अतप्यत संक्रुद्धः इन्द्रशत्रुः अमर्षितः तान् निवार्य ओजसा राजन् निर्भर्त्स्य इदं उवाच ह ॥३॥

राजन्	राजन् !	ओजसा	उत्साहसे
इन्द्रशत्रुः	इन्द्रका शत्रु	तान् निवार्य	उन (देवताओं)को रोककर
दृष्ट्वा	(यह) देखकर	निर्भर्त्स्य ह	डांटते हुए ही
संक्रुद्धः	क्रोधमें भरकर	इदं उवाच	यह बोला ॥३॥
अमर्षितः	असहिष्णुतासे		
अतप्यत	तप्त होता— तिलमिलाता		

किं व उच्चरितैर्मातुर्धावद्भिः पृष्ठतो हतैः ।
न हि भीतवधः श्लाघ्यो न स्वर्ग्यः शूरमानिनाम् ॥४॥

किं वः उच्चरितैः मातुः धावद्भिः पृष्ठतः हतैः न हि भीतवधः श्लाघ्यः न स्वर्ग्यः शूरमानिनाम् ॥४॥

मातुः उच्चरितैः	माताके मल-मूत्रके समान	शूरमानिनां	अपनेको शूर मानने वालोंके लिए
धावद्भिः	इन भागने वालोंको	भीतवधः	डरे हुएको मारना
पृष्ठतः हतैः	पीछेसे मारनेमें	न श्लाघ्यः	न प्रशंसनीय है,
वः किं	तुम लोगोंका क्या लाभ है ।	न स्वर्ग्यः	न स्वर्ग देनेवाला है ॥४॥
हि	क्योंकि		

यदि वः प्रधने श्रद्धा सारं वा क्षुल्लका हृदि ।
अग्रे तिष्ठत मात्रं मे न चेद् ग्राम्यसुखे स्पृहा ॥ ५ ॥

यदि वः प्रधने श्रद्धा सारं वा क्षुल्लका हृदि अग्रे तिष्ठत मात्रं मे न चेत् ग्राम्यसुखे स्पृहा ॥५॥

यदि वः	यदि तुम लोगोंमें	ग्राम्यसुखे	भोग-विलासकी
प्रधने श्रद्धा	युद्ध करनेका उत्साह है,	स्पृहा न चेत्	इच्छा नहीं रही है तो
		मे अग्रे	मेरे आगे
वा क्षुल्लका	अथवा क्षुद्रो !	तिष्ठत मात्रं	खड़े भर रहो ॥५॥
हृदि सारं	(तुम्हारे) हृदयमें साहस है,		

एवं सुरगणान् क्रुद्धो भीषयन् वपुषा रिपून् ।
व्यनदत् सुमहाप्राणो येन लोका विचेतसः ॥ ६ ॥

एवं सुरगणान् क्रुद्धः भीषयन् वपुषा रिपून् व्यनदत् सुमहा प्राणः येन लोका विचेतसः ॥६॥

एवं क्रुद्धः	इस प्रकार, क्रोधमें भरकर	सुमहा प्राणः	बहुत बड़ी प्राण-शक्तिसे
वपुषा रिपून्	अपने शरीरसे ही शत्रु	व्यनदत्	गर्जना की
		येन लोका	जिससे सब लोग
सुरगणान्	देवताओंको	विचेतसः	मूर्छित हो गये ॥६॥
भीषयन्	डराता हुआ		

तेन देवगणाः सर्वे वृत्रविस्फोटनेन वै ।
निपेतुर्मूर्च्छिता भूमौ यथैवाशनिना हताः ॥ ७ ॥

तेन देवगणाः सर्वे वृत्रविस्फोटनेन वै निपेतुः मूर्च्छिता भूमौ यथा एव अशनिना हताः ॥७॥

वै तेन	निश्चय उस	मूर्च्छिता	मूर्च्छित होकर
वृत्रविस्फोटनेन	वृत्रासुरकी गर्जना से ही	भूमौ निपेतुः	पृथ्वीपर गिर पड़े ॥७॥
सर्वे देवगणाः	सभी देवसमूह		
यथा अशनिना	जैसे वज्रसे		
हताः	मारे गये हों		

ममर्द पद्भ्यां सुरसैन्यमातुरं
निमीलिताक्षं रणरङ्गदुर्मदः ।
गां कम्पयन्नुद्यतशूल ओजसा
नालं वनं यूथपतिर्यथोन्मदः ॥ ८ ॥

ममर्द पद्भ्यां सुरसैन्यं आतुरं निमीलित अक्षं रणरङ्ग दुर्मदः गां कम्पयन् उद्यतशूल ओजसा नालं वेनं यूथपतिः यथा उन्मदः ॥८॥

यथा उन्मदः	जैसे मतवाला	**गां कम्पयन्**	पृथ्वी कँपता हुआ
यूथपतिः	यूथपति गजराज	**आतुरं**	व्याकुल (भयसे)
नालं वनं	नरकटके वनको (रौंदे)	**निमीलित अक्षं**	नेत्र बन्द करके (पड़ी)
ओजसा	उत्साहपूर्वक	**सुरसैन्यं**	देवताओंकी सेनाको
उद्यतशूल	त्रिशूल उठाये	**पद्भ्यां ममर्द**	पैरोंसे मसलने लगा ॥८॥
रणरङ्ग	युद्धकी धुनमें		
दुर्मदः	मतवाला होकर		

विलोक्य तं वज्रधरोऽत्यमर्षितः
स्वशत्रवेऽभिद्रवते महागदाम् ।
चिक्षेप तामापततीं सुदुःसहां
जग्राह वामेन करेण लीलया ॥ ९ ॥

विलोक्य तं वज्रधरः अति अमर्षितः स्वशत्रवे अभिद्रवते महागदां चिक्षेप तां आपततीं सुदुः सहां जग्राह वामेन करेण लीलया ॥९॥

तं स्वशत्रवे	उस अपने शत्रुको	**अति अमर्षितः**	अत्यन्त असहनशील होकर
अभिद्रवते	अपनी ओर झपटते	**महागदां**	अपनी भारी गदा
विलोक्य	देखकर	**चिक्षेप**	फेंकी
वज्रधरः	इन्द्रने		

तां सुदुः सहां	उस असह्य (गदा)	वामेन करेण	बायें हाथसे
आपततीं	आती हुईको	जग्राह	(वृत्र ने) पकड़
लीलया	खेलमें		लिया ॥९॥

स इन्द्रशत्रुः कुपितो भृशं तया
महेन्द्रवाहं गदयोग्रविक्रमः ।
जघान कुम्भस्थल उन्नदन् मृधे
तत्कर्म सर्वे समपूजयन्नृप ॥१०॥

स इन्द्रशत्रुः कुपितः भृशं तया महेन्द्रवाहं गदया उग्रविक्रमः जघान कुम्भस्थल उन्नदन मृधे तत् कर्म सर्वे समपूजयन् नृप ॥१०॥

नृप	राजन् !	महेन्द्रवाहं	इन्द्रके वाहन
मृधे	युद्धमें		(ऐरावत)के
उग्रविक्रमः	प्रचण्ड पराक्रम	कुम्भस्थल	मस्तकपर
स इन्द्रशत्रुः	उस इन्द्रके शत्रुने	जघान	मारा,
उन्नदन्	गर्जना करते हुए	तत् कर्म	उसके इस कर्मकी
भृशं कुपितः	बहुत क्रुद्ध होकर	सर्वे समपूजयन्	सब लोग प्रशंसा
तया गदया	उसी गदासे		करने लगे ॥१०॥

ऐरावतो वृत्रगदाभिमृष्टो
विघूर्णितोऽद्रिः कुलिशाहतो यथा ।
अपासरद् भिन्नमुखः सहेन्द्रो
मुञ्चन्नसृक् सप्तधनुर्भृशार्तः ॥११॥

ऐरावतः वृत्रगदा अभिमृष्टः निघूर्णितः अद्रिः कुलिश आहतः यथा अपासरत् भिन्नमुखः सह इन्द्रः मुञ्चन् असृक् सप्त धनुः भृश आर्तः ॥११॥

वृत्रगदा	वृत्रासुर द्वारा	यथा कुलिश	जैसे वज्रसे
	(चलाया) गदासे	आहतः अद्रिः	मारा पर्वत हो
अभिमृष्टः	आहत	विघूर्णितः	घूमकर
ऐरावतः	ऐरावत	भिन्नमुखः	फटे सिर

असृक् मुञ्चन्	रक्त फेंकता	सप्त धनुः	सात धनुष (अट्ठाइस हाथ)
भृश आर्त	बहुत दुःखी होकर		
सह इन्द्रः	इन्द्रके साथ	अपासरत्	पीछे हट गया ॥११॥

न सन्नवाहाय विषण्णचेतसे
प्रायुंक्त भूयः स गदां महात्मा ।
इन्द्रोऽमृतस्यन्दिकराभिमर्श-
वीतव्यथक्षतवाहोऽवतस्थे ॥१२॥

न सन्नवाहाय विषण्णचेतसे प्रायुंक्त भूयः स गदां महात्मा इन्द्रः अमृतस्यन्दि कर अभिमर्श वीतव्यथ क्षतवाहः अवतस्थे ॥१२॥

सन्नवाहाय	मूर्छित वाहन (होने से)	क्षतवाहः	घायल वाहनको
		अमृतस्यन्दि	अमृत-स्पर्शी
विषण्णचेतसे	विषादग्रस्त चित्त (इन्द्रपर)	कर अभिमर्श	हाथसे सहलाकर
		वीतव्यथः	व्यथाहीन करके
स महात्मा	उस महात्मा(वृत्र)ने	इन्द्रः अवतस्थे	इन्द्र (युद्धमें) आ डटे ॥१२॥
भूयः गदां	फिर गदाका		
प्रायुंक्त न	प्रयोग नहीं किया,		

स तं नृपेन्द्राहवकाम्यया रिपुं
वज्रायुधं भ्रातृहणं विलोक्य ।
स्मरंश्च तत्कर्म नृशंसमंहः
शोकेन मोहेन हसञ्जगाद ॥१३॥

स तं नृपेन्द्र आहव काम्यया रिपुं वज्रायुधं भ्रातृहणं विलोक्य स्मरन् च तत् कर्म नृशंसं अहः शोकेन मोहेन हसन् जगाद ॥१३॥

नृपेन्द्र	परीक्षित् !	तं वज्रायुधं	उस वज्रधारी
आहव काम्यया	युद्ध करनेकी इच्छा से आये	भ्रातृहणं रिपुं	अपने भाईके हत्यारे शत्रुको

विलोक्य	देखकर	शोकेन च	शोक और
तत् नृशंसं	उसके क्रूर	मोहेन	मोहसे
अंहः कर्म	पाप कर्मको	हसन्	हँसता हुआ
स्मरन्	स्मरण करके	जगाद	बोला ॥१३॥
स	वह (वृत्र)		

वृत्र उवाच—

दिष्ट्या भवान् मे समवस्थितो रिपु-
र्यो ब्रह्महा गुरुहा भ्रातृहा च ।
दिष्ट्यानृणोऽद्याहमसत्तम त्वया
मच्छूलनिर्भिन्नदृषद्धृदाचिरात् ॥१४॥

दिष्टया भवान् मे समवस्थितः रिपुः यः ब्रह्महा गुरुहा भ्रातृहा च दिष्टया अनृणः अद्य अहं असत्तम त्वया मत् शूल निर्भिन्न दृषत् हृदा अचिरात् ॥१४॥

दिष्टया	(मेरे लिए) सौभाग्य की बात है कि	त्वया असत्तम	तुझ अत्यन्त दुष्टका
भवान् रिपुः	तुम्हारे जैसा शत्रु	दृषत्	पाषाण (कठोर)
समवस्थितः	सामने खड़ा है	हृदा	हृदय
यः ब्रह्महा	जो ब्रह्म-हत्यारा,	मत् शूल	मेरे त्रिशूलसे
गुरुहा	गुरु-हत्यारा	निर्भिन्न	फट जानेपर
च भ्रातृहा	और मेरे भाईका हत्यारा है,	अद्य अहं	आज मैं
दिष्टया	सौभाग्यकी ही बात है कि	अचिरात्	शीघ्र
		अनृणः	(भाईसे) उऋण हो जाऊँ ॥१४॥

यो नोऽग्रजस्यात्मविदो द्विजाते-
र्गुरोरपापस्य च दीक्षितस्य ।
विश्रभ्य खड्गेन शिरांस्यवृश्चत्
पशोरिवाकरुणः स्वर्गकामः ॥१५॥

यः नः अग्रजस्य आत्मविदः द्विजातेः गुरोः अपापस्य च दीक्षितस्य विश्रभ्य खड्गेन शिरांसि अवृश्चत् पशोः इव अकरुणः स्वर्गकामः ॥१५॥

आत्मविदः	आत्मज्ञानी	विश्रभ्य	विश्वास दिलाकर
द्विजातेः	ब्राह्मण	अकरुणः	निष्ठुर
गुरोः	अपने गुरु	स्वर्गकामः	स्वर्गेच्छु द्वारा
अपापस्य	निष्पाप	पशोः इव	बलि पशुकी भाँति
च	और (यज्ञमें)	खड्गेन	तलवारसे
दीक्षितस्य	दीक्षित	शिरांसि	सिरोंको
यः नः	जिसने मेरे	अवृश्चत्	काट दिया ॥१५॥
अग्रजस्य	बड़े भाईका		

ह्रीश्रीदयाकीर्तिभिरुज्झितं त्वां
स्वकर्मणा पुरुषादैश्च गर्ह्यम् ।
कृच्छ्रेण मच्छूलविभिन्नदेह-
मस्पृष्टवह्निं समदन्ति गृध्राः ॥१६॥

ह्री श्री दया कीर्तिभिः उज्झितं त्वां स्वकर्मणा पुरुषादैः च गर्ह्यं कृच्छ्रेण मत् शूल विभिन्न देहं अस्पृष्ट वह्निं समदन्ति गृध्राः ॥१६॥

अस्पृष्ट वह्निं	अग्नि स्पर्श रहित	स्वकर्मणा	अपने कर्मसे
मत् शूल	मेरे त्रिशूलसे	पुरुषादैः च	राक्षसोंसे भी
विभिन्न देहं	छिन्न-भिन्न शरीर	गर्ह्यं	निन्दित
ह्री श्री दया	लज्जा, श्री, दया,	त्वां गृध्राः	तुम्हें गीध
कीर्तिभिः	कीर्तिद्वार	कृच्छ्रेण	बड़े कष्टसे ही
उज्झितं	परित्यक्त	समदन्ति	खायेंगे ॥१६॥

अन्येऽनु ये त्वेह नृशंसमज्ञा
ये ह्युद्यतास्त्राः प्रहरन्ति मह्यम् ।
तैर्भूतनाथान् सगणान् निशात-
त्रिशूलनिर्भिन्नगलैर्यजामि ॥१७॥

अन्ये अनु ये तु इह नृशंसं अज्ञा ये हि उद्यत अस्त्राः प्रहरन्ति मह्यं तैः भूतनाथान् सगणान् निशात त्रिशूल निर्भिन्न गलैः यजामि ॥१७॥

ये अन्ये तु	जो दूसरे तो
अज्ञा	अज्ञानी (देवता)
इह नृशंसं	यहां (तुझ) निर्दयके
अनु	अनुयायी हैं
ये हि	जो कि
उद्यत अस्त्राः	अस्त्र उठाकर
मह्यं प्रहरन्ति	मुझ पर प्रहार कर रहे हैं
निशात त्रिशूल	(अपने) तीक्ष्ण त्रिशूलसे
निर्भिन्न गलैः	कटे गलेवाले उनके द्वारा
सगणान्	गणोंके साथ
भूतनाथान्	(भैरवादि) भूत-नाथोंका
यजामि	यजन करूँगा (बलि दूंगा) ॥१७॥

अथो हरे मे कुलिशेन वीर
हर्ता प्रमथ्यैव शिरो यदीह ।
तत्रानृणो भूतबलिं विधाय
मनस्विनां पादरजः प्रपत्स्ये ॥१८॥

अथो हरे मे कुलिशेन वीर हर्ता प्रमथ्य एव शिरः यत् ईह तत्र अनृणः भूत बलिं विधाय मनस्विनां पादरजः प्रपत्स्ये ॥१८॥

अथो	सम्भव है
यत् ईह	कि यहां (युद्धमें)
वीर	वीर (इन्द्र)
प्रसथ्य एव	(मेरी सेनाको) तितर-बितर करके ही
कुलिशेन	वज्र से
मे शिरः हर्ता	मेरा सिर काट लो
तत्र भूत	तब तो प्राणियोंको (अपने शरीरका)
बलिं विधाय	उपहार देकर
अनृणः	ऋणों से छूटकर
मनस्विनां	महापुरुषोंकी
पादरजः प्रपत्स्ये	चरणरजकी शरण लूंगा (जहाँ महा-पुरुष जाते हैं वहाँ जाऊँगा' ॥१८॥

सुरेश कस्मान्न हिनोषि वज्रं
पुरः स्थिते वैरिणि मय्यमोघम् ।
मा संशयिष्ठा न गदेव वज्रं
स्यान्निष्फलं कृपणार्थेव याच्ञा ॥१६॥

सुरेश कस्मात् न हिनोषि वज्रं पुरः स्थिते वैरिणि मयि अमोघं मा संशयिष्ठा न गदा इव वज्रं स्यात् निष्फलं कृपण अर्थ इव याच्ञा ॥१६॥

सुरेश	इन्द्र !	**कृपण अर्थ**	कृपण (पुरुष) से धनकी
पुरः स्थिते	सामने खड़े	**याच्ञा इव**	याचनाके समान
मयि वैरिणि	मुझ शत्रुपर	**गदा इव**	(पहिले चलायी) गदाके समान
अमोघं वज्रं	(अपना)अमोघ वज्र	**वज्रं निष्फलं न**	वज्र निष्फल नहीं
कस्मात् न	क्यों नहीं	**स्यात्**	होगा ॥१६॥
हिनोषि	चलाते,		
मा संशयिष्ठा	सन्देह मत करोकि		

नन्वेष वज्रस्तव शक्र तेजसा
हरेर्दधीचेस्तपसा च तेजितः ।
तेनैव शत्रुं जहि विष्णुयन्त्रितो
यतो हरिर्विजयः श्रीर्गुणास्ततः ॥२०॥

ननु एष वज्रः तव शक्र तेजसा हरेः दधीचेः तपसा च तेजितः तेन एव शत्रुं जहि विष्णु यन्त्रितः यतः हरिः विजयः श्रीः गुणाः ततः ॥२०॥

शक्र	इन्द्र !	**तेजितः**	तेजस्वी हुआ है,
ननु एष	निश्चय यह	**विष्णु यन्त्रितः**	विष्णु भगवान् से प्रेरित (तुम)
तव वज्रः	तुम्हारा वज्र	**तेन एव**	उसी (वज्र) से ही
हरेः तेजसा	श्री हरिके	**शत्रुं जहि**	(मुझ) शत्रुको मार दो,
च दधीचेः तपसा	और दधीचि ऋषि-की तपस्यासे		

यतः हरिः	जिस पक्षमें श्रीहरि हैं	श्रीः गुणाः	लक्ष्मी और सब गुण
ततः विजयः	उसी पक्षमें विजय,		रहते हैं ॥२०॥

अहं समाधाय मनो यथाऽऽह
सङ्कर्षणस्तच्चरणारविन्दे ।
त्वद्वज्रंहोलुलितग्राम्यपाशो
गतिं मुनेर्यामि यपर्विद्धलोकः ॥२१॥

अहं समाधाय मनः यथा आह सङ्कर्षणः तत् चरणारविन्दे त्वत् वज्र रंहः लुलित ग्राम्यपाशः गतिं मुनेः यामि अपर्विद्ध लोकः ॥२१॥

सङ्कर्षणः	सङ्कर्षण भगवान्ने	त्वत् वज्र रंहः	तुम्हारे वज्रके वेगसे
यथा आह	जैसा आदेश किया है,	ग्राम्यपाशः	विषय-भोगरूपी फन्देके
तत्	उनके	लुलित	कट जानेसे
चरणारविन्दे	चरण-कमलोंमें	मुनेः गतिं	मुनि-जनोचित गति
अहं मनः	मैं मनको	अपर्विद्ध लोकः	अनश्वर लोक
समाधाय	लगाकर	यामि	जाऊँगा ॥२१॥

पुंसा किलैकान्तधियां स्वकानां
याः सम्पदो दिवि भूमौ रसायाम् ।
न राति यद् द्वेष उद्वेग आधि-
र्मदः कलिर्व्यसनं संप्रयासः ॥२२॥

पुंसां किल एकान्तधियां स्वकानां याः सम्पदः दिवि भूमौ रसायां न राति यत् द्वेष उद्वेग आधिः मदः कलिः व्यसनं संप्रयासः ॥२२॥

किल	अहो,	याः दिवि भूमौ	जो स्वर्ग, पृथ्वी,
एकान्तधियां	अनन्य बुद्धि	रसायां	रसातलकी
स्वकानां पुंसा	अपने जनोंको (भगवान्)	सम्पदः	सम्पत्ति है
		न राति	नहीं देते,

यत्	जिस (सम्पत्ति) से	कलिः व्यसनं	झगड़ा, दुःख और
द्वेष उद्वेग	द्वेष, उद्विग्नता,	संप्रभासः	परिश्रम ही मिलता
आधिः मदः	चिन्ता, अभिमान,		है ॥२२॥

त्रैवर्गिकायासविघातमस्मत्-
पतिर्विधत्ते पुरुषस्य शक्र ।
ततोऽनुमेयो भगवत्प्रसादो
यो दुर्लभोऽकिञ्चनगोचरोऽन्यैः ॥२३॥

त्रैवर्गिक आयास विघातं अस्मत् पतिः विधत्ते पुरुषस्य शक्र ततः अनुमेयः भगवत् प्रसादः यः दुर्लभः अकिञ्चन गोचरः अन्यैः ॥२३॥

शक्र	इन्द्र !	ततः भगवत्	उससे भगवान्‌की
अस्मत् पतिः	हमारे स्वामी	प्रसादः अनुमेयः	कृपाका अनुमान
पुरुषस्य	(अपने) निज-जनके		करना चाहिए
त्रैवर्गिक	त्रिवर्ग (अर्थ, धर्म,	यः अकिञ्चन	जो (कृपा)अकिञ्चन
	काम) के लिए		(भक्तों) को
आयास	होनेवाले परिश्रमको	गोचरः	(ही) दीखती है
विघातं विधत्ते	नष्ट कर दिया	अन्यैः दुर्लभः	दूसरोंको दुर्लभ है
	करते हैं,		॥२३॥

अहं हरे तव पादैकमूल-
दासानुदासो भवितास्मि भूयः ।
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते
गृणीत वाक् कर्म करोतु कायः ॥२४॥

अहं हरे तव पाद एक मूल दास अनुदासः भविता अस्मि भूयः मनः स्मरेत् आसुपतेः गुणान् ते गृणीत वाक् कर्म करोतु कायः ॥२४॥

हरे	श्रीहरि !	भूयः	फिर (अगले जन्ममें
तव पाद मूल	आपके श्रीचरणोंके		भी)
अनुदासः	अनन्य सेवकोंका		

एक दासः	एक सेवक	वाक् गृणीत	वाणी बोले
भविता अस्मि	हो जाऊँ	कायः	(मेरा) शरीर
आसुपतेः	प्राणबल्लभ !	कर्म करोतु	(आपकी सेवा) कार्य
ते गुणान्	आपके गुणोंको ही		करता रहे ॥२४॥
मनः स्मरेत्	(मेरा) मन स्मरण करे,		

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे ॥२५॥

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसा आधिपत्यं न योगसिद्धिः अपुनर्भवं वा समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे ॥२५॥

समञ्जस	सर्वसौभाग्यनिधे !	रसा आधिपत्यं	सम्पूर्ण पृथ्वीका
त्वा विरहय्य	आपसे वियुक्त होकर (मैं)		साम्राज्य,
		योगसिद्धिः	योगकी सिद्धियां
नाकपृष्ठं न	स्वर्ग नहीं,	वा अपुनर्भवं	अथवा मोक्ष
पारमेष्ठ्यं च न	ब्रह्मलोक भी नहीं	न काङ्क्षे	नहीं चाहता ॥२५॥

अजातपक्षा इव मातरं खगाः
स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः ।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा
मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम् ॥२६॥

अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः प्रियं प्रिया इव व्युषितं विषण्णा मनः अरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम् ॥२६॥

अजातपक्षा	जिनके पंख नहीं निकले हैं वे	मातरं इव	जैसे माँकी (प्रतीक्षा करते हैं)उस प्रकार,
खगाः	पक्षिशावक	क्षुधार्ताः	भूख से व्याकुल

वत्सतराः	नन्हे बछड़े	**प्रिया इव**	पत्नीकी भाँति
यथा स्तन्यं	जैसे दूध पीनेके लिए (उत्सुक) रहते हैं,	**अरविन्दाक्ष**	कमलनयन !
		मनः त्वां	(मेरा) मन आपके
व्युषितं प्रियं	प्रवासमें गये प्रिय-तमके लिए	**दिदृक्षते**	दर्शनके लिए (समुत्सुक) रहो ।२६॥
विषण्णा	खिन्ना		

ममोत्तमश्लोकजनेषु सख्यं
संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः ।
त्वन्मायययाऽऽत्मात्मजदारगेहे-
ष्वासक्तचित्तस्य न नाथ भूयात् ॥२७॥

मम उत्तम श्लोक जनेषु सख्यं संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः त्वत् मायया आत्म आत्मज दारगेहेषु आसक्त चित्तस्य न नाथ भूयात् ॥२७॥

उत्तम	पवित्र	**आत्म आत्मज**	शरीर, पुत्र,
श्लोक नाथ	कीर्तिप्रभो !	**दारगेहेषु**	स्त्री घरमें
त्वत् मायया	आपकी मायासे	**आसक्त चित्तस्य**	आसक्त हृदय
स्वकर्मभिः	अपने कर्मोंके अनुसार	**जनेषु**	लोगों से
संसारचक्रे	संसार-चक्रमें	**मम सख्यं**	मेरी मित्रता
भ्रमतः	भटकते हुए	**न भूयात्**	न हो ॥२७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–*

एवं जिहासुर्नृप देहमाजौ
मृत्युं वरं विजयान्मन्यमानः।
शूलं प्रगृह्याभ्यपतत् सुरेन्द्रं
यथा महापुरुषं कैटभोऽप्सु ॥ १ ॥

एवं जिहासुः नृप देहं आजौ मृत्युं वरं विजयात् मन्यमानः शूलं प्रगृह्य अभ्यपतत् सुरेन्द्रं यथा महापुरुषं कैटभः अप्सु ॥१॥

नृप	राजन् !	यथा अप्सु	जैसे (प्रलय समुद्र) जलमें
एवं आजौ	इस प्रकार युद्ध भूमिमें	कैटभः	असुर कैटभ
देहं जिहासुः	शरीर त्यागकी इच्छा करता,	महापुरुषं	पुरुषोत्तम नारायण पर (दौड़ा था)
विजयात्	विजय से	शूलं प्रगृह्य	त्रिशूल लेकर
मृत्युं वरं	मृत्युको श्रेष्ठ	सुरेन्द्रं	इन्द्रपर
मन्यमानः	मानता हुआ	अभ्यपतत्	टूट पड़ा ॥१॥

ततो युगान्ताग्निकठोरजिह्व-
मविध्य शूलं तरसासुरेन्द्रः ।
क्षिप्त्वा महेन्द्राय विनद्य वीरो
हतोऽसि पापेति रुषा जगाद ॥ २ ॥

---

* अन्य प्रतियोंमें यह 'ऋषिरुवाच' है।

ततः युग अन्त अग्निकठोर जिह्वं आविध्य शूलं तरसा असुरेन्द्रः क्षिप्त्वा महेन्द्राय विनद्य वीरः हतः असि पाप इति रुषा जगाद ॥२॥

ततः युग अन्त	तब प्रलयकालीन
अग्निकठोर	अग्निके समान
जिह्वं	तीक्ष्ण नोकों वाला
शूलं	त्रिशूल
तरसा आविध्य	वेग से घुमाकर
महेन्द्राय क्षिप्त्वा	इन्द्रपर फेंककर
वीरः असुरेन्द्रः	वीर असुरराज वृत्र
विनद्य	गर्जना करके
रुषा	क्रोध से
इति जगाद	यह बोला—
पाप हतः असि	'पापी इन्द्र ! (इस बार तू) मारा गया।' ॥२॥

ख आपतत् तद् विचलद् ग्रहोल्कव-
न्निरीक्ष्य दुष्प्रेक्ष्यमजातविल्कवः।
वज्रेण वज्री शतपर्वणाच्छिनद्
भुजं च तस्योरगराजभोगम् ॥ ३ ॥

ख आपतत् तत् विचलत् ग्रह उल्कवत् निरीक्ष्य दुष्प्रेक्ष्यं अजातविल्कवः वज्रेण वज्री शतपर्वणा अच्छिनत् भुजं च तस्य उरगराज भोगम् ॥३॥

ग्रह उल्कवत्	ग्रह और उल्काके समान
विचलत्	वेग से चलता
दुष्प्रेक्ष्यं	(चमकके कारण) दुष्प्रेक्ष्य
आपतत्	(त्रिशूलको) अपनी ओर आता
निरीक्ष्य	देखकर
अजातविल्कवः	व्याकुलता उत्पन्न हुए बिना
वज्री	इन्द्रने
शतपर्वणा	सौ गांठवाले
वज्रेण	वज्र से
तत् तस्य	उस (त्रिशूल)को और उस (वृत्र)की
उरगराज भोगं	सर्पराजके शरीरकी भाँति
भुजं च	भुजाको भी
अच्छिनत्	काट दिया ॥३॥

छिन्नैकबाहुः परिघेण वृत्रः
संरब्ध आसाद्य गृहीतवज्रम् ।
हनौ ततादेन्द्रमथामरेभं
वज्रं च हस्तान्न्यपतन्मघोनः ॥ ४ ॥

छिन्न एकबाहुः परिघेण वृत्रः संरब्ध आसाद्य गृहीतवज्रं हनौ तताड इन्द्रं अथ अमर इभं वज्रं च हस्तात् न्यपतत् मघोनः ॥४॥

छिन्न एकबाहुः	एक भुजा कट जाने-पर	**अमर इभं**	देवताओंके हाथी (ऐरावत)
संरब्ध वृत्रः	क्रोधमें भरे वृत्रने	**च ततााड**	को भी मारा (जिससे)
गृहीतवज्रं	वज्र लिये		
इन्द्रं आसाद्य	इन्द्रके पास पहुँचकर	**मघोनः हस्तात्**	इन्द्रके हाथसे
परिघेन	परिघ (डंडे) से	**वज्रं न्यपतत्**	वज्र गिर पड़ा ॥४॥
हनौ अथ	ठुड्ढीपर और		

वृत्रस्य कर्मातिमहाद्भुतं तत्
सुरासुराश्चारणसिद्धसङ्घाः ।
अपूजयंस्तत् पुरुहूतसंकटं
निरीक्ष्य हा हेति विचुक्रुशुर्भृशम् ॥५॥

वृत्रस्य कर्म अति महाद्भुतं तत् सुर असुराः चारण सिद्ध सङ्घाः अपूजयन् तत् पुरुहूत संकटं निरीक्ष्य हा हा इति विचुक्रुशुः भृशम् ॥५॥

वृत्रस्य तत्	वृत्रके उस	**तत् पुरुहूत**	उस इन्द्रके
अति महाद्भुतं	अत्यन्त अद्भुत	**संकटं निरीक्ष्य**	संकटको देखकर
कर्म	कर्मकी	**हा हा इति**	'हाय ! हाय ! इस प्रकार
सुर असुराः	देवता, असुर,	**भृशं विचुक्रुशुः**	बार-बार चिल्लाने लगे ॥५॥
चारण सिद्ध	चारण, सिद्ध		
संघाः	समूहने		
अपूजयन्	पूजा (प्रशंसा) की और		

इन्द्रो न वज्रं जगृहे विलज्जित-
श्च्युतं स्वहस्तादरिसन्निधौ पुनः ।
तमाह वृत्रो हर आत्तवज्रो
जहि स्वशत्रुं न विषादकालः ॥ ६ ॥

इन्द्रः न वज्रं जगृहे विलज्जितः च्युतं स्वहस्तात् अरि सन्निधौ पुनः तं आह वृत्रः हर आत्तवज्रः जहि स्वशत्रुं न विषादकालः ॥६॥

विलज्जितः	अत्यन्त लज्जित
इन्द्रः	इन्द्रने
स्वहस्तात्	अपने हाथसे
च्युतं पुनः	गिरे हुए, फिर
अरि सन्निधौ	शत्रुके समीप पड़े
वज्रं न जगृहे	वज्रको नहीं उठाया
तं वृत्रः आह	उनसे वृत्रने कहा–
हर आत्तवज्रः	'इन्द्र ! वज्र उठाकर
स्वशत्रुं जहि	अपने शत्रुको (मुझे) मार दो
विषादकालः न	यह विषाद करनेका समय नहीं है' ॥६॥

युयुत्सतां कुत्रचिदाततायिनां
जयः सदैकत्र न वै परात्मनाम् ।
विनैकमुत्पत्तिलयस्थितीश्वरं
सर्वज्ञमाद्यं पुरुषं सनातनम् ॥ ७ ॥

युयुत्सतां कुत्र चित् आततायिनां जयः सदा एकत्र न वै परात्मनां विना एकं उत्पत्ति लय स्थिति ईश्वरं सर्वज्ञं आद्यं पुरुषं सनातनम् ॥७॥

उत्पत्ति स्थिति	(जगतकी) सृष्टि, स्थिति
लय एकं ईश्वरं	प्रलयमें एकमात्र समर्थ
सर्वज्ञं सनातनं	सर्वज्ञ, सनातन
आद्यं पुरुषं	आदिपुरुषको
विना	छोड़कर
परात्मनां	देहाभिमानी
युयुत्सतां	परस्पर युद्ध करते
आततायिनां	आततायियोंकी
कुत्र चित् जयः	कहीं विजय होती है
वै सदा एकत्र न	निश्चय सदा सब कहीं नहीं होती ॥७॥

लोकाः सपाला यस्येमे श्वसन्ति विवशा वशे ।
द्विजा इव शिचा बद्धाः स काल इह कारणम् ॥ ८ ॥

लोकाः सपालाः यस्य इमे श्वसन्ति विवशा वशे द्विजा इव शिचा बद्धाः स काल इह कारणम् ॥८॥

इमे सपालाः	ये लोकपालोंके साथ	**विवशा श्वसन्ति**	विवश होकर श्वास लेते (जीते) हैं
लोकाः	सब लोक		
शिचा बद्धाः	जालमें बँधे	**इह स काल**	इस (जय-पराजय) में वह काल ही
द्विजा इव	पक्षियोंकी भांति		
यस्य वशे	जिसके वशमें	**कारणं**	कारण है ॥८॥

ओजः सहो बलं प्राणममृतं मृत्युमेव च ।
तमज्ञाय जनो हेतुमात्मानं मन्यते जडम् ॥ ९ ॥

ओजः सहः बलं प्राणं अमृतं मृत्युं एव च तं अज्ञाय जनः हेतुं आत्मानं मन्यते जडम् ॥९॥

ओजः सहः	मनोबल, इन्द्रियबल,	**जनः जडं हेतुं**	लोग जड़ (शरीर) को कारण
बलं प्राणं	शरीरबल, प्राण,		
अमृतं च मृत्युं	जीवन और मृत्युके	**मन्यते**	मानते हैं ॥९॥
एव	भी (रहते)		
तं अज्ञाय	उस (काल) को न जानकर		

यथा दारुमयी नारी यथा यन्त्रमयो मृगः ।
एवं भूतानि मघवन्नीशतन्त्राणि विद्धि भोः ॥१०॥

यथा दारुमयी नारी यथा यन्त्रमयः मृगः एवं भूतानि मघवन् ईश तन्त्राणि विद्धि भोः ॥१०॥

भोः मघवन्	हे इन्द्र !	एवं भूतानि	ऐसे ही प्राणियोंको
यथा	जैसे	ईश तन्त्राणि	ईश्वरके वशमें
दारुमयी नारी	कठपुतली,	विद्धि	समझो ॥१०॥
यथा यन्त्रमयः	जैसे यन्त्रका बना		
मृगः	हिरन हो		

पुरुषः प्रकृतिर्व्यक्तमात्मा भूतेन्द्रियाशयाः ।
शक्नुवन्त्यस्य सर्गादौ न विना यदनुग्रहात् ॥११॥

पुरुषः प्रकृतिः व्यक्तं आत्मा भूत इन्द्रिय आशयाः शक्नुवन्ति अस्य सर्ग आदौ न विना यत् अनुग्रहात् ॥११॥

यत् अनुग्रहात्	जिसके अनुग्रहके	आशयः	अन्तःकरण
विना	बिना	सर्ग आदौ	सृष्टि (स्थितिलय)
पुरुषः प्रकृतिः	पुरुष (जीव),प्रकृति,		आदि
व्यक्त आत्मा	महत्तत्त्व, अहंकार	न शक्नुवन्ति	नहीं कर सकते
भूत इन्द्रिय	पंचभूत, इन्द्रियां,		॥११॥

अविद्वानेवमात्मानं मन्यतेऽनीशमीश्वरम् ।
भूतैः सृजति भूतानि ग्रसते तानि तैः स्वयम् ॥१२॥

अविद्वान् एवं आत्मानं मन्यते अनीशं ईश्वरं भूतैः सृजति भूतानि ग्रसते तानि तैः स्वयम् ॥१२॥

एवं अविद्वान्	इस (तथ्य) को न जानने वाला	भूतानि सृजति	प्राणियोंकी सृष्टि
		तानि तैः	उनकेहो द्वारा उनको
अनीशं आत्मानं	परतन्त्र जीवको	स्वयं ग्रसते	स्वयं खा लेता है
ईश्वरं मन्यते	समर्थ मान लेता है,		॥१२॥
भूतैः	(वह परमात्मा) प्राणियोंके द्वारा		

आयुः श्रीः कीर्तिरैश्वर्यमाशिषः पुरुषस्य याः ।
भवन्त्येव हि तत्काले यथानिच्छोर्विपर्ययाः ॥१३॥

आयुः श्रीः कीर्तिः ऐश्वर्यं आशिषः पुरुषस्य याः भवन्ति एव हि तत् काले यथा अनिच्छोः विपर्ययाः ॥१३॥

हि	क्योंकि	**पुरुषस्य याः**	पुरुषकी जो
यथा अनिच्छोः	जैसे इच्छा न होने-पर भी	**आशिषः**	कामनाएँ हैं
		आयुः श्रीः	आयु, लक्ष्मी,
विपर्ययाः	उलटी स्थिति आती है,	**कीर्तिः ऐश्वर्यं**	यश, ऐश्वर्य
		तत् भवन्ति एव	वे भी होते ही हैं ॥१३॥
काले	वैसे ही समय आने-पर		

तस्मादकीर्तियशसोर्जयापजययोरपि ।
समः स्यात् सुखदुःखाभ्यां मृत्युजीवितयोस्तथा ॥१४॥

तस्मात् अकीर्तियशसोः जय अपजयोः अपि समः स्यात् सुख दुःखाभ्यां मृत्युः जीवितयोः तथा ॥१४॥

तस्मात्	इसलिए	**तथा मृत्युः**	और मरण-
अकीर्तियशसः	अयश और यशमें,	**जीवितयोः**	जीवनमें
जयः अपजयोः	जय-पराजयमें	**सुख दुःखाभ्यां**	सुख-दुःखके प्रति
अपि	भी,	**समः स्यात्**	समान रहे ॥१४॥

सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः ।
तत्र साक्षिणमात्मानं यो वेद न स बध्यते ॥१५॥

सत्त्वं रजः तम इति प्रकृतेः न आत्मनः गुणाः तत्र साक्षिणम् आत्मानं यः वेद न स बध्यते ॥१५॥

सत्त्वं रजः तम	सत्त्व, रज तम,	**यः वेद**	जो जानता है
इति प्रकृतेः	ये प्रकृतिके	**न स बध्यते**	वह कर्म-बन्धनमें नहीं पड़ता ॥१५॥
गुणाः	गुण हैं,		
न आत्मनः	आत्माके नहीं,		
तत्र साक्षिण	इनमें तटस्थ दृष्टा		
आत्मानं	आत्माको		

पश्य मां निर्जितं शक्र वृक्णायुधभुजं मृधे ।
घटमानं यथाशक्ति तव प्राणजिहीर्षया ॥१६॥

पश्य मां निर्जितं शक्र वृक्ण आयुध भुजे मृधे घटमानं यथाशक्ति तव प्राण जिहीर्षया ॥१६॥

शक्र	इन्द्र !	**जिहीर्षया**	लेनेके लिए
मृधे निर्जितं	युद्धमें विजितप्राय	**यथाशक्ति**	यथाशक्ति
आयुध वृक्ण	तुम्हारे अस्त्रसे कटी	**घटमानं**	प्रयत्न करते
भुजं	भुजा (होनेपर भी)	**मां पश्य**	मुझे देखो ॥१६॥
तव प्राण	तुम्हारा प्राण		

प्राणग्लहोऽयं समर इष्वक्षो वाहनासनः ।
अत्र न ज्ञायतेऽमुष्य जयोऽमुष्य पराजयः ॥१७॥

प्राणग्लहः अयं समरः इषु अक्षः वाहन आसनः अत्र न ज्ञायते अमुष्य जयः अमुष्यः पराजयः ॥१७॥

अयं समरः	यह युद्ध	**अत्र अमुष्य**	इसमें अमुककी
प्राणग्लहः	प्राणकी बाजीका (जुआ) है,	**जयः**	विजय
		अमुष्य पराजयः	अमुककी पराजय
इषु अक्षः	(इसमें) बाण पासे हैं,	**न ज्ञायते**	नहीं जानी जा सकती ॥१७॥
वाहन आसनः	वाहन चौसर हैं,		

श्रीशुक उवाच–

इन्द्रो वृत्रवचः श्रुत्वा गतालोकमपूजयत् ।
गृहीतवज्रः प्रहसंस्तमाह गतविस्मयः ॥१८॥

इन्द्रः वृत्रवचः श्रुत्वा गत अलोकं अपूजयत् गृहीत वज्रः प्रहसन् तं आह गतविस्मयः ॥१८॥

गत अलीकं	निष्कपट	**गृहीत वज्रः**	फिर वज्र उठाकर
वृत्रवचः श्रुत्वा	वृत्रासुरके बचन सुनकर	**गतविस्मयः**	बिना आश्चर्यके
		प्रहसन्	हँसते हुए
इन्द्रः अपूजयत्	इन्द्रने उसका आदर किया,	**तं आह**	उससे बोले ॥१८॥

इन्द्र उवाच—

अहो दानव सिद्धोऽसि यस्य ते मतिरीदृशी ।
भक्तः सर्वात्मनाऽऽत्मानं सुहृदं जगदीश्वरम् ॥१९॥

अहो दानव सिद्धः असि यस्य ते मतिः ईदृशी भक्तः सर्वात्मना आत्मानं सुहृदं जगदीश्वरम् ॥१९॥

अहो दानव	अहो दानवराज !	**आत्मानं सुहृदं**	अपने (सच्चे) सुहृद
सिद्धः असि	(तुम तो) सिद्ध हो,	**जगदीश्वरं**	जगदीश्वरके
यस्य ते	जो तुम्हारी	**सर्वात्मना भक्तः**	सम्पूर्ण हृदयसे भक्त हो ॥१९॥
ईदृशी मतिः	ऐसी बुद्धि है,		

भवानतार्षीन्मायां वै वैष्णवीं जनमोहिनीम् ।
यद् विहायासुरं भावं महापुरुषतां गतः ॥२०॥

भवान् अतार्षीत् मायां वै वैष्णवीं जनमोहिनीं यत् विहाय आसुरं भावं महापुरुषतां गतः ॥२०॥

भवान्	आपने	**यत् आसुरं**	क्योंकि (अपने)असुर
जनमोहिनीं	लोगोंको मोहमें डालने वाली	**भावं**	स्वभावको
		विहाय	छोड़कर
वैष्णवीं मायां	भगवान्की मायाको	**महापुरुषतां गतः**	महापुरुष हो गये हो ॥२०॥
वै अतार्षीत्	निश्चय पारकर लिया,		

खल्विदं महदाश्चर्यं यद् रजःप्रकृतेस्तव ।
वासुदेवे भगवति सत्त्वात्मनि दृढा मतिः ॥२१॥

खलु इदं महत् आश्चर्यं यत् रजः प्रकृतेः तव वासुदेवे भगवति सत्त्व आत्मनि दृढा मतिः ॥२१॥

खलु इदं	अवश्य यह	तव सत्त्व	तुम्हारी सत्त्व
महत् आश्चर्यं	महान् आश्चर्यकी बात है	आत्मनि	स्वरूप
		भगवति वासुदेवे	भगवान् वासुदेवमें
यत् रजः प्रकृतेः	जो रजोगुणी स्वभाव	दृढा मतिः	दृढ़ बुद्धि लगी है ॥२१॥

यस्य भक्तिर्भगवति हरौ निःश्रेयसेश्वरे ।
विक्रीडतोऽमृताम्भोधौ किं क्षुद्रैः खातकोदकैः ॥२२॥

यस्य भक्तिः भगवति हरौ निःश्रेयसि ईश्वरे विक्रीडतः अमृत अम्भोधौ किं क्षुद्रैः खातक उदकैः ॥२२॥

निःश्रेयसि	परम कल्याणके	विक्रीडतः	खेलते हुएको
ईश्वरे	स्वामी	क्षुद्रैः खातक	तुच्छ गड्ढोंके
भगवति हरौ	भगवान् श्रीहरिमें	उदकैः किं	जलसे क्या प्रयोजन ॥२२॥
यस्य भक्तिः	जिसकी भक्ति है		
अमृत अम्भोधौ	(उस) अमृत-समुद्रमें		

श्रीशुक उवाच

इति ब्रुवाणावन्योन्यं धर्मजिज्ञासया नृप ।
युयुधाते महावीर्याविन्द्रवृत्रौ युधाम्पती ॥२३॥

इति ब्रुवाणाः अन्यः अन्यं धर्मजिज्ञासया नृप युयुधाते महावीर्याः इन्द्रवृत्रौ युधाम्पती ॥२३॥

नृप	राजन् !	युधाम्पती	योद्धाश्रेष्ठ
धर्मजिज्ञासया	धर्मको जाननेकी इच्छासे	महावीर्याः	परम-पराक्रमी
		इन्द्रवृत्रौ	इन्द्र और वृत्र
अन्यः अन्यं	एक दूसरेसे	युयुधाते	युद्ध करने लगे ॥२३॥
इति ब्रुवाणः	इस प्रकार कहते हुए		

आविध्य परिघं वृत्रः काष्णायसमरिन्दमः ।
इन्द्राय प्राहिणोद् घोरं वामहस्तेन मारिष ॥२४॥

आविध्य परिघं वृत्रः काष्णं आयसं अरिन्दमः इन्द्राय प्राहिणोत् घोरं वाम हस्तेन मारिष ॥२४॥

मारिष	परीक्षित !	**घोरं परिघं**	भयानक परिघ(दण्ड)
अरिन्दमः	शत्रुदमन	**आविध्य**	उठाकर
वृत्रः	वृत्रने	**वाम हस्तेन**	बायें हाथसे
काष्णं आयसं	कसे लोहे (फौलाद) का बना	**इन्द्राय**	इन्द्रपर
		प्राहिणोत्	प्रहार किया ॥२४॥

स तु वृत्रस्य परिघं करं च करभोपमम् ।
चिच्छेद युगपद् देवो वज्रेण शतपर्वणा ॥२५॥

स तु वृत्रस्य परिघं करं च करभ उपमं चिच्छेद युगपत् देवः वज्रेण शतपर्वणा ॥२५॥

स तु देवः	उन देवराजने तो	**करं च**	(उसके) हाथको भी
शतपर्वणा	सौ गाँठ वाले	**युगपत्**	एक साथ
वज्रेण	वज्रसे	**चिच्छेद**	काट दिया ॥२५॥
वृत्रस्य परिघं	वृत्रके परिघको		
करभ उपमं	और हाथीकी सूंड़के समान		

दोर्भ्यामुत्कृत्तमूलाभ्यां बभौ रक्तस्रवोऽसुरः ।
छिन्नपक्षो यथा गोत्रः खाद् भ्रष्टो वज्रिणा हतः ॥२६॥

दोर्भ्यां उत्कृत्त मूलाभ्यां बभौ रक्तस्रवः असुरः छिन्नपक्षः यथा गोत्रः खात् भ्रष्टः वज्रिणा हतः ॥२६॥

उत्कृत्त मूलाभ्यां	जड़से कटी हुई	**रक्तस्रवः बभौ**	रक्त बहाता ऐसा लगा
दोर्भ्यां असुरः	भुजाओंसे वृत्रासुर		

यथा वज्रिणा	जैसे इन्द्र द्वारा	**खात् भ्रष्टः गोत्रः**	आकाशसे गिरा पर्वत हो ॥२६॥
हतः	मारा गया		
छिन्नपक्षः	पंख कटा		

कृत्वाधरां हनुं भूमौ दैत्यो दिव्युत्तरां हनुम् ।
नभोगम्भीरवक्त्रेण लेलिहोल्बणजिह्वया ॥२७॥

कृत्वा अधरां हनुं भूमौ दैत्यः दिवि उत्तरां हनुं नभः गम्भीर वक्त्रेण लेलिहः उल्बण जिह्वया ॥२७॥

दैत्यः	वृत्रासुर	**गम्भीर वक्त्रेण**	गहरे मुखमें स्थित
अधरां हनुं	नीचेको ठोढ़ी	**उल्बण**	भयावनी
भूमौ	पृथ्वीसे तथा	**जिह्वया**	जीभसे
उत्तरां हनुं	ऊपरका ओष्ठ	**नभः लेलिहः**	आकाशको चाटता हुआ ॥२७॥
दिवि कृत्वा	स्वर्गसे लगाकर		

दंष्ट्राभिः कालकल्पाभिर्ग्रसन्निव जगत्त्रयम् ।
अतिमात्रमहाकाय आक्षिपंस्तरसा गिरीन् ॥२८॥

दंष्ट्राभिः कालकल्पाभिः ग्रसन्न इव जगत्त्रयं अतिमात्र महाकाय आक्षिपन् तरसा गिरीन् ॥२८॥

कालकल्पाभि	कालके समान	**तरसा गिरीन्**	अपने वेगसे पर्वतों-को
दंष्ट्राभिः	दाँतोंसे	**आक्षिपन्**	उलटता हुआ ॥२८॥
जगत्त्रयं	त्रिभुवनको		
ग्रसन्न इव	निगलता हुआ-सा		
अतिमात्र	बहुत ही		
महाकाय	बड़े शरीरवाला वह		

गिरिराट् पादचारीव पद्भ्यां निर्जरयन् महीम् ।
जग्रास स समासाद्य वज्रिणं सहवाहनम् ॥२९॥

गिरिराट् पादचारी इव पद्भ्यां निर्जरयन् महीं जग्रास स समासाद्य वज्रिणं सहवाहनम् ॥२९॥

पादचारी	पैरोंसे चलनेवाले	**सहवाहनं**	वाहन (ऐरावत)के साथ
गिरिराट् इव	पर्वतराजके समान	**वज्रिणं जग्रास**	इन्द्रको निगल लिया ॥२९॥
पद्भ्यां महीं	पैरोंसे पृथ्वीको		
निर्जरयन्	रौंदता		
स समासाद्य	उसने समीप पहुँचकर		

महाप्राणो महावीर्यो महासर्प इव द्विपम् ।
वृत्रग्रस्तं तमालक्ष्य सप्रजापतयः सुराः ।
हा कष्टमिति निर्विण्णाश्चुक्रुशुः समहर्षयः ॥३०॥

महाप्राणः महावीर्यः महासर्प इव द्विपं वृत्रग्रस्तं तं आलक्ष्य सप्रजापतयः सुराः हा कष्टं इति निर्विण्णाः चुक्रुशुः समहर्षयः ॥३०॥

महाप्राणः	महापराक्रमी	**आलक्ष्य**	देखकर
महावीर्यः	महाबलवान	**सप्रजापतयः**	प्रजापतियोंके साथ
महासर्प	अजगरकी	**सुराः**	देवता
इव	भाँति	**हा कष्टं**	'हाय-हाय बड़ा अनर्थ हुआ'
द्विपं	ऐरावत हाथीको	**इति**	इस प्रकार
तं	उन (इन्द्र) को	**समहर्षयः**	महर्षियोंके साथ
वृत्रग्रस्त	वृत्र द्वारा निगला गया	**चुक्रुशुः**	चिल्लाने लगे ॥३०॥

निगीर्णोऽप्यसुरेन्द्रेण न ममारोदरं गतः ।
महापुरुषसन्नद्धो योगमायाबलेन च ॥३१॥

निगीर्णः अपि असुरेन्द्रेण न ममार उदरं गतः महापुरुष सन्नद्धः योगमाया बलेन च ॥३१॥

असुरेन्द्रेण	असुरराज (वृत्र) द्वारा	सन्नद्धः	कवच धारण करनेसे
निगीर्णः अपि	निगल लिए जानेपर भी	च योगमाया बलेन	तथा योगमायाके बलसे
उदरं गतः	(उसके) पेटमें पहुँचकर	न ममार	(इन्द्र) मरे नहीं ॥३१॥
महापुरुष	भगवान नारायण रूपी		

भित्त्वा वज्रेणतत्कुक्षिं निष्क्रम्य बलभिद् विभुः ।
उच्चकर्त शिरः शत्रोर्गिरिशृङ्गमिवौजसा ॥३२॥

भित्त्वा वज्रेण तत् कुक्षिं निष्क्रम्य बलभित् विभुः उच्चकर्त शिरः शत्रोः गिरिशृङ्गं इव ओजसा ॥३२॥

तत् कुक्षिं	उसकी कोख	गिरिशृङ्गं इव	पर्वत शिखरके समान
वज्रेण भित्त्वा	वज्रसे फाड़कर	शत्रोः शिरः	शत्रुके सिरको
बलभित्	बल नामक दैत्यको मारनेवाले	ओजसा	उत्साहसे
विभुः	समर्थ इन्द्र	उच्चकर्त	काट डाला ॥३२॥
निष्क्रम्य	(वहांसे) निकलकर		

वज्रस्तु तत्कन्धरमाशुवेगः
कृन्तन् समन्तात् परिवर्तमानः ।
न्यपातयत् तावदहर्गणेन
यो ज्योतिषामयने वार्त्रहत्ये ॥३३॥

वज्रः तु तत् कन्धरं आशुवेगः कृन्तन् समन्तात् परिवतमानः न्यपातयत् तावत् अहर्गणेन यः ज्योतिषां अयने वार्त्रहत्ये ॥३३॥

आशुवेगः	तीव्र-वेग
वज्रः तु	वज्रने तो
समन्तात्	चारों ओरसे
तत् कन्धरं	उसके कण्ठको
कृन्तन्	काटते हुए
परिवर्तमानः	घूमते रहकर
न्यपातयत्	गिरा दिया
यः ज्योतिषां	जो सूर्यादि ग्रहोंका
अयने	उत्तरायण और दक्षिणायन) हैं
तावत् अहर्गणेन	उतने दिन (एक वर्ष)
वार्त्रहत्ये	वृत्र-वधमें लगे ॥३३॥

तदा च खे दुन्दुभयो विनेदु-
र्गन्धर्वसिद्धाः समहर्षिसङ्घाः ।
वार्त्रघ्नलिङ्गैस्तमभिष्टुवाना
मन्त्रैर्मुदा कुसुमैरभ्यवर्षन् ॥३४॥

तदा च खे दुन्दुभयः विनेदुः गन्धर्वसिद्धाः समहर्षिसङ्गाः वार्त्रघ्न लिङ्गैः तं अभिष्टुवाना मन्त्रैः मुदा कुसुमैः अभ्यवर्षन् ॥३४॥

तदा च खे	उस समय तो आकाशमें
दुन्दुभयः	दुन्दुभियां
विनेदु	बजने लगीं
गन्धर्वसिद्धाः	गन्धर्व और सिद्ध लोग
समहर्षिसङ्घाः	महर्षि समूहके साथ
वार्त्रघ्न लिङ्गैः	वृत्र-वधके पराक्रम सूचक
मन्त्रैः	मन्त्रोंसे
तं	उन
अभिष्टुवाना	इन्द्रकी स्तुति करते हुए
मुदा कुसुमैः	प्रसन्नतासे फूलोंकी
अभ्यवर्षन्	वर्षा करने लगे ॥३४॥

वृत्रस्य देहान्निष्क्रान्तमात्मज्योतिररिन्दम ।
पश्यतां सर्वलोकानामलोकं समपद्यत ॥३५॥

वृत्रस्य देहात् निष्क्रान्तं आत्मज्योतिः अरिन्दम पश्यतां सर्वलोकानां अलोकं समपद्यत ॥३५॥

अरिन्दय	शत्रु-दमन परीक्षित !	**पश्यतां**	देखते हुए
वृत्रस्य देहात्	वृत्र के शरीरसे	**अलोकं**	लोकातीत भगवान्-में
निष्क्रान्तं	निकली	**समपद्यत**	लीन हो गयी ॥३५॥
आत्मज्योति	आत्मज्योति		
सर्वलोकानां	सब लोगोंके		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे वृत्रवधो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच—

वृत्रे हते त्रयो लोका विना शक्रेण भूरिद ।
सपाला ह्यभवन् सद्यो विज्वरा निर्वृतेन्द्रियः ॥ १ ॥

वृत्रे हते त्रयः लोका विना शक्रेण भूरिद सपाला हि अभवन् सद्यः विज्वरा निर्वृत इन्द्रियः ॥१॥

भूरिद	महादानी परीक्षित!	**त्रयः लोका**	तीनों लोक
वृत्रे हते	वृत्रके मारे जानेपर	**सद्यः**	तत्काल
विनाशक्रेण	इन्द्रको छोड़कर	**विज्वरा**	निश्चिन्त
सपाला हि	लोकापालोंके साथ ही	**निर्वृत इन्द्रियः**	प्रसन्नेन्द्रिय
		अभवन्	हो गये ॥१॥

देवर्षिपितृभूतानि दैत्या देवानुगाः स्वयम् ।
प्रतिजग्मुः स्वधिष्ण्यानि ब्रह्मेशेन्द्रादयस्ततः ॥ २ ॥

देव ऋषि पितृ भूतानि दैत्या देव अनुगाः स्वयं प्रतिजग्मुः स्वधिष्ण्यानि ब्रह्मा ईश इन्द्र आदयः ततः ॥२॥

देव ऋषि पितृ	देवता, ऋषि, पितर,	**आदयः ततः**	आदि वहाँसे
भूतानि दैत्या	भूतगण, दैत्य,	**स्वधिष्ण्यानि**	अपने स्थानोंको
देव अनुगाः	देवताओंके अनुचर (गन्धर्वादि)	**स्वयं**	(बिना पूछे)अपने आप
ब्रह्मा ईश इन्द्र	ब्रह्मा, शिव, इन्द्र	**प्रतिजग्मुः**	लौट गये ॥२॥

राजोवाच—

इन्द्रस्यानिर्वृतेर्हेतुं श्रोतुमिच्छामि भो मुने ।
येनासन् सुखिनो देवा हरेर्दुःखंकुतोऽभवत् ॥ ३ ॥

इन्द्रस्य अनिर्वृतेः हेतुं श्रोतुं इच्छामि भो मुने येन आसन् सुखिनः देवा हरेः दुःखं कुतः अभवत् ॥३॥

भो मुने	हे महामुनि !	येन देवा	जिस(घटना)से देवता
इन्द्रस्य	इन्द्रकी	सुखिनः आसन्	सुखी हुए
अनिर्वृतेः	अप्रसन्नताका	हरेः दुःखं	(उसीसे)इन्द्रको दुःख
हेतुं श्रोतुं	कारण सुनना	कुतः अभवत्	कैसे हो गया ?
इच्छामि	चाहता हूँ,		॥३॥

श्रीशुक उवाच—

वृत्रविक्रमसंविग्नाः सर्वे देवाः सहर्षिभिः ।
तद्वधायार्थयन्निन्द्रं नैच्छद् भीतो बृहद्वधात् ॥ ४ ॥

वृत्रविक्रम संविग्नाः सर्वे देवाः सह ऋषिभिः तत् वधाय अर्थयन् इन्द्रं न इच्छत् भीतः बृहत् वधात् ॥४॥

वृत्रविक्रम	वृत्रके पराक्रमसे	इन्द्रं अर्थयन्	इन्द्रसे प्रार्थना करने
संविग्नाः	अत्यन्त उद्विग्न होकर		लगे
		बृहत् वधात्	किन्तु ब्रह्महत्यासे
सह ऋषिभिः	ऋषियोंके साथ	भीतः	डरकर
सर्वे देवाः	सब देवता	न इच्छत्	(उन्होंने मारना)
तत् वधाय	उसको मारनेके लिए		नहीं चाहा ॥४॥

इन्द्र उवाच—

स्त्रीभूजलद्रुमैरेनो विश्वरूपवधोद्भवम् ।
विभक्तमनुगृह्णद्भिर्वृत्रहत्यां क्व मार्ज्म्यहम् ॥ ५ ॥

स्त्री भू जल द्रुमैः एनः विश्वरूप वध उद्भवं विभक्तं अनुगृह्णद्भिः वृत्र हत्यां क्व माज्म्यं अहं ॥५॥

विश्वरूप	विश्वरूपके	**द्रुमैः विभक्तं**	वृक्षोंने बाँट लिया,
वध उद्भवं	वधसे उत्पन्न	**वृत्र हत्यां**	(अब) वृत्रकी हत्या-
एनः	पाप		को
अनुगृह्णद्भिः	कृपा करके	**अहं क्व**	मैं कैसे
स्त्री भू जल	स्त्री, भूमि, जल,	**माज्म्यं**	छुड़ाऊँगा ॥५॥

श्रीशुक उवाच-

ऋषयस्तदुपाकर्ण्य महेन्द्रमिदमब्रुवन् ।

ऋषयः तत् उपाकर्ण्य महेन्द्रं इदं अब्रुवन् ।

तत् उपाकर्ण्य	यह सुनकर	**इदं अब्रुवन्**	यह कहा—
ऋषयः महेन्द्रं	ऋषियोंने इन्द्रसे		

ऋषय ऊचुः—*

याजयिष्याम भद्रं ते हयमेधेन मा स्म भैः ॥ ६ ॥

याजयिष्यामि भद्रं ते हयमेधेन मा स्म भैः ॥६॥

ते भद्रं	तुम्हारा कल्याण	**याजयिष्यामि**	(हम तुमसे) यजन
मा स्म भैः	(इससे) डरो मत,		करा देंगे ॥६॥
हयमेधेन	अश्वमेध-यज्ञ द्वारा		

हयमेधेन पुरुषं परमात्मानमीश्वरम् ।
इष्ट्वा नारायणं देवं मोक्ष्यसेऽपि जगद्वधात् ॥ ७ ॥

हयमेधेन पुरुषं परमात्मानं ईश्वरं इष्ट्वा नारायणं देवं मोक्ष्यसे अपि जगत् वधात् ॥७॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

हयमेधेन	अश्वमेध-यज्ञ द्वारा	**इष्ट्वा**	आराधना करके
पुरुषं ईश्वरं	परम पुरुष, सर्व-समर्थ,	**जगत् वधात्**	सारे संसारके वधसे
		अपि	भी
परमात्मानं	परमात्मा	**मोक्ष्यसे**	छूट जाओगे ॥७॥
नारायणं देवं	नारायणदेवकी		

ब्रह्महा पितृहा गोघ्नो मातृहाऽऽचार्यहाघवान् ।
श्वादः पुल्कसको वापि शुद्ध्येरन् यस्य कीर्तनात् ॥८॥

ब्रह्महा पितृहा गोघ्नः मातृहा आचार्यहा अघवान् श्वादः पुल्कसकः वा अपि शुद्ध्येरन् यस्य कीर्तनात् ॥८॥

यस्य कीर्तनात्	जिनके (नामका) कीर्तन करनेसे	**आचार्यहा**	आचार्यको मारने-वाला
ब्रह्महा	ब्रह्म-हत्यारा	**वा अघवान्**	अथवा पापी
पितृहा	पिताको मारनेवाला	**श्वादः**	चाण्डाल
गोघ्नः	गौ-हत्या करनेवाला	**पुल्कसकः अपि**	कसाई भी
मातृहा	माताकी हत्या करनेवाला	**शुद्ध्येरन्**	शुद्ध हो जाते हैं ॥८॥

तमश्वमेधेन महामखेन
श्रद्धान्वितोऽस्माभिरनुष्ठितेन ।
हत्वापि सब्रह्म चराचरं त्वं
न लिप्यसे किं खलनिग्रहेण ॥ ९ ॥

तं अश्वमेधेन महामखेन श्रद्धा अन्वितः अस्माभिः अनुष्ठितेन हत्वा अपि स ब्रह्म चर अचरं त्वं न लिप्यसे किं खल निग्रहेण ॥९॥

श्रद्धा अन्वितः	श्रद्धा सहित	**अश्वमेधेन**	अश्वमेध द्वारा
अस्माभिः	हम लोगों द्वारा	**तं अनुष्ठितेन**	उन (नारायणका) अनुष्ठान करके
महामखेन	महायज्ञ		

त्वं स ब्रह्म	तुम ब्रह्माके साथ	**खल निग्रहेण किं**	(फिर) दुष्ट-दलन-
चर अचरं	सब जंगम-स्थावर (संसार) को		की तो बात ही क्या ॥९॥
हत्वा अपि	मारकर भी		
लिप्यसे न	(पापसे) लिप्त नहीं होंगे		

श्रीशुक उवाच-

एवं सञ्चोदितो विप्रैर्मरुत्वानहनद्रिपुम् ।
ब्रह्महत्या हते तस्मिन्नाससाद वृषाकपिम् ॥१०॥

एवं सञ्चोदितः विप्रैः मरुत्वान् अहनत् रिपुं ब्रह्महत्या हते तस्मिन् आससाद वृषाकपिम् ॥१०॥

एवं विप्रैः	इस प्रकार ब्राह्मणों द्वारा	**तस्मिन् हते**	उसके मारे जानेपर
सञ्चोदितः	प्रेरित किये जानेपर	**ब्रह्महत्या**	ब्रह्म-हत्या
मरुत्वान्	इन्द्रने	**वृषाकपिं**	इन्द्रके
रिपुं अहनत्	शत्रुको मार दिया,	**आससाद**	पास आयी ॥१०॥

तयेन्द्रः स्मासहत् तापं निर्वृतिर्नामुमाविशत् ।
ह्रीमन्तं वाच्यतां प्राप्तं सुखयन्त्यपि नो गुणाः ॥११॥

तया इन्द्रः स्म असहत् तापं निर्वृतिः न अमुं आविशत् ह्रीमन्तं वाच्यतां प्राप्तं सुखयन्ति अपि नः गुणाः ॥११॥

तया इन्द्रः	उसके कारण इन्द्र-को	**वाच्यतां प्राप्तं**	कलङ्क लग जानेपर
तापं असहत् स्म	संताप सहना पड़ा	**गुणाः अपि**	(उसके धैर्यादि) गुण भी
अमुं निर्वृतिः	उनको शान्ति	**सुखयन्ति नः**	सुखी नहीं कर पाते ॥११॥
न आविशत्	नहीं प्राप्त हुई		
ह्रीमन्तं	लज्जाशील (व्यक्ति) को		

तां ददर्शानुधावन्तीं चाण्डालीमिव रूपिणीम् ।
जरया वेपमानाङ्गीं यक्ष्मग्रस्तामसृक्पटाम् ॥१२॥

तां ददर्श अनुधावन्तीं चाण्डालीं इव रूपिणीं जरया वेपमान अङ्गीं यक्ष्मग्रस्तां असृक्पटाम् ॥१२॥

तां रूपिणीं	उस साकार हुई (ब्रह्म-हत्या)को	**असृक्पटां**	रक्त लथपथ वस्त्रा
जरया	बुढ़ापेसे	**चाण्डालीं इव**	चाण्डालीके समान
वेपमान अङ्गीं	काँपते शरीर वाली,	**अनुधावन्तीं**	पीछे दौड़ती
यक्ष्मग्रस्तां	यक्ष्मासे ग्रस्त	**ददर्श**	(इन्द्रने) देखा ॥१२॥

विकीर्यपलितान् केशांस्तिष्ठ तिष्ठेति भाषिणीम् ।
मीनगन्ध्यसुगन्धेन कुर्वतीं मार्गदूषणम् ॥१३॥

विकीर्य पलितान् केशान् तिष्ठ तिष्ठ इति भाषिणीं मीनगन्ध्य सुगन्धेन कुर्वतीं मार्गदूषणम् ॥१३॥

पालितान्	पके	**मीनगन्ध्य**	मछली-गन्ध वाली
केशान्	बालोंको	**सुगन्धेन**	श्वाससे
विकीर्य	फैलाये	**मार्गदूषणं**	मार्गको दूषित (दुर्गन्धित)
तिष्ठ तिष्ठ	'ठहर जा ! ठहर जा !'	**कुर्वतीं**	करती हुई ॥१३॥
इति भाषिणीं	ऐसा चिल्लाती		

नभो गतो दिशः सर्वाः सहस्राक्षो विशाम्पते ।
प्रागुदीचीं दिशं तूर्णं प्रविष्टो नृप मानसम् ॥१४॥

नभः गतः दिशः सर्वाः सहस्राक्षः विशाम्पते प्राक् उदीचीं दिशं तूर्णं प्रविष्टः नृप मानसम् ॥१४॥

विशाम्पते नृप	व्यापारियोंके रक्षक राजन् !	**सहस्राक्षः**	इन्द्र (उसके भय-से)

नभः सर्वाः दिश	आकाशमें और सब दिशाओंमें	मानसं	(स्थित) मान-सरोवरमें
गतः	गये (अन्तमें)	तूर्णं प्रविष्टः	शीघ्रतासे प्रवेश किया ॥१४॥
प्राक् उदीचीं दिशं	पूर्वोत्तर (ईशान) दिशामें		

स आवसत्पुष्करनालतन्तू-
नलब्धभोगो यदिहाग्निदूतः ।
वर्षाणि साहस्रमलक्षितोऽन्तः
स चिन्तयन् ब्रह्मवधाद् विमोक्षम् ॥१५॥

स आवसत् पुष्कर नाल तन्तून् अलब्ध भोगः यत् इह अग्निदूतः वर्षाणि साहस्रं अलक्षितः अन्तः स चिन्तयन् ब्रह्मवधात् विमोक्षम् ॥१५॥

स पुष्कर नाल तन्तून्	वे (वहाँ) कमल-नालके तन्तुमें	अलब्ध भोगः	कोई भोग (आहार) नहीं मिला
वर्षाणि साहस्रं	सहस्र वर्ष तक	यत् अग्निदूतः	क्योंकि अग्नि ही (उन्हें) देनेवाले हैं
ब्रह्मवधात् विमोक्षं	ब्रह्म-हत्यासे छुटकारे (के उपाय) को	इह अन्तः अलक्षितः	यहाँ (जलके) भीतर वे (अग्नि) दीख नहीं सकते थे ॥१५॥
अचिन्तयन् आवसत्	सोचते हुए निवास करते रहे ।		

तावत्त्रिणाकं नहुषः शशास
विद्यातपोयोगबलानुभावः ।
स सम्पदैश्वर्यमदान्धबुद्धि-
र्नीतस्तिरश्चां गतिमिन्द्रपत्न्या ॥१६॥

तावत् त्रिणाकं नहुषः शशास विद्या तपः योगबल अनुभावः स सम्पत् ऐश्वर्य मद अन्ध बुद्धिः नीतः तिरश्चां गतिं इन्द्रपत्न्या ॥१६॥

तावत्	उतने समय तक
विद्या तपः	विद्या, तपस्या
योगबल	योग-बलके
अनुभावः	प्रभावसे
नहुषः	राजा नहुषने
त्रिणाकं शशास	स्वर्गका शासन किया।
स सम्पत्	वह सम्पत्ति और
ऐश्वर्य	ऐश्वर्यके
मद अन्ध बुद्धिः	मदसे बुद्धिसे अन्धा (अविवेकी) होनेपर
इन्द्रपत्न्या	इन्द्रकी पत्नी शची द्वारा
तिरश्चां गतिं	तिर्यक्योनि (सर्प-योनि)में
नीतः	पहुँचा दिया गया ॥१६॥

ततो गतो ब्रह्मगिरोपहूत
ऋतम्भरध्याननिवारिताघः ।
पापस्तु दिग्देवतया हतौजा-
स्तं नाभ्यभूदवितं विष्णुपत्न्या ॥१७॥

ततः गतः ब्रह्मगिरः उपहूत ऋतम्भर ध्यान निवारित अघः पापः तु दिक् देवतया हत ओजाः तं न अभ्यभूत् अवितं विष्णुपत्न्या ॥१७॥

विष्णुपत्न्या	(कमल-वनस्था) लक्ष्मी द्वारा
अवितं	सुरक्षित
दिक् देवतया	(ईशान) दिशाके देवता (रुद्र) द्वारा
हत ओजाः	निस्तेज किया गया
पापः तु	पाप तो
तं न अभ्यभूत्	उन्हें आक्रान्त नहीं कर सका,
ततः ऋतम्भर	फिर सत्यके पोषक भगवान्के
ध्यान	ध्यानसे
निवारित अघः	पाप दूर हो जाने-पर
ब्रह्मगिर	ब्राह्मणोंके सन्देश द्वारा
उपहूत गतः	बुलानेपर (स्वर्ग) गये ॥१७॥

तं च ब्रह्मर्षयोऽभ्येत्य हयमेधेन भारत ।
यथावद्दीक्षयाञ्चक्रुः पुरुषाराधनेन ह ॥१८॥

तं च ब्रह्मर्षयः अभि एत्य हयमेधेन भारत यथावत् दीक्षयाम् चक्रुः पुरुष आराधनेन ह ॥१८॥

भारत	परीक्षित् !	**हयमेधेन**	अश्वमेध यज्ञ द्वारा
ब्रह्मर्षयः	ब्रह्मर्षि लोग	**पुरुष आराधनेन**	परम पुरुषकी आराधना की
तं च	उनके पास		
अभि एत्य	चारों ओरसे आकार	**ह चक्रुः**	निश्चित
यथावत्	विधिपूर्वक	**दीक्षयान**	दीक्षा दी ॥१८॥

अथेज्यमाने पुरुषे सर्वदेवमयात्मनि ।
अश्वमेधे महेन्द्रेण वितते ब्रह्मवादिभिः ॥१९॥

अथ इज्यमाने पुरुषे सर्व देवमय आत्मनि अश्वमेधे महेन्द्रेण वितते ब्रह्मवादिभिः ॥१९॥

अथ	तब	**सर्व देवमय**	सर्व देवमय
ब्रह्मवादिभिः	वेदज्ञ (ऋषियों) द्वारा	**आत्मनि पुरुषे**	पुरुषोत्तम भगवान्-की
महेन्द्रेण वितते	महेन्द्र द्वारा किये	**इज्यमाने**	आराधना होनेपर ॥१९॥
अश्वमेधेन	अश्वमेध यज्ञ द्वारा		

स वै त्वाष्ट्रवधो भूयानपि पापचयो नृप ।
नीतस्तेनैव शून्याय नीहार इव भानुना ॥२०॥

स वै त्वाष्ट्रवधः भूयान् अपि पाप चयः नृप नीतः तेन एव शून्याय नीहार इव भानुना ॥२०॥

नृप	राजन् !	**तेन एव**	उस (अश्वमेध यज्ञ) से ही
वै स	निश्चय वह		
त्वाष्ट्रवधः	वृत्र वधकी	**भानुना**	सूर्य द्वारा
भूयान् पाप	बहुत बड़ी पाप	**नीहार इव**	कुहरेके समान
चयः	राशि थी	**शून्याय नीतः**	शून्य बना दी गयी ॥२०॥
अपि	फिर भी		

स वाजिमेधेन यथोदितेन
वितायमानेन मरीचिमिश्रैः ।
इष्ट्वाधियज्ञं पुरुषं पुराण-
मिन्द्रो महानास विधूतपापः ॥२१॥

स वाजिमेधेन यथा उदितेन विताय मानेन मरीचिमिश्रैः इष्ट्वा अधियज्ञं पुरुषं पुराणं इन्द्रः महानास विधूत पापः ॥२१॥

मरीचिमिश्रैः	मरीचि आदि (ऋषियों) द्वारा	**पुराणं पुरुषं**	पुराण-पुरुषका
		इष्ट्वा	यजन करके
यथा उदितेन	विधिपूर्वक	**इन्द्रः**	इन्द्र
विताय मानेन	कराये गये	**महानास**	ब्रह्म-हत्याके
स वाजिमेधेन	उस अश्वमेध-यज्ञसे	**विधूत पापः**	पापसे धुल (छूट) गये ॥२१॥
अधियज्ञं	यज्ञाधिष्ठाता		

इदं महाख्यानमशेषपाप्मनां
प्रक्षालनं तीर्थपदानुकीर्तनम् ।
भक्त्युच्छ्रयं भक्तजनानुवर्णनं
महेन्द्रमोक्षं विजयं मरुत्वतः ॥२२॥

इदं महा आख्यानं अशेष पाप्मनां प्रक्षालनं तीर्थपद अनुकीर्तनं भक्ति उच्छ्रयं भक्तजन अनुवर्णनं महेन्द्रमोक्षं विजयं मरुत्वतः ॥२२॥

मरुत्वतः विजयं	इन्द्रकी विजय	**इदं महा**	यह श्रेष्ठ
महेन्द्रमोक्षं	उन महेन्द्रकी (पापोंसे) मुक्ति	**आख्यानं**	आख्यान
		अशेष पाप्मनां	समस्त पापोंको
भक्तजन	भक्त-श्रेष्ठ (वृत्रका)	**प्रक्षालनं**	धो देनेवाला और
अनुवर्णनं	वर्णन	**भक्ति उच्छ्रयं**	भक्ति-वर्धक है ॥२२॥
तीर्थपद	पवित्र चरण भगवान्‌का		
अनुकीर्तनं	बार-बार कीर्तन रूप		

पठेयुराख्यानमिदं सदा बुधाः
शृण्वन्त्यथो पर्वणि पर्वणीन्द्रियम् ।
धन्यं यशस्यं निखिलाघमोचनं
रिपुञ्जयं स्वस्त्ययनं तथाऽऽयुषम् ॥२३॥

पठेयुः आख्यानं इदं सदा बुधाः शृण्वन्ति अथ पर्वणि पर्वणि इन्द्रियं धन्यं यशस्यं निखिल अघ मोचनं रिपुञ्जयं स्वस्त्ययनं तथा आयुषम् ॥२३॥

इदं इन्द्रियं	यह इन्द्र सम्बन्धी	**स्वस्त्ययनं**	कल्याणकारी
आख्यानं	आख्यानको जो	**तथा आयुषं**	आयु अभिवर्धक है
धन्यं यशस्यं	धन देनेवाला, यश देनेवाला	**बुधाः सदा**	बुद्धिमानोंको सदा
		पठेयुः	पढ़ना चाहिए
निखिल अघ	सम्पूर्ण पापोंसे	**अथ पर्वणि**	अथवा विशेष पर्वों-
मोचनं	छुड़ानेवाला		पर
रिपुञ्जयं	शत्रुपर विजय देने- वाला	**शृण्वन्ति**	(वे बुद्धिमान इसे) सुनते हैं ॥२३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे इन्द्रविजयो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

राजो उवाच–*

रजस्तमः स्वभावस्य ब्रह्मन् वृत्रस्य पाप्मनः ।
नारायणे भगवति कथमासीद् दृढा मतिः ॥१॥

रजः तमः स्वभावस्य ब्रह्मन् वृत्रस्य पाप्मनः नारायणे भगवति कथं आसीत् दृढा मतिः ॥१॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**भगवति**	भगवान्
रजः तमः	रजो गुणी तमोगुणी	**नारायणे**	नारायणमें
स्वभावस्य	स्वभाव वाले	**दृढा मतिः**	दृढ़ बुद्धि
पाप्मनः वृत्रस्य	पापी वृत्रासुरकी	**कथं आसीत्**	कैसे थी ॥१॥

देवानां शुद्धसत्त्वानामृषीणां चामलात्मनाम् ।
भक्तिर्मुकुन्दचरणे न प्रायेणोपजायते ॥२॥

देवानां शुद्ध सत्त्वानां ऋषीणां च अमल आत्मनां भक्तिः मुकुन्द चरणे न प्रायेण उपजायते ॥२॥

शुद्ध सत्त्वानां	शुद्ध सत्त्वमय	**मुकुन्द चरणे**	भगवान् मुकुन्दके
देवानां	देवताओंकी		चरणोंमें
च अमल	तथा निर्मल	**भक्तिः प्रायेण**	भक्ति प्रायः
आत्मनां	अन्तःकरण	**न उपजायते**	नहीं उत्पन्न
ऋषीणां	ऋषियोंकी		होती ॥२॥

रजोभिः समसंख्याताः पार्थिवैरिह जन्तवः ।
तेषां ये केचनेहन्ते श्रेयो वै मनुजादयः ॥३॥

---

* यहां अन्य प्रतियोंमें 'परीक्षिदुवाच' है ।

रजोभिः सम् असंख्याताः पार्थिवैः इह जन्तवः तेषां ये केचन ईहन्ते श्रेयः वै मनुज आदयः ॥३॥

इह जन्तवः	इस संसारमें प्राणी	**ये केचन**	जो कुछ
पार्थिवैः	पृथ्वीकी	**मनुज आदयः**	मनुष्य आदि हैं
रजोभिः	धूलिकणके	**वै श्रेयः**	निश्चय वही
सम असंख्याताः	समान असंख्य हैं,		कल्याणके लिए
तेषां	उनमें से	**ईहन्ते**	प्रयत्न करते हैं ॥३॥

प्रायो मुमुक्षवस्तेषां केचनैव द्विजोत्तम ।
मुमुक्षूणां सहस्रेषु कश्चिन्मुच्येत सिध्यति ॥४॥

प्रायः मुमुक्षवः तेषां केचन एव द्विजोत्तम मुमुक्षूणां सहस्रेषु कश्चित् मुच्येत सिध्यति ॥४॥

द्विजोत्तम	ब्रह्मर्षि श्रेष्ठ !	**सहस्रेषु**	हजारों
तेषां केचन एव	उन (मनुष्यों) में कुछ ही	**मुमुक्षूणां**	मुमुक्षुओंमें
मुमुक्षवः	मोक्ष-प्राप्तिकी इच्छा वाले (होते) हैं	**कश्चित्**	कोई
		मुच्येत सिध्यति	सफल होकर मुक्त होता है ॥४॥

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः ।
सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने ॥५॥

मुक्तानां अपि सिद्धानां नारायण परायणः सुदुर्लभः प्रशान्त आत्मा कोटिषु अपि महामुने ॥५॥

महामुने	महामुनि !	**नारायण**	भगवान् नारायणके
सिद्धानां	सफल हुए	**परायणः**	परायण
मुक्तानां अपि	मुक्त-पुरुषोंमें भी	**प्रशान्त आत्मा**	प्रशान्त-चित्त
कोटिषु अपि	करोड़ोंमें भी	**सुदुर्लभः**	अत्यन्त दुर्लभ हैं ॥५

वृत्रस्तु स कथं पापः सर्वलोकोपतापनः ।
इत्थं दृढमतिः कृष्ण आसीत् संग्राम उल्बणे ॥६॥

वृत्रः तु स कथं पापः सर्वलोक उपतापनः इत्थं दृढमतिः कृष्ण आसीत् संग्राम उल्बणे ॥६॥

सर्वलोक	सब लोकोंको	**संग्राम उल्बणे**	घोर युद्धमें
उपतापनः	सन्तप्त करनेवाला	**कृष्ण**	श्रीकृष्णमें
स पापः	वह पापी	**इत्थं दृढमतिः**	इस प्रकार दृढ़ बुद्धि
वृत्रतु	वृत्र तो	**कथं आसीत्**	कैसे था ॥६॥

अत्र नः संशयो भूयाञ्छ्रोतुं कौतूहलं प्रभो ।
यः पौरुषेण समरे सहस्राक्षमतोषयत् ॥७॥

अत्र नः संशयः भूयान् श्रोतुं कौतूहलं प्रभो यः पौरुषेण समरे सहस्राक्षं अतोषयत् ॥७॥

यः समरे	जिसने युद्धमें	**नः अत्र**	मुझे इस विषयमें
पौरुषेण	अपने पराक्रमसे	**भूयान् सशयः**	बहुत सन्देह है और
सहस्राक्षं	इन्द्रको	**श्रोतुं कौतूहलं**	सुननेका कुतूहल
अतोषयत्	सन्तुष्ट कर दिया,		है ॥७॥
प्रभो	प्रभो !		

सूत उवाच–

परीक्षितोऽथ संप्रश्नं भगवान् बादरायणिः ।
निशम्य श्रद्दधानस्य प्रतिनन्द्य वचोऽब्रवीत् ॥८॥

परीक्षतः अथ सम्प्रश्नं भगवान् बादरायणिः निशम्य श्रद्दधानस्य प्रतिनन्द्य वचः अब्रवीत् ॥८॥

अथ श्रद्दधानस्य	तब श्रद्धा करनेवाले	**बादरायणिः**	व्यास-नन्दनने
परीक्षतः	परीक्षितके	**प्रतिनन्द्य**	उसका अभिनन्दन करके
सम्प्रश्नं	उचित प्रश्नको	**वचः अब्रवीत्**	सार्थक वाणी बोले ॥८॥
निशम्य	सुनकर		
भगवान्	भगवान्		

श्रीशुक उवाच–

शृणुष्वावहितो राजन्नितिहासमिमं यथा ।
श्रुतं द्वैपायनमुखान्नारदाद्देवलादपि ॥९॥

शृणुष्व अवहितः राजन् इतिहासं इमं यथा श्रुतं द्वैपायन मुखात् नारदात् देवलात् अपि ॥९॥

राजन्	राजन् !	**इमं इतिहासं**	इस इतिहासको
द्वैपायन मुखात्	(अपने पिता) व्यासजीके मुखसे	**यथा श्रुतं**	जैसा (मैंने) सुना है (उसे)
नारदात्	नारदजीसे तथा	**अवहितः श्रणुष्व**	सावधान होकर सुनो ॥९॥
देवलात् अपि	महर्षि देवलसे भी		

आसीद्राजा सार्वभौमः शूरसेनेषु वै नृप ।
चित्रकेतुरिति ख्यातो यस्यासीत् कामधुङ्महो ॥१०॥

आसीत् राजा सार्वभौमः शूरसेनेषु वै नृप चित्रकेतुः इति ख्यातः यस्य आसीत् कामधुक् मही ॥१०॥

नृप	राजन् !	**आसीत्**	था ।
शूरसेनेषु	शूरसेन देशमें	**यस्य मही**	जिसके लिए पृथ्वी
वै सार्वभौमः	निश्चय चक्रवर्ती	**कामधुक्**	इच्छानुसार (अन्नादि) देनेवाली
राजा चित्रकेतुः	राजा चित्रकेतु		
इति ख्यातः	इस नामसे प्रसिद्ध	**आसीत्**	थी ॥१०॥

तस्य भार्यासहस्राणां सहस्राणि दशाभवन् ।
सान्तानिकश्चापि नृपो न लेभे तासु सन्ततिम् ॥११॥

तस्य भार्या सहस्राणां सहस्राणि दश अभवन् सान्तानिकः च अपि नृपः न लेभे तासु सन्ततिम् ॥११॥

तस्य	उनके	**च अपि**	पर भी
सहस्राणां-		**नृपः**	राजाने
सहस्राणि दश	एक करोड़	**तासु सन्ततिं**	उनमें सन्तान
भार्या अभवन्	रानियां थीं ।	**न लेभे**	नहीं पायी ॥११॥
सान्तानिकः	सन्तान उत्पन्न करनेमें समर्थ होने		

रूपौदार्यवयोजन्मविद्यैश्वर्यश्रियादिभिः ।
सम्पन्नस्य गुणैः सर्वैश्चिन्ता वन्ध्यापतेरभूत् ॥१२॥

रूप औदार्य वयः जन्म विद्या ऐश्वर्य श्रिय आदिभिः सम्पन्नस्य गुणैः सर्वैः चिन्ता वन्ध्यापतेः अभूत् ॥१२॥

रूप औदार्य	सुन्दर रूप, उदारता,	**सर्वैः गुणैः**	सब गुणोंसे
		सम्पन्नस्य	सम्पन्न
वयः जन्म	युवावस्था, उच्च-कुलमें जन्म,	**वन्ध्यापतेः**	(उस) वन्ध्याओंके पति हो
विद्या ऐश्वर्य	विद्या, ऐश्वर्य	**चिन्ता अभूत्**	चिन्ता हो गयी ॥१
श्रिय आदिभिः	श्री आदि		

न तस्य संपदः सर्वा महिष्यो वामलोचनाः ।
सार्वभौमस्य भूश्चेयमभवन् प्रीतिहेतवः ॥१३॥

न तस्य सम्पदः सर्वा महिष्यः वामलोचनाः सार्वभौमस्य भूः च इयं अभवन् प्रीति हेतवः ॥१३॥

सर्वा सम्पदः	सब सम्पत्ति,	**तस्य सार्व-**	उस चक्रवर्ती
वामलोचनाः	सुन्दरी	**भौमस्य**	राजाकी
महिष्यः	महारानियां,	**प्रीति हेतवः**	प्रसन्नताके कारण
च इयं भूः	तथा यह पृथ्वी	**न अभवन्**	नहीं हो सके ॥१३॥

तस्यैकदा तु भवनमङ्गिरा भगवानृषिः ।
लोकाननुचरन्नेतानुपागच्छद्यदृच्छया ॥१४॥

तस्य एकदा तु भवनं अङ्गिरा भगवान् ऋषिः लोकान् अनुचरन् एतान् उपागच्छत् यदच्छया ॥१४॥

एतान् लोकान्	इन लोकोंमें	**तस्य भवनं**	उस (राजा) के सदनमें
अनुचरन्	विचरण करते हुए	**भगवान्**	भगवान्
यदृच्छया	संयोगवश	**अङ्गिरा ऋषिः**	अंगिरा ऋषि
एकदा तु	एक समय तो	**उपागच्छत्**	पहुँच गये ॥१४॥

तं पूजयित्वा विधिवत्प्रत्युत्थानार्हणादिभिः ।
कृतातिथ्यमुपासीदत्सुखासीनं समाहितः ॥१५॥

तं पूजयित्वा विधिवत् प्रत्युत्थान अर्हणदिभिः कृत आतिथ्यं उपासीदत् सुखासीनं समाहितः ॥१५॥

विधिवत्	विधि पूर्वक	**सुखासीनं**	सुख-पूर्वक बैठेके
प्रत्युत्थान	सम्मानमें खड़े होने	**समाहितः**	शान्त-भावसे
अर्हणादिभिः	पूजा-सामग्री आदिसे	**उपासीदत्**	(राजा) समीप बैठ गया ॥१५॥
तं पूजयित्वा	उनका पूजन करके		
आतिथ्यं कृत	अतिथि-सत्कार (भोजनादि) करके		

महर्षिस्तमुपासीनं प्रश्रयावनतं क्षितौ ।
प्रतिपूज्य महाराज समाभाष्येदमब्रवीत् ॥१६॥

महर्षिः तं उपासीनं प्रश्रय अवनतं क्षितौ प्रतिपूज्य महाराज सम आभाष्य इदं अब्रवीत् ॥१६॥

महाराज	महाराज !	**महर्षिः**	महर्षिने
प्रश्रय अवनतं	विनम्रतासे झुके	**सम आभाष्य**	(राजाको) सम्बोधित करके
क्षितौ उपासीनं	पृथ्वीपर समीप बैठे		
तं प्रतिपूज्य	उसका आदर करके	**इदं अब्रवीत्**	यह कहा ॥१६॥

अंगिरा उवाच—

अपि तेऽनामयं स्वस्ति प्रकृतीनां तथाऽऽत्मनः ।
यथा प्रकृतिभिर्गुप्तः पुमान् राजापि सप्तभिः ॥१७॥

अपि ते अनामयं स्वस्ति प्रकृतीनां तथा आत्मनः यथा प्रकृतिभिः गुप्तः पुमान् राजा अपि सप्तभिः ॥१७॥

ते अपि	तुम्हारा (शरीर)	**स्वस्ति**	सकुशल रहनेसे
अनामयं	निरोग तो है ?	**आत्मनः**	स्वयं भी
यथा पुमान्	जैसे जीव	**तथा**	वैसा (सकुशल)
सप्तभिः गुप्तः	सात (महत्तत्त्वादि) से घिरा रहता है		रहता है ॥१७॥
राजा अपि	राजा भी		
प्रकृतिभिः	(सात) प्रकृति (गुरु, मन्त्री, राष्ट्र, दुर्ग, कोष, सेना तथा मित्र)से		

आत्मानं प्रकृतिष्वद्धा निधाय श्रेय आप्नुयात् ।
राज्ञा तथा प्रकृतयो नरदेवाहिताधयः ॥१८॥

आत्मानं प्रकृतिषु अद्धा निधाय श्रेय आप्नुयात् राज्ञा तथा प्रकृतयः नरदेव आहित आधयः ॥१८॥

नरदेव	राजा	**तथा प्रकृतयः**	वैसे ही प्रकृतियां (प्रजा)
आत्मानं	अपनेको		
प्रकृतिषु	सातों प्रकृतियोंके	**राज्ञा**	राजापर
अद्धा निधाय	अनुकूल रखकर	**आहित आधयः**	अपनी चिन्ता छोड़ देती हैं ॥१८॥
श्रेयः आप्नुयात्	कल्याण पाता है		

अपि दाराः प्रजामात्या भृत्याः श्रेण्योऽथ मन्त्रिणः ।
पौरा जानपदा भूपा आत्मजा वशवर्तिनः ॥१९॥

अपि दाराः प्रजा अमात्या भृत्याः श्रेण्यः अथ मन्त्रिणः पौरा जानपदा भूपा आत्मजा वशवर्तिनः ॥१९॥

दाराः प्रजा	पत्नियां, प्रजा,	**आत्मजा**	पुत्र
अमात्या भृत्याः	सलाहकार, सेवक,	**वशवर्तिनः अपि**	तुम्हारे वशमें तो हैं ॥१९॥
श्रेण्यः अथ	व्यापारी-वर्ग और		
मन्त्रिणः पौरा	मन्त्री, नागरिक,		
जानपदा भूपा	मण्डलेश्वर राजा लोग,		

यस्यात्मानुवशश्चेत्स्यात्सर्वे तद्वशगा इमे ।
लोकाः सपाला यच्छन्ति सर्वे बलिमतन्द्रिताः ॥२०॥

यस्य आत्मा अनुवशः चेत् स्यात् सर्वे तत् वशगा इमे लोकाः सपाला यच्छन्ति सर्वे बलिं अतन्द्रिताः ॥२०॥

यस्य आत्मा	जिसका चित्त	**सपाला**	लोकपालोंके साथ
अनुवशः	अपने वशमें	**सर्वे लोकाः**	सब लोक
चेत् स्यात्	यदि है तो	**अतन्द्रिताः**	सावधानी पूर्वक
इमे सर्वे	ये सब	**तस्मै बलिं**	उसे उपहार
तत् वशगा	उसके वशमें रहते हैं	**यच्छन्ति**	देते हैं ॥२०॥

आत्मनः प्रीयते नात्मा परतः स्वत एव वा ।
लक्षयेऽलब्धकामं त्वां चिन्तया शबलं मुखम् ॥२१॥

आत्मनः प्रीयते न आत्मा परतः स्वत एव वा लक्षये अलब्ध कामं त्वां चिन्तया शबलं मुखम् ॥२१॥

आत्मनः	अपने आपमें	**त्वां अलब्ध**	तुम्हें अप्राप्त
आत्मा	तुम्हारा चित्त	**कामं**	मनोरथ
न प्रीयते	सन्तुष्ट नहीं है,	**चिन्तया शबलं**	चिन्तासे मलिन
परतः वा	यह दूसरेके कारण है अथवा	**मुखं लक्षये**	मुख लक्षित कर रहा हूँ ॥२१॥
स्वत एव	अपने आप ही है,		

*श्रीशुक उवाच**

एवं विकल्पितो राजन् विदुषा मुनिनापि सः ।
प्रश्रयावनतोऽभ्याह प्रजाकामस्ततो मुनिम् ॥२२॥

एवं विकल्पितः राजन् विदुषा मुनिना अपि सः प्रश्रय अवनतः अभ्याह प्रजाकामः ततः मुनिम् ॥२२॥

राजन्	राजन् !	**प्रजाकामः**	पुत्रकी कामनासे
मुनिना	मुनिके द्वारा	**ततः मुनिं**	तब मुनिसे
विदुषा अपि	जानते हुए भी	**सः प्रश्रय**	उसने नम्रतासे
एवं विकल्पितः	इस प्रकार विकल्प किये जानेपर	**अवनतः**	झुककर
		अभ्याह	निवेदन किया ॥२२॥

चित्रकेतुरुवाच–

भगवन् किं न विदितं तपोज्ञानसमाधिभिः ।
योगिनां ध्वस्तपापानां बहिरन्तः शरीरिषु ॥२३॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

भगवन् किं न विदितं तपः ज्ञान समाधिभिः योगिनां ध्वस्त पापानां बहिः अन्तः शरीरिषु ॥२३॥

भगवन्	भगवन् !	**योगिनां**	उन योगियोंके लिए
तपः ज्ञान	तपस्या, ज्ञान तथा	**शरीरिषु**	शरीर धारियोंके
समाधिभिः	समाधिके द्वारा	**बहिः अन्तः**	बाहर या भीतर
ध्वस्त पापानां	जिनके पाप नष्ट हो गये हैं,	**किं न विदितं**	क्या अनजान है ॥२३॥

तथापि पृच्छतोब्रूयां ब्रह्मन्नात्मनि चिन्तितम् ।
भवतो विदुषश्चापि त्वोदितस्त्वदनुज्ञया ॥२४॥

तथा अपि पृच्छतः ब्रूयां ब्रह्मन् आत्मनि चिन्तितं भवतः विदुषः च अपि चोदितः त्वत् अनुज्ञया ॥२४॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**भवतः चोदितः**	आपके द्वारा प्रेरित
तथा अपि	ऐसा होनेपरभी	**आत्मनि**	अपनी
विदुषः च अपि	जानते होनेपर भी	**चिन्तितं**	चिन्ता
पृच्छतः	पूछनेपर	**ब्रूयां**	निवेदन करूंगा ॥२४॥
त्वत् अनुज्ञया	आपकी अनुमतिसे		

लोकपालैरपि प्रार्थ्याः साम्राज्यैश्वर्यसम्पदः ।
न नन्दयन्त्यप्रजं मां क्षुत्तृट्कामसमिवापरे ॥२५॥

लोकपालैः अपि प्रार्थ्याः साम्राज्य ऐश्वर्य सम्पदः न नन्दयन्ति अप्रजं मां क्षुत् तृट् कामं इव अपरे ॥२५॥

लोकपालैः	लोकपालों द्वारा भी	**अपरे कामं इव**	दूसरे भोगोंके समान
प्रार्थ्याः	प्रार्थनीय	**मां अप्रजं**	मुझ पुत्रहीनको
साम्राज्य ऐश्वर्य	साम्राज्य, ऐश्वर्य	**न नन्दयन्ति**	सुखी नहीं करते ॥२५॥
सम्पदः	सम्पत्ति		
क्षुत् तृट्	भूखे-प्यासेको		

ततः पाहि महाभाग पूर्वैः सह गतं तमः ।
यथा तरेम दुस्तारं प्रजया तद् विधेहि नः ॥२६॥

ततः पाहि महाभाग पूर्वैः सह गतं तमः यथा तरेम दुस्तारं प्रजया तत् विधेहि नः ॥२६॥

महाभाग	महाभाग (महर्षे) !	**दुस्तारं**	इस दुस्तर (दुःख) से
पूर्वैः सह	पूर्वजोंके साथ	**तरेम**	पार हो जाऊँ
तमः गतं	दुःखमें पड़ेकी	**तत् नः**	वह मेरे लिए
ततः पाहि	इसलिए रक्षा कीजिए	**विधेहि**	विधान कीजिए ॥२६
यथा प्रजया	जैसे पुत्र द्वारा		

श्रीशुक उवाच—

इत्यर्थितः स भगवान् कृपालुर्ब्रह्मणः सुतः ।
श्रपयित्वा चरुं त्वाष्ट्रं त्वष्टारमयजद् विभुः ॥२७॥

इति अर्थितः स भगवान् कृपालुः ब्रह्मणः सुतः श्रपयित्वा चरुं त्वाष्ट्रं त्वष्टारम् अयजत् विभुः ॥२७॥

इति अर्थितः	इस प्रकार प्रार्थना करनेपर	**त्वाष्ट्रं चरुं**	त्वष्टा देवताके योग्य चरु
स विभुः	उन समर्थ	**श्रपयित्वा**	निर्माण कराके
कृपालुः भगवान्	दयालु भगवान्	**त्वष्टारं अयजत्**	त्वष्टाका यजन
ब्रह्मणः सुतः	ब्रह्माजीके पुत्रने		किया ॥२७॥

ज्येष्ठा श्रेष्ठा च या राज्ञो महिषीणां च भारत ।
नाम्ना कृतद्युतिस्तस्यै यज्ञोच्छिष्टमदाद् द्विजः ॥२८॥

ज्येष्ठा श्रेष्ठा च या राज्ञः महिषीणां च भारत नाम्ना कृतद्युतिः तस्यै यज्ञ उच्छिष्टं अदात् द्विजः ॥२८॥

भारत	परीक्षितः	च श्रेष्ठा	और श्रेष्ठ थी
राज्ञः महिषीणां	राजाकी महा-रानियोंमें	यज्ञ उच्चिष्टं	यज्ञका शेष प्रसाद
		द्विजः	उन विप्रवरने
या ज्येष्ठा	जो सबसे बड़ी	तस्यै अदात्	उसको दिया ॥२८॥

अथाह नृपतिं राजन् भवितैकस्तवात्मजः ।
हर्षशोकप्रदस्तुभ्यमिति ब्रह्मसुतो ययौ ॥२९॥

अथ आह नृपतिं राजन् भविता एकः तव आत्मजः हर्ष शोकप्रदः तुभ्यं इति ब्रह्मसुतः ययौ ॥२९॥

अथ नृपतिं आह	फिर राजासे कहा	तव एकः	तुम्हारा एक
राजन्	राजन् !	आत्मजः भविता	पुत्र होगा ।'
तुभ्यं	तुमको	इति	ऐसा (कहकर)
हर्ष शोकप्रदः	हर्ष और शोक देने वाला	ब्रह्मसुतः ययौ	वे ब्रह्माजीके पुत्र चले गये ॥२९॥

सापि तत्प्राशनादेव चित्रकेतोरधारयत् ।
गर्भं कृतद्युतिर्देवी कृत्तिकाग्नेरिवात्मजम् ॥३०॥

सा अपि तत् प्राशनात् एव चित्रकेतोः अधारयत् गर्भं कृतद्युतिः देवी कृत्तिका अग्नेः इव आत्मजम् ॥३०॥

सा कृतद्युतिः	उस कृतद्युति	प्राशनात् एव	खानेसे ही
देवी अपि	देवीने भी	चित्रकेतोः	चित्रकेतुसे
अग्नेः	अग्निसे	आत्मजं	सन्तानको
कृत्तिका इव	कृत्तिकाके समान	गर्भं अधारयत्	गर्भमें धारण किया ॥३०॥
तत्	इस यज्ञ प्रसादको		

तस्या अनुदिनं गर्भः शुक्लपक्ष इवोडुपः ।
ववृधे शूरसेनेशतेजसा शनकैर्नृप ॥३१॥

तस्या अनुदिनं गर्भः शुक्लपक्ष इव उडुपः ववृधे शूरसेन ईश तेजसा शनकैः नृप ॥३१॥

नृप	राजन् !	**शुक्लपक्ष**	शुक्ल-पक्षमें
शूरसेन ईश	शूरसेन देशके राजा (चित्रकेतु) के	**उडुपः इव**	चन्द्रमाकी भांति
तेजसा	वीर्यसे (स्थापित)	**शनकैः ववृधे**	धीरे-धीरे बढ़ने लगा ॥३१॥
तस्या गर्भः	उसका गर्भ		

अथ काल उपावृत्ते कुमारः समजायत ।
जनयन् शूरसेनानां शृण्वतां परमां मुदम् ॥३२॥

अथ काल उपावृत्ते कुमारः समजायत जनयन् शूरसेनानां शृण्वतां परमां मुदम् ॥३२॥

अथ काल	फिर समय	**परमां मुदं**	परमानन्द
उपावृत्ते	आनेपर	**जनयन्**	उत्पन्न करता
शृण्वतां	समाचार पानेवाले	**कुमारः**	राजकुमार
शूरसेनानां	शूरसेन देशकी प्रजाको	**समजायत**	उत्पन्न हुआ ॥३२॥

हृष्टो राजा कुमारस्य स्नातः शुचिरलंकृतः ।
वाचयित्वाऽऽशिषो विप्रैः कारयामास जातकम् ॥३३॥

हृष्टः राजा कुमारस्य स्नातः शुचिः अलंकृतः वाचयित्वा आशिषः विप्रैः कारयामास जातकम् ॥३३॥

हृष्टः राजा	राजाने प्रसन्न होकर,	**कुमारस्य**	राजकुमारके लिए
स्नातः	स्नान किया	**आशिषः**	स्वास्ति-
शुचिः अलंकृतः	पवित्र होकर आभूषण धारण किया,	**वाचयित्वा**	वाचन कराके
		जातकं	जातकर्म-संस्कार
		कारयामास	करवाया ॥३३॥
विप्रैः	ब्राह्मणों द्वारा		

तेभ्यो हिरण्यं रजतं वासांस्याभरणानि च ।
ग्रामान् हयान् गजान् प्रादाद् धेनूनामर्बुदानि षट् ॥३४॥

तेभ्यः हिरण्यं रजतं वासांसि आभरणानि च ग्रामान् हयान् गजान् प्रादात् धेनूनां अर्बुदानि षट् ॥३४॥

तेभ्यः	उन ब्राह्मणोंको	**ग्रामान् हयान्**	गाँव, घोड़े,
हिरण्यं रजतं	सोना, चांदी,	**गजान्**	हाथी
वासांसि	वस्त्र	**च अर्बुदानि षट्**	तथा छः अरब
आभरणानि	आभूषण	**धेनूनां प्रादात्**	गायें दीं ॥३४॥

ववर्ष काममन्येषां पर्जन्य इव देहिनाम् ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं कुमारस्य महामनाः ॥३५॥

ववर्ष कामं अन्येषां पर्जन्य इव देहिनां धन्यं यशस्यं आयुष्यं कुमारस्य महामनाः ॥३५॥

महामनाः	परमोदार राजाने	**पर्जन्य इव**	मेघोंके समान
कुमारस्य	राजकुमारके	**अन्येषां**	दूसरे सबकी
धन्यं यशस्यं	धन, यश,	**कामं ववर्ष**	अभीष्ट वस्तुओंकी
आयुष्यं	आयुके लिए		वर्षा कर दी ॥३५॥
देहिनां	शरीर धारियोंके लिए		

कृच्छ्रलब्धेऽथ राजर्षेस्तनयेऽनुदिनं पितुः ।
यथा निःस्वस्य कृच्छ्राप्ते धने स्नेहोऽन्ववर्धत ॥३६॥

कृच्छ्रलब्धे अथ राजर्षेः तनये अनुदिनं पितुः यथा निःस्वस्य कृच्छ्र आप्ते धने स्नेहः अन्ववर्धत ॥३६॥

यथा निःस्वस्य	जैसे निर्धनको	तनये अथ	पुत्रमें फिर
कृच्छ्र आप्ते	कठिनाईसे प्राप्त	अनुदिनं स्नेहः	दिनों-दिन स्नेह
धने	धनमें (वैसे ही)	अन्ववर्धत	बराबर बढ़ता गया
राजर्षेः पितुः	उन राजर्षि पिताका		॥३६॥
कृच्छ्रलब्धे	कठिनाईसे प्राप्त		

मातुस्त्वतितरां पुत्रे स्नेहो मोहसमुद्भवः ।
कृतद्युतेः सपत्नीनां प्रजाकामज्वरोऽभवत् ॥३७॥

मातुः तु अतितरां पुत्रे स्नेहः मोह समुद्भवः कृतद्युतेः सपत्नीनां प्रजाकामः ज्वरः अभवत् ॥३७॥

मातुः कृतद्युतेः	माता कृतद्युतिका	प्रजाकामः	पुत्रेच्छुका
तु	तो	सपत्नीनां	सौतोंको
पुत्रे	पुत्रसे	ज्वरः अभवत्	जलन होने लगी
मोह समुद्भवः	मोहसे उत्पन्न		॥३७॥
अतितरां स्नेहः	बहुत अधिक स्नेह था,		

चित्रकेतोरतिप्रीतिर्यथा दारे प्रजावति ।
न तथान्येषु सञ्जज्ञे बालं लालयतोऽन्वहम् ॥३८॥

चित्रकेतोः अति प्रीतिः यथा दारे प्रजावति न तथा अन्येषु सञ्जज्ञे बालं लालयतः अन्वहम् ॥३८॥

अन्वहं	प्रतिदिन	तथा अन्येषु	वैसा दूसरी पत्नियों-से
बालं लालयतः	पुत्रसे लाड़ करते हुए	न सञ्जज्ञे	नहीं उत्पन्न हुआ
चित्रकेतोः	चित्रकेतुका		॥३८॥
यथा प्रजावति	जैसा पुत्रवती		
दारे अति	पत्नीसे अत्यन्त		
प्रीतिः	प्रेम था		

ताः पर्यतप्यन्नात्मानं गर्हयन्त्योऽभ्यसूयया ।
आनपत्येन दुःखेन राज्ञोऽनादरेण च ॥३९॥

ताः पर्यतप्यन् आत्मानं गर्हयन्त्यः अभ्यसूयया आनपत्येन दुःखेन राज्ञः अनादरेण च ॥३९॥

अभ्यसूयया	डाहके कारण,	**ताः आत्मानं**	वे सब अपनी
आनपत्येन	निःसन्तान होनेके	**गर्हयन्त्यः**	निन्दा करती हुई
दुःखेन	दुःखसे	**पर्यतप्यन्**	सन्तप्त होने लगीं
च राज्ञः	और राजाके		॥३९॥
अनादरेण	अनादर करनेसे,		

धिगप्रजां स्त्रियं पापां पत्युश्चागृहसम्मताम् ।
सुप्रजाभिः सपत्नीभिर्दासीमिव तिरस्कृताम् ॥४०॥

धिक् अप्रजां स्त्रियं पापां पत्युः च अगृहसम्मतां सुप्रजाभिः सपत्नीभिः दासीं इव तिरस्कृताम् ॥४०॥

अप्रजां पापां	निःसन्तान पापिष्ठा	**दासीं इव**	दासीके समान
पत्युः च	पति भी जिसे	**तिरस्कृतां**	तिरस्कृता
अगृहसम्मतां	पत्नी नहीं मानते ।	**स्त्रियं धिक्**	स्त्रीको धिक्कार है
सुप्रजाभिः	उत्तम सन्तान वाली		॥४०॥
सपत्नीभिः	सौत द्वारा		

दासीनां को नु सन्तापः स्वामिनः परिचर्यया ।
अभीक्ष्णं लब्धमानानां दास्या दासीव दुर्भगाः ॥४१॥

दासीनां कः नु सन्तापः स्वामिनः परिचर्यया अभीक्ष्णं लब्धमानानां दास्या दासी इव दुर्भगाः ॥४१॥

अभीक्ष्णं	बराबर	**लब्धमानानां**	सम्मान पाने वाली
स्वामिनः	स्वामीकी	**दासीनां**	भला दासियोंको
परिचर्यया	सेवा करके	**कः सन्तापः**	क्या दुःख है,

दास्या	(हम तो) दासियों-की	**दासी इव दुर्भगाः**	दासीके समान अभागिनी हैं ॥४१॥

एवं सन्दह्यमानानां सपत्न्याः पुत्रसम्पदा ।
राज्ञोऽसम्मतवृत्तीनां विद्वेषो बलवानभूत् ॥४२॥

एवं सन्दह्यमानानां सपत्न्याः पुत्रसम्पदा राज्ञः असम्मत वृत्तीनां विद्वेषः बलवान् अभूत् ॥४२॥

सपत्न्याः	सौतकी	**वृत्तीनां**	व्यवहारसे (उनका सौतसे)
पुत्रसम्पदा	पुत्र रूप सम्पत्तिसे	**बलवान्**	प्रबल
एवं	इस प्रकार	**विद्वेषः अभूत**	द्वेष हो गया ॥४२॥
सन्दह्य मानानां	जलती रहने वाली		
राज्ञः असम्मत	राजा के उपेक्षित		

विद्वेषनष्टमतयः स्त्रियो दारुणचेतसः ।
गरं ददुः कुमाराय दुर्मर्षा नृपतिं प्रति ॥४३॥

विद्वेषनष्ट मतयः स्त्रियः दारुण चेतसः गरं ददुः कुमाराय दुर्मर्षा नृपतिं प्रति ॥४३॥

विद्वेषनष्ट	अत्यन्त द्वेषसे नष्ट	**दुर्मर्षा**	चिढ़कर
मतयः स्त्रियः	बुद्धि स्त्रियोंकी	**कुमाराय**	राजकुमारको
दारुण चेतसः	चित्त क्रूर हो गया था,	**गरं ददुः**	(उन्होंने) विष दे दिया ॥४३॥
नृपतिं प्रति	राजासे		

कृतद्युतिरजानन्ती सपत्नीनामघं महत् ।
सुप्त एवेति सञ्चिन्त्य निरीक्ष्य व्यचरद् गृहे ॥४४॥

कृतद्युतिः अजानन्ती सपत्नीनां अघं महत् सुप्त एव इति सञ्चिन्त्य निरीक्ष्य व्यचरत् गृहे ॥४४॥

कृतद्युतिः	कृतद्युति
सपत्नीनां	सौतोंका यह
महत् अघं	भारी पाप
अजानन्ती	जानती नहीं थी,
सुप्त एव	(बच्चा) सो ही रहा है,
इति सञ्चिन्त्य	ऐसा सोचकर
निरीक्ष्य	(दूरसे) देखकर
गृहे व्यचरत्	घरमें घूमती रही ॥४४॥

शयानं सुचिरं बालमुपधार्य मनीषिणी ।
पुत्रमानय मे भद्रे इति धात्रीमचोदयत् ॥४५॥

शयानं सुचिरं बालं उपधार्य मनीषिणी पुत्रं आनय मे भद्रे इति धात्रीं अचोदयत् ॥४५॥

मनीषिणी	बुद्धिमती (रानी)ने
बालं सुचिरं	बालक बहुत देरसे
शयानं उपधार्य	सो रहा है, यह विचार करके
भद्रे मे पुत्रं	'कल्याणी, मेरे पुत्रको
आनय इति	ले आओ' इस प्रकार
धात्रीं अचोदयत्	धायको प्रेरित किया ॥४५॥

सा शयानमुपव्रज्य दृष्ट्वा चोत्तारलोचनम् ।
प्राणेन्द्रियात्मभिस्त्यक्तं हतास्मीत्यपतद्भुवि ॥४६॥

सा शयानं उपव्रज्य दृष्ट्वा च उत्तार लोचनं प्राण इन्द्रिय आत्मभिः त्यक्तं हता अस्मि इति अपतत् भुवि ॥४६॥

सा	वह (धाय)
शयानं उपव्रज्य	सोते (बालक)के पास जाकर,
उत्तार लोचनं	नेत्रोंकी पुतली उलटी हुई,
प्राण इन्द्रिय आत्मभिः	प्राण, इन्द्रिय, जीवसे
त्यक्तं दृष्ट्वा	परित्यक्त देखकर
च	और
हता अस्मि	'मैं मारी गयी !'
इति	ऐसा (चिल्लाकर)
भुवि अपतत्	पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥४६॥

तस्यास्तदाऽऽकर्ण्य भृशातुरं स्वरं
घ्नन्त्याः कराभ्यामुर उच्चकैरपि ।
प्रविश्य राज्ञी त्वरयाऽऽत्मजान्तिकं
ददर्श बालं सहसा मृतं सुतम् ॥४७॥

तस्याः तदा आकर्ण्य भृश आतुरं स्वरं घ्नन्त्याः कराभ्यां उर उच्चकैः अपि प्रविश्य राज्ञी त्वरया आत्मज अन्तिकं ददर्श बालं सहसा मृतं सुतम् ॥

कराभ्यां	दोनों हाथोंसे	**त्वरया राज्ञी**	शीघ्रतासे महारानी ने
उच्चकैः उर	जोर-जोरसे छाती	**आत्मज अन्तिकं**	पुत्रके पास
घ्नन्त्याः	पीटती	**प्रविश्य**	प्रवेश करके
तस्याः	उस (धाय)को	**सहसा बालं सुतं**	अचानक शिशु-पुत्रको
भृश आतुरं	अत्यन्त व्याकुल	**मृतं ददर्श**	मरा देखा ॥४७॥
तदा स्वरं	उस समय स्वर		
आकर्ण्य	सुनकर		

पपात भूमौ परिवृद्धया शुचा
मुमोह विभ्रष्टशिरोरुहाम्बरा ॥४८॥

पपात भूमौ परिवृद्धया शुचा मुमोह विभ्रष्ट शिरोरुह अम्बरा ॥४८॥

परिवृद्धया शुचा	शोक बहुत बढ़ जानेसे	**अम्बरा**	वस्त्र
मुमोह	मूर्छित हो गयीं ।	**भूमौ पपात**	पृथ्वीपर गिर पड़ीं ॥४८॥
विभ्रष्ट	बिखरे		
शिरोरुह	केश और (अस्त-व्यस्त)		

ततो नृपान्तः पुरवर्तिनो जना
नराश्च नार्यश्च निशम्य रोदनम् ।
आगत्य तुल्यव्यसनाः सुदुःखिता-
स्ताश्च व्यलीकं रुरुदुः कृतागसः ॥४९॥

ततः नृप अन्तःपुर वर्तिनः जना नराः च नार्यः च निशम्य रोदनं आगत्य तुल्य व्यसनाः सुदुःखिताः ताः च व्यलीकं रुरुदुः कृत आगसः ॥४९॥

ततः	तब	तुल्य व्यसनाः	सहानुभूतिमें
रोदनं निशम्य	रुदन सुनकर	सुदुःखिताः	अत्यन्त दुःखी हुए ।
नृप अन्तःपुर	राजाके अन्तःपुरमें	ताः कृत आगसः	वे पापाचारिणी (रानियाँ)
वर्तिनः जना	रहनेवाले लोग		
नराः च	पुरुष और	च व्यलीकं	भी झूठमूठको
नार्यः च	स्त्रियां भी	रुरुदुः	रोने लगीं ॥४९॥
आगत्य	आकर		

श्रुत्वा मृतं पुत्रमलक्षितान्तकं
विनष्टदृष्टिः प्रपतन् स्खलन् पथि ।
स्नेहानुबन्धैधितया शुचा भृशं
विमूर्च्छितोऽनुप्रकृतिर्द्विजैर्वृतः ॥५०॥

श्रुत्वा मृतं पुत्रं अलक्षित अन्तकं विनष्ट दृष्टिः प्रपतन् स्खलन् पथि स्नेह अनुबन्ध एधितया शुचा भृशं विमूर्छितः अनुप्रकृतिः द्विजैः वृतः ॥५०॥

पुत्रं मृतं श्रुत्वा	पुत्रको मरा सुनकर	भृशं शुचा	बहुत अधिक शोकसे
अलक्षित अन्तकं	मारनेवाले का पता था नहीं,	अनुप्रकृतिः	मन्त्री आदि और
		द्विजैः वृतः	ब्राह्मणोंसे घिरे
विनष्ट दृष्टिः	आँखोंसे दीखना बन्द हो गया,	विमूर्छितः	संज्ञाहीन होकर
		पथि	मार्गमें
अनुबन्ध	स्नेह सम्बन्धसे	प्रपतन् स्खलन	गिरते-पड़ते ॥५०॥
एधितया	बढ़े		

पपात बालस्य स पादमूले
मृतस्य विस्रस्तशिरोरुहाम्बरः ।
दीर्घं श्वसन् बाष्पकलोपरोधतो
निरुद्धकण्ठो न शशाक भाषितुम् ॥५१॥

पपात बालस्य स पादमूले मृतस्य विस्रस्त शिरोरुह अम्बरः दीर्घं श्वसन् बाष्प कला उपरोधतः निरुद्ध कण्ठ न शशाक भाषितुम् ॥५१॥

मृतस्य बालस्य	मरे हुए बालकके	**बाष्प कला**	आँसुओंके
पादमूले	पैरोंके समीप	**उपरोधतः**	कारण
स पपात	वे (राजा) गिर पड़े,	**निरुद्ध कण्ठः**	गला भर जानेसे
शिरोरुह अम्बरः	केश और वस्त्र	**भाषितुं न**	(कुछ) बोल नहीं
विस्रस्त	अस्त-व्यस्त हो गये ।	**शशाक**	सके ॥५१॥
दीर्घं श्वसन्	लम्बी श्वास लेते हुए		

पतिं निरीक्ष्योरुशुचार्पितं तदा
मृतं च बालं सुतमेकसन्ततिम् ।
जनस्य राज्ञो प्रकृतेश्च हृद्रुजं
सती दधाना विललाप चित्रधा ॥५२॥

पतिं निरीक्ष्य उरु शुचा अर्पितं तदा मृतं च बालं सुतं एक सन्ततिं जनस्य राज्ञो प्रकृतेः च हृद् रुजं सती दधाना विललाप चित्रथा ॥५२॥

सती राज्ञी	सती महारानी (कृतद्युति)	**एक सन्ततिं**	एकमात्र सन्तान
तदा	उस समय	**बालं सुतं मृतं**	शिशु पुत्रको मरा
उरु शुचा	अत्यन्त शोक	**निरीक्ष्य**	देखकर
अर्पितं	ग्रस्त	**जनस्य**	लोगोंके
पतिं	पतिको तथा	**च प्रकृतेः**	एवं (मन्त्री आदि) प्रकृतिके

हृद् रुजं	हृदयमें रोग (सन्ताप)	चित्रधा	अनेक प्रकारसे
दधाना	बढ़ाती हुई	विललाप	विलाप करने लगीं ॥५२॥

स्तनद्वयं कुङ्कुमगन्धमण्डितं
निषिञ्चती साञ्जनबाष्पबिन्दुभिः ।
विकीर्य केशान् विगलत्स्रजः सुतं
शुशोच चित्रं कुररीव सुस्वरम् ॥५३॥

स्तनद्वयं कुङ्कुमगन्ध मण्डितं निषञ्चती साञ्जन बाष्प बिन्दुभिः विकीर्य केशान् विगलत् स्रजः सुतं शुशोच चित्रं कुररी इव सुस्वरम् ॥५३॥

कुङ्कुमगन्ध मण्डितं	कुंकुम-केशर चर्चित	कुररी इव	कुररी (चील) पक्षी-के समान
स्तनद्वयं	दोनों स्तनोंको	सुस्वरं	उच्च-स्वरमें
साञ्जन बाष्प बिन्दुभिः	अञ्जन मिले अश्रु बिन्दुओंसे	चित्रं सुतं शुशोच	अनेक प्रकारसे पुत्रके लिए विलाप करने लगीं ॥५३॥
निषञ्चती	भिगोती,		
केशान् विकीर्य	केश फैलाये,		
विगलत् स्रजः	(उनमें लगी) माला गिराती		

कृतिद्युति उवाच-

अहो विधातस्त्वमतीव बालिशो
यस्त्वात्मसृष्ट्यप्रतिरूपमीहसे ।
परेऽनुजीवत्यपरस्य या मृति-
र्विपर्ययश्चेत्त्वमसि ध्रुवः परः ॥५४॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अहो विधातः त्वं अतीव बालिशः यस्तु आत्म सृष्टि अप्रति रूपं ईहसे परे अनुजीवति अपरस्य या मृतिः विपर्ययः चेत् त्वं असि ध्रुवः परः ॥५४॥

अहो विधातः	अरे विधाता !
त्वं अतीव	तू अत्यन्त
बालिशः	मूर्ख है,
यस्तु आत्म	क्योंकि अपनी
सृष्टि	सृष्टिके
अप्रति रूप	प्रतिकूल
ईहसे	चेष्टा करता है,
परे अनुजीवति	बड़ोंके जीवित रहते
अपरस्य	पीछे वालोंकी
या मृतिः	जो मृत्यु है,
चेत् विपर्ययः	यह उलटा विधान यदि (तुम्हारा है)
त्वं ध्रुवः	तो निश्चित
त्वं परः असि	तुम (सबके) शत्रु हो ॥५४॥

न हि क्रमश्चेदिह मृत्युजन्मनोः
शरीरिणामस्तु तदाऽऽत्मकर्मभिः ।
यः स्नेहपाशो निजसर्गवृद्धये
स्वयं कृतस्ते तमिमं विवृश्चसि ॥५५॥

न हि क्रमः चेत् इह मृत्यु जन्मनोः शरीरिणां अस्तु तदा आत्म कर्मभिः यः स्नेहपाशः निजसर्ग वृद्धये स्वयं कृतः ते तं इमं विवृश्चसि ॥५५॥

चेत् इह	यद्यपि इस संसारमें
मृत्यु जन्मनोः	मृत्यु और जन्मका
क्रमः न	कोई क्रम नहीं है
हि	क्योंकि
तदा शरीरिणां	तब वह शरीर-धारियोंके
आत्म कर्मभिः	अपने कर्मोंके अनुसार
अस्तु	होवे,
यः स्नेहपाशः	जो स्नेह-बन्धन
निजसर्ग वृद्धये	अपनी सृष्टि-वृद्धिके लिए
ते स्वयं कृतः	तुमने स्वयं बनाया है
तं इमं	उसीको यह
विवृश्चसि	काट रहे हो ॥५५॥

त्वं तात नार्हसि च मां कृपणामनाथां
त्यक्तुं विचक्ष्व पितरं तव शोकतप्तम् ।
अञ्जस्तरेम भवताप्रजदुस्तरं यद्
ध्वान्तं न याह्यकरुणेन यमेन दूरम् ॥५६॥

त्वं तात न अर्हसि च मां कृपणां अनाथां त्यक्तुं विचक्ष्व पितरं तव शोकतप्तं अञ्जः तरेम भवता प्रज दुस्तरं यद् ध्वान्तं न याहि अकरुणेन यमेन दूरम् ॥५६॥

तात त्वं	बेटा तुमको	**यद् दुस्तरं**	जैसे दुस्तर
मां कृपणां	मुझ दुखिया	**ध्वान्तं**	नरकको
अनाथां	अनाथाको	**भवता प्रज**	तुम पुत्रके द्वारा
त्यक्तुं न अर्हसि	त्यागना नहीं चाहिए ।	**अञ्जः तरेम**	हम सरलतासे पार करलें
तव शोकतप्तं	तुम्हारे शोकसे संतप्त	**अकरुणेन यमेन दूरं**	(अतः) निष्ठुर यमराजके साथ दूर
पितरं विचक्ष्व	अपने माता-पिताको देखो	**न याहि**	मत जाओ ॥५६॥

उत्तिष्ठ तात त इमे शिशवो वयस्या-
स्त्वामाह्वयन्ति नृपनन्दन संविहर्तुम् ।
सुप्तश्चिरं ह्यशनया च भवान् परीतो
भुङ्क्ष्व स्तनं पिब शुचो हर नः स्वकानाम् ॥५७॥

उत्तिष्ठ तात त इमे शिशवः वयस्याः त्वां आह्वयन्ति नृपनन्दन संविहर्तुं सुप्तः चिरं हि अशनया च भवान् परीतः भुङ्क्ष्वस्तनं पिबशुचः हर नः स्वकानां ॥५७॥

तात उत्तिष्ठ	बेटा उठो !	**नृपनन्दन**	राजकुमार !
त वयस्याः	तुम्हारे सखा	**संविहर्तुं**	साथ खेलनेके लिए
इमे शिशवः	ये बालक		

त्वां आह्वयन्ति	तुम्हें पुकार रहे हैं,	**स्तनं पिब**	स्तनपान करो,
हि	क्योंकि	**नः स्वकानां**	हम अपनोंका
चिरं सुप्तः	बहुत देरसे सोये हो	**शुचः हर**	शोक दूर करो
भवान् अशनया	तुम भूखसे		॥५७॥
परीतः भुङ्क्ष्व	घिरे हो (भूखे हो) कुछ खाओ		

नाहं तनूज दद्दशे हतमङ्गला ते
मुग्धस्मितं मुदितवीक्षणमाननाब्जम् ।
किं वा गतोऽस्यपुनरन्वयमन्यलोकं
नीतोऽघृणेन न शृणोमि कला गिरस्ते ॥५८॥

न अहं तनूज दद्दशे हतमङ्गला ते मुग्धस्मितं मुदितवीक्षणं आननाब्जं किं वा गतः असि अपुनः अन्वयं अन्य लोकं नीतः अघृणेन न शृणोमि कला गिरः ते ॥५८॥

अहं हतमङ्गला	मैं अभागिनी	**न शृणोमि**	नहीं सुन रही हूँ,
ते मुग्धस्मितं	तुम्हारा मनोहर मुस्कानयुक्त	**वा किं**	अथवा क्या
		अघृणेन नीतः	निष्ठुर यम द्वारा ले जाये गये
मुदितवीक्षण	आनन्द भरे नेत्रोंसे देखनेवाला	**अपुनः अन्वयं**	फिर जहाँ से लौटा नहीं जाता
आननाब्जं	कमल-मुख		
तनूज न दद्दशे	बेटा नहीं देखूंगी ?	**लोकं**	उस लोक
ते कला गिरः	तुम्हारी तोतली वाणी	**गतः असि**	चले गये हो ॥५८॥

श्रीशुक उवाच–

विलपन्त्या मृतं पुत्रमिति चित्रविलापनैः ।
चित्रकेतुर्भृशं तप्तो मुक्तकण्ठो रुरोद ह ॥५९॥

विलपन्त्या मृतं पुत्र इति चित्र विलापनैः चित्रकेतुः भृशं तप्तः मुक्तकण्ठः रुरोद ह ॥५९॥

इति	इस प्रकार	**चित्रकेतुः**	चित्रकेतु
चित्रविलापनैः	अनेक प्रकारके विलापोंसे	**भृशं तप्तः**	अत्यन्त संतप्त होकर
मृतं पुत्र विलपन्त्या	मेरे पुत्रके लिए (रानीके) विलाप करनेसे	**मुक्तकण्ठः** **रुरोद ह**	खुले गलेसे रोने ही लगा ॥५९॥

तयोर्विलपतोः सर्वे दम्पत्योस्तदनुव्रताः ।
रुरुदुः स्म नरा नार्यः सर्वमासीदचेतनम् ॥६०॥

तयोः विलपतोः सर्वे दम्पत्योः तत् अनुव्रताः रुरुदुः स्म नरा नार्यः सर्वं आसीत् अचेतनम् ॥६०॥

तयोः दम्पत्योः	उन पति-पत्नीके	**रुरुदुः**	रोने लगे
विलपतोः	विलाप करनेसे	**सर्वं अचेतनं**	सभी चेतनाहीन
तत् अनुव्रताः	उनके अनुचर	**आसीत्**	हो रहे थे ॥६०॥
सर्वे नरा नार्यः	सब स्त्री-पुरुष		

एवं कश्मलमापन्नं नष्टसंज्ञमनायकम् ।
ज्ञात्वाङ्गिरा नाम मुनिराजगाम सनारदः ॥६१॥

एवं कश्मलं आपन्नं नष्टसंज्ञं अनायकं ज्ञात्वा अङ्गिरा नाम मुनिः आजगाम सनारदः ॥६१॥

एवं कश्मलं	इस प्रकार	**अङ्गिरा नाम**	अङ्गिरा नामके
आपन्नं	संकटमें पड़े,	**मुनिः**	मुनि—
नष्टसंज्ञं	चेतनाहीन	**सनारदः**	नारदजीके साथ
अनायकं	निराश्रय	**आजगाम**	आये ॥६१॥
ज्ञात्वा	(चित्रकेतुको) जानकर		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे चित्रकेतुविलापो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

ऊचतुर्मृतकोपान्ते पतितं मृतकोपमम् ।
शोकाभिभूतं राजानं बोधयन्तौ सदुक्तिभिः ॥ १ ॥

ऊचतुः मृतक उपान्ते पतितं मृतक उपमं शोक अभिभूतं राजान बोधयन्तौ सद् उक्तिभिः ॥१॥

मृतक उपान्ते	मेरे (पुत्रके) समीप	राजानं	राजाको
मृतक उपमं	मरे हुएके समान	सद् उक्तिभिः	सुन्दर उक्तियोंसे
पतितं	पड़े हुए	बोधयन्तौ	समझाते हुए
शोक अभिभूतं	शोक-ग्रस्त	ऊचतुः	बोले ॥१॥

अंगिरोवाच-*

कोऽयं स्यात् तव राजेन्द्र भवान् यमनुशोचति ।
त्वं चास्य कतमः सृष्टौ पुरेदानीमतः परम् ॥ २ ॥

कः अयं स्यात् तव राजेन्द्र भवान् यं अनुशोचति त्वं च अस्य कतमः सृष्टौ पुरा इदानीं अतः परम् ॥२॥

राजेन्द्र भवान्	राजेन्द्र ! आप	अयं तव कः	यह तुम्हारा क्या
त्वं यं	तुम जिसके पीछे	स्यात्	लगता है,
अनुशोचति	शोक कर रहे हो	त्वं च अस्य	तुम्हारा इससे
सृष्टौ	इस सृष्टिमें	कतमः	क्या सम्बन्ध है ?
पुरा इदानीं	पहिले, इस समय		॥२॥
अतः परं	इससे आगे		

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

यथा प्रयान्ति संयान्ति स्रोतोवेगेन वालुकाः ।
संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते तथा कालेन देहिनः ॥३॥

यथा प्रयान्ति संयान्ति स्रोतः वेगेन वालुकाः संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते तथा कालेन देहिनः ॥३॥

यथा स्रोतः	जैसे धाराके	**वियुज्यन्ते**	पृथक हो जाते हैं,
वेगेन	वेगसे	**तथा कालेन**	इसी प्रकार कालके
वालुकाः	रेतके कण		द्वारा
प्रयान्ति	जाते और	**देहिनः**	शरीरधारी भी
संयान्ति	आते हुए		(मिलते-बिछुड़ते
संयुज्यन्ते	परस्पर मिलते हैं और		हैं) ॥३॥

यथा धानासु वै धाना भवन्ति न भवन्ति च ।
एवं भूतेषु भूतानि चोदितानीशमायया ॥४॥

यथा धानासु वै धाना भवन्ति न भवन्ति च एवं भूतेषु भूतानि चोदितान् ईश मायया ॥४॥

यथा धानासु	जैसे बीजोंसे	**चोदितान्**	प्रेरित
धाना वै	दूसरे बीज निश्चय	**भूतेषु भूतानि**	प्राणियोंसे प्राणी
भवन्ति	उत्पन्न होते हैं		(सन्तान कभी
च न भवन्ति	और कभी नहीं उत्पन्न होते		होती, कभी नहीं होती) ॥४॥
एवं ईश मायया	इसी प्रकार ईश्वर-की मायासे		

वयं च त्वं च ये चेमे तुल्यकालाश्चराचराः ।
जन्ममृत्योर्यथा पश्चात् प्राङ्नैवमधुनापि भोः ॥५॥

वयं च त्वं च ये च इमे तुल्य कालाः चर अचराः जन्म मृत्योः यथा पश्चात् प्राक् न एवं अधुना अपि भोः ॥५॥

भोः	हे राजन् !
वयं	हम
च त्वं	और तुम
च ये इमे	तथा जो ये लोग हैं
च चर अचराः	एवं सब चराचर
तुल्य कालाः	समकालीन हैं,
यथा जन्म प्राक्	जन्मके पहिले तथा
मृत्योः पश्चात्	मृत्युके बाद
एवं न	इस प्रकार नहीं रहते,
अधुना अपि	इस समय भी (ऐसे देहरूप नहीं हैं) ॥५॥

भूतैर्भूतानि भूतेशः सृजत्यवति हन्त्यजः ।
आत्मसृष्टैरस्वतन्त्रैरनपेक्षोऽपि बालवत् ॥६॥

भूतैः भूतानि भूतेशः सृजति अवति हन्ति अजः आत्म सृष्टैः अस्वतन्त्रैः अनपेक्षः अपि बालवत् ॥६॥

अनपेक्षः अपि	कोई अपेक्षा न होने पर भी
बालवत्	बालक (की क्रीड़ा) के समान
भूतेशः	सब प्राणियोंका स्वामी ईश्वर
अजः	वह अजन्मा
आत्म सृष्टैः	अपने बनाये हुए
अस्वतन्त्रैः	पराधीन
भूतैः भूतानि	पंचभूतों द्वारा प्राणियोंको
सृजति अवति	उत्पन्न करता, पालता
हन्ति	मार देता है ॥६॥

देहेन देहिनो राजन् देहाद्देहोऽभिजायते ।
बीजादेव यथा बीजं देह्यर्थ इव शाश्वतः ॥७॥

देहेन देहिनः राजन् देहात् देहः अभिजायते बीजात् एव यथा बीजं देही अर्थ इव शाश्वतः ॥७॥

राजन्	राजन् !
देहिनः	जीवका
देहेन	शरीर
देहात् देहः	एक शरीरसे दूसरा शरीर
अभिजायते	उत्पन्न होता है ।
यथा बीजात् एव	जैसे एक बीजसे ही
बीजं	दूसरा बीज
देही	जीव
अर्थ इव	(घट आदि कार्योंमें पृथ्वी) तत्त्वके समान
शाश्वतः	नित्य है ॥७॥

देहदेहिविभागोऽयमविवेककृतः पुरा ।
जातिव्यक्तिविभागोऽयं यथा वस्तुनि कल्पितः ॥८॥

देहदेहि विभागः अयं अविवेक कृतः पुरा जाति व्यक्ति विभागः अयं यथा वस्तुनि कल्पितः ॥८॥

यथा वस्तुनि	जैसे वस्तुमें	**अयं**	यह
अयं जाति	यह जाति (घट-जाति)	**देहदेहि**	शरीर और जीवका
		विभागः	विभाग
व्यक्ति विभागः	और व्यक्ति (एक घड़े) का विभाग	**पुरा**	अनादि
		अविवेक कृतः	अज्ञान कृत है ॥८॥
कल्पितः	कल्पित है (ऐसे ही)		

श्रीशुक उवाच–

एवमाश्वासितो राजा चित्रकेतुर्द्विजोक्तिभिः ।
प्रमृज्य पाणिना वक्त्रमाधिम्लानमभाषत ॥९॥

एवं आश्वासितः राजा चित्रकेतुः द्विज उक्तिभिः प्रमृज्य पाणिना वक्त्रं आधिम्लानं अभाषत ॥९॥

एवं	इस प्रकार	**आधिम्लानं**	शोकसे मलिन
राजा चित्रकेतुः	राजा चित्रकेतु	**वक्त्रं**	मुख
द्विज उक्तिभिः	ब्राह्मणकी उक्तिसे	**पाणिना प्रमृज्य**	हाथोंसे पोंछकर
आश्वासितः	समझाए जानेपर	**अभाषत**	बोले ॥९॥

*चित्रकेतु उवाच–**

कौ युवां ज्ञानसम्पन्नौ महिष्ठौ च महीयसाम् ।
अवधूतेन वेषेण मूढाविह समागतौ ॥१०॥

---

*अन्य प्रतियोंमें यहां 'राजोवाच' है ।

कौ युवां ज्ञानसम्पन्नौ महिष्ठौ च महीयसां अवधूतेन वेषेण गूढाः इह समागतौ ॥१०॥

ज्ञानसम्पन्नौ	परम ज्ञानवान्	अवधूतेन	अवधूत
च महीयसां	और महानोंसे भी	वेषेण	वेशमें
महिष्ठौ	महान	गूढाः इह	छिपकर यहाँ
युवां	आप दोनों	समागतौ कौ	आए कौन हैं ॥१०॥

चरन्ति ह्यवनौ कामं ब्राह्मणा भगवत्प्रियाः ।
मादृशां ग्राम्यबुद्धीनां बोधायोन्मत्तलिङ्गिनः ॥११॥

चरन्ति हि अवनौ कामं ब्राह्मणा भगवत् प्रियाः मादृशां ग्राम्य बुद्धीनां बोधाय उन्मत्त लिङ्गिनः ॥११॥

हि	क्योंकि	ब्राह्मणा	ब्रह्मवेत्ता
मादृशां	मेरे जैसे	उन्मत्त लिङ्गिनः	पागलों-सा वेश
ग्राम्य बुद्धीनां	भोगलिप्त बुद्धि वालोंको		बनाए
बोधाय	समझानेके लिए	अवनौ	पृथ्वीपर
भगवत् प्रियाः	भगवान्के प्रिय	कामं चरन्ति	इच्छानुसार विचरण करते हैं ॥११॥

कुमारो नारद ऋभुरङ्गिरा देवलोऽसितः ।
अपान्तरतमो व्यासो मार्कण्डेयोऽथ गौतमः ॥१२॥

वसिष्ठो भगवान् रामः कपिलो बादरायणिः ।
दुर्वासा याज्ञवल्क्यश्च जातूकर्ण्यस्तथाऽऽरुणिः ॥१३॥

रोमशश्च्यवनो दत्त आसुरिः सपतञ्जलिः ।
ऋषिर्वेदशिरा बोध्यो मुनिः पञ्चशिरास्तथा ॥१४॥

हिरण्यनाभः कौसल्यः श्रुतदेव ऋतध्वजः ।
एते परे च सिद्धेशाश्चरन्ति ज्ञानहेतवः ॥१५॥

(सनत्) कुमारः, नारदः, ऋभुः, अङ्गिरा, देवलः, असितः, अपान्तरतमः, व्यासः, मार्कण्डेयः, अथ गौतमः, वशिष्ठः, भगवान् रामः (पशुराम) कपिलः, बादरायणिः, (शुकदेव) दुर्वासा, याज्ञवल्क्यः, च जातूकर्ण्यः, तथा आरुणिः, रोमशः (लोमश) च्यवनः, दत्तः (दत्तात्रेय) आसुरिः स पतञ्जलिः, ऋषिः वेदशिरा, बोध्यः मुनिः (बोध्यमुनि) पञ्चशिरा, तथा हिरण्यनाभः, कौसल्यः, श्रुतदेव, ऋतध्वजः।*

एते परे च सिद्धेशाः चरन्ति ज्ञान हेतवः ॥१२,१३,१४-१५॥

एते परे च	ये और दूसरे भी		लिए
सिद्धेशाः	सिद्धेश्वर लोग	चरन्ति	विचरण करते
ज्ञान हेतवः	ज्ञान-दान करनेके		हैं ॥१५॥

तस्माद्युवां ग्राम्यपशोर्मम मूढधियः प्रभू।
अन्धे तमसि मग्नस्य ज्ञानदीप उदीर्यताम् ॥१६॥

तस्मात् युवां ग्राम्य पशोः मम मूढधियः प्रभू अन्धे तमसि मग्नस्य ज्ञानदीप उदीर्यताम् ॥१६॥

प्रभू	स्वामियो !	अन्धे तमसि	घने अन्धकारमें
तस्मात्	इसलिए	मग्नस्य मम	डूबे मेरे लिए
मूढधियः	मूढ-बुद्धि	युवां	आप दोनों
ग्राम्य पशोः	भोगोंमें लिप्त पशु-प्राय	ज्ञानदीप	ज्ञान-रूपी दीपक
		उदीर्यतां	जलावें ॥१६॥

अंगिरा उवाच-

अहं ते पुत्रकामस्य पुत्रदोऽस्म्यङ्गिरा नृप।
एष ब्रह्मसुतः साक्षान्नारदो भगवानृषिः ॥१७॥

अहं ते पुत्र कामस्य पुत्रदः अस्मि अङ्गिरा नृप एष ब्रह्मसुतः साक्षात् नारदः भगवान् ऋषिः ॥१७॥

---

*ये केवल नाम हैं।

नृप	राजन् !	**एष साक्षात्**	ये साक्षात्
ते पुत्र कामस्य	तुम पुत्राभिलाषीको	**भगवान्**	भगवान्
पुत्रदः	पुत्र देनेवाला	**ब्रह्मसुतः**	ब्रह्माजीके पुत्र
अहं अङ्गिरा	मैं अंगिरा	**ऋषिः नारदः**	देवर्षि नारद हैं ॥१७॥
अस्मि	हूँ,		

इत्थं त्वां पुत्रशोकेन मग्नं तमसि दुस्तरे ।
अतदर्हमनुस्मृत्य महापुरुषगोचरम् ॥१८॥

इत्थं त्वां पुत्रशोकेन मग्नं तमसि दुस्तरे अतदर्हं अनुस्मृत्य महापुरुष गोचरम् ॥१८॥

महापुरुष गोचरं	भगवान् पुरुषोत्तम-का दर्शन पाने योग्य	**दुस्तरे तमसि मग्नं अतदर्हं**	दुष्पार आज्ञानमें मग्न, इस (स्थिति) के अयोग्य
त्वां इत्थं	तुमको इस प्रकार		
पुत्रशोकेन	पुत्र-शोकसे	**अनुस्मृत्य**	समझकर ॥१८॥

अनुग्रहाय भवतः प्राप्तावावामिह प्रभो ।
ब्रह्मण्यो भगवद्भक्तो नावसीदितुमर्हति ॥१९॥

अनुग्रहाय भवतः प्राप्ता वा आवां इह प्रभो ब्रह्मण्यः भगवद्भक्तः न अवसीदितुं अर्हति ॥१९॥

प्रभो	राजन् !	**ब्रह्मण्यः**	ब्राह्मण-भक्त
भवतः अनुग्रहाय	तुमपर कृपा करनेके लिए	**वा**	अथवा
		भवद्भक्तः	भगवद्-भक्तको
आवां इह	हम दोनों यहां	**अवसीदितुं**	शोक
प्राप्ता	आये हैं (क्योंकि)	**न अर्हति**	नहीं करना चाहिए ॥१९॥

तदैव ते परं ज्ञानं ददामि गृहमागतः ।
ज्ञात्वान्याभिनिवेशं ते पुत्रमेव ददावहम् ॥२०॥

तदा एव ते परं ज्ञानं ददामि गृहं आगतः ज्ञात्वा अन्य अभिनिवेशं ते पुत्रं एव ददाः अहम् ॥२०॥

तदा एव	उसी समय	**ते अन्य**	तुम्हारा दूसरी बातमें
ते परं ज्ञानं	तुमको परमज्ञान	**अभिनिवेशं**	चित्त लगा
ददामि	देने	**ज्ञात्वा**	जानकर
गृहं आगतः	(तुम्हारे) घर आया था,	**अहं पुत्रं एव**	मैंने पुत्र ही
		ददाः	दिया ॥२०॥

अधुना पुत्रिणां तापो भवतैवानुभूयते ।
एवं दारा गृहा रायो विविधैश्वर्यसम्पदः ॥२१॥

अधुना पुत्रिणां तापः भवता एव अनुभूयते एवं दारा गृहा रायः विविध ऐश्वर्य सम्पदः ॥२१॥

अधुना	इस समय	**रायः**	धन
पुत्रिणां तापः	पुत्रवानोंको होने वाला दुःख	**विविध ऐश्वर्य**	अनेक प्रकारके ऐश्वर्य
भवता एव	तुम स्वयं	**सम्पदः एवं**	सम्पत्तियां ऐसी ही हैं ॥२१॥
अनुभूयते	अनुभव कर रहे हो,		
दारा गृहा	स्त्री, घर		

शब्दादयश्च विषयाश्चला राज्यविभूतयः ।
मही राज्यं बलं कोशो भृत्यामात्याः सुहृज्जनाः ॥२२॥

शब्द आदयः च विषयाः चलाः राज्यविभूतयः मही राज्यं बलं कोशः भृत्य अमात्याः सुहृत् जनाः ॥२२॥

शब्द आदयः	शब्द (स्पर्श) आदि	**बलं कोशः**	सेना, खजाना,
विषयाः	विषय,	**भृत्य अमात्याः**	सेवक, मन्त्री,
राज्यविभूतयः	राज्य-वैभव,	**सुहृत् जनाः**	इष्ट मित्र,
मही राज्यं	पृथ्वीका राज्य,	**चलाः**	अनित्य हैं ॥२२॥

सर्वेऽपि शूरसेनेमे शोकमोहभयार्तिदाः ।
गन्धर्वनगरप्रख्याः स्वप्नमायामनोरथाः ॥२३॥

सर्वे अपि शूरसेन इमे शोक मोह भय आर्तिदाः गन्धर्व नगर प्रख्याः स्वप्न माया मनोरथाः ॥२३॥

शूरसेन	शूरसेन !	**गन्धर्व नगर**	गन्धर्व-नगरके
इमे सर्वे अपि	ये सभी	**प्रख्याः**	समान,
शोक मोह	शोक, मोह,	**स्वप्न माया**	स्वप्न, जादूके समान
भय आर्तिदाः	भय और दुःख देने वाले हैं,	**मनोरथाः**	मन कल्पित हैं ॥२३॥

दृश्यमाना विनार्थेन न दृश्यन्ते मनोभवः ।
कर्मभिर्ध्यायतो नानाकर्माणि मनसोऽभवन् ॥२४॥

दृश्यमाना विना अर्थेन न दृश्यन्ते मनोभवाः कर्मभिः ध्यायतः नाना कर्माणि मनसः अभवन् ॥२४॥

विना अर्थेन	बिना तथ्यके ही	**कर्मभिःध्यायतः**	कर्मोंके द्वारा चिन्तन करने (पर दीखते हैं)
दृश्यमाना	(ये) दिखाई दे रहे हैं,	**नाना कर्माणि**	नाना प्रकार के कर्म
न दृश्यन्ते	वस्तुतः दीखते भी नहीं	**मनसः अभवन्**	मनकी कामनासे होते हैं ॥२४॥
मनोभवाः	मनसे उत्पन्न हैं,		

अयं हि देहिनो देहो द्रव्यज्ञानक्रियात्मकः ।
देहिनो विविधक्लेशसन्तापकृदुदाहृतः ॥२५॥

अयं हि देहिनः देहः द्रव्य ज्ञान क्रिया आत्मकः देहिनः विविधक्लेश सन्ताप कृत् उदाहृतः ॥२५॥

हि	क्योंकि	**विविधक्लेश**	नाना प्रकारके कष्ट तथा
द्रव्य ज्ञान	पंचभूत, ज्ञानेन्द्रिय,	**सन्ताप कृत्**	सन्ताप देनेवाला
क्रिया आत्मकः	एवं कर्मेन्द्रिय स्वरूप	**उदाहृतः**	कहा गया है ॥२५॥
देहिनः अयं देहः	जीवका यह शरीर		
देहिनः	जीवको		

तस्मात् स्वस्थेन मनसा विमृश्य गतिमात्मनः ।
द्वैते ध्रुवार्थविश्रम्भं त्यजोपशममाविश ॥२६॥

तस्मात् स्वस्थेन मनसा विमृश्य गतिं आत्मनः द्वैते ध्रुव अर्थ विश्रम्भं त्यज उपशमं आविश ॥२६॥

तस्मात्	इसलिए	**ध्रुव अर्थ**	नित्यत्व (सत्यत्व)
स्वस्थेन मनसा	स्वस्थ चित्तसे	**विश्रम्भं**	भ्रमको
आत्मनः गतिं	अपने स्वरूपका	**त्यज**	त्याग दो ।
विमृश्य	विचार करके	**उपशमं आविश**	शान्तिमें प्रवेश करो ॥२६॥
द्वैते	इस द्वैत (संसारमें)		

नारद उवाच—

एतां मन्त्रोपनिषदं प्रतीच्छ प्रयतो मम ।
यां धारयन् सप्तरात्राद् द्रष्टा सङ्कर्षणं प्रभुम् ॥२७॥

एतां मन्त्र उपनिषदं प्रतीच्छ प्रयतः मम यां धारयन् सप्तरात्राद् द्रष्टा सङ्कर्षणं प्रभुम् ॥२७॥

प्रयतः मम	एकाग्र होकर मुझसे	**यां धारयन्**	जिसे धारण करनेसे
एतां	यह	**सप्तरात्राद्**	सात रातमें ही
मन्त्र उपनिषदं	मन्त्रोपनिषद्	**सङ्कर्षणं प्रभुं**	संकर्षण भगवान्‌का
प्रतीच्छ	ग्रहण करो,	**द्रष्टा**	दर्शन कर सकोगे ॥२७॥

यत्पादमूलमुपसृत्य नरेन्द्र पूर्वे
शर्वादयो भ्रममिमं द्वितयं विसृज्य ।
सद्यस्तदीयमतुलानधिकं महित्वं
प्रापुर्भवानपि परं नचिरादुपैति ॥२८॥

यत् पादमूलं उपसृत्य नरेन्द्र पूर्वे शर्व आदयः भ्रमं इमं द्वितयं विसृज्य सद्यः तदीयं अतुला अनधिकं महित्वं प्रापुः भवान् अपि परं न चिरात् उपैति ॥२८॥

नरेन्द्र	नरेन्द्र !
पूर्वे	प्राचीन कालमें
यत् पादनूलं	जिनके चरणोंके समीप
उपसृत्य	पहुँचकर
शर्व आदयः	भगवान् शंकर आदिने
इमं द्वितयं भ्रमं	इस द्वैतके भ्रमको
विसृज्य	त्यागकर
सद्यः तदीयं	तत्काल उनके
अतुला	अतुलनीय,
अनधिकं	जिससे बड़ा कोई नहीं
महित्वं प्रापुः	उस महिमाको प्राप्त हुए,
भवान् अपि	तुम भी
परं	उसी परमात्माको
न चिरात्	अविलम्ब
उपैति	प्राप्त कर लोगे ॥२८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे चित्रकेतु सान्त्वनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

अथ षोडशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

अथ देवऋषी राजन् सम्परेतं नृपात्मजम् ।
दर्शयित्वेति होवाच ज्ञातीनामनुशोचताम् ॥ १ ॥

अथ देवऋषी राजन् सम्परेतं नृप आत्मजं दर्शयित्वा इति ह उवाच ज्ञातीनां अनुशोचताम् ॥१॥

राजन्	राजन् !	**सम्परेतं**	मरे हुए
अथ	इसके पश्चात्	**नृप आत्मजं**	राजाके पुत्रको
देवऋषी	देवर्षि नारद	**दर्शयित्वा**	दिखलाकर
अनुशोचतां	शोक करते हुए	**इति ह उवाच**	इस प्रकार ही बोले ॥१॥
ज्ञातीनां	जाति वालोंको		

नारद उवाच–

जीवात्मन् पश्य भद्रं ते मातरं पितरं च ते ।
सुहृदो बान्धवास्तप्ताः शुचा त्वत्कृतया भृशम् ॥ २ ॥

जीवात्मन् पश्य भद्रं मातरं पितरं च ते सुहृदः बान्धवाः तप्ताः शुचा त्वत् कृतया भृशम् ॥२॥

जीवात्मन्	जीवात्मा !	**त्वत् कृतया**	तुम्हारे कारण
ते भद्रं	तुम्हारा कल्याण हो	**शुचा**	शोकसे
पश्य	देखो,	**भृशं तप्ताः**	अत्यन्त संतप्त हो रहे हैं ॥२॥
ते मातरं पितरं	तुम्हारे माता-पिता		
सुहृदः च	हितैषी और		
बान्धवाः	सम्बन्धी		

कलेवरं स्वमाविश्य शेषमायुः सुहृद्वृतः ।
भुङ्क्ष्व भोगान् पितृप्रत्तानधितिष्ठ नृपासनम् ॥ ३ ॥

कलेवरं स्वं आविश्य शेषं आयुः सुहृत् वृतः भुङ्क्ष्व भोगान् पितृ प्रत्तान् अत्तितिष्ठ नृप आसनम् ॥३॥

स्वं कलेवरं	अपने शरीरमें	**पितृ प्रत्तान्**	पिताके दिये
आविश्य	प्रवेश करके	**भोगान् भुङ्क्ष्व**	भोगोंको भोगो,
शेषं आयुः	बची आयु भर	**नृप आसनं**	राजसिंहासनपर
सुहृत् वृतः	सम्बन्धियोंके साथ रहकर	**अधितिष्ठ**	बैठो ॥३॥

जीव उवाच-

कस्मिञ्जन्मन्यमी मह्यं पितरो मातरोऽभवन् ।
कर्मभिर्भ्राम्यमाणस्य देवतिर्यङ्नृयोनिषु ॥ ४ ॥

कस्मिन् जन्मनि अमी मह्यं पितरः मातरः अभवन् कर्मभिः भ्राम्यमाणस्य देवतिर्यङ् नृयोनिषु ॥४॥

देवतिर्यङ्	देवता, पशु-पक्षी आदि तथा	**मह्यं अमी**	मेरे ये लोग
नृयोनिषु	मनुष्य-योनिमें	**कस्मिन् जन्मनि**	किस जन्ममें
कर्मभिः	(अपने) कर्मके द्वारा	**पितरः मातरः**	पिता-माता
भ्राम्यमाणस्य	घुमाये जाते हुए	**अभवन्**	हुए हैं ॥४॥

बन्धुज्ञात्यरिमध्यस्थमित्रोदासीनविद्विषः ।
सर्व एव हि सर्वेषां भवन्ति क्रमशो मिथः ॥ ५ ॥

बन्धु ज्ञाति अरि मध्यस्थ मित्र उदासीन विद्विषः सर्व एव हि सर्वेषां भवन्ति क्रमशः मिथ ॥५॥

हि	क्योंकि	विद्विषः	द्वेषी
बन्धु ज्ञाति	भाई, जातिवाले,	क्रमशः मिथ	क्रमशः परस्पर
अरि मध्यस्थ	शत्रु, मध्यस्थ,	सर्व एव सर्वेषां	सभी सबके
मित्र उदासीन	मित्र, उदासीन	भवन्ति	होते हैं ॥५॥

यथा वस्तूनि पण्यानि हेमादीनि ततस्ततः ।
पर्यटन्ति नरेष्वेवं जीवो योनिषु कर्तृषु ॥ ६ ॥

यथा वस्तूनि पण्यानि हेम आदीनि ततः ततः पर्यटन्ति नरेषु एवं जीवः योनिषु कर्तृषु ॥६॥

यथा हेम	जैसे स्वर्ण	एवं जीवः	इसी प्रकार जीव
आदीनि	आदि	कर्तृषु योनिषु	कर्मानुसार योनियों-
पण्यानि वस्तूनि	बाजारू वस्तुमें		में (जाता है) ॥६॥
ततः ततः	जहां-तहां		
नरेषु पर्यटन्ति	मनुष्योंके पास घूमती हैं		

नित्यस्यार्थस्य सम्बन्धो ह्यनित्यो दृश्यते नृषु ।
यावद्यस्य हि सम्बन्धो ममत्वं तावदेव हि ॥ ७ ॥

नित्यस्य अर्थस्य सम्बन्धः हि अनित्यः दृश्यते नृषु यावत् यस्य हि सम्बन्धः ममत्वं तावत् एव हि ॥७॥

नित्यस्य	(अपेक्षाकृत) स्थायी	हि	अतः
अर्थस्य	(स्वर्णादि) पदार्थों-	यावत् यस्य	जब तक जिसका
	का	सम्बन्धः	सम्बन्ध है
हि	क्योंकि	तावत् एव हि	तब तक ही
नृषु अनित्यः	मनुष्योंसे अस्थायी	ममत्वं	(उसमें) मेरापन
सम्बन्धः	सम्बन्ध		रहता है ॥७॥
दृश्यते	दिखायी देता है		

एवं योनिगतो जीवः स नित्यो निरहंकृतः।
यावद्यत्रोपलभ्येत तावत्स्वत्वं हि तस्य तत् ॥ ८ ॥

एवं योनिगतः जीवः स नित्यः निरहंकृतः यावत् यत्र उपलभ्येत तावत् स्वत्वं हि तस्य तत् ॥८॥

एवं योनिगतः	इसी प्रकार योनियों-में जानेवाला	**उपलभ्येत**	पाया जाता है,
		तानत् हि	तब तक ही
जीवः	जीव है,	**तस्य तत्**	उसका उसपर
स नित्यः	वह नित्य और	**स्वत्वं**	अधिकार है ॥८॥
निरहंकृतः	अहंकारहीन है,		
यावत् यत्र	जब तक जहां जिसके यहां)		

एष नित्योऽव्ययः सूक्ष्म एष सर्वाश्रयः स्वदृक्।
आत्ममायागुणैर्विश्वमात्मानं सृजति प्रभुः ॥ ९ ॥

एष नित्यः अव्ययः सूक्ष्मः एष सर्वाश्रयः स्वदृक् आत्म माया गुणैः विश्वं आत्मानं सृजति विभुः ॥९॥

एष	यह	**आत्म माया**	अपनी मायाके
नित्यः अव्ययः	नित्य, अव्यय,	**गुणैः**	गुणों द्वारा
सूक्ष्मः स्वदृक्	सूक्ष्म, स्वयंप्रकाश है	**आत्मानं**	अपनेको ही
एष सर्वाश्रय.	यही सबका आश्रय	**विश्वं सृजति**	विश्वके रूपमें उत्पन्न करता है ॥९॥
विभुः	सर्वव्यापक		

न ह्यस्यातिप्रियः कश्चिन्नाप्रियः स्वः परोऽपिवा।
एकः सर्वाधियां द्रष्टा कर्तृणां गुणदोषयोः ॥१०॥

न हि अस्य अतिप्रियः कश्चित् न अप्रियः स्वः परः अपि वा एकः सर्वधियां द्रष्टा कर्तृणां गुण दोषयोः ॥१०॥

हि	क्योंकि
अस्य अतिप्रियः	इसका बहुत प्रिय
कश्चित् न	कोई नहीं है,
अप्रियः	कोई अप्रिय,
वा	अथवा
स्वः परः अपि	अपना या पराया भी नहीं है
एकः	यह अद्वितीय
गुण दोषयोः	गुण-दोषोंको
कर्तृणां	करने वाली
सर्वधियां	सब बुद्धियोंका
द्रष्टा	द्रष्टा है ॥१०॥

नादत्त आत्मा हि गुणं न दोषं न क्रियाफलम् ।
उदासीनवदासीनः परावरदृगीश्वरः ॥११॥

न आदत्त आत्मा हि गुणं न दोषं न क्रियाफलं उदासीनवत् आसीनः पर अवर दृक् ईश्वरः ॥११॥

हि आत्मा	क्योंकि आत्मा
न गुणं	न गुण,
न दोषं	न दोष
न क्रियाफलं	न कर्मफल
आदत्त	ग्रहण करता,
उदासीनवत्	उदासीनके समान
आसीनः	स्थित रहता
पर अवर दृक्	कारण-कार्य सबका साक्षी
ईश्वरः	स्वतन्त्र है ॥११॥

श्रीशुक उवाच

इत्युदीर्य गतो जीवो ज्ञातयस्तस्य ते तदा ।
विस्मिता मुमुचुः शोकं छित्त्वाऽऽत्मस्नेह शृङ्खलाम् ॥१२॥

इति उदीर्य गतः जीवः ज्ञातयः तस्य ते तदा विस्मिता मुमुचुः शोकं छित्त्वा आत्म स्नेह शृङ्खलाम् ॥१३॥

इति उदीर्य	ऐसा कहकर
जीवः गतः	जीव चला गया
तदा तस्य	तब उसके
ते ज्ञातयः	वे जातिवाले
विस्मिता	चकित रह गये,
आत्म	अपने हृदयकी
स्नेह शृङ्खलां	स्नेहरूपी जंजीर
छित्त्वा	काटकर
शोकं मुमुचुः	शोक त्याग दिया ॥१२॥

निर्हृत्य ज्ञातयो ज्ञातेर्देहं कृत्वोचिताः क्रियाः ।
तत्यजुर्दुस्त्यजं स्नेहं शोकमोहभयार्तिदम् ॥१३॥

निर्हृत्य ज्ञातयः ज्ञातेः देहं कृत्वा उचिताः क्रियाः तत्यजुः दुस्त्यजं स्नेहं शोक मोह भय आर्तिदम् ॥१३॥

ज्ञातयः	जाति वालोंने	**कृत्वा**	करके
ज्ञातेः देहं	अपनी जातिके (बालक)के शरीरको	**शोक मोह भय आर्तिदं**	शोक, मोह, भय, दुःख देनेवाले
निर्हृत्य	ले जाकर	**दुस्त्यजं स्नेहं**	दुस्त्याज्य स्नेहको
उचिताः क्रियाः	उचित अन्तिम-संस्कार	**तत्यजुः**	त्याग दिया ॥१३॥

बालघ्न्यो व्रीडितास्तत्र बालहत्याहतप्रभाः ।
बालहत्याव्रतं चेरुर्ब्राह्मणैर्यन्निरूपितम् ।
यमुनायां महाराज स्मरन्त्यो द्विजभाषितम् ॥१४॥

बालघ्न्यः व्रीडिताः तत्र बालहत्या हतप्रभाः बालहत्या व्रतं चेरुः ब्राह्मणैः यत् निरुपितं यमुनायां महाराज स्मरन्त्यः द्विजभाषितम् ॥१४॥

महाराज	महाराज !	**हतप्रभाः**	लुप्त-कान्ति
तत्र	वहां	**बालघ्न्यः**	बालककी हत्या-रिणोंने
द्विजभाषितं	ब्राह्मण अंगिराकी बातका	**ब्राह्मणैः**	ब्राह्मणोंने
स्मरन्त्यः	स्मरण करके	**यत् निरूपितं**	जो बतलाया
तत्र यमुनायां	वहां यमुना-किनारे	**बालहत्या**	बाल-हत्याका
व्रीडिताः	लज्जित होकर	**व्रतं चेरुः**	प्रायश्चित किया ॥१४॥
बालहत्या	बालककी हत्यासे		

स इत्थं प्रतिबुद्धात्मा चित्रकेतुर्द्विजोक्तिभिः ।
गृहान्धकूपान्निष्क्रान्तः सरः पङ्कादिव द्विपः ॥१५॥

स इत्थं प्रतिबुद्ध आत्मा चित्रकेतुः द्विज उक्तिभिः गृह अन्धकूपात् निष्क्रान्तः सरः पङ्कात् इव द्विपः ॥१५॥

इत्थं	इस प्रकार	**सरः पङ्कात्**	सरोवरके कीचड़से
द्विज उक्तिभिः	ब्राह्मण (अंगिरा-नारद) की बातसे	**द्विपः इव**	हाथीके समान
		गृह अन्धकूपात्	गृहस्थ रूपी अन्धेरे कुएंसे
स चित्रकेतुः	वह राजा चित्रकेतु		
प्रतिबुद्ध आत्मा	सावधान चित्त होकर	**निष्क्रान्तः**	निकल गया ॥१५॥

कालिन्द्यां विधिवत् स्नात्वा कृतपुण्यजलक्रियः ।
मौनेन संयतप्राणो ब्रह्मपुत्रावन्दत ॥१६॥

कालिन्द्यां विधिवत् स्नात्वा कृत पुण्यजलक्रियः मौनेन संयतप्राणः ब्रह्मपुत्राः अवन्दत ॥१६॥

विधिवत्	विधिपूर्वक	**मौनेन**	मौनके द्वारा
कालिन्द्यां	यमुनामें	**संयतप्राणः**	प्राणोंको नियन्त्रित करके
स्नात्वा	स्नान करके		
पुण्यजलक्रियः	(तर्पणादि) पवित्र-जल-क्रिया	**ब्रह्मपुत्राः**	ब्रह्माजी पुत्रों (अंगिरा-नारद) को
कृत	सम्पन्न करके,	**अवन्दत**	प्रणाम किया ॥१६॥

अथ तस्मै प्रपन्नाय भक्ताय प्रयतात्मने ।
भगवान्नारदः प्रीतो विद्यामेतामुवाच ह ॥१७॥

अथ तस्मै प्रपन्नाय भक्ताय प्रयत आत्मने भगवान् नारदः प्रीतः विद्यां एतां उवाच ह ॥१७॥

अथ तस्मै	तब उस	**भगवान् नारदः**	भगवान् नारदने
प्रयत आत्मने	संयत चित्त	**एतां विद्यां**	इस विद्याका
प्रपन्नाय	शरणागत	**ह उवाच**	निश्चित उपदेश किया ॥१७॥
भक्ताय	भक्तपर		
प्रीतः	प्रसन्न होकर		

*नारद उवाच–**

ॐ नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय धीमहि ।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः सङ्कर्षणाय च ॥१८॥

ॐ नमः तुभ्यं भगवते वासुदेवाय धीमहि प्रद्युम्नाय अनिरुद्धाय नमः सङ्कर्षणाय च ॥१८॥

ॐ	ओंकार स्वरूप	**प्रद्युम्नाय**	प्रद्युम्नको
भगवते	भगवान्	**अनिरुद्धाय**	अनिरुद्धको
वासुदेवाय	वासुदेव	**च सङ्कर्षणाय**	और संकर्षणको
तुभ्यं नमः	आपको नमस्कार,	**नमः**	नमस्कार ॥१८॥
धीमहि	हम आपका ध्यान करते हैं		

नमो विज्ञानमात्राय परमानन्दमूर्तये ।
आत्मारामाय शान्ताय निवृत्तद्वैतदृष्टये ॥१९॥

नमः विज्ञानमात्राय परमानन्दमूर्तये आत्मारामाय शान्ताय निवृत्त द्वैत दृष्टये ॥१९॥

विज्ञानमात्राय	विशुद्ध विज्ञान स्वरूप,	**द्वैत**	द्वैत
परमानन्दमूर्तये	परमानन्दकी मूर्ति,	**दृष्टये निवृत्त**	दृष्टिसे परे
आत्मारामाय	आत्माराम	**नमः**	आपको नमस्कार ॥१९॥
शान्ताय	शान्त स्वरूप		

आत्मानन्दानुभूत्यैव न्यस्तशक्त्यूर्मये नमः ।
हृषीकेशाय महते नमस्ते विश्वमूर्तये ॥२०॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

आत्मानन्द अनुभूति एव न्यस्त शक्ति ऊर्मये नमः हृषीकेशाय महते नमः ते विश्वमूर्तये ॥२०॥

आत्मानन्द	आत्मानन्दकी	**नमः**	आपको नमस्कार,
अनुभूति एव	अनुभूतिसे ही	**हृषीकेशाय**	हृषीकेश
शक्ति ऊर्मये	माया शक्तिकी लहरों (राग-द्वेषादि) को	**महते विश्वमूर्तये**	महान विश्वमूर्ति
		ते नमः	आपको नमस्कार ॥२०॥
न्यस्त	त्यागे हुए		

वचस्युपरतेऽप्राप्य य एको मनसा सह ।
अनामरूपश्चिन्मात्रः सोऽव्यान्नः सदसत्परः ॥२१॥

वचसि उपरते अप्राप्य यः एकः मनसा सह अनाम अरूपः चिन्मात्रः सः अव्यात् नः सत् असत् परः ॥२१॥

मनसा सह	मनके साथ	**चिन्मात्रः**	ज्ञान मात्र
वचसि अप्राप्य	वाणीके बिना पाये ही	**सत् असत् परः**	कारण-कार्यातीत तत्त्व है
उपरते	लौट आनेपर	**सः नः अव्यात्**	वह हमारी रक्षा करे ॥२१॥
यः एकः	जो अद्वितीय		
अनाम अरूपः	नाम रूपसे रहित		

यस्मिन्निदं यतश्चेदं तिष्ठत्यप्येति जायते ।
मृण्मयेष्विव मृज्जातिस्तस्मै ते ब्रह्मणे नमः ॥२२॥

यस्मिन् इदं यतः च इदं तिष्ठति अपि एति जायते मृण्मयेषु इव मृत् जातिः तस्मै ते ब्रह्मणे नमः ॥२२॥

मृण्मयेषु	मिट्टीसे बने (घड़े आदि) पदार्थोंमें	**यस्मिन् इदं**	जिसमें यह संसार
मृत् जातिः इव	मिट्टी जातिके समान	**तिष्ठति**	स्थित है
		च यतः इदं	और जिससे यह संसार

एति जायते	आकर उत्पन्न होता है	ब्रह्मणे नमः	परम ब्रह्मको नमस्कार ॥२२॥
तस्मै ते	उस आप		

यन्न स्पृशन्ति न विदुर्मनोबुद्धीन्द्रियासवः ।
अन्तर्बहिश्च विततं व्योमवत्तन्नतोऽस्म्यहम् ॥२३॥

यत् न स्पृशन्ति न विदुः मनः बुद्धि इन्द्रिय असवः अन्तः बहिः च विततं व्योमवत् तत् नतः अस्मि अहम् ॥२३॥

मनः बुद्धि	मन, बुद्धि,	अन्तः च बहिः	भीतर और बाहर
इन्द्रिय असवः	इन्द्रियां, प्राण	विततं	एकरस फैले (व्याप्त)
यत् न स्पृशन्ति	जिसे नहीं छूते,	तत् अहं	उस आपको मैं
न विदुः	न जानते,	नतः अस्मि	नमस्कार करता हूँ ॥२३॥
व्योमवत्	आकाशकी भांति		

देहेन्द्रियप्राणमनोधियोऽमी
यदंशविद्धाः प्रचरन्ति कर्मसु ।
नैवान्यदा लोहमिवाप्रतप्तं
स्थानेषु तद् द्रष्टृपदेशमेति ॥२४॥

देह इन्द्रिय प्राण मनः धियः अमी यत् अंश विद्धाः प्रचरन्ति कर्मसु न एव अन्यदा लोहं इव आप्रतप्तं स्थानेषु तत् द्रष्ट अपदेशं एति ॥२४॥

अमी	ये	प्रचरन्ति	लगे रहते हैं,
देह इन्द्रिय	शरीर, इन्द्रियां,	अन्यदा	अन्यथा (जिससे युक्त न होनेपर सुषुप्तिमें)
प्राण मनः	प्राण, मन		
धियः	बुद्धि	न एव	नहीं ही (कार्यशील) रहते
यत् अंश विद्धाः	जिसके अंश (जीव) से मुक्त होकर	आप्रतप्तं लोहं	तपाये लोहेके
कर्मसु	(अपने) कर्मोंमें	इव	समान*

* तपाये लोहेमें जब तक अग्नि व्याप्त है तभी तक जलायेगा अन्यथा नहीं।

स्थानेषु	(जागृतादि) अवस्थाओंमें	**अपदेशं एति**	नाम स्वीकार कर लेता है ॥२४॥
तत् द्रष्ट	वही द्रष्टा		

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सकलसात्वतपरिवृढनिकरकरकमलकुड्मलोपलालितचरणारविन्द-युगल परम परमेष्ठिन्नमस्ते ॥२५॥

ॐ नमः भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सकल सात्वत परिवृढ निकर कर कमल कुड्मल उपलालित चरण अरविन्द युगल परम परमेष्ठिन् नमः ते ॥२५॥

ॐ भगवते	ओंकार स्वरूप भगवान्	**कर कमल**	कर-कमल
महानुभावाय	महान प्रभावशाली	**कुड्मल**	कलियोंसे
महाविभूतिपतये	महाविभूतिपति	**उपलालित**	संसेवित
महापुरुषाय	महापुरुषको	**युगल चरण**	दोनों चरण-
नमः	नमस्कार,	**अरविन्द**	कमलवाले
सकल सात्वत	समस्त भक्त-	**परम परमेष्ठिन्**	सर्वश्रेष्ठ परम प्रभु
परिवृढ निकर	श्रेष्ठ समुदायके	**ते नमः**	आपको नमस्कार ॥२५॥

श्रीशुक उवाच—

भक्तायैतां प्रपन्नाय विद्यामादिश्य नारदः ।
ययावङ्गिरसा साकं धाम स्वायम्भुवं प्रभो ॥२६॥

भक्ताय एतां प्रपन्नाय विद्यां आदिश्य नारदः ययाः अङ्गिरसा साकं धाम स्वायम्भुवं प्रभो ॥२६॥

प्रभो	परीक्षित !	**नारदः**	देवर्षि नारद
प्रपन्नाय	शरणागत	**अङ्गिरसा साकं**	महर्षि अंगिराके साथ
भक्ताय	भक्त (चित्रकेतु) का	**स्वायम्भुवं धाम**	ब्रह्मलोक
एतां विद्यां	इस विद्याका	**ययाः**	चले गये ॥२६॥
आदिश्य	उपदेश करके		

चित्रकेतुस्तु विद्यां तां यथा नारदभाषिताम् ।
धारयामास सप्ताहमब्भक्षः सुसमाहितः ॥२७॥

चित्रकेतुः तु विद्यां तां यथा नारदः भाषितां धारयामास सप्ताहं अब् भक्षः सुसमाहितः ॥२७॥

यथा नारदः	जैसा नारदजीने	**अब् भक्षः**	केवल जल पीकर
भाषितां	बतलाया था	**सुसमाहितः**	अत्यन्त एकाग्र होकर
तां विद्यां	उस विद्याको		
चित्रकेतुः तु	चित्रकेतुने तो	**धारयामास**	धारण किया ॥२७॥
सप्ताहं	एक सप्ताह तक		

ततश्च सप्तरात्रान्ते विद्यया धार्यमाणया ।
विद्याधराधिपत्यं स लेभेऽप्रतिहतं नृपः ॥२८॥

ततः च सप्तरात्र अन्ते विद्यया धार्यमाणया विद्याधर आधिपत्यं स लेभे अप्रतिहतं नृपः ॥२८॥

ततः च	फिर तो	**अप्रतिहतं**	निर्बाध
सप्तरात्र अन्ते	एक सप्ताहके अन्तमें	**विद्याधर**	विद्याधरोंका
विद्यया	उस विद्याको	**आधिपत्यं**	आधिपत्य
धार्यमाणया	धारण करनेसे	**लेभे**	प्राप्त कर लिया ॥२८॥
स नृपः	उस राजा (चित्रकेतु)ने		

ततः कतिपयाहोभिर्विद्ययेद्धमनोगतिः ।
जगाम देवदेवस्य शेषस्य चरणान्तिकम् ॥२९॥

ततः कतिपय अहोभिः विद्यया इद्ध मनः गतिः जगाम देवदेवस्य शेषस्य चरण अन्तिकम् ॥२९॥

ततः कतिपय	फिर कुछ	**विद्यया इद्ध**	उस विद्यासे बढ़ी
अहोभिः	दिनोंमें	**मनः गतिः**	मनकी गतिके द्वारा

देवदेवस्य	देवाधिदेव	चरण अन्तिकं	चरणोंके पास
शेषस्य	भगवान शेषके	जगाम	पहुँचा ॥२९॥

मृणालगौरं शितिवाससं स्फुरत्-
किरीटकेयूरकटित्रकङ्कणम् ।
प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनं वृतं
ददर्श सिद्धेश्वरमण्डलैः प्रभुम् ॥३०॥

मृणाल गौरं शितिवाससं स्फुरत् किरीट केयूर कटित्र कङ्कणं प्रसन्न-वक्त्र अरुण लोचनं वृतं ददर्श सिद्धेश्वर मण्डलैः प्रभुम् ॥३०॥

मृणाल गौरं	कमल-तन्तु गौर वर्ण,	प्रसन्नवक्त्रं	प्रसन्न मुख,
		अरुण लोचनं	लाल नेत्रोंवाले
शितिवाससं	नीलाम्बरधारी,	प्रभुं	प्रभुको
स्फुरत किरीट	चमकते मुकुट,	सिद्धेश्वर	सिद्धेश्वरोंके
केयूर कटित्र	अंगद, करधनी	मण्डलैः	समूहसे
कङ्कणं	कङ्कण पहिने,	वृतं ददर्श	घिरा देखा ॥३०॥

तद्दर्शनध्वस्तसमस्तकिल्बिषः
स्वच्छामलान्तःकरणोऽभ्ययान्मुनिः ।
प्रवृद्धभक्त्या प्रणयाश्रुलोचनः
प्रहृष्टरोमानमदादिपूरुषम् ॥३१॥

तत् दर्शन ध्वस्त समस्त किल्बिषः स्वच्छ अमल अन्तःकरणः अभ्ययात् मुनिः प्रवृद्ध भक्तया प्रणय अश्रु लोचनः प्रहृषु रोमा नमत् आदि पूरुषं ॥३१॥

तत् दर्शन	उनके दर्शनसे	स्वच्छ अमल	स्वच्छ निर्मल
समस्त	सम्पूर्ण	अन्तःकरणः	अन्तःकरण होकर
किल्बिषः	पाप	मुनिः अभ्ययात्	मौन समीप पहुँचा ।
ध्वस्त	नष्ट हो गये ।	प्रवृद्ध भक्तया	भक्तिके बढ़ जानेसे

प्रणय अश्रु लोचनः	नेत्रोंमें प्रेमाश्रु आ गये,	आदि पूरुषं	(उन) आदि पुरुष-को
प्रहृष्ट रोमा	रोम खड़े हो गये,	नमत्	नमस्कार किया ॥३१॥

स उत्तमश्लोकपदाब्जविष्टरं
प्रेमाश्रुलेशैरुपमेहयन्मुहुः ।
प्रेमोपरुद्धाखिलवर्णनिर्गमो
नैवाशकत्तं प्रसमीडितुं चिरम् ॥३२॥

स उत्तम श्लोक पदाब्ज विष्टरं प्रेम अश्रुलेशैः उपमेहयन् मुहुः प्रेम उपरुद्ध अखिल वर्ण निर्गमः न एव अशकत् तं प्रसमीडितुं चिरम् ॥३२॥

स	वह	अखिल वर्ण	सम्पूर्ण अक्षरोंका
उत्तम श्लोक	पवित्र कीर्ति (भगवान् शेष) के	निर्गमः	निकलना
पदाब्ज	चरण-कमलोंके	उपरुद्ध	रुक जानेसे
विष्टरं	पाद-पीठको	चिरं	देर तक
प्रेम अश्रुलेशैः	प्रेमाश्रु-प्रवाहसे	तं प्रसमीडितुं	उनकी स्तुति करनेमें
मुहुः उपमेहयन्	बार-बार भिगाता रहा।	अशकत् न एव	समर्थ नहीं ही हुआ ॥३२॥
प्रम	प्रेमके कारण		

ततः समाधाय मनो मनीषया
बभाष एतत्प्रतिलब्धवागसौ ।
नियम्य सर्वेन्द्रियबाह्यवर्तनं
जगद्गुरुं सात्वतशास्त्रविग्रहम् ॥३३॥

ततः समाधाय मनः मनीषया बभाष एतत् प्रतिलब्ध वाक् असौ नियम्य सर्वेन्द्रिय बाह्य वर्तनं जगद्गुरुं सात्वत शास्त्र विग्रहं ॥३३॥

ततः मनीषया	फिर बुद्धिके द्वारा
मनः समाधाय	मनको स्थिर करके,
प्रतिलब्ध वाक्	वाणी प्राप्त करके (बोलनेमें समर्थ होकर)
सर्वेन्द्रिय	सब इन्द्रियोंका
बाह्य वर्तनं	बाहरी व्यवहार
नियम्य	नियन्त्रित करके
सात्वत शास्त्र	पाञ्चरात्र शास्त्र वर्णित
विग्रहं	स्वरूपवाले
जगद्गुरुं	जगद्गुरु भगवान् शेषसे
असौ एतत्	यह इस प्रकार
बभाष	बोला ॥३४॥

चित्रकेतु उवाच—

अजित जितः सममतिभिः
साधुभिर्भवान् जितात्मभिर्भवता ।
विजितास्तेऽपि च भजता-
मकामात्मनां य आत्मदोऽतिकरुणः ॥३४॥

अजित जितः सममतिभिः साधुभिः भवान् जित आत्मभिः भवता विजिताः ते अपि च भजतां अकाम आत्मनां यः आत्मदः अतिकरुणः ॥३४॥

अजित	अजित !
जित आत्मभिः	जितेन्द्रिय
सममतिभिः	समबुद्धि
साधुभि	साधुओं द्वारा
भवान् जितः	आप जीत लिए गये हैं ।
च ते अपिः	और वे भी
भवता विजिताः	आपके द्वारा जीत लिये गये हैं
यः अतिकरुणः	जो अतिशय कृपालु (आप)
अकाम आत्मनां	निष्काम हृदयसे
भजतां	भजन करने वालोंको
आत्मदः	अपनेको ही दे देते हैं ॥३४॥

तव विभवः खलु भगवन्
जगदुदयस्थितिलयादीनि ।
विश्वसृजस्तेऽशांशा-
स्तत्र मृषा स्पर्धन्ते पृथगभिमत्या ॥३५॥

तव विभवः खलु भगवन् जगत् उदय स्थिति लय आदीनि विश्वसृजः ते अंश अंशाः तत्र मृषा स्पर्धन्ते पृथक् अभिमत्या ॥३५॥

भगवन्	भगवन् !	**ते अंश अंशाः**	आपके अंशके भी अंश हैं,
खलु तव	अरे, आपका	**तत्र**	सृष्टि आदिमें
विभवः	वैभव	**पृथक् अभिमत्या**	अपनेको पृथक-पृथक (जगत्-कर्ता) मानकर
जगत् उदय	विश्वका प्रकट होना,	**मृषा स्पर्धन्ते**	झूठे ही स्पर्धा करते हैं ॥३५॥
स्थिति लय	रहना, प्रलय होना		
आदीनि	आदि हैं,		
विश्वसृजः	दूसरे विश्व-स्रष्टा		

परमाणुपरममहतो-
स्त्वमाद्यन्तान्तरवर्ती त्रयविधुरः ।
आदावन्तेऽपि च सत्त्वानां
यद् ध्रुवं तदेवान्तरालेऽपि ॥३६॥

परमाणु परम महतोः त्वं आदि अन्त अन्तरवर्ती त्रयविधुरः आदाः अन्ते अपि च सत्त्वानां यत् ध्रुवं तत् एव अन्तराले अपि ॥३६॥

परमाणु	परमाणुसे लेकर	**सत्त्वानां**	वस्तुओंके
परम महतोः	महत्तत्त्व तक	**आदाः च**	आदि और
त्वं	आप ही (सबके)	**अन्ते अपि**	अन्तमें भी
आदि अन्त	आदि, अन्त और	**यत् ध्रुवं**	जो स्थिर रहता है
अन्तरवर्ती	मध्यमें भी हैं (तथा)	**तत् एव**	वही
त्रयविधुरः	(आदि, अन्त, मध्य) तीनोंसे स्वयं रहित हैं,	**अन्तराले अपि**	मध्यमें भी होता है ॥३६॥

क्षित्यादिभिरेष किलावृतः
सप्तभिर्दशगुणोत्तरैराण्डकोशः ।
यत्र पतत्यणुकल्पः
सहाण्डकोटिकोटिभिस्तदनन्तः ॥३७॥

क्षिति आदिभिः एष किल आवृतः सप्तभिः दशगुण उत्तरैः आण्डकोशः यत्र पतति अणु कल्पः सह अण्डकोटि कोटिभिः तत् अनन्तः ॥३७॥

किल एष	अहो, यह	**अण्डकोटिः**	(अपने समान) करोड़ों ब्रह्माण्डोंकी
आण्डकोशः	ब्रह्माण्ड	**कोटिभिः**	श्रेणियोंके साथ
क्षिति आदिभिः	पृथ्वी आदि	**यत्र अणु कल्पः**	जिसमें अणुके समान
दशगुण	(एक दूसरेसे) दस गुने	**पतति**	घूमते रहते हैं
सप्तभिः	सात (पंचभूत, अहंकार, महत्तत्त्व)	**तत् अनन्तः**	वह आप अनन्त हैं ॥३७॥
आवृतः	आवरणोंसे घिरा है,		

विषयतृषो नरपशवो
य उपासते विभूतीर्न परं त्वाम् ।
तेषामाशिष ईश
तदनु विनश्यन्ति यथा राजकुलम् ॥३८॥

विषय तृषः नरपशवः यः उपासते विभूतीः न परं त्वां तेषां आशिष ईश तत् अनु विनश्यन्ति यथा राजकुलम् ॥३८॥

यः विभूतीः	जो विभूतियों (देवताओं) की	**ईश**	समर्थ प्रभु
उपासते	उपासना करते हैं	**यथा राजकुलं**	जैसे राजकुलके (दिये गायें आदि उसके नष्ट होनेपर)
परं त्वां न	परम पुरुष आपकी नहीं	**तत् अनु**	उन (देवताओंके) पीछे ही
विषय तृषः	विषयोंकी तृष्णावाले	**विनश्यन्ति**	नष्ट हो जाती हैं ॥३८॥
तेषां नरपशवः	उन मनुष्यरूपी पशुओंकी		
आशिष	कामनाएँ		

कामधियस्त्वयि रचिता
न परम रोहन्ति यथा करम्भबीजानि ।
ज्ञानात्मन्यगुणमये
गुणगणतोऽस्य द्वन्द्वजालानि ॥३९॥

कामधियः त्वयि रचिता न परम रोहन्ति यथा करम्भ बीजानि ज्ञान आत्मनि अगुणमये गुण गणतः अस्य द्वन्द्वजालानि ॥३९॥

काम धियः	सकाम बुद्धिसे
त्वयि ज्ञान	आप ज्ञान
आत्मनि	स्वरूप,
अगुणमये	निर्गुणकी
रचिता	की गयी उपासना
परम न रोहन्ति	फिर (जन्मादि फल देनेके लिए) नहीं उगती
यथा करम्भ	जैसे भुने
बीजानि	बीज,
अस्य गुण गणतः	इस जगतके ही गुण-गणोंसे
द्वन्द्वजालानि	(सुख-दुःखादि) द्वन्दोंका ज्ञाता उत्पन्न होता है ॥३९॥

जितमजित तदा भवता
यदाऽऽह भागवतं धर्ममनवद्यम् ।
निष्किञ्चना ये मुनय
आत्मारामा यमुपासतेऽपवर्गाय ॥४०॥

जितं अजित तदा भवता यदा आह भागवतं धर्मं अनवद्यं निष्किञ्चना ये मुनयः आत्मारामा यं उपासते अपवर्गाय ॥४०॥

अजित	अजित !
यदा भवता	जब आपने
अनवद्यं	निर्दोष
भागवतं धर्मं	भागवत-धर्मका
आह	उपदेश किया
ये निष्किञ्चना	जो आकिञ्चन
मुनयः	मुनिगण हैं
अपवर्गाय	मोक्ष प्राप्तिके लिए
यं उपासते	जिस भागवत धर्म-की उपासना करते हैं
तदा जितं	तभी (सबको) जीत लिया ॥४०॥

विषममतिर्न यत्र नृणां
त्वमहमिति मम तवेति च यदन्यत्र ।
विषमधिया रचितो यः
स ह्यविशुद्धः क्षयिष्णुरधर्मबहुलः ॥४१॥

विषममतिः न यत्र नृणां त्वं अहं इति मम तव इति च यत् अन्यत्र विषमधिया रचितः यः स हि अविशुद्धः क्षयिष्णुः अधर्म बहुलः ॥४१॥

यत्र	जिस(भागवत-धर्म)में	**यत् अन्यत्र**	जो इससे भिन्न
नृणां	मनुष्योंकी	**विषमधिया**	विषम-बुद्धिसे
अहं इति च	'यह मैं हूँ' इस प्रकार और	**रचितः**	बनाये गये
त्वं	यह तू	**यः स हि**	जो धर्म हैं वे तो
मम तव इति	'यह मेरा, यह तुम्हारा' इस प्रकार	**अविशुद्धः**	अशुद्ध हैं,
विषममतिः न	विषम बुद्धि नहीं होती	**क्षयिष्णु**	नाशवान हैं,
		अधर्म बहुलः	अधर्म प्रधान हैं ॥४१॥

कः क्षेमो निजपरयोः
कियानर्थः स्वपरद्रुहा धर्मेण ।
स्वद्रोहात्तव कोपः
परसम्पीडया च तथाधर्मः ॥४२॥

कः क्षेमः निजपरयोः कियान् अर्थः स्वपरद्रुहा धर्मेण स्वद्रोहात् तव कोपः परसम्पीडया च तथा अधर्मः ॥४२॥

निजपरयोः	अपने और परायेपनेमें	**स्वपरद्रुहा**	अपने और परायेमें द्वेष उत्पन्न करनेवाले
कः क्षेमः	क्या कल्याण होने वाला है,	**धर्मेण**	धर्मसे

कियान अर्थः	क्या प्रयोजन बनने वाला है,	**तव कोपः**	आप क्रोध करते हैं
		च तथा	और वैसे ही
स्वद्रोहात्	(सकाम-धर्मसे) अपनेको पीड़ा होने पर	**परसम्पीडया**	दूसरेको पीड़ा देनेसे
		अधर्मः	पाप होता है ॥४२॥

न व्यभिचरति तवेक्षा
यया ह्यभिहितो भागवतो धर्मः ।
स्थिरचरसत्त्वकदम्बे-
ष्वपृथग्धियो यमुपासते त्वार्याः ॥४३॥

न व्यभिचरति तव ईक्षा यया हि अभिहितः भागवतः धर्मः स्थिर चर सत्त्व कदम्बेषु अपृथक् धियः यं उपासते तु आर्याः ॥४३॥

यया हि	जिसके द्वारा	**आर्याः तु**	श्रेष्ठ-पुरुष तो
भागवतः धर्मः	भागवत-धर्म	**स्थिर चर**	जड़-चेतन
अभिहितः	निरूपण किया है	**सत्त्व कदम्बेषु**	प्राणि-समूहमें
तव ईक्षा	आपकी वह दृष्टि	**अपृथक् धियः**	समबुद्धि रखकर
व्यभिचरति न	(परमार्थसे) विचलित नहीं होती	**यं उपासते**	जिसका सेवन करते हैं ॥४३॥

न हि भगवन्नघटितमिदं
त्वद्दर्शनान्नृणामखिलपापक्षयः ।
यन्नामसकृच्छ्रवणात्
पुल्कसकोऽपि विमुच्यते संसारात् ॥४४॥

न हि भगवन् अघटितं इदं त्वत् दर्शनात् नृणां अखिल पाप क्षयः यत् नाम सकृत् श्रवणात् पुल्कसकः अपि विमुच्यते संसारात् ॥४४॥

भगवन्	भगवन्	**नृणां**	मनुष्योंके
त्वत् दर्शनात्	आपके दर्शनसे	**अखिल पाप क्षयः**	समस्त पापोंका नाश

न अघटितं	अशक्य नहीं है	पुल्कसकः अपि	कसाई भी
हि यत् नाम	क्योंकि जिनका नाम	संसारात्	संसार (चक्र) से
सकृत् श्रवणात्	एक बार ही सुनकर	विमुच्यते	छूट जाता है ॥४४॥

अथ भगवन् वयमधुना
त्वदवलोकपरिमृष्टाशयमलाः ।
सुरऋषिणा यदुदितं
तावकेन कथमन्यथा भवति ॥४५॥

अथ भगवन् वयं अधुना त्वत् अवलोक परिमृष्ट आशय मलाः सुर ऋषिणा यत् उदितं तावकेन कथं अन्यथा भवति ॥४५॥

भगवन्	भगवन्,	तावकेन	आपके भक्त
अथ अधुना	अब इस समय	सुर ऋषिणा	देवर्षिने
वयं	हम	यत् उदितं	जो कहा था
त्वत् अवलोक	आपका दर्शन करके	अन्यथा	उसके विपरीत
आशय मलाः	अन्तःकरण के दोषों-से	कथं भवति	कैसे हो सकता है ॥४५॥
परिमृष्ट	सर्वथा स्वच्छ हो गये हैं ।		

विदितमनन्त समस्तं
तव जगदात्मनो जनैरिहाचरितम् ।
विज्ञाप्यं परमगुरोः
कियदिव सवितुरिव खद्योतैः ॥४६॥

विदितं अनन्त समस्तं तव जगत् आत्मनः जनैः इह आचरितं विज्ञाप्यं परमगुरोः कियत् इव सवितुः इव खद्योतैः ॥४६॥

तव	आप	अनन्त	हे अनन्त !
जगत् आत्मनः	विश्वरूपको	जनैः इह	लोगों द्वारा इस संसारमें

समस्तं आचरितं	किया गया समस्त चरित	**खद्योतैः इव**	जुगनूकी भांति
विदितं	ज्ञात ही है	**परमगुरोः**	आप परमगुरुको
सवितुः	सूर्यको	**कियत् इव**	भला क्या
		विज्ञाप्यं	बतलाना है ॥४६॥

नमस्तुभ्यं भगवते
सकलजगत्स्थितिलयोदयेशाय ।
दुरवसितात्मगतये
कुयोगिनां भिदा परमहंसाय ॥४७॥

नमः तुभ्यं भगवते सकल जगत् स्थिति लय उदय ईशाय दुरवसित आत्मगतये कुयोगिनां भिदा परम हंसाय ॥४७॥

सकल जगत्	सम्पूर्ण संसारकी	**दुरवसित**	दुश्चिन्त्य है,
स्थिति लय	स्थिति, प्रलय,	**परम हंसाय**	परम शुद्ध-स्वरूप
उदय ईशाय	उत्पत्तिके स्वामी	**भगवते**	भगवान्
भिदा कुयोगिनां	भेद-दृष्टिवाले कुयोगियोंके लिए	**तुभ्यं नमः**	आपको नमस्कार ॥४७॥
आत्मगतये	आपका स्वरूप		

यं वै श्वसन्तमनु विश्वसृजः श्वसन्ति
यं चेकितानमनु चित्तय उच्चकन्ति ।
भूमण्डलं सर्षपायति यस्य मूर्ध्नि
तस्मै नमो भगवतेऽस्तु सहस्रमूर्ध्ने ॥४८॥

यं वै श्वसन्तं अनु विश्वसृजः श्वसन्ति यं च ईकितानं अनु चित्तय उच्चकन्ति भूमण्डलं सर्षपायति यस्य मूर्ध्नि तस्मै नमः भगवते अस्तु सहस्र मूर्ध्ने ॥४८॥

वै यं श्वसन्तं	निश्चय जिनके श्वास लेनेसे (चेष्टा करनेसे)	**अनु विश्वसृजः**	पीछे विश्वसृष्टा (ब्रह्मादि)

श्वसन्ति	श्वास लेते (सचेष्ट होते) हैं,	भूमण्डलं	भूमण्डल
✓		यस्य मूर्ध्नि	जिसके सिरपर
च यं ईकितानं	और जिनकी दृष्टि-से जीवित	सर्षपायति	सरसों जैसा लगता है
अनु चित्तय	पीछे इन्द्रियां	तस्मै सहस्रमर्घ्यं	उन सहस्र शीर्षा
उच्चकन्ति	अपने विषयोंका ग्रहण कर पाती हैं,	भगवते	भगवान्‌को
		नमः अस्तु	नमस्कार है ॥४८॥

श्रीशुक उवाच—

संस्तुतो भगवानेवमनन्तस्तमभाषत ।
विद्याधरपतिं प्रीतश्चित्रकेतुं कुरूद्वह ॥४९॥

संस्तुतः भगवान् एवं अनन्तः तं अभाषत विद्याधरपतिं प्रीतः चित्रकेतुं कुरुद्वह ॥४९॥

कुरुद्वह	परीक्षित !	तं विद्याधर-	उस विद्याधर-
एवं संस्तुतः	इस प्रकार स्तुति करने पर	पतिं	पति
		चित्रकेतुं	चित्रकेतुसे
प्रीतः	प्रसन्न होकर	अभाषत्	बोले ॥४९॥
भगवान् अनन्तः	भगवान् अनन्त		

श्रीभगवानुवाच—

यन्नारदाङ्गिरोभ्यां ते व्याहृतं मेऽनुशासनम् ॥
संसिद्धोऽसि तया राजन् विद्यया दर्शनाच्च मे ॥५०॥

यत् नारद अङ्गिरः भ्यां ते व्याहृतं मे अनुशासनं संसिद्धः असि तया राजन् विद्यया दर्शनात् च मे ॥५०॥

राजन्	राजन् !	ते यत् मे	तुम्हें जो मेरा
नारद अङ्गिरः	नारद और अंगिरा	अनुशासनं	अनुष्ठान
भ्यां	द्वारा	व्याहृतं	बतलाया गया है,

तया विद्यया च मे दर्शनात्	उस विद्यासे और मेरे दर्शनसे	संसिद्धः असि	तुम सिद्ध हो गये हो ॥५०॥

अहं वै सर्वभूतानि भूतात्मा भूतभावनः ।
शब्दब्रह्म परं ब्रह्म ममोभे शाश्वती तनू ॥५१॥

अहं वै सर्वभूतानि भूत आत्मा भूतभावनः शब्दब्रह्म परं ब्रह्म मम उभे शाश्वती तनूः ॥५१॥

वै अहं	निश्चय मैं	शब्दब्रह्म	वेद और
सर्वभूतानि	सब प्राणियोंमें	परम् ब्रह्म	परमब्रह्म
भूत आत्मा	उनकी आत्मा	उभे मम	दोनों मेरे
भूत भावनः	प्राणियोंका पालक हूँ ।	शाश्वती तनूः	शाश्वत शरीर हैं ॥५१॥

लोके विततमात्मानं लोकं चात्मनि सन्ततम् ।
उभयं च मया व्याप्तं मयि चैवोभयं कृतम् ॥५२॥

लोके विततं आत्मानं लोकं च आत्मनि सन्ततं उभयं च मया व्याप्तं मयि च उभयं कृतम् ॥५२॥

लोके विततं	लोकोंमें व्याप्त	मयि व्याप्तं	मुझसे व्याप्त
आत्मानं	आत्माको	च उभयं	एवं दोनों
च आत्मनि	और आत्मामें	मयि कृतं	मुझसे बना देखे ॥५२॥
लोकं सन्ततं	लोकोंको व्याप्त		
च उभयं	तथा दोनोंको		

यथा सुषुप्तः पुरुषो विश्वं पश्यति चात्मनि ।
आत्मानमेकदेशस्थं मन्यते स्वप्न उत्थितः ॥५३॥

यथा सुषुप्तः पुरुषः विश्वं पश्यति च आत्मनि आत्मानं एक देशस्थं मन्यते स्वप्न उत्थितः ॥५३॥

यथा सुषुप्तः	जैसे सोया हुआ	**एक देशस्थं**	एक स्थानमें
पुरुषः	पुरुष		(देखता है)
आत्मनि च	अपने भीतर ही	**उत्थितः**	जागनेपर
विश्वं पश्यति	विश्वको देखता है,	**स्वप्न मन्यते**	इसे स्वप्न मानता
आत्मानं	उसमें अपनेको		है ॥५३॥

एवं जागरणादीनि जीवस्थानानि चात्मनः ।
मायामात्राणि विज्ञाय तद्द्रष्टारं परं स्मरेत् ॥५४॥

एवं जागरण आदीनि जीवस्थानानि च आत्मनः मायामात्राणि विज्ञाय तत् द्रष्टारं परं स्मरेत् ॥५४॥

एवं	इसी प्रकार	**मायामात्राणि**	माया ही हैं
जागरण	जागरण	**विज्ञाय**	यह जानकर
आदीनि	आदि	**तत् द्रष्टारं**	उसके द्रष्टा
जीवस्थानानि	जीवकी अवस्थामें	**परं स्मरेत्**	परमात्माका स्मरण
च	भी		करे ॥५४॥
आत्मनः	अपनी		

येन प्रसुप्तः पुरुषः स्वापं वेदात्मनस्तदा ।
सुखं च निर्गुणं ब्रह्म तमात्मानमवेहि माम् ॥५५॥

येन प्रसुप्तः पुरुषः स्वापं वेद आत्मनः तदा सुखं च निर्गुणं ब्रह्म तं आत्मानं अवेहि माम् ॥५५॥

येन	जिसके द्वारा	**तं निर्गुणं ब्रह्म**	उस निर्गुण-ब्रह्म
प्रसुप्तः पुरुषः	सुषुप्ति प्राप्त पुरुष	**आत्मानं मां**	आत्माको मुझे
आत्मनः स्वापं	अपनी सुषुप्तिको	**अवेहि**	जानो ॥५५॥
च तदा	और उस समय		
सुखं वेद	सुखको भी जानता है,		

उभयं स्मरतः पुंसः प्रस्वापप्रतिबोधयोः ।
अन्वेति व्यतिरिच्येत तज्ज्ञानं ब्रह्म तत् परम् ॥५६॥

उभयं स्मरतः पुंसः प्रस्वाप प्रतिबोधयोः अन्वेति व्यतिरिच्येत तत् ज्ञानं ब्रह्म तत् परम् ॥५६॥

प्रस्वाप	सुषुप्ति और	**व्यतिरिच्येत**	(दोनोंसे) पृथक भी रहता है,
प्रतिबोधयोः	जागरण		
उभयं स्मरतः	दोनोंका स्मरण करने वाला	**तत् ज्ञानं**	वह (सब अवस्थाओं में एकरस रहने-वाला) ज्ञान है
पुंसः	पुरुष		
अन्वेति	(दोनों अवस्थाओंमें) व्याप्त रहता है	**ब्रह्म तत् परं**	वही परब्रह्म है ॥५६॥

यदेतद्विस्मृतं पुंसो मद्भावं भिन्नमात्मनः ।
ततः संसार एतस्य देहाद्देहो मृतेर्मृतिः ॥५७॥

यत् एतत् विस्मृतं पुंसः मत् भावं भिन्नं आत्मनः ततः संसार एतस्य देहात् देहः मृतेः मृतिः ॥५७॥

एतत् यत्	इससे जो	**देहात् देहः**	एक शरीरसे दूसरे शरीरमें जाना
मत् भावं	मेरे स्वरूपको		
विस्मृतं पुंसः	भूलकर पुरुषका	**मृतेः मृतिः**	बार-बार (जन्म लेकर) मरना रूप
आत्मनः भिन्नं	अपनेको पृथक् मानना है	**संसार**	संसार है ॥५७॥
ततः एतस्य	उसीसे इसका		

लब्ध्वेह मानुषीं योनिं ज्ञानविज्ञानसम्भवाम् ।
आत्मानं यो न बुद्ध्येत न क्वचिच्छममाप्नुयात् ॥५८॥

लब्ध्वा इह मानुषीं योनिं ज्ञान विज्ञान सम्भवां आत्मानं यः न बुद्धयेत न क्वचित् शमं आप्नुयात् ॥५८॥

इह	इस संसारमें	यः आत्मानं	जो अपने स्वरूपको
ज्ञान विज्ञान	ज्ञान-विज्ञान	न बुद्धयेत	नहीं जान लेता (वह))
सम्भवां	उत्पन्न करने वाली		
मानुषीं योनिं	मनुष्य जन्म	क्वचित् शमं	कभी शान्ति
लब्ध्वा	पाकर	न आप्नुयात्	नहीं पाता ॥५८॥

स्मृत्वेहायां परिक्लेशं ततः फलविपर्ययम् ।
अभयं चाप्यनीहायां सङ्कल्पाद्विरमेत्कविः ॥५९॥

स्मृत्वा ईहायां परिक्लेशः ततः फल विपर्ययं अभयं च अपि अनीहायां सङ्कल्पात् विरमेत् कविः ॥५९॥

कविः	बुद्धिमान	च अनीहायां	और निश्चेष्टता (निष्कामता)में
ईहायां	(सांसारिक)चेष्टामें		
परिक्लेशं	सब ओर क्लेश है,	अपि अभयं	तो अभय है
ततः	उससे	स्मृत्वा	यह स्मरण करके
फल विपर्ययं	उलटा फल (सुखके बदले दुःख मिलता है,	संकल्पात्	कर्म-संकल्पसे
		विरमेत्	विराम ले ले (त्याग दे) ॥५९॥

सुखाय दुःखमोक्षाय कुर्वाते दम्पती क्रियाः ।
ततोऽनिवृत्तिरप्राप्तिर्दुःखस्य च सुखस्य च ॥६०॥

सुखाय दुःखमोक्षाय कुर्वाते दम्पती क्रियाः ततः अनिवृत्तिः अप्राप्तिः दुःखस्य च सुखस्य च ॥६०॥

दम्पती	स्त्री-पुरुष	अनिवृत्तिः	छुटकारा होता नहीं,
सुखाय	सुख पानेके लिए या	सुखस्य च	सुखकी भी
दुःखमोक्षाय	दुःखसे छूटनेके लिए	अप्राप्तिः	प्राप्ति नहीं होती ॥६०॥
क्रियाः कुर्वाते	कर्म करते हैं,		
ततः दुःखस्य च	उससे दुःखसे तो		

एवं विपर्ययं बुद्ध्वा नृणां विज्ञाभिमानिनाम् ।
आत्मनश्च गतिं सूक्ष्मां स्थानत्रयविलक्षणाम् ॥६१॥

एवं विपर्ययं बुद्ध्वा नृणां विज्ञ अभिमानिनां आत्मनः च गतिं सूक्ष्मां स्थानत्रय विलक्षणाम् ॥६१॥

एवं	इस प्रकार	**स्थान त्रय**	(जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति) तीनों अवस्थाओंसे
विज्ञ	अपनेको		
अभिमानिनां	समझदार माननेवाले		
नृणां	मनुष्योंकी	**विलक्षणां**	विलक्षण (भिन्न)
विपर्ययं	उलटी दशा	**गतिं बुद्ध्वा**	स्वरूप जानकर ॥६१॥
च आत्मनः	तथा आत्माका		

दृष्टश्रुताभिर्मात्राभिर्निर्मुक्तः स्वेन तेजसा ।
ज्ञानविज्ञानसन्तुष्टो मद्भक्तः पुरुषो भवेत् ॥६२॥

दृष्ट श्रुताभिः मात्राभिः निर्मुक्तः स्वेन तेजसा ज्ञानविज्ञान सन्तुष्टः मद्भक्तः पुरुषः भवेत् ॥६२॥

दृष्ट	(इस लोकके) देखे हुए	**निर्मुक्तः**	छूटकर,
		ज्ञान विज्ञान	ज्ञान-विज्ञानसे
श्रुताभिः	(स्वर्गादिके) सुने हुए	**सन्तुष्टः**	सन्तुष्ट होकर
मात्राभिः	विषय-भोगोंसे	**पुरुषः**	पुरुष
स्वेन तेजसा	अपने ही तेज (विवेक) से	**मद्भक्तः भवेत्**	मेरा भक्त हो जाय ॥६२॥

एतावानेव मनुजैर्योगनैपुणबुद्धिभिः ।
स्वार्थः सर्वात्मना ज्ञेयो यत्परात्मैकदर्शनम् ॥६३॥

एतावान् एव मनुजैः योग नैपुण बुद्धिभिः स्वार्थः सर्वात्मना ज्ञेयः यत् पर आत्म एक दर्शनम् ॥६३॥

यत्	जो	**एक दर्शनं**	एक दर्शन है
पर आत्म	परमात्मा और आत्माका	**योग नैपुण**	योगमें निपुण
		बुद्धिभिः	बुद्धिसे
		मनुजैः	मनुष्यको

सर्वात्मना	पूरे मनसे	स्वार्थः ज्ञेयः	स्वार्थ जानना
एतावान् एव	इतना ही		चाहिए ॥६३॥

त्वमेतच्छ्रद्धया राजन्नप्रमत्तो वचो मम ।
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नो धारयन्नाशु सिध्यसि ॥६४॥

त्वं एतत् श्रद्धया राजन् अप्रमत्तः वचः मम ज्ञानविज्ञान सम्पन्नः धारयन् आशु सिध्यसि ॥६४॥

राजन् त्वं	राजन् तुम	ज्ञानविज्ञान	ज्ञान-विज्ञानसे
अप्रमत्तः	प्रमादहीन होकर	सम्पन्नः	सम्पन्न होकर
श्रद्धया	श्रद्धापूर्वक	आशु सिध्यसि	शीघ्र सिद्ध हो
एतत् मम वचः	इस मेरे उपदेशको		जाओगे ॥६४॥
धारयन्	धारण करके		

श्रीशुक उवाच

आश्वास्य भगवानित्थं चित्रकेतुं जगद्गुरुः ।
पश्यतस्तस्य विश्वात्मा ततश्चान्तर्दधे हरिः ॥६५॥

आश्वास्य भगवान् इत्थं चित्रकेतुं जगद्गुरुः पश्यतः तस्य विश्वात्मा ततः च अन्तर्दधे हरिः ॥६५॥

इत्थं	इस प्रकार	हरिः भगवान्	श्रीहरि(शेष)भगवान्
चित्रकेतुं	चित्रकेतुको	तस्य पश्यतः	उसके देखते-देखते
आश्वास्य	आश्वासन देकर	ततः च	वहांसे
जगद्गुरुः	जगद्गुरु,	अन्तर्दधे	अन्तर्धान हो गये
विश्वात्मा	विश्वात्मा		॥६५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराण पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे चित्रकेतोः परमात्मदर्शनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

यतश्चान्तर्हितोऽनन्तस्तस्यै कृत्वा दिशे नमः ।
विद्याधरश्चित्रकेतुश्चचार गगनेचरः ॥ १ ॥

यतः च अन्तर्हितः अनन्तः तस्यै कृत्वा दिशे नमः विद्याधरः चित्रकेतुः चचार गगनेचरः ॥१॥

यतः च	जिस ओर	**विद्याधरः**	विद्याधर
अनन्तः	भगवान् अनन्त	**चित्रकेतुः**	चित्रकेतु
अन्तर्हितः	अन्तर्ध्यान हुए थे,	**गगनेचरः**	आकाशचारी होकर
तस्यै दिशे	उस दिशामें	**चचार**	घूमने लगा ॥१॥
नमः कृत्वा	नमस्कार करके		

स लक्षं वर्षलक्षाणामव्याहतबलेन्द्रियः ।
स्तूयमानो महायोगी मुनिभिः सिद्धचारणैः ॥ २ ॥

स लक्षं वर्ष लक्षाणां अव्याहत बल इन्द्रियः स्तूयमानः महायोगी मुनिभिः सिद्ध चारणैः ॥२॥

स महायोगी	वह महायोगी	**अव्याहत**	निर्बाध रहते
मुनिभिः	मुनियों,	**लक्षाणां लक्षं**	करोड़ों
सिद्ध चारणैः	सिद्धों, चारणों द्वारा	**वर्ष**	वर्षों तक ॥२॥
स्तूयमानः	स्तुत होता		
बल इन्द्रियः	शरीर-बल और इन्द्रिय-शक्ति		

कुलाचलेन्द्रद्रोणीषु नानासङ्कल्पसिद्धिषु ।
रेमे विद्याधरस्त्रीभिर्गापयन् हरिमीश्वरम् ॥ ३ ॥

कुलाचलेन्द्र द्रोणीषु नानासङ्कल्प सिद्धिषु रेमे विद्याधर स्त्रीभिः गापयन् हरिम् ईश्वरम् ॥३॥

नानासङ्कल्प	अनेक प्रकारके संकल्पोंको	**स्त्रीभिः**	स्त्रियोंसे
सिद्धिषु	सिद्ध करने वाली	**ईश्वरं हरिं**	सर्वेश्वर श्रीहरिका
कुलाचलेन्द्र	सुमेरु-पर्वतकी	**गापयन्**	(सुयश) गान कराते हुए
द्रोणीषु	घाटियोंमें	**रेमे**	विहार करता रहा ॥३॥
विद्याधर	विद्याधर		

एकदा स विमानेन विष्णुदत्तेन भास्वता ।
गिरिशं ददृशे गच्छन् परीतं सिद्धचारणैः ॥ ४ ॥

एकदा स विमानेन विष्णुदत्तेन भास्वता गिरिशं ददृशे गच्छन् परीतं सिद्धचारणैः ॥४॥

एकदा	एक बार	**गच्छन्**	जाते हुए
विष्णुदत्तेन	भगवान् विष्णुके दिए	**सिद्धचारणैः**	सिद्ध-चारणोंसे
भास्वता	तेजोमय	**परीतं**	घिरे
विमानेन	विमानसे	**गिरिशं**	शंकरजीको
		स ददृशे	उसने देखा ॥४॥

आलिङ्ग्याङ्कीकृतां देवीं बाहुना मुनिसंसदि ।
उवाच देव्याः शृण्वत्या जहासोच्चैस्तदन्तिके ॥ ५ ॥

आलिङ्ग्य अङ्कीकृतां देवीं बाहुना मुनिसंसदि उवाच देव्याः शृण्वत्या जहास उच्चैः तदन्ति के ॥५॥

मुनिसंसदि	मुनियोंकी सभामें	**देव्याः शृण्वत्याः**	देवीको सुनाकर
देवीं	देवी पार्वतीको	**तदन्ति के**	उनके समीप
अङ्कीकृतां	गोदमें बैठाकर	**उच्चैः जहास**	उच्च स्वरसे हँसता हुआ
बाहुना	भुजासे	**उवाच**	कहने लगा ॥५॥
आलिङ्ग्य	आलिंगन किए (देखकर)		

चित्रकेतुरुवाच—

एष लोकगुरुः साक्षाद्धर्मं वक्ता शरीरिणाम् ।
आस्ते मुख्यः सभायां वै मिथुनीभूय भार्यया ॥ ६ ॥

एष लोकगुरुः साक्षात् धर्मं वक्ता शरीरिणां आस्ते मुख्यः सभायां वै मिथुनीभूय भार्यया ॥६॥

वै	निश्चय	**मुख्यः सभायां**	सभामें प्रमुख होकर
एष शरीरिणां	ये शरीरधारियोंके	**भार्यया**	पत्नीको
धर्मं वक्ता	धर्मोपदेशक	**मिथुनी भूय**	छातीसे लगाकर
साक्षात्	प्रत्यक्ष	**आस्ते**	बैठे हैं ॥६॥
लोकगुरुः	जगद्गुरु हैं,		

जटाधरस्तीव्रतपा ब्रह्मवादिसभापतिः ।
अङ्कीकृत्य स्त्रियं चास्ते गतह्रीः प्राकृतो यथा ॥ ७ ॥

जटाधरः तीव्रतपा ब्रह्मवादि सभापतिः अङ्कीकृत्य स्त्रियं च आस्ते गतह्रीः प्राकृतः यथा ॥७॥

जटाधरः	जटाधारी,	**प्राकृतः यथा**	साधारण मनुष्यके जैसे
तीव्रतपा	कठोर तपस्वी,	**स्त्रियं**	पत्नीको
ब्रह्मवादि	वेदज्ञोंके	**अङ्कीकृत्य च**	गोदमें ही लेकर
सभापतिः	सभापति (होकर)	**आस्ते**	बैठे हैं ॥७॥
गतह्रीः	निर्लज्ज		

प्रायशः प्राकृताश्चापि स्त्रियं रहसि बिभ्रति ।
अयं महाव्रतधरो बिभर्ति सदसि स्त्रियम् ॥ ८ ॥

प्रायशः प्राकृताः च अपि स्त्रियं रहसि बिभ्रति अयं महाव्रतधरः बिभर्ति सदसि स्त्रियम् ॥८॥

प्रायशः	प्रायः	महाव्रतधरः	बड़े व्रतधारी
प्राकृताः च अपि	साधारण पुरुष भी	अयं सदसि	ये सभामें
स्त्रियं रहसि	स्त्रीको एकान्तमें	स्त्रियं बिभ्रति	स्त्रीको लिये हैं
बिभ्रति	साथ बैठाते हैं,		॥८॥

श्रीशुक उवाच—

भगवानपि तच्छ्रुत्वा प्रहस्यागाधधीर्नृप ।
तूष्णीं बभूव सदसि सभ्याश्च तदनुव्रताः ॥ ९ ॥

भगवान् अपि तत् श्रुत्वा प्रहस्य अगाध धीः नृप तूष्णीं बभूव सदसि सभ्याः च तत् अनुव्रताः ॥९॥

नृप	राजन् !	च	और
अगाध धीः	अगाध बुद्धि	सदसि सभ्याः	उस सभामें बैठे सदस्य
भगवान् अपि	भगवान् शंकर भी	तत् अनुव्रताः	उनके समानाचारी (चुप रहनेवाले)
तत् श्रुत्वा	वह बात सुनकर		बने रहे ॥९॥
प्रहस्य	हँस पड़े और		
तूष्णीं बभूव	चुप हो गये,		

इत्यतद्वीर्यविदुषि ब्रुवाणे बह्वशोभनम् ।
रुषाऽऽह देवी धृष्टाय निर्जितात्माभिमानिने ॥१०॥

इति तत् वीर्य अविदुषि ब्रुवाणे बहु अशोभनं रुषा आह देवी धृष्टाय निर्जित आत्मा अभिमानिने ॥१०॥

इति	इस प्रकार	अभिमानिने	माननेवाले (चित्रकेतु)के
तत् वीर्य	उन (शंकरजी) के प्रभावको	बहु अशोभनं	बहुत (बुरा-भला) अशोभनीय
अविदुषि	न जाननेवाले	ब्रुवाणे	कहने पर
धृष्टाय	ढीठ	देवी रुषा आह	देवीने क्रोधसे कहा
निर्जित आत्मा	(अपनेको) चित्तको जीतनेवाला		॥१०॥

पार्वत्युवाच-

अयं किमधुना लोके शास्ता दण्डधरः प्रभुः ।
अस्मद्विधानां दुष्टानां निर्लज्जानां च विप्रकृत् ॥११॥

अयं किं अधुना लोके शास्ता दण्डधरः प्रभुः अस्मत् विधानां दुष्टानां निर्लज्जानां च विप्रकृत् ॥११॥

किं अधुना	क्या इस समय	**दुष्टानां**	दुष्ट
लोके	संसारमें	**निर्लज्जानां**	निर्लज्जोंका
अयं शास्ता	यही शासक,	**विप्रकृत्**	तिरस्कार करने-
दण्डधरः	दण्ड देने वाला		वाला
च अस्मत्	और हमारे	**प्रभुः**	स्वामी है ॥११॥
विधानां	जैसे		

न वेद धर्मं किल पद्मयोनि-
र्न ब्रह्मपुत्रा भृगुनारदाद्याः ।
न वै कुमारः कपिलो मनुश्च
ये नो निषेधन्त्यतिवर्तिनं हरम् ॥१२॥

न वेद धर्मं किल पद्मयोनिः न ब्रह्मपुत्रा भृगु नारद आद्याः न वै कुमारः कपिलः मनुः च ये नः निषेधन्ति अतिवर्तिनं हरम् ॥१२॥

किल	अरे,	**च मनुः न**	एवं मनु भी नहीं
पद्मयोनिः	ब्रह्माजी		जानते,
धर्मं न वेद	धर्मको नहीं जानते ?	**ये अतिवर्तिनं**	जो मर्यादा उल्लंघन
ब्रह्मपुत्रा	ब्रह्माके पुत्र		करनेवाले
भृगु नारद	भृगु, नारद	**नः हरं**	मुझे और शंकरजी-
आद्याः	आदि		को
वै कुमारः	तथा सनत्कुमारादि,	**निषेधन्ति**	रोकते ॥१२॥
कपिलः	कपिलजी		

एषामनुध्येयपदाब्जयुग्मं
जगद्गुरुं मङ्गलमङ्गलं स्वयम् ।
यः क्षत्रबन्धुः परिभूय सूरीन्
प्रशास्ति धृष्टस्तदयं हि दण्ड्यः ॥१३॥

एषां अनुध्येय पदाब्ज युग्मं जगद्गुरुं मङ्गलमंगलं स्वयं यः क्षत्रबन्धुः परिभूय सूरीन् प्रशास्ति धृष्टः तत् अयं हि दण्ड्यः ॥१३॥

जगद्गुरुम्	जगद्गुरु	**परिभूय**	तिरस्कार करके
मङ्गलमङ्गलं	मंगलको भी मंगल बनानेवाले	**धृष्टः क्षत्रबन्धुः**	यह ढीठ क्षत्रियाधम
		हि	क्योंकि
अनुध्येय	ध्यान करने योग्य	**प्रशास्ति**	शासन कर रहा (आदेश-सा दे रहा) है,
पदाब्ज युग्मं	दोनों चरण-कमल		
एषां	जिनके हैं,		
स्वयं	स्वयं उन प्रभुका और	**तत् अयं**	इसलिए यह
		दण्ड्यः	दण्ड देने योग्य है ॥१३॥
सूरीन्	विद्वानोंका		

नायमर्हति वैकुण्ठपादमूलोपसर्पणम् ।
सम्भावितमतिः स्तब्धः साधुभिः पर्युपासितम् ॥१४॥

न अयं अर्हति वैकुण्ठ पादमूल उपसर्पणं सम्भावित मतिः स्तब्धः साधुभिः पर्युपासितम् ॥१४॥

अयं	यह	**पर्युपासितं**	भली प्रकार सेवित
सम्भावित मतिः	अपने बड़प्पनके घमण्डवाला	**वैकुण्ठ**	भगवान् नारायणके
		पादमूल	चरणोंके
स्तब्धः	मूर्ख	**उपसर्पणं**	समीप पहुँचनेके
साधुभिः	सत्पुरुषों द्वारा	**अर्हति न**	योग्य नहीं है ॥१४॥

अतः पापीयसीं योनिमासुरीं याहि दुर्मते ।
यथेह भूयो महतां न कर्ता पुत्र किल्बिषम् ॥१५॥

अतः पापीयसीं योनिं आसुरीं याहि दुर्मते यथा इह भूयः महतां न कर्ता पुत्र किल्बिषम् ॥१५॥

अतः दुर्मते	अतः दुर्बुद्धि !	यथा इह	जिससे यहां
पापीयसीं	पापमयी	महतां किल्बिषं	महापुरुषोंका अपराध
आसुरीं	असुरोंकी	भूयः न कर्ता	फिर न करो ॥१५॥
योनिं याहि	योनिमें जाओ		
पुत्र	बेटा !		

श्रीशुक उवाच-

एवं शप्तश्चित्रकेतुर्विमानादवरुह्य सः ।
प्रसादयामास सतीं मूर्ध्ना नम्रेण भारत ॥१६॥

एवं शप्तः चित्रकेतुः विमानात् अवरुह्य सः प्रसादयामास सतीं मूर्ध्ना नम्रेण भारत ॥१६॥

भारत	परीक्षित !	अवरुह्य	उतरकर
सः चित्रकेतुः	वह चित्रकेतु	नम्रेय मूर्ध्ना	मस्तक झुकाकर
एवं शप्तः	इस प्रकार शाप पाकर	सतीं	पार्वतीको
		प्रसादयामास	प्रसन्न करने लगा ॥१६॥
विमानात्	विमानसे		

चित्रकेतुः उवाच-

प्रतिगृह्णामि ते शापमात्मनोऽञ्जलिनाम्बिके ।
देवैर्मर्त्याय यत्प्रोक्तं पूर्वदिष्टं हि तस्य तत् ॥१७॥

प्रतिगृह्णामि ते शापं आत्मनः अञ्जलिना अम्बिके देवैः मर्त्याय यत् प्रोक्तं पूर्वदिष्टं हि तस्य तत् ॥१७॥

अम्बिके	माता !	अञ्जलिना	हाथ जोड़कर
आत्मनः ते शापं	अपने लिए मिला आपका शाप	प्रतिगृह्णामि	स्वीकार करता हूँ
		हि	क्योंकि

देवैः मर्त्याय	देवता मनुष्यके लिए	पूर्वदिष्टं	पहिला प्रारब्ध ही
यत् प्रोक्तं	जो कहते हैं		है ॥१७॥
तस्य तत्	उसका वह		

संसारचक्र एतस्मिञ्जन्तुरज्ञानमोहितः ।
भ्राम्यन् सुखं च दुःखं च भुङ्क्ते सर्वत्र सर्वदा ॥१८॥

संसारचक्र एतस्मिन् जन्तुः अज्ञान मोहितः भ्राम्यन् सुखं च दुःखं च भुङ्क्ते सर्वत्र सर्वदा ॥१८॥

एतस्मिन्	इस	सर्वत्र सर्वदा	सब कहीं सदा
संसारचक्र	संसार-चक्रमें	सुखं च दुःखं च	सुख और दुःख भी
अज्ञान मोहितः	अज्ञानसे मोहित	भुङ्क्ते	भोगता रहता है
जन्तुः भ्राम्यन्	प्राणी भटकता हुआ		॥१८॥

नैवात्मा न परश्चापि कर्ता स्यात् सुखदुःखयोः ।
कर्तारं मन्यतेऽप्राज्ञ आत्मानं परमेव च ॥१९॥

न एव आत्मा न परः च अपि कर्ता स्यात् सुखदुःखयोः कर्तारं मन्यते अप्राज्ञः आत्मानं परं एव च ॥१९॥

सुखदुःखयोः	सुख-दुःखका	अप्राज्ञः	अज्ञानी पुरुष
कर्ता	करने (देने) वाला	आत्मानं	अपनेको
आत्मा	आत्मा	च परं एव	तथा दूसरेको ही
न एव	नहीं ही है,	कर्तारं मन्यते	कर्ता मानते हैं
परः च अपि न	दूसरे भी नहीं		॥१९॥
स्यात्	हैं,		

गुणप्रवाह एतस्मिन् कः शापः को न्वनुग्रहः ।
कः स्वर्गो नरकः को वा किं सुखं दुःखमेव वा ॥२०॥

गुण प्रवाह एतस्मिन् कः शापः कः नु अनुग्रहः कः स्वर्गः नरकः कः वा किं सुखं दुःखं एव वा ॥२०॥

एतस्मिन्	इस
गुण प्रवाह	(सत्त्व, रज, तम) गुणोंके प्रवाहमें
कः शापः	क्या शाप,
कः नु अनुग्रहः	भला क्या कृपा,
कः स्वर्गः	क्या स्वर्ग,
नरकः कः	क्या नरक,
वा किं सुखं	अथवा कैसा सुख,
वा दुःखं एव	या कैसा दुःख ही है ॥२०॥

एकः सृजति भूतानि भगवानात्ममायया ।
एषां बन्धं च मोक्षं च सुखं दुःखं च निष्कलः ॥२१॥

एकः सृजति भूतानि भगवान् आत्ममायया एषां बन्धं च मोक्षं च सुखं दुःखं च निष्कलः ॥२१॥

एकः निष्कलः	अकेले परिपूर्ण
भगवान्	भगवान्
आत्ममायया	अपनी मायासे
भूतानि	प्राणियोंको
च एषां बन्धं	तथा इनके बन्धन,
च मोक्षं	एवं मुक्तिको
च सुखं दुःखं	और सुख-दुःखको
सृजति	उत्पन्न करते हैं ॥२१॥

न तस्य कश्चिद्दयितः प्रतीपो
न ज्ञातिबन्धुर्न परो न च स्वः ।
समस्य सर्वत्र निरञ्जनस्य
सुखे न रागः कुत एव रोषः ॥२२॥

न तस्य कश्चित् दयितः प्रतीपः न ज्ञाति बन्धुः न परः न च स्वः समस्य सर्वत्र निरञ्जनस्य सुखे न रागः कुत एव रोषः ॥२२॥

तस्य कश्चित्	उनका कोई
दयितः न	प्रिय नहीं है,
प्रतीपः न	शत्रु भी नहीं है,
च ज्ञाति बन्धुः	तथा जाति-भाई,
परः स्वः न	पराया-अपना नहीं है,
सर्वत्र समस्य	उन सर्वत्र समान
निरञ्जनस्य	नित्य निर्दोषका
सुखे रागः न	सुखमें प्रीति नहीं है,
रोषः कुत एव	फिर क्रोध कहाँसे होगा ॥२२॥

तथापि तच्छक्तिविसर्ग एषां
सुखाय दुःखाय हिताहिताय ।
बन्धाय मोक्षाय च मृत्युजन्मनोः
शरीरिणां संसृतयेऽवकल्पते ॥२३॥

तथा अपि तत् शक्ति विसर्ग एषां सुखाय दुःखाय हित अहिताय बन्धाय मोक्षाय च मृत्यु जन्मनोः शरीरिणां संसृतये अवकल्पते ॥२३॥

तथा अपि	ऐसा होनेपर भी	**हित अहिताय**	भले-बुरे,
तत् शक्ति विसर्ग	उनकी माया-शक्तिके कार्य (पाप-पुण्य)	**बन्धाय मोक्षाय च मृत्यु जन्मनोः**	बन्धन-मोक्ष तथा मरण-जन्म रूप
		संसृतये	आवागमनका
एषां शरीरिणां	इन शरीर धारियोंके	**अवकल्पते**	कारण होते हैं
सुखाय दुःखाय	सुख-दुःख,		॥२३॥

अथ प्रसादये न त्वां शापमोक्षाय भामिनि ।
यन्मन्यसे असाधूक्तं मम तत्क्षम्यतां सति ॥२४॥

अथ प्रसादये न त्वां शाप मोक्षाय भामिनि यत् मन्यसे असाधु उक्तं मम तत् क्षम्यतां सति ॥२४॥

अथ सति	अतः पतिप्राणा	**यत् मम उक्तं**	जो मेरे कहेका
भामिनि	देवि,	**असाधु मन्यसे**	(आपने) बुरा माना
त्वां शाप	आपको शापसे		
मोक्षाय	छुड़ानेके लिए	**तत् क्षम्यतां**	उसे क्षमा करें
प्रसादये न	प्रसन्न नहीं कर रहा हूँ,		॥२४॥

श्रीशुक उवाच–

इति प्रसाद्य गिरिशौ चित्रकेतुररिन्दम ।
जगाम स्वविमानेन पश्यतोः स्मयतोस्तयोः ॥२५॥

इति प्रसाद्य गिरिशौ चित्रकेतुः अरिन्दम जगाम स्वविमानेन पश्यतोः स्मयतोः तयोः ॥२५॥

अरिन्दम	शत्रुदमन परीक्षित् !	तयोः स्मयतोः	उनको आश्चर्यमें पड़ा छोड़कर
चित्रकेतुः	चित्रकेतु	पश्यतोः	उनके देखते हुए
इति गिरिशौ	इस प्रकार उमा-महेश्वरको	स्वविमानेन	अपने विमानसे
प्रसाद्य	प्रसन्न करके	जगाम	चला गया ॥२५॥

ततस्तु भगवान् रुद्रो रुद्राणीमिदमब्रवीत् ।
देवर्षिदैत्यसिद्धानां पार्षदानां च शृण्वताम् ॥२६॥

ततः तु भगवान् रुद्रः रुद्राणीं इदं अब्रवीत् देवर्षि दैत्य सिद्धानां पार्षदानां च शृण्वताम् ॥२६॥

ततः तु	इसके पश्चात् ही	शृण्वतां	सुनते हुए
भगवान् रुद्रः	भगवान् रुद्रने	रुद्राणीं	पार्वतीसे
देवर्षि दैत्य च	देवर्षि, दैत्य और	इदं अब्रवीत्	यह बोले ॥२६॥
सिद्धानां	सिद्ध		
पार्षदानां	पार्षदोंके		

श्रीरुद्र उवाच-

दृष्टवत्यसि सुश्रोणि हरेरद्भुतकर्मणः ।
माहात्म्यं भृत्यभृत्यानां निःस्पृहाणां महात्मनाम् ॥२७॥

दृष्टवति असि सुश्रोणि हरेः अद्भुत कर्मणः माहात्म्यं भृत्यभृत्यानां निःस्पृहाणां महात्मनाम् ॥२७॥

सुश्रोणि	सुन्दरी !	निःस्पृहाणां	निस्पृह
अद्भुत कर्मणः	अद्भुतकर्मा	महात्मनां	महात्माकी
हरेः	श्री हरिके	माहात्म्यं	महिमा
भृत्यभृत्यानां	दासानुदास	दृष्टवति असि	देख लिया ॥२७॥

नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति ।
स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः ॥२८॥

नारायण पराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति स्वर्ग अपवर्ग नरकेषु अपि तुल्य अर्थ दर्शिनः ॥२८॥

सर्वे नारायण	सब नारायण	**नरकेषु अपि**	नरकमें भी
पराः	परायण-जन	**तुल्य अर्थ**	समान वस्तु भग-
कुतश्चन	कहींसे भी		वान्‌को ही
न बिभ्यति	नहीं डरते,	**दर्शिनः**	देखनेवाले होते हैं
स्वर्ग अपवर्ग	स्वर्ग, मोक्ष		॥२८॥

देहिनां देहसंयोगाद् द्वन्द्वानीश्वरलीलया ।
सुखं दुःखं मृतिर्जन्म शापोऽनुग्रह एव च ॥२९॥

देहिनां देहसंयोगात् द्वन्द्वानि ईश्वरलीलया सुखं दुःखं मृतिः जन्म शापः अनुग्रह एव च ॥२९॥

देहिनां	जीवोंको	**मृतिः जन्म**	मृत्यु-जन्म,
ईश्वरलीलया	ईश्वरकी लीलासे	**च शापः**	तथा शाप
देहसंयोगात्	शरीरका संयोग होनेसे	**अनुग्रह एव**	और कृपा भी मिलती है ॥२९॥
सुखं दुःखं	सुख-दुःख,		

अविवेककृतः पुंसो ह्यर्थभेद इवात्मनि ।
गुणदोषविकल्पश्च भिदेव स्रजिवत्कृतः ॥३०॥

अविवेक कृतः पुंसः हि अर्थभेद इव आत्मनि गुणदोष विकल्पः च भिदा एव स्रजिवत् कृतः ॥३०॥

हि आत्मनि	क्योंकि आत्मामें	**गुणदोष**	गुण-दोषका
अर्थभेद इव	पदार्थ (देवतादि) भेदके समान	**विकल्पः च**	विकल्प भी

व्रजिवत् एव	मालामें (सर्प, रस्सी आदि) भेदके समान ही	**पुंसः अविवेक कृतः**	पुरुषके अज्ञानसे उत्पन्न है ॥३०॥

वासुदेवे भगवति भक्तिमुद्वहतां नृणाम् ।
ज्ञानवैराग्यवीर्याणां नेह कश्चिद् व्यपाश्रयः ॥३१॥

वासुदेवे भगवति भक्ति उद्वहतां नृणां ज्ञानवैराग्य वीर्याणां न इह कश्चित् व्यपाश्रयः ॥३१॥

भगवति	भगवान्	**इह**	इस संसारमें
वासुदेवे	वासुदेवमें	**कश्चित्**	कोई भी
भक्ति उद्वहतां	भक्ति करनेवाले	**व्यपाश्रयः**	राग-द्वेष करने योग्य
ज्ञानवैराग्य	ज्ञान-वैराग्यका		
वीर्याणां	पराक्रम रखनेवाले	**न**	नहीं है ॥३१॥
नृणां	मनुष्योंका		

नाहं विरिञ्चो न कुमारनारदौ
न ब्रह्मपुत्रा मुनयः सुरेशाः ।
विदाम यस्येहितमंशकांशका
न तत्स्वरूपं पृथगीशमानिनः ॥३२॥

न अहं न विरिञ्चः न कुमार नारदौ न ब्रह्मपुत्रा मुनयः सुरेशाः विदाम यस्य ईहितं अंशक अंशका न तत् स्वरूपं पृथक् ईश मानिनः ॥३२॥

यस्य ईहितं	जिनकी चेष्टाको	**न विदाम**	नहीं जान पाते,
न अहं	न मैं	**अंशक अंशका**	तब (उनके) क्षुद्र अंशके अंशसे उत्पन्न
न विरिञ्चः	न ब्रह्मा,		
कुमार	सनकादि कुमार,	**पृथक् ईश**	अपनेको पृथक समर्थ
नारदौ	देवर्षि नारद,	**मानिनः**	माननेवाले
ब्रह्मपुत्रा मुनयः	ब्रह्माके पुत्र (भृगु आदि) मुनिगण	**तत्स्वरूपं न**	उनके स्वरूपको नहीं जानते (तो आश्चर्य क्या)॥३२॥
सुरेशाः	बड़े-बड़े देवता		

न ह्यस्यास्ति प्रियः कश्चिन्नाप्रियः स्वः परोऽपि वा ।
आत्मत्वात्सर्वभूतानां सर्वभूतप्रियो हरिः ॥३३॥

न हि अस्य अस्ति प्रियः कश्चित् न अप्रियः स्वः परः अपि वा आत्मत्वात् सर्वभूतानां सर्वभूत प्रियः हरिः ॥३३॥

हि	क्योंकि	सर्वभूतानां	सब प्राणियोंके
अस्य कश्चित्	इनका कोई	आत्मत्वात्	आत्मा होनेसे
प्रियः	प्रिय या	हरिः	श्रीहरि
अप्रियः न	अप्रिय नहीं है,	सर्वभूत प्रियः	सब प्राणियोंके प्रिय हैं ॥३३॥
वा स्वः परः	अथवा अपना पराया		
अपि न अस्ति	भी नहीं है		

तस्य चायं महाभागश्चित्रकेतुः प्रियोऽनुगः ।
सर्वत्र समदृक् शान्तो ह्यहं चैवाच्युतप्रियः ॥३४॥

तस्य च अयं महाभागः चित्रकेतुः प्रियः अनुगः सर्वत्र समदृक् शान्तः हि अहं च एव अच्युत प्रियः ॥३४॥

हि	क्योंकि	प्रियः अनुगः	प्रिय अनुचर है
अयं महाभागः	यह महाभाग	च अहं एव	तथा मैं भी
चित्रकेतुः	चित्रकेतु	अच्युत प्रियः	उन अच्युतका प्रिय हूँ ॥३४॥
सर्वत्र समदृक्	सर्वत्र समदर्शी		
शान्तः	शान्त		
च तस्य	और उन (भगवान्) का		

तस्मान्न विस्मयः कार्यः पुरुषेषु महात्मसु ।
महापुरुषभक्तेषु शान्तेषु समदर्शिषु ॥३५॥

तस्मात् न विस्मयः कार्यः पुरुषेषु महात्मसु महापुरुष भक्तेषु शान्तेषु समदर्शिषु ॥३५॥

तस्मात्	इसलिए	**समदर्शिषु**	समदर्शी
महात्मसु	महात्मा	**पुरुषेषु**	पुरुषके विषयमें
महापुरुष	भगवान् पुरुषोत्तमके	**विस्मयः**	आश्चर्य
भक्तेषु	भक्त	**न कार्यः**	नहीं करना चाहिए
शान्तेषु	शान्त		॥३५॥

श्रीशुक उवाच—

इति श्रुत्वा भगवतः शिवस्योमाभिभाषितम् ।
बभूव शान्तधी राजन् देवी विगतविस्मया ॥३६॥

इति श्रुत्वा भगवतः शिवस्य उमा अभिभाषितं बभूव शान्तधी राजन् देवी विगत विस्मया ॥३६॥

राजन्	राजन् !	**देवी उमा**	देवी उमाका
इति	इस प्रकार	**विगत विस्मया**	आश्चर्य चला गया,
भगवतः शिवस्य	भगवान् शिवका	**शान्तधी**	वे शान्त चित्त
अभिभाषितं	अभिभाषण	**बभूव**	हो गयीं ॥३६॥
श्रुत्वा	सुनकर		

इति भागवतो देव्याः प्रतिशप्तुमलन्तमः ।
मूर्ध्ना सञ्जगृहे शापमेतावत्साधुलक्षणम् ॥३७॥

इति भागवतः देव्याः प्रतिशप्तुं अलंतमः मूर्ध्ना सञ्जगृहे शापं एतावत् साधु लक्षणम् ॥३७॥

इति	इस प्रकार	**शापं**	उनके शापको
भागवतः	भगवद्भक्त (चित्रकेतु)	**मूर्ध्ना सञ्जगृहे**	सिर झुकाकर स्वीकार कर लिया
देव्याः प्रतिशप्तुं	देवीको बदलेमें शाप देनेमें	**एतावत्**	इतना ही
अलंतमः	पूर्ण समर्थ होनेपर भी	**साधु लक्षणं**	सत्पुरुषका लक्षण है ॥३७॥

जज्ञे त्वष्टुर्दक्षिणाग्नौ दानवीं योनिमाश्रितः ।
वृत्र इत्यभिविख्यातो ज्ञानविज्ञानसंयुतः ॥३८॥

जज्ञे त्वष्टुः दक्षिण अग्नौ दानवीं योनिं आश्रितः वृत्र इति अभिविख्यातः ज्ञानविज्ञान संयुतः ॥३८॥

त्वष्टुः	त्वष्टाके यहां
दक्षिण अग्नौ	दक्षिणाग्निसे
दानवीं योनिं	दानव-शरीर
आश्रितः	धारण करके
वृत्र इति	वृत्र इस नामसे
अभिविख्यातः	सुप्रसिद्ध
ज्ञानविज्ञान	ज्ञान-विज्ञान
संयुतः जज्ञे	सम्पन्न उत्पन्न हुआ ॥३८॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
वृत्रस्यासुरजातेश्च कारणं भगवन्मतेः ॥३९॥

एतत् ते सर्वं आख्यातं यत् मां त्वं परिपृच्छसि वृत्रस्य असुर जातेः च कारणं भगवत् मतेः ॥३९॥

वृत्रस्य	वृत्रका
असुर जातेः	असुर-कुलमें उत्पन्न होंने
च भगवत् मतेः	तथा भगवान्‌में बुद्धि लगनेका
कारणं	कारण
यत् त्वं	जो तुमने
मां परिपृच्छसि	मुझसे पूछा
एतत् सर्वं	यह सब
आख्यातं	मैंने बतला दिया ॥३९॥

इतिहासमिमं पुण्यं चित्रकेतोर्महात्मनः ।
माहात्म्यं विष्णुभक्तानां श्रुत्वा बन्धाद्विमुच्यते ॥४०॥

इतिहासं इमं पुण्यं चित्रकेतोः महात्मनः माहात्म्यं विष्णुभक्तानां श्रुत्वा बन्धात् विमुच्यते ॥४०॥

इमं महात्मनः	यह महात्मा
चित्रकेतोः	चित्रकेतुका
पुण्यं इतिहासं	पवित्र इतिहास तथा
विष्णुभक्तानां	भगवान् विष्णुके भक्तोंकी

माहात्म्यं	महिमा	बन्धात्	(संसार) बन्धनसे
श्रुत्वा	सुनकर (पुरुष)	विमुच्यते	मुक्त हो जाता है ॥४०॥

य एतत्प्रातरुत्थाय श्रद्धया वाग्यतः पठेत् ।
इतिहासं हरिं स्मृत्वा स याति परमां गतिम् ॥४१॥

यः एतत् प्रातः उत्थाय श्रद्धया वाक् यतः पठेत् इतिहासं हरिं स्मृत्वा स याति परमां गतिम् ॥४१॥

यः प्रातः	जो सवेरे	वाक् यतः	मौन होकर
उत्थाय	उठकर	एतत् इतिहासं	इस इतिहासको
हरिं स्मृत्वा	श्रीहरिका स्मरण करके	पठेत्	पढ़ेगा
		स परमां गतिं	वह परमगति
श्रद्धया	श्रद्धापूर्वक	याति	पावेगा ॥४१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे चित्रकेतुशापो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

पृश्निस्तु पत्नी सवितुः सावित्रीं व्याहृतिं त्रयीम् ।
अग्निहोत्रं पशुं सोमं चातुर्मास्यं महामखान् ॥ १ ॥

पृश्निः तु पत्नी सवितुः सावित्रीं व्याहृतिं त्रयीं अग्निहोत्रं पशुं सोमं चातुर्मास्यं महामखान् ॥१॥

सवितुः पत्नी	सविताकी पत्नी	**पशुं सोमं**	पशु, सोम,
पृश्निः तु	पृश्निने तो	**चातुर्मास्यं**	चातुर्मास,
सावित्रीं व्याहृतिं	सावित्री, व्याहृति,	**महामखान्**	पञ्चमहायज्ञ (उत्पन्न किये) ॥१॥
त्रयीं अग्निहोत्रं	त्रयी, अग्निहोत्र,		

सिद्धिर्भगस्य भार्याङ्ग महिमानं विभुं प्रभुम् ।
आशिषं च वरारोहां कन्यां प्रासूत सुव्रताम् ॥ २ ॥

सिद्धिः भगस्य भार्या अङ्ग महिमानं विभुं प्रभुं आशिषं च वरारोहां कन्यां प्रासूत सुव्रताम् ॥२॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित !	**च वरारोहां**	और सुन्दरी
भगस्य भार्या	भगकी पत्नी	**सुव्रतां कन्यां**	उत्तम व्रत करने-वाली कन्या
सिद्धिः	सिद्धिने		
महिमानं विभुं	महिमा, विभु,	**आशिषं प्रासूत**	आशिषको उत्पन्न किया ॥२॥
प्रभुं	प्रभु		

धातुः कुहूः सिनीवाली राका चानुमतिस्तथा ।
सायं दर्शमथ प्रातः पूर्णमासमनुक्रमात् ॥ ३ ॥

धातुः कुहूः सिनीवाली राका च अनुमतिः तथा सायं दर्श अथ प्रातः पूर्णमासं अनुक्रमात् ॥३॥

धातुः	धाताकी (पत्नियां)	**सायं दर्श अथ**	सायं, दर्श और
कुहूः सिनीवाली	कुहू, सिनीवाली,	**प्रातः च**	प्रातः तथा
राका तथा	राका तथा	**पूर्णमासं**	पूर्णमास (इनको
अनुमतिः	अनुमतिने		जन्म दिया) ॥३॥
अनुक्रमात्	क्रमके अनुसार		

अग्नीन् पुरीष्यानाधत्त क्रियायां समनन्तरः ।
चर्षणी वरुणस्यासीद्यस्यां जातो भृगुः पुनः ॥ ४ ॥

अग्नीन् पुरीष्यान् आधत्त क्रियायां समनन्तरः चर्षणी वरुणस्य आसीत् यस्यां जातः भृगुः पुनः ॥४॥

क्रियायां	(विधाताने) क्रियासे	**वरुणस्य**	वरुणको (पत्नी)
समनन्तरः	(पंचक्रिया)के	**चर्षणी आसीत्**	चर्षणी थी
	समान ही	**यस्यां भृगुः**	जिसमें भृगुने (जो
पुरीष्यान्	पुरीष नामक		पहिले ब्रह्माके पुत्र
	(पांच)		थे)
अग्नीन् आधत्त	अग्नियोंको उत्पन्न	**पुनः जातः**	पुनर्जन्म लिया ॥४॥
	किया,		

वाल्मीकिश्च महायोगी वल्मोकादभवत्किल ।
अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च मित्रावरुणयोर्ऋषी ॥ ५ ॥

वाल्मीकिः च महायोगी वल्मोकात् अभवत् किल अगस्त्यः च वसिष्ठः च मित्रावरुणयोः ऋषी ॥५॥

महायोगी	महायोगी	**किल वल्मीकात्**	अरे फिर (दीमककी)
वाल्मीकिः	वाल्मीकि		बांबीसे
च	भी (पहिले वरुणके	**अभवत्**	उत्पन्न हुए,
	पुत्र थे)	**अगस्त्यः च**	अगस्त्य और

वसिष्ठः च ऋषी	वसिष्ठजी भी ये दोनों ऋषि	मित्रावरुणयोः	मित्र और वरुणके (अंश) थे ॥५॥

रेतः सिषिचतुः कुम्भे उर्वश्याः सन्निधौ द्रुतम् ।
रेवत्यां मित्र उत्सर्गमरिष्टं पिप्पलं व्यधात् ॥ ६ ॥

रेतः सिषिचतुः कुम्भे उर्वश्याः सन्निधौ द्रुतं रेवत्यां मित्र उत्सर्गं अरिष्ट पिप्पलं व्यधात् ॥६॥

उर्वश्याः	उर्वशीके	मित्र रेवत्यां	मित्रने अपनी पत्नी रेवतीसे
सन्निधौ	सामीप्यके कारण	उत्सर्गं अरिष्टं	उत्सर्ग, अरिष्ट और
द्रुतं रेतः	स्खलित वीर्यको (मित्र और वरुणने)	पिप्पलं व्यधात्	पिप्पलको उत्पन्न किया ॥६॥
कुम्भे सिषिचतुः	घड़ेमें डाल दिया। (उसी घड़ेसे अगस्त्य और वसिष्ठ हुए)		

पौलोम्यामिन्द्र आधत्त त्रीन् पुत्रानिति नः श्रुतम् ।
जयन्तमृषभं तात तृतीयं मीढुषं प्रभुः ॥ ७ ॥

पौलोम्यां इन्द्रः आधत्त त्रीन् पुत्रान् इति नः श्रुतं जयन्तं ऋषभं तात तृतीयं मीढुषं प्रभुः ॥७॥

तात	परीक्षित्	त्रीन् पुत्रान्	तीन पुत्र
इति नः श्रुतं	ऐसा हमने सुना है कि	आधत्त	उत्पन्न किये,
पौलोम्यां	पुलोमाकी पुत्री शचीसे	जयन्तं ऋषभं तृतीयं मीढुषं	जयन्त, ऋषभ तथा तीसरे मीढुवान् ॥७॥
प्रभुः इन्द्रः	देवराज इन्द्रने		

उरुक्रमस्य देवस्य मायावामनरूपिणः ।
कीर्तौ पत्न्यां बृहच्छ्लोकस्तस्यासन् सौभगादयः ॥ ८ ॥

उरुक्रमस्य देवस्य माया वामन रूपिणः कीर्तौपत्न्यां बृहत् श्लोकः तस्य आसन् सौभग आदयः ॥८॥

माया वामन	मायासे वामन	**बृहत् श्लोकः**	बृहत् श्लोक नामक
रूपिणः	रूप लेनेवाले		(पुत्र हुआ)
देवस्य	भगवान्	**तस्य सौभग**	उसके सौभग
उरुक्रमस्य	त्रिविक्रमकी	**आदयः**	आदि
कीर्तौपत्न्यां	कीर्ति नामक पत्नीसे	**आसन्**	(पुत्र) हुए ॥८॥

तत्कर्मगुणवीर्याणि काश्यपस्य महात्मनः ।
पश्चाद्वक्ष्यामहेऽदित्यां यथा वावततार ह ॥ ९ ॥

तत् कम गुण वीर्याणि काश्यपस्य महात्मनः पश्चात् वक्ष्यामहे अदित्यां यथा वा अवततार ह ॥९॥

तत् महात्मनः	उन पुरुषोत्तम	**अदित्यां**	अदितिसे
काश्यपस्य	कश्यप नन्दनका	**अवततार**	अवतार लिया
कर्म गुण	कर्म, गुण,	**ह पश्चात्**	निश्चय पीछे
वीर्याणि	पराक्रम	**वक्ष्यामहे**	बतलाऊँगा ॥९॥
वा यथा	अथवा जैसे		

अथ कश्यपदायादान् दैतेयान् कीर्तयामि ते ।
यत्र भागवतः श्रीमान् प्रह्लादो बलिरेव च ॥१०॥

अथ कश्यप दायादान् दैतेयान् कीर्तयामि ते यत्र भागवतः श्रीमान् प्रह्लादः बलिः एव च ॥१०॥

अथ ते	अभी तो तुमसे	**कीर्तयामि**	वर्णन करूँगा
कश्यप दायादान्	कश्यपजीके उत्तराधिकारी	**यत्र श्रीमान्**	जिसमें श्रीमान्
		प्रह्लादः च	प्रह्लाद तथा
दैतेयान्	दितिकी सन्तान परम्पराका	**बलिः एव**	बलि भी (हुए हैं) ॥१०॥

दितेर्द्वावेव दायादौ दैत्यदानववन्दितौ ।
हिरण्यकशिपुर्नाम हिरण्याक्षश्च कीर्तितौ ॥११॥

दितेः द्वा एव दायादौ दैत्य दानव वन्दितौ हिरण्यकशिपुः नाम हिरण्याक्षः च कीर्तितौ ॥११॥

दितेः द्वा एव	दितिके दो ही	दायादौ नाम	पुत्र थे, उनके नाम
दैत्य दानव	दैत्य-दानवोंसे	हिरण्यकशिपुः	हिरण्यकशिपु
वन्दितौ	वन्दित	च हिरण्याक्षः	तथा हिरण्याक्ष
कीर्तितौ	प्रसिद्ध		थे ॥११॥

हिरण्यकशिपोर्भार्या कयाधुर्नाम दानवी ।
जम्भस्य तनया दत्ता सुषुवे चतुरः सुतान् ॥१२॥

हिरण्यकशिपुः भार्या कयाधुः नाम दानवी जम्भस्य तनया दत्ता सुषुवे चतुरः सुतान् ॥१२॥

हिरण्यकशिपुः	हिरण्यकशिपुकी	तनया दत्ता	यह अपनी पुत्री
भार्या	पत्नीकी		(हिरण्यकशिपुको)
नाम दानवी	नाम दानवी		विवाह दी,
कयाधुः	कयाधू था ।	चतुरः सुतान्	उसने चार पुत्र
जम्भस्य	जम्भने	सुषुवे	उत्पन्न किये ॥१२॥

संह्रादं प्राग्नुह्रादं ह्रादं प्रह्रादमेव च ।
तत्स्वसा सिंहिका नाम राहुं विप्रचितोऽग्रहीत् ॥१३॥

संह्रादं प्राक् अनुह्रादं ह्रादं प्रह्रादं एव च तत् स्वसा सिंहिका नाम राहुं विप्रचितः अग्रहीत् ॥१३॥

प्राक् संह्रादं	पहिला संह्राद	सिंहिका नाम	सिंहिका नामकी थी
	(फिर)	विप्रचितः	विप्रचित्तिने इसका
अनुह्रादं ह्रादं	अनुह्राद, ह्राद	अग्रहीत्	पाणिग्रहण किया
च प्रह्रादं एव	तथा प्रह्राद भी	राहुं	(इनका पुत्र) राहु
तत् स्वसा	इनकी बहिन		हुआ ॥१३॥

शिरोऽहरद्यस्य हरिश्चक्रेण पिबतोऽमृतम् ।
संह्रादस्य कृतिर्भार्यासूत पञ्चजनं ततः ॥१४॥

शिरः अहरत् यस्य हरिः चक्रेण पिबतः अमृतं संह्रादस्य कृतिः भार्या असूत पञ्चजनं ततः ॥१४॥

अमृतं पिबतः	अमृत पीते समय	**संह्रादस्य भार्या**	संह्रादकी पत्नी
यस्य शिरः	जिसका सिर	**कृतिः**	कृति थी
हरिः चक्रेण	श्रीहरिने चक्रसे	**ततः पञ्चजनं**	उसने पञ्चजनको
अहरत्	काट दिया था,	**असूत**	जन्म दिया ॥१४॥

ह्रादस्य धमनिर्भार्यासूत वातापिमिल्वलम् ।
योऽगस्त्याय त्वतिथये पेचे वातापिमिल्वलः ॥१५॥

ह्रादस्य धमनिः भार्या असूत वातापिं इल्वलं यः अगस्त्याय तु अतिथये पेचे वातापिं इल्वलः ॥१५॥

ह्रादस्य भार्या	ह्रादकी पत्नी	**यः इल्वलं**	जिस इल्वलने
धमनिः	धमनीने	**अतिथये**	अतिथि रूपमें आए
वातापिं इल्वलं	वातापि और इल्वल-को	**अगस्त्याय तु**	अगस्त्यजीके लिए तो
		वातापिं पेचे	वातापिको पकाया था ॥१५॥
असूत	जन्म दिया		

अनुह्रादस्य सूर्म्यायां बाष्कलो महिषस्तथा ।
विरोचनस्तु प्राह्रादिर्देव्यास्तस्याभवद्बलिः ॥१६॥

अनुह्रादस्य सूर्म्यायां बाष्कलः महिषः तथा विरोचनः तु प्राह्रादिः देव्याः तस्या अभवत् बलिः ॥१६॥

अनुह्रादस्य	अनुह्रादकी पत्नी	**बाष्कलः तथा**	बाष्कल और
सूर्म्यायां	सूर्म्यासे	**महिषः**	महिषासुर

विरोचनः तु	विरोचन तो		पत्नीसे
प्राह्लादिः	प्रह्लादके पुत्र थे,	बलिः अभवत्	बलि उत्पन्न हुए
तस्या देव्याः	उनकी देवी नामक		॥१६॥

बाणज्येष्ठं पुत्रशतमशनायां ततोऽभवत् ।
तस्यानुभावः सुश्लोक्यः पश्चादेवाभिधास्यते ॥१७॥

बाणज्येष्ठं पुत्रशतं अशनायां ततः अभवत् तस्य अनुभावः सुश्लोक्यः पश्चात् एव अभिधास्यते ॥१७॥

ततः अशनायां	उन (बलि) के अशना नामक पत्नीसे	तस्य	उन (बलि) का
		सुश्लोक्यः	गायन योग्य
		अनुभावः	प्रभाव
पुत्रशतं	सौ पुत्र	पश्चात् एव	पीछे ही
बाणज्येष्ठं	जिनमें बाणासुर बड़ा था	अभिधास्यते	वर्णन किया जाएगा ॥१७॥
अभवत्	उत्पन्न हुए		

बाण आराध्य गिरिशं लेभे तद्गणमुख्यताम् ।
यत्पार्श्वे भगवानास्ते ह्यद्यापि पुरपालकः ॥१८॥

बाण आराध्य गिरिशं लेभे तत् गणमुख्यतां यत् पार्श्वे भगवान् आस्ते हि अद्य अपि पुरपालकः ॥१८॥

हि	क्योंकि	लेभे	प्राप्त कर लिया
बाण गिरिशं	बाणासुरने शंकर-जीकी	अद्य अपि	जिससे आज भी
		पुरपालकः	नगरपाल होकर
आराध्य तत्	आराधना करके उनके	यत् पार्श्वे	जिसके समीप
		भगवान् आस्ते	भगवान् (शिव)
गणमुख्यतां	गण प्रमुखका पद		रहते हैं ॥१८॥

मरुतश्च दितेः पुत्राश्चत्वारिंशन्नवाधिकाः ।
त आसन्नप्रजाः सर्वे नीता इन्द्रेण सात्मताम् ॥१९॥

मरुतः च दितेः पुत्राः चत्वारिंशत् नव अधिकाः त आसन् अप्रजाः सर्वे नीता इन्द्रेण सात्मताम् ॥१६॥

नव अधिकाः	नौ अधिक	**आसन्**	रहे,
चत्वारिंशत्	चालिस (उनचास)	**सर्वे इन्द्रेण**	वे सब इन्द्र द्वारा
मरुतः च	मरुद्गण भी	**सात्मतां नीताः**	अपने समान
दितेः पुत्राः	दितिके ही पुत्र हैं,		(देवता) बना लिए
त अप्रजाः	वे निःसन्तान		गए ॥१६॥

राजोवाच—

कथं त आसुरं भावमपोह्यौत्पत्तिकं गुरो ।
इन्द्रेण प्रापिताः सात्म्यं किं तत्साधु कृतं हि तैः ॥२०॥

कथं त आसुरं भावं अपोह्य औत्पत्तिकं गुरो इन्द्रेण प्रापिताः सात्म्यं किं तत् साधु कृतं हि तैः ॥२०॥

गुरो	गुरुदेव !	**प्रापिताः**	बनाये गये,
त औत्पत्तिकं	वे जन्मजात	**तैः तत् हि**	उन्होंने वह ऐसा
आसुरं भावं	आसुरी स्वभाव	**किं साधु कृतं**	क्या सत्कर्म किया
कथं अपोह्य	कैसे दूर करके		॥२०॥
इन्द्रेण सात्म्यं	इन्द्र द्वारा अपने समान देवता		

इमे श्रद्दधते ब्रह्मन्नृषयो हि मया सह ।
परिज्ञानाय भगवंस्तन्नो व्याख्यातुमर्हसि ॥२१॥

इमे श्रद्दधते ब्रह्मन् ऋषयः हि मया सह परिज्ञानाय भगवन् तत् नः व्याख्यातुं अर्हसि ॥२१॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**भगवन्**	भगवन् !
हि	क्योंकि	**तत् नः**	इसलिए हम सबकी
मया सह	मेरे साथ	**परिज्ञानाय**	जानकारीके लिए
इमे ऋषयः	ये ऋषिगण	**व्याख्यातुं**	(आपको) बतलाना
श्रद्दधते	(आपके वचनोंपर) श्रद्धा करते हैं,	**अर्हसि**	चाहिए ॥२१॥

सूत उवाच—

तद्विष्णुरातस्य स बादरायणि-
र्वचो निशम्याहृतमल्पमर्थवत् ।
सभाजयन् संनिभृतेन चेतसा
जगाद सत्रायण सर्वदर्शनः ॥२२॥

तत् विष्णुरातस्य स बादरायणिः वचः निशम्य आहृतं अल्पं अर्थवत् सभाजयन् संनिभृतेन चेतसा जगाद सत्रायण सर्वदर्शनः ॥२२॥

तत् आहृतं	वह आदर पूर्वक	सर्वदर्शनः	सर्वज्ञ
अल्पं अर्थवत्	थोड़े शब्दोंमें सारगर्भित	बादरायणिः	शुकदेवजीने
		सभाजयन्	उसका आदर करके
विष्णुरातस्य	परीक्षितकी	संनिभृतेन	प्रसन्न
वचः	वाणी	चेतसा	चित्तसे
निशम्य	सुनकर	जगाद	बोले ॥२२॥
स सत्रायण	उन ज्ञानोपदेशमें लगे		

श्रीशुक उवाच—

हतपुत्रा दितिः शक्रपार्ष्णिग्राहेण विष्णुना ।
मन्युना शोकदीप्तेन ज्वलन्ती पर्यचिन्तयत् ॥२३॥

हतपुत्रा दितिः शक्रपार्ष्णि ग्राहेण विष्णुना मन्युना शोकदीप्तेन ज्वलन्ती पर्यचिन्तयत् ॥२३॥

शक्रपार्ष्णि	इन्द्रका पक्ष	शोकदीप्तेन	शोकसे प्रदीप्त
ग्राहेण	लेकर	मन्युना	क्रोधसे
विष्णुना	भगवान् विष्णुके द्वारा	ज्वलन्ती	जलती हुई
		दितिः	दिति
हतपुत्रा	पुत्रोंके मारे जानेपर	पर्यचिन्तयत्	सोचने लगी ॥२३॥

कदा नु भ्रातृहन्तारमिन्द्रियारामसुल्बणम् ।
अक्लिन्नहृदयं पापं घातयित्वा शये सुखम् ॥२४॥

कदा नु भ्रातृ हन्तारं इन्द्रियारामं उल्बणं अक्लिन्न हृदयं पापं घातयित्वा शये सुखम् ॥२४॥

भ्रातृ हन्तारं	भाइयोंके हत्यारे,	कदा	कब
इन्द्रियारामं	इन्द्रिय भोग परायण,	नु घातयित्वा	तो मरवाकर
उल्बणं	क्रूर	सुखं शये	सुखपूर्वक सो
अक्लिन्न हृदयं	निष्ठुर चित्त		सकूँगी ॥२४॥
पापं	पापी (इन्द्र) को		

कृमिविड्भस्मसंज्ञाऽऽसीद्यस्येशाभिहितस्य च ।
भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥२५॥

कृमि विट् भस्म संज्ञा आसीत् यस्य ईश अभिहितस्य च भूतध्रुक् तत् कृते स्वार्थं किं वेद निरयः यतः ॥२५॥

यस्य ईश	जिस प्रभु	यतः निरयः	जिसके कारण नरक
अभिहितस्य	कहलाने वाले		मिलता है वह
	(शरीर) का	भूतध्रुक्	प्राणियोंसे द्रोह
कृमि विट् भस्म	कीड़ा, विष्टा या		करने वाले
	भस्म	किं स्वर्थं वेद	क्या अपना स्वार्थ
संज्ञा आसीत्	(पहिले) नाम था,		जानते हैं ॥२५॥
च तत् कृते	अरे उसके लिए		

आशासानस्य तस्येदं ध्रुवमुन्नद्धचेतसः ।
मदशोषक इन्द्रस्य भूयाद्येन सुतो हि मे ॥२६॥

आशासानस्य तस्य इदं ध्रुवं उन्नद्ध चेतसः मदशोषक इन्द्रस्य भूयात् येन सुतः हि मे ॥२६॥

हि तस्य	क्योंकि उस (दिति) के	येन मे	जिस उपायसे मुझे
		इन्द्रस्य	इन्द्रके
ध्रुवं उन्नद्ध	अविचल निश्चय युक्त	मदशोषक	घमण्डको सुखा देनेवाला
चेतसः	चित्तमें	सुतः भूयात्	पुत्र हो (वह करूँगी) ॥२६॥
आशासानस्य	(यह) चाह जमी थी,		

इति भावेन सा भर्तुराचचारासकृत्प्रियम् ।
शुश्रूषयानुरागेण प्रश्रयेण दमेन च ॥२७॥

इति भावेन सा भर्तुः आचचार असकृत् प्रियं शुश्रूषया अनुरागेण प्रश्रयेण दमेन च ॥२७॥

इति भावेन	इस भावसे	सा भर्तुः	वह पतिकी
अनुरागेण	अनुराग पूर्वक	असकृत् प्रियं	निरन्तर प्रसन्नताका कार्य
शुश्रुषया	सेवा,	आचचार	करने लगी ॥२७॥
प्रश्रयेण	नम्रता,		
च दमेन	तथा इन्द्रिय संयम द्वारा		

भक्त्या परमया राजन् मनोज्ञैर्वल्गुभाषितैः ।
मनो जग्राह भावज्ञा सुस्मितापाङ्गवीक्षणैः ॥२८॥

भक्त्या परमया राजन् मनोज्ञैः वल्गु भाषितैः मनः जग्राह भावज्ञा सुस्मित अपाङ्ग वीक्षणैः ॥२८॥

राजन्	राजन् !	सुस्मित	मनोहर मुसकान सहित
भावज्ञा	(पतिके) भावको जाननेवाली	अपाङ्ग वीक्षतैः	कटाक्षपूर्वक देखकर
मनोज्ञैः	उनके भावको जानकर	मनः जग्राह	(उनके) मनको आकर्षित कर लिया ॥२८॥
परमया भक्त्या	परम प्रेम भावसे		
वल्गु भाषितैः	मधुर भाषणसे		

एवं स्त्रिया जडीभूतो विद्वानपि विदग्धया ।
बाढमित्याह विवशो न तच्चित्रं हि योषिति ॥२९॥

एवं स्त्रिया जडीभूतः विद्वान् अपि विदग्धया बाढं इति आह विवशः न तत् चित्रं हि योषिति ॥२९॥

विदग्धया	चतुरा	**इति आह**	ऐसा कह दिया ।
स्त्रिया एवं	स्त्री द्वारा इस प्रकार	**हि**	क्योंकि
जडीभूतः	विवेकहीन प्राय होकर	**योषिति**	स्त्रियोंके लिए
विद्वान् अपि	विद्वान होनेपर भी	**तत् चित्रं न**	वह आश्चर्यकी बात नहीं है ॥२९॥
विवशः	विवश होकर		
बाढं	'अच्छा' (तुम्हारी इच्छा पूरी करूंगा)		

विलोक्यैकान्तभूतानि भूतान्यादौ प्रजापतिः ।
स्त्रियं चक्रे स्वदेहार्धं यया पुंसां मतिर्हृता ॥३०॥

विलोक्य एकान्त भूतानि भूतानि आदौ प्रजापतिः स्त्रियं चक्रे स्वदेह अर्धं यया पुंसां मतिः हृता ॥३०॥

आदौ	सृष्टिके प्रारम्भमें	**स्त्रियं चक्रे**	स्त्रीका निर्माण किया,
प्रजापतिः	ब्रह्माजीने	**यया पुंसां**	जिसके द्वारा पुरुष- की
एकान्त भूतानि	असङ्ग बने	**मतिः हृता**	बुद्धि हरण कर ली गयी ॥३०॥
भूतानि विलोक्य	प्राणियोंको देखकर		
स्वदेह अर्धं	अपने शरीरके आधे भागसे		

एवं शुश्रूषितस्तात भगवान् कश्यपः स्त्रिया ।
प्रहस्य परमप्रीतो दितिमाहाभिनन्द्य च ॥३१॥

एवं शुश्रूषितः तात भगवान् कश्यपः स्त्रिया प्रहस्य परमप्रीतः दितिं आह अभिनन्द्य च ॥३१॥

तात	तात परीक्षित !
भगवान् कश्यपः	भगवान् कश्यप
एवं स्त्रिया	इस प्रकार पत्नी द्वारा
शुश्रूषितः	सेवा किये जानेपर
परमप्रीतः	अत्यन्त प्रसन्न होकर
च दितिं	और दितिका
अभिनन्द्य	अभिनन्दन करके
प्रहस्य आह	हंसकर बोले ॥३१॥

कश्यप उवाच–

वरं वरय वामोरु प्रीतस्तेऽहमनिन्दिते ।
स्त्रिया भर्तरि सुप्रीते कः काम इह चागमः ॥३२॥

वरं वरय वामोरु प्रीतः ते अहं अनिन्दिते स्त्रिया भर्तरि सुप्रीते कः काम इह च अगमः ॥३२॥

अनिन्दिते	अनिन्द्य
वामोरु	सुन्दरी !
वरं वरय	वरदान मांगो ।
अहं ते प्रीतः	मैं तुमपर प्रसन्न हूँ'
भर्तरि सुप्रीते	पतिके पूर्ण प्रसन्न होनेपर
स्त्रिया कः	स्त्रीकी कौन-सी
कामः	कामना
इह च अगमः	इस लोकमें अप्राप्त रहती है ॥३२॥

पतिरेव हि नारीणां दैवतं परमं स्मृतम् ।
मानसः सर्वभूतानां वासुदेवः श्रियः पतिः ॥३३॥

पतिः एव हि नारीणां दैवतं परमं स्मृतं मानसः सर्वभूतानां वासुदेवः श्रियः पतिः ॥३३॥

पति एव	पति ही
नारीणां	स्त्रियोंका
परमं दैवतं	परम आराध्य
स्मृतं	(शास्त्रोंमें) कहा गया है,
हि	क्योंकि
श्रियः पतिः	लक्ष्मीपति
वासुदेवः	भगवान् वासुदेव
सर्वभूतानां	सब प्राणियोंके
मानसः	हृदयमें स्थित हैं ॥३३॥

स एव देवतालिङ्गैर्नामरूपविकल्पितैः ।
इज्यते भगवान् पुम्भिः स्त्रीभिश्च पतिरुपधृक् ॥३४॥

स एव देवता लिङ्गैः नाम रूप विकल्पितैः इज्यते भगवान् पुम्भिः स्त्रीभिः च पतिरूप धृक् ॥३४॥

स एव भगवान्	वही भगवान्	च स्त्रीभिः	और स्त्रियों द्वारा
पुम्भिः	पुरुषों द्वारा	पतिरूप धृक्	पतिका रूप धारण किये
देवता लिङ्गैः	देवताओंके रूपमें		
नाम विकल्पितैः रूप	अनेक नाम एवं रूपोंमें माने जाकर	इज्यते	पूजित होते हैं ॥३४॥

तस्मात्पतिव्रता नार्यः श्रेयस्कामाः सुमध्यमे ।
यजन्तेऽनन्यभावेन पतिमात्मानमीश्वरम् ॥३५॥

तस्मात् पतिव्रता नार्यः श्रेयः कामाः सुमध्यमे यजन्ते अनन्य भावेन पतिं आत्मानं ईश्वरम् ॥३५॥

सुमध्यमे	सुन्दरी !	आत्मानं ईश्वरं	अपने परमेश्वर
तस्मात्	इसलिए	पतिं	पतिकी
श्रेयः कामाः	अपना कल्याण चाहनेवाली	अनन्य भावेन	अनन्य भावसे
		यजन्ते	सेवा करती हैं ॥३५॥
पतिव्रता नार्यः	पतिव्रता नारियां		

सोऽहं त्वयार्चितो भद्रे ईदृग्भावेन भक्तितः ।
तत्ते सम्पादये काममसतीनां सुदुर्लभम् ॥३६॥

स अहं त्वया अर्चितः भद्रे ईदृक् भावेन भक्तितः तत् ते सम्पादये कामं असतीनां सुदुर्लभम् ॥३६॥

भद्रे	कल्याणी !	स अहं अर्चितः	वह मैं पूजित हुआ हूँ ।
त्वया ईदृक् भावेन भक्तितः	तुम्हारे द्वार ऐसे अनन्य भावसे भक्ति पूर्वक	तत् ते कामं	वह तुम्हारी अभिलाषा

सम्पादये	सम्पन्न कर दूंगा ।	सुदुर्लभं	यह अत्यन्त दुर्लभ
असतीनां	जो सती नहीं हैं उनके लिए		है ॥३६॥

दितिरुवाच–

वरदो यदि मे ब्रह्मन् पुत्रमिन्द्रहणं वृणे ।
अमृत्युं मृतपुत्राहं येन मे घातितौ सुतौ ॥३७॥

वरदः यदि मे ब्रह्मन् पुत्रं इन्द्रहणं वृणे अमृत्युं मृतपुत्रा अहं येन मे घातितौ सुतौ ॥३७॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	येन मे सुतौ	जिसने मेरे पुत्रोंको
यदि मे वरदः	यदि आप मुझे वरदान देना चाहते हैं तो	घातितौ	मरवा दिया (उस)
		इन्द्रहणं	इन्द्रको मारनेवाले
		अमृत्युं	अमर
अहं मृतपुत्रा	जिसके पुत्र मर गये हैं वह मैं	पुत्रं वृणे	पुत्रका वरदान मांगती हूँ ॥३७॥

श्रीशुक उवाच–*

निशम्य तद्वचो विप्रो विमनाः पर्यतप्यत ।

निशम्य तत् वचः विप्रः विमनाः पर्यतप्यत ।

तत् वचः	उसकी बात	पर्यतप्यत	पश्चाताप करने
निशम्य	सुनकर		लगे ।
विमनाः विप्रः	खिन्न होकर विप्रवर		

अहो अधर्मः सुमहानद्य मे समुपस्थितः ॥३८॥

अहो अधर्मः सुमहान् अद्य मे समुपस्थितः ॥३८॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अहो सुमहान्	अरे, बहुत बड़ा	अद्य	आज
अधर्मः मे	अधर्म मेरे लिए	समुपस्थितः	आ गया है ॥३८॥

अहो अद्येन्द्रियारामो योषिन्मय्येह मायया ।
गृहीतचेताः कृपणः पतिष्ये नरके ध्रुवम् ॥३९॥

अहो अद्य इन्द्रिय आरामः योषित् मयि इह मायया गृहीतचेताः कृपणः पतिष्ये नरके ध्रुवम् ॥३९॥

अहो	अरे,	गृहीतचेताः	आकर्षित चित
अद्य इन्द्रिय	इन्द्रियोंके भोगोंमें	कृपणः	दुःखी
आरामः	सुख माननेवाला (मैं)	ध्रुवं	निश्चय
इह योषित् मयि	यहाँ स्त्री रूपिणी	नरके पतिष्ये	नरकमें गिरूँगा ॥३९॥
मायया	माया द्वारा		

कोऽतिक्रमोऽनुवर्तन्त्याः स्वभावमिह योषितः ।
धिङ् मां बताबुधं स्वार्थे यदहं त्वजितेन्द्रियः ॥४०॥

कः अतिक्रमः अनुवर्तन्त्याः स्वभावं इह योषितः धिक् मां बत अबुधं स्वार्थे यत् अहं तु अजितेन्द्रियः ॥४०॥

इह स्वभावं	यहां स्वभावके	अबुधं	न जाननेवाले
अनुवर्तन्त्याः	अनुसार व्यवहार करनेवाली	मां धिक्	मुझे धिक्कार है
योषितः कः	स्त्रीका क्या	यत् अहं तु	क्योंकि मैं ही तो
अतिक्रमः	अपराध है,	अजितेन्द्रियः	इन्द्रियोंको जीत नहीं सका ॥४०॥
बत स्वार्थे	किन्तु अपने वास्तविक स्वार्थको		

शरत्पद्मोत्सवं वक्त्रं वचश्च श्रवणामृतम् ।
हृदयं क्षुरधाराभं स्त्रीणां को वेद चेष्टितम् ॥४१॥

शरत् पद्म उत्सवं वक्त्रं वचः च श्रवण अमृतं हृदयं क्षुरधार आभं स्त्रीणां कः वेद चेष्टितम् ॥४१॥

शरत् पद्म	शरदऋतुके कमलके समान	हृदयं	परन्तु हृदय
		क्षुरधार आभं	क्षुरेकी धार जैसा तीक्ष्ण होता है, अतः
उत्सवं वक्त्रं	मुख सुन्दर होता है,		
वचः च	वाणी भी	स्त्रीणां चेष्टितं	स्त्रियोंके चरित्रको
श्रवण अमृतं	सुननेमें अमृत-सी होती है;	कः वेद	कौन जान सकता है ॥४१॥

न हि कश्चित्प्रियः स्त्रीणामञ्जसा स्वाशिषात्मनाम् ।
पतिं पुत्रं भ्रातरं वा घ्नन्त्यर्थे घातयन्ति च ॥४२॥

न हि कश्चित् प्रियः स्त्रीणां अञ्जसा स्व आशिष आत्मनां पतिं पुत्रं भ्रातरं वा घ्नन्ति अर्थे घातयन्ति च ॥४२॥

अञ्जसा	सरलतासे	हि अर्थे	क्योंकि स्वार्थके लिए (वे)
स्व आशिष आत्मनां	अपनी लालसा पूरा करना चाहने-वाली	पतिं पुत्रं भ्रातरं	पति, पुत्र, भाईको
स्त्रीणां	स्त्रियोंका	घ्नन्ति वा	मार देती हैं या
कश्चित् प्रियः	न कोई भी प्रिय नहीं होता,	घातयन्ति च	मरवा भी देती हैं ॥४२॥

प्रतिश्रुतं ददामीति वचस्तन्न मृषा भवेत् ।
वधं नार्हति चेन्द्रोऽपि तत्रेदमुपकल्पते ॥४३॥

प्रतिश्रुतं ददामि इति वचः तत् न मृषा भवेत् वधं न अर्हति च इन्द्रः अपि तत्र इदं उपकल्पते ॥४३॥

ददामि इति	'दूंगा' इस प्रकार	वधं न अर्हति	वधके योग्य नहीं है
प्रतिश्रुतं	मैंने वचन दिया है,	तत्र इदं	इस विषयमें यह
तत् वचः	वह वाणी	उपकल्पते	(युक्ति) करता हूँ ॥४३॥
मृषा न भवेत्	झूठी न हो		
च इन्द्रः अपि	और इन्द्र भी		

इति संचिन्त्य भगवान्मारीचः कुरुनन्दन ।
उवाच किञ्चित् कुपित आत्मानं च विगर्हयन् ॥४४॥

इति सञ्चिन्त्य भगवान् मारीचः कुरुनन्दन उवाच किञ्चित् कुपित आत्मानं च विगर्हयन् ॥४४॥

कुरुनन्दन	परीक्षित !	किञ्चित् कुपित	कुछ क्रोध करके
भगवान्	भगवान्	च आत्मानं	और अपनी
मारीचः	मरीचिनन्दन (कश्यप)	विगर्हयन्	भर्त्सना करते
इति सञ्चिन्त्य	ऐसा सोचकर	उवाच	बोले ॥४४॥

कश्यप उवाच—

पुत्रस्ते भविता भद्रे इन्द्रहा देवबान्धवः ।
संवत्सरं व्रतमिदं यद्यञ्जो धारयिष्यसि ॥४५॥

पुत्रः ते भविता भद्रे इन्द्रहा देवबान्धवः संवत्सरं व्रतं इदं यदि अञ्जः धारयिष्यसि ॥४५॥

भद्रे	कल्याणी !	ते पुत्रः	तुम्हारा पुत्र
यदि अञ्जः	यदि पूरी विधिसे	इन्द्रहा	इन्द्रको मारनेवाला
इदं व्रतं	यह नियम	देवबान्धवः	देवताओंका भाई
संवत्सरं	एक वर्ष तक	भविता	होगा ॥४५॥
धारयिष्यसि	धारण करोगी तो		

दितिरुवाच—

धारयिष्ये व्रतं ब्रह्मन्ब्रूहि कार्याणि यानि मे ।
यानि चेह निषिद्धानि न व्रतं घ्नन्ति यानि तु ॥४६॥

धारयिष्ये व्रतं ब्रह्मन् ब्रूहि कार्याणि यानि मे यानि च इह निषिद्धानि न व्रतं घ्नन्ति यानि तु ॥४६॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	इह यानि	इसमें जो-जो
व्रतं धारयिष्ये	मैं व्रत धारण करूँगी,	निषिद्धानि	निषिद्ध है,
		च यानि व्रतं तु	और जो व्रतको तो
यानि मे	जो-जो मुझे	घ्नन्ति न	नष्ट नहीं करते
कार्याणि	करना है	ब्रूहि	यह बतलाइये ॥४६॥

कश्यप उवाच—

न हिंस्याद्भूतजातानि न शपेन्नानृतं वदेत् ।
नच्छिन्द्यान्नखरोमाणि न स्पृशेद्यदमङ्गलम् ॥४७॥

न हिंस्यात् भूत जातानि न शपेत् न अनृतं वदेत् न छिन्द्यात् नख रोमाणि न स्पृशेत् यत् अमङ्गलं ॥४७॥

भूतजातानि न हिंस्यात्	प्राणिमात्रकी हिंसा न करे,	नख रोमाणि न छिन्द्यात्	नख और रोम न काटे,
शपेत् न	(किसीको) गाली न दे,	यत् अमङ्गलं स्पृशेत् न	जो अशुभ वस्तु हो उसका स्पर्श न करे ॥४७॥
अनृतं न वदेत्	झूठ न बोले,		

नाप्सु स्नायान्न कुप्येत न सम्भाषेत दुर्जनैः ।
न वसीताधौतवासः स्रजं च विधृतां क्वचित् ॥४८॥

न अप्सु स्नायात् न कुप्येत न सम्भाषेत् दुर्जनैः न वसीत अधौत वासः स्रजं च विधृतां क्वचित् ॥४८॥

अप्सु न स्नायात्	जलमें घुसकर स्नान न करे	अधौतवासः न वसीत	बिना धोया वस्त्र न पहिने
कुप्येत न	क्रोध न करे,	च क्वचित्	और किसीकी
दुर्जनैः न सम्भाषेत्	दुष्ट लोगोंसे न बोले	विधृतां स्रजं	पहिनी माला (न पहिने) ॥४८॥

नोच्छिष्टं चण्डिकान्नं च सामिषं वृषलाहृतम् ।
भुञ्जीतोदक्यया दृष्टं पिबेदञ्जलिना त्वपः ॥४६॥

न उच्छिष्टं चण्डिका अन्नं च स आमिषं वृषल आहृतं भुञ्जीत उदक्यया दृष्टं पिबेत् अञ्जलिना तु अपः ॥४६॥

उच्छिष्टं	जूठा,	दृष्टं	दृष्टि पड़ा
चण्डिका अन्नं	कालीका प्रसाद,	न भुञ्जीत	न खाय
स आमिषं	मांसयुक्त,	अञ्जलिना तु	अञ्जलिसे ही
वृषल आहृतं	शूद्रका लाया	अपः न पिबेत्	पानी न पिये ॥४६॥
च उदक्यया	और रजस्वलाकी		

नोच्छिष्टास्पृष्टसलिला सन्ध्यायां मुक्तमूर्धजा ।
अनर्चितासंयतवाङ् नासंवीता बहिश्चरेत् ॥५०॥

न उच्छिष्टा अस्पृष्ट सलिला सन्ध्यायां मुक्त मूर्धजा अनर्चिता असंयत वाक् न असंवीता बहिः चरेत् ॥५०॥

उच्छिष्टा	जूठे मुख	असंयत वाक्	वाणीको संयमित किये बिना
अस्पृष्ट सलिला	जलसे आचमन किये बिना	न	न रहे
सन्ध्यायां	सन्ध्याके समय,	असंवीता	चद्दर ओढ़े बिना
मुक्त मूर्धजा	बाल खोले	न बहिः चरेत्	बाहर न घूमे ॥५०॥
अनर्चिता	बिना शृंगार किये		

नाधौतपादाप्रयता नार्द्रपान्नो उदक्शिराः ।
शयीत नापराङ्नान्यैर्न नग्ना न च सन्ध्ययोः ॥५१॥

न अधौत पादा अप्रयता न आर्द्रपात् न उदक् शिराः शयीत न अपराङ् न अन्यैः न नग्ना न च सन्ध्ययोः ॥५१॥

न अधौत पादा	बिना हाथ-पैर धोये,	न अन्यैः	न दूसरेके साथ,
अप्रयता	अपवित्र दशामें,	न नग्ना	न नंगी
न आर्द्र पात्	न गीले पैर,	च न सन्ध्ययोः	और न प्रातः-सायं
न उदक् शिराः	न उत्तर सिर करके,		सन्ध्या कालमें
न अपराङ्	न पश्चिम करके	शयीत	सोवे ॥५१॥

धौतवासाः शुचिर्नित्यं सर्वमङ्गलसंयुता ।
पूजयेत्प्रातराशात्प्राग्गोविप्रान् श्रियमच्युतम् ॥५२॥

धौतवासाः शुचिः नित्यं सर्व मङ्गल संयुता पूजयेत् प्रातराशात् प्राक् गोविप्रान् श्रियं अच्युतम् ॥५२॥

धौतवासाः	धुला वस्त्र पहिने,	प्राक्	पहिले
नित्यं शुचिः	सदा पवित्र रहे,	गो विप्रान्	गौ-ब्राह्मण तथा
सर्व मङ्गल	सब सौभाग्य	श्रियं अच्युतं	लक्ष्मी-नारायणकी
संयुता	शृंगार पहिने रहे	पूजयेत्	पूजा करें ॥५२॥
प्रातराशात्	कलेऊ करनेसे		

स्त्रियो वीरवतीश्चार्चेत्स्रग्गन्धबलिमण्डनैः ।
पतिं चार्च्योपतिष्ठेत ध्यायेत्कोष्ठगतं च तम् ॥५३॥

स्त्रियः वीरवतीः च अर्चेत् स्रक् गन्ध बलि मण्डनैः पतिं च अर्च्य उपतिष्ठेत ध्यायेत् कोष्ठगतं च तम् ॥५३॥

वीरवतीः	सौभाग्यवती	च पतिं अर्च्य	फिर पतिकी पूजा
स्त्रियः च	स्त्रियोंकी भी		करके
स्रक् गन्ध बलि	माला, सुगन्धित-	उपतिष्ठेत	उसकी सेवामें लगी
	द्रव्य, उपहार		रहे,
मण्डनैः अर्चेत्	आभूषणादिसे पूजा	तं कोष्ठगतं च	उसे अपनी कोखमें
	करें,		पहुँचा
		ध्यायेत्	चिन्तन करें ॥५३॥

सांवत्सरं पुंसवनं व्रतमेतदविप्लुतम् ।
धारयिष्यसि चेत्तुभ्यं शक्रहा भविता सुतः ॥५४॥

सांवत्सरं पुंसवनं व्रतं एतत् अविप्लुतं धारयिष्यसि चेत् तुभ्यं शक्रहा भविता सुतः ॥५४॥

एतत् पुंसवनं	यह पुंसवन
व्रतं	व्रत
चेत् सांवत्सरं	यदि वर्षभर तक
अविप्लुतं	बिना त्रुटिके
धारयिष्यसि	धारण करोगी तो
तुभ्यं शक्रहा	तुमसे इन्द्रको मारनेवाला
सुतः भविता	पुत्र उत्पन्न होगा ॥५४॥

*श्रीरुद्र उवाच-**

बाढमित्यभिप्रेत्याथ दिती राजन् महामनाः ।
काश्यपं गर्भमाधत्त व्रतं चाञ्जो दधार सा ॥५५॥

बाढं इति अभिप्रेत्य अथ दिती राजन् महामनाः काश्यपं गर्भं आधत्त व्रतं च अञ्जः दधार सा ॥५५॥

राजन्	राजन् !
बाढं इति	'बहुत अच्छा' इस प्रकार
अभिप्रेत्य	अपना अभिप्राय बताकर
अथ महामनाः	फिर उत्साह पूर्वक
दिती	दितिने
काश्यपं गर्भं	कश्यपजीसे गर्भ
आधत्त	धारण किया
च अञ्जः व्रतं	और अनायास नियमोंका भी
सा दधार	वह पालन करने लगी ॥५५॥

मातृष्वसुरभिप्रायमिन्द्र आज्ञाय मानद ।
शुश्रूषणेनाश्रमस्थां दितिं पर्यचरत्कविः ॥५६॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

मातृष्वसुः अभिप्रायं इन्द्रः आज्ञाय मानद शुश्रूषणेन आश्रमस्थां दितिं पर्यचरत् कविः ॥५६॥

मानद	सम्मान देनेवाले परीक्षित !	**दितिं**	दितिके
कविः इन्द्रः	बुद्धिमान इन्द्रने	**आश्रमस्थां**	आश्रममें रहकर
मातृष्वसुः	मौसीका	**शुश्रूषणेन**	(उसकी) शुश्रूषा
अभिप्रायं	अभिप्राय	**पर्यचरत्**	सेवा करने लगे ॥५६॥
आज्ञाय	जानकर		

नित्यं वनात्सुमनसः फलमूलसमित्कुशान् ।
पत्राङ्कुरमृदोऽपश्च काले काल उपाहरत् ॥५७॥

नित्यं वनात् सुमनसः फल मूल समित् कुशान् पत्र अङ्कुरमृत् अपः च काले काल उप आहरत् ॥५७॥

नित्यं	प्रतिदिन	**कुशान् पत्र**	कुश, पत्र (तुलसी आदि)
काले काल	समय-समयपर	**अङ्कुरमृत्**	दूर्वाङ्कुर, मिट्टी
वनात्	वनसे	**च अपः**	और जल
सुमनसः फल	पुष्प, फल,	**उप आहरत्**	लाने लगे ॥५७॥
मूल समित्	मूल, समिधा,		

एवं तस्या व्रतस्थाया व्रतच्छिद्रं हरिर्नृप ।
प्रेप्सुः पर्यचरज्जिह्मो मृगहेव मृगाकृतिः ॥५८॥

एवं तस्या व्रतस्थाया व्रतः छिद्रं हरिः नृप प्रेप्सुः पर्यचरत् जिह्मः मृगहा इव मृग आकृतिः ॥५८॥

नृप	राजन् !	**मृग आकृतिः**	मृगका आकार धारण करके
एवं	इस प्रकार	**मृगहा इव**	(मृगोंमें मिले) बहेलियेके समान
तस्या व्रतस्थाया	उस नियम निष्ठा (दिति) के	**जिह्मः हरिः**	छली इन्द्र
व्रतः छिद्रं	नियमोंमें त्रुटि	**पर्यचरत्**	(उसकी) सेवा करते थे ॥५८॥
प्रेप्सुः	पकड़नेके लिए		

नाध्यगच्छद्व्रतच्छिद्रं तत्परोऽथ महीपते ।
चिन्तां तीव्रां गतः शक्रः केन मे स्याच्छिवं त्विह ॥५९॥

न अधिगच्छत् व्रतः छिद्रं तत् परः अथ महीपते चिन्तां तीव्रां गतः शक्रः केन मे स्यात् शिवं तु इह ॥५९॥

महीपते	राजन् !	तीव्रां चिन्तां	बहुत चिन्तित हुए
तत् परः	तत्पर रहनेपर भी जब	गतः	कि
		इह मे	यहाँ मेरा
व्रतः छिद्रं	नियमोंमें त्रुटि	केन	किस उपायसे
न अधिगच्छत्	नहीं पकड़ सके	शिवं	कल्याण हो ॥५९॥
अथ तु शक्रः	तब तो इन्द्र		

एकदा सा तु सन्ध्यायामुच्छिष्टा व्रतकर्शिता ।
अस्पृष्टवार्यधौताङ्घ्रिः सुष्वाप विधिमोहिता ॥६०॥

एकदा सा तु सन्ध्यायां उच्छिष्टा व्रत कर्शिता अस्पृष्ट वारि अधौत अङ्घ्रिः सुष्वाप विधि मोहिता ॥६०॥

एकदा सा तु	एक बार वह तो	उच्छिष्टा	जूठे मुख
विधि मोहिता	दैव वश भूलकर	अस्पृष्ट वारि	बिना कुल्ला किये,
		अधौत अङ्घ्रि	बिना पैर धोये,
व्रत कर्शिता	नियम पालनसे थकी	सुष्वाप	सो गयी ॥६०॥
सन्ध्यायां	सन्ध्याके समय		

लब्ध्वा तदन्तरं शक्रो निद्रापहृतचेतसः ।
दितेः प्रविष्ट उदरं योगेशो योगमायया ॥६१॥

लब्ध्वा तत् अन्तरं शक्रः निद्रा अपहृत चेतसः दितेः प्रविष्ट उदरं योगेशः योगमायया ॥६१॥

तत् अन्तरं	यह अवसर	निद्रा	निद्रासे
लब्ध्वा	पाकर	अपह्नुत चेतसः	आक्रान्त चित्त
योगेशः शक्रः	योगेश्वर इन्द्र	दितेः उदरं	दितिके पेटमें
योगमायया	अपनी योगमायासे	प्रविष्टः	प्रवेश कर गये ॥६१॥

चकर्त सप्तधा गर्भं वज्रेण कनकप्रभम् ।
रुदन्तं सप्तधैकैकं मा रोदीरिति तान् पुनः ॥६२॥

चकर्त सप्तधा गर्भं वज्रेण कनकप्रभं रुदन्तं सप्तधा एकैकं मा रोदीः इति तान् पुनः ॥६२॥

कनकप्रभं गर्भं	सोनेके समान चमकते गर्भको	मा रोदीः	'मत रोओ' (यह कह कर)
वज्रेण सप्तधा	वज्रसे सात टुकड़ोंमें	तान् पुनः	उनको फिर
चकर्त	(वहां उन्होंने) काट दिया,	एकैकं	एक-एकको
रुदन्तं	(जब वे) रोने लगे (तब)	सप्तधा	सात-सात टुकड़े (कर दिए) ॥६२॥

ते तमूचुः पाट्यमानाः सर्वे प्राञ्जलयो नृप ।
नो जिघांससि किमिन्द्र भ्रातरो मरुतस्तव ॥६३॥

ते तं ऊचुः पाट्यमानाः सर्वे प्राञ्जलयः नृप नः जिघांससि किं इन्द्र भ्रातरः मरुतः तव ॥६३॥

नृप	राजन् !	इन्द्र नः किं	'इन्द्र' हमें क्यों
पाट्यमानाः	काटे जाते समय	जिघांससि	मार रहे हो,
ते सर्वे	वे सब	तव भ्रातरः	(हम तो) तुम्हारे भाई
प्राञ्जलयः	हाथ जोड़कर		
तं ऊचुः	उस (इन्द्र) से बोले,	मरुतः	मरुद्गण हैं ॥६३॥

मा भैष्ट भ्रातरो मह्यं यूयमित्याह कौशिकः ।
अनन्यभावान् पार्षदानात्मनो मरुतां गणान् ॥६४॥

मा भैष्ट भ्रातरः मह्यं यूयं इति आह कौशिकः अनन्य भावान् पार्षदान् आत्मनः मरुतां गणान् ॥६४॥

अनन्य भावान्	(तब) अनन्य प्रेमी	आह	कहा
आत्मनः	अपने उन (भावी)	मह्यं भ्रातरः	मेरे भाइयो
पार्षदान्	पार्षदोंसे	यूयं मा भैष्ट	तुम लोग डरो मत
कौशिकः इति	इन्द्रने यह		॥६४॥

न ममार दितेर्गर्भः श्रीनिवासानुकम्पया ।
बहुधा कुलिशक्षुण्णो द्रौण्यस्त्रेण यथा भवान् ॥६५॥

न ममार दितेः गर्भः श्रीनिवास अनुकम्पया बहुधा कुलिश क्षुण्णः द्रौणि अस्त्रेण यथा भवान् ॥६५॥

श्रीनिवास	भगवान् नारायणकी	कुलिशः	वज्र द्वारा
अनुकम्पया	कृपासे	बहुधा क्षुण्णः	अनेक टुकड़ोंमें कटकर भी
यथा भवान्	जैसे तुम		
द्रौणि अस्त्रेण	अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे (नहीं मरे)	दितेः गर्भ	दितिका गर्भ
		ममार न	मरा नहीं ॥६५॥

सकृदिष्ट्वाऽऽदिपुरुषं पुरुषो याति साम्यताम् ।
संवत्सरं किञ्चिदूनं दित्या यद्धरिरर्चितः ॥६६॥

सकृत् इष्ट्वा आदिपुरुषं पुरुषः याति साम्यतां संवत्सरं किञ्चित् ऊनं दित्या यत् हरिः अर्चितः ॥६६॥

यत् दित्या	क्योंकि दितिने	आदिपुरुषं	आदिपुरुष भगवान्-की
संवत्सरं	एक वर्षमें	सकृत् इष्ट्वा	एक ही बार पूजा करके
किञ्चित् ऊनं	कुछ ही कम समय तक	साम्यतां याति	उनकी समानता पा लेता है ॥६६॥
हरिः अर्चितः	श्रीहरिकी पूजा की थी,		
पुरुषः	पुरुष		

सजूरिन्द्रेण पञ्चाशद्देवास्ते मरुतोऽभवन् ।
व्यपोह्य मातृदोषं ते हरिणा सोमपाः कृताः ॥६७॥

सजूः इन्द्रेण पञ्चाशत् देवाः ते मरुतः अभवन् व्यपोह्य मातृदोषं ते हरिणा सोमपाः कृताः ॥६७॥

सजूः इन्द्रेण	वे अब इन्द्रके साथ	व्यपोह्य	त्यागकर
ते पञ्चाशत्	वे सब पचास	इन्द्रेण ते	इन्द्र द्वारा वे
मरुतः देवाः	मरुत् देवता	सोमपाः	सोमपानके अधिकारी देवता
अभवन्	हो गये		
मातृदोषं	माताके दोषको	कृताः	बना लिए गए ॥६७॥

दितिरुत्थाय ददृशे कुमारानलप्रभान् ।
इन्द्रेण सहितान् देवी पर्यतुष्यदनिन्दिता ॥६८॥

दितिः उत्थाय ददृशे कुमारान् अनलप्रभान् इन्द्रेण सहितान् देवी पर्यतुष्यत् अनिन्दिता ॥६८॥

दितिः उत्थाय	दितिने उठकर	ददृशे	देखा
अनलप्रभान्	अग्निके समान तेजस्वी	अनिन्दिता देवी	निन्दा न करने योग्य वह देवी
कुमारान्	बालकोंको	पर्यतुष्यत्	इससे बहुत प्रसन्न हुई ॥६८॥
इन्द्रेण सहितान्	इन्द्रके साथ		

अथेन्द्रमाह तातोहमादित्यानां भयावहम् ।
अपत्यमिच्छन्त्यचरं व्रतमेतत्सुदुष्करम् ॥६९॥

अथ इन्द्रं आह तात अहं आदित्यानां भय आवहं अपत्यं इच्छन्ति अचरं व्रतं एतत् सुदुष्करम् ॥६९॥

अथ इन्द्रं आह	फिर इन्द्रसे बोली	अपत्यं इच्छन्ति	पुत्र पानेकी इच्छासे
तात अहं	'बेटा' मैंने	एतत् सुदुष्क	यह बहुत दुष्कर
आदित्यानां	अदितिके पुत्रोंके लिए	व्रतं अचरं	नियम पालन किया है ॥६९॥
भय आवहं	भयदायक		

एकः सङ्कल्पितः पुत्रः सप्त सप्ताभवन् कथम् ।
यदि ते विदितं पुत्र सत्यं कथय मा मृषा ॥७०॥

एकः सङ्कल्पितः पुत्रः सप्त सप्त अभवन् कथं यदि ते विदितं पुत्र सत्यं कथय मा मृषा ॥७०॥

एकः पुत्रः	एक पुत्रका	विदितं सत्यं	पता हो तो सच
सङ्कल्पितः	सङ्कल्प किया था,	कथय	बता दो,
सप्त सप्त	उनचास	मृषा मा	झूठ मत बोलना
कथं अभवन्	कैसे हो गये,		॥७०॥
पुत्र यदि ते	बेटा, यदि तुम्हें		

इन्द्र उवाच—

अम्ब तेऽहं व्यवसितमुपधार्यागतोऽन्तिकम् ।
लब्धान्तरोऽच्छिदं गर्भमर्थबुद्धिर्न धर्मवित् ॥७१॥

अम्ब ते अहं व्यवसितं उपधार्य आगतः अन्तिकं लब्धा अन्तरः अच्छिदं गर्भं अर्थ बुद्धिः न धर्मवित् ॥७१॥

अम्ब	माता !	धर्मवित् न	(मैं) धर्मज्ञ नहीं हूँ
ते व्यवसितं	आपके उद्योगको		(अतः)
उपधार्य	जानकर	अन्तरः लब्धा	(व्रतमें) त्रुटि पाकर
अहं ते अन्तिकं	मैं आपके समीप	गर्भं अच्छिदं	(मैंने) गर्भको काटा
अर्थ बुद्धिः	स्वार्थ बुद्धिसे		॥७१॥
आगतः	आया था		

कृत्तो मे सप्तधा गर्भ आसन् सप्त कुमारकाः ।
तेऽपि चैकैकशो वृक्णाः सप्तधा नापि मम्रिरे ॥७२॥

कृत्तः मे सप्तधा गर्भ आसन् सप्त कुमारकाः ते अपि च एक एकशः वृक्णाः सप्तधा न अपि मम्रिरे ॥७२॥

मे गर्भ	मैंने गर्भको	ते अपि च	उनको भी फिर
सप्तधा कृत्तः	सात टुकड़ोंमें काट दिया तो	एक एकशः	एक-एकको
		सप्तधा	सात-सात टुकड़ोंमें
सप्त कुमारकाः	सात बालक	वृक्णाः अपि	काटे जानेपर भी
आसन्	हो गये	न मम्रिरे	नहीं मरे ॥७२॥

ततस्तत्परमाश्चर्यं वीक्ष्याध्यवसितं मया ।
महापुरुषपूजायाः सिद्धिः काप्यनुषङ्गिणी ॥७३॥

ततः तत् परम आश्चर्यं वीक्ष्य अध्यवसितं मया महापुरुष पूजायाः सिद्धिः कापि अनुषङ्गिणी ॥७३॥

ततः	तब	महापुरुष	भगवान् पुरुषोत्तमकी
परम आश्चर्यं	अत्यन्त आश्चर्य-जनक	पूजायाः	पूजा की
		कापि	(यह) कोई
तत् वीक्ष्य	यह (घटना) देखकर	अनुषङ्गिणी	अनिवार्य
मया अध्यवसितं	मैंने निश्चय किया कि	सिद्धिः	सिद्धि है ॥७३॥

आराधनं भगवत ईहमाना निराशिषः ।
ये तु नेच्छन्त्यपि परं ते स्वार्थकुशलाः स्मृताः ॥७४॥

आराधनं भगवतः ईहमाना निराशिषः ये तु न इच्छन्ति अपि परं ते स्वार्थ कुशलाः स्मृताः ॥७४॥

निराशिषः	निष्काम भावसे	परं अपि	परम-पद भी
भगवतः	भगवान्‌की	न इच्छन्ति	नहीं चाहते
आराधनं	आराधना	ते कुशलाः	वे वास्तविक
ईहमाना ये तु	करते हुए जो लोग तो	स्वार्थ	स्वार्थ निपुण
		स्मृताः	कहे गये हैं ॥७४॥

आराध्यात्मप्रदं देवं स्वात्मानं जगदीश्वरम् ।
को वृणीते गुणस्पर्शं बुधः स्यान्नरकेऽपि यत् ॥७५॥

आराध्य आत्मप्रदं देवं स्व आत्मानं जगत् ईश्वरं कः वृणीते गुणः स्पर्शं बुधः स्यात् नरके अपि यत् ॥७५॥

स्व आत्मानं	अपने आत्मरूप	यत् नरके अपि	जो नरकमें भी
जगत् ईश्वरं	सम्पूर्ण विश्वके स्वामी	स्यात्	मिलता है
आत्मप्रद देवं	अपनेको दे देनेवाले देवताकी	गुणः स्पर्शं	(वह) इन्द्रिय भोग
आराध्य	आराधना करके	कः बुधः वृणीते	कौन बुद्धिमान मांगेगा ॥७५॥

तदिदं मम दौर्जन्यं बालिशस्य महीयसि ।
क्षन्तुमर्हसि मातस्त्वं दिष्ट्या गर्भो मृतोत्थितः ॥७६॥

तत् इदं मम दौर्जन्यं बालिशस्य महीयसि क्षन्तुं अर्हसि मातः त्वं दिष्ट्या गर्भः मृत उत्थितः ॥७६॥

तत् इदं	अतः यह	दिष्ट्या	सौभाग्यकी बात है कि
मम बालिशस्य	मुझ मूर्खकी	मृत गर्भः	मरा प्राय गर्भ
दौर्जन्यं	दुष्टता	उत्थितः	जीवित हो गया है ॥७६॥
महीयसि मातः	पूजनीया माता		
त्वं क्षन्तुं अर्हसि	आपको क्षमा कर देना चाहिए,		

श्रीशुक उवाच-

इन्द्रस्तयाभ्यनुज्ञातः शुद्धभावेन तुष्टया ।
मरुद्भिः सह तां नत्वा जगाम त्रिदिवं प्रभुः ॥७७॥

इन्द्रः तया अभ्यनुज्ञातः शुद्ध भावेन तुष्टया मरुत्भिः सह तां नत्वा जगाम त्रिदिवं प्रभुः ॥७७॥

शुद्ध भावेन	(इन्द्रके) शुद्धभावसे	तां नत्वा	उस (दिति) को नमस्कार करके
तुष्टया तया	सन्तुष्ट हुई उस (दिति) से	प्रभुः इन्द्रः	देवराज इन्द्र
अभ्यनुज्ञातः	आज्ञा पाकर	त्रिदिवं जगाम	स्वर्ग चले गये ॥७७
मरुत्भिः सह	मरुद्गणोंके साथ		

एवं ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
मङ्गलं मरुतां जन्म किं भूयः कथयामि ते ॥७८॥

एवं ते सर्वं आख्यातं यत् मां त्वं परिपृच्छसि मङ्गलं मरुतां जन्म किं भूयः कथयामि ते ॥७८॥

यत् मां त्वं	जो मुझसे तुमने	**जन्म सर्वं**	जन्मकी सब कथा
परिपृच्छसि	पूछा था	**आख्यातं**	सुना दी
एवं ते	इस प्रकार तुमसे	**ते भूयः किं**	तुमसे और क्या
मंगलं मरुतां	मंगलमय मरुद्गणोंके	**कथयामि**	वर्णन करूँ ॥७८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे मरुदुत्पत्तिकथनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

राजोवाच—

व्रतं पुंसवनं ब्रह्मन् भवता यदुदीरितम् ।
तस्य वेदितुमिच्छामि येन विष्णुः प्रसीदति ॥ १ ॥

व्रतं पुंसवनं ब्रह्मन् भवता यत् उदीरितं तस्य वेदितुं इच्छामि येन विष्णुः प्रसीदति ॥१॥

ब्रह्मन्	विप्रवर !	येन विष्णुः	जिससे भगवान् विष्णु
भवता यत्	आपने जो	प्रसीदति	प्रसन्न होते हैं
पुंसवनं व्रतं	पुंसवन व्रत	तस्य वेदितुं	उसीको जानना
उदीरितं	कहा	इच्छामि	चाहता हूँ ॥१॥

श्रीशुक उवाच—

शुक्ले मार्गशिरे पक्षे योषिद्भर्तुरनुज्ञया ।
आरभेत व्रतमिदं सार्वकामिकमादितः ॥ २ ॥

शुक्ले मार्गशिरे पक्षे योषित् भर्तुः अनुज्ञया आरभेत व्रतं इदं सार्वकामिकं आदितः ॥२॥

शुक्ले मार्गशिरे	मार्गशीर्षके शुक्ल	सार्वकामिकं	सम्पूर्ण कामना पूर्ण करनेवाला
पक्षे	पक्षके	व्रतं आरभेत	व्रत आरम्भ करे ॥२॥
आदितः	प्रारम्भसे		
भर्तुः अनुज्ञया	पतिकी आज्ञा लेकर		
योषित् इदं	स्त्री यह		

निशम्य मरुतां जन्म ब्राह्मणाननुमन्त्र्य च ।
स्नात्वा शुक्लदती शुक्ले वसीतालङ्कृताम्बरे ।
पूजयेत्प्रातराशात्प्राग्भगवन्तं श्रिया सह ॥ ३ ॥

निशम्य मरुतां जन्म ब्राह्मणान् अनुमन्त्र्य च स्नात्वा शुक्लदती शुक्ले वसीत अलङ्कृत अम्बरे पूजयेत् प्रातराशात् प्राक् भगवन्तं श्रिया सह ॥३॥

मरुतां जन्म	मरुद्गणोंके जन्म (की कथा)	अम्बरे	वस्त्र
निशम्य	सुनकर,	वसीत	पहिने !
च ब्राह्मणान्	और ब्राह्मणोंकी	प्रातराशात्	कलेऊ करनेसे
अनुमन्त्र्य	अनुमति लेकर	प्राक्	पहिले
शुक्लदती	दांत स्वच्छ करके,	श्रिया सह	लक्ष्मीके साथ
स्नात्वा शुक्ले	स्नान करके श्वेत	भगवन्तं पूजयेत्	भगवान्‌की पूजा करें ॥३॥
अलङ्कृत	आभूषण और		

अलं ते निरपेक्षाय पूर्णकाम नमोऽस्तु ते ।
महाविभूतिपतये नमः सकलसिद्धये ॥ ४ ॥

अलं ते निरपेक्षाय पूर्णकाम नमः अस्तु ते महाविभूति पतये नमः सकल सिद्धये ॥४॥

ते अलं	आप अत्यन्त	पतये	पति
निरपेक्षाय	निरपेक्ष	सकल सिद्धये	समस्त सिद्धि स्वरूपको
पूर्णकाम	पूर्णकामको		
नमः अस्तु	नमस्कार है,	नमः	नमस्कार ॥४॥
ते महाविभूति-	आप महाविभूति-		

यथा त्वं कृपया भूत्या तेजसा महिनौजसा ।
जुष्ट ईश गुणैः सर्वैस्ततोऽसि भगवान् प्रभुः ॥ ५ ॥

यथा त्वं कृपया भूत्या तेजसा महिनः ओजसा जुष्ट ईश गुणैः सर्वैः ततः असि भगवान् प्रभुः ॥५॥

यथा त्वं	जैसे आप	जुष्टः	नित्ययुक्त हैं
कृपया भूत्या	कृपा, विभूति,	ततः प्रभुः	इसलिए स्वामी (आप)
तेजसा महिनः	तेज, महिमा,	भगवान् असि	भगवान् हैं ॥५॥
ओजसा	ओजसे,		
सर्वैः ईश गुणैः	सम्पूर्ण ईश्वरीय गुणोंसे		

विष्णुपत्नि महामाये महापुरुषलक्षणे ।
प्रीयेथा मे महाभागे लोकमातर्नमोऽस्तु ते ॥ ६ ॥

विष्णुपत्नि महामाये महापुरुष लक्षणे प्रीयेथा मे महाभागे लोकमातः नमः अस्तु ते ॥६॥

महामाये	महामाया,	महाभागे	महाभागा
विष्णुपत्नि	विष्णु भगवान्‌की पत्नी	मे प्रीयेथा	मुझपर प्रसन्न हो,
महापुरुष लक्षणे	भगवान् पुरुषोत्तम-की (श्रीवत्सरूपमें) लक्षणभूता,	लोकमातः	जगज्जननी
		ते नमः अस्तु	आपको नमस्कार है ॥६॥

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सह महाविभूतिभिर्बलिमुपहराणीति । अनेनाहरहर्मन्त्रेण विष्णोरावाहनाद्यर्घ्यपाद्योपस्पर्शनस्नानवासउपवीतविभूषणगन्ध-पुष्पधूपदीपोपहाराद्युपचारांश्च समाहित उपाहरेत् ॥७॥

ॐ नमः भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सह महाविभूतिभिः बलिं उपहराणि इति । अनेन अहः अहः मन्त्रेण विष्णोः आवाहन अर्घ्य पाद्य उपस्पर्शन स्नान वास उपवीत विभूषण गन्ध पुष्प धूप दीप उपहार आदि उपचारां च समाहित उपाहरेत् ॥७॥

ॐ	ओङ्कार स्वरूप
भगवते	भगवान्
महापुरुषाय	पुरुषोत्तम
महानुभावाय	महाप्रभाव
महाविभूतिपयते	लक्ष्मीपतिको
नमः	नमस्कार,
सह	आपको
महाविभूतिभिः	श्रीलक्ष्मीजीके साथ
बलिं उपहराणि	उपहार भेंट करती हूँ।
इति	इस प्रकार
अनेन मन्त्रेण	इस मन्त्रसे
अहः अहः	प्रतिदिन
विष्णोः	भगवान् विष्णुको
आवाहन अर्घ्यं	आवाहन करके, अर्घ्य,
पाद्य उपस्पर्शन	पाद्य, आचमन,
स्नान वास	स्नान, वस्त्र,
उपवीत	यज्ञोपवीत,
विभूषण	आभूषण,
गन्ध, पुष्प	चन्दन, पुष्प,
धूप दीप	धूप, दीप
उपहार आदि	नैवेद्य आदि
उपचारान् च	पूजा सामग्रीको भी
समाहित	एकाग्र होकर
उपाहरेत्	अर्पित करे ॥७॥

हविःशेषं तु जुहुयादनले द्वादशाहुतीः ।
ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाविभूतिपतये स्वाहेति ॥८॥

हविःशेषं तु जुहुयात् अनले द्वादश आहुतिः । ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाविभूति पतये स्वाहा इति ॥८॥

हविःशेषं तु	बचे हुए नैवेद्यसे ही
अनले	अग्निमें
द्वादश आहुतिः	बारह आहुति
जुहुयात्	हवन करे,
'ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाविभूति पतये स्वाहा' इति	इस मन्त्रसे ॥८॥

श्रियं विष्णुं च वरदावाशिषां प्रभवावुभौ ।
भक्त्या सम्पूजयेन्नित्यं यदीच्छेत्सर्वसम्पदः ॥ ९ ॥

श्रियं विष्णुं च वरदाः आशिषां प्रभवाः उभौ भक्त्या सम्पूजयेत् नित्यं यदि इच्छेत् सर्व सम्पदः ॥९॥

यदि सर्वं सम्पदः	यदि सब सम्पत्ति
इच्छेत्	पानेकी इच्छा हो तो
श्रियं विष्णुं च	लक्ष्मी और विष्णु भगवान्
उभौ वरदाः	दोनों वरदायी
अशिषां प्रभवाः	अभिलाषाओंके प्रदाताओंकी
भक्त्या नित्यं	भक्तिपूर्वक सदा
सम्पूजयेत्	पूजा करे ॥९॥

प्रणमेद्दण्डवद्भूमौ भक्तिप्रह्वेण चेतसा ।
दशवारं जपेन्मन्त्रं ततः स्तोत्रमुदीरयेत् ॥१०॥

प्रणमेत् दण्डवत् भूमौ भक्तिप्रह्वेण चेतसा दशवारं जपेत् मन्त्रं ततः स्तोत्रं उदीरयेत् ॥१०॥

भक्तिप्रह्वेण	भक्ति-भावपूर्ण
चेतसा	चित्तसे
भूमौ दण्डवत्	फिर पृथ्वीपर दण्डवत्
प्रणमेत्	प्रणाम करे,
मन्त्रं	तब मन्त्रका
दशवारं जपेत्	दस बार जप करे,
ततः स्तोत्रं	फिर इस स्तोत्रका
उदीरयेत्	उच्चारण करे ॥१०॥

युवां तु विश्वस्य विभू जगतः कारणं परम् ।
इयं हि प्रकृतिः सूक्ष्मा मायाशक्तिर्दुरत्यया ॥११॥

युवां तु विश्वस्य विभू जगतः कारणं परं इयं हि प्रकृतिः सूक्ष्मा मायाशक्तिः दुरत्यया ॥११॥

युवां तु	आप दोनों ही
विश्वस्य विभू	विश्वमें व्यापक,
जगतः परं	संसारके परम
कारणं	कारण हैं।
हि इयं	क्योंकि ये (लक्ष्मी-जी)
सूक्ष्मा प्रकृतिः	सूक्ष्म प्रकृति
दुरत्यया	दुष्पारा
मायाशक्तिः	माया शक्ति हैं ॥११॥

तस्या अधीश्वरः साक्षात्त्वमेव पुरुषः परः ।
त्वं सर्वयज्ञ इज्येयं क्रियेयं फलभुग्भवान् ॥१२॥

तस्या अधीश्वरः साक्षात् त्वं एव पुरुषः परः त्वं सर्वयज्ञ इज्या इयं क्रिय इयं फलभुक् भवान् ॥१२॥

तस्या अधीश्वरः	उनके अधीश्वर
त्वं एव	आप ही
साक्षात् परः	साक्षात् परम
पुरुषः	पुरुष हैं,
त्वं सर्वयज्ञ	आप सर्वयज्ञ रूप हैं,
इयं इज्या	ये यज्ञ क्रिया हैं ।
इयं क्रिया	ये कर्म रूपा हैं और
भवान् फलभुक्	(उसके) आप फल भोक्ता हैं ॥१२॥

गुणव्यक्तिरियं देवी व्यञ्जको गुणभुग्भवान् ।
त्वं हि सर्वशरीर्यात्मा श्रीः शरीरेन्द्रियाशया ।
नामरूपे भगवती प्रत्ययस्त्वमपाश्रयः ॥१३॥

गुण व्यक्तिः इयं देवी व्यञ्जकः गुणभुक् भवान् त्वं हि सर्व शरीरी आत्मा श्रीः शरीर इन्द्रिय आशया नामरूपे भगवती प्रत्ययः त्वं अपाश्रयः ॥१३॥

इयं देवी	ये देवी (लक्ष्मी)
गुण व्यक्तिः	गुणोंकी अभिव्यक्ति हैं,
व्यञ्जकः	उनको व्यक्त करनेवाले
भवान् गुणभुक्	आप गुणोंके भोक्ता हैं ।
हि	क्योंकि
सर्व	(आप) सब
शरीरी	शरीरोंमें रहनेवाले
आत्मा	आत्मा हैं,
श्रीः	लक्ष्मीजी
शरीर इन्द्रिय	शरीर, इन्द्रियां और
आशया	अन्तःकरण रूप हैं,
भगवती	भगवती (लक्ष्मी)
नामरूपे	नाम और रूपमें
प्रत्ययः	प्रतीत होने वाली हैं,
त्वं अपाश्रयः	आप (इनके) प्रकाशक हैं ॥१३॥

यथा युवां त्रिलोकस्य वरदौ परमेष्ठिनौ ।
तथा म उत्तमश्लोक सन्तु सत्या महाशिषः ॥१४॥

यथा युवां त्रिलोकस्य वरदौ परमेष्ठिनौ तथा म उत्तमश्लोक सन्तु सत्या महा आशिषः ॥१४॥

उत्तमश्लोक	पवित्र कीर्ति प्रभु !	वरदौ	वरदाता हैं
यथा युवां	जैसे आप दोनों	तथा म	वैसे ही मेरी
परमेष्ठिनौ	परमेश्वर	महा आशिषः	बड़ी अभिलाषाएँ
त्रिलोकस्य	त्रिलोकीको	सत्या सन्तु	पूर्ण हों ॥१४॥

इत्यभिष्टूय वरदं श्रीनिवासं श्रिया सह ।
तन्निःसार्योपहरणं दत्त्वाऽऽचमनमर्चयेत् ॥१५॥

इति अभिष्टूय वरदं श्रीनिवासं श्रिया सह तत् निःसार्य उपहरणं दत्त्वा आचमनं अर्चयेत् ॥१५॥

इति	इस प्रकार	तत् उपहरणं	वहांसे नैवेद्य
वरदं श्रीनिवासं	वरदाता भगवान् नारायणकी	निःसार्य	हटाकर
		आचमनं दत्त्वा	आचमन देकर
श्रिया सह	लक्ष्मीके साथ	अर्चयेत्	(शेष) पूजा करे ॥१५
अभिष्टूय	स्तुति करके		

ततः स्तुवीत स्तोत्रेण भक्तिप्रह्वेण चेतसा ।
यज्ञोच्छिष्टमवघ्राय पुनरभ्यर्चयेद्धरिम् ॥१६॥

ततः स्तुवीत स्तोत्रेण भक्ति प्रह्वेण चेतसा यज्ञ उच्छिष्टं अवघ्राय पुनः अभ्यर्चयेत् हरिम् ॥१६॥

ततः भक्ति-	तब भक्ति-	यज्ञ उच्छिष्टं	यज्ञावशेषको
प्रह्वेण	पूर्ण	अवघ्राय	सूंघकर
चेतसा	चित्तसे	पुनः हरिं	फिर श्रीहरिकी
स्तोत्रेण स्तुवीत	स्तवों द्वारा स्तुति करे,	अभ्यर्चयेत्	पूजा करे ॥१६॥

पतिं च परया भक्त्या महापुरुषचेतसा ।
प्रियैस्तैस्तैरुपनमेत् प्रेमशीलः स्वयं पतिः ।
बिभृयात् सर्वकर्माणि पत्न्या उच्चावचानि च ॥१७॥

पतिं च परया भक्त्या महापुरुष चेतसा प्रियैः तैः तैः उपनमेत् प्रेमशीलः स्वयं पतिः बिभृयात् सर्वकर्माणि पत्न्या उच्च अवचानि च ॥१७॥

च	फिर (भगवान्‌की पूजाके बाद)
परया भक्त्या	परम प्रेमसे
पतिं च	पतिको भी
महापुरुष चेतसा	(उनको) परम पुरुष मानकर
तैः तैः प्रियैः	(उनकी) उन-उन प्रिय वस्तुएँ
उपनमेत्	(सेवामें) उपस्थित करे
स्वयं पतिः	स्वयं पति भी
प्रेमशीलः	(पत्नीसे) प्रेम पूर्वक व्यवहार करे
पत्न्या उच्च	पत्नीके बड़े
अवचानि	छोटे
सर्व कर्माणि	कर्मों (कर्तव्यों) को
बिभृयात्	धारण करे (स्वयं कर दें) ॥१७॥

कृतमेकतरेणापि दम्पत्योरुभयोरपि ।
पत्न्यां कुर्यादनर्हायां पतिरेतत् समाहितः ॥१८॥

कृतं एकतरेण अपि दम्पत्योः उभयोः अपि पत्न्यां कुर्यात् अनर्हायां पतिः एतत् समाहितः ॥१८॥

दम्पत्योः	पति-पत्नीमें-से
एकतरेण कृतं	किसी एकके द्वारा भी किया
उभयोः अपि	दोनोंका ही हो जाता है,
पत्न्यां	पत्नीके
अनर्हायां	(रोग, रजो-धर्मादिके कारण) न करने योग्य हो जानेपर
पतिः समाहितः	पतिको सावधानीसे
एतत् कुर्यात्	यह व्रत करना चाहिए ॥१८॥

विष्णोर्व्रतमिदं बिभ्रन्न विहन्यात् कथञ्चन ।
विप्रान् स्त्रियो वीरवतीः स्रग्गन्धबलिमण्डनैः ।
अर्चेदहरहर्भक्त्या देवं नियममास्थितः ॥१९॥

विष्णोः व्रतं इदं बिभ्रत् न विहन्यात् कथञ्चन विप्रान् स्त्रियः वीरवतीः स्रक् गन्ध बलि मण्डनैः अर्चेत् अहरहः भक्त्या देवं नियमं आस्थितः ॥१९॥

इदं विष्णोः व्रतं	यह विष्णु-व्रत
बिभ्रत्	धारण करके
कथञ्चन	किसी भी तरह (बीचमें)
न विहन्यात्	न छोड़े,
विप्रान्	ब्राह्मणों और
वीरवती स्त्रियः	सुहागिनी स्त्रियोंका
देवं	तथा भगवान्‌की
नियमं	नियम
आस्थितः	निष्ठ होकर
स्रक् गन्ध	माला, चन्दन,
बलि मण्डनैः	नैवेद्य, आभूषणादिसे
भक्त्या अहरहः	भक्ति सहित प्रतिदिन
अर्चेत्	पूजन करे ॥१९॥

उद्वास्य देवं स्वे धाम्नि तन्निवेदितमग्रतः ।
अद्यादात्मविशुद्ध्यर्थं सर्वकामर्द्धये तथा ॥२०॥

उद्वास्य देवं स्वे धाम्नि तत् निवेदितं अग्रतः अद्यात् आत्म विशुद्धि अर्थं सर्वकाम ऋद्धये तथा ॥२०॥

देवं स्वे धाम्नि	(तब) भगवान्‌को उनके धाम (जानेको)
उद्वास्य	विसर्जित करके
आत्म विशुद्धि	चित्त शुद्धिके
अर्थं तथा	लिए तथा
सर्वकाम ऋद्धये	सम्पूर्ण अभिलाषाओं-की पूर्तिके लिए
अग्रतः	पहिले ही
तत् निवेदितं	उन (भगवान्) को निवेदित (प्रसाद)
अद्यात्	ग्रहण करे ॥२०॥

एतेन पूजाविधिना मासान् द्वादश हायनम् ।
नीत्वाथोपचरेत्साध्वी कार्तिके चरमेऽहनि ॥२१॥

एतेन पूजा विधिना मासात् द्वादश हायनं नीत्वा अथ उपचरेत साध्वी कार्तिके चरमे अहनि ॥२१॥

एतेन	इस	चरमे अहनि	व्रतके अन्तिम दिन (मार्गशीर्ष अमावस्याको)
पूजा विधिना	पूजा विधिसे		
द्वादश मासान्	बारह महीने,		
हायनं	पूरा वर्ष बिताकर	साध्वी	वह पतिव्रता
कार्तिके	कार्तिकके बाद	उपचरेत्	उद्यापन करे ॥२१॥

श्वोभूतेऽप उपस्पृश्य कृष्णमभ्यर्च्य पूर्ववत् ।
पयःश्रृतेन जुहुयाच्चरुणा सह सर्पिषा ।
पाकयज्ञविधानेन द्वादशैवाहुतीः पतिः ॥२२॥

श्व अभूते अप उपस्पृश्य कृष्णं अभ्यर्च्य पूर्ववत् पयः श्रृतेन जुहुयात् चरुणा सह सर्पिषा पाकयज्ञ विधानेन द्वादश एव आहुतीः पतिः ॥२२॥

श्व अभूते	(उस दिन) सबेरा होते ही	सह सर्पिषा	घीके साथ
		पयः श्रृतेन	दूधमें पकायी
अप उपस्पृश्य	स्नान करके	चरुणा	खीरसे
पूर्ववत् कृष्णं	पहिलेके समान भगवान् विष्णुकी	द्वादश एव	बारह ही
		आहुतीः	आहुतियोंसे
अभ्यर्च्य	पूजा करके	जुहुयात्	हवन करे ॥२२॥
पतिः	(उसका) पति		
पाकयज्ञ	पाक-यज्ञकी		
विधानेन	विधिसे		

आशिषः शिरसाऽऽदाय द्विजैः प्रीतैः समीरिताः ।
प्रणम्य शिरसा भक्त्या भुञ्जीत तदनुज्ञया ॥२३॥

आशिषः शिरसा आदाय द्विजैः प्रीतैः समीरिताः प्रणम्य शिरसा भक्त्या भुञ्जीत तत् अनुज्ञया ॥२३॥

प्रीतैः द्विजैः	प्रसन्न हुए ब्राह्मणों द्वारा	समीरिताः	दिये गये
		आशिषः	आशीर्वादको

शिरसा आदाय	मस्तक झुकाकर स्वीकार करके	तत् अनुज्ञया	उनकी अनुमति लेकर
भक्त्या	भक्तिपूर्वक	भुञ्जीत	भोजन करे ॥२३॥
शिरसा प्रणम्य	सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम करके		

आचार्यमग्रतः कृत्वा वाग्यतः सह बन्धुभिः ।
दद्यात्पत्न्यै चरोः शेषं सुप्रजस्त्वं सुसौभगम् ॥२४॥

आचार्यं अग्रतः कृत्वा वाक् यतः सह बन्धुभिः दद्यात् पत्न्यै: चरोः शेषं सुप्रजः त्वं सुसौभगम् ॥२४॥

आचार्यं	आचार्यको	पत्न्यै: दद्यात्	पत्नीको (इस संकल्प से) दे
अग्रतः कृत्वा	पहिले (भोजन) कराके	त्वं सुप्रजः	तुम (प्रसाद) सत्पुत्र और
सह बन्धुभिः	बन्धु-बान्धवोंके साथ	सुसौभगं	सौभाग्य देनेवाले होओ ॥२४॥
वाक् यतः	मौन होकर (भोजन करे) तब		
चरोः शेषं	हवनसे बची खीर		

एतच्चरित्वा विधिवद्व्रतं विभो-
रभीप्सितार्थं लभते पुमानिह ।
स्त्री त्वेतदास्थाय लभेत सौभगं
श्रियं प्रजां जीवपतिं यशो गृहम् ॥२५॥

एतत् चरित्वा विधिवत् व्रतं विभोः अभीप्सित अर्थं लभते पुमान् इह स्त्री तु एतत् आस्थाय लभेत सौभगं श्रियं प्रजां जीवपतिं यशः गृहम् ॥२५॥

एतत् विभोः	यह सर्वेश्वर प्रभु-का	चरित्वा पुमान्	करके पुरुष
व्रतं विधिवत्	व्रत विधिपूर्वक	इह	इसी जीवनमें
		अभीप्सित अर्थं	अभीष्ट प्रयोजन

लभते	प्राप्त कर लेता है,	प्रजां जीवपतिं	पुत्र, पतिका जीवन,
स्त्री तु	स्त्री तो	यशः गृहं	यश और घर
एतत् आस्थाय	इसका पालन करके	लभेत	पाती है ॥२५॥
सौभगं श्रियं	सौभाग्य, लक्ष्मी,		

कन्या च विन्देत समग्रलक्षणं
वरं त्ववीरा हतकिल्बिषा गतिम् ।
मृतप्रजा जीवसुता धनेश्वरी
सुदुर्भगा सुभगा रूपमग्र्यम् ॥२६॥

कन्या च विन्देत समग्र लक्षणं वरं तु अवीरा हत किल्बिषा गतिं मृतप्रजा जीवसुता धनेश्वरी सुदुर्भगा सुभगा रूपं अग्र्यम् ॥२६॥

च कन्या	और कन्या (इसे करके)	मृतप्रजा	जिसकी सन्तान मर जाती हो
समग्र लक्षणं	सम्पूर्ण शुभ लक्षण युक्त	जीवसुता	उसके पुत्र जीवित रहते हैं,
वरं	पति (पाती है),	धनेश्वरी	धनवान
तु अवीरा	यदि विधवा करे	सुदुर्भगा	अभागिनीको
हत किल्बिषा	उसके पाप नष्ट हो जाते हैं,	सुभगा	सौभाग्य तथा
		अग्र्यं रूपं	श्रेष्ठ रूप मिलता है ॥२६॥
गतिं	उत्तम गति(पाती है)		

विन्देद् विरूपा विरुजा विमुच्यते
य आमयावीन्द्रियकल्पदेहम् ।
एतत्पठन्नभ्युदये च कर्म-
ण्यनन्ततृप्तिः पितृदेवतानाम् ॥२७॥

विन्देत् विरूपा विरुजा विमुच्यते य आमयाः इन्द्रिय कल्पदेहं एतत् पठन् अभ्युदये च कर्मणि अनन्त तृप्तिः पितृदेवतानाम् ॥२७॥

विरूपा	कुरूपा
(रूपं) विन्देत्	उत्तम रूप पा लेती है,
विरुजा	रोगी
य	जो
आमयाः इन्द्रिय	इन्द्रियोंमें रोग था
विमुच्यते	उससे छूट जाता है।
कल्पदेहं	उसका काया-कल्प हो जाता है।
च अभ्युदये	और मांगलिक
कर्मणि	कर्मोंके अवसरपर
एतत् पठन्	इसका पाठ करनेसे
पितृदेवतानां	पितरों तथा देवताओंकी
अनन्त तृप्तिः	अनन्त तृप्ति होती है ॥२७॥

तुष्टाः प्रयच्छन्ति समस्तकामान्
होमावसाने हुतभुक् श्रीर्हरिश्च।
राजन् महन्मरुतां जन्म पुण्यं
दितेर्व्रतं चाभिहितं महत्ते ॥२८॥

तुष्टाः प्रयच्छन्ति समस्त कामान् होम अवसाने हुतभुक् श्रीः हरिः च राजन् महत् मरुतां जन्म पुण्यं दितेः व्रतं च अभिहितं महत् ते ॥२८॥

होम अवसाने	हवनके अन्तमें
तुष्टाः	सन्तुष्ट होकर
हुतभुक् च	अग्निदेव और
श्रीः हरिः	श्रीलक्ष्मीनारायण
समस्त कामान्	सम्पूर्ण अभिलाषा
प्रयच्छन्ति	प्रदान करते हैं
राजन्	राजन् !
महत् पुण्यं	महान् पुण्यप्रद
मरुतां जन्म	मरुद्गणोंका जन्म
च दितेः	और दितिके
महत् व्रतं	महान् व्रतको
ते अभिहितं	तुम्हें सुना दिया ॥२८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यामष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे पुंसवनव्रतकथनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥१९॥

॥ इति षष्ठः स्कन्धः समाप्तः ॥

हरि ॐ तत्सत्